# प्राचीन और मध्ययुगीन समाज
# ( Ancient and Medieval Society )

आरम्भिक मानव समाज

## शिकार और संग्रहण

1

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

### परिचय

आज जिस विकसित मानव को हम देख रहे हैं उसकी शुरूआत एक साधारण उत्तक से ही हुई थी। समय के साथ निरंतर उसके जीवन और प्रकृति का स्वरूप बदलता रहा है। जहाँ तक मानव जीवन के आरम्भ की बात है, तो यह लगभग 3 हजार मिलियन वर्ष पुराना माना जाता है। मनुष्य के क्रमिक विकास को समझने हेतु 1860 में चार्ल्स डार्विन ने 'क्रम-विकास का सिद्धान्त' सामने रखा। हालांकि पुरातात्त्विक खोजों एवं मानवशास्त्रीय अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि आज के मानव के कई पूर्वज थे, जिनमें काफी जैविक विशेषताएँ समान थीं।

मनुष्य के विकास को दो तरह से समझा जा सकता है, जैविक क्रमिक विकास, जिसके अन्तर्गत उसकी शारीरिक बनावट आदि में परिवर्तन को समझा जाता है जबकि दूसरा, सामाजिक और सांस्कृतिक क्रमिक विकास है, जिसके अन्तर्गत उसके बदलते परिवेश, आदतों, स्वभावों आदि में परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है।

हमारे पूर्वज नरवानर वंश से सम्बन्धित हैं, जिसमें लगभग 60 मिलियन वर्ष पूर्व आज के मनुष्य की कुछ विशेषताएँ दिखने लगी थीं। जैव आनुवंशिकी आँकड़ों से भी ऐसा प्रतीत होता है कि 5-6 मिलियन वर्ष पूर्व होमिनिडे शाखा पौंगिडे से अलग हो गए थे। हालांकि पौंगिडे पश्चिमी और मध्य अफ्रीका के नम क्षेत्र तक ही सीमित रहे, जबकि होमिनिडे ने पूर्व और दक्षिण अफ्रीका के खुले स्थानों में रहना पसंद किया। सर्वप्रथम, होमिनिडे ने ही दो पैरों पर चलना आरम्भ किया जो मनुष्य बनने की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण चरण था। स्वाभाविक रूप से उस घटना से उनकी शारीरिक बनावट में व्यापक परिवर्तन आया तथा अब ये अपने हाथों का उपयोग अन्य कार्यों जैसे औजार आदि बनाने या उनके इस्तेमाल में करने लगे। 3.5-1.5 मिलियन वर्ष के मध्य आस्ट्रेलोपिथेकस एवं होमो के बीच का अन्तर दिखने लगा। इन्हीं की एक विकसित शाखा थी होमोहेबिलिस, जिसने सम्भवत: सर्वप्रथम औजार बनाया। इसके बाद अगली विकसित शाखा होमोइरेक्ट थी, जिसकी शारीरिक बनावट की कुछ खास विशेषताएँ थीं। लीकी का मानना है कि होमोसेपियन्स का विकास इसी शाखा से हुआ है। लीकी ने होमोइरेक्टस की शारीरिक बनावट की चर्चा करते हुए कहा है कि यह मोटा और नाटा था। साथ ही इनका मस्तिष्क होमोहेबिलिस से बड़ा था, जबकि होमोसेपियन्स के मस्तिष्क का 70% था। होमोइरेक्टस से होमोसेपियन्स तक के क्रमिक विकास का सफर सर्वत्र समान नहीं रहा, जबकि इस पर समय एवं क्षेत्र का पर्याप्त प्रभाव रहा। होमोसेपियन्स की ही एक विकसित शाखा थी निएन्डरथैलेनिस जो यूरोप एवं कुछ अन्य क्षेत्रों में विकसित हुई। होमोइरेक्टस से होमोसेपियन्स सेपियन्स के क्रमिक विकास की प्रक्रिया के सन्दर्भ में लीकी का मानना है कि यदि हम होमोलाइन के क्रमिक विकास एवं पर्यावरणात्मक परिवेश की अपेक्षा शारीरिक क्षमताओं को देखें, तो पाते हैं कि होमोइरेक्टस ने विकास एवं प्रौद्योगिकी पर अधिक ध्यान दिया तथा इस प्रकार होमोसेपियन्स की ओर क्रमिक विकास

www.neerajbooks.com



किया। यही कारण है कि जहाँ कहीं भी होमोइरेक्टस का अस्तित्व रहा, वहाँ होमोसेपियन्स के प्रमाण मिले हैं और विकास की इसी प्रक्रिया का परिणाम था कि होमोसेपियन्स से होमोसेपियन्स सेपियन्स यानी आधुनिक मानव का जन्म हुआ।

*बोहस्लाव क्लिमा* ने उस क्रमिक विकास का विस्तार से अध्ययन किया तथा यह स्पष्ट किया कि ऊपरी पुरापाषाण संस्कृतियां होमोसेपियन्स सेपियन्स प्रकार के मानवों से सम्बन्धित हैं, जो होमिनिड क्रमिक विकास और मानव वंश के जैविक निर्माण की लम्बी और जटिल प्रक्रिया का परिणाम है। इन्होंने होमिनिड के क्रमिक विकास में तीन कार्यात्मक पहलुओं का उल्लेख किया है। पहला, यह कि उनके वक्ष एवं उनसे जुड़े अंगों में परिवर्तन होता है। दूसरा, यह कि वह दो पैरों पर चलना आरम्भ करते हैं, जबकि तीसरा कार्यात्मक पहलू कपाल की आकृति, खासतौर पर कपाल की क्षमता में बढ़ोतरी दिखाई देती है। क्लिमा का यह भी मानना है कि श्रोणि प्रदेश और मजबूत पैरों के कारण मानव के आवागमन में तेजी आती है। कपाल क्षमताओं का अध्ययन करके यह अनुमान लगाया गया कि भिन्न-भिन्न मानव समूहों की क्षमता अलग-अलग थी। आस्ट्रेलोपिथेकस की क्षमता 400-500 सीसी, होमोहेबिलिस की 700 सीसी, होमोइरेक्टस की 900-1100 सीसी, जबकि होमोसेपियन्स की क्षमता इन सभी से अधिक 1250-1450 सीसी थी।

आदिमानव की आरम्भिक जीवन-शैलियों के सन्दर्भ में ज्ञात प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कंदमूल इकट्ठा करके एवं शिकार करके वे अपना जीवनयापन किया करते थे। उपलब्ध स्रोतों के माध्यम से पुरातत्ववेताओं एवं मानव वैज्ञानिकों को उन शिकारी संग्रहकर्त्ताओं के जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने में काफी मदद मिली। इन स्रोतों के माध्यम से इनकी शारीरिक बनावट, विशेषताओं, रहने का परिवेश एवं जीवनयापन के सन्दर्भ में विश्लेषण करके सम्भव हो सका। साथ ही उनके द्वारा प्रयोग किए गए औजारों, उनके द्वारा आग की खोज, उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि महत्त्वपूर्ण विषयों को समझने एवं जानने में मदद मिली। हालांकि इन उपलब्ध आँकड़ों के बावजूद आदिमानव के सन्दर्भ में आज भी कुछ ऐसी जानकारियाँ हैं, जहाँ तक आज का मानव नहीं पहुँच पाया है।

मानव के ऐतिहासिक विकासक्रम एवं उनकी संस्कृतियों के प्रसार की व्याख्या करना आज भी मानव के लिए एक दुरूह कार्य बना हुआ है, परन्तु उपलब्ध स्रोतों एवं अन्य साधनों के माध्यम से आज का मनुष्य उनके विकासक्रम के काल को निर्धारित करने का प्रयास अवश्य कर रहा है। इस निर्धारण के लिए आज विद्वानों ने उनके द्वारा प्रयोग किए गए औजारों एवं कुछ अन्य संस्कृतियों की पहचान की है, जिसके आधार पर उनके विकासक्रम को विभिन्न युगों में विभाजित करना सम्भव हो सका है। मानव इतिहास के प्रथम युग को पाषाण युग के नाम जाना जाता है, जिसकी अवधि सबसे लंबी मानी जाती है। इस युग के बारे में विद्वानों के पास बहुत अधिक जानकारी नहीं है, क्योंकि उसका कोई लिखित स्रोत उपलब्ध नहीं है। हालांकि इस युग को दो भागों में विभाजित किया गया है–पुरापाषाण एवं नवपाषाण युग। नवपाषाण युग में संग्रहण के स्थान पर खाद्य-पदार्थों का उत्पादन किया जाने लगा, जबकि पुरापाषाण युग में मानव पूरी तरह शिकार एवं संग्रहण पर आश्रित था। पुरापाषाण अर्थात् पुराने पत्थरों का युग। इस युग के नामकरण से ही स्पष्ट है कि इस युग में मानव ज्यादातर पत्थरों के औजारों का ही इस्तेमाल करता था। हालांकि ऐसा नहीं है कि उन औजारों के आकार, उपभोग एवं यहाँ तक कि पत्थरों के अलावा लकड़ी, हड्डी आदि के औजारों के रूप में परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। औजारों के साथ-साथ मनुष्य के शारीरिक ढांचे में भी परिवर्तन हुए। पुरापाषाण को भी औजारों एवं सांस्कृतिक पहचान के आधार पर निचला पुरापाषाण, मध्य पुरापाषाण एवं ऊपरी पुरापाषाण युग में विभाजित किया जा सकता है। निचले पुरापाषाण युग की प्राप्त वस्तुएँ प्राचीन, जबकि ऊपरी पुरापाषाण युग की वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिनूतन हैं। यह तो स्पष्ट है कि पुरापाषाण युग में मानव मुख्य रूप से शिकारी एवं संग्रहकर्त्ता के रूप में जीवनयापन करता था। पर ऐसा नहीं है कि उस युग में विश्व के समस्त क्षेत्रों में शिकारी और संग्रहकर्त्ता मौजूद ही थे। हालांकि आदिमानव का अस्तित्व 2-6 मिलियन वर्षों से पहले से था, पर ये मुख्य रूप से अफ्रीका के पूर्वी हिस्से एवं एशिया के कुछ हिस्सों में फैले हुए थे। हालांकि उसी काल में कुछ अधिक विकसित प्रजातियाँ भी थीं, जिन्हें होमोइरेक्टस कहा जाता है, जिनका काल लगभग 1.5 मिलियन वर्ष का माना जाता है। ये मुख्य रूप से मध्य एवं पूर्वी यूरोप, पूर्वी अफ्रीका एवं लगभग समस्त एशिया में फैले हुए थे। होमोइरेक्टस के काल में ही उसकी कुछ उपजातियाँ विकसित होनी शुरू हो गई थीं, जो होमोसेपियन्स की विविध प्रजातियाँ थीं। निएन्डरथ लनेनसिस उन्हीं की एक प्रजाति थी, जिसका फैलाव व्यापक क्षेत्रों में था। ये शारीरिक रूप से ठिगने एवं गठीले थे परंतु इनके कपाल की क्षमता 1450 सीसी थी। आमतौर पर उनका काल 40 लाख से 1 लाख वर्ष के मध्य माना जाता है। इनके द्वारा उपयोग में लाई गई प्रौद्योगिकी को माउस्टेरियन कहा जाता था क्योंकि दक्षिणी फ्रांस के ले मोस्टियार नामक स्थल से ही इनके औजार प्राप्त हुए थे। मुख्यत: उत्तरी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका, मध्य एवं पूर्वी यूरोप तथा एशिया में फैले हुए थे। ऐसा माना जाता है कि 40-35 हजार वर्ष पूर्व उन्हीं निएन्डरथलनसिस से होमोसेपियन्स सेपियन्स मानव का प्रादुर्भाव हुआ जिनकी शारीरिक बनावट एवं आकार-प्रकार आधुनिक मानव की तरह था। क्रो-मैगनन अर्थात् आधुनिक मानव का पहला कंकाल दक्षिणी फ्रांस के ले फ्रासी के समीप क्रो-मैगनन गुफा से मिला है। हालांकि आधुनिक मानव के प्रथम प्राप्त कंकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद अवश्य है, पर आधुनिक अनुसंधानों से यह बात सामने आई है कि सम्भवत: प्रथम

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



आधुनिक मानव का जन्म अफ्रीका में हुआ था। निएन्डरथल के लुप्त होने के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि सम्भत: व्यापक स्तर पर उनकी देशांतरण एवं विभिन्न प्रजातियों के बीच यौन सम्बन्ध रहा होगा, परिणामत: निएन्डरथल जीन्स समाप्त हो गए होंगे। हालांकि इनका अस्तित्व पुरापाषाण युग के अन्त तक लगभग 12000 वर्षों तक रहा।

ऊपरी पुरापाषाण युग में भी कई संस्कृतियाँ, औजार एवं क्षेत्रीय विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। इस युग को भी मुख्यत: तीन चरणों में विभक्त किया गया–औरिंगनेसियन (34-30 हजार वर्ष), सौल्युट्रियन (22-18 हजार वर्ष) एवं मैग्डेलेनियन (18-11 हजार वर्ष)। इस युग की संस्कृति का फैलाव आस्ट्रेलिया तथा ऊपरी एवं दक्षिणी अमेरिका सहित विश्व के लगभग प्रत्येक हिस्से में था। इस युग के लोगों ने काफी प्रतिकूल परिस्थितियों में रहना प्रारम्भ किया तथा धीरे-धीरे उन्होंने अपना परिस्थितियों के साथ अनुकूलन किया। इन्हें सम्भवत: बर्फ से जमी पहाड़ियों, उत्तर ध्रुवीय अनुर्वर प्रदेश एवं घास के मैदानों से होकर गुजरना पड़ा होगा।

ऊपरी पुरापाषाण एवं नवपाषाण संस्कृतियों के मध्य पाषाण युग की संस्कृति के भी प्रमाण मिलते हैं, जो शिकार और संग्रहण की ही एक संस्कृति थी। सामान्यत: उस संस्कृति को यूरोप की शिकारी संग्रहण संस्कृति ही माना जाता है। इस संस्कृति को उत्तरी यूरोप में मैगलेमोस, कौनगेमोस और एरटेबॉले में भी विभाजित किया जा सकता है।

शिकारी संग्रहकर्त्ता समूह के आदिमानवों का आधारभूत पहलू औजार था, जिनका प्रयोग करके वे शिकार किया करते थे। सामान्यत: औजार उसे कहा जाता है, जो मनुष्य का शरीर का हिस्सा न हो तथा जिसकी सहायता से मनुष्य कोई काम कर सकता है। परन्तु मानव द्वारा औजार के प्रयोग का यह अर्थ नहीं है कि वह औजार का निर्माता भी हो। आरम्भिक काल में मानव के साथ-साथ प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग पशु भी किया करते थे; जैसे–चिम्पांजी द्वारा छड़ी के माध्यम से गड्ढा खोदना। अत: औजार के सन्दर्भ में मनुष्य एवं पशु में अन्तर करना आवश्यक था। इसी सन्दर्भ में *जीन शेवेलॉन* में कहा है कि "औजार हाथ से काम करने के लिए मनुष्य द्वारा निर्मित एक वस्तु है।" आगे चलकर प्रागैतिहासकार एवं पुरातत्त्वेताओं ने 'मनुष्य द्वारा निर्मित' शब्द पर जोर दिया और स्पष्ट किया कि औजार पत्थर या लकड़ी के टुकड़े से अलग वस्तु है। समय के साथ मानव की बुद्धि एवं प्रौद्योगिकी दोनों में विकास हुआ तथा इसका प्रभाव औजारों के निर्माण पर भी पड़ा। आमतौर पर आदिमानव द्वारा निर्मित ये औजार उनके उपयोगकर्त्ताओं के निवास स्थलों एवं बस्तियों के आसपास ही पाए गए हैं।

मानव द्वारा निर्मित एवं प्रयोग में लाए गए इन औजारों का एक विस्तृत इतिहास है। औजारों के क्रमिक इतिहास एवं बनावट को समझने के लिए इसको विभिन्न युगों में प्राप्त औजारों के अनुसार अध्ययन करना समीचीन होगा। निचले पुरापाषाण युग के औजारों का क्रमश: ओल्डोवियन और एक्यूलियन औजार के रूप में नामकरण किया गया है। वैसे नियमित रूप से औजार बनाने की परम्परा होमोहेबिलिस के आविर्भाव के साथ ही प्रारम्भ की थी। पत्थर के आरम्भिक औजार उत्तर तंजानिया के आल्डुवाई नामक स्थान से मिले हैं। इसी स्थान के नाम पर इस तरह के औजारों को ओल्डोवियन कहा गया। इस तरह के औजारों में गंडासा महत्त्वपूर्ण औजार है, जिसे पत्थर के एक तरफ के फलक को निकालकर धारदार बनाया जाता था। विशेषकर पत्थरों से ही औजार बनाए जाते थे। उनके प्राकृतिक रूप से बहुत ज्यादा छेड़छाड़ नहीं की जाती थी। आमतौर पर ये औजार होमोहेबिलिस द्वारा उपयोग में लाए जाते थे।

उत्तरी फ्रांस के स्थल सेंट एक्यूल से प्राप्त औजार एक्यूलियन औजार कहलाए। ये औजार ओल्डोवियन की अपेक्षा परिवर्तित थे। ये अफ्रीका एवं यूरोप में क्रमश: 2 लाख एवं एक लाख वर्ष तक अस्तित्व में रहे। इस समूह के औजार काफी साधारण थे, जिनका उपयोग क्रमश: काटने, छीलने, तोड़ने आदि में किया जाता था। इस समूह के औजार में हाथ की कुल्हाड़ी, क्लीवर और बोला प्रमुख औजार थे। इस तरह के औजारों को पत्थर के नीचे से फ्लेक निकालकर धारदार बनाया जाता था। कई बार इन धारों को और तेजदार बनाया जाता था और हाथ की पकड़ मजबूत करने के लिए इनकी घिसाई की जाती थी। पत्थरों के औजार बनाने के लिए कुछ विशेष प्रकार के पत्थरों का ही उपयोग किया जाता था। इसके भी प्रमाण मिलते हैं। कुछ-कुछ खास औजार हेतु पत्थर अन्य क्षेत्रों से लाए जाते थे। हालांकि इस काल में पत्थरों के अलावा हड्डी एवं हाथीदाँत के औजार भी बनाए जाने के प्रमाण भी मिले हैं।

मध्य पुरापाषाण युगीन औजारों को मौस्टेरियन औजार कहा जाता है। ये विशेषकर एशिया और यूरोप में पाए गए हैं तथा उनके उपयोगकर्त्ता मुख्यत: निएन्डरथल थे। मौस्टेरियन औजारों में खुरचनी, बेधक, छुरी, ब्लेड, छेनी आदि प्रमुख थे। बिनफोर्ड ने सीरिया, इजरायल और फ्रांस के तीन अलग-अलग स्थानों से मिले औजारों का विश्लेषण करके उस काल के औजारों को पाँच समूहों में वर्गीकृत किया है–

**समूह I**—इस समूह के मुख्य औजार बेधक, खुरचनी एवं छुरी हैं, जिनका उपयोग मुख्यत: हड्डी तोड़ने एवं काटने में होता था।

**समूह II**—इस समूह में मुख्यत: नुकीले औजार हैं, जिनका उपयोग शिकार एवं मांस काटने में होता था।

**समूह III**—इसमें ज्यादातर पत्थर के फ्लेक एवं छुरियाँ हैं, जिनका उपयोग छोटे-छोटे टुकड़े करने में होता था।

**समूह IV**—इसमें भी नुकीली फ्लेक और खुरचनी है, जिसका उपयोग मांस खुरचने में किया जाता था।

**समूह V**—इस समूह में नुकीले औजार, खुरचनी एवं ब्लेड जिसका उपयोग शिकार करने एवं मांस काटने में होता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



इस काल के औजारों की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें हड्डियों, सींग और लकड़ी का प्रयोग होने लगा था। इस काल में प्राप्त भाले के आकार के औजारों से यही प्रतीत होता है कि उस समय बड़े जानवरों का शिकार भी किया जाता था। उच्च पुरापाषाण काल में औजारों के निर्माण पर व्यापक प्रभाव पड़ा। औजारों की गुणवत्ता एवं बनावट दोनों में बड़े पैमाने पर बदलाव के प्रमाण मिलते हैं। यह काल होमोसेपियन्स सेपियन्स संस्कृति समूह का काल था, जो कि बौद्धिक एवं प्रौद्योगिकी दोनों ही स्तर पर अपने पूर्व के आदिमानव से विकसित थे। इस काल में औजारों के निर्माण के सन्दर्भ में अनेक उपलब्धियाँ रहीं; जैसे–औजारों की किस्मों में परिवर्तन, पत्थर के अलावा अन्य वस्तुओं का उपयोग, सूक्ष्म औजार, औजार बनाने में कलात्मकता और सौन्दर्य का समावेश आदि। धारदार औजार बनाने में इस युग के मानव ने मानो विशेषज्ञता हासिल कर ली थी। इस युग का एक प्रमुख औजार था धारदार छेनी जिसका उपयोग नक्काशी करने या छेद करने के लिए भी किया जाता था। इस युग का दूसरा प्रमुख औजार था, दूर से फेंकने वाला औजार, जिसमें मुख्यत: हल्के बरछे, भाले तथा धनुष-बाण थे। इन औजारों के माध्यम से दूर से शिकार करना सम्भव हो गया था। इस युग के अन्तिम चरण में पश्चिम एशिया में एक अति विकसित औजार पाया गया है। यह हंसिया के आकार का औजार है, जिसका उपयोग सम्भवत: घास काटने के लिए किया जाता होगा। इस युग में औजार बनाने के लिए उपयोग में लाए गए कच्चे मालों में भी काफी विविधता थी। हार्न स्टोन, विभिन्न प्रकार के स्फटिक, लाल पत्थर, रवेदार पत्थरों आदि का इस्तेमाल करके औजार के अगले हिस्से को कठोर बनाया जाता था। इस काल में स्फटिक, लावा काँच, दुधिया, गोमेद, सूर्यकांत आदि बहुमूल्य पत्थरों का भी इस्तेमाल औजार बनाने के लिए किया जाता था। पत्थरों के अलावा हड्डियों, सींगों, मृगशृंग, हाथीदाँत आदि के भी औजार बनाए जाते थे। *बोहस्लाव क्लिमा* ने भी यह माना है कि इस युग में पत्थरों के अलावा कार्बनिक पदार्थों के औजार प्रत्येक औजार समूह में आवश्यक रूप से शामिल थे। इनका यह भी मानना है कि इस युग में कुछ ऐसे संयुक्त औजार भी थे, जिनका इस्तेमाल कई कार्यों के लिए किया जाता था तथा उनमें मूठ लगा होता था। हालांकि इस युग में निर्मित ऐसे औजार जो कार्बनिक पदार्थों के बने थे, वे समय के साथ नष्ट हो गए। इस युग के औजारों के सौंदर्य एवं कलात्मकता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों को इनकी भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं की जानकारी थी। पत्थरों के सूक्ष्म औजार इस युग की एक प्रमुख विशेषता थी। ये सूक्ष्म औजार अलग से तैयार किए जाते थे तथा इन्हें एक हत्थे से जोड़ दिया जाता था। ये विभिन्न रूपों में होते थे, जैसे–भाले की नोक, कांटेदार बरछी आदि के रूप में। सामान्यत: इनका उपयोग छोटे जानवरों, मछली आदि के शिकार हेतु किया जाता था। छोटे औजारों से कलाकृतियाँ भी बनाई जाती थीं। इस युग में कुछ ऐसे औजार भी मिले हैं, जिनका उपयोग औजार बनाने में किया जाता था।

आदिमानवों के निवास-स्थल और जीवन-शैली में भी काफी विविधता देखने को मिलती है। पुरापाषणकालीन लोग आरंभिक काल में शिकारी संग्रहकर्त्ता का जीवन व्यतीत करते थे। उनकी जीवन-शैली, रहन-सहन, संस्कार आदि के सम्बन्ध में पुरातात्त्विक एवं अन्य स्रोतों से आर्थिक जानकारी ही प्राप्त होती है। परन्तु इस काल के प्राप्त औजारों, कलाकृतियों आदि की मदद से उनके निवास-स्थल एवं सामाजिक संगठन के बारे में कुछ अनुमान लगाना सम्भव हो सका है। हालांकि इसके बावजूद भी निचले पुरापाषाण युग के लोगों अर्थात् होमोहेबिलिस समूह के सन्दर्भ में कुछ खास जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाई है। वैसे इनके सन्दर्भ में इतना अनुमान लगाया जाता है कि ये मुख्य रूप से कंदमूल एवं मृत जानवरों का मांस खाकर अपना गुजारा करते होंगे, जबकि होमोइरेक्टस लोगों का सामाजिक संगठन योजनाबद्ध था तथा ये सम्भवत: आग का इस्तेमाल करने लगे थे। ये सामान्यत: प्राकृतिक गुफाओं में रहा करते थे। कुछ ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि इनके कुछ निवास-स्थल पेड़ की शाखाओं एवं जानवरों की खाल द्वारा निर्मित थे। इस सामाजिक समूह में पुरुष शिकार का कार्य करते थे, जबकि महिलाएँ कंदमूल एवं अन्य पदार्थ इकट्ठा करती थीं। इस समूह का विचरण भी सीमित क्षेत्रों तक ही था।

होमोइरेक्टस के बाद आए विकसित समूह निएन्डरथलनसिस और होमोसेपियन्स सेपियन्स के शिकार करने का तरीका कुछ बदल चुका था। ये छोटे-छोटे जानवरों के साथ बड़े जानवरों और खासकर शाकभक्षी जानवरों का भी शिकार किया करते थे। यूरोप में प्रमुख रूप से उनके द्वारा रेन्डियर का शिकार किया जाता था। चूँकि इनके समय तक दूर से फेंककर इस्तेमाल किए जाने वाले औजार का निर्माण हो चुका था अत: ये औजार दूर से फेंककर ही शिकार किया करते थे। ये जानवरों के माँस से लेकर उसकी हड्डी तक का इस्तेमाल भोजन के रूप में करते थे। इस समय लोगों ने पशुओं के अलावा मछली का शिकार करके भी भोजन के रूप में ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था। जहाँ पहले लोग आमतौर पर ज्यादा माँसभक्षी थे, वहीं उस काल में भोजन के रूप में वनस्पतियों का भी व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल प्रारम्भ हो चुका था। भोजन के रूप में उपयोग में लाई गई वनस्पतियों में भी काफी विविधता देखने को मिलती है। वनस्पतियों का उपयोग भोजन के रूप में होने का कारण यह था कि आसपास के परिवेश में उसकी पर्याप्त उपलब्धता रही होगी। इस काल में कुत्ते पालने का भी प्रमाण मिलता है। निएन्डरथल के निवास स्थल अर्थात् गुफाओं एवं स्थलों से ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि यहाँ लगातार एक के बाद दूसरा समूह रहता आया था। हालांकि ऊपरी पुरापाषाण युग के दौरान मानव-निर्मित निवास स्थल और बस्तियाँ पहले की अपेक्षा ज्यादा मिली हैं। उस काल में लोग तालाबों, नदियों आदि के किनारे रहना ज्यादा पसन्द

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



करते थे, ताकि उन्हें आसानी से जल उपलब्ध हो सके तथा साथ ही इन स्थानों पर जंगली पशु जल की तलाश में आते थे, जिस कारण उस काल में लोगों को शिकार करने हेतु ज्यादा इधर-उधर नहीं जाना पड़ता था। इस काल में निर्मित झोंपड़ियाँ भी पहले की अपेक्षा ज्यादा परिष्कृत एवं सुनियोजित हुआ करती थीं। इनमें कुछ अस्थायी तम्बुओं से निर्मित होती थीं, जबकि कुछ की प्रकृति स्थायी हुआ करती थी। उनके निवास स्थलों से चूल्हे के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये जलावन हेतु लकड़ियों एवं हड्डियों का उपयोग करते होंगे। जहाँ तक समूह के आकार की बात है, तो यह सामान्यत: 30-35 लोगों का हुआ करता था। उसके आकार में ज्यादा परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। **लीकी** का मानना है कि इनका आवागमन आमतौर पर जलस्रोत तक या फिर घर से चारों दिशाओं में 25-30 किलोमीटर तक ही सीमित था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि ये अलग-अलग समूह किसी विशेष अवसर पर एक स्थान पर इकट्ठा होते थे तथा इनमें जीवनसाथी का चुनाव भी होता होगा। इनके सामाजिक बंधन भी मजबूत थे, जिसका प्रमाण यह मिलता है कि घायल या बीमार व्यक्तियों की सेवा अन्य लोगों के द्वारा की जाती थी। मृतकों को दफनाने के भी प्रमाण मिले हैं। कुछ कब्रगाह ऐसे भी मिले हैं जिनके अन्दर पेड़ के बिस्तर एवं फूल मिले हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों जैसे मुखिया को विशेष सम्मान के साथ दफनाया जाता होगा। हालाँकि विभिन्न स्थलों पर कब्रगाहों की खुदाई से यह प्रमाण मिले हैं कि इनमें से एक-तिहाई बच्चों एवं महिलाओं के शव थे। कई कब्रगाहों से इसके भी प्रमाण मिले हैं कि शव के साथ सींग, औजार, पशु की हड्डियाँ भी उनके साथ दफनाई गई हों। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि दफनाने के साथ आनुष्ठानिक क्रियाएँ भी होती होंगी।

कला के क्षेत्र में भी आदिमानवों के योगदान को देखा जा सकता है। हालाँकि नक्काशी, हड्डियों की रंगाई, पॉलिश आदि का कार्य मध्य पुरापाषाण युग में ही प्रारम्भ हो चुका था परन्तु उनके प्रमाण ऊपरी पुरापाषण युग से अधिक मिले हैं। उस युग से कला के ऐसे प्रमाण मिले हैं, जैसे–कलाकृतियों, मूर्तियों, पत्थरों पर की गई चित्रकारी आदि, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उस युग के लोगों में भी कला की समझ थी। इन प्राप्त अवशेषों में से अधिकांश पत्थर पर बने कला के नमूने हैं। दीवारों, गुफा के फर्श पर बने चित्र आज भी मौजूद हैं। इनके द्वारा बनाए गए चित्रों में मनुष्य का चित्र कम ही देखने को मिलता है। कुछ चित्र ऐसे भी हैं, जिनमें मनुष्य के हाथ में हथियार हैं तथा वह शिकार कर रहा है। इनके द्वारा बनाए गए गुफा चित्रों में सबसे महत्त्वपूर्ण है स्पेन की अलतमीरा गुफा की गुफा चित्रकला। इनके द्वारा बनाए गए चित्रों में रंगों का भी इस्तेमाल किया गया है जैसे–भूरे, पीले, लाल और काले रंग। फ्रांस के लैस कास (Las Caux) गुफा से भी इसी तरह के चित्र पाए गए हैं। कुछ ऐसे भी चित्र मिले हैं जिनमें ज्यामितीय आकार भी देखने को मिला है। कई चित्र ऐसे भी मिले हैं जिनमें एक आकृति दूसरे में समाहित प्रतीत होती है तथा सभी आकृतियाँ एक निश्चित दिशा में नहीं बनी हुई हैं। इन प्राप्त चित्रों में मछलियों एवं पक्षियों के चित्र अन्य जानवरों की अपेक्षा कम मिलते हैं।

हालांकि इन गुफा कलाओं के अर्थ और उद्देश्य के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य देखने को नहीं मिलता। कुछ का मानना है कि यह शिकार के पूर्व टोने-टोटके या आनुष्ठानिक तौर पर किए जाते थे, जबकि कुछ इसे सामाजिक समूह के प्रतिनिधित्व के रूप में देखते हैं। कुछ लोगों का समूह ऐसा भी है, जो यह मानते हैं कि जब अलग-अलग मानव समूह एक स्थान पर खुशी के मौके पर या उत्सव के दौरान मिलते थे, तो उनके द्वारा इस तरह के चित्र बनाए जाते थे। इस युग में चित्रकारी के अलावा कुछ ऐसे गहने भी मिले हैं, जिन्हें आदिमानव सम्भवत: बाँह, कलाई-पैरों आदि में पहना करते थे। इन गहनों को रंगाई, पॉलिश, छेद आदि करके एक विशेष आकार दिया जाता था। इस युग की कुछ मूर्तियाँ भी मिली हैं। दक्षिणी जर्मनी में वोगेलहर्ड गुफा स्थल से सबसे पुरानी मूर्तियाँ पाई गई हैं। ये मूर्तियाँ घोड़े, मैमथ आदि की थीं जिन्हें हाथीदाँत, हड्डियों, सींगों आदि से बनाया जाता था।

आदिमानवों के शाब्दिक संचार के सन्दर्भ में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं। हालांकि इस बात को लेकर सभी प्रागैतिहासिक वेत्ताओं में आम सहमति है कि होमोइरेक्टस और होमोहेबिलिस शाब्दिक संवाद नहीं कर पाते थे। यह उनके वक्ष की बनावट से स्पष्ट होता है। परन्तु निएन्डरथल के वक्ष की बनावट से ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों के मध्य थोड़ा-बहुत शाब्दिक संवाद होता होगा। हालांकि आमतौर पर आदिमानवों के बीच संवाद प्रतीकों, संकेतों आदि के माध्यम से होता होगा। होमोसेपियन्स सेपियन्स के सन्दर्भ में ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि ऊपरी पुरापाषाण युग के अन्तिम चरण में एक समूह दूसरे समूह से या फिर समूह के भीतर भी वाक्शक्ति का उपयोग होने लगा था।

## अभ्यास प्रश्न

**प्रश्न 1. आरम्भिक संस्कृतियों को जानने में पुरातत्त्व हमारी कैसे मदद करता है?**

**उत्तर–**मानव का इतिहास कई लाख वर्ष पुराना है। उस वक्त मानव के पास न तो लेखन कला थी और न ही उनका अपना विशेष स्थापत्य ज्ञान था। इन परिस्थितियों में मानव का अध्ययन काफी जटिल विषय रहा। आरम्भिक मानव व उससे जुड़ी संस्कृतियों के सन्दर्भ में जानकारी के लिए हमारे पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कुछ गुफा चित्रकलाएँ अवश्य प्राप्त हुई हैं, जिनके माध्यम से आरम्भिक मानव के बारे में बहुत कुछ स्पष्ट रूप से नहीं जाना जाता। परन्तु पुरातत्त्व आरम्भिक मानव के अध्ययन की एक ऐसी शाखा है, जिसके माध्यम से आज हम

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

आरम्भिक मानव की एक झलक प्रस्तुत कर पाते हैं–पुरातत्त्व अर्थात् प्राचीन अवशेषों के माध्यम से जानकारी उपलब्ध करवाना।

पुरातत्त्व ही वह विज्ञान है जिसके माध्यम से मानव के भौतिक अवशेषों की जानकारी मिल सकी है। हालांकि पुरातत्त्व विज्ञान में भी इन जानकारियों को प्राप्त करने के लिए कई विधियों का सहारा लिया जाता है; जैसे–विभिन्न कलाकृतियों एवं भौतिक अवशेषों को इकट्ठा करना, उनका विश्लेषण करना, उनका तुलनात्मक विश्लेषण करना आदि। यदि एक ही स्थान पर विभिन्न स्तरों की कलाकृतियाँ ज्ञात होती हैं तो इसका अर्थ है कि वहाँ कई पीढ़ियाँ एक के बाद एक रहती आई हैं। इस प्रकार पुरातत्त्व स्थल पर पाई गई प्रत्येक वस्तु पुरातत्त्ववेत्ता के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। इसमें पत्थर के औजार, हड्डी के टुकड़े, लकड़ी के टुकड़े आदि शामिल हो सकते हैं। पुरातत्त्व केवल प्रागैतिहासिक काल की जानकारियों के लिए ही उपयोगी नहीं है, बल्कि मानव इतिहास के विभिन्न चरणों से लेकर आधुनिक काल के इतिहास को जानने में भी इससे मदद मिलती है। आज अतीत की मानव बस्तियों को पहचानने के लिए कई वैज्ञानिक तरीकों का भी इस्तेमाल किया जाता है; जैसे–हवाई चित्र जो जमीन के अन्दर मिट्टी के रंग एवं वनस्पति को भी बता देते हैं, धातु की वस्तुओं के लिए चुम्बकीय वस्तुओं का इस्तेमाल, मिट्टी की रासायनिक विश्लेषण की तकनीक आदि।

इन माध्यमों से पुरातत्त्ववेत्ता स्थलों की खुदाई करता है तथा फिर प्राप्त अवशेषों का विश्लेषण करके उस काल के जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को बताता है। उत्खनन द्वारा प्राप्त औजारों का अध्ययन करके पुरातत्त्ववेत्ता उसको प्रयोग करने वाले मानव की जानकारी देते हैं। इन औजारों में प्रयुक्त पत्थर एवं धार का विश्लेषण करके उस काल की प्रौद्योगिकी के बारे में जानकारी मिलती है। रेडियो कार्बन डेटिंग विधि से पुरातत्त्ववेत्ता आरम्भिक काल का निर्धारण करते हैं। आरम्भिक काल को विभिन्न खंडों में विभाजित किया गया है। इनके विभाजन का आधार उस काल से प्राप्त औजार ही मुख्य रहे। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ही पत्थरों के औजारों के आधार पर आरम्भिक काल को तीन खंडों में विभाजित किया–पुरापाषाण काल, मध्यपाषाण काल तथा नवपाषाण काल। औजारों की उत्कृष्टता एवं सौंदर्य के आधार पर उन्हें पुन: अन्य कालों में भी विभाजित किया गया है। जबकि इस काल का कोई भी लिखित स्रोत आज आधुनिक मानव के पास उपलब्ध नहीं है। आदिमानव की उत्पत्ति अफ्रीका से मानी गई है, क्योंकि अफ्रीका से ही उनके प्रथम पदचिह्न प्राप्त हुए हैं। आरम्भिक मानव के प्राप्त नरकंकाल तथा उनकी कब्रों के अवशेषों से पुरातत्त्वविदों ने यह स्पष्ट किया कि इस काल में भी दफनाने के समय आनुष्ठानिक क्रियाएँ होती थीं।

उत्खननों से आरम्भिक मानव के घरों के जो अवशेष मिले हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि उनके घरों का विन्यास कैसा था। उस विन्यास के आधार पर यह स्पष्ट किया जाता है कि वे अपने घरों के निर्माण में सुरक्षात्मक दृष्टिकोण रखते थे या नहीं और यदि रखते थे तो किस प्रकार। आरम्भिक मानव में परिवार का विकास कब से हुआ, तथा उनके परिवार का आकार कैसा होता होगा आदि महत्त्वपूर्ण जानकारी पुरातत्त्व ही हमें देते हैं। मानव प्रारम्भ में शिकारी संग्रहकर्त्ता का जीवन जीता था। शिकारी संग्रहकर्त्ता के बाद उसने कृषि तथा पशुपालन को अपने जीवनयापन का आधार बनाया। इन जानकारियों को पुरातात्त्विक अवशेषों के माध्यम से पुरातत्त्व विश्लेषण ही हमारे सामने रखता है।

अत: इस प्रकार स्पष्ट है कि पुरातत्त्व की मदद के बगैर आरम्भिक मानव संस्कृतियों को जान पाना आज के मानव के लिए सम्भव नहीं था। मानव प्रागैतिहासिक काल के अनेक पहलुओं से स्पष्ट हो चुका है। आरम्भिक मानव का निवास स्थान कैसा था, उनका जीवनयापन का तरीका क्या था, उस काल में प्रौद्योगिकी का स्तर क्या था आदि, महत्त्वपूर्ण जानकारी हमें पुरातत्त्व के माध्यम से ही मिलती है।

**प्रश्न 2. पुरापाषाण संस्कृतियों के काल निर्धारण का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–पुरापाषाण संस्कृतियों का काल निर्धारण अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि उस काल के कोई लिखित स्रोत उपलब्ध नहीं हैं। पर आधुनिक वैज्ञानिकों, पुरातत्त्ववेत्ताओं एवं मानवशास्त्रियों ने उपलब्ध स्रोतों एवं अवशेषों के माध्यम से इनके काल में निर्धारण का प्रयास किया है। पुरापाषाण का अर्थ है पुराने पत्थरों का काल। पुरापाषाण युग में मानव मुख्यत: शिकार और संग्रहण पर जीवनयापन के लिए आश्रित था और उसकी अवधि लगभग 25 लाख वर्ष मानी जाती है। इस पूरी अवधि में मानव ज्यादातर पत्थर के औजार का प्रयोग करता रहा। औजारों के प्रकार के आधार पर तथा मानव प्रजातियों और सांस्कृतिक पहचान के आधार पर पुरापाषाण युग को निचला पुरापाषाण युग, मध्य पुरापाषाण युग और ऊपरी पुरापाषाण युग में विभाजित किया जा सकता है। पुरातात्त्विक सन्दर्भ में सबसे निचले स्तर से प्राप्त वस्तुएँ सबसे प्राचीन हैं और सबसे ऊपरी स्तर से प्राप्त वस्तुएँ अपेक्षाकृत नूतन हैं, इसलिए निचला पुराना है और ऊपरी बाद का पुरापाषाण युग है। कई विद्वानों ने इनका भी उपविभाजन किया है।

अफ्रीका, इथोपिया, कीनिया और तंजानिया और एशिया के कुछ हिस्सों में आदिमानव 2-6 मिलियन वर्षों से पहले थे। इनके बाद कुछ विकसित अर्थात् होमोइरेक्टस का जन्म हुआ, जिनका काल लगभग 1.5 मिलियन वर्ष पहले का माना जाता है। इनकी मौजूदगी भी यूरोप, अफ्रीका एवं एशिया में थी। दोनों ही प्रकार के आदिमानवों में कंकाल, औजार और अन्य कलाकृतियाँ इन स्थानों पर मिले हैं। इस काल को निचला या आरम्भिक पुरापाषाण युग कहते हैं। होमोइरेक्टस की उप-प्रजातियाँ भी थीं, जो अलग-अलग हिस्सों में रह रही थीं। इन्हीं की किसी प्रजाति से होमोसेपियन्स निएन्डथलनेनसिस का जन्म हुआ, जो काफी व्यापक क्षेत्रों में फैले

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

हुए थे। ये यूरोप के सभी हिस्सों में पाए गए हैं। हालांकि निएन्डरथल 2 लाख 30 हजार साल पहले स्पष्टता से दिखने लगे थे। ये निएनडरथल ठिगने और गठीले होते थे, उनकी हड्डियाँ चिपकी होती थीं तथा उनकी भौंहें स्पष्ट होती थीं।

मध्य पुरापाषाण युग में उनकी संस्कृति फल-फूल रही थी और उनकी प्रौद्योगिकी को माउस्टेरियन के नाम से जाना जाता था। उनका यह नाम दक्षिणी फ्रांस में ले मोस्टियर के नाम से पड़ा है, क्योंकि वहीं से उनके औजार प्राप्त हुए थे। 40-35 हजार वर्ष के आस-पास होमोसेपियन्स निएन्डरथलनसिस ने होमोसेपियन्स सेपियन्स के लिए राह बनाई। इनकी शारीरिक बनावट, कपाल क्षमता, चेहरे की बनावट और आकार-प्रकार आधुनिक मानव की तरह था। आधुनिक मानव का पहला कंकाल दक्षिणी फ्रांस में ले फ्रासी के समीप प्राप्त हुआ है और जिस पत्थर की गुफा के नीचे यह पाया गया था, उसी के नाम पर उनका नाम को-मैगनन रखा गया। आधुनिक मानव के अवतरण को लेकर विद्वानों में मतैक्यता भी देखने को मिलती है। पर आधुनिक अनुसंधान से यह बात सामने आई है कि सम्भवत: पहले आधुनिक मानव का जन्म अफ्रीका में हुआ होगा।

ऐसा अनुमान है कि सम्भवत: बड़े पैमाने पर होने वाले देशान्तरण और विभिन्न प्रजातियों के मध्य होने वाले यौन सम्बन्ध के कारण निएन्डर थल जीन्स समाप्त हो गए होंगे। ये पुरापाषाण युग के अन्तिम चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं जो लगभग 12 हजार वर्षों तक कायम रही और उसके बाद नवपाषाणयुगीन संस्कृति सामने आई। उस चरण को समग्रत: उच्च या उत्तर पुरापाषाण युग कहा जाता है। इस चरण के भीतर भी कई संस्कृतियाँ फली-फूलीं। उनमें से कुछ प्रमुख हैं—औनरिंगनेसियन जिनका काल 34-30 हजार साल माना जाता है, सौल्युट्रियन का काल 22-18 हजार वर्ष के मध्य था, जबकि मैग्डेलेनियन का काल 18-11 हजार वर्ष के बीच था। इनके अलावा भी कुछ अन्य छोटे-छोटे सांस्कृतिक समूह जैसे—पैरीगौरडियन, ग्रेवेट्टियन, स्जेलेटियन आदि थे। ऊपरी पुरापाषाण संस्कृति आस्ट्रेलिया तथा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका सहित दुनिया के हर हिस्से में पाई जाती थी। सभी महादेशों में और विभिन्न क्षेत्रों में जाने में उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। सम्भवत: उन्होंने आसपास की परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल लिया होगा और बुद्धि के विकास के अनुसार उन्होंने बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपने को जोड़ लिया होगा। ऊपरी पुरापाषाण संस्कृतियों के बाद और नवपाषाण संस्कृतियों के पहले शिकार और संग्रह की एक संस्कृति मध्यस्थ चरण के रूप में उभरी, जिसे मध्यपाषाण युग के नाम से जाना जाता है। सामान्यत: उसे अन्तिम पुरापाषाण युग के नाम से भी जाना जाता है और उसका समय 10 हजार से 5 हजार ई.पू. तक था। उसे उत्तरी यूरोप में मैगलेमोस, कौनगेमोस और एरटेबॉले में भी विभाजित किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पुरापाषाण संस्कृतियों के काल-निर्धारण में उस काल के प्राप्त पत्थर के औजारों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही काल-निर्धारण में प्राप्त मानव कंकाल के अवशेष तथा उनकी शारीरिक बनावट से भी मदद मिली है। इन्हीं अवशेषों के आधार पर पुरापाषाण काल निचला, मध्य तथा ऊपरी पुरापाषाण में विभाजित किया गया है। अलग-अलग कालखंडों में मानव की अलग-अलग प्रजातियों का विकास हुआ जिनके मस्तिष्क के आकार से लेकर शारीरिक ढांचे में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

**प्रश्न 3. होमिनिड से लेकर होमोसेपियन्स सेपियन्स तक होने वाले क्रमिक विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**—आज हम जिस आधुनिक मानव को देखते हैं, उसका इतिहास लाखों वर्ष पुराना है। उसकी शारीरिक संरचना एवं जीवन-शैली में समय के साथ निरन्तर परिवर्तन होता रहा। समय के साथ उसकी विभिन्न प्रजातियों का विकास हुआ तथा उनके द्वारा प्रयोग में लाई गई प्रौद्योगिकी में भी परिवर्तन होता रहा। सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि एक साधारण उत्कर्ष की शुरुआत करके मानव जटिल प्रजातियों में विकसित हुआ। चार्ल्स डार्विन ने 1860 में मानव के इतिहास को समझने के लिए जैविक क्रम-विकास का सिद्धान्त सामने रखा था।

मानव को अपने नरवानर रूप से आज तक की यात्रा पूरी करने में लगभग 60 मिलियन वर्ष लगे। नरवानर के इस आदिम रूप और आज के मानव में कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं। जैव आनुवंशिकी आँकड़ों के आधार पर यह माना जाता है कि लगभग 5-6 मिलियन वर्ष पूर्व होमिनिडे शाखा पौंगिडे से अलग हुए थे। पौंगिडे पश्चिमी और मध्य अफ्रीका के नम क्षेत्र में सीमित हो गए, जबकि होमिनिडे पूर्व और दक्षिण अफ्रीका के बड़े और खुले परिवेश में रहने लगे। नए परिवेश के अनुकूल वे अपने को ढालने लगे और मुख्य रूप से उनके अवशेष उसी क्षेत्र में पाए जाते हैं। यही होमिनिडे 3.4 से 4 मिलियन वर्ष पूर्व दो पैरों पर चलने लगे थे, जो मनुष्य बनने की प्रक्रिया का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चरण था। खड़े होकर चलने से होमिनिडे की शारीरिक बनावट में परिवर्तन आया। 3.5 मिलियन वर्ष से लेकर 1.5 मिलियन वर्ष तक आस्ट्रेलोपिथेकस और होमो के बीच अन्तर पैदा हुआ। हालांकि विकास की यह प्रक्रिया बिल्कुल सीधी नहीं थी और इसमें कई जटिलताएँ थीं। होमोहेबिलिस इनमें से एक विकसित हुई शाखा थी, जिन्होंने सम्भवत: सबसे पहले औजार बनाए। ये मुख्य रूप से अफ्रीकावासी थे। मनुष्य के क्रमिक विकास के अगले चरण को होमोइरेक्टस के नाम से जाना जाता है, जिसकी शारीरिक बनावट की कुछ खास विशेषताएँ थीं। इनके प्राप्त कंकलों को देखकर लीकी का अनुमान है कि ये सम्भवत: 50 लाख वर्ष से लेकर 3 लाख वर्ष के बीच रहे होंगे। उनका यह भी कहना है कि उनके कंकाल निश्चित रूप से आधुनिक थे। होमोहेबिलिस की तुलना में

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

उनका मस्तिष्क भी बड़ा था। उनकी हड्डियाँ भी आधुनिक मानव की तरह बनने लगी थीं, परन्तु अभी उनका पूरी तरह विकास नहीं हो सका था। होमोइरेक्टस से होमोसेपियन्स तक की यात्रा धीरे-धीरे हुई और अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय में यह विकास हुआ और उनकी शारीरिक बनावट भी अलग-अलग ढंग से विकसित हुई। परन्तु विभिन्न क्षेत्रों में होमोसेपियन्स का क्रमिक विकास एक लगातार होने वाली प्रक्रिया के तहत हुआ। यूरोप में और कुछ अन्य क्षेत्रों में उनकी एक अलग शाखा विकसित हुई, जिसे निएन्डरथैलेनिस कहा गया। हालांकि लगभग 35 हजार वर्ष पूर्व उनका समूल नाश हो गया था और उनका कोई वंशज नहीं बचा था।

होमोइरेक्टस से होमोसेपियन्स सेपियन्स के क्रम-विकास की प्रक्रिया के बारे में **लीकी** कहते हैं कि "यदि हम होमोलाइन के क्रमिक विकास को देखें और इसे पर्यावरणात्मक परिवेश की अपेक्षा शारीरिक क्षमताओं के कार्य के रूप में देखें, तो यह कल्पना करना सम्भव है कि होमोइरेक्टस आबादी पूरे विश्व में विकास और प्रौद्योगिकी के दोहन पर अधिक-से-अधिक आश्रित होते चले गए और उनसे उनकी प्रक्रिया तय हुई जिसके फलस्वरूप ये प्रजातियाँ होमोसेपियन्स की ओर अग्रसरित हुईं। संस्कृति की माँग के फलस्वरूप चयन-प्रक्रिया जारी रही और होमोसेपियन्स की आरम्भिक आबादी से होमोसेपियन्स सेपियन्स यानी आधुनिक मानव का जन्म हुआ।"

इस प्रकार हम पाते हैं कि आधुनिक मानव का विकास होमिनिड के क्रमिक विकास की एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया से हुआ। इन अध्ययनों से पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजों और वैज्ञानिक प्रक्रिया में हमें मदद मिली। मानव के विकासक्रम के साथ उनकी कपाल क्षमता में भी वृद्धि होती गई। आस्ट्रेलोपिथेकस के मस्तिष्क का आकार लगभग 400-500 सीसी था जो होमोहेबिलिस में बढ़कर 700 सीसी हो गया, जबकि होमोइरेक्टस में यह 900-1100 सीसी था, जो अन्ततः होमोसेपियन्स सेपियन्स में बढ़कर 1250-1450 सीसी हो गया।

इस प्रकार, उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किस प्रकार मानव ने विकास किया। मानव के विकासक्रम में उससे शारीरिक परिवर्तन से लेकर उसके मस्तिष्क में भी परिवर्तन होता गया तथा धीरे-धीरे वह अपनी प्रौद्योगिकी को भी विकसित करता गया।

**प्रश्न 4. ऊपरी पुरापाषाण औजार पहले के औजारों से किस प्रकार बेहतर थे?**

**उत्तर**–मानव ने आरम्भिक काल से ही औजारों का इस्तेमाल करना प्रारम्भ कर दिया था। पर समय के साथ जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी में परिवर्तन हुआ, वैसे-वैसे औजारों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्यतः औजार उसे कहा जाता है जो मनुष्य के शरीर का भाग न हो तथा जिसके माध्यम से मनुष्य कुछ काम कर सके। निचले तथा मध्य पुरापाषाण काल में भी मानव ने पत्थर के कई औजारों का निर्माण किया तथा उनका इस्तेमाल किया।

हालांकि उच्च पुरापाषाण काल होमोसेपियन्स सेपियन्स का काल था, जो अपने पूर्वजों की अपेक्षा ज्यादा विकास कर चुके थे। इस काल में औजार बनाने की कला ने नई ऊँचाई प्राप्त की। इस काल में औजारों की अनेक किस्में तैयार होने लगीं। इसके पूर्व अधिकतर पत्थर के ही औजार बनाए जाते थे, पर उच्च पुरापाषाण काल में पत्थर के अलावा अन्य वस्तुओं के भी औजार बनाने में नियमित इस्तेमाल किया जाने लगा। ऐसे औजार भी बनाए जाने लगे जिनका उपयोग दूर से फेंककर किया जा सकता है। इस प्रकार, इस काल में औजार के निर्माण में कुछ अन्य उपलब्धियाँ भी जुड़ीं, जैसे–संयुक्त औजार का विकास हुआ, औजार बनाने वाले औजार बनने लगे, मछली मारने के औजार बनने लगे, औजार बनाने में कलात्मक तथा सौन्दर्य का भी समावेश होने लगा, आदि।

इस काल में मानव ने धारदार औजार बनाने में महारथ हासिल कर ली थी। औजार की धार बिल्कुल समतल होती थी, जिसका उपयोग छुरी के रूप में किया जा सकता था। छेनी एक धारदार औजार था, जिसके निर्माण के लिए पत्थर के दोनों तरफ के फ्लेक को निकाला जाता था तथा फिर उसे घिसकर धारदार बनाया जाता था। दूर से शिकार करने के लिए हल्के बरछे, भाला तथा धनुष-बाण बनाए जाने लगे। उच्च पुरापाषाण काल के अन्तिम दौर में पश्चिम एशिया में एक अति विकसित औजार पाया गया है। यह हंसिया के आकार का औजार है, जिसका उपयोग घास काटने के लिए किया जाता होगा। सम्भवतः खेती के आरम्भ के साथ इसका उपयोग और भी बढ़ गया होगा। जहाँ पूर्ववर्ती काल में औजार बनाने के लिए अधिकांशतः साधारण पत्थर का प्रयोग किया जाता था, वहीं इस काल में कच्चे माल के रूप में शाणाश्म, हार्न स्टोन, विभिन्न प्रकार के स्फटिक, लाल पत्थर आदि का इस्तेमाल किया गया। लावा कांच, गोमेद, सूर्यकांत जैसे बहुमूल्य पत्थरों का भी उपयोग इस काल में औजार बनाने के लिए किया गया। हालांकि इस काल में पत्थरों के अलावा व्यापक स्तर पर अन्य वस्तुओं का भी प्रयोग औजार बनाने के लिए किया जाता था। हड्डियाँ, सींग, मृगशृंग, दाँत, हाथीदाँत एवं लकड़ी ऐसी ही अन्य वस्तुएँ थीं। **बोहस्लाव क्लिमा** कहते हैं कि "हालांकि पहले के औजारों में भी कार्बनिक पदार्थों का इस्तेमाल किया जाता था, परन्तु अब पुरापाषाण युग में पत्थर के औजार के साथ-साथ कार्बनिक पदार्थों के औजार प्रत्येक औजार समूह में आवश्यक रूप से सम्मिलित हो गए। भाले की नोक, विभिन्न प्रकार की नोकें, पॉलिश वाले औजार, अनुशोधन, पिन, सुआ और हथौड़ा जैसे औजार, गदा, छेदित मृगशृंग और अन्य प्रकार के औजार बनाए जाने लगे जिनका उपयोग विभिन्न कामों के लिए किया जाता था। इस प्रकार कुछ संयुक्त औजार भी थे, जिनमें मूठ लगा होता था, जिनका उपयोग कई कार्यों के लिए होता था।"

हालांकि कार्बनिक औजार तो समय के साथ नष्ट हो गए, पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता होती थी कि इसमें बड़े करीने से आकार दिया जाता था तथा धार और नोक बनाई जाती थी। इस

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



काल में लोगों को पदार्थ की भौतिक और रासायनिक विशेषताओं की भी जानकारी थी। पत्थरों के सूक्ष्म औजार इस काल की प्रमुख विशेषता है। इन छोटे-छोटे औजारों को लघुपाषाण औजार कहा जा सकता है। ये अलग से तैयार किए जाते थे या उन्हें एक हत्थे से जोड़ दिया जाता था। ये भाले की नोक, कांटेदार बरछी आदि के रूप में भी बनाए जाते थे, जिनसे छोटे जानवर, मछली आदि का शिकार किया जाता था। उन छोटे औजारों का उपयोग कलाकृतियाँ बनाने के लिए भी किया जाता था। इस युग में कुछ ऐसे भी औजार मिले हैं जिनका उपयोग औजार बनाने के लिए किया जाता था। पत्थर को काटने के तरीके और धार बनाने से यह पता चलता है कि एक ही पत्थर से कई औजार बनाए जाते थे। इस युग में औजार बनाने की प्रौद्योगिकी में काफी विकास हो चुका था। मानव ने कृषि का आरम्भ भी इसी युग में किया था। कृषि के विकास के लिए औजार एक अपरिहार्य आवश्यकता थी। जंगलों को साफ करके उन्हें समतल बनाना तथा फिर उसे खेती के लिए तैयार करना। यह सारा कार्य विकसित किस्म के औजारों के बगैर सम्भव नहीं था।

अत: इस प्रकार स्पष्ट है कि निचला और मध्य पुरापाषाण काल की अपेक्षा ऊपरी पुरापाषाण काल में निर्मित औजार अधिक परिष्कृत थे। जहाँ उसके पूर्व के कालों में सामान्य पत्थर के औजार बनाए जाते थे, वहीं इस काल में बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग औजार बनाने के लिए किया जाता था। निचले पुरापाषाण काल में गंडासा एवं मध्य पाषाणकाल में खुरचनी जैसे औजार का निर्माण हुआ, वहीं ऊपरी पुरापाषाण काल में हंसिया जैसे औजार बने, जिनका आगे चलकर व्यापक रूप से कृषि कार्यों में उपयोग किया गया। इस प्रकार, उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि ऊपरी पुरापाषाण काल के औजार अपने पूर्वकाल के औजारों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत थे। उस काल के औजारों में पहले की अपेक्षा धार भी अधिक थी तथा कई औजार तो ऐसे थे, जिनका उपयोग कई कार्यों के लिए किया जा सकता था।

**प्रश्न 5. पुरापाषाण युग के लोगों के जीवनयापन के साधन क्या थे?**

**उत्तर**–आरम्भिक मानव अर्थात् पुरापाषाण कालीन मानव अपने विकास के निम्नतम स्तर में थे। विकास का स्तर ही किसी के जीवनयापन के साधन एवं जीवन-शैली को निर्धारित करता है। आरम्भिक मानव का ज्ञान भी बहुत सीमित था। उन्हें पौधों के सन्दर्भ में बहुत ज्यादा ज्ञान नहीं था। परन्तु प्रकृति के प्राणी को भूख और प्यास तो लगती ही है अत: अपने पेट को भरने के लिए वह अपने स्तर से कोई-न-कोई साधन तो अपनाता ही है।

पुरापाषाण कालीन मानव मुख्य रूप से शिकारी और संग्रहकर्त्ता का जीवनयापन करते थे। इस काल के मानव का अपना कोई स्थायी निवास स्थल भी नहीं होता था। आमतौर से वे जंगलों एवं पहाड़ों पर विचरण किया करते थे। आरम्भ में जब उन्हें शिकार करना भी नहीं आता था, तो वे मृत पड़े जानवरों का मांस एवं कंदमूल आदि खाकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। समय के साथ उन्होंने जानवरों का शिकार करना प्रारम्भ किया। शिकार के लिए औजार की आवश्यकता थी। अत: प्रारम्भिक काल में तो आदिमानव ने प्राकृतिक रूप से पड़े पत्थरों का इस्तेमाल औजार के रूप में करना आरम्भ किया, जिससे कि वे छोटे जानवरों का शिकार करके अपना जीवनयापन करते थे। समय के साथ उनके मस्तिष्क का विकास हुआ और उसने उन प्राकृतिक पत्थरों को तोड़कर या काटकर नुकीला बनाया जिससे कि उन्हें शिकार करने में सुविधा हुई। इस काल में मानव शिकार करके और जंगली वनस्पतियों का संग्रह कर अपना भोजन प्राप्त करता था। जहाँ तक होमोहेबिलिस मानव समूह की बात है तो वे कंदमूल खाते थे। कभी-कभी ये लोग छोटे जानवरों का शिकार भी किया करते थे। उनके काल तक आग का इस्तेमाल नहीं होता था अत: ये मांस को कच्चा ही खाते थे।

परन्तु होमोइरेक्टस के काल में आग के इस्तेमाल का प्रमाण मिलता है। इस काल में लोग 30-35 लोगों के समूह में रहा करते थे। उनमें सामाजिक सम्बन्धों का भी विकास हो चुका था। ये सामान्यत: योजनाबद्ध तरीके से शिकार किया करते थे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि उनकी जीवन-शैली में कुछ विविधता आ चुकी थी। हालांकि उनके काल में भी मानव मुख्यत: शिकारी और संग्रहकर्त्ता के रूप में ही जीवनयापन करता था। उनके घरों में चूल्हे के प्रमाण मिले हैं, जिससे प्रतीत होता है कि ये नियमित रूप से आग का इस्तेमाल करते होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि अब लोग मांस भूनकर या बर्तनों में पकाकर खाते होंगे। इस समय मानव हररोज शिकार पर जाता था। शिकार के लिए केवल पुरुष ही जाते थे, जबकि महिलाएँ कंदमूल और अन्य खाद्य पदार्थ इकट्ठा करती थी।

जब होमोइरेक्टस के बाद होमोसेपियन्स सेपियन्स प्रजाति आई तो उनकी जीवन-शैली में काफी परिवर्तन दिखाई दिया। होमोसेपियन्स सेपियन्स के समय शिकार का तरीका और भोजन के प्रकार में परिवर्तन हुआ। हालांकि ये लोग भी शिकारी संग्रहकर्त्ता की ही जीवन-शैली में जी रहे थे, परन्तु अब ये लोग छोटे जानवरों के साथ-साथ बड़े जानवरों का भी शिकार करने लगे थे। उनके साथ शाकभक्षी जानवरों का भी शिकार किया जाता था। ये लोग भैंसा, मैमथ, घोड़ा, जंगली सूअर, हिरण आदि का बड़े पैमाने पर शिकार करने लगे थे। हालांकि यूरोप में रहने वाले मानव मुख्य रूप से रेन्डियर का शिकार करके अपना जीवनयापन करते थे। शिकार करने में निश्चित रूप से भाले का इस्तेमाल प्रारम्भ हो चुका था। बड़े जानवरों का शिकार कई लोग मिलकर करते होंगे और यह काम पुरुष ही किया करते होंगे। शिकार किए हुए जानवर को पूरे समूह में बाँट दिया जाता होगा। जानवर का हर हिस्सा यहाँ तक कि हड्डी-मज्जा तक को निकालकर खा जाया करते थे। पशुओं के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अलावा मछली और पानी में रहने वाले अन्य जीव भी अब भोजन का प्रमुख अंग बन गए थे। ऊपरी पुरापाषाण युग में शिकार करने और मछली पकड़ने के औजार के कारण भोजन में मछली का अंश बढ़ गया था।

हालांकि अवशेषों से ऐसा भी प्रतीत होता है कि इस काल में वनस्पति भोजन में भी विविधता बढ़ गई थी। कंदमूल निकालने के लिए कई तरह के औजार बनाए गए थे। उन कंदमूलों को सुरक्षित रखने के तरीके भी अपनाए जाने लगे थे। चूंकि उस वक्त आसपास का पूरा परिवेश जंगली था अत: इस कारण से वनस्पतियों की उपलब्धता भी अधिक थी। लोगों ने अलग-अलग प्रकार के कंदमूल को भोजन के रूप में ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था। इस काल में भोजन मुख्य रूप से प्रकृति से ही प्राप्त किया जाता था। हालांकि भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया में प्रकृति का भी ख्याल रखा जाता था।

इस प्रकार, उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुरापाषाण काल में लोग शिकारी-संग्रहकर्त्ता के रूप में जीवनयापन करते थे। वे छोटे-बड़े पशुओं का शिकार करके अपना भोजन प्राप्त करते थे। बरमथ ही प्रकृति रूप में उपलब्ध वनस्पतियों का भी उपयोग भोजन के रूप में किया करते थे। समय के साथ जैसे-जैसे उनके औजार परिष्कृत होते चले गए, उनके भोजन में विविधता आती गई।

**प्रश्न 6. ऊपरी नवपाषाण लोगों के निवास स्थलों और परिवेश पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।**

**उत्तर**–आरम्भिक मानव आमतौर से स्थायी निवास बनाकर नहीं रहा करते थे। वे शिकारी-संग्रहकर्त्ता का जीवनयापन करते थे। जो उनके अस्थायी निवास होते थे वे सामान्यत: जानवरों की खाल आदि के बने होते थे। पर समय के साथ जैसे-जैसे मानव का क्रमिक विकास होता गया, उसके निवास स्थल में भी परिवर्तन होता गया। ऊपरी पुरापाषाण काल में निएन्डरथल एवं होमोसेपियन्स सेपियन्स का उदय हो चुका था। आमतौर से ये मानव समूह गुफाओं में रहा करते थे, जो प्राकृतिक रूप से निर्मित होती थीं।

निएन्डरथल के निवास स्थलों से यह ज्ञात होता है कि इन गुफाओं में एक के बाद दूसरे मानव समूह रहते आए थे। हालांकि ऊपरी पुरापाषाण युग के दौरान मानव-निर्मित निवास-स्थल और बस्तियाँ पहले की अपेक्षा ज्यादा मिलती हैं। गुफाओं और पत्थर के बसेरों में रहने के प्रमाण मिले हैं। तालाबों, नदियों और घाटों के किनारे लोगों के रहने के भी प्रमाण मिले हैं। यहाँ आसानी से शिकार करने के लिए जानवर मिल जाते थे। झोंपड़ियों का निर्माण परिष्कृत और सुनियोजित ढंग से होने लगा था। इसमें मुख्य रूप से लकड़ी के ढांचे और खाल का उपयोग किया जाता था। इसके अलावा मिट्टी, हड्डी, पत्थर आदि के इस्तेमाल के भी प्रमाण मिले हैं। झोंपड़ियों का आकार अलग-अलग ढंग का होता था। अंडाकार, गोलाकार या फिर गुर्दे के आकार की। इनमें से कुछ झोंपड़ियाँ अस्थायी तम्बुओं की तरह होती थीं, जबकि खासतौर पर पुरापाषाण युग में कुछ झोंपड़ियाँ स्थायी प्रकृति की भी होती थीं। इन रिहायशों का निर्माण रहने के लिए और जानवरों से अपना बचाव करने के लिए किया जाता था।

इनके रिहायशी परिवेश में घर के बाहर और भीतर चूल्हे के भी प्रमाण मिले हैं। ये खुले भी हैं और बंद भी। आग को बचाकर रखने की प्रवृत्ति का भी अनुमान किया जाता है। जलावन के रूप में लकड़ी और यहाँ तक कि हड्डियों का भी उपयोग किया जाता था। उन रिहायशी स्थलों से बड़ी मात्रा में प्राप्त राख और हड्डियों से पता चलता है कि ये स्थल काफी पुराने हैं और लोग लगातार यहाँ बसते रहे हैं। हालांकि ये लोग समूह में रहा करते थे, जिनका समूह सामान्यत: 30-35 लोगों का था। उनका आवागमन मुख्य जलस्रोत से चारों दिशाओं में लगभग 25-30 किलोमीटर तक सीमित था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि छोटे समूह कुछ समय के लिए एक स्थान पर एकत्र होते थे तथा उनके बीच सामानों का आदान-प्रदान होता था, साथ ही वे अपने लिए जीवनसाथी का भी चुनाव करते थे। इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि घायल व्यक्तियों की सेवा अन्य व्यक्तियों द्वारा की जाती थी। यह उनके मजबूत सामाजिक बन्धन को दर्शाता है। कब्रगाहों के अवशेषों से यह स्पष्ट होता है कि कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को दफनाने के लिए पेड़ की डालियों का बिस्तर बनाया जाता था तथा इनके ऊपर फूल आदि भी रखे जाते थे। एक ऐसी भी कब्र मिली है, जिसमें वयस्क, महिला एवं बच्चे साथ में दफनाए गए होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये एक ही परिवार के सदस्य होंगे। कई स्थलों पर शारीरिक अवशेषों के साथ औजार, सींग, पशु की हड्डियाँ एवं फूल भी मिले हैं। इससे ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दफनाने के क्रम में आनुष्ठानिक क्रियाएँ भी होती होंगी।

अत: स्पष्ट है कि ऊपरी पुरापाषाण काल में मानव स्थायी एवं अस्थायी दोनों तरह के निवास स्थलों में रहा करता था। इनके ज्यादातर निवास स्थल प्राकृतिक गुफाओं में हुआ करते थे। हालांकि बाद के मानव ने अपने लिए झोंपड़ियाँ भी बनाना प्रारम्भ कर दिया था। ये लोग खासतौर से समूह में रहा करते थे तथा इनके बीच सामाजिक बन्धन भी कायम हो चुका था। इस युग में परिवार जैसी संस्था का भी प्रमाण मिलता है। साथ ही लोगों द्वारा आनुष्ठानिक क्रिया भी की जाती थी। हालांकि उनके निवास स्थल झोंपड़ियों के रूप में होते थे, परन्तु उनके आकार में भी भिन्नता देखने को मिलती है।

**प्रश्न 7. पुरापाषाण संस्कृति के प्रमुख कलारूपों का संक्षेप में परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–पुरापाषाण कालीन मानव हालांकि बहुत विकसित अवस्था में नहीं थे, परन्तु बावजूद इसके इन्होंने कला के क्षेत्र में कुछ योगदान जरूर दिया था। मध्यपाषाण युग से ही लोग नक्काशी, चिह्नित करना, हड्डियों की रंगाई, सफाई, पॉलिश आदि करना

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



प्रारम्भ कर चुके थे। हालांकि उनके द्वारा बनाई गई कलाकृतियों के स्पष्ट प्रमाण ऊपरी पुरापाषाण युग से अधिक प्राप्त होते हैं। पत्थर या गुफा कला के रूप, कला के नमूने सबसे ज्यादा मिलते हैं। दीवारों, अन्दर की छतों या गुफा के फर्श पर बनी चित्रकारी अभी भी मौजूद है।

इनके चित्रों में ज्यादातर चित्र पशुओं के मिलते हैं। इन चित्रों को बनाने के लिए नक्काशी और रंगाई कला का उपयोग भी किया जाता था। पशुओं के चित्रों में हिरण, मैमथ, मछली, पक्षी आदि के चित्र शामिल हैं। हालांकि मनुष्य के चित्र कम पाए गए हैं। कई चित्रों में एक काल्पनिक पशु बनाया गया है, जिसमें कई जानवरों के अंग लगे हैं। कुछ मानव के चित्र भी मिले हैं, जिनमें उसे हथियार लिए हुए दिखाया गया है। इन गुफाचित्रों में अल्तमीरा (स्पेन) की गुफा चित्रकला काफी महत्त्वपूर्ण है। उसकी भीतरी दीवारों पर घोड़े, हिरण, भालू आदि के चित्र बने हुए हैं। इन चित्रकारियों में भूरे, पीले, लाल और काले रंग का इस्तेमाल किया गया है। फ्रांस के लैस कास गुफा से भी इस प्रकार के चित्र मिले हैं। हालांकि ये आकृतियाँ केवल पशुओं की चित्र मात्र नहीं हैं, बल्कि उनमें गति और जीवन भी देखने को मिलता है। कुछ ज्यामितीय आकार के चित्र भी बनाए गए हैं। अलग-अलग आकार की 200 से ज्यादा चित्रित गुफाएँ मिली हैं, जिनमें से कुछ अपनी विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

इन सभी गुफाचित्रों में विषय और शैली की समानता देखी जा सकती है। कई चित्रों में आकृतियाँ एक-दूसरे में समाहित हैं और सभी आकृतियाँ एक निश्चित दिशा में नहीं बनी हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन चित्रों को बनाने के लिए मैंगनीज ऑक्साइड, गेरू और यहाँ तक कि काठ-कोयला जैसी प्राकृतिक वस्तुओं का इस्तेमाल किया जाता होगा। ऐसा भी प्रतीत होता है कि इन्हें चिपकाने के लिए किसी पदार्थ का इस्तेमाल किया गया है। किसी छोटी लकड़ी, ब्रश जैसी कोई चीज या फिर हाथ से रंग लगाए जाते होंगे। हालांकि इस गुफा-कला के अर्थ और उद्देश्य के बारे में विद्वानों के बीच बहस भी हुई है। कुछ लोग इसे शिकार के लिए जाने से पहले किए जाने वाले टोने-टोटके या अनुष्ठान के रूप में देखते हैं। वहीं कुछ लोग इसे एक सामाजिक समूह के प्रतिनिधित्व के रूप में देखते हैं, जिसमें नर पशुओं और मादा पशु और शिशु पशु को चित्रांकित किया गया है। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि जब किसी खुशी के मौके पर या उत्सव के दौरान एक छोटा समूह आपस में मिलता था, तो इस तरह खुशी का इजहार करता था।

इन गुफाचित्रों के अलावा इस काल के कुछ गहने भी मिले हैं जिससे उस काल की कला की झलक मिलती है। ये गहने हड्डियों, सींगों या पत्थरों के अलंकृत पदार्थ होते थे। इन अलंकृत गहनों की रंगाई भी की जाती थी। रेखाकृति, नक्काशी, पॉलिश आदि के द्वारा उसे अलंकृत भी किया जाता था। कुछ ऐसी भी कलाकृतियाँ मिली हैं जिन्हें छेदकर एक विशेष आकार दिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के गहनों को बाँह, कलाई, गले या पैर में पहना जाता होगा। इस प्रकार के गहनों का मिलना यह प्रमाणित करता है उस वक्त के लोगों में सौंदर्य के प्रति लगाव था। साथ ही उन्हें कलात्मक वस्तुओं से भी लगाव था।

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुरापाषाण काल में मानव बहुत अधिक विकसित अवस्था में तो नहीं था, पर इसके बावजूद उसका लगाव कला से था। वे मनोरंजन आदि के लिए कलात्मक कृतियाँ बनाया करते थे। उनके द्वारा बनाए गए गुफा चित्रों से स्पष्ट है कि उस काल में भी उन्हें कला का अच्छा ज्ञान था। साथ ही उन्हें रंगों की भी जानकारी थी, क्योंकि इन पत्थर की दीवारों पर उकेरे गए रेखाचित्रों को वे बाद में रंग से सजाया करते थे।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# पशुपालक खानाबदोश

# 2

## परिचय

आदिमानव ने शिकारी संग्रहकर्त्ता के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया, पर समय के साथ उसके जीवनयापन के तरीके में परिवर्तन के भी प्रमाण मिलते हैं। समय के साथ मानव के शिकार करने के तरीके में बदलाव आया। जहाँ पहले वे एक बार में एक जानवर का शिकार किया करते थे, वहीं समय के साथ उन्होंने झुंड में पशुओं का शिकार करना आरम्भ कर दिया। निचले पुरापाषाण युग में, सूक्ष्म औजार के निर्माण के कारण मछली का भी शिकार वे भोजन के लिए करने लगे। इनके समूह के आकार में भी समय के साथ परिवर्तन देखने को मिलता है। समूहों का आकार एवं परिवार की संख्या भी कम होती जा रही थी। शिकारी-संग्रहकर्त्ता अपने आसपास के प्राकृतिक पर्यावरण से भी धीरे-धीरे परिचित हो हो रहे थे। इसके साथ ही उन्हें पशुओं के जीवन चक्र, संतानोत्पत्ति आदि की भी जानकारी हो रही थी। परिणामस्वरूप ऊपरी पुरापाषाण चरण के बाद, पिछले 12 हजार वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में शिकारी-संग्रहकर्त्ता संस्कृतियों में परिवर्तन आया, जो विभिन्न प्रकार की जीवनयापन पद्धति और जीवन-शैली का प्रतिनिधित्व करता है। हालांकि कुछ समूह आज भी शिकारी-संग्रहकर्त्ता का जीवन अपनाए हुए हैं, जबकि कुछ समूहों ने अपने जीवनयापन के लिए पशुपालन को अपना साधन बनाया है।

आदिमानवों द्वारा पशुपालन को अपने जीवनयापन के साधन के रूप में अपनाया जाना एक नई संस्कृति थी। इसके लिए पशुओं के सन्दर्भ में विशेष जानकारी भी अपेक्षित थी। हालांकि जहाँ आदिमानव के निवास स्थल पहले पूरी तरह अस्थायी रहा करते थे, वहीं समय के साथ उनकी प्रकृति स्थायी होती गई और इसी स्थायी प्रकृति के कारण लोग एक स्थान पर रहकर खेती की ओर अग्रसर हुए। मानव की जीवन-शैली में आए इस प्रकार के बदलाव अचानक नहीं हुए, बल्कि इसमें हजारों वर्षों का समय लगा। पशुपालक खानाबदोश जीवन-शैली का प्रारम्भ पशुओं को पालतू बनाने से हुआ।

पशुओं को पालतू बनाए जाने का तात्पर्य है कि जो जंगली जानवर थे, उन्हें खूंटे से बांधकर रखा जाए तथा उनका प्रजनन करवाया जाए। पशुओं को पालतू बनाने के लिए यह आवश्यक था कि उनकी जनन प्रकृति, भोजन आदि के सन्दर्भ में विशेष जानकारी का होना। **सैन्डोर बोकोनी** का कहना है कि "जंगली पशुओं को पालतू बनाना एक लम्बी एवं जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने में मानव के हजारों वर्षों के अनुभव जो कि शिकार के क्रम में उसने पशुओं के सन्दर्भ में प्राप्त किए थे, काम आए। पशुओं को पालतू बनाने में उनकी कई पीढ़ियाँ लग गईं। मानव के पास एक अहम् प्रश्न था कि किन पशुओं को पालतू बनाया जाए तथा किन्हें नहीं। इसके लिए यह आवश्यक था कि उन्हें पशुओं के सन्दर्भ में कुछ विशेष ज्ञान हो; जैसे-उनके भोजन के साधन, उनके दूध या मांस किसका उपयोग सम्भव है, उनकी हिंसात्मक प्रकृति आदि का ज्ञान। हालांकि आरम्भ में मानव ने दूध देने वाले पशुओं को पालतू बनाना आरम्भ किया, जिसका उद्देश्य यह रहा होगा कि शिकार न मिलने पर उनके दूध का उपयोग भोजन के रूप में किया जा सके, जबकि अधिकांश ने कुत्ते को सबसे पहले पालतू बनाया, जिसका उपयोग सम्भवत: शिकार ढूंढ़ने या पहाड़ पर चढ़ने के लिए किया जाता होगा। एक दूसरा पालतू पशु था सूअर, जिसे भी काफी पहले पालतू बनाया गया था। वैसे कुत्ते एवं सूअर के लिए अलग से खाने का इन्तजाम करने की आवश्यकता नहीं होती थी। ये ऐसे पालतू पशु थे, जो आदिमानव के बचा-खुचा खाना खाकर भी जिन्दा रह सकते थे। उन पशुओं के अलावा भेड़, बकरी और मवेशी पालने के भी प्रमाण मिले हैं, जो जंगलों में उपलब्ध वनस्पतियों पर आश्रित रहते थे, इस तरह के पशुओं को पालतू बनाने से कई फायदे होते थे; जैसे शिकार न मिलने की स्थिति में उनके मांस का भोजन के रूप में उपयोग सम्भव था। सैन्डोर बोकोनी ने आरम्भिक पाँच प्रमुख पालतू जानवरों का उल्लेख किया है, जिनमें कुत्ता, सूअर, भेड़, बकरी और मवेशी शामिल हैं। इनका मानना है कि उन्हें पालतू बनाने का प्रथम प्रमाण पश्चिम एशिया में मिला है। इन जानवरों को पालतू बनाने के कुछ विशेष कारणों का उल्लेख करते हुए **बोकोनी** कहते हैं कि "ये सर्वत्र उपलब्ध थे, इनके भोजन के लिए अलग से

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं होती थी। साथ ही ये छोटे आकार के होते थे, जो मानव को नुकसान नहीं पहुँचा सकते थे।"

कुत्ते को सर्वप्रथम पालतू बनाए जाने का प्रमाण 14 हजार वर्ष पहले उत्तर-पूर्व इराक में मिलता है, जबकि भेड़ को पालतू बनाए जाने का प्रथम प्रमाण 11वीं सहस्राब्दी में उत्तर-पश्चिम इराक से प्राप्त हुआ। ईरान एवं इराक से बकरे के पालतू बनाए जाने का भी प्रमाण मिला है। हालांकि प्राप्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि भेड़ और बकरी पश्चिमी एशिया में सर्वाधिक पाले जाते थे क्योंकि ये किसी भी प्रकार के मौसम में रह सकते हैं तथा जंगली वनस्पतियों से ये आसानी से अपना भोजन प्राप्त कर लेते थे। साथ ही इनको रखने हेतु विशेष निवास स्थल की भी आवश्यकता नहीं होती थी, बल्कि ये मैदानों और पहाड़ों में समान रूप से रहने की क्षमता रखते हैं। **वेंके** ने भी इनके सन्दर्भ में टिप्पणी की है कि "6000 ई.पू. से दक्षिण-पश्चिम एशिया में उनकी संख्या तेजी से बढ़ने लगी थी। कृषि समुदायों के लिए भी इन्हें पालतू बनाना आसान था, क्योंकि ये कंटीले पौधे, कुट्टी आदि खाकर रह सकते थे तथा इनके बालों का उपयोग ऊन के रूप में किया जाता था।'' भेड़ और बकरी के अलावा 7वीं सहस्राब्दी के आसपास मिस्र एवं पूर्वी सहारा में गधे पाले जाने के भी प्रमाण मिले हैं। इसका उपयोग मुख्यत: बोझा ढोने एवं गाड़ी खींचने के लिए किया जाता था। इसी प्रकार ऊँट पाले जाने का भी पहला प्रमाण पूर्वी सहारा क्षेत्र से ही मिला है। हालांकि दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. से ऊँट पाले जाने का प्रमाण अरब क्षेत्र में भी मिलता है। जब पहली सहस्राब्दी में नई काठी का आविष्कार हुआ, इसके बाद से इसे खींचने के लिए ऊँट का उपयोग उत्तर अरब क्षेत्र में व्यापक स्तर पर होने लगा। गधे की अपेक्षा यह ज्यादा सामान ढो सकता था तथा साथ ही इस पर सवारी करना भी सम्भव हो गया। धीरे-धीरे अरब क्षेत्र के खानाबदोशों ने इसका उपयोग सैनिक दस्ते के रूप में भी करना आरम्भ कर दिया। साथ ही यह मरुस्थलीय क्षेत्र में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योंकि इसमें गर्मी सहने की क्षमता भी अधिक थी तथा यह लम्बे समय तक बिना पानी पीये भी जिन्दा रह सकता था।

पशुपालक खानाबदोश संस्कृति के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन तब देखने को मिलता है, जब इनके द्वारा घोड़े को पालतू बनाया गया। घोड़े को पालतू बनाए जाने का प्रमाण चौथी सहस्राब्दी ई.पू. से यूरेशियाई स्टेप्स से मिलना प्रारम्भ हुआ। हालांकि उसके पालतू बनाए जाने के उद्देश्य को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ का मानना है कि उसके मांस को खाने हेतु उसे पालतू बनाया गया था, जबकि वहीं दूसरे मत वालों का मानना है कि इसके पालतू बनाए जाने का मुख्य उद्देश्य था उसकी सवारी करना या उसे गाड़ी में जोतना तथा बाद में आवश्यकता के अनुरूप उसे खाया भी जाने लगा। इन मतैक्यताओं के बावजूद इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि जबसे लोगों ने उसकी सवारी करना प्रारम्भ किया, तब से उसका मुख्य उपयोग उसी रूप में किया जाने लगा। उसकी सवारी के माध्यम से विशाल पशुधन को सम्भालना एवं इनका देखरेख पहले की तुलना में काफी आसान हो गया। इसका उपयोग व्यापक स्तर पर युद्ध एवं आक्रमण के लिए किया गया, जिसका परिणाम था कि खानाबदोश एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर पाए। हालांकि क्षेत्र के अनुसार पशुओं की उपयोगिता एवं उपलब्धता भी बढ़ती थी। रेन्डियर मुख्यत: साइबेरियाई क्षेत्र में यूरोप में पशुपालन नहीं किया जाता था, पर अनातोलिया से आए अप्रवासियों ने इन्हें पशुपालन की जानकारी दी। उसके उपरांत यहाँ का पशुपालन व्यापक पैमाने पर किया जाने लगा। हालांकि यूरोप की जलवायु ऐसी थी कि यहाँ सभी नस्ल के पशुओं को पालतू बनाया जाना सम्भव नहीं था, पर धीरे-धीरे यहाँ के मौसम ने अपने आप को अनुकूलित किया तथा बाद में ये पशु भी यहाँ बड़े पैमाने पर पाले जाने लगे। इनमें भेड़ और बकरियाँ प्रमुख हैं। धीरे-धीरे यूरोप में पशुधन, सूअर आदि बड़े पैमाने पर पालतू बनाए जाने लगे। घोड़े और गधे भी यहाँ पालतू बनाए जाते थे जिनका उपयोग मुख्यत: सवारी एवं सामान ढोने में किया जाता था।

जहाँ तक आदिकालीन प्रमाणों एवं आँकड़ों की बात है, तो इसकी उपलब्धता काफी सीमित है। पर हाँ पशुपालक समूह में किए गए मानवशास्त्रीय अध्ययनों एवं ज्ञात सभ्यताओं के पर्यवेक्षकों के कथनों से पशुपालक समूह के बारे में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त होती है। **दानी** और **ज्यां पिएर** कहते हैं कि "खानाबदोश समूहों ने न केवल अपने बीच, बल्कि मनुष्यों एवं पशुओं के बीच भी सम्बन्ध स्थापित किया। पशुपालकों ने इस सम्बन्ध के कारण पशु शक्ति का व्यापक इस्तेमाल किया तथा प्रगतिशील सभ्यता की ओर अग्रसर हुए। पशुओं में बैल एवं घोड़े का उपयोग आगे चलकर कृषि कार्य में किया गया, जबकि घोड़े और ऊँट का उपयोग विशाल स्टेप्स के मैदानों या रेतीले रेगिस्तानों की यात्रा में किया गया।" पशुपालक खानाबदोशों की अपनी एक संस्कृति एवं विशेष जीवन-शैली थी। इनकी दो प्रमुख विशेषताएँ थीं–प्रथमत: उनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार पशुपालन था, जबकि इनकी दूसरी विशेषता यह थी कि वह निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे। परन्तु कुछ ऐसे भी पशुपालक थे, जिनके जीवनयापन का आधार पशुपालन था, पर वे स्थायी जीवन बिताया करते थे। हालांकि इस समूह में कुछ ऐसे समूह के भी प्रमाण मिले हैं, जो व्यापार या शिल्प उत्पादन जैसे व्यवसायों में संलग्न थे, पर उनका जीवन स्थायी नहीं था, बल्कि वे निरन्तर आवागमन करते ही रहते थे। कुछ ऐसे समूहों के भी प्रमाण मिले हैं जो खेती और पशुपालन साथ-साथ किया करते थे। **खजानोव** ने उनकी पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है–(1) इनकी अर्थव्यवस्था का आधार पशुपालन था, (2) ये चरागाह की खोज में निरन्तर पशुओं के साथ घूमते रहते थे, (3) उनका विचरण विशिष्ट चरागाह क्षेत्र के अन्दर ही होता था, (4) अधिकांश लोग पशुचारण में लगे रहते थे, (5) उत्पादन का मुख्य लक्ष्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होता था। इन विशिष्ट विशेषताओं के

www.neerajbooks.com

अतिरिक्त उनकी कुछ ऐसी भी विशेषताएँ थीं, जो उनको विशेष पहचान देती थीं, जैसे–उत्पादन का खानाबदोश तरीका, जीवन-शैली, समाज का ढांचा आदि। सभी क्षेत्रों एवं समयों में यह एक जैसा नहीं था। इस प्रकार की विभिन्नता को पर्यावरण, उपलब्ध पशु, तकनीकी, पड़ोस के स्थायी निवासी आदि प्रभावित करते थे।

हालांकि इनकी उत्पत्ति के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का मानना है कि इनका अस्तित्व पुरापाषाण युग से है, क्योंकि उस समय शिकारी बड़े जानवरों के समूह का पीछा करते थे और समय के साथ वे उन्हें पकड़कर पालतू भी बनाने में सफल हो सके। इस विचार को मानने वालों का यह भी तर्क है कि पशुपालन कृषि से पहले आया और इनमें से कई पशुपालक समूह बाद में खेती करने लगे। दूसरे विचारक यह मानते हैं कि कृषि और पशुपालन की शुरुआत एक साथ हुई और इस मत को मानने वाले विद्वानों का यह भी मानना है कि बड़े जानवरों को पालतू बनाने की शुरुआत स्थायी कृषि समुदायों में ही हुई। इनका यह भी मानना है कि जानवरों की संख्या बढ़ने पर ये लोग चरागाह की खोज में निकल पड़ते थे और फिर लौटकर कुछ दिनों के बाद आते थे। हालांकि कई विद्वान इसे स्वीकार नहीं करते हैं। ऐसे लोगों का मानना है जलवायु में परिवर्तन होने के कारण ये पूरी तरह पशुपालक बन गए। जलवायु परिवर्तन के कारण उन स्थानों में खेती करना सम्भव नहीं हो सका और ये उस परिस्थिति में वहाँ खेती छोड़कर खानाबदोशों का जीवन व्यतीत करने लगे। इस जलवायु सम्बन्धी परिवर्तन में प्राकृतिक आपदाएँ भी शामिल थीं। हालांकि कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि उन्हें जबरन विस्थापित किया गया अर्थात् पड़ोस के शक्तिशाली लोगों ने इन्हें उनके निवास स्थल से खदेड़ दिया और इस प्रकार ये अपना खेत और घर-बार छोड़ने के लिए बाध्य हो गए तथा अन्ततः पशुपालक खानाबदोश का जीवन अपना लिया। इनकी उत्पत्ति के सन्दर्भ में विश्लेषण करने हेतु दो अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को भी रखना आवश्यक है–पहला यह है कि इन पर एवं स्थानबद्ध किसानों पर किए गए नृशास्त्रीय अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों की संस्कृतियों में काफी समानताएँ थीं। यहाँ तक कि अलग-अलग रहने वाले पशुपालक खानाबदोश समूहों की अपेक्षा एक ही क्षेत्र में रहने वाले खानाबदोश एवं कृषकों के महज सम्पर्क सूत्र ज्यादा घनिष्ठ थे। अतः निश्चित रूप से यह कहना मुश्किल है कि किन परिस्थितियों में खानाबदोश पशुपालकों का जन्म हुआ तथा क्या सभी कालों एवं क्षेत्रों में परिस्थितियाँ एक समान थीं। हालांकि निरन्तर इनकी घटती संख्या इस ओर संकेत अवश्य करती है कि ये इस जीवन-शैली को छोड़कर स्थायी जीवनशैली अपनाते जा रहे थे।

पशुओं को पालतू बनाना न केवल उनकी प्रकृति एवं आवश्यकताओं पर निर्भर था, बल्कि उसके लिए जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियां भी जिम्मेदार थीं। कुछ ऐसी प्रजातियाँ भी थीं, जिन्हें एक विशिष्ट क्षेत्र में ही पाला जा सकता था, जबकि कुछ पशुओं की ऐसी प्रजातियाँ थीं जो किसी भी क्षेत्र में अपने आपको उसके अनुरूप ढालने में सक्षम थीं। ऊँट, याक, रेन्डियर जैसी प्रजातियाँ विशेष जलवायु में ही पाली जा सकती थीं जबकि भेड़, बकरी, गाय, भैंस, सूअर, घोड़े आदि किसी भी जलवायविक परिवेश में पाले जा सकते थे, क्योंकि ये अपने आपको किसी भी जलवायु में ढालने की क्षमता रखते थे। जहाँ तक यूरेशियाई स्टेप्स की बात है तो यहाँ 7वीं सहस्राब्दी ई.पू. से ही पशुपालन किया जाता था। हालांकि आरम्भिक समय में उनके विचरण का क्षेत्र काफी सीमित था, पर जबसे इन लोगों ने घोड़े को पालतू बनाना आरम्भ किया तबसे इनके रहन-सहन एवं जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। चीनी स्रोतों में इन खानाबदोशों को बर्बर कहा जाता है तथा उनके लगातार संघर्ष का उल्लेख मिलता है। चीन की महान दीवार का निर्माण सम्भवतः उसी संघर्ष या टकराव से सुरक्षा के लिए हुआ था।

मैसोपोटामिया, सीरिया, फिलिस्तीन और अरब क्षेत्र सम्भवतः कृषि और पशुपालन की उत्पत्ति के केन्द्र थे। विद्वानों का मानना है कि 4 हजार-2 हजार ई.पू. के मध्य उस क्षेत्र में पशुपालक खानाबदोश जीवन-शैली अस्तित्व में थी। उनका यह भी मानना है कि यहाँ पशुपालकों एवं कृषकों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी कारण कुछ विद्वान उसे अर्धखानाबदोशी जीवन-शैली मानते हैं जबकि अफगानिस्तान, ईरान और एशिया माइनर में तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. से पशुपालन किया जा रहा था परन्तु मध्य युग में यह अपने उत्कर्ष पर पहुँची। हालांकि यूरेशियाई स्टेप्स के खानाबदोशों ने इस क्षेत्र को काफी प्रभावित किया। अफ्रीका में 7वीं सहस्राब्दी ई.पू. में मिस्र और उत्तरी अफ्रीका में सबसे पहले पशुओं को पालना आरम्भ किया गया। परन्तु इस क्षेत्र में भी निश्चित खानाबदोश जीवन-शैली का प्रमाण दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. के मध्य ही मिलता है। इन क्षेत्रों में भी घोड़े पाले जाने का प्रमाण मिला है, परन्तु ऊँट पाले जाने के बाद उसकी भूमिका उन क्षेत्रों में ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गई। इसका कारण यह था कि ऊँट घोड़े की अपेक्षा आसानी से उस क्षेत्र में गाड़ी खींच सकता था तथा ज्यादा वजन ढोने में भी सक्षम था। इसी प्रकार, साइबेरिया और उत्तरी यूरेशिया में प्रथम सहस्राब्दी में रेन्डियर को पालतू बनाए जाने का प्रमाण मिलता है। हालांकि तिब्बत के लोग याक पाला करते थे। अमेरिका में भी दो प्रमुख पशु प्रजाति–इलामा और विकुना के पालतू बनाए जाने का प्रमाण मिलता है। हालांकि तिब्बत के लोग याक पाला करते थे। ये दोनों पशु प्रजातियां ऊँट परिवार की ही थीं। इस महादेश में आरम्भ में पशुपालन नहीं किया जाता था, परन्तु जब सोलहवीं शताब्दी में स्पेन के लोगों ने यहाँ घोड़ों का प्रयोग आरम्भ किया, तबसे यहाँ भी बड़े पैमाने पर घोड़े को पालतू बनाया जाने लगा।

जहाँ तक भारत की बात है, तो यहाँ पशुपालन संस्कृति बहुत पुरानी है। यहाँ विभिन्न जानवरों के समूह को विशिष्ट सामाजिक समूह द्वारा आदिकाल से पालतू बनाया जाता रहा है। यहाँ के अधिकांश

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



पशुपालक अर्द्धखानाबदोश कृषक थे, जो पशुपालन हेतु गर्मी एवं सर्दी में अपना स्थान बदल लिया करते थे। अर्थात् ये मौसम के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने पशुओं के साथ चरागाह की खोज में निकला करते थे। उप-हिमालय क्षेत्र और राजस्थान के गुज्जर और बकरवाल, कश्मीर के गद्दी और राबरी, दक्षिण भारत के गोल्ला और कुरूबा ऐसे ही पशुपालक खानाबदोश थे।

खानाबदोश जीवन-शैली के विकास में घोड़ों एवं ऊँटों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। **दानी** और **ज्यां** कहते हैं कि "हालांकि बहुत सारे पशुओं को पालतू बनाया गया पर घोड़ा हाल-हाल तक लोगों के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। इसके साथ इसके उपयोग करने वालों का प्रगाढ़ सम्बन्ध भी विकसित होता देखा गया है। जिस प्रकार खाद्यान्न कृषि सम्भ्यताओं का आधार था, उसी प्रकार घोड़े खानाबदोश जीवन-शैली की प्रमुख रक्त धमनी थे। घोड़ों ने न केवल उनके विकास में मदद की, बल्कि खानाबदोश साम्राज्य को स्थापित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।" यहाँ तक कि मंगोलिया, ट्रान्सकैनकेसिया और एशिया के अन्य हिस्सों में काफी लम्बे समय तक स्थिर समाजों पर उनका सैनिक प्रभुत्व भी रहा। कई क्षेत्रों में तो स्थिर समाज ने घुड़सवारी करने की कला इन्हीं से सीखी। **रिचर्ड एन. फ्राई** कहते हैं कि स्थिर समाजों ने घोड़ों पर हथियार रखकर युद्ध करने की कला खानाबदोशों से ही सीखी थी। यहाँ तक कि खानाबदोशों का लगभग पूरा जीवन घोड़ों पर ही बीतता था। खानाबदोशों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी थी कि वे युद्ध के दौरान स्थित बसे हुए लोगों पर तेजी से आक्रमण करते थे तथा उन्हें लूटा करते थे। अरब और अफ्रीका के मरुस्थलीय क्षेत्रों में उनके साम्राज्य को स्थापित करने में ऊँटों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

खानाबदोश अर्थात् अस्थिर समाज, जो कि निरन्तर इधर-उधर घूमकर अपने पशुओं के लिए चारे की खोज किया करते थे। हालांकि इनके आवागमन के क्षेत्र एवं समय पर अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता था; जैसे–तापमान में हुए बदलाव, वर्षा, किसानों द्वारा फसल की बुआई और कटाई आदि। ये सामान्यत: मौसम के अनुसार आकर्षक गंतव्य स्थलों की खोज में लगे रहते थे। उन स्थानों पर जाना ज्यादा पसन्द करते थे, जहाँ पर्याप्त वर्षा होती थी, ताकि उनके पशुओं के लिए भरपूर चारा उन्हें मिल सके। कई बार ऐसा भी होता था कि उनके कारण रबी की फसल का नुकसान हो जाता था। ऐसी स्थिति में वे उन स्थानों से नहीं गुजरा करते थे तथा फसल की कटाई के बाद ही वे पुन: उन स्थानों पर आते थे। कुछ ऐसे भी खानाबदोश थे, जो पूर्णत: खानाबदोश नहीं थे, बल्कि वे मौसम के बदलाव के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे तथा मौसम में परिवर्तन के बाद पुन: अपने पूर्व स्थान पर लौट आते थे। जैसे उपहिमालय क्षेत्र के गुज्जर और बकरवाल, कश्मीर घाटी के गद्दी, राबरी आदि। इनके आवागमन के दायरे के सन्दर्भ में **खजानोव** कहते हैं कि चुकोतकास में रेन्डियर पशुपालक 50-100 कि.मी. तक, फिनमार्क में लाप्स 100-200 कि.मी. तक केनिन-तिमान टुंड्रे में नेन्ट्री 150-200 कि.मी. एलव्यूने और एन्यूई में चुकछी 400-500 कि.मी. तथा कजावा 1000-1500 कि.मी तक के दायरे में आवागमन किया करते थे। इसके भी प्रमाण मिले हैं कि कुछ ऐसे भी खानाबदोश थे जो हजारों वर्षों तक एक ही मार्ग अपनाया करते थे। **स्ट्रैबो** लिखते हैं कि "वे अपने पशुओं को चराते हुए बढ़ते चले जाते थे और जहाँ-जहाँ घास मिलती थी उस ओर का रुख करते चलते थे। जाड़े के दिनों में वे लेक मालोटिस के दलदले इलाकों में रहते थे और गर्मी के दिनों में मैदानी इलाकों में चले जाते थे।" इस प्रकार स्पष्ट है कि उनका आवागमन मुख्यत: चरागाह की खोज के लिए होता था तथा यह मौसम के अनुरूप परिवर्तित होता रहता था।

इतिहास इन्हें बर्बर एवं कुख्यात मानता है तथा स्थिर समाजों के लिए उनका आना किसी प्राकृतिक आपदा से कम नहीं होता था। मध्य युग में मंगोलों और हूणों ने यूरोप और एशिया के विभिन्न शहरों पर आक्रमण किए और सभ्यता के सभी प्रतीकों को नष्ट करके उन्होंने अपनी बर्बरता को रेखांकित किया। हालांकि आदिकालीन इतिहास में इनके बारे में काफी कम एवं छिटपुट जानकारी ही मिलती है। पर मानवशास्त्रियों, पुरात्त्ववेत्ताओं एवं इस समूह पर अध्ययन कर रहे विद्वानों ने यह स्पष्ट करने का प्रयास अवश्य किया कि ये पूर्णत: बर्बर नहीं थे। इन लोगों ने इनकी जीवन-शैली, सामाजिक और राजनीतिक ढांचे और अर्थव्यवस्था की तस्वीर को स्पष्ट करने का प्रयास किया। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया कि इनकी भी आधारभूत इकाई परिवार थी जिसमें पति, पत्नी और बच्चे होते थे। इन परिवारों को मिलाकर एक छोटा समूह बनता था जो एक साथ रहा करते थे। पशुओं पर अलग-अलग परिवारों का मालिकाना हक होता था, पर चरागाहों पर सबका एक जैसा अधिकार नहीं होता था। इसका प्रमाण अवश्य मिला है कि प्रत्येक समुदाय के लिए चरागाह निश्चित हुआ करते थे। मंगोलों का चरागाह काफी सुरक्षित होता था तथा कोई अन्य उसका उपयोग नहीं कर सकता था। पानी को लेकर भी ऐसी ही स्थिति थी। हालांकि पशु को पालतू बनाना तथा उनके उत्पाद का उपयोग करने का अधिकार प्रत्येक परिवार का अधिकार था। इस समूह में थोड़ा-बहुत सामाजिक विभेद भी देखने को मिलता है, हालांकि स्टेप्सों में यह ज्यादा स्पष्ट था।

इनमें सामाजिक बन्धन भी स्पष्ट थे। इनमें शादी-ब्याह के तरीके एवं मान्यताएँ भी प्रचलित थीं। आमतौर से एकल विवाह की प्रथा प्रचलित थी, पर कुछ समुदायों में बहुपति एवं बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। इनके रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों में पशुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। इनका भोजन सामान्यत: मांस, दूध तथा अन्य पदार्थ होते थे पर कुछ समुदायों में जानवरों का रक्त पीने की प्रथा भी प्रचलित थी। स्थानबद्ध कृषकों से उनका लेन-देन भी होता था। ये वस्तु-विनिमय प्रणाली का इस्तेमाल करते थे। इनके घर काफी अस्थायी प्रकृति के हुआ करते थे, जिन्हें आसानी से उखाड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता था। इनका घरेलू सामान

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



भी ऐसा ही होता था, जिसे आसानी से ये अपने साथ ले जा सकें। यह आमतौर पर लकड़ी एवं चमड़े का बना होता था। इनके वस्त्र हल्के, मुलायम कपड़ों के तथा जूते सपाट लंबे हुआ करते थे। ये कुछ अलंकृत पेटियों का भी इस्तेमाल किया करते थे, जिसे ये कमर में बांधा करते थे, जो हैसियत और सम्मान का सूचक था। इस गतिशील और खोजी समाज ने नया सौंदर्यशास्त्र भी विकसित किया जिसे तथाकथित सीईथों साइबेरियन पशु-शैली कहा जाता है। आरम्भिक खानाबदोशी व्यवस्था में इन क्षेत्रों का उपयोग किया गया जो कृषि कार्य एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए अनुकूल नहीं थे। अर्थात् शुष्क, अर्द्धशुष्क एवं टुंड्रा क्षेत्रों में यह एक नई आर्थिक व्यवस्था थी। हालांकि समूह का आर्थिक विकास पशु प्रजातियों के प्रजनन पर निर्भर था। इन्हें सूखा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि या जानवरों में फैले रोग आदि प्राकृतिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता था। ये अपनी कुछ आवश्यकताओं के लिए दूसरे स्थिर समाजों की अर्थव्यवस्था पर भी आश्रित थे। हालांकि पशुपालक खानाबदोश अपने समकालीन स्थायी बसे समाजों की अपेक्षा अपनी देखभाल बेहतर ढंग से करने में सक्षम थे। यही कारण है कि ये अपना अस्तित्व विभिन्न क्षेत्रों में कायम रख सकें।

हालांकि कुछ विचारकों का मानना है कि इनमें आत्मनिर्भरता का अभाव था। यही कारण है कि समय के साथ ये नष्ट हो गईं। इसी सन्दर्भ में **खजानोव** कहते हैं कि "सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाहरी दुनिया की मदद के बिना खानाबदोश जिन्दा ही नहीं रह सकते थे और वे अन्य खानाबदोश समाजों और उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भर थे।" उनका यह भी मानना है कि ये अपने समकालीन समाज के साथ होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया के ही कारण जीवित रहते थे अर्थात् ये बाहरी दुनिया का एक अभिन्न अंग थे तथा उनसे अलग भी थे, परन्तु उनके बीच नष्ट न होने वाला एक अनिवार्य सम्बन्ध भी स्थापित था। इस प्रकार कई विद्वान आत्मनिर्भरता का अभाव इस समाज के पतन का आधारभूत कारण मानते हैं। हालांकि इन दोनों ही मतों से पूरी तरह सहमत होना सम्भव नहीं है, क्योंकि पशुपालक खानाबदोश अर्थव्यवस्था इतिहास में लम्बे समय तक कायम रही।

## अभ्यास प्रश्न

**प्रश्न 1. पशुओं को पालतू बनाए जाने पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–पशुओं को पालतू बनाए जाने का अर्थ है कि उनके प्राकृतिक आवास अर्थात् जंगलों से पकड़कर उन्हें एक स्थान पर रखा जाए तथा उनके भोजन एवं प्रजनन की व्यवस्था की जाए। हालांकि जैसे ही मानव पशुओं को पालतू बनाने की ओर अग्रसर हुआ, उसके सामने कई समस्याएँ आईं; जैसे–किन पशुओं को पालतू बनाया जाए, उनके भोजन का प्रबन्ध, उनकी हिंसक प्रवृत्ति आदि।

**सैन्डोर बोकोनी** भी इसे लम्बी और जटिल प्रक्रिया मानते हैं। हजारों-लाखों वर्षों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिकार करने से जानवरों के शरीर, जैविक रचना, स्वभाव और विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं की जानकारी का लाभ मानव को मिला। हालांकि जानवरों को पालतू बनाए जाने की घटना अचानक नहीं उभरी, बल्कि जानवरों को पालतू बनाने में कई पीढ़ियाँ लग गईं, जबकि पशुओं को पालतू बनाने के लिए उनकी उपयोगिता, उनकी प्रकृति आदि का ध्यान रखा गया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भिक काल में दूध देने वाले जानवरों को पालतू बनाया गया होगा और पालतू बनाने के पीछे एक उद्देश्य यह भी रहा होगा कि शिकार न मिलने पर भोजन के रूप में उनका इस्तेमाल भी किया जा सके। हालांकि काफी बड़े क्षेत्रों में सबसे पहले कुत्ते को पालतू बनाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपरी पुरापाषाण युग में भेड़िए या जंगली कुत्ते को शिकार ढूंढने, पहाड़ पर चढ़ने और शिकार में मदद के लिए पालतू बनाया गया होगा। सूअर भी एक ऐसा ही पशु है जिसे काफी पहले पालतू बनाया गया था। कुत्ते और सूअर के सन्दर्भ में अलग से खाने का इन्तजाम नहीं करना पड़ता होगा, क्योंकि ये शिकारी-संग्रहकर्त्ता का बचा-खुचा भोजन खाकर जिन्दा रह सकते थे।

समय के साथ भेड़, बकरी और मवेशी भी पाले जाने लगे। ये जंगलों और घास के मैदानों में उपलब्ध वनस्पतियों पर जिन्दा रहते थे। ये अधिकांशतः घास और झाड़ियों की पत्तियाँ खाकर जिन्दा रहते थे। इन्हें पालतू बनाना फायदेमन्द होता था, क्योंकि शिकार न मिलने पर इनका मांस खाया जाता था, जिसमें प्रोटीन की मात्रा काफी हुआ करती थी। इसके अलावा उनकी खाल और बाल का भी उपयोग होता था। **सैन्डोर बोकोनी** ने आरम्भिक नवपाषाण युग के पाँच मुख्य पालतू जानवरों का उल्लेख किया है जिसमें कुत्ता, सूअर, भेड़, बकरी और मवेशी शामिल हैं। इनका यह भी मानना है कि सर्वप्रथम इनके पालतू बनाए जाने का प्रमाण पश्चिम एशिया से मिलता है। इनका यह भी मानना है कि पशुपालन शुरुआती दौर में जब लोग पशुओं को पालतू बनाना सीख ही रहे थे, तो इस प्रकार के जानवरों को पालना आसान था। इन पाँच जानवरों में भेड़-बकरी सबसे ज्यादा पाले जाते थे, क्योंकि ये किसी भी प्रकार के मौसम में किसी भी प्रकार की जंगली वनस्पति खाकर मैदानों और पहाड़ों में समान रूप से रह सकते थे। इनके सन्दर्भ में *वेंके* कहते हैं कि "इस बात का प्रमाण मिलता है कि 6000 ई.पू. से दक्षिण-पश्चिम एशिया और यहाँ तक कि यूनान और दक्षिण यूरोप में भेड़ और बकरों की संख्या तेजी से बढ़नी शुरू हो गई थी। इसका कारण यह है कि कृषीय समुदायों में झाड़ियाँ, कंटीले पौधे, कुट्टी और खूंटी भी वे आसानी से खा लेते थे। उनके शरीर, बाल का उपयोग ऊन के रूप में होने लगा था, जो सर्दी से लोगों को बचाती थी।"

मिस्र और पूर्वी सहारा में गधे पाले जाने का प्रमाण मिला है। इनका उपयोग मुख्य रूप से बोझा ढोने तथा गाड़ी खींचने के लिए किया जाता था। ऊँट पाले जाने का पहला प्रमाण पूर्वी सहारा से मिलता है। पहली सहस्त्राब्दी ई.पू. में नई काठी बनने के बाद उत्तर अरब क्षेत्र में ऊँट का काफी उपयोग होने लगा था। ऊँट के द्वारा काठी खींची जाती थी। इस तरह यह काफी वजन ढोने में सक्षम था।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



बाद में चलकर ऊँट का उपयोग सैनिक दस्ते के रूप में किया जाने लगा। अरब क्षेत्र में यह गधे से ज्यादा उपयोगी सिद्ध हुआ। इस क्षेत्र में इसे अधिक पालतू बनाया गया। इसको पालतू बनाये जाने का कारण यह था कि यह अरब की गर्मी सह सकता था तथा बिना पानी के भी यह कई दिनों तक जिन्दा रह सकता था। घोड़ों को पालतू बनाए जाने का प्रमाण यूरेशियाई स्टेप्स क्षेत्र में मिलता है। इसे पालतू बनाया जाना एक प्रमुख घटना थी, क्योंकि उसने पशुपालक खानाबदोश संस्कृति के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया। हालांकि इसकी उपयोगिता के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि इसको पालतू , इसका मांस खाने के उद्देश्य से बनाया गया था, जबकि दूसरे मत वाले विद्वानों का मानना है कि इसे पालतू बनाने का उद्देश्य इसकी सवारी करना तथा गाड़ी में जोतना था तथा बाद में इसे खाया भी जाने लगा। हालांकि इसके पालतू बनाए जाने पर विशाल पशुधन को सम्भालना एवं इसकी देखरेख करना आसान हो गया। बाद के वर्षों में इसका उपयोग युद्ध में भी किया जाने लगा तथा खानाबदोशी साम्राज्य की स्थापना में इसने काफी मदद की। रेन्डियर साइबेरियाई क्षेत्र में पाले जाते थे, जबकि याक तिब्बत के ऊपरी पहाड़ी क्षेत्रों में पाले जाते थे। हालांकि यूरोप में आरम्भ में लोगों को पशुपालन की जानकारी नहीं थी। बाद में यहाँ आए अप्रवासियों ने पशुपालन की जानकारी दी। पशुपालन की जानकारी के बाद यहाँ भी बड़े पैमाने पर भेड़, बकरियाँ और सूअर आदि पाले जाने लगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पशुओं को पालतू बनाए जाने की प्रक्रिया एक अकस्मात् घटना नहीं रही, बल्कि यह एक लंबी प्रक्रिया थी। जैसे-जैसे लोगों को विभिन्न पशुओं की उपयोगिता एवं प्रकृति का ज्ञान होता गया, वैसे-वैसे वे उन्हें पालतू बनाते गए। पालतू बनाने के क्रम में पशुओं की हिंसक प्रवृत्ति का भी ध्यान रखा गया ताकि उनसे नुकसान न हो। समय एवं परिवेश के अनुकूल वैसे पशुओं को पालतू बनाया गया जो मौजूदा जलवायु एवं पर्यावरण के अनुरूप अपने आपको ढाल पाने में सक्षम थे।

**प्रश्न 2. खानाबदोश पशुपालक व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? पशुपालक व्यवस्था से यह किस प्रकार भिन्न है?**

**उत्तर**–सामान्यत: आरम्भिक मानव ने अपना जीवन शिकारी-संग्रहकर्त्ता के रूप में प्रारम्भ किया था। प्रारम्भिक काल में वे शिकार और भोज्य पदार्थों का संग्रह करके अपना जीवनयापन किया करते थे। समय के साथ पशुओं एवं वनस्पतियों के सन्दर्भ में उनकी जानकारी में वृद्धि हुई तथा उन्होंने पशुओं को पालतू बनाना प्रारम्भ किया, पर पशुओं को पालतू बनाने के बावजूद उनका जीवन स्थायी नहीं हुआ था। वे अपने पशुओं को लेकर घुमन्तू जीवन व्यतीत किया करते थे। वे अपने पशुओं के लिए चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे। हालांकि शिकारी-संग्रहकर्त्ता का जीवन भी स्थायी नहीं था, पर पशुपालन के बाद आदिमानवों की जीवन-शैली में परिवर्तन अवश्य हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि खानाबदोश पशुपालक मौसम के अनुसार चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे, तथा उनका धन उनके पशु ही थे।

**दानी** एवं **ज्यां पिएर** खानाबदोश पशुपालकों के सन्दर्भ में कहते हैं कि "खानाबदोश समूहों ने न केवल अपने बीच बल्कि मनुष्यों और पशुओं के बीच भी सम्बन्ध स्थापित किया। उन्होंने प्राकृतिक माहौल में अपने आप को पूरी तरह ढाल लिया। मनुष्य और पशु सम्बन्धों ने एक बेहतर प्रबन्धन और पशु शक्ति की सम्भावनाओं की जानकारी प्राप्त की और इस शक्ति का इस्तेमाल किया और इस प्रकार पुशपालकों ने प्रगतिशील सभ्यता की ओर एक कदम आगे बढ़ाया।" आमतौर पर पशुपालक खानाबदोशों की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं–प्रथमत:, पशुपालन उनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार था, जिसके आधार पर उनका जीवनयापन तो होता ही था, उनकी जीवन-शैली और सामाजिक बनावट भी उससे प्रभावित होती थी। जबकि दूसरी यह है कि खेतिहरों के स्थानबद्ध जीवन के विपरीत वे हमेशा एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे।

**खजानोव** ने पशुपालक खानाबदोशी की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है–(1) पशुपालन उनका प्रमुख आर्थिक कार्यकलाप था, (2) वे सालभर चरागाह की खोज में अपने पशुओं के साथ इधर-उधर घूमते रहते थे, (3) वे समय-समय पर पशुपालन अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुसार एक विशिष्ट चरागाह क्षेत्र के अन्दर ही विभिन्न क्षेत्रों में अथवा इसके बीच ही घूमते रहते थे, (4) लगभग सभी लोग या अधिकांश लोग पशु चराने की गतिविधियों में शामिल थे और वे एक साथ जानवरों को चराने के लिए निकलते थे, (5) उत्पादन जीवनयापन के लिए और अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता था। हालांकि इन आधारभूत विशेषताओं के अलावा कुछ और अन्य विशेषताएँ भी खानाबदोश पशुपालकों की हैं, जो उनको विशेष पहचान देती हैं। जैसे उत्पादन का खानाबदोश तरीका, जीवन-शैली, समाज का ढांचा और अर्थव्यवस्था सभी क्षेत्रों और कालों में एक जैसा नहीं था। इन विशेषताओं का निर्माण–क्षेत्र का भूगोल, पर्यावरण, उपलब्ध पशु, उपलब्ध तकनीकी, पड़ोस के स्थायी और बसे हुए समाज और खानाबदोश समूह को उपलब्ध संसाधन किया करते थे।

हालांकि खानाबदोश समूहों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मानना है कि उनका मूल पुरापाषाण युग में देखा जा सकता है, क्योंकि उस समय लोगों का जीवन शिकारी-संग्रहकर्त्ता का था और उसी क्रम में वे बड़े जानवरों का शिकार करते थे तथा उनके बच्चों को अपने साथ रखकर पालतू बना लिया करते थे। धीरे-धीरे उनके प्रजनन की तकनीक का भी उन्हें ज्ञान हुआ और उनके पालतू जानवरों की संख्या बढ़ने लगी। जबकि कुछ का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के कारण स्थायी निवास सम्भव नहीं हो सका। इस प्रकार लोगों ने पशुपालक खानाबदोश की जीवन-शैली अपना ली।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



पशुपालन व्यवस्था और खानाबदोश पशुपालक व्यवस्था में अन्तर है। खानाबदोश पशुपालन व्यवस्था की यह विशेषता है कि वे पशुओं के साथ हमेशा चरागाह की खोज में घूमा करते थे, जबकि पशुपालन व्यवस्था में यह अनिवार्य नहीं था कि पशुपालक अपने पशुओं के साथ घुमन्तू जीवन व्यतीत करे। कुछ ऐसे पशुपालकों के भी प्रमाण मिले हैं, जिनके जीवनयापन का आधार तो पशुपालन था, परन्तु वे स्थानबद्ध जीवन जीते थे। पशुपालन व्यवस्था में भी लोग पशुओं के लिए चारागाह की खोज में बस जाते थे परन्तु उनका विचरण एक सीमित क्षेत्र तक ही होता था, साथ ही उनका यह विचरण मौसम के अनुरूप होता था। एक मौसम में वे चरागाह के लिए दूसरे स्थान पर चले जाते थे, परन्तु पुन: दूसरे मौसम में अपने पूर्व स्थान पर आ जाते थे। साथ ही पशुपालन व्यवस्था के साथ-साथ लोग कृषि भी किया करते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि खानाबदोश पशुपालक मूलत: पशुओं के साथ घूमकर चरागाह की खोज में निरन्तर लगे रहते थे। उनका कोई स्थायी निवास नहीं होता था, जबकि पशुपालन व्यवस्था के अन्तर्गत लोग स्थानबद्ध जीवन भी व्यतीत करते थे तथा इनका विचरण मूलत: मौसम के अनुसार होता था। हालांकि दोनों व्यवस्थाओं का आधार पशु ही था। इनकी पूंजी इनके पशु ही होते थे। खानाबदोश पशुपालक व्यवस्था में अधिकांश लोग पशुपालन में ही लगे होते थे जबकि पशुपालन व्यवस्था में लोग कृषि कार्य में भी लगे होते थे। अत: स्पष्ट है कि दोनों व्यवस्थाओं में समानता के साथ-साथ कुछ मूलभूत अन्तर भी देखने को मिलता है।

**प्रश्न 3. पशुपालक खानाबदोश समूहों में घोड़े का क्या महत्त्व था?**

**उत्तर**–जहाँ तक आदिमानवों द्वारा पशुपालन संस्कृति को अपनाने की बात है, तो इस सन्दर्भ में अलग-अलग विद्वानों का अलग-अलग मत हैं। परन्तु प्रथम पशु जिसे पालतू बनाए जाने का प्रमाण मिलता है, वह कुत्ता है। हालांकि इसके बाद सूअर, मवेशी, गधा, ऊँट आदि पशुओं को पालतू बनाया गया। पर आज हम जिस पशुपालक खानाबदोश को एक योद्धा के रूप में जानते हैं, उनकी यह पहचान उनके द्वारा घोड़ों को पालतू बनाने के बाद ही मिली। जबकि अरब क्षेत्र में ऊँट पाले जाने के बाद भी इस क्षेत्र में लोगों के जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ, पर घोड़ों को पालतू बनाना एक प्रमुख घटना रही। घोड़ों को पालतू बनाने के बाद पशुपालक खानाबदोश संस्कृति के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य पूरी तरह बदल गए।

वैसे घोड़ों को पालतू बनाए जाने का पहला प्रमाण यूरेशियाई स्टेप्स से प्राप्त होता है। घोड़ों को पालतू बनाने के बाद लोगों को इसकी सार्थक उपयोगिता का ज्ञान हुआ। घोड़ों की शक्ति तथा उस पर तेज रफ्तार के साथ सवारी करने के ज्ञान ने खानाबदोश पशुपालकों की जीवन की धारा ही बदल दी। जहाँ पहले खानाबदोश पशुपालकों को अपने पशुओं के साथ चरागाह की खोज में मीलों पैदल चलना पड़ता था, वहीं जब इन लोगों ने घोड़ों को पालतू बनाया तथा उनकी सवारी का ज्ञान हो गया तो उनको इस कार्य में काफी मदद मिली। घोड़ों को पालतू बनाने के बाद उन्हें अपने विशाल पशुधन को नियन्त्रित करने तथा उनकी देखभाल करने में भी मदद मिली। यहाँ तक कि स्थायी बसे समाज ने भी घुड़सवारी का ज्ञान खानाबदोश पशुपालकों से ही सीखा था। घोड़ों को पालतू बनाने के बाद ही इतिहास में इनकी पहचान बर्बर प्रजाति के रूप में हुई। इसका उपयोग करके वे बहुत तेजी से आक्रमण करने में सक्षम हो गए तथा स्थायी बसे समाजों को लूटना तथा उन पर अधिकार करना आसान हो गया। घोड़ों को पालतू बनाने से पहले उनका जीवन काफी सीधा-सादा एवं सरल तरीके से चलता था। आमतौर से ये गरीबी का ही जीवनयापन करते थे। परन्तु घोड़ों को पालतू बनाने के बाद उन्होंने स्थायी बसे लोगों पर अपना प्रभुत्व कायम करना शुरू कर दिया तथा धीरे-धीरे इस प्रकार इनके द्वारा बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना की गई।

घोड़ों ने उनकी जीवन शैली को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया। घोड़ों का ये न केवल सवारी करने में उपयोग करते थे, बल्कि इसके माध्यम से गाड़ी खींचना भी आसान हो गया। इस प्रकार, एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा अपने सामान के साथ करना आसान हो गया। घोड़ों की तेज रफ्तार ने उन्हें साम्राज्य को कायम रखने में भी मदद की। स्थायी बसे समाज उनके डर से अपने को उनके सामने समर्पित कर दिया करते थे। जहाँ पहले यह बहुत साधारण जीवन व्यतीत करते थे, वहीं साम्राज्य की स्थापना के साथ उनका जीवन स्तर भी परिवर्तित होता गया। बहुत-से ऐसे खानाबदोश थे, जिनके पास बहुत सम्पत्ति संगृहीत होती गई और उन्होंने एक स्थान पर स्थायी रूप से बसना प्रारम्भ कर दिया तथा अपने द्वारा स्थापित साम्राज्य पर हुकूमत करना प्रारम्भ कर दिया।

हालांकि जहाँ तक घोड़ों को पालतू बनाने के उद्देश्य की बात है, तो इस सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद देखने को मिलता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि घोड़ों को पालतू उनके मांस को खाने के उद्देश्य से बनाया गया था। वहीं दूसरे मत वाले विद्वानों का मानना है कि घोड़ों को पालतू उनकी सवारी करने तथा गाड़ी खींचने के उद्देश्य से इसका उपयोग किया था। हालांकि बाद में इसे खाया भी जाने लगा। इसके पालने का उद्देश्य कुछ भी रहा होगा, पर जब लोगों को इसकी शक्ति एवं तेज रफ्तार का ज्ञान हुआ, तो मुख्यत: इसका उपयोग सवारी के रूप में किया जाने लगा। इसकी सवारी के बाद ही लोगों ने इसके माध्यम से आक्रमण करना प्रारम्भ किया होगा तथा अपने आसपास बसे स्थिर समाजों को लूटना प्रारम्भ किया होगा। जहाँ पहले उनके पास केवल पशुधन ही हुआ करता था, वहीं स्थायी बसे समाजों को लूटने के बाद उनके पास अनाज एवं अन्य वस्तु भी प्राप्त होनी प्रारम्भ हो गयीं। इस लोभ के कारण खानाबदोशों के द्वारा आगे चलकर विशाल साम्राज्य की स्थापना की गई होगी। साम्राज्य या राज्य जैसी केन्द्रीयकृत व्यवस्था का आरम्भ भी खानाबदोश पशुपालकों

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

द्वारा ही हुआ और उनका यह कार्य घोड़ों को पालतू बनाने के बाद ही सम्भव हो सका।

इस प्रकार स्पष्ट है कि खानाबदोश पशुपालकों द्वारा घोड़ों को पालतू बनाने के बाद उनकी सामाजिक संरचना एवं जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन आया। ये एक सीधे-सादे समूह से अचानक योद्धा समूह बन गए। स्थायी बसे समाजों पर उनका नियन्त्रण स्थापित होता गया। स्थायी बसे समाज मेहनत करके अनाज उपजाते थे और ये खानाबदोश एक पल में ही उन्हें लूटकर कंगाल कर देते थे। यह सब घोड़े के कारण ही सम्भव हो सका। हालांकि खानाबदोश समूह की प्रकृति साहसी थी, क्योंकि ये निरन्तर विभिन्न प्रकार की जलवायु में घूमा करते थे, जिसके कारण पर्यावरण के साथ उनकी अनुकूलन की क्षमता भी स्थायी बसे समाजों की अपेक्षा अधिक थी।

**प्रश्न 4. पशुपालक खानाबदोशों की अर्थव्यवस्था का संक्षेप में विश्लेषण कीजिए।**

**उत्तर**—हालांकि इतिहास के पन्नों पर पशुपालक खानाबदोशों को बर्बर की संज्ञा दी गई है, पर ऐसा नहीं है कि ये प्रारम्भ से ही ऐसे थे। इनके जीवन की मूलभूत इकाई इनके पशु रहे हैं। प्रारम्भिक काल में इनके पशु ही इनके जीवनयापन के लिए उत्पादन की इकाई थे। इनकी आवश्यकता की पूर्ति उन्हीं के माध्यम से हुआ करती थी। हाँ, बाद के वर्षों में जरूर इनकी जीवन-शैली में परिवर्तन आया तथा घोड़ों को पालतू बनाने के बाद ये लूट जैसे कार्य करके भी अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने लगे।

पर जहाँ तक पशुपालक खानाबदोशों के स्थायित्व और क्षमता की बात है, तो आरम्भिक खानाबदोशी व्यवस्था में उन पारिस्थितिकी क्षेत्रों का उपयोग किया गया था, जो कृषि कार्य और अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए उपयोगी नहीं थे। प्रारम्भिक काल में ये ऐसे प्रदेशों में रहा करते थे, जिनकी जलवायु काफी प्रतिकूल रहा करती थी और वे उस जलवायु में भी अपने आपको इसके अनुरूप ढालते थे। ये आमतौर से शुष्क, अर्द्धशुष्क और टुण्ड्रा क्षेत्रों में रहा करते थे। इस तरह के जलवायविक क्षेत्र में खाद्य उत्पादन की यह एक नई आर्थिक व्यवस्था थी। हालांकि समय के साथ ये उन क्षेत्रों में अनुकूलित होते गए जिस कारण ये जीवित रह सकें। इसके विपरीत जटिल अर्थव्यवस्थाओं में इनके विकास की सम्भावना काफी सीमित थी, क्योंकि ये लोग एक ही प्रकार की पशु-प्रजातियों के प्रजनन पर निर्भर थे। हालांकि बाद के वर्षों में इनके द्वारा भी अलग-अलग प्रजाति के पशु रखे गए। इस परिवर्तन के कारण इनकी जीवन-शैली में परिवर्तन भी देखने को मिलता है। स्थिर बसे समाजों के साथ विनिमय ने भी इनकी जीवन पद्धति को प्रभावित किया। उनके जीवनयापन का ढंग इस प्रकार का था कि इसमें उत्पादकता की वृद्धि की भी एक सीमा थी। इसके साथ ही सूखा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि या जानवरों में फैलने वाले रोग जैसी प्राकृतिक आपदाओं का भी उन्हें सामना करना पड़ता था। इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के लिए ये दूसरी अर्थव्यवस्था पर आश्रित थे। ये स्थिर बसे समाजों के साथ अपने सामान का आदान-प्रदान तथा खरीद-बिक्री के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। हालांकि कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि पशुपालक खानाबदोश अर्थव्यवस्था अपने समकालीन स्थायी बसे समाजों की अपेक्षा अपनी देखभाल बेहतर ढंग से करने में सक्षम थी। इनका यह भी मानना है कि यही कारण है कि विभिन्न क्षेत्रों में ये अपना अस्तित्व कायम रख सकें। वहीं दूसरी ओर कुछ विचारकों का यह मानना है कि पशुपालक खानाबदोश अर्थव्यवस्था स्थिर थी और इसमें आत्मनिर्भरता का अभाव था। अतः नष्ट होना इसकी नियति थी। **खजानोव** कहते हैं कि "सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाहरी दुनिया की मदद के बिना खानाबदोश जिन्दा ही नहीं रह सकते थे और वे गैर-खानाबदोश समाजों और उनकी अर्थव्यवस्था पर निर्भर थे।" वस्तुतः इस बाहरी दुनिया के अभाव में खानाबदोश अस्तित्व में रह ही नहीं सकते। इनका यह भी मानना है कि ये अपनी समकालीन समाज के साथ होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण ही जीवित थे। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में इस प्रकार की क्रियाएँ होती हैं, जिसमें यह बात निहित होती है कि खानाबदोश खानाबदोश ही बने रहें। इस प्रकार, खजानोव का मानना है कि खानाबदोशी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह थी कि वह बाहरी दुनिया का एक अभिन्न अंग थी, जो उनसे अलग भी थी, परन्तु उनके बीच नष्ट न होने वाला एक अनिवार्य सम्बन्ध भी स्थापित था अर्थात् उनका अपने से अलग आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ आदान-प्रदान होता रहता था।

हालांकि बाद के वर्षों में उनके व्यवहार में लूटमार जैसी क्रियाएँ भी शामिल हो गईं, जो उनके जीवनयापन का एक प्रमुख साधन बनी। इस आक्रमण और लूटमार की प्रवृत्ति के कारण ही परवर्ती काल में खानाबदोशों ने कई विशाल साम्राज्यों की भी स्थापना की। हालांकि यह भी माना जाता है कि बाद के वर्षों में साम्राज्य जैसी व्यवस्था बनी। इसके जनक पशुपालक खानाबदोश ही थे। समय के साथ उनकी आबादी में वृद्धि होती गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि इनके उपलब्ध संसाधन बढ़ी हुई आबादी का भरण-पोषण करने में सक्षम नहीं थे। इन परिस्थितियों में इनके द्वारा स्थिर बसे समाजों पर आक्रमण प्रारम्भ हो गया तथा ये इनके खाद्यान्न आदि लूटकर अपना भरण-पोषण करने लगे। पर जहाँ तक उनकी मूलभूत अर्थव्यवस्था की बात है, तो प्रारम्भिक काल में वह पूर्णतः पशु-आधारित ही थी तथा इनके पशु ही इनकी धन-सम्पदा थे और इसी का विनिमय करके ये अन्य आवश्यकताओं को पूरा किया करते थे।

इस प्रकार, हम पाते हैं कि खानाबदोश पशुपालक अर्थव्यवस्था आरम्भिक काल में पूर्णतः पर्यावरण एवं पशु पर आधारित थी। यह व्यवस्था उन्हीं क्षेत्रों में फली-फूली, जहाँ और दूसरी आर्थिक गतिविधियों की सम्भावना कम या नगण्य थी।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. पशुपालक खानाबदोशों के क्षेत्रीय विचरण की रूपरेखा प्रस्तुत करें।**

**उत्तर**–सामान्यत: पशुपालक खानाबदोशों का आवागमन पूर्णत: उनके पशुओं के लिए उपलब्ध चरागाह से सम्बन्धित रहा है। ये अपने पशुओं को लेकर निरन्तर चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण किया करते थे। हालांकि कुछ ऐसे भी पशुपालक थे, जो अपने पशुओं को लेकर एक निश्चित जगह से दूसरी निश्चित जगह पर जाते थे। हालांकि ये पूर्णत: खानाबदोशी नहीं थे, बल्कि मौसम के बदलाव के कारण गर्मियों और सर्दियों में चरागाह की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह पर जाते थे।

हालांकि खानाबदोशों का आवागमन तापमान में हुए बदलाव, वर्षा, किसानों द्वारा फसल की बुआई और कटाई आदि से प्रभावित होता था। वे मौसम के अनुसार अधिक आकर्षक गंतव्य स्थल को ही जाना पसन्द करते थे। ज्यादातर वे उन स्थानों पर जाते थे, जहाँ वर्षा होती थी, ताकि उनके जानवरों को ज्यादा-से-ज्यादा चारा मिल सके। कई बार ऐसा भी होता था कि उनके जानवर किसानों की फसल को नुकसान पहुँचाने लगते थे, इसलिए वे उन इलाकों से दूर चले जाते थे और फसल कटने के बाद वापस आते थे, ताकि जानवर उनके खाली खेतों में चर सकें और अपने मल द्वारा उन खेतों को नई उर्वरता भी प्रदान कर सकें। हालांकि जो खानाबदोश मौसम के अनुसार एक निश्चित स्थान में विचरण किया करते थे, उन्हें विद्वान पूर्णत: खानाबदोश नहीं मानते। जैसे उप-हिमालय क्षेत्र के गुज्जर और बकरवाल, कश्मीर घाटी के गद्दी आदि इसी तरह के पशुपालक थे, जो किसी खास मौसम में एक निश्चित स्थान पर पशुओं के चारे हेतु जाते थे तथा पुन: मौसम बदलते ही वापस लौट आया करते थे।

**खजानोव** ने विभिन्न खानाबदोश समूहों के आवागमन क्षेत्र के बारे में अनुमान के आधार पर स्पष्ट किया है कि "चुकोतकास में रेन्डियर पशुपालक 50-100 कि.मी., एलव्यूने और एन्यूई में चुकछी 400-500 कि.मी. और नेन्टसी के कुछ समूह 1200 किलोमीटर के दायरे में घूमा करते थे। नवजोस 2500 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में घूमा करते थे, अंदरूनी मंगोलिया के मंगोल स्टेप में 150 किलोमीटर से कम क्षेत्र में घूमते थे, जबकि बाहरी मंगोलिया के गोबी क्षेत्री में 600 किलोमीटर और छोटे और मंझोले झुंड के कजाक 1000-1500 किलोमीटर के बीच घूमा करते थे। किरगिस समुदाय में ऊपर से नीचे कुछ दर्जन और 150-200 किलोमीटर, तुर्कमेन 20-30 किलोमीटर से लेकर 150-200 किलोमीटर के दायरे में घूमा करते थे। निकट पूर्व अफ्रीका के पास रावला खानाबदोश 1500 किलोमीटर और तुरेग 300-1000 किलोमीटर के दायरे में घूमते थे।" इस प्रकार खजानोव ने अनुमान के आधार पर यह स्पष्ट किया कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले खानाबदोशों के विचरण का दायरा अलग हुआ करता था। उनका यह दायरा सामान्यत: मौसम एवं चरागाह की उपलब्धता के अनुसार परिवर्तित होता था। कुछ ऐसे भी खानाबदोशों के प्रमाण मिले हैं, जो हजारों वर्षों तक एक ही मार्ग अपनाया करते थे। यूरेशियाई स्टेप के बारे में स्ट्रैबो का कहना है कि वे अपने पशुओं को चराते हुए बढ़ते चले जाते थे और जहाँ-जहाँ घास मिलती थी, उस ओर का रुख करते चलते थे। जाड़े के दिनों में वे लेक मालोटिस के दलदली इलाकों में रहते थे और गर्मी के दिनों में मैदानी इलाकों में चले जाते थे। **प्लानो** का विचार भी कुछ इसी प्रकार है, वे कहते हैं कि "ये सब लोग जाड़े के दिनों में समुद्र की ओर चले जाते थे और गर्मी के दिनों में फिर उत्तर की ओर नदियों के किनारे होते हुए पहाड़ों पर चले जाते थे। कजाक भी चारे और पानी की खोज में इधर-उधर भटकते रहते थे। पूर्वी यूरोप में कलामुक भी लगभग दो हजार वर्षों तक एक ही रास्ते को अपनाते रहें।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि खानाबदोश पशुपालकों के आवागमन का क्षेत्र मुख्यत: इनके चरागाह से जुड़ा होता था। हालांकि इनके विचरण सीमा के सन्दर्भ में व्यापक विविधता भी देखने को मिलती है। जहाँ कुछ खानाबदोशों के विचरण का दायरा काफी सीमित था, तो वहीं कुछ का दायरा काफी व्यापक भी था। इनके विचरण में क्षेत्र की जलवायु का काफी प्रभाव पड़ता था। जलवायु के अनुसार ही ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण किया करते थे। वैसे जैसे-जैसे उनके पशुओं की संख्या बढ़ी, उसी के अनुरूप उनके आवागमन का क्षेत्र भी परिवर्तित हुआ। अधिक पशुओं की संख्या होने पर चरागाह की कमी की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, जिसका परिणाम होता था कि ये ऐसे स्थानों की ओर चलना प्रारम्भ करते थे, जहाँ उनके पशुओं के लिए पर्याप्त चारा उपलब्ध हो सके। वैसे कुछ ऐसे भी खानाबदोश पशुपालक थे, जिनके आवागमन का स्थान एवं मार्ग निश्चित हुआ करता था।

**प्रश्न 2. पशुपालक खानाबदोश के सामाजिक परिदृश्य की रूपरेखा प्रस्तुत करें।**

**उत्तर**–आमतौर पर आरम्भिक काल में मानव समूह द्वारा जिस समाज का निर्माण हुआ, वह एक सरल समाज था। इसमें जटिलताएँ बहुत कम थीं। आदिकाल में समाज का स्वरूप तो शिकारी-संग्रहकर्त्ता जीवन-शैली अपनाने के साथ-ही बनना प्रारम्भ हो गया था, पर जब मानव ने स्थायी रूप से बसना प्रारम्भ किया तो उसकी संख्या पूरी तरह स्पष्ट होने लगी। शिकारी-संग्रहकर्त्ता के बाद ही मानव कृषक या पशुपालक बना अत: स्वाभाविक रूप से सामाजिक परिदृश्य भी परिवर्तित हुआ। खानाबदोश पशुपालकों का समाज भी एक सरल समाज था, जिसमें बहुत कम जटिलताएँ थीं, पर ऐसा नहीं है कि उनका यह समाज हमेशा सरल ही रहा। समय के साथ खानाबदोश पशुपालक पूरी तरह अपने पशुधन पर आश्रित जीवन व्यतीत करते थे। वहीं बाद के वर्षों में इनकी शैली बर्बर होती गई तथा ये स्थायी बसे समाजों के लिए आक्रमणकारी होते गए। इस परिवर्तन का प्रभाव इनके समाज पर भी दृष्टिगत होता है।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सामान्यतः स्थिर बसे समाजों की ही तरह खानाबदोश पशुपालक समुदायों की भी आधारभूत इकाई परिवार थी जिसमें पति, पत्नी और बच्चे होते थे। इन परिवारों को मिलाकर एक छोटे समूह का निर्माण होता था, जो सामान्यतः एक साथ रहते थे और उन्हें वंश या कुल का माना जाता था। इस प्रकार के कई समूह एक ही पूर्वज के हुआ करते थे। सभी मामलों में पशुओं पर अलग-अलग मालिकाना हक होता था परन्तु चरागाहों पर सबका अधिकार एक जैसा नहीं होता था। कहीं-कहीं समुदाय के आम चरागाह में प्रत्येक परिवार का अलग-अलग क्षेत्र होता था। कुछ ऐसे भी समूह थे, जिनमें सभी परिवार मिलकर किसी खास चरागाह का उपयोग किया करते थे। परन्तु प्रत्येक परिवार के लिए निश्चित चरागाह तय होता था। जैसे मंगोल अभिजात वर्ग अपने लिए चरागाह सुरक्षित रखते थे तथा कोई दूसरा परिवार इसका इस्तेमाल नहीं कर सकता था। इससे स्पष्ट होता है कि इनके समाज में भी असमानता थी। पर यह असमानता व्यापक पैमाने पर देखने को नहीं मिलती है। पानी के उपयोग को लेकर भी कुछ असमानता थी। जैसे कुछ जलस्रोत किसी खास समूह के लिए सुरक्षित होते थे, जिनका इस्तेमाल दूसरे नहीं कर सकते थे। हालांकि पशुओं को पालना और उन्हें पालतू बनाना प्रत्येक परिवार का अधिकार था। साथ ही अपने पशुओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं के उपयोग का अधिकार भी प्रत्येक परिवार को था।

**दहल** और **हजोर्ट** ने खानाबदोशों के परिवारों का अध्ययन करके यह अनुमान प्रस्तुत किया कि एक परिवार को 50-64 बड़े पशु या 28 ऊँट या 100 से ज्यादा छोटे जानवर रखने की आवश्यकता होती थी। आमतौर एक परिवार के पास इसी के आसपास पशु रहा करते थे, पर कुछ ऐसे भी अभिजात परिवार थे, जिनके पास काफी ज्यादा संख्या में पशु थे। खानाबदोश पशुपालक समाज में अलग-अलग समूह में शादी-ब्याह के लिए अलग-अलग तौर-तरीके और मान्यताएँ प्रचलित थीं। वैसे तो सामान्यतः एक विवाह की प्रथा प्रचलित थी, परन्तु कुछ समुदायों में बहुपति और बहुपत्नी प्रथा भी पाई जाती थी। इन खानाबदोशों के रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों में पशुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। पशुओं के साथ अपने को जोड़ने के लिए वे इन अवसरों पर सींग, पूँछ और चमड़ा पहना करते थे। धार्मिक अनुष्ठानों में जानवरों की बलि भी चढ़ाई जाती थी। सब्जी के अलावा मांस, दूध और दूध से बने अन्य पदार्थ उनके भोजन होते थे। हालांकि कुछ समुदायों में जानवरों का रक्त पीने की प्रथा भी प्रचलित थी। स्थानबद्ध कृषक समुदायों से उनका विनिमय भी हुआ करता था। जानवरों एवं पशु उत्पादों के बदले वे स्थानबद्ध कृषकों से अनाज एवं सब्जियाँ लिया करते थे। इस प्रकार उनकी भौतिक संस्कृति काफी सरल और सामान्य थी, जो उनकी खानाबदोश जीवन-शैली के अनुरूप थी। ये मुख्यतः चमड़े एवं लकड़ी के सामानों का उपयोग किया करते थे। विनिमय के माध्यम से ये स्थायी वर्ग समाजों में बर्तन एवं अन्य उत्पाद भी प्राप्त करते थे। उनका आवास आमतौर पर अस्थायी होता था। ये सामान्यतः ऐसा घर बनाकर रहा करते थे, जिसे आसानी से उखाड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सके। इनके बर्तन एवं अन्य घरेलू सामान भी ऐसे ही हल्के हुआ करते थे, जिन्हें असानी से ढोया जा सके। ये सामान्यतः मुलायम एवं हल्के कपड़े पहना करते थे, जबकि कुछ अलंकृत पेटियों का भी इस्तेमाल करते थे जिसे ये कमर में बांधा करते थे, जो इनकी हैसियत एवं सामाजिक सम्मान का द्योतक होता था।

इस प्रकार, हम पाते हैं कि खानाबदोश पशुपालकों का समाज एक सरल समाज था, जिनकी जीवन-शैली में व्यापक विविधता देखने को मिलती है। हालांकि बाद में इस गतिशील और खोजी समाज के द्वारा नया सौन्दर्यशास्त्र भी विकसित किया गया, जिसे सीईथों-साइबेरियन पशु शैली कहा जाता है। यह मुख्यतः दक्षिणी साइबेरिया एवं मंगोलिया के पशुपालक खानाबदोशों द्वारा विकसित की गई थी। पर जहाँ तक इनके समाज की संरचना की बात है, तो इनमें भी परिवार एवं विवाह जैसी संस्थाएँ मौजूद थीं। ये अपनी आवश्यकताओं के लिए पूर्णतः आत्मनिर्भर तो नहीं थे, परन्तु विनिमय प्रणाली के माध्यम से ये अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अवश्य कर लिया करते थे। अतः स्पष्ट है कि खानाबदोश समाज में भी ये संस्थाएँ मौजूद थीं, जो स्थिर समाज में देखने को मिलती हैं।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# कृषि की ओर संक्रमण

## 3

### परिचय

आदिमानवों द्वारा शिकारी-संग्रहकर्त्ता से पशुपालक खानाबदोश एवं उसके उपरान्त कृषक बनने की प्रक्रिया काफी जटिल रही। यह एकाएक घटित होने वाली घटना नहीं थी। इस प्रक्रिया को सम्पन्न होने में कई युगों का समय लगा। जैसे-जैसे मानव ने विकास की ओर कदम बढ़ाना शुरू किया, वैसे-वैसे उसकी सोच एवं जीवन-शैली भी परिवर्तित होती गई। हालांकि कृषि के लिए यह आवश्यक था कि परिस्थितियाँ एवं जलवायविक दशाएँ उसके अनुकूल हों। लगभग 12 हजार साल पहले अभिनूतन काल के अन्त के साथ मौसम एवं जलवायविक दशाओं में व्यापक परिवर्तन हुआ और इसी के साथ कृषि के लिए अनुकूल जलवायु सामने आई। इस परिवर्तन के साथ पशुओं और पेड़-पौधों की प्रकृति में भी अन्तर आया। समकालीन मानव पशुओं एवं पेड़-पौधों की प्रकृति को जानने लगे, जिससे उन्हें पशुपालक अर्थव्यवस्था को अपनाने में मदद मिली, जो समय के साथ खेती और पशुधन अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार बनते चले गए। पशुपालक अर्थव्यवस्था के दौरान मानव को काफी हद तक पशुओं एवं पौधों के सन्दर्भ में जानकारी उपलब्ध हो चुकी थी। हालांकि खेती के लिए बेहतर एवं प्रभावी औजारों की जानकारी भी होना आवश्यक था। पुरात्त्ववेत्ताओं का मानना है कि लगभग 8 हजार बी0पी0 तक दुनिया के काफी बड़े हिस्से में शिकार एवं संग्रहण त्याग कर खेती और पशुपालन का आरम्भ हो चुका था।

कृषि की ओर संक्रमण सम्बन्धी सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते समय शोधकर्त्ताओं के मन में कई सवाल उठते हैं; जैसे–खेती की शुरुआत क्या किसी खास स्थान और समय में हुई और फिर यह पूरी दुनिया में फैली? क्या यह किसी एक व्यक्ति की खोज थी? आदि। हालांकि अब कृषि को किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज नहीं माना जाता। साथ ही ऐसा भी प्रतीत होता है कि बीज बोने और फसल काटने की कला किसी एक व्यक्ति द्वारा विकसित हुई होगी या संयोगवश ऐसा हुआ होगा। समग्र रूप से ऐसा माना जाता है कि संक्रमण दुनिया के कई हिस्सों में हुआ और एकबारगी भी नहीं हुआ, बल्कि अलग-अलग समयों में हुआ। हालांकि कृषि के विकास में जलवायु का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जलवायु से सम्बन्धित प्रथम सिद्धान्त **गार्डन चाइल्ड** द्वारा 'ओएसी थ्योरी' के नाम से 1908 में दी गई। उन्होंने भी जलवायु परिवर्तन की बात स्वीकार की तथा कहा कि सर्वप्रथम उपजाऊ अर्धचन्द्राकार क्षेत्र में खेती का आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र में कृषि के आरम्भ होने का मुख्य कारण वर्षा था। वर्षा के ही कारण छोटे-छोटे मरुस्थल हरे-भरे क्षेत्र में तब्दील हो गए तथा इन क्षेत्रों में लोगों का बसाव शुरू हुआ। इस क्षेत्र के चारों ओर मरुस्थल था, जहाँ वर्षा एवं पर्याप्त भोजन का अभाव था। लोग भोजन की तलाश में इन हरे-भरे क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करना आरम्भ कर दिया। मरुस्थल में इन्हीं हरे-भरे क्षेत्रों को मरुद्वीप या नखलिस्तान कहा गया। गार्डन का यह सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि कृषि की शुरुआत जैसी सामाजिक-आर्थिक गतिविधि विश्वव्यापी स्तर पर प्रारम्भ नहीं हुई। इनका मानना था कि कृषि की शुरुआत कुछ खास और सीमित क्षेत्रों में हुई और वह खास या सीमित क्षेत्र मरुद्वीप थे।

हालांकि जलवायु परिवर्तन की बात भूगोलवेत्ताओं ने भी स्वीकार की है, पर अभिनूतन युग के तुरन्त बाद दक्षिण-पश्चिम एशिया में व्यापक पैमाने पर निर्जलीकरण का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल पाया है। यही कारण है कि गार्डन के मरुद्वीप सिद्धान्त को सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार नहीं किया है। **रॉबर्ट ब्रेडवुड** ने यह तर्क दिया कि खेती का विकास मुख्यत: उन स्थानों पर हुआ, जहाँ पशुओं एवं विभिन्न प्रकार के पौधों की भरमार थी। इन्होंने भोजन संग्रह से लेकर खाद्य उत्पादन तक पहुँचने के कई सांस्कृतिक स्तरों की चर्चा की है। उनका ऐसा मानना है कि कृषि की ओर संक्रमण मनुष्य की प्रकृति और पर्यावरणीय परिस्थितियों में होने वाले कई प्रकार के बदलाव जैसे कारकों के मिश्रण के फलस्वरूप हुआ था। जबकि **कार्ल सौर** तथा **राबर्ट मैक एडम्स** का मानना है कि सर्वप्रथम खेती की शुरुआत मछुआरों ने की होगी। सौर का यह तर्क है कि मछुआरे लोग साफ जल एवं साफ जलवायु के मध्य रहा करते होंगे तथा जब उनका मछली मारने का काम पूरा हो जाता होगा, तो वे

www.neerajbooks.com



नजदीक के जंगलों में पौधों का निरीक्षण करते होंगे। इस प्रकार जब उनकी आबादी में वृद्धि हुई होगी तथा मछली मारकर वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम नहीं हुए होंगे तब उन्होंने खेती करना आरम्भ किया होगा। हालांकि प्रारम्भ में उन्होंने व्यवस्थित खेती करना नहीं प्रारम्भ किया होगा, बल्कि कंदमूल उगाना प्रारम्भ किया होगा, वे जाल डालकर पहले की अपेक्षा ज्यादा मछली पकड़ते होंगे। इनका यह भी मानना है कि पौधों का लगाया जाना और उन्हें उपजाए जाने के पीछे केवल खाद्यान्न उत्पादन ही लक्ष्य नहीं था। उन्होंने उसे 'जल स्रोत केन्द्रित प्रारूप' की संज्ञा दी, जिसका परीक्षण दक्षिण-पूर्व एशिया में किया गया है।

परन्तु 1908 के बाद भूगर्भीय अनुसंधानों एवं पुरातात्विक उत्खननों से कृषि के प्रारम्भ के सन्दर्भ में अनेक विस्तृत सिद्धान्त सामने आए। इन सिद्धान्तों से यह तो स्पष्ट अवश्य हुआ कि पर्यावरण में परिवर्तन के कारण विश्व के अनेक हिस्से उनसे प्रभावित हुए। परन्तु अब इस बात को स्वीकार नहीं किया जाता कि दक्षिण-पश्चिम एशिया के तापमान में अचानक परिवर्तन हुआ और निर्जलीकरण होने से कृषि की शुरुआत हुई। वर्तमान में अध्ययन का केन्द्रबिन्दु पर्यावरण से हटकर जनसंख्या वृद्धि हो गया है। अब विश्व की बढ़ती जनसंख्या तथा अधिक स्थिर एवं स्थायी जीवन-शैली ने इन अध्ययनों को प्रभावित किया है। कृषि के प्रारम्भ से सम्बन्धित अध्ययन करने वाले विद्वानों ने जब अपना अध्ययन का केन्द्रबिन्दु उनकी बढ़ती आबादी एवं बदलती जीवन-शैली को बनाया, तब अनेक विद्वानों का कृषि के प्रारम्भ के सन्दर्भ में यह मत रहा कि बढ़ती जनसंख्या के दबाव एवं उससे उत्पन्न तनाव की स्थिति ने लोगों को कृषि हेतु प्रेरित किया। **लेविस बिनफोर्ड** ने भी कृषि की शुरुआत के लिए पर्यावरणीय दबाव की अपेक्षा जनसंख्या दबाव को अधिक उत्तरदायी माना है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जिन स्थानों पर खाने-पीने की बेहतर सुविधा होती थी, वहाँ जनसंख्या तेजी से बढ़ने की सम्भावना होती थी। हालांकि इस तरह की जनसंख्या वृद्धि को या तो जन्म नियन्त्रण के द्वारा या फिर प्रवासन के माध्यम से कम किया जा सकता था। वैसे प्रवासन भी आसपास के क्षेत्रों तक ही सीमित होता था। वहाँ पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हों, ताकि वहाँ जाने पर लोगों का जीवनयापन सम्भव हो सके। जब जनसंख्या दबाव काफी अधिक हो जाता था तो या तो जन्म दर कम करके इसे कम किया जाता था या फिर उपलब्ध संसाधनों का तेजी से दोहन करके तनाव को कम किया जाता था। इन्होंने कृषि को जनसंख्या तनाव का ही परिणाम माना है। इनका यह भी मानना था कि आरम्भ में परिस्थितियाँ समुद्रतटीय समुदायों के लिए लाभदायक रहीं, जो मुख्य रूप में मछली मारकर अपना जीवनयापन किया करते थे, पर आबादी की वृद्धि के साथ इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों एवं उपलब्ध संसाधनों (मछली) का सन्तुलन बिगड़ने लगा जिससे आबादी का कुछ हिस्सा उस स्थान से हटकर बगल के क्षेत्रों में जाकर बस गया। इसके प्रमाण के रूप में इन्होंने पोरू के समुद्र तट पर रहने वाले लोगों का उल्लेख किया है। बिनफोर्ड के अलावा **डेविड हैरिस** ने भी यह तर्क प्रस्तुत किया है कि कृषि जनसंख्या और संसाधन के बीच पैदा हुए असंतुलन का परिणाम था। परन्तु हैरिस यह मानते हैं कि आबादी संसाधनों पर हावी नहीं होती। इनके अनुसार पर्यावरणीय परिवर्तन के कारण ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गई होंगी कि विकसित शिकारी संग्रहकर्त्ता के आवागमन पर प्रभाव पड़ा होगा और वे एक जगह बस गए होंगे। परिणामत: एक स्थान पर जनसंख्या का दबाव बढ़ गया होगा और इसी दबाव के कारण लोगों ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खेती एवं पशुपालन आम्भ कर दिया होगा। हालांकि इस परिकल्पना से यह साबित नहीं होता कि दुनिया के तमाम हिस्सों में एक ही समय में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई होंगी क्योंकि विश्व के तमाम क्षेत्रों में जलवायु का परिवर्तन एवं पर्यावरण एकसमान नहीं था। इसी सन्दर्भ में **जे.टी. मेयर्स** ने भी जनसंख्या का एक वैकल्पिक प्रारूप प्रस्तुत किया है। इनका भी यह मानना था कि जिन क्षेत्रों में पर्यावरण अनुकूल हो तथा पेड़-पौधों एवं पशुओं की उपलब्धता पर्याप्त हो, वहाँ जनसंख्या तेजी से बढ़ती है। परन्तु यदि इस क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव ज्यादा हो, तो ऐसे में परिवर्तन सम्भव है। इनका यह मानना है कि जहाँ जनसंख्या नियन्त्रण का कोई उपाय नहीं था तथा प्रकृति का अधिकतम दोहन हो चुका हो, वहाँ कृषि का विकास हुआ है। मैक्सिको की ऊपरी और आसपास की घाटियों का उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि ऊँची पहाड़ियों और शीतोष्ण जंगल लोगों का वहाँ से बाहर जाने का मार्ग अवरुद्ध करते थे, इसलिए वहाँ की जनसंख्या प्रवासन पद्धति से कम नहीं की जा सकती थी। इन्होंने जनसंख्या नियन्त्रण के लिए आन्तरिक सुधार पर अधिक बल दिया है। इनके तर्क की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि ये कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं प्रस्तुत कर सके। मेयर्स ने इस बात को भी नजरअंदाज किया है कि सांस्कृतिक नियन्त्रण या प्रवासन के बावजूद जनसंख्या बढ़ने से संसाधनों का तीव्र दोहन होता था।

किसी भी समूह की आबादी में वृद्धि के साथ उसकी आवश्यकताओं में वृद्धि होती है अर्थात् खेती के प्रारम्भ हेतु जनसंख्या दबाव को एक प्रभावशाली कारण मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता, परन्तु यह भी सत्य है कि केवल जनसंख्या मात्र के बढ़ने से लोग खेती की ओर उन्मुख नहीं हुए होंगे। खेती के लिए अन्य आवश्यक दशाएँ भी आवश्यक हैं। पुरातात्विक साक्ष्य भी यह प्रमाणित नहीं करते कि खेती के लिए जनसंख्या दबाव अपरिहार्य होता है। अत: यह स्पष्ट है कि जनसंख्या दबाव खेती की शुरुआत का एकमात्र कारण रहा होगा। अनेक विद्वानों ने इस तथ्य को तो अवश्य स्वीकार किया है कि आदिमानव शिकार और संग्रह से ही धीरे-धीरे कृषि की ओर मुड़े थे। डार्विन का भी यही मानना था कि आदिमानव ने शिकारी और संग्रहकर्त्ता से निरन्तर विकासक्रम के साथ कृषि को अपनाया। **बिनफोर्ड** और **केंट फ्लैन्नरी** भी शिकारी-

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



संग्रहकर्त्ताओं द्वारा 'भोजन-संग्रह' से खाद्य उत्पादन के बीच साम्यता स्थापित करते हैं, परन्तु वे इस बात पर बल देते हैं कि यह संक्रमण पर्यावरणीय, जनसांख्यिकी और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण हुआ था इसलिए वह निरन्तरता पर भी बल देते हैं। फ्लैन्नरी ने खाद्य उत्पादन की ओर संक्रमण के तरीके का विश्लेषण करते हुए तीन अवधारणाओं का विकास किया है–

*(i)* खाद्य उत्पादन के पूर्व शिकारी-संग्रहकर्त्ता आबादी में बढ़ोतरी हुई थी।

*(ii)* खाद्य उत्पादन का आरम्भ उन क्षेत्रों में हुआ, जहाँ प्रकृति बहुत अनुकूल नहीं थी।

*(iii)* खाद्य उत्पादन के पूर्व लोग घुमन्तू थे तथा विभिन्न प्रकार के पौधों के बीज इकट्ठे करके नए प्रदेशों में लगाया करते थे।

उन्होंने व्यवस्था सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार घुमन्तू शिकारी संग्रहकर्त्ताओं को विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों एवं जन्तुओं का ज्ञान था। विभिन्न प्रान्तों में उपलब्ध पौधों और पशुओं के अनुसार समूह की गतिशीलता और आकार निर्धारित होता था। इस प्रकार लोग विस्तृत फलकवाली अर्थव्यवस्था पर आश्रित थे, न कि थोड़े-से पौधों और पशुओं पर उनका जीवन आधारित था। इनके द्वारा पौधे लगाने के क्षेत्र में धीरे-धीरे वृद्धि होती गई। कभी-कभी ऐसा भी होता होगा कि एक प्रकार का पौधा दूसरे को दबाकर बढ़ने लगता था। जागरोस पहाड़ी क्षेत्र में गेहूँ और ऊपरी मैक्सिको में मक्का इसी तरह का पौधा था। इस प्रकार के पौधे सन्तुलन को बदल देते थे और 'सकारात्मक फीडबैक' प्रदान करते थे। **कोलिन रेनफ्रियू** ने संस्कृति परिवर्तन की व्याख्या करते हुए व्यवस्था सिद्धान्त को स्वीकार किया है। **एम. कोहेन** का मानना है कि "कृषि के आरम्भ के लिए पर्यावरणीय परिवर्तन की अपेक्षा मनुष्य की चाहत का विशेष योगदान था।" इस्तर बोसरप भी कृषि के विकास का कारण जनसंख्या वृद्धि को ही मानते हैं। इनके अनुसार यह अतिरिक्त भोजन उपलब्ध कराने के कारण ऐसा नहीं हुआ, बल्कि सघन खेती की शुरुआत अतिरिक्त श्रम लगने के कारण हो सकती थी और इसी के कारण खेती शुरू की गई। खेती करने के लिए अधिक जमीन की माँग होने पर पेड़ों को काटने, जलाने और मैदान साफ करने का भी काम करना पड़ता था। कोहेन का मानना है कि शिकारी-संग्रहकर्त्ता की जनसंख्या में वृद्धि धीरे-धीरे हुई। इस वृद्धि के कारण इन्होंने ऐसे लोगों का भी उपयोग करना प्रारम्भ किया, जिनका उपयोग ये पहले नहीं किया करते थे। समय के साथ और अधिक विस्तार की सम्भावना न होने की स्थिति में इन्होंने खेती करना आरम्भ किया।

जबकि **बारबराबेन्डर** का मानना है कि जनसंख्या की वृद्धि कोई असामान्य घटना नहीं थी। क्योंकि समय के साथ जैसे ही प्रौद्योगिकी, विनिमय पद्धति आदि का विकास हुआ, तो इसका प्रभाव जनसंख्या पर भी पड़ा। इनका यह भी मानना है कि सामाजिक सम्बन्धों के बदलने के कारण भोजन प्राप्त करने के तरीकों में भी परिवर्तन आया। हालांकि आधुनिक अध्ययन इस विस्तारवादी अर्थव्यवस्था की अवधारणा को नहीं मानता। पर इतना तो तय है कि 12 हजार बी.पी. के बाद लोग स्थानबद्ध जीवन को अपनाना प्रारम्भ कर चुके थे। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए एक नहीं बल्कि कई कारण जिम्मेदार थे, जैसे–पर्यावरणीय परिवर्तन, जनसांख्यिकी बदलाव, सांस्कृतिक आदान-प्रदान आदि।

दरअसल जब शिकारी संग्रहकर्त्ता ने कृषक बनना प्रारम्भ किया, तो ऐसा नहीं था कि उन्होंने शिकार को पूर्णतः छोड़ दिया। पर हाँ अब शिकार उनके लिए आनुष्ठानिक क्रिया या मनोरंजन का साधन मात्र रह गया था। पशु-पक्षियों की संख्या में वृद्धि इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि वे लोग पहले की अपेक्षा कम शिकार किया करते थे। पर ऐसा भी नहीं हुआ कि शिकारी संग्रहकर्त्ता ने एकाएक स्थायी जीवन को अपना लिया। आदिमानवों द्वारा कृषक बनने की प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि उनको पौधों को उगाने का ज्ञान हो। क्योंकि इस ज्ञान के अभाव में उनका कृषक बनना सम्भव नहीं था। हालांकि समय के साथ कुछ परिवर्तन प्राकृतिक रूप से भी हुए जैसे 20 हजार बी.पी. के बाद पश्चिम एशिया के कुछ क्षेत्रों में वनस्पति की प्रकृति में इस प्रकार का परिवर्तन हुआ कि वहाँ बड़े-बड़े दानों वाले बीज और घास प्राकृतिक रूप में उगने लगे। हवा के साथ उनका विस्तार दूर-दूर के क्षेत्रों में भी होने लगा। गेहूँ और जौ इसी प्रकार के बीज थे। इन्हें डंडों से बांधकर बचाया जाता था, क्योंकि इनके तने आसानी से टूटने लगते थे। इनके बीजों का पुनः रोपण किया जाने लगा तथा इस प्रकार फसल उगाना प्रारम्भ हुआ। **वेंके** का भी मानना है कि "दुनिया की सबसे महत्त्वपूर्ण फसल गेहूँ के उपजाने में मनुष्य अपनी तकनीक का इस्तेमाल करता था और उसके साथ-साथ प्रकृति भी इसमें अपना सहयोग करती थी। मनुष्य का ऐसा प्रयास होता था कि ऐसी किस्मों को उपजाया जाए जो हवा के कारण बर्बाद न हों तथा पकने के बाद उनसे अनाज प्राप्त किया जा सके। डाइप्लौएड गेहूँ की एक साधारण किस्म थी, जिसमें गुणसूत्र के सात जोड़े होते थे। संकर के बाद टेट्राप्लौएड एवं हेक्साप्लौएड किस्म विकसित की गई, जिसमें क्रमशः चार जोड़ी एवं छः जोड़ी गुणसूत्र होते थे।"

हालांकि कुछ ऐसे पौधे भी थे, जिनके तने कड़े एवं मजबूत होते थे। उनके बीज बिखरते नहीं थे। इन पौधों के बीज ज्यादा दिन तक टिकते थे। परन्तु ऐसे पौधों की खेती के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता होती थी, क्योंकि ये अन्य पौधों के साथ उग जाते थे, जिनकी मिट्टी जल-निकासी के लिए उपयुक्त थी। इन पौधों को लगाने के लिए इन्हें जंगली पौधों से दूर रखने की आवश्यकता होती थी। पौधों को लगाने के लिए यह आवश्यक था कि जमीन समतल हो तथा पर्याप्त वर्षा होती हो। सीरिया के उपजाऊ अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र, जागरोस की पहाड़ियों एवं जार्मो नदी के ऊपरी हिस्सों में पौधों को उगाए जाने की अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध थीं। इन जंगली पौधों

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



के जीन में मनुष्य ने अपने प्रयास से परिवर्तन किया और इस प्रकार खेती के साथ-साथ मनुष्य ने अनाज का भंडारण भी करना आरम्भ कर दिया, जिससे मानव के जीवन में व्यापक परिवर्तन आया।

जहाँ आरम्भ में पशु जंगलों में आजाद रहा करते थे अब मनुष्य ने उन्हें बांधकर रखना प्रारम्भ किया और उन्हें पालतू बनाया। पालतू बनाने के बाद मनुष्य के उन पर मालिकाना हक भी हुआ। इन पालतू जानवरों को भोजन, देखरेख एवं प्रजनन की व्यवस्था मनुष्य द्वारा ही की जाती थी। मालिकाना अधिकार ही पशुपालन और शिकार में मूलभूत अन्तर करता है। जहाँ पहले जंगली जानवरों का शिकार कोई भी कर सकता था। किसी का भी किसी विशेष जानवर पर विशेष अधिकार नहीं होता था, वहीं पशुओं को पालतू बनाने के बाद पालने वाले मानव-समूह का उस पर अधिकार हुआ। हालांकि पशु को पालने का काम भी शिकारी-संग्रहकर्त्ता द्वारा ही प्रारम्भ हुआ था। जब प्रारम्भ में मानव बड़े जानवरों का शिकार किया करता था, तो साथ ही उसके बच्चे भी हुआ करते थे। उन जानवरों के बच्चों को आदिमानव अपने साथ निवास-स्थल पर जिन्दा लाते होंगे। इन बच्चों ने आदिमानव के आसपास के वातावरण से अपने आप को अनुकूलित करना आरम्भ कर दिया होगा और इस प्रकार वे पालतू बना लिए गए। हालांकि ऐसा भी अनुमान है कि शिकारी-संग्रहकर्त्ता समुदायों ने शिकार में सहायता हेतु भी जानवरों को पालना शुरू किया होगा। पहली बार कुत्ते को पालतू बनाए जाने का प्रमाण मिलता है। संकट के समय में इन पालतू जानवरों का मांस भी खाया जाता होगा।

दरअसल सभी जानवरों को पालतू बनाया जाना सम्भव नहीं था। अत: विद्वानों का मत है कि वैसे ही जानवरों को पालतू बनाया गया होगा जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक तौर पर पालतू बनाए जाने लायक हों। आरम्भ में तो इक्का-दुक्का पशुओं को पालतू बनाया गया होगा, पर जैसे ही इन्हें चराने की प्रथा आरम्भ हुई होगी, तब इन्हें झुंड में पालतू बनाया गया होगा। साथ ही इसका भी ख्याल रखा गया होगा कि ज्यादा आक्रामक एवं नुकसानदेह जानवर को पालतू न बनाया जाए। कुत्तों और सुअरों को पाला जाना काफी आसान था, क्योंकि ये मनुष्य का बचा-खुचा खाना खाकर भी रह सकते थे। हालांकि आरम्भिक समय में आदिमानव द्वारा बकरी, भेड़ जैसे ही जानवरों को पालतू बनाया गया होगा, क्योंकि इनके मांस एवं खाल का उपयोग किया जाता होगा। दूध देने वाले पशुओं को भी पालतू बनाया गया। हालांकि जंगली पशु दूध कम दिया करते थे, पर जब ऐसे पशुओं को पालतू बनाया गया, तो ये पहले की अपेक्षा ज्यादा दूध देने लगे।

विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्त्विक प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि खेती अपनाने का प्रमुख कारण यह नहीं था कि पौधों एवं पशुओं का अधिक उपयोग किया जाए, बल्कि बढ़ती आबादी एवं परिवर्तित पर्यावरण ने मनुष्य को उस हेतु प्रेरित किया कि वह पौधों एवं पशुओं का लम्बे समय तक उपयोग कर सके। इससे बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करना सम्भव हो सका। हालांकि पश्चिम एशिया की जलवायु में परिवर्तन एक साथ नहीं हुआ। यह परिवर्तन तो समय के साथ काफी मंद गति से सम्पन्न हुआ। अभिनूतन युग के बाद तापमान में वृद्धि हुई तथा इस प्रकार शुष्कता में वृद्धि हुई। तापमान के परिवर्तन के साथ ही लेवेन्ट और सीरिया के वनों के विस्तार के प्रमाण मिलते हैं। होलोसिन युग में यहाँ की जलवायु ठंडी थी, जबकि अधिक वर्षा के कारण पूर्वी भूमध्यसागर के तटीय पहाड़ों पर वनों का प्रसार हुआ। वर्षा के कारण इन क्षेत्रों में वन एवं घास के मैदानों का विस्तार हुआ, जो पशुओं के लिए भी अच्छा था। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने जानवरों को चराने की प्रथा आरम्भ की। भेड़ और बकरियों को लेकर लोग चरागाह की खोज में घूमा करते थे तथा गर्मियों में पहाड़ों पर चढ़ जाया करते थे। वर्षा के कारण इस क्षेत्र में कई झीलों का निर्माण हुआ, जिसमें पर्याप्त मात्रा में मछलियाँ थीं। यहाँ के आसपास के शिकारी-संग्रहकर्त्ता उन झीलों से मछलियों का भी शिकार किया करते थे।

नातुफियाइयों के समूह भोजन संग्रह हेतु एक ही क्षेत्र में लम्बे समय तक टिके रहते थे। परन्तु माउन्ट कारमेल (फिलीस्तीन) क्षेत्र में रहने वाले लोगों ने धीरे-धीरे संग्रहण को छोड़कर एक जगह बसकर रहना आरम्भ किया। उन्होंने बरछा, पत्थर के छोटे औजार, हंसिया आदि का भी इस्तेमाल करना आरम्भ कर दिया। बांजफल जैसी अधिक टिकने वाली वनस्पतियों को ग्रहण करना शुरू किया, जो एक जगह स्थायी बसे रहने में उपयोगी सिद्ध हुआ होगा। हालांकि समय के साथ दक्षिण लेवेन्ट का तापमान धीरे-धीरे बढ़ना प्रारम्भ हुआ और यह जगह गर्म होती चली गई। इसका परिणाम यह हुआ कि कई नातुफियाई उस स्थल को छोड़ने के लिए मजबूर हो गए तथा जैरिको में जाकर बसने लगे। इस स्थान पर पानी और चरागाह मौजूद थे। आरम्भिक नवपाषाणयुगीन गाँव ऊपरी और मध्य यूफ्रेट्स तक ही सीमित थे। जबकि बाद के हजारों वर्षों बाद शहरों का उदय निचले यूफ्रेटस में हुआ। हालांकि स्थानबद्ध जीवन के लिए भोजन का उत्पादन अनिवार्य शर्त नहीं थी, किन्तु जब भोजन संग्रहकर्त्ता ऐसे स्थानों पर जाकर बसने लगे, जहाँ पहले से ही लोग बसे हुए थे और इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ संसाधनों का सन्तुलन बिगड़ने लगा। इस प्रकार लोगों ने भोजन प्राप्त करने के नए तरीके ईजाद करने आरम्भ कर दिए। हालांकि दक्षिण-पश्चिम एशिया इसका अपवाद है, जहाँ पर्याप्त कृषि योग्य भूमि एवं पानी के अभाव के बाद भी लोगों का जीवन सम्भव हुआ। बीघा और जैरिको ऐसे स्थल हैं, जिनके समीप संसाधन उपलब्ध थे। बीघा में आगे चलकर सिंचाई की आन्तरिक तकनीकों के प्रमाण मिले हैं, जबकि जैरिको के निचले स्तर में लोग रहा करते थे। इस क्षेत्र में गेहूँ एवं जौ नहीं पाया जाता था। इन फसलों का बीज जॉर्डन घाटी से लाए जाने के प्रमाण मिलते हैं और धीरे-धीरे अधिशेष उत्पादन के भी प्रमाण मिलते हैं।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

पशुओं को पालतू बनाने की प्रवृत्ति से स्पष्ट होता है कि चिंकारा की अपेक्षा भेड़ और बकरे को अधिक पालने की प्रवृत्ति थी। हालांकि भेड़ और बकरियों को रखने वाले आरम्भिक निवासियों ने चिंकारा का शिकार करना छोड़ दिया था। हालांकि पशुओं को पाले जाने एवं पौधों को उगाने हेतु वनों की कटाई भी आरम्भ हो गई थी। खेती के लिए जमीन साफ करना अनिवार्य हो गया। इस तरह के कार्यों से जेरिको और बीधा जैसे क्षेत्रों की पारिस्थितिकी प्रभावित हुई तथा धीरे-धीरे ये गाँव लुप्त हो गए। यद्यपि ईरान के शुष्क स्टेप क्षेत्र के मध्य दसवीं सहस्राब्दी ई.पू. में लोग रहा करते थे। यहाँ भी शिकारी-संग्रहकर्त्ता द्वारा जंगली अनाज एवं पौधे उगाए जाने के प्रमाण मिले हैं। खुदाई के दौरान पुरातत्त्ववेत्ताओं को गेहूँ, जौ, मटर और खजूर के दाने भी मिले हैं, जबकि 7000 ई.पू. तक सीरिया और मेसोपोटामिया में भी विकसित संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। मिट्टी के बर्तनों की नई शैली एवं घरों के स्थापत्य से इस प्रगति का प्रमाण मिलता है।

अनातोलिया में होलोसिन के प्रारम्भ के साथ ही वर्षा में लगातार वृद्धि हुई। हालांकि लेबेन्ट के बहुत बाद यहाँ लोगों ने बसना प्रारम्भ किया। यहाँ जीवनयापन के लिए अनाज और पौधों की खेती के साथ भेड़ और बकरी भी पाली जाती थी। अर्थात् यहाँ कृषि के आरम्भ के पहले एक लम्बा संक्रमण का काल भी रहा, जब लोग शिकार और संग्रहण से कृषि की ओर मुड़े। इसी प्रकार कतल हुयुक में नौवीं सहस्राब्दी ई.पू. में लोग यहाँ रहा करते थे। यहाँ कृषि के अनुकूल दशाएँ मौजूद थीं; जैसे–उर्वर मिट्टी, पानी आदि। इस क्षेत्र में मुख्यतः स्तनपायी जानवर पाले जाते थे। यहाँ बड़े पैमाने पर पशुपालन की शुरुआत अनाज उत्पादन के साथ हुई। हालांकि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जलवायु में परिवर्तन के कारण भोजन प्राप्त करने के तरीकों में परिवर्तन हुआ। शिकार और संग्रह के तरीके भी हमेशा एक जैसे नहीं रहे। उत्तरी यूरोप में पहले लोग रेन्डियर के शिकार पर आश्रित थे। बाद में तापमान में वृद्धि के कारण लाल हिरण और एल्क जैसे जानवरों ने रेन्डियर का स्थान ग्रहण कर लिया।

हालांकि हंगरी, जर्मनी और फ्रांस में झीलों का लाभ शिकारी-संग्रहकर्त्ता पहले से ही उठा रहे थे, जबकि बाल्टिक और कैस्पियन के तटवर्ती इलाकों में मछली मारना, मुर्गी आदि का शिकार भोजन का अतिरिक्त माध्यम था। पुरातात्त्विक आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि मध्यपाषाण युगीन समुदाय ने तेजी से भोजन संग्रहण का तरीका अपनाया। परन्तु धीरे-धीरे संसाधनों की कमी के कारण यह अधिक श्रमसाध्य तरीका होता चला गया।

9000 ई.पू. में ग्रीस में गेहूँ एवं जौ की खेती के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ मवेशी एवं सूअर पाले जाने के प्रमाण मिलते हैं। बाल्कन में भी किसान गेहूँ और जौ उपजाते थे। हालांकि उस क्षेत्र में तापमान और पर्यावरण में काफी उतार-चढ़ाव पाया जाता था। मध्य पाषाण युग के शिकारी-संग्रहकर्त्ता समुदाय का उस क्षेत्र पर कब्जा था। बाद में लोग यहाँ से ही पूर्व यूरोप के समशीतोष्ण या मध्य यूरोप के उर्वरक मिट्टी वाले क्षेत्र में जाकर बस गए होंगे। यह क्षेत्र जौ, गेहूँ और तीसी की उपज के लिए अनुकूल था। यहाँ फसल चयन का भी प्रमाण मिलता है। एक बार एक खेत में फसल लगाने के बाद दूसरी बार उसे परती छोड़ दिया जाता था। इस विधि को स्वीड्डेन खेती कहते थे। उत्तरी-पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में भोजन का उत्पादन देर से शुरू हुआ। आरम्भ में लोग यहाँ भी शिकार ही करते थे। इस क्षेत्र में पर्याप्त जैविक विविधता एवं वनस्पति थी। इस समृद्ध वनस्पति के कारण इस क्षेत्र में बड़े जानवरों की उपलब्धता अधिक थी।

हालांकि आरम्भिक किसान किसी खास परिवेश में नहीं ढले हुए थे, बल्कि अलग-अलग परिवेशों में उपलब्ध पौधों और जानवरों के अनुसार उन्होंने अपने को ढाल लिया था। बीजों के संग्रह के माध्यम से उसके उत्पादन की विधि ज्ञात हुई, जबकि नातुफियाई लोग मौसम और पेड़-पौधों की उपलब्धता के अनुसार पूरा वर्ष शिकार और संग्रह हेतु घूमा करते थे। हालांकि इनके संग्रह का तरीका अनियोजित नहीं था, बल्कि ये किसी खास पौधे और पशुओं पर आश्रित थे। जबकि प्रमाण इसके भी मिले हैं कि कृषि का विकास न होने के बावजूद भी ये लोग एक स्थान पर स्थायी रूप से रहते थे। हालांकि ऐसा भी माना जाता है कि कुछ फसलों के उगाए जाने के बाद भी ये खानाबदोश का जीवन व्यतीत करते रहे। वैसे स्थानों पर जहाँ पर्यावरण अनुकूल न हो, इन्हें शिकार और संग्रहण करने में दिक्कतें आनी शुरू हुईं। परिणामतः ये मौसम के अनुरूप शिकार और संग्रहण करने लगे, ताकि एक स्थान के संसाधनों पर अधिक बोझ न पड़े। एक पारिस्थितिकी क्षेत्र से दूसरे पारिस्थितिकी क्षेत्र में जाने के कारण विभिन्न प्रजातियों के बारे में इन्हें जानकारी प्राप्त हुई। यही कारण है कि मेसो-अमेरिका में रहने वाले लोगों का मुख्य भोजन मक्के के साथ-साथ कुम्हड़ा और बीन्स था। पूर्वी पेरू, अर्जेंटीना और चिली से भी मक्का उपजाने के प्रमाण मिले हैं, जबकि चीन में कृषि का आरम्भ दो क्षेत्रों से हुआ। ये क्षेत्र थे यांग-शाओं तथा लुंग-शान। उत्तर चीन की यांग-शाओ संस्कृति लगभग 6000 ई.पू. पुरानी है। फेन और वेई नदियों के मध्य हुआंग घाटी में उस संस्कृति का जन्म हुआ, जिसका बाद में विस्तार मध्य शान्सी और पूर्वी कान्सु तक हुआ। यह एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का क्षेत्र था। यहाँ शिकार, पशुपालन एवं कृषि तीनों के एक साथ होने के प्रमाण मिले हैं। चीन में रेशम के कीड़ों को पालने के लिए शहतूत के पेड़ का उपयोग किया जाता था। लुंग-शान संस्कृति का जन्म यांग-शाओ के बाद माना जाता है। इन्हीं संस्कृतियों का विस्तार बाद में पूरब और दक्षिण की ओर होनान, शानतुंग, ताइवान आदि में हुआ। यहाँ मुख्य रूप से बाजरा, गेहूँ, चावल आदि की खेती होती थी। पशुपालन में मुख्यतः मुर्गी, भेड़ व मवेशी आदि पाले जाते थे।

## अभ्यास प्रश्न

**प्रश्न 1. जलवायु दबाव प्रारूप से आप क्या समझते हैं? यह जनसांख्यिकी प्रारूप से किस तरह भिन्न है?**

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**उत्तर**–शिकार और संग्रह से खेती की ओर बढ़ने की प्रक्रिया हेतु कई व्याख्याएँ प्रस्तुत की गईं। इस सन्दर्भ में शोधकर्त्ताओं द्वारा आँकड़े भी इकट्ठे किए गए, पर खेती के प्रारम्भ के सन्दर्भ में कई सवाल भी उठे; जैसे इसकी शुरुआत कहाँ से हुई, क्या यह किसी व्यक्ति की खोज थी आदि। इस क्रम में कृषि की ओर संक्रमण से जुड़े कई सैद्धान्तिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किए गए। इन सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों में कुछ जलवायु से सम्बन्धित थे, तो कुछ विद्वानों ने इसे जनसंख्या से जोड़कर व्याख्यायित किया।

इस सन्दर्भ में जलवायु दबाव प्रारूप के अन्तर्गत 1908 में ओएसीस थ्योरी अर्थात् मरुद्वीप सिद्धान्त दिया गया। हालांकि यह सिद्धान्त गार्डन चाइल्ड द्वारा व्याख्यायित किया गया था। इन्हें प्रागैतिहास के अध्ययन का जनक भी माना जाता है। इन्होंने कृषि की ओर संक्रमण के सम्पूर्ण प्रभाव को रेखांकित करने के लिए इसको 'नवपाषाण क्रान्ति' की संज्ञा दी। इस सिद्धान्त में उपजाऊ अर्धचन्द्राकार भाग पर अधिक बल दिया गया। इसने खेती की शुरुआत का कारण इस क्षेत्र के कुछ हिस्सों में जलवायु परिवर्तन को माना है। इस क्षेत्र के उत्तर की ओर वर्षा से भरे बादल के निर्माण के कारण इसकी जलवायु में व्यापक परिवर्तन हुआ, जिससे कि छोटे-छोटे मरुद्वीपों का निर्माण हुआ, अर्थात् मरुस्थल के बीच छोटे-छोटे हरे-भरे क्षेत्र विकसित हुए। इस हरियाली ने लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया तथा इन स्थानों पर जाकर बसना प्रारम्भ किया। लोगों के निवास के साथ ही पौधों का उगाना तथा पशुओं का आवागमन भी प्रारम्भ हुआ। चूंकि इन क्षेत्रों के आसपास का क्षेत्र अभी भी मरुभूमि ही था, जहाँ न तो पर्याप्त भोजन की उपलब्धता थी और न ही पानी की व्यवस्था थी। इस प्रकार लोगों ने भोजन की खोज में इन मरुद्वीपों अर्थात् नखलिस्तानों की ओर प्रस्थान करना आरम्भ किया। लोगों के निवास एवं यहाँ उपलब्ध संसाधनों के कारण लोग इन छोटे-छोटे क्षेत्रों में बसे तथा कृषि की शुरुआत की। यह सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि कृषि के आरम्भ जैसी सामाजिक-आर्थिक गतिविधि विश्वव्यापी न होकर सीमित क्षेत्रों से प्रारम्भ हुई, और फिर धीरे-धीरे इसका प्रसार अन्य क्षेत्रों में भी होता गया।

हालांकि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जलवायु परिवर्तन हुआ तथा इसने व्यापक रूप से इस काल में मौसम को प्रभावित किया। परन्तु इसका प्रमाण नहीं मिलता कि अभिनूतन युग के तुरन्त बाद दक्षिण-पश्चिम एशिया में व्यापक पैमाने पर निर्जलीकरण होने लगा। इराक के खेतों का सर्वेक्षण करके राबर्ट ब्रेडवुड ने मरुद्वीप सिद्धान्त को चुनौती दी। इनका मानना है कि खेती का प्रारम्भ उन प्रमुख स्थानों पर हुआ जहाँ पशुओं एवं विभिन्न प्रकार के पौधों की भरमार थी। इनके अनुसार परिवर्तन की इस प्रक्रिया को बदलती हुई मानव संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इन्होंने कहा कि कृषि की ओर संक्रमण मनुष्य की प्रकृति और पर्यावरणीय परिस्थितियों में होने वाले कई प्रकार के बदलाव जैसे दोनों कारकों के मिश्रण के फलस्वरूप हुआ। हालांकि बाद के वर्षों में कार्ल सौर और रॉबर्ट मैक एडम्स जैसे विद्वानों ने कृषि की शुरुआत के लिए मछुआरों को जिम्मेदार माना है। इनका मानना है कि वे मछली मारते होंगे और पेड़-पौधों से प्राप्त कंदमूल को इकट्ठा करके खाते होंगे। लेकिन जैसे-जैसे आबादी में वृद्धि होती गई होगी, वैसे-वैसे अधिक भोजन की जरूरत पड़ने लगी होगी और फिर इस प्रकार इनके द्वारा नई तकनीक विकसित की गई होगी, जिससे कि और अधिक भोजन इकट्ठा किया जा सके। इस तरह खेती की शुरुआत हुई होगी।

परन्तु 1968 के बाद कृषि के जन्म के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से सिद्धान्त सामने आने लगे। हालांकि अब भी पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तनों से इन्कार नहीं किया गया। परन्तु अब अध्ययन का केन्द्र बदला तथा जलवायु प्रारूप के स्थान पर अध्ययन का केन्द्रबिन्दु जनसंख्या में वृद्धि तथा बदलती सामाजिक जीवन-शैली ने ले लिया। जलवायु प्रारूप में कृषि के विकास का मुख्य कारण जलवायु को माना जाता था। वहीं जनसंख्या प्रारूप में कृषि के प्रारम्भ का कारण बढ़ती जनसंख्या को माना जाता है। विद्वानों ने पर्यावरणीय दबाव की अपेक्षा जनसंख्या दबाव पर विशेष बल दिया है। बिनफोर्ड महोदय ने स्पष्ट किया कि जिन स्थानों पर खाने-पीने की बेहतर सुविधा उपलब्ध होती थी, उन स्थानों पर जनसंख्या भी तेजी से बढ़ती थी। परिणामत: उन स्थानों पर जनसंख्या के कारण एक तनाव की स्थिति उत्पन्न होती थी। इन्होंने इस जनसंख्या तनाव को ही कृषि की उत्पत्ति का कारण माना है। बिनफोर्ड के अलावा डेविड हैरिस ने भी यही माना है कि कृषि जनसंख्या और संसाधन के बीच पैदा हुए असन्तुलन का परिणाम थी। परन्तु उनका यह तर्क भी है कि आमतौर पर आबादी संसाधनों पर हावी नहीं होती। इनके अनुसार पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई होगी कि विकसित शिकारी-संग्रहकर्त्ता के आवागमन पर प्रभाव पड़ा होगा और वे एक जगह बस गए होंगे और इससे जनसख्या का दबाव बढ़ गया होगा। परिणामत: बाद में खेती एवं पशुपालन के द्वारा उन्होंने विभिन्न प्रकार के पौधों एवं पशुओं का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया होगा। इस प्रकार कृषि का आरम्भ हुआ होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ओर जहाँ जलवायु प्रारूप में कृषि के आरम्भ का मुख्य कारण जलवायु को माना जाता है, वहीं दूसरी ओर जनसंख्या प्रारूप में विद्वानों द्वारा कृषि के आरम्भ का कारण सामान्यत: जनसंख्या दबाव को माना जाता है। हालांकि जनसंख्या प्रारूप में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि जनसंख्या की वृद्धि उन्हीं स्थानों पर तेजी से होती है, जहाँ पेड़-पौधों एवं पशुओं

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



की पर्याप्त उपलब्धता हो, ताकि वहाँ रहने वाले लोगों को भोजन प्राप्त हो सके। अर्थात् जनसंख्या प्रारूप में भी अंशत: जलवायविक कारण शामिल हैं, क्योंकि लोग वैसे ही पर्यावरण या स्थल में रह रहे होंगे, जहाँ उनके लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हों। बाद में जब जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी, तो उपलब्ध सामान वहाँ उपलब्ध जनसंख्या का भरण-पोषण में असमर्थ होगा। इन्हीं परिस्थितियों में लोगों द्वारा तकनीक का विकास हुआ होगा एवं कृषि की शुरुआत हुई होगी, ताकि बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो सके।

**प्रश्न 2. व्यवस्था प्रारूप में शिकार संग्रह जीवन-शैली से कृषि जीवन-शैली में संक्रमण को किस तरह व्याख्यायित किया गया?**

**उत्तर**–प्रारम्भिक मानव द्वारा शिकारी-संग्रहकर्त्ता से कृषक बनने की प्रक्रिया कोई अचानक घटित होने वाली घटना नहीं थी। जब विश्वव्यापी जलवायु में परिवर्तन हुआ, तो इसका प्रभाव शिकारी-संग्रहकर्त्ता की जीवन-शैली पर भी पड़ा। साथ ही पौधों एवं पशुओं की प्रकृति में भी अन्तर आया। समय के साथ शिकार और संग्रह की तकनीक भी विशेषीकृत होती चली गई तथा आदिमानवों को पौधों एवं पशुओं की गहरी जानकारी होती गई, जो कृषि के प्रारम्भ के लिए एक अनिवार्य पहलू था। इसी सन्दर्भ में बिनफोर्ड एवं केंट फ्लैन्नरी जैसे विद्वानों ने भी शिकार और संग्रह से कृषि की ओर संक्रमण के लिए क्रमागत विकास का सिद्धान्त ही अपनाया। यहाँ तक कि डार्विन ने भी कृषि की शुरुआत की एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में ही व्याख्या की थी।

फ्लैन्नरी ने खाद्य उत्पादन की ओर संक्रमण के तरीके का विश्लेषण करते हुए इसे मुख्यत: तीन अवधारणाओं पर आधारित माना है–

*(i)* खाद्य उत्पादन के पूर्व शिकारी-संग्रहकर्त्ता की आबादी में बढ़ोतरी हुई थी।

*(ii)* खाद्य उत्पादन का आरम्भ उन लोगों में हुआ, जहाँ प्रकृति बहुत अनुकूल नहीं थी।

*(iii)* खाद्य उत्पादन के कई केन्द्र थे तथा खेती की शुरुआत से पूर्व ये लोग किसी विशिष्ट परिवेश के आदी नहीं थे।

इस प्रकार केंट फ्लैन्नरी ने कृषि की ओर संक्रमण हेतु व्यवस्था सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार मौसम में बदलाव के साथ शिकारी-संग्रहकर्त्ता एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे, जिस कारण उन्हें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों एवं पशुओं का ज्ञान होता गया। मेक्सिको की दक्षिणी ऊपरी भूमि में 'नकारात्मक प्रतिपुष्टि' सिद्धान्त अर्थात् प्रकृति को संचालित करने वाले इस सिद्धान्त, जिसमें अलग-अलग समय में अलग-अलग क्षेत्रों, अलग-अलग फसल उत्पादित करते थे, के अनुसार शिकारी-संग्रहकर्त्ता अपने शिकार और संग्रह की गतिविधियों को इसी के अनुरूप व्यवस्थित करते थे। विभिन्न प्रान्तों में उपलब्ध पौधों और पशुओं के अनुसार समूह की गतिशीलता और आकार निर्धारित होता था। इस प्रकार लोग 'विस्तृत फलकवाली' अर्थव्यवस्था पर आश्रित थे, न कि थोड़े पौधों और पशुओं पर उनका जीवन आधारित था। साथ ही शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं के क्षेत्रों में भी वृद्धि हुई, ताकि उन स्थानों पर किसी खास पौधे को उगाया जा सके। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि एक पौधा दूसरे को दबा भी देता था। जागरोस पहाड़ी क्षेत्रों में गेहूँ एवं ऊपरी मैक्सिको में मक्का इसी प्रकार का पौधा था। ये विभिन्न प्रकार के पौधों में सन्तुलन भी रखते थे। जहाँ प्रारम्भ में शिकारी-संग्रहकर्त्ता घूम-घूमकर भोजन इकट्ठा किया करते थे, वहीं अब वे लोग एक जगह रुके रहकर अन्न उत्पादन करने लगे।

कोलिन रेनफ्रियू ने भी सांस्कृतिक परिवर्तन की व्याख्या करते हुए व्यवस्था सिद्धान्त को स्वीकार किया है। एम. कोहेन के अनुसार कृषि के आरम्भ के लिए पर्यावरणीय परिवर्तन की अपेक्षा मनुष्य की चाहत का विशेष योगदान था। इनका यह भी मानना है कि कृषि का विकास जनसंख्या वृद्धि के कारण ही हुआ। इनके अनुसार यह अतिरिक्त भोजन उपलब्ध करवाने के कारण ऐसा नहीं हुआ, बल्कि सघन खेती की शुरुआत अतिरिक्त श्रम लगने के कारण हो सकती थी और इसी के कारण खेती शुरू की गई। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन के लाभों को जानते हुए भी खेती करने के लिए एक खास आबादी का होना जरूरी था। जैसे खेती करने के लिए अधिक जमीन की आवश्यकता पड़ने पर पेड़ों को काटने, जलाने तथा मैदान साफ करने का काम करना पड़ता था। और इन सब कार्यों के लिए पर्याप्त श्रम की आवश्यकता थी। कोहेन ने माना कि शिकारी-संग्रहकर्त्ता समूह में जनसंख्या की वृद्धि अचानक नहीं हुई, बल्कि यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया थी। इस वृद्धि के फलस्वरूप क्षेत्रों का विस्तार हुआ तथा लोग ऐसे क्षेत्रों का भी उपयोग करने लगे जो अब तक अछूते पड़े थे। धीरे-धीरे लोगों ने अपनी जरूरतों को खेती द्वारा ही पूरा करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार इस व्यवस्था सिद्धान्त में केवल परवर्ती अभिनूतन युग के दौरान ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्रागैतिहासिक काल में आबादी की वृद्धि के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इस सन्दर्भ में बारबरा बेन्डर का भी यही तर्क है कि जनसंख्या की वृद्धि अपने आप होने वाली घटना नहीं है, बल्कि जीवनयापन की गतिविधियों के फलस्वरूप प्रौद्योगिकी के स्तर, वितरण तथा विनिमय आदि प्रभावित होता गया, जिसका सीधा प्रभाव जनसंख्या पर भी पड़ा। इनका यह भी मानना है कि इन परिवर्तनों के कारण सामाजिक सम्बन्ध में भी परिवर्तन हुआ जिस कारण नए तरीके अपनाने की रणनीतियों एवं लोगों के भोजन प्राप्त करने के तरीके में भी परिवर्तन आया। इस प्रकार हाल के अध्ययनों में विस्तारवादी अर्थव्यवस्था की

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

इस अवधारणा को भी चुनौती दी जा रही है, जिसके अनुसार अर्थव्यवस्था को एक मजबूत आधार मिलने की प्रक्रिया ने किसानों को एक जगह बसाया है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि व्यवस्था सिद्धान्त के माध्यम से विद्वानों ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि शिकारी, संग्रहकर्त्ता से कृषि की ओर संक्रमण की प्रक्रिया एकाएक होने वाली घटना नहीं थी, बल्कि समय के साथ जैसे-जैसे लोगों की आबादी में वृद्धि होती गई, इसका प्रभाव उनकी जीवन-शैली पर पड़ा तथा लोगों ने अब तक जीवन-शैली में पशुओं एवं पौधों के सन्दर्भ में व्यापक जानकारियाँ प्राप्त कर रखी थीं, जिसने इनके द्वारा कृषि की शुरुआत में मदद की। हालांकि ऐसा नहीं है कि इस व्यापक परिवर्तन के लिए कोई एक कारक जिम्मेवार है बल्कि पर्यावरणीय, जनसांख्यिकी तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार के परिवर्तनों का यह सम्मिलित प्रभाव है कि आदिमानव ने शिकारी-संग्रहकर्त्ता से कृषि की ओर संक्रमण किया।

**प्रश्न 3. आरम्भिक चरण में जंगली पौधों को किस तरह उगाया जाने लगा?**

**उत्तर**–शिकारी-संग्रहकर्त्ता द्वारा कृषि की ओर संक्रमण का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है इनके द्वारा पौधों को उगाने की तकनीक का ज्ञान। हालांकि शिकारी-संग्रहकर्त्ता का जीवन घुमन्तू था तथा वे घूम-घूमकर ही अपना भोजन संग्रह करते थे। इस कारण इस क्रम में उन्हें विभिन्न प्रकार के पौधों का ज्ञान होता गया। समय के साथ वे पौधों की प्रकृति तथा प्रजनन का ज्ञान रखने लगे। इस ज्ञान ने उन्हें पौधों को उगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। हालांकि इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि जब मानव शिकारी-संग्रहकर्त्ता था, तो उस समय भी कुछ पौधों को उगाया करता था। इजराइल के नाहेल ओरेन से प्राप्त पौधों और बीजों से इस बात की पुष्टि होती है।

आरम्भिक चरण में मानव द्वारा पौधों को उगाने के सन्दर्भ में विभिन्न प्रमाण मिलते हैं। 20 हजार ई.पू. के बाद पश्चिम एशिया के कुछ हिस्सों में वनस्पति की प्रकृति में इस प्रकार के परिवर्तन का प्रमाण मिलता है कि वहाँ बड़े-बड़े दानों वाले बीज और घास उगने लगे थे। उन घासों के बीज हवा चलने से दूर-दराज के इलाकों में फैल जाते थे। हालांकि उन पौधों के तने आसानी से टूट जाते थे और इस प्रकार गेहूँ और जौ के बीज चारों ओर फैल जाते थे। उन पौधों के बीज फसल के पकने के पहले ही फैलने लगते थे। बाद में जब लोगों को उन पौधों का ज्ञान हुआ, तो वे उसे डंडे से बांधकर बचाने लगे तथा इनके बीजों को फिर से बोया जाने लगा। इस प्रकार लोगों ने पौधों को उगाना प्रारम्भ किया। बाद में मानव का प्रयास यह रहा कि ऐसी किस्मों को उपजाया जाए, जो हवा के झोंके से गिरे नहीं और बाद में इसे पीटकर निकाल लिया जाए।

हालांकि बाद में लोगों को कुछ इस प्रकार के जंगली पौधों का भी ज्ञान हुआ, जिनका तना कड़ा होता था तथा जिनके बीज बिखरते नहीं थे। इन पौधों के बीज ज्यादा दिनों तक टिकते थे और ये प्रकृति में बिखरते नहीं थे। लगभग 20 हजार ई.पू. के आसपास जब शिकारी-संग्रहकर्त्ता अपने भोजन में शामिल करने के लिए खाद्य पौधे इकट्ठा कर रहे थे, उस समय उन्होंने अनुभव किया होगा कि ऐसे पौधे लगाने में फायदा है, जिनके तने खड़े रह सकें और उनके बीज बिखरे नहीं। परन्तु इस प्रकार की पौधों की खेती करने के लिए अतिरिक्त प्रयास की जरूरत थी। इसका कारण यह था कि ये जंगली पौधे अन्य पौधों के साथ पहाड़ी क्षेत्रों में उग आते थे, जिनकी मिट्टी जल-निकासी के लिए उपयुक्त थी और इनमें पौधे आसानी से उग आते थे। परन्तु यदि इन पौधों के बीजों को लगाना होता था, तो इन्हें जंगली पौधों से दूर रखने की जरूरत थी, ताकि दूसरे पौधे इनका अतिक्रमण न कर सकें। एक दूसरी समस्या यह थी कि पौधों को लगाने के लिए समतल भूमि आवश्यक थी, साथ ही पानी की उपलब्धता भी पर्याप्त होनी चाहिए थी। उपजाऊ अर्द्धचन्द्राकार क्षेत्र में ऐसा परिवेश उपलब्ध था। यही कारण है कि यहाँ कृषि का प्रारम्भ हुआ। हालांकि मानव ने अपने प्रयास से उन जंगली पौधों के जीन में परिवर्तन भी किया। इस प्रकार इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव ने पौधों को उगाने की तकनीक में अपना योगदान भी दिया।

अतः उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक काल में मानव ने किस प्रकार पौधों को उगाने की तकनीक सीखी। वैसे तो प्रारम्भिक तौर पर मानव ने सिर्फ पौधों की प्रकृति को समझने का प्रयास किया था। जंगली पौधों के बीज पहले से ही प्रकृति में उपलब्ध थे, पर जब मानव ने उसके बीजों को इकट्ठा करके पुनः लगाना प्रारम्भ किया, तो इसके साथ ही इसके प्रजनन काल आदि का ज्ञान मानव को हुआ। इन पौधों के बीच का उपयोग जब मानव भोजन के रूप में करने लगा तो इनको उगाने के प्रति वह ज्यादा संवेदनशील होता गया तथा समय के साथ उसकी किस्मों में भी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया।

**प्रश्न 4. दक्षिण-पश्चिम एशिया में आरम्भिक कृषि की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्त्विक प्रमाणों से यह बात ज्ञात होती है कि लोगों ने पौधों और पशुओं को अधिक उपयोगी बनाने तथा उत्साह के कारण खेती नहीं अपनाई, बल्कि बढ़ती आबादी और बदलते पर्यावरण परिवेश के फलस्वरूप मनुष्य ने पौधों और पशुओं का इस तरह उपयोग करना प्रारम्भ किया, ताकि वे लम्बे समय तक इसका उपयोग कर सकें। जहाँ तक दक्षिण-पश्चिम एशिया में कृषि के प्रारम्भ की बात है, तो विद्वानों का यह मानना है कि अभिनूतन युग के अन्त में पश्चिम एशिया की जलवायु में

www.neerajbooks.com



व्यापक परिवर्तन के कारण शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं का जीवन भी परिवर्तित हुआ। हालांकि ताजा अनुसन्धान यह स्पष्ट करते हैं कि पश्चिम एशिया के प्रत्येक हिस्से में जलवायु परिवर्तन एक साथ नहीं हुआ।

15000 ई.पू. के बाद दक्षिण-पश्चिम एशिया के तापमान में वृद्धि हुई और लेवेन्ट और सीरिया में वनों के विस्तार का प्रमाण मिलता है। इस समय तक यह स्थान मनुष्य के रहने के लिए अनुकूल हो चुका था। वर्षा ज्यादा होने से पूर्वी भूमध्यसागर क्षेत्र के तटीय पहाड़ों में भी वनों के प्रसार का प्रमाण मिलता है। वन और घास के मैदान दोनों ही वनस्पति और पशु की दृष्टि से सम्पन्न थे। लेवेन्ट में दो किस्म के गेहूँ और जौ उगाए जाते थे। हालांकि 11000 ई.पू. तक जॉर्डनीयाई घाटी में नातुफियाई समुदाय ने अपने आप को काफी विकसित कर लिया था। इन लोगों ने भोजन संग्रह का कौशल इस हद तक विकसित कर लिया था कि वे कुछ खास क्षेत्रों में लम्बे समय तक टिक सकते थे। ये लोग धीरे-धीरे बांजफल जैसी टिकने वाली वनस्पतियों को भोजन के रूप में ग्रहण करने लगे थे, जो एक जगह स्थायी बसने में उपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रकार 10000 ई.पू. तक ये लोग अनुकूल पर्यावरण वाले इलाकों में रहने लगे जहाँ पानी एवं जानवरों के लिए चरागाह उपलब्ध थे। ऐसा नहीं है कि स्थानबद्ध जीवन के लिए भोजन उत्पादन अनिवार्य शर्त थी, लेकिन जब भोजन संग्रहकर्त्ता ऐसी जगहों पर जाकर बसने लगे जहाँ दूसरे लोग पहले से बसे हुए थे, तो संसाधनों का सन्तुलन गड़बड़ा गया। इस सन्तुलन को बनाने के लिए लोग भोजन प्राप्त करने के नए तरीके ईजाद करने लगे। इसी का परिणाम था कि वे लोगों द्वारा जानवरों पर नियन्त्रण बढ़ा तथा पौधों को नियोजित तरीके से बोने और काटने लगे। इस प्रकार इन लोगों द्वारा कृषि का आरम्भ हुआ।

हालांकि दक्षिण-पश्चिम एशिया में अपवादस्वरूप ही पौधों को लगाया जाना और जानवरों को पाला जाना स्वतन्त्र रूप में हुआ था। आमतौर से लोग वैसे क्षेत्रों में ही बसे जहाँ पानी, कृषि योग्य भूमि और चरागाह उपलब्ध थे। दक्षिण-पश्चिम एशिया में बीधा और जेरिको दो ऐसी ही बस्तियाँ थीं, जहाँ ये सभी संसाधन उपलब्ध थे। बीधा में उत्खनन के पश्चात् मटर, मसूर और अन्य रेशेदार और प्रोटीनयुक्त पौधों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। बाद के वर्षों में बीधा से आरम्भिक सिंचाई तकनीक के विकास का भी प्रमाण मिलता है, जो यह प्रमाणित करता है कि कृषि यहाँ अपेक्षाकृत विकसित अवस्था में होती थी। जेरिको के निचले स्तर में भी लोग स्थायी रूप से रहा करते थे। हालांकि यहाँ गेहूँ और जौ आसपास के क्षेत्रों में नहीं पाए जाते थे। सम्भवत: यहाँ इसे जॉर्डन घाटी से लाया गया होगा। आरम्भ में इन फसलों की खेती करने के बाद आरम्भिक किसानों ने इसे पर्यावरण के अनुकूल बनाते हुए अधिशेष उत्पादन किया होगा। हालांकि 8000 ई.पू. के बाद बीधा एवं जेरिको की इन बस्तियों के लुप्त होने के भी प्रमाण मिलते हैं। विद्वानों का यह तर्क है कि खेती के लिए व्यापक स्तर पर वनों की कटाई हुई होगी, जिससे यहाँ की परिस्थिति प्रभावित हुई होगी तथा ये बस्तियाँ नष्ट हो गई होंगी।

हालांकि पश्चिम एशिया के कृषीय स्थलों में भी बस्तियों की निरन्तरता का प्रमाण मिलता है। साथ ही कुरदिस्तान के करीम शहर, शानिदर और तेप असियाब जैसे स्थलों पर खुदाई से यह ज्ञात होता है कि यहाँ शिकारी-संग्रहकर्त्ता जंगली अनाज और पौधे उगाया करते थे। यहाँ खुदाई से गेहूँ, जौ, मटर और मसूर के दाने के अवशेष भी मिले हैं। दक्षिण मेसोपोटामिया के कुछ हिस्सों खासकर अक्कड़ एवं सुमेर में सिंचाई-आधारित कृषि के प्रमाण मिले हैं। यहाँ मुख्यत: खजूर की खेती होती थी।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि दक्षिण-पश्चिम एशिया में क्रमिक रूप से कृषि का विकास हुआ। कुछ क्षेत्रों में कृषि हेतु अनुकूल पर्यावरण के साथ-साथ अन्य संसाधन भी उपलब्ध थे, जिन्होंने कृषि के विकास में मदद की। ऐसे क्षेत्रों में बीधा एवं जेरिको महत्त्वपूर्ण बस्तियाँ थीं। फसलों में मुख्यत: गेहूँ, जौ एवं मटर की कृषि का अधिक प्रचलन था, जबकि कुछ क्षेत्रों में मक्का एवं खजूर की खेती के भी प्रमाण मिलते हैं।

**प्रश्न 5. मेक्सिको और अमेरिका में कृषि के आरम्भ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।**

**उत्तर**–आरम्भिक काल में हालांकि सभी क्षेत्रों में कृषि का आरम्भ एक साथ नहीं हुआ, परन्तु यह सत्य है कि जिन क्षेत्रों में प्रारम्भ हुआ वहाँ इसका प्रारम्भ एक संग्रहण से कृषि की ओर संक्रमण के रूप में हुआ। भोजन संग्रह से कृषि की ओर मानव का रुख भयानक नहीं हुआ, बल्कि इसके लिए जलवायु परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन जैसे जनसंख्या में हुए परिवर्तन कारक जिम्मेदार रहे। कुछ क्षेत्रों में तो लोगों द्वारा शिकार-संग्रहण तथा कृषि दोनों ही कार्य किए जाते थे। मैक्सिको और अमेरिका अर्थात् मेसो-अमेरिका ऐसा ही क्षेत्र है, जहाँ आरम्भिक मानव ने खानाबदोश जीवन-शैली के साथ-ही-साथ कुछ फसलों को भी उगाया।

प्रशान्त महासागर और मैक्सिको की खाड़ी के बीच का भौगोलिक क्षेत्र मेसो-अमेरिका के नाम से जाना जाता था। इस क्षेत्र का पर्यावरण बहुत अनुकूल नहीं था अत: लोगों द्वारा कोई एक जीवन-शैली निर्बाध रूप से नहीं अपनाई गई। यहाँ के शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं को शिकार करने तथा भोजन संग्रह में भी काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता था। कारण यह था कि यहाँ पर्यावरण इस तरह का था कि न तो यहाँ पर्याप्त मात्रा में वनस्पतियों की उपलब्धता थी और न ही पशुओं की। यहाँ की जलवायु समय के साथ इतनी शुष्क होती गई कि लोगों को इस पर्यावरण परिवेश

www.neerajbooks.com

में शिकार एवं संग्रह करना भी मुश्किल होने लगा। इन परिस्थितियों में लोगों ने अपनी जीवन-शैली में कुछ परिवर्तन किया तथा शिकार और संग्रह को भी मौसम आधारित बना लिया, ताकि संसाधनों पर अनावश्यक बोझ न पड़े। तेहुअकान खाड़ी क्षेत्र जो कि मेक्सिको से 125 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित था, में रहने वाले लोग जाड़े में शिकार किया करते थे और गर्मी के दिनों में घाटी के जल वाले क्षेत्रों में फल और बीज इकट्ठा किया करते थे।

यहाँ की प्रतिकूल परिस्थिति के कारण लोग एक पारिस्थितिकी क्षेत्र से दूसरे पारिस्थितिकी क्षेत्र में जाते थे, जिससे विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त प्रजातियों के बारे में उनकी जानकारी में वृद्धि होती थी। हालांकि मेसो-अमेरिका के निचले अर्थात् मैक्सिको एवं ऊपरी हिस्से अर्थात् अमेरिका दोनों हिस्सों में लोग मक्का, कुम्हड़ा और फली उपजाया करते थे। साथ ही लोग हमेशा नए क्षेत्रों की खोज में प्रयासरत रहते थे। इसी का परिणाम था कि 7000 ई.पू. तक छोटे शिकारी-संग्रहकर्त्ता समूह नदियों के किनारों के सहारे बसने लगे। हालांकि उन शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं द्वारा प्रारम्भ में शिकार और संग्रह को ही जीवनयापन के साधन के रूप में अपनाया गया, लेकिन बसने के लगभग 4 हजार वर्षों के बाद इनके द्वारा भी कृषि उत्पादन के प्रमाण मिलते हैं। कृषि उत्पादन के साथ ही ये लोग भी ग्रामीण जीवन के परिवेश में ढलने लगे। यहाँ तक कि 5400 ई.पू. तक लोग पूरी तरह गाँवों में रहने लगे तथा मक्का भी पैदा करने लगे। इनके कृषि उत्पादों में मक्का के साथ-ही-साथ कुम्हड़ा एवं बीन्स भी शामिल हो गया जबकि यहाँ रहने वाले लोगों का मुख्य भोज्य अनाज था। इन लोगों को इस बात का ज्ञान भी हो चुका था कि जो पौधा उस भूमि में उगाया जा सकता है, उसे किसी भी पारिस्थितिकी क्षेत्र में उगाया जा सकता है। हालांकि मेसों-अमेरिका में रहने वाले लोगों ने कृषि तो अवश्य अपनाई, पर खानाबदोशी एवं घुमन्तू जीवन-शैली को भी इन्होंने पूरी तरह नहीं छोड़ा।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मेक्सिको एवं अमेरिका में कृषि का प्रारम्भ तो अवश्य हुआ, पर यहाँ के लोगों ने खानाबदोश जीवन-शैली को भी पूरी तरह नहीं त्यागा था। इन दोनों क्षेत्रों की पर्यावरण परिस्थितियाँ ऐसी थीं जो शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं के लिए भी अनुकूल नहीं थीं। इससे स्पष्ट होता है कि अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा यहाँ कृषि का प्रारम्भ कुछ विलम्ब से हुआ होगा तथा साथ ही इसके विकास में लोगों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा होगा। हालांकि यहाँ की शुष्क जलवायु में मक्का, कुम्हड़ा और बीन्स जैसे मोटे अनाज की कृषि होती थी, क्योंकि ये फसलें गेहूँ या मटर की अपेक्षा कम पानी वाले क्षेत्रों में भी विकसित हो सकती थी।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न–यूरोप में कृषि के आरम्भ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।**

**उत्तर**–इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लम्बे समय तक होने वाले हिमाच्छादन और अन्तर-हिमाच्छादन और जलवायु में होने वाले परिवर्तन के कारण भोजन प्राप्त करने के तरीकों में परिवर्तन होता रहा। शिकार और संग्रह के तरीके भी हमेशा एक जैसे नहीं रहे तथा दुनिया के हर हिस्से में भी परिवर्तन एक जैसा नहीं रहा। विश्व के अन्य भागों की तरह यूरोप में भी कृषि का आरम्भ भी धीरे-धीरे ही हुआ। हालांकि यूरोप की जलवायु भी लोगों के बसने के लिए अनुकूल थी। साथ ही जब अभिनूतन काल में जलवायु में परिवर्तन हुआ। इसका व्यापक असर यूरोप के भौतिक क्षेत्र पर पड़ा।

जलवायु परिवर्तन के कारण हंगरी, जर्मनी और फ्रांस में कई झीलों का निर्माण हुआ, हालांकि झरनों का लाभ शिकारी-संग्रहकर्त्ता पहले से ही उठा रहे थे। उत्तर-पश्चिम यूरोप में मध्यपाषाण युग के पुरातात्त्विक आँकड़ों से यह पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन होने से इन क्षेत्रों में वनस्पति एवं पशुओं की उपलब्धता पर्याप्त हो गई। इन प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के कारण ही इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा भोजन संग्रहण का तरीका अपनाया गया। समय के साथ जब जनसंख्या में वृद्धि हुई, तो संसाधनों का सन्तुलन बिगड़ना प्रारम्भ हुआ तथा लोगों के लिए भोजन संग्रह काफी श्रम-साध्य होता गया। इसी क्रम में लोगों ने पौधों को उगाना प्रारम्भ किया तथा यूरोप में कृषि का आरम्भ हुआ। हालांकि यूरोप में सर्वप्रथम गेहूँ और जौ की कृषि का प्रमाण मिलता है। 9000 ई.पू. में इसका प्रमाण मुख्यत: ग्रीस से मिलता है। इस क्षेत्र में बाल्कन प्रायद्वीप की जलवायु एवं वर्षा खेती के लिए काफी अनुकूल थी। इस क्षेत्र में उपजाऊ बाढ़ के मैदानों में खेती के आरम्भिक प्रयोग काफी सफल रहे थे। यहाँ किसान मुख्यत: गेहूँ और जौ उपजाते थे। हालांकि बाल्कन क्षेत्र में भी पश्चिम एशिया और अनातोलिया की तरह तापमान में काफी उतार-चढ़ाव पाया जाता था। विद्वानों का यह भी मानना है कि यहाँ के लोगों का पड़ोसी अनातोलिया से सांस्कृतिक सम्पर्क था, इस कारण भी यहाँ के लोगों को खेती करने में मदद मिली। ऐसा भी प्रतीत होता है कि बाल्कन क्षेत्र से लोग इधर-उधर गए होंगे और शिकारी- संग्रहकर्त्ता के हर परिवेश में ढल जाने के कारण लगभग 7000 वर्ष पूर्व यूरोप के समशीतोष्ण या मध्य यूरोप के उपजाऊ क्षेत्र में जाकर बस गए होंगे। यह स्थान जौ, गेहूँ और तीसी जैसी फसलों की उपज के अनुकूल था।

यूरोप में कृषि हेतु लोगों द्वारा वैकल्पिक कृषि के भी प्रमाण मिलते हैं। यहाँ लोग बारी-बारी से अलग-अलग फसल लगाया करते थे। साथ ही एक बार फसल लेने के बाद खेतों को परती छोड़ने की

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



विधि का इस्तेमाल करते थे जिससे खेतों की उर्वरता बनी रहती थी। हालांकि बाल्कन और शीतोष्ण यूरोप की तुलना में उत्तरी-पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में कृषि का आरम्भ देर से हुआ, जबकि पूर्वी यूरोप में जैविक विविधता एवं समृद्ध वनस्पति के कारण लोगों का जीवन लम्बे समय तक शिकारी-संग्रहकर्त्ता के रूप में ही चलता रहा। पर जैसे ही इन क्षेत्रों में भी आबादी में वृद्धि हुई, तो लोगों को अपने जीने के तरीके में परिवर्तन करना पड़ा, क्योंकि बढ़ती आबादी के लिए उपलब्ध संसाधन पर्याप्त नहीं थे। चूंकि उन लोगों का भी अपने पड़ोसियों से सांस्कृतिक सम्पर्क था, जो कृषि का कार्य आरम्भ कर चुके थे। अत: इन्हें कृषि की शुरुआत करने में मदद मिली। हालांकि यूरोप में साइबेरियाई क्षेत्रों में कृषि की शुरुआत सबसे बाद में हुई और वह भी थोड़े पैमाने पर, इसका कारण यह था कि यहाँ पर्यावरण एवं जमीन दोनों ही कृषि हेतु अनुकूल नहीं थे।

इस प्रकार, उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि यूरोप में भी कृषि का आरम्भ विश्व के अन्य भागों की अपेक्षा धीरे-धीरे ही हुआ। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि यहाँ सभी क्षेत्रों में कृषि का प्रारम्भ एक साथ नहीं हुआ। जिन क्षेत्रों की जलवायु एवं भूमि कृषि के लिए ज्यादा अनुकूल थी, वहाँ इसका प्रारम्भ पहले हुआ, जबकि जिन क्षेत्रों में इनकी प्रतिकूलता थी वहाँ बाद में हुआ। कुछ ऐसे भी क्षेत्रों का प्रमाण मिला है कि कृषि के आरम्भ में पड़ोसी क्षेत्रों से उनके सांस्कृतिक सम्बन्ध से मदद मिली है। हालांकि यूरोपीय जलवायु में मुख्यत: गेहूँ, जौ एवं मटर की खेती के अधिक प्रमाण मिले हैं।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# नवपाषाण क्रान्ति

4

## परिचय

आदिकालीन इतिहास को अध्ययन हेतु सुगम बनाने के लिए इसे क्रमशः पुरापाषाण, मध्यपाषाण युग और नवपाषाण युग में विभाजित किया गया है। **जॉन लुब्बॉक** ने पुरापाषाण काल से भिन्नता स्थापित करने के लिए ही नवपाषाण युग की अवधारणा दी। नियोलिथिक शब्द नियो और लिथेस शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है नए पत्थर का काल। हालांकि बीसवीं सदी में इस युग को परिष्कृत एवं चमकदार औजारों के काल के रूप में जाना जाता है, किन्तु इसे केवल औजारों तक सीमित करना बेमानी होगा, क्योंकि यह काल शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं के जीवन में होने वाले परिवर्तन को भी इंगित करता है। इस काल के आगमन के साथ ही आदिमानव की जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन हुआ। उसने शिकार और संग्रह के स्थान पर पौधों को उगाना तथा पशुओं को पालना आरम्भ किया। खेती पर उसकी निर्भरता बढ़ी। साथ ही बस्तियों के आकार एवं जनसंख्या में वृद्धि हुई। सामाजिक और सांस्कृतिक विनिमय इस युग की एक प्रमुख विशेषता रही है। **गार्डन चाइल्ड** ने अपनी पुस्तक 'मैन मेक्स हिमसेल्फ' (1936) में कृषि के आरम्भ को 'नवपाषाण क्रान्ति' की संज्ञा दी। इनके अनुसार होलोसिन के विकट जलवायु संकट को पार कर मानव ने प्रकृति को अपना सहचर बनाया। हालांकि आधुनिक अनुसंधान यह प्रमाणित करता है कि जलवायु में परिवर्तन अचानक नहीं हुआ और न ही आमूल-चूल हुआ। हाँ, यह सत्य है कि जलवायु परिवर्तन से कभी कोई संकट पैदा नहीं हुआ, परन्तु जीवनयापन की शैली पर इसका दूरगामी प्रभाव अवश्य पड़ा। कुछ विद्वानों का मानना है कि कृषि के आरम्भ को क्रांति की संज्ञा देना सही नहीं है, पर इस कृषि के कारण जिस प्रकार सामाजिक और आर्थिक संगठन में परिवर्तन हुआ, वह क्रान्ति का द्योतक अवश्य है। जहाँ पहले मानव शिकार और संग्रहण पर आश्रित था, वहीं कृषि के बाद वह अधिशेष अनाजों का भंडारण भी करने लगा। साथ ही वह विनिमय के माध्यम से अपने जीवन की आवश्यकताओं को भी सुगमता से पूर्ण करने लगा। यह विनिमय न केवल सामान का हुआ, बल्कि इस आर्थिक क्रान्ति के कारण विचारों एवं अनुभवों का भी विनिमय होना प्रारम्भ हो गया।

नवपाषाण युग में खान-पान की आदतों में व्यापक परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले लोग ज्यादातर मांस खाया करते थे, वहीं नवपाषाण युग में मुख्य रूप से अनाज खाया जाने लगा। पश्चिम एशिया में और यूरोप में गेहूँ और जौ, दक्षिणी और पूर्वी एशिया में चावल, अफ्रीका में बाजरा एवं अमेरिका में मक्का लोगों के मुख्य भोजन में शामिल हो गया। कृषि के साथ लोग पशुपालन भी किया करते थे। पशु उनके कृषि कार्य में सहयोग करते थे। इस काल में पूर्ण रूप से कृषि और पशुधन आधारित अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। मवेशियों के पालने से इनके भोजन में दूध और दूध से निर्मित पदार्थ भी शामिल हो गए। अब लोगों ने मांसाहारी की अपेक्षा शाकाहारी भोजन को प्राथमिकता देना आरम्भ कर दिया। शाकाहारी भोजन के कारण नमक की जरूरत बढ़ी तथा लोग इसका व्यापार भी करने लगे।

खेती एवं पशुपालन के फलस्वरूप इस काल के लोगों के जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए। वे एक स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगे। पहले आमतौर से यह माना जाता था कि अगर किसी स्थान पर हंसिया, घिसाई के पत्थर, भंडारण हेतु गड्ढे आदि मिले हैं, तो इस स्थल पर स्थायी बस्ती होगी। पर आधुनिक अनुसंधान से यह भी ज्ञात हुआ कि कुछ गाँव ऐसे भी थे जहाँ औजार एवं किसान के प्रमाण नहीं मिले हैं। मल्लाहा, सुबेरदे ऐसे ही आरम्भिक नवपाषाणिक गाँव थे। नवपाषाण युग में जनसंख्या पर भी प्रभाव पड़ा। पिछले कालखंडों की अपेक्षा इस काल में लोगों की जनसंख्या तेजी से बढ़ी। कुछ ऐसे भी स्थानों के प्रमाण मिले हैं, जहाँ एक से अधिक बार बसने के प्रमाण मिलते हैं। ऐसे स्थानों में केयोनु, जेरिको, जार्मो, क्रीट और साइप्रस जैसे भूमध्यसागरीय द्वीप शामिल हैं। जार्मो तीन से चार एकड़ में बसा हुआ था। पक्की ईंटों का बना हुआ घर भी मिला है। पत्थर की बनी दीवारें भी मिली हैं जो सम्भवतः बाढ़ या अन्य आपदाओं से सुरक्षा हेतु बनाई गई होंगी। एक ऐसा बड़ा गाँव भी मिला है जहाँ सम्भवतः 150 लोग रहा करते होंगे। बीधा में भी दो प्रकार की बस्तियाँ मिली हैं। एक की प्रकृति स्थायी है, जबकि दूसरे

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

की अस्थायी है। पहले की बस्तियाँ अस्थायी प्रकृति की थी, जबकि नवपाषाणिक बस्तियाँ स्थायी प्रकृति की थीं। इनके घरों में गड्ढे एवं चूल्हे मिले हैं। बस्तियों के आकार प्रारम्भ में वृत्ताकार रहे होंगे जो धीरे-धीरे बाद में आकार में परिवर्तित होकर यह आयताकार हो गया। जेरिको में इस प्रकार के आयताकार घर के प्रमाण मिले हैं। इन घरों के चारों ओर पत्थर की दीवारें और मीनारें बनी हुई पाई गई हैं। हालांकि इन दीवारों के निर्माण का उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो पाता, पर ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सम्भवत: इन्हें रक्षा के उद्देश्य से बनाया गया होगा। हालांकि आधुनिक भौगोलिक आकृति विज्ञान से संकेत मिलता है कि ये दीवारें बाढ़ से रक्षा के लिए बनाई गई थीं।

कतल हुयुक से एक ऐसी बस्ती मिली है जो लगभग 32 एकड़ में फैली हुई थी। इसमें कई घर मानक ईंटों से बने हुए थे। इनकी नींव कच्ची ईंटों की बनी हुई थी। ये घर आयताकार थे, तथा उनके अन्दर एक छोटा-सा भण्डारगृह भी होता था। जिसके लिए सीढ़ियाँ बनी हुई होती थीं। सम्भवत: ऐसा बाढ़ एवं बाहरी आक्रमण से सुरक्षा की दृष्टि से बनाया गया था। हालांकि यहाँ केवल आग लगने से ही नुकसान के प्रमाण मिले हैं, जबकि चीन में हेनान प्रान्त के यांगशाओ की सांस्कृतिक बस्तियों का काल लगभग 7100 से 4900 वर्ष पहले का प्रतीत होता है। यहाँ की बस्तियाँ काफी बड़ी हुआ करती थीं। यहाँ कुछ गाँवों में प्रतिरक्षात्मक खाई बने होने के भी प्रमाण मिले हैं। यांगशाओ संस्कृति के प्राप्त घरों के अवशेषों से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग घर में काफी विशेषज्ञता हासिल कर चुके थे।

खेती के लिए उन्नत औजारों का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। खेती के लिए जंगल की सफाई, मिट्टी की गोड़ाई, बीज की बोआई आदि कार्य आवश्यक थे। इन कार्यों के लिए विशेष औजारों की भी आवश्यकता पड़ती होगी। जमीन तैयार करने के लिए खेती और फावड़े का उपयोग किया जाता था। कुदाल का प्रयोग करके मिट्टी की खुदाई एवं खेत की लीक बनाई जाती थी। चाकू और हंसिए का उपयोग फसल काटने के लिए किया जाता था। बड़े पेड़ों को काटने के लिए कुल्हाड़ी या बसूले का इस्तेमाल किया जाता था। पहले जहाँ औजारों की धार तेज करने के लिए पत्थर का इस्तेमाल किया जाता था, वहीं नवपाषाण काल में लावा काँच के औजार बनाए जाने लगे। यह एक प्रकार का ज्वालामुखी काँच होता था, जिसकी धार बहुत तेज होती थी। हंसिए जैसे औजार उसी से बनाए जाते थे। कुल्हाड़ी जैसे औजारों की धार को पत्थर पर रगड़कर तेज किया जाता था। इन उन्नत किस्म के औजारों से जंगल साफ करना आसान हो गया तथा खेती के लिए जमीन को भी आसानी से तैयार किया जाने लगा।

इस काल में लोगों द्वारा प्रकृति की वस्तुओं का उचित उपयोग किया जाने लगा था। लोग चिकनी मिट्टी की उपयोगिता को समझ चुके थे। वे इसका इस्तेमाल फर्श बनाने, खिलौने बनाने तथा वस्तुओं के निर्माण में उपयोग करने लगे थे। लोगों ने गोलाकार, शंकु और चकती जैसी छोटी ज्यामितीय वस्तुओं को बनाकर उसका उपयोग मौसम, फसल कटाई आदि के लिए करना आरम्भ कर दिया था। आग से चिकनी मिट्टी को कड़ा करने की तकनीक भी वे जानते थे। जहाँ शिकारी संग्रहकर्त्ता सामान रखने के लिए चमड़े और लकड़ी का इस्तेमाल करते थे, वहीं नवपाषाणकाल के लोग मिट्टी के बर्तन बनाकर इसका उपयोग सामान रखने के लिए करने लगे थे। समय के साथ इनके बर्तन और अधिक परिष्कृत होते गए। उन्हें टिकाऊ बनाने के लिए ये लोग मिट्टी में रेत या कार्बनिक पदार्थ भी मिलाया करते थे। पश्चिम एशिया के कुम्हारों ने बर्तनों को पत्थर से चमकाना भी शुरू कर दिया था। ऐसा अनुमान है कि कुम्हार के चाक के अभाव में पहले किसी गोल वस्तु की सहायता से ये बर्तन की तली को आकार दिया करते होंगे। इसके बाद इसके ऊपर के हिस्से को आकार दिया करते होंगे। आरम्भिक मिट्टी के बर्तनों को या तो धूप में सुखाया जाता था या फिर चूल्हों में पकाया जाता था। परन्तु बाद में इन लोगों के द्वारा सेरामिक बर्तन भी बनाया जाने लगा। हालांकि सेरामिक बर्तन बनाना ज्यादा कठिन काम था। इसके लिए पहले मिट्टी को साफ किया जाता था। इसके बाद इसमें भूसा, पुआल, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े मिलाये जाते थे, ताकि आग में पकाते समय इसमें दरार न पड़ जाए। ऐसे बर्तनों को भट्टियों में उच्च तापमान पर पकाया जाता था, जिस कारण ये काफी मजबूत हुआ करते थे। पश्चिम एशिया, अनातोलिया, ग्रीस और दक्षिणी अमेरिका में नवपाषाण युग के आरम्भिक चरण में ही सेरामिक संस्कृतियों का उदय हो चुका था। हालांकि आरम्भ में चिकनी मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाए जाते थे। पर चाक के आविष्कार के बाद इसके आकार एवं गुणवत्ता में काफी परिवर्तन आया। बाद में इन मिट्टी के बर्तनों को अलंकृत भी किया जाने लगा। हालांकि इन बर्तनों पर चित्रित कलाकृतियों में क्षेत्रीयता भी देखने को मिलती है, जैसे हलफ संस्कृति के समय बर्तनों पर बने चित्र अलग ढंग के थे। यांगशाओ संस्कृति की बस्तियों में भट्टियों के प्रमाण भी मिले हैं। यहाँ उच्च तापमान पर लाल बर्तन पकाए और बनाए जाते थे। यहाँ से भी हाथ के बने मिट्टी के कई बर्तन मिले हैं जैसे-कटोरा, मर्तबान आदि।

हालांकि कृषि के आरम्भ और मिट्टी के बर्तनों का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। यह सत्य है कि इस प्रकार के शिल्प का विकास सामाजिक और आर्थिक अवश्यकताओं के कारण हुआ होगा। इसके भी प्रमाण मिले हैं कि कई शिकारी संग्रहकर्त्ता समाज भी मिट्टी के बर्तन बनाते थे और पत्थर के औजार भी बनाया करते थे। जबकि कई ऐसे खेतिहर समुदायों के भी प्रमाण मिले हैं, जो इन दोनों में से कुछ भी नहीं किया करते थे। मेसो-अमेरिका के तेहुकान घाटी में 7000 ई.पू. के आसपास खेती के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ से पत्थर की चिकनी कुल्हाड़ियाँ भी मिली हैं। अनाजों को रखने के लिए गड्ढे भी पाए गए हैं। हालांकि स्थायी रूप से निवास के कारण खेती के अलावा अन्य कार्य भी लोगों द्वारा किए जाने लगे थे। बुनाई

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



ऐसा ही एक कार्य था। इसके लिए धागे, ऊन, तंतु आदि की आवश्यकता पड़ती है। पश्चिम एशिया में भेड़ और बकरी से तथा दक्षिण अमेरिका में ख्लामा और गुआनेको से ऐसे पदार्थ प्राप्त किए जाते थे। जहाँ तक इससे सम्बन्धित औजारों की बात है, तो सम्भवत: हड्डियों की सुई बनाई जाती थी। इस सुइयों के द्वारा कपड़ों, अन्य सामानों के अलावा मछली मारने के लिए जाल भी बनाया जाता था।

विकसित शिकारी-संग्रहकर्त्ता और किसान एक-दूसरे पर आश्रित थे। इनके बीच उत्पादों का विनिमय भी होता था। मौसम के अनुसार शिकारी-संग्रहकर्त्ता अपना स्थान बदलते रहते थे। अधिशेष अनाजों या दूसरी अन्य वस्तुओं के बदले बहुमूल्य पत्थरों का विनिमय होता था। विनिमय का ही परिणाम है कि लावा काँच के बने औजार पूरे दक्षिण-पश्चिम एशिया में भी पाए गए हैं। इनकी धार बहुत तेज हुआ करती थी। इनका उपयोग खुरचनी और चाकू बनाने के लिए भी किया जाता था। लेवेन्ट से भी ये प्राप्त हुए हैं। आमतौर पर लावा काँच ज्वालामुखी क्षेत्रों में पाया जाता था, पर इस प्राप्ति स्थान से हजारों मील दूर इसका पाया जाना यह प्रमाणित करता है कि इस काल में भी विनिमय व्यापक पैमाने पर होता होगा। इसका व्यापार शीश पिंड या टुकड़ों के रूप में होता होगा। पर जो स्थान लावा काँच के स्रोत से दूर थे, वहाँ इसकी अपेक्षा चकमक पत्थर का इस्तेमाल ज्यादा होता था। जेरिको और जार्मो जो कि लावा काँच के स्रोत से दूर स्थित स्थल थे, वहाँ के किसान चकमक पत्थर का इस्तेमाल ज्यादा किया करते थे। विनिमय से न केवल लोगों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान हुआ, बल्कि उनके बीच सामाजिक बन्धन भी मजबूत हुए। नवपाषाण युग के लोग पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं थे। हालांकि प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि भोजन-संग्रहकर्त्ताओं की अपेक्षा नवपाषाण युग के लोगों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान अधिक होता था। **गार्डन** कहते हैं कि "नवपाषण क्रान्ति ने मनुष्य के अनुभवों को आपस में आदान-प्रदान और बाँटने की प्रवृत्ति को तीव्रता प्रदान की।" हालांकि नवपाषाण के आरंभ में ही धातुकर्म की शुरुआत हो चुकी थी। पश्चिम एशिया में 10 हजार वर्ष पहले ही तांबे जैसी धातु का उपयोग होने लगा था। देसी तांबा तो जमीन के ऊपरी हिस्से से ही प्राप्त किया जाता था। यहाँ तांबा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। कांसे की मृदुता एवं चमक के कारण इससे कलात्मक वस्तुओं का निर्माण भी किया जाने लगा। जब इस बात का ज्ञान हुआ कि तांबे को केवल पीटकर ही आकार नहीं दिया जा सकता, बल्कि इसे उच्च ताप पर गर्म करके पिघलाया जा सकता है, इसके उपरान्त इसे सांचे में ढालकर जटिल आकार भी दिया जाने लगा जो कि हाथ से पीटकर सम्भव नहीं था। बाद में अधिक अशुद्धि वाले अयस्कों से भी तांबा निकाला जाने लगा। इस समय सोना, चाँदी, सीसा और टिन जैसी धातुओं का भी उपयोग शुरू हो चुका था। तांबे से साधारण गहने भी बनाए जाने लगे। कताल हुयुक से तांबे की नलियाँ एवं कार्लेनियन मनकों से बने हार मिले हैं, जबकि बाल्कन में देसी तांबे के गहनों का प्रयोग होता था। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि तांबे के सामान वहाँ से भी प्राप्त हुए हैं, जहाँ यह नहीं पाया जाता था। अर्थात् यह स्पष्ट है कि महत्त्वपूर्ण धातुओं का भी विनिमय होता होगा।

जैसे ही मानव शिकारी-संग्रहकर्त्ता भोजन उत्पादक की ओर अग्रसर हुआ, तो सामाजिक ढांचे में भी परिवर्तन हुआ। खेती के आरम्भ के साथ ही स्पष्ट रूप से परिवार का उदय हुआ। शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं की अपेक्षा कृषकों को अधिक व्यवस्थित सामाजिक ढांचे की आवश्यकता थी, क्योंकि इनकी आर्थिक गतिविधियाँ बिना सहयोग के सम्भव नहीं थीं। इस काल की बस्तियों में कृषि, पशुपालन, बर्तन निर्माण, बुनाई, धातु की कारीगरी आदि कार्य एक साथ होते थे, जिसके लिए श्रम विभाजन आवश्यक था। स्त्री-पुरुषों के मध्य भी श्रम का विभाजन था। गार्डन चाइल्ड कहते हैं कि सम्भवत: महिलाओं ने सर्वप्रथम खेती आरम्भ की क्योंकि वे घर में रहा करती थीं तथा भोजन संग्रह के कार्य में जुटी रहती थीं। उन्हें पौधों की जानकारी पुरुषों की अपेक्षा अधिक थी। पर हाल के अनुसंधान इस तथ्य को गलत बताते हैं कि कृषि की शुरुआत पुरुषों ने की या महिलाओं ने की। इनका यह मानना है कि पौधों और पशुओं की प्रजनन प्रविधियों का ज्ञान अभिनूतन युग में भी लोगों को था। साथ ही कृषि की सफलता और विकास के लिए समाज का हर सदस्य जिम्मेदार था। पर यह भी सही है कि खेती के आरम्भ के साथ ही पुरुषों और स्त्रियों की आर्थिक और सामाजिक भूमिका में व्यापक परिवर्तन आया। महिलाएँ कुदाल से खेत खोदती थीं, बर्तन बनाती थीं, बुनाई करती थीं और साथ ही घर की देखभाल भी करती थीं। खेतिहर समाज में खेती के लिए अधिक मानव संसाधन की भी आवश्यकता थी, इसका भी बोझ महिलाओं पर ही था। जेरिको और कताल हुयुक से प्राप्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि नवपाषाण काल में परिवार के बीच भूमि वितरण की भी व्यवस्था थी। प्रारम्भ में परिवार का स्वरूप संयुक्त हुआ करता था, लेकिन समय के साथ सुविधाओं की माँग ने इन्हें व्यक्तिगत रूप में परिणत कर दिया। परिवार के अन्दर प्रतियोगिता और आर्थिक सुरक्षा की भावना भी पनपी। इन कारणों से घरों के निर्माण में सुरक्षा का भी ध्यान रखा गया। घरों की पत्थर की दीवार से घेराबंदी की जाती थी। दीवार के चारों ओर खाई भी खोदी जाती थी। मेसो-अमेरिका में खुदाई से ऐसे प्रमाण मिले हैं कि गाँव के चारों ओर प्रतिरक्षात्मक दीवारें बनाई गई थीं। इन स्थापत्यों के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक एक व्यवस्थित सामुदायिक संगठन का विकास हो चुका था। घरों के ढांचे ही बताते हैं कि इनका सामाजिक संगठन काफी मजबूत हो चुका था। जहाँ पहले वृत्ताकार झोंपड़ियों के रूप में छोटे-छोटे घर हुआ करते थे, वहीं नवपाषाण युग में आयताकार चित्रों के प्रमाण मिले हैं जिनमें और अधिक कमरे भी जोड़े जा सकते थे। नवपाषाण

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



युग के घरों में सदस्यों के रहने की क्षमता भी पहले की अपेक्षा ज्यादा थी। प्रत्येक घर में भंडार हेतु गड्ढों का निर्माण किया जाता था। इन बड़े घरों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि खेती और पशुपालन से जुड़े कुछ परिवार बड़े परिवार रखना चाहते थे, ताकि खेती एवं उससे जुड़े कामों में उन्हें सहयोग मिल सके।

हालांकि जैसे ही समाज सरलता से जटिलता की ओर अग्रसर होता है, तो उसमें कुछ सामाजिक बुराइयाँ भी उत्पन्न होने लगती हैं, जिसका प्रभाव तनाव और टकराव के रूप में सामने आता है। इन सामाजिक बुराइयों पर नियन्त्रण हेतु कुछ सामाजिक नियम भी बनाए गए होंगे। शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं के मध्य नातेदारी का बन्धन काफी लोचदार था, जबकि नवपाषाण काल में यह पहले की अपेक्षा काफी मजबूत होता चला गया। कारण स्पष्ट है कि जहाँ शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं को अपने कार्य के लिए बहुत अधिक सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, वहीं इस काल में लोगों को कृषि कार्य हेतु एक संगठित समूह की आवश्यकता थी, जिसके लिए नातेदारी एक अच्छा विकल्प होता था। स्थानबद्ध जीवन आरम्भ करने के बाद जब टकराव या तनाव की स्थिति उत्पन्न होती होगी, तो कुछ विशिष्ट लोग इसका समाधान भी अवश्य करते होंगे। सम्भवत: यही विशिष्ट लोग आगे चलकर मुखिया के रूप में सामने आए होंगे। सरल समाज की अपेक्षा इस काल के समाज को अन्य समस्याओं का भी सामना करना पड़ा होगा; जैसे–बीमारियाँ आदि।

जहाँ पहले लोग एक स्थान पर टिककर नहीं रहा करते थे अत: इन्हें ठहरे हुए पानी से होने वाली बीमारियाँ नहीं हुआ करती थीं, पर स्थानबद्ध जीवन आरम्भ करने के बाद नवपाषाण युग के लोगों को इस प्रकार की बीमारियों का सामना करना पड़ा होगा। साथ ही अनाजों को सड़ने तथा कीड़ों-मकोड़ों से बचाने के लिए भी उपाय करना पड़ा होगा। जो व्यक्ति इन समस्याओं से अपने आपको बचाने में सफल होते होंगे, वे समाज के अगुआ या मुखिया होते होंगे। हालांकि कुछ कब्रों से लावा काँच एवं सीपियाँ भी मिली हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की कब्रों में इस प्रकार के बहुमूल्य वस्तुओं को रखने की परम्परा रही होगी।

कृषि के विकास के साथ समाज का स्वरूप जटिल होता गया होगा और स्वाभाविक रूप से जटिल समाज में सौहार्द स्थापित करने के लिए कुछ सर्वमान्य और सामान्य मान्यताओं की आवश्यकता पड़ी होगी। हालांकि ऐसा माना जाता है कि इस काल की मान्यताओं ने ही आगे चलकर उल्लिखित कानून का रूप ग्रहण किया होगा। इस प्रकार के कानून का पालन करवाने का दायित्व गाँव के पुरोहित या मुखिया का होता था। ऐसा अनुमान है कि इस काल में एक सामान्य धर्म और एक सामान्य भाषा ही एक गाँव के लोगों को बाँधकर रखती थी। प्रजनन और उत्पादकता के प्रति भी इनका गहरा लगाव था, जो किसी भी कृषि समुदाय के लिए स्वाभाविक है। इस युग में धर्म मुख्यत: प्रजनन पंथ था, जिसमें पुरुष के रूप में आकाश, सूर्य और वर्षा तथा स्त्री के रूप में पृथ्वी और चाँद आदि प्रतीक थे। ये सभी मूर्तियाँ 'मातृ देवी' की ही पूर्वज थीं। पृथ्वी को माँ माना जाता था, क्योंकि उसकी कोख से ही अनाज पैदा होता था, जबकि प्रजनन क्षमता में पुरुष का प्रतिनिधित्व मिट्टी और अन्य वस्तुओं के बने लिंग करते थे। विद्वानों का यह मानना है कि जब खेतों में हल चलाना, सिंचाई की व्यवस्था आदि महिलाओं के लिए कठिन हो गया, तो धीरे-धीरे कृषकों के धर्म में पुरुष सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण होता चला गया।

इस समाज में जादू और अनुष्ठान का भी स्थान था। लोग पुरापाषाण की अपेक्षा ज्यादा शानो-शौकत से मृतकों का अंतिम संस्कार करते थे। जेरिको और ऐन गजल में सिर काटकर दफनाने का भी प्रमाण मिला है। हालांकि इसके भी प्रमाण मिले हैं कि कभी-कभी मृतकों को घर के नीचे ही दफन कर दिया जाता था। पुरातात्त्विक अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि आरम्भिक किसान मृत्यु के बाद भी किसी प्रकार के जीवन में विश्वास करते थे। नवपाषाण कब्रों में एकल और सामूहिक दोनों प्रकार की कब्रें मिली हैं। लोगों को दफनाने में उनकी हैसियत एवं सम्मान का भी ख्याल रखा जाता था। यूरोप में काफी विशाल और वृहद् कब्रें मिली हैं। आरम्भ में कब्रों के साथ दफनाया जाने वाला सामान काफी सामान्य होता था, पर समय के साथ सामाजिक अन्तर बढ़ने के कारण इन कब्रों में दफनाई जाने वाली वस्तुएँ काफी कीमती एवं अलंकृत होती चली गईं।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. नवपाषाण युग के दौरान खेती करने से मनुष्य के खान-पान और रहन-सहन पर क्या प्रभाव पड़ा?**

**उत्तर**–आरम्भिक मानव द्वारा प्रारम्भ में शिकारी-संग्रहकर्त्ता की जीवन-शैली अपनाई गई जिसमें उनका भोजन आमतौर से जंगली वनस्पतियां या फिर पशुओं का मांस हुआ करता था। पुरापाषाण काल में लोगों का सामाजिक जीवन भी काफी सरल था तथा उनके पास भोजन के लिए बहुत अधिक विकल्प मौजूद नहीं थे। परन्तु के समय के साथ जब इनके जीवनयापन के तरीकों में परिवर्तन हुआ, तो इसका प्रभाव उनके भोजन पर पड़ा। जैसे ही मानव ने नवपाषाण काल में कृषि एवं पशुपालन को अपने जीवनयापन का साधन बनाया, इसके साथ ही समाज में भी व्यापक परिवर्तन आया तथा भोजन में भी विविधता आई।

जहाँ पुरापाषाण काल में लोग ज्यादातर मांस खाया करते थे, वहीं मध्यपाषाण काल में इनके भोजन में कुछ विविधता आई। पर नवपाषाण काल में इनके भोजन की आदतों में व्यापक परिवर्तन आया। नवपाषाण युग में लोगों के भोजन में अनाज का स्थान प्रमुख हो गया। लोग विविध प्रकार के अनाजों को उपजाने लगे थे तथा उसे अपने भोजन में शामिल कर लिया गया था। हालांकि अनाजों के

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मामले में भी क्षेत्र के अनुसार विविधता देखने को मिलती है। ऐसा नहीं था कि सभी क्षेत्रों में लोगों के द्वारा एक ही अनाज को भोजन के रूप में ग्रहण किया जाता था। इसका मुख्य कारण यह था कि अलग-अलग क्षेत्रों में जलवायु में विविधता के कारण अलग-अलग फसलें उगायी जाती थीं। उदाहरण के तौर पर पश्चिम एशिया और यूरोप में गेहूँ और जौ लोगों का मुख्य भोजन था, जबकि दक्षिणी और पूर्वी एशिया में लोग चावल ज्यादा खाते थे। अफ्रीका में बाजरा और अमेरिका में मक्का की अधिक खेती होने के कारण यहाँ के लोगों के द्वारा इसे मुख्य भोज्य पदार्थ के रूप में ग्रहण किया जाता था। हालांकि खाद्य उत्पादन करने वाली अर्थव्यवस्था का विकास भी एक सीधी रेखा में नहीं हुआ। इसका विकास मुख्यत: दो चरणों में हुआ। पहला चरण आरम्भिक चरण था, जिसमें लोगों के द्वारा थोड़ी-बहुत खेती प्रारम्भ की गई। हालांकि इस चरण में लोग खेती के साथ-साथ पशुपालन भी किया करते थे। पर इस चरण में लोगों का मुख्य भोजन जंगली कंदमूल तथा मांस ही था। इसका कारण यह था कि अभी भी लोगों का जीवनयापन शिकार और संग्रह पर ही आधारित था। इसके बाद का चरण अर्थात् दूसरे चरण का आगमन लगभग 8 हजार वर्ष पुराना था। इस चरण में लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती हो गया। इनके द्वारा मुख्यत: खाद्य पदार्थ उपजाए जाते थे। इस चरण में लोगों के पशुपालन का स्तर भी पहले की अपेक्षा विकसित अवस्था में था। लोगों के द्वारा पशुओं की विविध प्रजातियाँ पाली जाने लगीं। इन पशुओं में मवेशी, भेड़, बकरी और सूअर प्रमुख थे। मवेशियों के पाले जाने के कारण दूध के रूप में एक अन्य भोज्य पदार्थ उन्हें प्राप्त हुआ। लोगों के भोजन में दूध एवं उससे बने पदार्थों की प्रमुखता बढ़ती गई। इस प्रकार जहाँ पहले लोग ज्यादातर मांसाहारी होते थे, वहीं नवपाषाण काल में लोगों ने शाकाहारी भोजन को प्राथमिकता देना प्रारम्भ कर दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि नवपाषाण काल में लोगों के पास अनाज एवं दूध की पर्याप्त उपलब्धता थी। हालांकि शाकाहारी भोजन अपनाने के कारण इनके भोजन में नमक की जरूरत भी बढ़ने लगी। लोग नमक का अधिक-से-अधिक उपयोग करने लगे थे, क्योंकि यह भोज्य पदार्थों के स्वाद को परिवर्तित कर देता था। नमक के अधिक उपयोग के कारण इसका व्यापार भी होने लगा। हालांकि खानपान में होने वाले इस अमूल परिवर्तन के कारण मनुष्य की शारीरिक बनावट एवं बीमारियों पर भी असर पड़ा। खाद्य पदार्थों की पर्याप्त उपलब्धता के कारण एक ओर तो लोगों की जीवन अवधि लंबी हुई, पर वहीं दूसरी ओर वृष्टि के कारण पानी का जमाव हुआ, जिससे मच्छरों की संख्या में भी वृद्धि हुई, जो मलेरिया जैसी बीमारी का वाहक था। हालांकि यह तो स्पष्ट है कि नवपाषाण काल में कृषि एवं पशुधन आधारित अर्थव्यवस्था ने लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया।

अत: उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि नवपाषाण काल में कृषि के आरम्भ के साथ ही लोगों की जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन आया। खासकर जब हम इस काल में लोगों के पास खान-पान के तौर-तरीकों पर अपने आपको केन्द्रित करते हैं, तो हम पाते हैं कि इस काल में लोगों के पास खान-पान के सन्दर्भ में काफी विकल्प थे। इनके भोज्य पदार्थों में भी काफी विविधता देखने को मिलती है, जिससे लोगों का खान-पान जहाँ पहले मुख्यत: मांसाहारी था, वहीं इस काल में इनके द्वारा शाकाहारी भोजन को प्राथमिकता दी जाने लगी।

पर ऐसा नहीं है कि नवपाषाण काल में केवल लोगों का खान-पान का तरीका बदला, बल्कि इनके रहन-सहन के तरीकों में भी परिवर्तन आया। जहाँ पुरापाषाण काल में लोग सामान्यत: अस्थायी घरों में रहा करते थे तथा इनका जीवन घुमन्तू था, वहीं कृषि के विकास के कारण इस काल में लोगों ने स्थायी घरों में रहना प्रारम्भ किया। स्थायी निवास बनाकर रहना लोगों की अनिवार्यता भी थी, क्योंकि कृषि के लिए यह आवश्यक था कि लोगों के द्वारा जो फसल लगाई जाए उसको पकने के बाद ही काटा जा सकता था। सामान्यत: फसलों को पूर्णत: पकने में चार माह का समय लगता है। जहाँ पुरापाषाण काल में लोगों के द्वारा कुछ ऐसे अस्थायी घरों का निर्माण किया जाता था, जो वृत्ताकार झोंपड़ियाँ थीं, वहीं नवपाषाण काल में लोगों द्वारा स्थायी प्रकृति के घरों का निर्माण किया गया जिनका आकार आयाताकार होता था तथा इस प्रकार के घरों में और भी कमरे जोड़े जाने की सम्भावना होती थी। इनके घरों में आंगन भी होता था। खाद्य पदार्थों को संगृहीत करने के लिए गड्ढे खोदकर भंडारगृह भी बनाया जाता था। लोग अपने घरों के निर्माण में बाढ़ आदि से सुरक्षा का भी ध्यान रखते थे। हालांकि जैसे ही नवपाषाण काल में कृषि का विकास हुआ, वैसे ही समाज की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ। जनसंख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई। इन सब कारणों से समाज में प्रगतियोगिता की भावना भी विकसित हुई एवं लोगों के रहन-सहन एवं गृह-निर्माण में सुरक्षात्मक उपायों को भी शामिल किया जाने लगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवपाषाण काल में लोगों के खान-पान के तरीके के साथ-साथ उनके रहन-सहन के तरीके में भी व्यापक परिवर्तन आया। जहाँ पुरापाषाणकालीन समाज सरल समाज था, वहीं इस काल में समाज का स्वरूप सापेक्षत: जटिल होता गया। इनके निवास स्थल भी स्थायी होते थे। लोग एक स्थान पर टिककर रहने लगे। स्थायी जीवन व्यतीत करने के कारण उनके पारम्परिक सम्बन्धों में भी मजबूती आई।

www.neerajbooks.com

**प्रश्न 2. पुरापाषाण युग के औजार परवर्ती नवपाषाण युग के औजारों से किस प्रकार भिन्न थे?**

**उत्तर**–पुरापाषाण युग में मानव शिकारी और संग्रहकर्त्ता का जीवनयापन करता था। संग्रह हेतु तो किसी विशेष औजार की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु शिकार हेतु मानव द्वारा कुछ औजारों का विकास किया गया था, जो आमतौर पर पत्थर या हड्डियों के बने होते थे। इस काल में औजारों की धार भी ज्यादा नहीं होती थी। खासकर निचला पुरापाषाण के औजार तो काफी सामान्य थे। इस काल के औजारों के निर्माण में मानव उसके प्राकृतिक रूप से ज्यादा छेड़छाड़ नहीं करता था। इस काल के औजारों में गंडासा प्रमुख औजार था, जो पत्थर के फलक को एक तरफ से निकालकर बनाया जाता था। इस काल में बाद में हाथ की कुल्हाड़ी, क्लीवर आदि औजारों का भी निर्माण हुआ। पर ये औजार भी बहुत सामान्य होते थे तथा इनकी धार भी कम होती थी।

हालांकि निचला पुरापाषाण काल के बाद पुरापाषाणकालीन औजारों में परिवर्तन अवश्य हुआ। मध्य पुरापाषाण काल में लकड़ी की नुकीली हड्डियाँ भी बनाई जाती थीं, जिन्हें आग में तपाकर भाले की तरह प्रयोग किया जाता था। साथ ही इस काल में खुरचनी और बेधक जैसे औजार भी बनने लगे थे। परन्तु उच्च पुरापाषाण काल में औजारों के निर्माण में कुछ और उपलब्धियाँ शामिल हुईं। इस काल में औजारों की धार पहले की अपेक्षा और अधिक हो गई। इस काल में छेनी एक धारदार औजार था, जिसे पत्थर पर घिसकर काफी नुकीला बनाया जाता था। इस काल में हल्के बरछे, भाले फेंकने का औजार तथा धनुष-बाण भी बनाया जाने लगा। परन्तु चूंकि पुरापाषाण में मानव के क्रियाकलाप आमतौर पर शिकार से जुड़े हुए थे अत: औजार की तकनीकी में ज्यादा परिवर्तन नहीं आया। औजारों का उपयोग मुख्यत: शिकार के लिए या फिर कंदमूल इकट्ठा करने में किया जाता था। हालांकि उत्तर पुरापाषाण काल के औजार आरम्भिक पुरापाषाण काल के औजारों से विकसित थे तथा इनके माध्यम से बड़े जानवरों का भी शिकार किया जाता था।

परन्तु पुरापाषाण के ये औजार परवर्ती नवपाषाण काल के औजारों से भिन्न थे। परवर्ती नवपाषाणकाल में चूंकि खेती का कार्य आरम्भ हो चुका था। खेती एवं इससे जुड़े कार्यों जैसे जंगल की सफाई, बीज की बुआई, फसल की कटाई आदि के लिए विशेष औजारों की जरूरत पड़ती है। हालांकि मध्यपाषाण काल में या फिर उत्तरपाषाण काल में खेती के आरम्भ का संकेत मिलता है। अत: इस काल में खेती के लिए फावड़े जैसे औजारों का निर्माण हो चुका था, परन्तु आधुनिक तकनीकी पर आधारित औजारों का विकास मुख्यत: नवपाषाण काल में ही हुआ। तेज धार वाले चाकू और हंसिया जैसे औजार का व्यापक रूप से विकास नवपाषाण काल में ही हुआ। नवपाषाण काल में निर्मित औजार पुरापाषाण काल की अपेक्षा उन्नत तकनीकी द्वारा बनाए जाते थे। इसका कारण यह था कि जहाँ पुरापाषाण काल में औजारों का उपयोग सीमित कार्यों के लिए किया जाता था, वहीं नवपाषाण काल में खेती के कारण कार्यों में विविधता आई तथा इसके लिए नई उन्नत किस्म के औजार अपरिहार्य थे। गेहूँ और जौ जैसे अनाजों को झाड़कर अलग करने के बाद उन्हें कूटा एवं पीसा जाता था। इस कार्य के लिए खल, मूसल और चक्की जैसे औजारों का इस्तेमाल किया जाता था। इस प्रकार के औजार पुरापाषाण काल में निर्मित नहीं हुए, क्योंकि इस काल में इनकी आवश्यकता महसूस नहीं की गई थी।

नवपाषाण काल में काटने के लिए कुल्हाड़ी या बसूला जैसे औजार का इस्तेमाल किया जाता था। उन्हें खूब चिकना बनाया जाता था। हालांकि ऊपरी पुरापाषाण काल या उससे पहले भी हड्डी को धारदार बनाने के लिए पत्थर का इस्तेमाल किया जाता था। पर नवपाषाण काल में इन औजारों को पहले की अपेक्षा ज्यादा धारदार किया जाता था, क्योंकि इनकी उपयोगिता अधिक थी। हंसिए जैसे औजार का विकास उत्तर पुरापाषाण काल में ही हो चुका था, परन्तु उन्नत किस्म के हंसिए का निर्माण मुख्यत: नवपाषाण काल की विशेषता है। खेती के कार्यों में हंसिये का व्यापक रूप से इस्तेमाल होता था, अत: समय के साथ इसकी गुणवत्ता में भी परिवर्तन होता रहा। लावा काँच से बने औजारों का निर्माण उत्तर पुरापाषाण काल में प्रारम्भ हो चुका था पर व्यापक एवं उन्नत किस्म के औजार जो लावा काँच के बने होते थे, उनका निर्माण नवपाषाण काल में हुआ। लावा काँच एक प्रकार का ज्वालामुखी काँच होता था, जिसकी धार बहुत तेज होती थी तथा यह पत्थर से भी मजबूत होता था। नवपाषाण काल की कुल्हाड़ियाँ भी काफी उन्नत किस्म की थीं। इसका कारण था कि इसे पत्थर पर रगड़कर चिकना किया जाता था, क्योंकि इस काल में कुल्हाड़ियों की उपयोगिता काफी बढ़ गई थी। पुरापाषाण काल की कुल्हाड़ियों का उपयोग मुख्यत: शिकार में किया जाता था, जबकि इस काल में कुल्हाड़ियों का उपयोग मुख्यत: पेड़ काटने के लिए किया जाता था, ताकि उन्हें काटकर खेती योग्य भूमि का विस्तार किया जा सके।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि पुरापाषाण काल के औजार नवपाषाण काल के औजारों की अपेक्षा निम्न तकनीक के बने होते थे। पुरापाषाण काल के औजारों की धार भी नवपाषाण काल के औजारों की अपेक्षा कम होती थी। औजारों की विविधता के दृष्टिकोण से भी पुरापाषाण काल में औजारों में विविधता नवपाषाण काल की अपेक्षा कम थी। हालांकि इसका मुख्य कारण यह था कि पुरापाषाण

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



काल में लोगों के जीवनयापन का तरीका शिकार और संग्रह था, जिसमें कार्यों की विविधता की सम्भावना अधिक नहीं होती थी, जबकि नवपाषाण काल में कृषि के आरम्भ के कारण अनेक प्रकार के कार्य सम्पादित करने पड़ते थे।

**प्रश्न 3. नवपाषाण युग के दौरान मिट्टी के बर्तन बनाने पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–नवपाषाण युग कृषि क्रान्ति के युग के नाम से भी जाना जाता है। कृषि के विकास ने लोगों के सामाजिक-आर्थिक जीवन में व्यापक परिवर्तन लाया। इन परिवर्तनों के कारण लोगों की आवश्यकताओं एवं जीवन-शैली में भी परिवर्तन आ गया था। आवश्यकताओं ने लोगों को ऐसी तकनीक विकसित करने हेतु बाध्य किया जो पहले नहीं थी। इसी प्रौद्योगिकी के विकास का परिणाम था कि नवपाषाण काल में लोगों द्वारा प्राकृतिक रूप से उपस्थित भौतिक वस्तुओं का सर्वोत्तम उपयोग प्रारम्भ किया गया। चिकनी मिट्टी ऐसी ही एक प्राकृतिक वस्तु थी, जिसका उपयोग नवपाषाण काल में लोगों ने मिट्टी के बर्तन बनाने में करना आरम्भ किया था। इस मिट्टी का उपयोग करके लोगों द्वारा फर्श, खिलौने तथा अन्य शिल्प-वस्तुओं का निर्माण किया जाने लगा। यहाँ तक कि इसके इस्तेमाल से गोलाकार, शंकु और चकती जैसी ज्यामितीय आकार की वस्तुओं का भी निर्माण किया जाने लगा जिनका उपयोग मौसम, फसल कटाई आदि के समय-निर्धारण के लिए किया जाने लगा था। समय के साथ लोगों ने चिकनी मिट्टी से निर्मित वस्तुओं को आग में पकाकर कड़ा करने का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। तथा अनेक प्रकार के बर्तन बनाने बनाने प्रारम्भ कर दिए। हालांकि मध्यपाषाण काल में भी लोगों द्वारा मिट्टी के बर्तन बनाए गए, पर उन बर्तनों की अपेक्षा नवपाषाण कालीन बर्तन अधिक परिष्कृत एवं टिकाऊ थे।

नवपाषाण कालीन बर्तनों को टूटने से बचाने के लिए पकाते समय रेत या जैविक पदार्थ भी मिलाया जाता था। इससे यह प्रतीत होता है कि आरम्भिक काल के किसान अपनी वस्तुओं की गुणवत्ता के प्रति काफी सचेत थे। बर्तनों को पत्थरों से चमकाने का कार्य सर्वप्रथम पश्चिम एशिया के कुम्हारों ने प्रारम्भ किया। वे उन बर्तनों में द्रव्य पदार्थ रखते थे। पहले इस विधि का उपयोग ज्यादातर फर्श और दीवारों को चमकाने के लिए किया जाता था। हालांकि मिट्टी के इन बर्तनों का निर्माण सम्भवत: चाक के आविष्कार के पहले ही प्रारम्भ हो चुका था। चाक के आविष्कार के पहले लोग बर्तनों के निर्माण के लिए किसी गोलाकार वस्तु की सहायता से बर्तन का तल तैयार करते थे। इसके उपरान्त मिट्टी के गोल रिंग को एक के ऊपर एक रखकर बर्तन को आकार दिया करते थे। आरम्भिक बर्तनों को धूप में सुखाया जाता था। कभी-कभी इसके लिए चूल्हे या अलाव का भी उपयोग किया जाता था। नवपाषाण काल में कृषि का विकास हो चुका था, साथ-ही साथ लोग आग से भी भली-भांति परिचित हो चुके थे। अत: खाद्य पदार्थों को रखने तथा इन्हें पकाने के लिए बर्तन अपरिहार्य था। इस प्रकार उनकी आवश्यकताओं ने स्वाभाविक रूप से उन्हें मिट्टी के बर्तन के निर्माण की ओर प्रेरित किया।

छठी सहस्राब्दी ई.पू. में चाक के आविष्कार के बाद पश्चिम एशिया जैसे स्थानों में मिट्टी के बेहतरीन बर्तन बनाए जाने लगे। समय के साथ नवपाषाण काल के लोगों ने मिट्टी के बर्तनों को अलंकृत भी करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार समय के साथ बर्तन निर्माण के शिल्प और आकार में परिवर्तन हुआ। परन्तु इस काल में भी सेरामिक बर्तन बनाना ज्यादा कठिन होता था। इसके बाद सबसे पहले मिट्टी को अच्छी तरह साफ करना होता था। इसके बाद इसमें भूसा, पुआल, पत्थर या सीपी के छोटे-छोटे टुकड़े मिलाने पड़ते थे ताकि आग में पकाते समय बर्तन में दरार न आए। इस प्रकार के बर्तनों को मोड़कर आकार भी दिया जाता था। बाद में इन बर्तनों को गड्ढों या अविकसित भट्टियों में उच्च तापमान पर पकाकर मजबूत किया जाता था। मिट्टी के बर्तनों के निर्माण की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी रही कि इसके कारण वर्तमान में संस्कृतियों की पहचान करने एवं उनके तिथि निर्धारण में भी मदद मिली। इस प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का निर्माण नवपाषाण काल में सभी क्षेत्रों में एक साथ आरम्भ नहीं हुआ था, यहाँ समय के साथ इसके निर्माण की पुष्टि उन क्षेत्रों में मिलती है, जहाँ कृषकों की स्थायी बस्तियाँ मिलती हैं। कुछ क्षेत्रों में इसके शिल्प एवं निर्माण में विविधता भी देखी जाती है। जैसे चीन के हेनान प्रान्त से मिले मिट्टी के बर्तनों को पकाया जाता होगा। नवपाषाण काल में विविध प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनाए जाने का प्रमाण मिलता है, जैसे–कटोरा, मर्तबान, त्रिपादिका आदि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवपाषाण युग में लोगों ने अपनी आवश्कताओं के अनुसार प्रौद्योगिकी का विकास किया था। इस काल में लोगों ने मिट्टी के विविध प्रकार के बर्तन बनाए। जहाँ आरम्भिक काल में जब चाक का आविष्कार नहीं हुआ था, तब ये मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाए जाते थे, परन्तु चाक के आविष्कार के बाद इनकी किस्म एवं गुणवत्ता में व्यापक परिवर्तन हुआ। नवपाषाण काल में ही ऐसा नहीं कि सभी जगह एक जैसी ही मिट्टी के बर्तनों का निर्माण किया गया, बल्कि क्षेत्रीयता के आधार पर इसके रंग और आकार में परिवर्तन के भी प्रमाण मिले हैं। आरम्भिक काल में जहाँ इन बर्तनों को धूप या चूल्हों के माध्यम से सुखाया या पकाया जाता था, वहीं बाद के समय में इसे उच्च तापमान पर भट्टियों में पकाया जाने लगा, जिससे कि इनके रंग एवं मजबूती दोनों में अन्तर आया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

**प्रश्न 4. नवपाषाण समाज ने उस काल के लोगों की मान्यताओं को किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर**–नवपाषाण समाज अर्थात् ऐसा समाज जो प्रारम्भिक समाज की अपेक्षा जटिल था। इसका कारण यह था कि नवपाषाण काल में कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था का आधार बन चुका था। इस मिश्रित अर्थव्यवस्था के कारण लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध भी प्रभावित हुए। इन सम्बन्धों में भी पहले की अपेक्षा सरलता नहीं रही, क्योंकि समाज का स्वरूप एवं जीवन-शैली का तरीका परिवर्तित हो चुका था। अत: इस जटिल समाज में सामाजिक व्यवस्था के सन्तुलन एवं इनमें सौहार्द कायम रखने के लिए समाज द्वारा कुछ सर्वमान्य मान्यताओं का होना आवश्यक था क्योंकि इन मान्यताओं के अभाव में समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती थी। अत: सामाजिक व्यवस्था की माँग के तौर पर नवपाषाण कालीन समाज में मान्यताओं को शामिल किया गया, जिसने समाज में रहने वाले लोगों को एक सूत्र में बाँधने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

नवपाषाण समाज की इन सर्वमान्य मान्यताओं ने ही आगे चलकर कानून का रूप ग्रहण किया तथा लोगों के लिए इनको मानना अनिवार्य हो गया। नवपाषाण काल में इन कानूनों या मान्यताओं का पालन करवाने का दायित्व गाँव के पुरोहित या मुखिया का होता था। सम्भवत: समाज में एक सामान्य धर्म तथा एक सामान्य भाषा होती थी, जो गाँव के लोगों को एक सूत्र में बाँधकर रखती थी। इनका भौतिक परिवेश आरम्भिक किसानों के जीवन का प्रतिबिंब था। यह वह काल था जब पौधों, पशुओं एवं मनुष्य की प्रजनन क्षमता का विकास हो रहा था। अत: अब विकास के साथ ही मान्यताओं का निर्धारण आवश्यक था, जिससे कि लोगों के बीच एक बंधन कायम हो सके, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर पड़ा। हालांकि प्रजनन और उत्पादकता के प्रति लगाव एक कृषि समाज के लिए स्वाभाविक था। इस काल के धर्म प्रमुखत: प्रजनन पंथ के थे, जिसमें पुरुष के रूप में आकाश, सूर्य और वर्षा को उल्लिखित किया जाता था, जबकि महिला के रूप में पृथ्वी और चाँद धर्म के प्रमुख प्रतीक थे। यही कारण है कि सभी नवपाषाण समाजों में मिट्टी, पत्थर और अस्थि की बनी स्त्री मूर्तियाँ मिली हैं, जिन्हें बाद में मातृ देवी का पूर्वज माना गया। पृथ्वी को महिला मानने का कारण इसकी कोख से ही अनाज पैदा होना था। जबकि प्रजनन क्षमता में पुरुष का प्रतिनिधित्व मिट्टी और अन्य वस्तुओं का बना लिंग करता था। हालांकि प्रारम्भिक तौर पर खेती का कार्य महिलाएँ ही किया करती थीं, पर जैसे ही यह कार्य ज्यादा श्रमसाध्य हुआ, तो यह पुरुषों के द्वारा किया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे कृषकों के धर्म में पुरुष सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण होता चला गया। हालांकि समय के साथ नवपाषाण कालीन समाज में जादू एवं अनुष्ठानों का स्थान महत्त्वपूर्ण बनता गया और फिर धीरे-धीरे कुछ लोगों द्वारा प्रारम्भ की गई ये मान्यताएँ नवपाषाण समाज का हिस्सा बन गईं।

इस काल के समाज में लोगों खासकर आरम्भिक किसानों द्वारा मृत्यु के बाद भी किसी प्रकार के जीवन में विश्वास किया जाता था। पुरापाषाण काल की संस्कृतियों की अपेक्षा इस काल में मृतकों को ज्यादा शानो-शौकत से दफनाया जाने लगा। जॉर्डन में जेरिको और ऐन गजल ऐसे क्षेत्र थे जहाँ लोगों को सिर काटकर दफन किया जाता था तथा कभी-कभी तो इन्हें घर के नीचे ही दफन कर दिया जाता था। दोनों ही प्रकार के स्थलों में मृतक व्यक्तियों के रूप-रंग की आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं जिससे पूर्वज पंथ की पूजा के एक रूप का पता चलता है। नवपाषाण काल में एकल और सामूहिक दोनों प्रकार की कब्रें मिली हैं। इसके भी प्रमाण मिले हैं कि इस काल में सम्मान और हैसियत के आधार पर लोगों के दफनाने की पद्धतियाँ भी अलग-अलग होती थीं।

अत: यह स्पष्ट है कि नवपाषाण समाज ने इस काल के लोगों की मान्यताओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया। हालांकि ये मान्यताएँ समाज के निर्माण के लिए आवश्यक भी होती हैं। अगर समाज में मान्यताएँ न हों तो फिर वह लोगों का समूह मात्र होता है न कि एक व्यवस्थित समाज। समाज का अर्थ है कि उसमें रहने वाले लोगों में पारस्परिक रूप से कोई ऐसा बन्धन अवश्य हो जो उन्हें एकता के सूत्र में बाँधकर रखता हो। मान्यताओं के अभाव में लोग स्वच्छन्द हो सकते हैं। इस प्रकार समाज का निर्माण नहीं हो सकता।

**प्रश्न 5. नवपाषाण समाज पुरापाषाण समाज से किस प्रकार अधिक जटिल था?**

**उत्तर**–पुरापाषाण समाज अर्थात् सरल समाज क्योंकि इस काल में लोगों की उत्पादन की इकाई काफी सरल थी। लोग मुख्यत: शिकार और संग्रहण करके अपना जीवनयापन करते थे। चूंकि उत्पादन की इकाई एसे जीवन-शैली सरल थी अत: सामाजिक सम्बन्धों में भी जटिलता नहीं थी। समाज का स्वरूप एवं आकार भी छोटा था। पर जैसे ही नवपाषाण काल में उत्पादन की इकाई बदली, समाज का स्वरूप एवं जीवन-शैली भी बदल गई। जहाँ पुरापाषाण काल में समाज की मूलभूत इकाई परिवार का स्वरूप काफी लचीला था, वहीं नवपाषाण काल में खेती की शुरुआत के साथ ही परिवार का लचीला स्वरूप दृढ़ हो गया। यहाँ तक कि आरम्भिक पुरापाषाण काल में पुरुष एवं महिलाएँ अलग-अलग समूहों में रहा करती थीं, जबकि नवपाषाण काल में कृषि के कारण पुरुष एवं स्त्रियों के कार्यों में विभाजन हुआ तथा इस विभाजन ने परिवार जैसी संस्था को और मजबूती प्रदान की। शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं को अधिक व्यवस्थित

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सामाजिक ढाँचे की आवश्यकता नहीं थी, जबकि कृषकों के लिए यह अपरिहार्य था।

इस प्रकार, नवपाषाण कालीन समाज सरलता से जटिलता की ओर अग्रसर हुआ। नवपाषाण काल में समाज के जटिल होने के पीछे कई कारण थे, जैसे–समाज में श्रम विभाजन इस समाज में अनेक संस्थाओं एवं समुदायों का उदय हुआ जिनके कार्य परिभाषित थे। जहाँ ऊपरी पुरापाषाण युग में एकमात्र विशेषज्ञ ओझा-शामन था जो आनुष्ठानिक गतिविधियों को सम्पन्न करवाता था, वहीं नवपाषाण काल में हर क्षेत्र के अलग-अलग विशेषज्ञ थे, जैसे–पूजा-पाठ हेतु पुरोहित, शिल्प के लिए शिल्पकार, मछली मारने के लिए मछुआरे आदि। इसका कारण यह था कि नवपाषाण काल में कृषि के अलावा अन्य कार्य भी होते थे, जैसे–पशुपालन, मिट्टी के बर्तनों का निर्माण, बुनाई, पत्थर और धातु की कारीगरी, बढ़ईगिरी आदि। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न लोगों और स्त्री-पुरुषों के बीच अधिक कड़ा श्रम विभाजन अपरिहार्य हो गया। खेती अपनाने के साथ ही पुरुषों और स्त्रियों की आर्थिक और सामाजिक भूमिका में नाटकीय परिवर्तन हुआ। महिलाएँ खेती के कार्य के साथ-साथ घर का कार्य भी करती थीं। इसके अलावा बच्चों की देखभाल जिम्मेदारी भी उन्हीं के पास थी।

हालांकि कृषि के विकास के साथ ही नवपाषाण काल में भूमि वितरण की आवश्यकता भी महसूस की गई। जहाँ पहले परिवार संयुक्त रूप से सुविधाओं का उपयोग कर रहे थे, वहीं अब उनके द्वारा धीरे-धीरे व्यक्तिगत रूप से उन सुविधाओं की माँग होने लगी। इनसे समाज में प्रतियोगिता एवं आर्थिक सुरक्षा की भावना पनपने लगी। इसका प्रभाव इनके घरों के निर्माण में देखने को मिलता है। सुरक्षा की दृष्टि से घर के चारों ओर प्रतिरक्षात्मक दीवारें बनाई जाने लगीं। शिकारी-संग्रहकर्त्ता, जिनके बीच नातेदारी का बन्धन काफी लोचदार था, वहाँ नवपाषाण कालीन समाज में यह बन्धन काफी मजबूत हो गया। लोगों द्वारा आपस में पारस्परिक सम्बन्ध कायम किए जाने लगे ताकि तनाव एवं टकराव की स्थिति को टाला जा सके।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ पुरापाषाण कालीन समाज में सामाजिक बन्धन काफी लोचदार थे, वहीं नवपाषाण काल में ये काफी मजबूत हो गए। पुरापाषाण काल में समाज सरल था, क्योंकि इस काल में जनसंख्या एवं संसाधनों के बीच काफी सन्तुलन था, जबकि नवपाषाण काल में जनसंख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई, जिसका प्रभाव समाज के सामाजिक एवं आर्थिक पहलू पर पड़ा। नवपाषाण काल का समाज जटिल समाज था, क्योंकि इस काल में कार्यों में विविधता आई तथा लोगों के जीवनयापन एवं खान-पान के तरीकों में भी परिवर्तन आया। खाद्य संग्रह की प्रवृत्ति के कारण समाज में टकराव की स्थिति भी उत्पन्न हुई। अत: स्पष्ट है कि नवपाषाण काल का समाज पुरापाषाण काल के समाज की अपेक्षा अधिक जटिल था।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न–विनिमय ने आरम्भिक मानव के जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया? स्पष्ट करें।**

**उत्तर**–विनिमय का सामान्य अर्थ होता है वस्तुओं का आदान-प्रदान। किसी भी समाज में विनिमय का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि किसी भी एक व्यक्ति द्वारा इसकी आवश्यकताओं की सम्पूर्ण वस्तुओं का उत्पादन करना सम्भव नहीं है। अत: इन परिस्थितियों में विनिमय ही एक माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है। आरम्भिक काल में विनिमय पद्धति के कारण ही लोगों का जीवन सुगम हो सका। विनिमय व्यवस्था का आरम्भ पुरापाषाण काल से ही देखने को मिलता है। पुरापाषाण काल में भी लोगों ने विनिमय के माध्यम से अपने जीवन की अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण किया है। जैसे आरम्भिक काल में जब मानव शिकारी और संग्रहकर्त्ता का जीवन व्यतीत कर रहा था, तो आमतौर पर पुरुषों के द्वारा शिकार किया जाता था तथा महिलाएँ कंदमूल इकट्ठा किया करती थीं। इस प्रकार मांस एवं वनस्पतियों के आदान-प्रदान से दोनों की आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती थीं। यहाँ तक कि इस व्यवस्था के कारण ही आरम्भिक परिवार का जन्म हुआ, जिससे पुरुष, महिला एवं उनके बच्चों ने एक साथ रहना प्रारम्भ किया।

पुरापाषाण काल में औजारों के निर्माण से भी विनिमय व्यवस्था की पुष्टि होती है। कुछ इस प्रकार के पत्थर के औजार भी मिले हैं जिन पत्थरों की उपलब्धता प्राप्ति स्थल पर नहीं थी। ऐसे पत्थरों में लावा काँच से निर्मित औजार प्रमुखता से मिले हैं, जो उन स्थानों पर भी पाए गए हैं, जो कि उनकी उपलब्धता स्थल से सैकड़ों किलोमीटर दूर हैं। अत: इसका अर्थ है कि इस काल में औजारों के निर्माण में भी विनिमय व्यवस्था का इस्तेमाल किया गया था।

बाद के वर्षों में जब मानव ने शिकारी-संग्रहकर्त्ता से पशुपालक खानाबदोश जीवन-शैली अपनाई, विनिमय-व्यवस्था के कारण ही वह अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण कर पाया। आमतौर पर पशुपालक खानाबदोशों का जीवन पशुपालन पर आधारित था। उनके पशुधन ही उनके लिए सब-कुछ थे। इस प्रकार के पशुपालक खानाबदोश विनिमय के माध्यम से वे स्थायी बसे कृषकों से अपनी जरूरत की वस्तुओं का लेन-देन किया करते थे। ये पशुपालक कृषकों से अनाज एवं शिल्प की अन्य वस्तुएँ लेते थे तथा इसके बदले में अपने पशु या उनसे प्राप्त ऊन इन किसानों को देते थे। इस प्रकार किसानों की

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जरूरत भी पूर्ण हो जाती थी तथा पशुपालक खानाबदोशों को खाद्य पदार्थ भी प्राप्त हो जाता था। नवपाषाण काल में भी विनिमय ने नवपाषाण कालीन समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। चूंकि नवपाषाण काल में समाज विकसित अवस्था में आ चुका था तथा समाज में कार्यों का स्पष्ट विभाजन हो चुका था। अत: समाज में हर कार्य के लिए उसके विशेषज्ञ थे। जैसे मिट्टी के बर्तन के लिए कुम्हार, कृषि के लिए किसान, लकड़ी के काम के लिए बढ़ई आदि। परन्तु इन विभिन्न लोगों की मूलभूत आवश्यकताएँ एक समान थीं, जिसे ये लोग विनिमय के माध्यम से ही पूरा करते थे। अगर विनिमय व्यवस्था समाज में नहीं होती, तो सर्वप्रथम तो समाज के विकास की गति बहुत ही धीमी होती या फिर यूं कहें कि समाज विकास की ओर अग्रसर ही नहीं हो पाता।

विनिमय व्यवस्था ने न केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान में लोगों की मदद की बल्कि इसने लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया। जब एक व्यक्ति या समाज किसी दूसरे व्यक्ति या समाज पर किसी खास आवश्यकता के लिए आश्रित हो, तो स्वाभाविक रूप से उनके सम्बन्ध में मधुरता आ जाती है। विनिमय ने समाज की आवश्यकताओं के साथ-साथ समाज के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने सामाजिक सम्बन्धों को एक नई दिशा दी तथा समाज की प्रगति को एक नया आयाम दिया। आरम्भिक काल में मुद्रा का चलन न होने के कारण वस्तु-विनिमय की प्रणाली थी। इसी वस्तु-विनिमय के कारण लोग समय के साथ अपनी जीवन-शैली में परिवर्तन लाते गए।

अत: स्पष्ट है कि विनिमय व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसके न होने पर आरम्भिक मानव का जीवन काफी परेशानियों का जीवन होता। वर्तमान काल में भी समाज के विकास के लिए विनिमय अपरिहार्य है। विनिमय ने आरम्भिक मानव के अस्तित्व को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया। शिकारी-संग्रहकर्त्ता तो विनिमय के बगैर भी जीवनयापन कर सकते थे, परन्तु खानाबदोश पशुपालकों का जीवन पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं था, बल्कि इस समुदाय का जीवन विनिमय जैसी व्यवस्था पर ही आश्रित था।

■■

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# दुनिया पर असर

5

## परिचय

बीते हुए समय का हर क्षण वर्तमान समय के लिए इतिहास बन जाता है। अत: स्वाभाविक है कि इतिहास का न तो कोई आदि होता है और न ही अन्त होता है। इन परिस्थितियों में इतिहास को व्याख्यायित करना और भी कठिन हो जाता है, जब इसका लिखित स्वरूप उपलब्ध न हो। आदिमानवों के सन्दर्भ में यही समस्या सामने आती है। हालांकि विद्वानों ने पुरातात्त्विक साक्ष्यों एवं अवशेषों के माध्यम से काफी हद तक आदिमानव के जीवन से जुड़े महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रागैतिहासिक विद्वानों के साथ-ही-साथ धार्मिक परम्पराओं एवं दार्शनिकों, जीवविज्ञानियों, नृशास्त्रियों आदि सभी की मदद ली गई है। मानव के इतिहास पर अध्ययन कर रहे विद्वानों को सर्वप्रथम मनुष्य की परिभाषा से अपनी बात आरम्भ करनी पड़ी। इनके लिए यह निर्धारित करना आवश्यक था कि कहाँ पशुता का अन्त और मानवता का आरम्भ होता है।

हमारे पूर्वजों का कोई लिखित स्रोत न मिलना यह स्पष्ट करता है कि वे लिखने की कला से परिचित नहीं थे। इस परिस्थिति में इतिहासकारों ने हड्डियों और पत्थर के बने औजारों का अध्ययन करके आदिम मानव के सन्दर्भ में जानकारी देने का प्रयास किया है। साथ ही पुरातन मानव के जीवन के कुछ आयामों को समझने के लिए इतिहासकारों ने आधुनिक काल के कुछ ऐसे समाजों का भी अध्ययन किया है, जो आज भी शिकार और संग्रहण के परिवेश में रह रहे हैं, ताकि इनके आधार पर अतीत की तस्वीर तैयार की जा सके। इस प्रकार के अध्ययन से हमारे आदिम मानवों को समझने में मदद मिल सकती है। *आर.बी. ली* ने कुंग बुशमैन के अध्ययन द्वारा शिकारी-संग्रहकर्त्ता जीवन-शैली की काफी जानकारी प्रदान की है। इसी प्रकार जेन गुडाल ने जंगली परिवेश में चिंपांजी के स्वभाव का अध्ययन करके स्पष्ट किया है कि चिंपांजी भी औजार का उपयोग करते हैं।

आधुनिक विद्वानों का ऐसा मानना है कि मानव की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई थी। आस्ट्रेलोपिथेकस हमारे आदिकालीन पूर्वज थे। इनका काल लगभग 20-40 लाख वर्ष पहले था। इनके प्राप्त कंकालों एवं पैरों के निशानों से ज्ञात होता है कि ये दोनों पैरों पर चलते थे। इनकी लम्बाई सम्भवत: 3.8 फीट थी। दो पैरों पर चलने के अलावा ये सम्भवत: आज के चिंपांजी जैसे दिखते होंगे। इनकी कई प्रजातियाँ पूर्व और दक्षिण अफ्रीका में रहा करती थीं। हालांकि इसमें मतैक्यता है कि होमोहेबिलिस आस्ट्रेलोपिथेसीन के किस प्रजाति के वंशज थे। पर होमोहेबिलिस को होमोइरेक्टस का पूर्वज माना जाता है, जिनकी उत्पत्ति लगभग 15 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका में हुई थी। होमोइरेक्टस ने अपने पूर्वजों से बेहतर औजार विकसित किए तथा इन्होंने आग जलाना भी सीख लिया था। होमोइरेक्टस लगभग 10 लाख वर्ष तक जीवित रहे। इनके बाद निएन्डरथल मैन नामक प्रजाति का जन्म हुआ। इनका शरीर छोटा एवं गठीला था। ये भी पत्थर के औजार का इस्तेमाल करते थे। इन्हें भी भाषा और कला का ज्ञान नहीं था। समय के साथ पर्यावरण में परिवर्तन हुआ तथा गर्म और ठंडे मौसम, सूखे मरुस्थल आदि का विकास हुआ। इस परिवर्तन ने मानव के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

होमोसेपियन्स सेपियन्स अर्थात् पूर्ण आधुनिक मानव का पहला प्रमाण 1.2 लाख से 60 हजार वर्ष पहले दक्षिण अफ्रीका में कलेसर नदी के मुहाने पर मिलता है। डी.एन.ए. शोध भी यह प्रमाणित करते हैं कि मानव का प्रथम अवशेष अफ्रीका से ही मिला है। समय के साथ इनका आगमन पश्चिम एशिया में हुआ। होमोइरेक्टस और निएन्डरथल तो विश्व के समस्त क्षेत्रों तक नहीं पहुँच पाए थे, पर होमोसेपियन्स सेपियन्सों में परिवेश के अनुरूप ढलने की अदम्य क्षमता थी, जिस कारण ये पृथ्वी के ऐसे हिस्सों में भी बसे, जहाँ मानव जीवनयापन कर सकता था। 1.2 लाख से 60 हजार वर्ष पहले ये अफ्रीका से बाहर निकले तथा आस्ट्रेलिया से 20 हजार वर्ष पूर्व अमेरिका पहुँचे। विद्वानों का मानना है कि इनके शरीर एवं रंग-रूप में परिवर्तन उसी युग में हुआ। इन्हीं के द्वारा कला, नए औजारों का आविष्कार एवं कपड़े की सिलाई प्रारम्भ की गई। यूरोपीय क्षेत्रों में इनका आगमन अन्तर-हिमाच्छादन युग में हुआ। इस युग में यहाँ रहने के लिए अनुकूल मौसम का विकास हुआ। ये लोग आग को नियन्त्रित कर सकते थे तथा अपने लिए घर बना

www.neerajbooks.com



सकते थे। यही कारण है कि बदलते परिवेश में अपने आपको ढालने की क्षमता इन्होंने विकसित कर ली थी। परिष्कृत औजारों के कारण ये बड़े जानवरों का शिकार तथा संसाधनों का उपयोग करने में सक्षम हो चुके थे।

निम्नलिखित छः आधारों पर मनुष्य को पशुओं से अलग किया जा सकता है–

*(i)* मनुष्य औजार बना सकता था पर पशु नहीं।

*(ii)* मनुष्य में नातेदारी व्यवस्था थी तथा इनके लोगों के बीच सामाजिक सम्बन्ध विकसित थे, पर पशुओं में ऐसा नहीं था।

*(iii)* मानव विनिमय कर सकता था, पर पशु नहीं।

*(iv)* मानव के पास एक विकसित भाषा थी, जो पशु के पास नहीं थी।

*(v)* मानव ने कला की खोज की तथा इसका विकास किया।

*(vi)* मानव स्वयं खाद्य पदार्थों का उत्पादन कर सकता था, पर पशु ऐसा नहीं कर सकते थे।

इस प्रकार हम पाते हैं कि हमारे पूर्वजों ने इन विशेषताओं को विभिन्न कालखंडों में प्राप्त किया। विकास की यह गति हमेशा एक जैसी नहीं रही। किसी कालखंड में यह तेज, तो कभी इसकी गति मंद रही। मनुष्य ने औजार बनाना तथा इसका उपयोग करना प्रारम्भ किया। हालांकि कुछ पशु भी औजारों का इस्तेमाल करते थे पर इसे अपवाद ही माना जाता है। आस्ट्रेलोपिथेसीन ने सर्वप्रथम औजार बनाया। इनका औजार पहले हड्डी या लकड़ी का होता था। बाद में इनके बाद के विकसित मानव समूहों ने पत्थर के औजार बनाना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे इन औजारों के निर्माण में विकसित प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाने लगा। इस प्रकार प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन की राह को आसान बनाना प्रारम्भ किया। इसके माध्यम से विभिन्न वस्तुओं के निर्माण में मदद मिली। धीरे-धीरे मानव ने छपाई की प्रौद्योगिकी विकसित कर ली तथा किताबें भी हाथ से लिखी जाने लगीं। जहाँ प्रारम्भिक प्रौद्योगिकी ने मानव को शिकार करने एवं भोजन पकाने में मदद की, वहीं आधुनिक प्रौद्योगिकी ने मानव की जीवन-शैली को पूरी तरह बदल दिया।

आग के उपयोग का पहला प्रमाण 5 लाख वर्ष पूर्व चीन की झोउकोदियेन गुफा में पाया जाता है। मानव द्वारा इस पर नियन्त्रण इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। मानव को इस बात का ज्ञान हुआ कि भोजन पकाने से उसमें रासायनिक परिवर्तन होता है तथा भोजन सुपाच्य हो जाता है। इससे भोजन के अन्दर मौजूद विषैले पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं। आग ने न सिर्फ भोजन को पकाने में मदद की, बल्कि इसने रोशनी और गर्मी प्रदान करके नया परिवेश भी दिया तथा साथ ही शिकार करने तथा पौधों को जलाने में इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जैसे-जैसे मानव विकास की ओर अग्रसर हुआ, इसके समूह के अन्दर एवं बाहर सामाजिक संगठनों का भी विकास हुआ। प्रजनन एवं सहयोग हेतु विवाह जैसी संस्था का भी जन्म हुआ। समाज धीरे-धीरे सरलता से जटिलता की ओर अग्रसर हुआ। जटिल समाज में सहयोग की अधिक आवश्यकता महसूस होने लगी। इसी का परिणाम था कि मानव समुदाय में नातेदारी सम्बन्ध का उदय हुआ। आमतौर से वंश और विवाह के आधार पर जो सम्बन्ध बनते हैं, उन्हें नातेदारी के रूप में परिभाषित किया जाता है। आदि नरवानरों में भाई और बहन का सम्बन्ध मौजूद था। *आर. फॉक्स* के अनुसार गठबन्धन और वंश-परम्परा मनुष्य की अनूठी खोज थी। इस खोज के कारण मानव दूसरे समुदायों के साथ सम्पर्क और मित्रता स्थापित कर सका। बेटे या बेटी के विवाह के साथ ही दूसरे समुदायों के साथ भी सम्बन्ध स्थापित हुआ। नातेदारी में केवल रक्त संबंध ही नहीं, बल्कि सामाजिक सम्बन्ध भी शामिल थे। हालांकि खून का सम्बन्ध बहुत सीमित होता था, परन्तु नातेदारी सम्बन्ध काफी व्यापक हुआ करते थे। जान-पहचान का प्रत्येक व्यक्ति नातेदारों पर पूर्णतः भरोसा करता था तथा भोजन-संग्रह या शत्रु के आक्रमण के समय सारे नातेदार एकजुट होकर साथ दिया करते थे। नातेदारी व्यवस्था के कारण सहयोग के साथ-ही-साथ ज्ञान का भी आदान-प्रदान होता था।

*आर. फॉक्स* नातेदारी के उदय का कारण मांसाहारी भोजन की ओर झुकाव को माना है। हालांकि यह प्रवृत्ति आरम्भिक होमो इरेक्टस के समय ही देखी जा सकती थी। बड़े जानवरों के शिकार करने के कारण स्त्री और पुरुष के कार्यों का विभाजन हो चुका था। चूंकि इनके शिकार के लिए ज्यादा दौड़ना पड़ता था, इस कारण महिलाओं को इसमें शामिल नहीं किया जाता था। वे आमतौर पर घर में रहकर बच्चों की देखभाल तथा घर का काम करती थीं। हालांकि भोजन-संग्रह तथा संगीत आदि का कार्य पूरा समूह मिलकर करता था। जब पुरुष शिकार पर जाते थे, तो महिलाएँ भोजन इकट्ठा किया करती थीं। इस प्रकार इस व्यवस्था के कारण स्त्री-पुरुष के मध्य भोजन के आदान-प्रदान की व्यवस्था का जन्म हुआ। फॉक्स कहते हैं कि एक व्यापार था, जिसके कारण मानव समाज की उत्पत्ति हुई। इसी कारण घरेलू इकाई अर्थात् परिवार का जन्म हुआ जिसमें वयस्क पुरुष, महिलाएँ और उनके बच्चे एक साथ रहने लगे। हालांकि नातेदारी की मुख्य विशेषताएँ भी थीं। रक्त सम्बन्धियों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध पर रोक थी। इसी का परिणाम था कि बहिर्विवाह की प्रथा आरम्भ हुई तथा मानव को दूसरे समूह में ही शादी करनी होती थी। ऐसा होने से विभिन्न समुदायों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने लगे। पति-पत्नी भी एक-दूसरे पर आश्रित थे। इस कारण यह सम्बन्ध भी समय के साथ सुदृढ़ होता चला गया। समूहों के विस्तार के साथ संसाधनों के लिए प्रतियोगिता बढ़ी, जिसके कारण नाते-रिश्तेदारी का महत्त्व भी बढ़ा। इस प्रकार आधुनिक मानवशास्त्री ऐसा मानते

www.neerajbooks.com

हैं कि नातेदारी का गहरा सम्बन्ध अर्थव्यवस्था, राजनीति और धर्म से था। हालांकि नातेदारी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं। मिस्र में नील नदी के किनारे कोम ओम्बो के मैदानी इलाकों में 17 हजार वर्ष पुरानी बस्तियों में नातेदारी के अद्भुत प्रमाण मिले हैं। यह 25-30 लोगों की बस्तियों का समूह था। प्रत्येक समूह की औजार-निर्माण एवं भोजन-संग्रह की तकनीक विशिष्ट थी। मानवशास्त्री यह भी मानते हैं कि मानव के साथ-ही-साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान भी नातेदारों में होता था।

*एडम स्मिथ* विनिमय व्यवस्था को काफी प्राचीन मानता है। इनका मानना है कि यह मानव समुदाय की एक अनूठी विशेषता रही है। विनिमय के प्रमाण आसानी से मिल जाते हैं, क्योंकि यदि कोई वस्तु वहाँ पाई जाती है, जहाँ वह स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं है, तो यह स्पष्ट है कि वहाँ विनिमय व्यवस्था रही होगी। परन्तु इसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि शिकारी-संग्रहकर्त्ता घुमन्तू प्रवृत्ति के रहे हैं तथा इनके द्वारा भी वह वस्तु लाई जा सकती है। जब हमारे पूर्वजों को इस बात का ज्ञान हुआ होगा कि विभिन्न विशिष्ट पत्थरों से औजार बनाए जा सकते हैं, तो बहुत सम्भव है कि वे उसकी खोज में रहा करते होंगे। लावा काँच ऐसा ही एक पत्थर था जिससे उत्कृष्ट औजार बनाना सम्भव था। हालांकि इसकी उपलब्धता सर्वत्र नहीं थी। उदाहरण के तौर पर तंजानिया में इससे निर्मित औजार मिले हैं जबकि ये पत्थर कीनिया के मध्य घाटी से लाए गए थे, जो वहाँ से 300 किलोमीटर दूर था। चकमक भी एक ऐसा ही पत्थर है जिससे काफी अच्छा औजार बनाया जाता था। हमारे पूर्वज इस तरह के पत्थरों को दूर-दराज से लाया करते थे। ऐसा भी प्रमाण मिला है कि आधुनिक संग्रहकर्त्ता एक जगह इकट्ठा होते थे तथा स्त्री और बहुमूल्य उपहारों का विनिमय किया करते थे।

पशु से मानव की अलग पहचान बनाने में भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मानव की अभिन्न विशेषता है। ध्वनियाँ तो जानवर भी निकाला करते हैं, पर इनका दायरा सीमित है, जबकि मनुष्य द्वारा निकाली जाने वाली सार्थक ध्वनियों की सीमा अनन्त है। प्रत्येक सार्थक ध्वनि के लिए एक अलग शब्द निर्धारित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा मनुष्य की अनुपम साथी है। इसकी उत्पत्ति का कोई प्रमाण नहीं मिलता। 1.5 लाख वर्ष पूर्व मनुष्य खुद बोलने की स्थिति में आ गया। 40 हजार वर्ष पूर्व यूरोप के मानवों के पास भाषा थी। हालांकि इनकी शारीरिक संरचना के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ये कई प्रकार की ध्वनियाँ एवं शब्द निकालने में सक्षम थे। किसी भाषा की ध्वनि और किसी वस्तु के साथ इसके सम्बन्ध का कोई आपसी रिश्ता नहीं होता। इस ध्वनि को लोग इसलिए समझ पाते हैं कि सामाजिक दृष्टि से बोलने वाले और सुनने वाले कुछ खास अर्थ निकालते हैं और कुछ वस्तु से जोड़कर इसे देखते हैं। कलाकृतियाँ भी मानव की समझ पर आधारित होती हैं। चित्रकला और मूर्तियों में प्रयुक्त प्रतीक मानव की समझ के अनुसार अंकित होता है। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि एक समूह जब प्रतीकात्मक सोच विकसित करता है, तो कला का जन्म होता है। यही कारण है कि कला और भाषा एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। भाषा की तरह कला भी मानव की अनुपम देन है। प्रारम्भ में लेसक्स और स्पेन में अलतमीरा की गुफा चित्रकला को देखकर *पिकासो* कहते हैं–"हमने (आधुनिक कलाकारों) कुछ भी नया नहीं खोजा है।" भाषा के आविष्कार के कारण ही हमारे पूर्वजों ने अपने बच्चों को वह ज्ञान सौंपा, जिसे उनके बच्चों ने कभी नहीं देखा था।

12 हजार वर्ष पहले मानव अंशत: या पूर्णत: शिकारी-संग्रहकर्त्ता का जीवन व्यतीत कर रहा था। इस काल में इनका जीवन शहर की जीवन-शैली से काफी पीछे था। ये लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे। इनके पास कोई केन्द्रीकृत सत्ता या स्थायी सेना नहीं थी। वे अपनी समस्याओं का समाधान काफी सरलता से कर लेते थे। युद्ध उनकी प्रकृति नहीं थी। वे साधारण प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपनी जरूरतों को पूरा करते थे। जहाँ आज अपनी आवश्यकताओं के लिए मानव को सामान्यत: आठ घंटे काम करना पड़ता है, उस वक्त के मानव 2-3 घंटे में ही अपना भोजन इकट्ठा कर लिया करते थे। मार्शल इसलिए इन्हें समृद्ध समाज की संज्ञा देते हैं कि उस काल का मानव अपनी आवयश्कताओं की पूर्ति करता था और पर्यावरण को नुकसान भी नहीं पहुँचाता था। आज मानव सुविधासम्पन्न और सुविधाविहीन समाजों में बंटा हुआ है। आज के मानव की कई समस्याओं का समाधान आदिमानव के जीवन के अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। इनके सामाजिक जीवन, राजनीति, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध आदि में काफी सरलता थी। उस वक्त का समाज आज की तरह जटिल नहीं था। इस प्रकार हम पाते हैं कि 30 लाख वर्षों में मानव ने कई चीजें सीखीं और साथ ही इसी शारीरिक संरचना में भी काफी बदलाव आया। आज के समाज में इनकी पहचान हिरण या बन्दर जैसी होगी। इस प्रकार जैविक परिवेश, औजारों का विकास, भाषा का ज्ञान, नाते-रिश्तेदारी का विकास साथ-साथ चलता रहा। आज यूरोपीयों ने अमेरिका और आस्ट्रेलिया की खोज की, परन्तु शिकारी-संग्रहकर्त्ता इन स्थानों पर बहुत पहले ही बस चुके थे। इन्होंने औजार और आग की मदद से प्रकृति को बदलना प्रारम्भ किया। हालांकि औजार बनाने की कला का विकास 20 लाख वर्ष पूर्व हो चुका था जबकि भाषा, कला, विनिमय, नातेदारी का विकास लगभग 2 लाख वर्ष पुराना है।

होमोसेपियन्स सेपियन्स ने समय के साथ-साथ अपनी प्रौद्योगिकी में विकास किया। इन्होंने लकड़ी और पत्थर को मिलाकर औजार बनाना आरम्भ किया। जैसे ही होलोसिन युग का आरम्भ हुआ, पृथ्वी का पर्यावरण परिवर्तित हुआ। इसके कारण पश्चिम एशिया का वन रेगिस्तान में बदल गया। वहीं दूसरी ओर यूरोप में बर्फ पिघलने से वनों का विकास हुआ। हालांकि इस परिवर्तन के साथ ही आदिमानवों की जीवन-शैली में भी परिवर्तन आया तथा उन्होंने

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

जीवनयापन का नया तरीका अपनाना प्रारम्भ किया। पर अभी भी ज्यादातर समुदाय शिकार और संग्रहण द्वारा ही जीवनयापन कर रहे थे। हालांकि इनके भोजन में परिवर्तन अवश्य हुआ। अब इनके भोजन में मछलियाँ, शाकाहारी पदार्थ तथा बीज भी शामिल हो चुके थे। कई समुदायों द्वारा शिकारी-संग्रहकर्त्ता की ही जीवन-शैली जारी रखी गई, क्योंकि इसमें उन्हें आजादी एवं आराम था। आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका के काफी बड़े हिस्सों में लोग ऐसा ही जीवन व्यतीत कर रहे थे। अभी भी लगभग चालीस देशों में शिकारी-संग्रहकर्त्ता जीवित हैं, जबकि दुनिया के कई हिस्सों में इनके द्वारा पौधे उगाना भी प्रारम्भ किया गया, परन्तु इनकी जीवन-शैली खानाबदोश संग्रहकर्त्ता की ही रही। चीन और मैक्सिको से प्रमाण मिला है कि वहाँ खानाबदोश संग्रहकर्त्ता ही खेती करते थे। पर्यावरण परिवर्तन तथा इसके अनुसार मानवों को ढलने की प्रकृति ने ही आगे चलकर इन्हें पशुपालक खानाबदोश तथा कृषक बनाया।

प्रारम्भ में शिकारी-संग्रहकर्त्ता द्वारा ही जानवरों को पालना तथा खेती करना आरम्भ किया गया। पश्चिम एशिया से ऐसा प्रमाण मिलता है कि कृषि और पशुपालन लगभग एक साथ प्रारम्भ हुआ था। इसके प्रमाण अवश्य मिलते हैं कि कुछ समूहों की कृषि की अपेक्षा पशुपालन में अधिक रुचि थी। वैसे मध्यपाषाण युग में भी कुत्ता, सूअर और घोड़े पालने के प्रमाण मिलते हैं। परन्तु भेड़, बकरी और मवेशी को पालतू बनाने के बाद मानव का जीवन अधिक प्रभावित हुआ। पशुपालन ने मानव की जीवन-शैली को नया रंग दिया। किसान तो एक जगह स्थायी रूप से बस जाते थे, परन्तु पशुपालक चरागाह की खोज में एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे। खानाबदोश आमतौर से एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के घास के मैदानों में रहा करते थे। इन स्थानों पर उनके पशुओं के लिए पर्याप्त चारा उपलब्ध होता था। अलग-अलग खानाबदोश समूहों के अपने विशिष्ट तरीके भी हुआ करते थे। पश्चिम एशिया और दक्षिण एशिया में बकरी, भेड़ और मवेशी को अधिक पालने का प्रचलन था। इनकी सम्पत्ति पशु होती थी। पशुओं के लिए इनके मध्य युद्ध भी हुआ करते थे।

यूरेशियाई स्टेप्स में पशुपालन संस्कृति से पहले ही रेन्डियर पाले जाने का प्रमाण मिलता है। आमतौर से ये उत्तरी यूरोप और साइबेरिया तक सीमित थे। अरब और अफ्रीका में ऊँट पालने की प्रथा आरम्भ हुई। ऊँट पालने का कारण यह था कि यह कम पानी और कम चारे पर भी कई दिनों तक जिंदा रह सकता था। अमेरिकी-एंडियाई उच्च भूमियों में इलामा और अल्पाक जैसे पशु पालतू बनाए गए। खानाबदोश समूहों के लिए पशुओं को पालना तथा उनका रखरखाव आवश्यक था, क्योंकि इससे उन्हें मांस और दूध प्राप्त होता था। खानाबदोशों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि सच्चा खानाबदोश आमतौर पर गरीब होता था। इसके पास ज्यादा सम्पत्ति नहीं होती थी। इसका कारण यह होता था कि वे घुमन्तू थे तथा ज्यादा सामान लेकर स्थान परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता था अत: अपने साथ वह कम सामान रखा करते थे। जानवरों की संख्या में वृद्धि होने पर उन्हें चरागाह की खोज में दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था। यही कारण है कि मजबूरन उन्हें जानवरों को देकर दूसरे सामानों का विनिमय भी करना पड़ता था। जब इनके पास सामान अधिक हो जाता था, तो मजबूरन उन्हें एक स्थान पर स्थायी रूप से बसना पड़ता था। इसी कारण बड़ी संख्या में अमीर खानाबदोश एक स्थान पर बसकर स्थायी जीवन व्यतीत करने लगे। उन्हें पशुओं में होने वाली बीमारियों का भी सामना करना पड़ता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि बीमारी के कारण उनके सारे पशुओं की मृत्यु हो जाती थी। ऐसी स्थिति में वे अपना जीवन-बसर करने के लिए स्थायी बसे समुदायों की सेवा में लग जाते थे। हालांकि पशुपालक समाज में योद्धा पुरुषों का वर्चस्व होता था। शारीरिक शौर्य और साहस पुरुष का अलंकार माना जाता था। कई खानाबदोश समूहों द्वारा स्थायी बसे समुदायों पर कब्जा भी किया गया। कई विद्वानों का मानना है कि आरम्भिक राज्य का जन्म इसी से हुआ। आरम्भिक यूनानी और आर्य लोग खानाबदोश ही थे, जिन्होंने यूनान और भारत में सभ्यताओं का निर्माण किया। सिंयुंग नु खानाबदोश ही थे, जिन्होंने चौथी-पाँचवीं शताब्दियों में रोमन साम्राज्य और भारतीय राज्यों को तहस-नहस कर दिया था। चंगेज खां खानाबदोशों का ही सुप्रसिद्ध नेता था जिसने तेरहवीं शताब्दी में सबसे बड़े साम्राज्य का निर्माण किया था। हालांकि यह सत्य है कि बड़ी आबादी का पालन-पोषण तथा सभ्यताओं के विकास की दृष्टि से कृषक समुदाय खानाबदोशों की अपेक्षा बेहतर स्थिति में रहे। पर बावजूद इसके इतिहास के पन्नों पर खानाबदोशों ने अपनी चिरस्थायी छाप छोड़ी है।

जलवायु परिवर्तन के साथ ही विश्व के कई हिस्सों में कृषि जीवनयापन का मुख्य साधन बन गया। खासकर पश्चिम एशिया, मिस्र, भारत, चीन आदि में इसने सभ्यताओं के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन क्षेत्रों में लोगों ने कृषि और पशुपालन दोनों को अपनाया। हालांकि इनकी प्राथमिकता कृषि ही रही। जहाँ पशुपालक अस्थायी जीवन जीते थे, वहीं कृषकों ने स्थायी जीवन जीना प्रारम्भ किया तथा साथ ही वे मवेशी रखने लगे। स्थायी जीवन के प्रारम्भ के साथ ही ग्रामीण बस्तियों का निर्माण हुआ तथा उनकी आबादी में भी वृद्धि हुई। मिट्टी के बर्तन और धातुकर्म जैसे शिल्पों के विकास के साथ ही राज्य और शहर का भी निर्माण हुआ। कृषि और पशुपालन के कारण भोजन प्राप्ति के प्रति नजरिये में भी परिवर्तन आया। जहाँ पहले लोग एक या दो दिन के लिए भोजन का प्रबन्ध करते थे, वहीं अब भोजन की व्यवस्था पूरे एक मौसम के लिए की जाने लगी। नई कृषि अर्थव्यवस्था ने लोगों की जीवन-शैली को पूरी तरह बदल दिया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

कृषि के विकास ने मानव जीवन पर दूरगामी प्रभाव डाला। जहाँ पहले शिकारी-संग्रहकर्त्ता मौसम के अनुसार अपना निवास स्थान बदल दिया करते थे, वहीं किसानों को अपनी फसल के कारण एक ही स्थान पर लम्बे समय तक रहना पड़ता था। बीज बोना, पानी देना तथा पशु-पक्षियों से अपनी फसल का बचाव भी करना पड़ता था। फसल तैयार होने में 4-6 माह का समय भी लगता था अत: कृषकों के लिए एक स्थान पर बसकर रहना बाध्यता भी हो गई थी। और इसी स्थायी निवास के कारण गाँव का उदय हुआ। हालांकि शिकारी-संग्रहकर्त्ता द्वारा भी कुछ स्थानों पर गाँव एवं शहर बसाए गए। परन्तु ऐसे स्थानों की संख्या बहुत कम है। कृषकों ने ही अपनी सुविधा के लिए सड़कें, मार्ग, घरों आदि का निर्माण प्रारम्भ किया। स्थायी बसाव का ही परिणाम था कि इनकी जनसंख्या में वृद्धि भी तेज गति से हुई। अनाज से दलिया तथा मवेशियों के पालने से दूध मिलने लगा जिसका परिणाम हुआ कि बच्चों को पूरी तरह से माँ के दूध पर आश्रित नहीं होना पड़ा। माँ के दूध पर आश्रित न होने के कारण बच्चों के जन्म में अन्तर भी कम होता गया जिससे जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। शिकारी-संग्रहकर्त्ता को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बड़े क्षेत्र की आवश्यकता होती थी। जबकि कृषि के कारण एक छोटा-सा भूभाग भी कई लोगों की आवश्यकता पूर्ति में सक्षम हो गया। शिकारी-संग्रहकर्त्ता के विपरीत किसान भोजन उत्पादन के साथ-ही-साथ उसे लम्बे समय तक सुरक्षित रखने में भी सक्षम हो गया जिससे एक बड़ी आबादी का भरण-पोषण सम्भव हुआ। शिकारी-संग्रहकर्त्ता भोजन के लिए प्रकृति पर निर्भर थे जबकि किसानों ने प्रकृति में बदलाव करके अपने लिए भूमि तैयार करना प्रारम्भ किया। किसानों ने आरम्भिक काल में कई ऐसे प्रदेशों में भी बस्तियों का विकास किया जहाँ पहले लोग नहीं रहा करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे कृषि लोगों के जीवनयापन का मुख्य साधन बन गई। आज भी भारत जैसे देश में 72% लोग किसान हैं। पर कृषि के आगमन के साथ दासता जैसी प्रथा का जन्म हुआ। चूंकि कृषि कार्य में बहुत अधिक श्रम की आवश्यकता होती है अत: धनी एवं सरदार किसानों ने स्वयं के शरीर को आराम देने के लिए अपने मातहतों पर जुल्म करना प्रारम्भ किया तथा धीरे-धीरे उन्हें दासता के लिए बाध्य कर दिया।

हालांकि कृषि के आगमन के साथ सहयोग की भावना का भी उदय हुआ। शिकारी-संग्रहकर्त्ता समूह को भी शिकार करते समय सहयोग की जरूरत होती थी। शिकार करने के बाद वे समूह में उसका बंटवारा भी करते थे। इसी प्रकार कृषकों को भी बुआई से लेकर कटाई तक सहयोग की जरूरत पड़ती थी। जहाँ शिकार में एक दिन से लेकर एक सप्ताह तक का समय लगता था, वहीं किसानों को फसल प्राप्त करने में कम-से-कम चार माह का समय लगता था। सहयोग की भावना के कारण ही कृषक समुदायों में नातेदारी कायम हुई तथा इनके बीच सामाजिक संस्थाओं का जन्म हुआ। विवाह, परिवार आदि ऐसी ही संस्थाएँ हैं, जो कृषि के विकास के कारण ही संस्थागत एवं सुदृढ़ हुईं।

कृषि ने लोगों के स्वास्थ्य एवं स्वच्छता को भी प्रभावित किया। जहाँ एक ओर भोजन की नियमित आपूर्ति के कारण उनकी आयु में वृद्धि हुई, तो वहीं दूसरी ओर खेतों में पानी के जमाव, बदलते क्षेत्रों में निवास से मच्छरों की संख्या भी बढ़ी, जो कि मलेरिया जैसी जानलेवा बीमारी के वाहक होते थे। घास-पात एवं कूड़ों के जमाव से कीड़े भी आकर्षित हुए जो कि अन्य बीमारियों के कारण जन्मे। मध्यकाल में चूहों को होने वाला बुबोनिक नामक प्लेग इसका मुख्य उदाहरण है, जिससे हजारों लोग काल-कवलित हो गए।

कृषि के विकास के साथ ही समाज पहले की अपेक्षा सरल नहीं रहा। कृषि से लेकर घर के निर्माण तक सभी कार्य श्रमसाध्य होते गए। कृषकों को उनकी हिफाजत भी करनी पड़ती थी। इसके भी प्रमाण मिले हैं कि अलग-अलग समुदायों में आपस में टकराव भी होता था। जो समुदाय टकराव में पराजित हो जाते थे, उन्हें अपने उस स्थान से हटना पड़ता था। विजेता तो लूटकर चल देते थे, पर किसानों को वहीं मांद में रहना पड़ता था। साथ ही जो नया शासक होता था, उसे उपज का एक हिस्सा भी देना पड़ता था। इस प्रकार धीरे-धीरे किसानों की हैसियत काफी कमजोर होती चली गई। कृषि के आगमन के बाद युद्ध के महत्त्व में भी परिवर्तन हुआ, जिसने आगे चलकर ऐसे समाज का निर्माण किया, जिसमें असमानता व्यापक रूप से दिखने लगी।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. होमोसेपियन्स सेपियन्स के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–आदिमानवों के क्रमिक विकास की प्रक्रिया में सर्वप्रथम होमिनिडो प्रजाति का विकास हुआ। होमिनिडो के बाद होमोहेबिलिस प्रजाति का विकास हुआ, जो अपने पूर्वजों से कुछ विकसित अवस्था में थे। होमोहेबिलिस के बाद मानव विकास की क्रमिक अवस्था में होमोइरेक्टस प्रजाति का प्रादुर्भाव हुआ। यही होमोइरेक्टस होमोसेपियन्स सेपियन्स के पूर्वज माने जाते हैं। होमोसेपियन्स सेपियन्स अर्थात् पूर्ण आधुनिक मानव का सर्वप्रथम प्रमाण दक्षिण अफ्रीका के कलेसर नदी के मुहाने पर 1.2 लाख से 60 हजार वर्ष पूर्व मिलता है। हालांकि डी.एन.ए. के आधार पर भी इसकी पुष्टि होती है कि मनुष्य की उत्पत्ति अफ्रीका में आज से लगभग 2 लाख वर्ष पहले हो चुकी थी।

लगभग 90 हजार वर्ष पूर्व होमोसेपियन्स सेपियन्स का आगमन पश्चिम एशिया में हुआ था। होमोइरेक्टस और निएन्डरथल जैसे हमारे पूर्वजों ने अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, चीन और यूरोप को अपना निवास-स्थान बनाया परन्तु पृथ्वी के सभी छोरों तक वे नहीं पहुँच पाए। साइबेरिया, आस्ट्रेलिया और अमेरिका जैसे क्षेत्रों में

www.neerajbooks.com



इनका जाना नहीं हो पाया था। होमोसेपियन्स सेपियन्स की क्षमता आधुनिक परिवेश में अपने आपको ढालने की अधिक थी, यही कारण था कि आधुनिक मानव ने ऐसे स्थानों पर भी जाकर बसना प्रारम्भ किया, जहाँ इनके पूर्वज नहीं पहुँच पाए थे। इन स्थानों पर बसकर उन्होंने अपने आपको उस परिवेश में ढाल लिया तथा आसानी से अपना जीवनयापन करने लगे। हालांकि आधुनिक मानव का प्रमुख निवास स्थल अफ्रीका था, पर 1.2 लाख वर्ष पूर्व उन्होंने अपने इस निवास स्थल से निकलकर विश्व के अन्य क्षेत्रों में प्रवास करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा प्रमाण मिलता है कि आधुनिक मानव 60 हजार वर्ष पूर्व आस्ट्रेलिया पहुँचा तथा इसके 40 हजार वर्ष बाद इनका आगमन अमेरिका में हुआ। अर्थात् आधुनिक मानवों के निवास की दृष्टि से अमेरिका सबसे नवीन स्थल माना जाता है। अधिकांश विद्वानों का यह भी मानना है कि मानव के शारीरिक रूप, आकार एवं रंग में अन्तर इसी युग में हुआ।

आधुनिक मानव अपने पूर्वजों से विकसित अवस्था में था। यहाँ तक कि इसके मस्तिष्क का आकार भी इनके पूर्वजों की अपेक्षा बड़ा था। अत: इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक मानव ने कई ऐसे आविष्कार किए जिनसे इनके पूर्वज परिचित नहीं थे। कला, औजार और यहाँ तक कि सिलाई तक की दिशा में इनके द्वारा कदम उठाया गया। आधुनिक मानवों के पूर्वजों द्वारा जो औजार बनाए गए थे, वे काफी साधारण एवं कम धार वाले औजार थे। साथ ही इन औजारों की किस्मों में भी बहुत विविधता नहीं थी। पर आधुनिक मानव द्वारा न केवल पत्थर के, बल्कि इसके अलावा अन्य वस्तुओं का भी इस्तेमाल औजार के रूप में किया गया था। कला के क्षेत्र में भी इनका योगदान उल्लेखनीय रहा। लेसकाक्स, फ्रांस की चित्रकलाएँ, वोगेल हर्ड तथा जर्मनी से प्राप्त हाथी के दाँत का बना घोड़ा इनकी कला की उत्कृष्टता को प्रकट करता है।

यूरोपीय उदाहरणों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यूरोपीय क्षेत्रों में इनका उद्गम अन्तर-हिमाच्छादन युग में हुआ था। यह युग अपेक्षाकृत गर्म था और आदिम मानव के विकास के लिए यहाँ अनुकूल मौसम और रहने का स्थान था। हालांकि आधुनिक मानव के पास अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान भी था, जिसका उपयोग करके उन्होंने विकास को गति प्रदान की। वे लोग आग से परिचित थे तथा इस पर नियन्त्रण की क्षमता रखते थे। इनके पास अपने लिए घर बनाने का ज्ञान भी था। इन ज्ञानों के कारण बदलते परिवेश के साथ-साथ अपने आपको ढालने की इनमें अदम्य क्षमता थी। यही कारण था कि वे ऐसे स्थानों पर भी जाकर बस सकें, जहाँ उनके पूर्वज पहले नहीं पहुँच पाए थे। जैसे-जैसे औजारों में परिष्करण होता गया आधुनिक मानव द्वारा बड़े जानवरों का शिकार करना भी सम्भव होता गया। ये जल संसाधनों का उपयोग करने में भी सक्षम थे। आधुनिक मानवों द्वारा मछली का शिकार करके भोजन के रूप में भी ग्रहण किया जाने लगा था।

इस प्रकार इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक मानव केवल अपनी प्राकृतिक और शारीरिक क्षमता पर ही आश्रित नहीं रहे, बल्कि संस्कृति और प्राप्त ज्ञान के आधार पर वे अपने को परिवर्तनों के अनुरूप भी ढालने लगे थे। आधुनिक मानव ने अपनी विकसित प्रौद्योगिकी के कारण समय के साथ अपनी जीवन-शैली में भी परिवर्तन किया। जहाँ पहले वह मूलत: शिकारी और संग्रहकर्त्ता का जीवनयापन करते थे, वहीं बाद के वर्षों में उसने पशुओं को पालतू भी बनाना प्रारम्भ कर दिया था। यहाँ तक कि पौधों के ज्ञान ने उन्हें पौधों को उगाने के लिए भी प्रेरित किया तथा समय के साथ वह घुमन्तू जीवन को छोड़कर एक स्थान पर टिककर रहने लगे। इस प्रकार होमोसेपियन्स सेपियन्स अर्थात् आधुनिक मानव ने विकास की ओर कदम बढ़ाया।

**प्रश्न 2. नातेदारी क्या है? इसका उदय कैसे हुआ?**

**उत्तर**–वंश और विवाह के आधार पर जो सम्बन्ध बनता है उसे नातेदारी सम्बन्ध के रूप में परिभाषित किया जाता है। नातेदारी का इतिहास काफी पुराना है। आदिमानवों में भी भाई-बहन के रूप में नातेदारी सम्बन्ध था। *आर. फॉक्स* का मत है कि गठबन्धन और वंश-परम्परा मनुष्य की अनूठी खोज है। इस खोज के कारण ही मनुष्य दूसरे समुदायों के साथ सम्पर्क और मित्रता स्थापित कर सका। बेटा या बेटी के विवाह के बाद दूसरे समुदाय से स्वाभाविक रूप से नातेदारी का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। नातेदारी का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह केवल खून का रिश्ता नहीं था, बल्कि इसमें सामाजिक सम्बन्ध भी शामिल थे। जहाँ खून का रिश्ता बहुत सीमित होता है, वहीं नातेदारी का सम्बन्ध काफी व्यापक होता है।

जहाँ तक नातेदारी की उत्पत्ति की बात है तो आर. फॉक्स का मानना है कि इसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध मांसाहारी भोजन की ओर धीरे-धीरे झुकाव होने से था। हालांकि आरम्भिक मानवों में इन सम्बन्धों का विशेष महत्त्व था। बड़े जानवरों का बड़े पैमाने पर शिकार करने से स्त्री और पुरुष के कार्य का पूरी तरह विभाजन हो चुका था। इसका कारण यह था कि बड़े जानवरों के शिकार में ज्यादा श्रम की आवश्यकता पड़ती थी। इस कारण महिलाओं को इसमें शामिल नहीं किया जाता था। महिलाएँ घर का काम एवं छोटे बच्चों की देखभाल करती थीं। साथ ही महिलाएँ भोजन इकट्ठा करने का काम भी किया करती थीं। हालांकि पूर्व में भोजन संग्रह का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता था, पर जब पुरुष शिकार पर जाने लगे तथा महिलाएँ घरेलू कार्य के साथ-साथ भोजन इकट्ठा करने लगीं, तो इस नए स्त्री-पुरुष आधारित श्रम- विभाजन के बाद पुरुष और महिलाओं के बीच भोजन के आदान-प्रदान की आवश्यकता का जन्म हुआ। इससे उनके पारस्परिक रिश्ते में परिवर्तन हुआ। इसके पहले पुरुष एक साथ रहते थे तथा सभी महिलाएँ अपने बच्चों के साथ एक साथ रहती थीं। यौन आधारित श्रम-विभाजन के बाद पुरुष और स्त्री भोजन अर्थात् सब्जी और

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मांस के बंटवारे के लिए एक-दूसरे पर बिल्कुल नए तरीके से आश्रित हो गए। फॉक्स कहते हैं कि यही व्यापार सम्भवत: सही अर्थों में मानव समाज की उत्पत्ति का आधार साबित हुआ। इसी का परिणाम था कि परिवार जैसी नई इकाई का निर्माण हुआ जिसमें वयस्क पुरुष, महिलाएँ तथा उनके बच्चे साथ-साथ रहने लगे। इस प्रकार प्रथम नातेदारी का जन्म यहीं से हुआ। मानव समाज में रक्त सम्बन्धियों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध बनाने पर रोक है, जिसका परिणाम यह हुआ कि मानव ने बहिर्विवाह की प्रथा कायम की। इस प्रथा के कारण ही मानव को बाध्य होकर दूसरे समुदाय में विवाह करना पड़ा। दूसरे समुदाय में विवाह करने की प्रथा के कारण प्रारम्भ में दूसरे समुदाय के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रखना अनिवार्य था, क्योंकि सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण नहीं रहने की स्थिति में विवाह सम्भव नहीं था। इस प्रकार नातेदारी का विस्तार होना प्रारम्भ हुआ। हालांकि एक-दूसरे पर आश्रित होने के कारण इस प्रकार की नातेदारी समय के साथ गहरी होती गई। पति-पत्नी का एक-दूसरे पर आश्रित सम्बन्ध के कारण इनका आपसी सम्बन्ध समय के साथ काफी सुदृढ़ होता गया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि नातेदारी की उत्पत्ति का मूल कारण एक-दूसरे पर अवलंबन है। जब मानव समूह एक-दूसरे पर आश्रित होता है, तो इसके कारण उनके सम्बन्ध भी सौहार्द होते हैं। इन परिस्थितियो में ऐसा भी देखा गया है कि कभी-कभी केवल सामाजिक सम्बन्ध भी नातेदारी सम्बन्ध बन जाते हैं, जिसका मूल कारण है पारस्परिक निर्भरता। हालांकि इस तरह के सम्बन्धों को बाद में विवाह से और मजबूत भी बनाया जाता था। नातेदारी सम्बन्धों के विकास में समाज में बढ़ती प्रतियोगिता एवं शत्रुता ने भी योगदान दिया। जब समाज में एक समूह की किसी दूसरी समूह के साथ शत्रुता उत्पन्न हो जाती है, तो जो लोग एक समूह का साथ देते हैं, वे किसी-न-किसी रूप में इस समूह से नातेदारी से या तो पहले जुड़े होते हैं या फिर बाद में जुड़ जाते हैं।

**प्रश्न 3. मानव-विकास की प्रक्रिया में भाषा ने क्या भूमिका निभाई?**

**उत्तर**–भाषा अर्थात् एक ऐसा माध्यम, जिसके द्वारा विचारों का आदान-प्रदान किया जा सके। अर्थात् भाषा के अभाव में विचारों का आदान-प्रदान सुगमतापूर्वक सम्भव नहीं है। अत: किसी भी समाज के विकास के लिए भाषा का होना एक अपरिहार्य आवश्यकता है। मानव और पशु में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह रहा है कि प्रारम्भिक काल से ही मानव के पास भाषा रही है, परन्तु पशुओं के पास केवल ध्वनि होती है। इनके द्वारा निकाली गई ध्वनियों का कोई सार्थक अर्थ नहीं निकलता, साथ ही इनकी ध्वनियों का दायरा भी सीमित होता है। जैसे कुत्ता अपनी प्रसन्नता या नाराजगी का इजहार अलग-अलग ढंग से भौंककर कर सकता है, पर वह अपने विचारों को स्पष्ट रूप में प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पास अपनी कोई भाषा नहीं है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषा मनुष्य की अनुपम उपलब्धि है। भाषा के कारण ही मनुष्य आपस में बातचीत करने में सक्षम है तथा वह अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकता है। एक ओर पशुओं द्वारा निकाली जाने वाली ध्वनियों का दायरा सीमित होता है, तो वहीं दूसरी ओर मनुष्य द्वारा निकाली जाने वाली सार्थक ध्वनियों की सीमा अनन्त है। इस बात की पुष्टि विश्व में उपलब्ध शब्दकोशों से होती है। प्रत्येक सार्थक ध्वनि हेतु एक अलग शब्द निर्धारित होता है। जहाँ तक भाषा की उत्पत्ति की बात है, तो अब तक इस सन्दर्भ में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल पाया है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि करीब 1.5 लाख वर्ष पूर्व मनुष्य स्वयं बोलने की स्थिति में आ गया था। परन्तु विद्वानों ने यह भी स्पष्ट किया है कि एक लाख वर्ष तक किसी भाषा के होने का प्रमाण नहीं मिलता। हालांकि लगभग 40 हजार वर्ष पूर्व यूरोप में पाए जाने वाले आधुनिक मानवों के पास भाषा थी, इस सन्दर्भ में कई प्रमाण भी प्रस्तुत किए गए हैं। आरम्भिक मानव की शारीरिक संरचना की छानबीन करने से ज्ञात होता है कि उनके मुख और नासिका छिद्र तथा उनकी लम्बी ग्रासनली एवं जीभ की लोच उन्हें कई प्रकार की ध्वनियाँ एवं शब्द निकालने में सक्षम बनाती है। हालांकि किसी भाषा की ध्वनि और किसी वस्तु के साथ इसके सम्बन्ध का कोई आपसी रिश्ता नहीं होता। इस ध्वनि को लोग इसलिए समझ पाते हैं क्योंकि सामाजिक दृष्टि से बोलने वाले एवं सुनने वाले इसका खास अर्थ निकालते हैं तथा इसे खास वस्तु से जोड़कर देखते हैं।

मानव के विकास में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भाषा ही वह माध्यम रही है, जिसके द्वारा मानव अपने विचारों एवं ज्ञान को एक मानव से दूसरे मानव तक पहुँचा सका। हालांकि भाषा के अभाव में ऐसे कार्य प्रतीकों के माध्यम से सम्पन्न किए जाते थे, पर यह भी सत्य है कि इन प्रतीकों की एक सीमा थी, जबकि भाषा सीमा के दायरे से बाहर है। भाषा के बल पर ही मानव अपनी जीवन-शैली से लेकर प्रौद्योगिकी तक सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर आगे बढ़ सका है। आज अगर आदिमानव से चलकर मानव विकास की इस अवस्था में पहुँचा है, तो यह भाषा के कारण ही संभव हो सका है। भाषा के बाद ही लिपियों का विकास हुआ। अगर मानव के पास भाषा नहीं होती तो, तो इसका अर्थ है कि इसके पास लिपियाँ भी नहीं होतीं। भाषा का ही परिणाम है कि आज हम कई ऐसे ग्रन्थों को पढ़ पाते हैं जिनके बारे में स्रोत केवल पूर्वजों के कथन ही हैं। भाषा के बगैर मनुष्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज मानव जिस आधुनिक विश्व में जी रहा है, इसका मूल भाषा ही है। भाषा के विकास के कारण ही मानव को अपने पूर्वजों का ज्ञान प्राप्त हो सका। आज मानव जिस अत्याधुनिक तकनीक में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, वहाँ तक यह एकाएक नहीं पहुँचा, बल्कि समय के साथ इसके ज्ञान और तकनीक में वृद्धि होती गई।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव के विकास में भाषा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भाषा मानव की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। भाषा के बगैर मानव, मानव नहीं बल्कि पशु के समान होता और इसकी कल्पना की जा सकती है कि आरम्भिक काल से आज तक पशु के रहन-सहन में कोई व्यापक परिवर्तन नहीं आया। अर्थात् अगर मानव के पास भाषा का ज्ञान नहीं होता, तो आज भी मानव इसी आरम्भिक अवस्था में होता, जब इसके पास न तो कोई विशेष जीवन-शैली थी और न ही इसका कोई विशेष समाज था। भाषा ने न केवल मानव की प्रगति के पथ को आसान बनाया, बल्कि समय के साथ उसकी संस्कृति में भी व्यापक परिवर्तन ला दिया।

**प्रश्न 4. पशुपालक खानाबदोशी पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर–**प्रारम्भिक काल में मानव शिकारी-संग्रहकर्त्ता की जीवन-शैली के साथ अपना जीवनयापन कर रहा था। समय के साथ उसके ज्ञान में वृद्धि हुई तथा वह विभिन्न प्रकार के पशुओं एवं वनस्पतियों के प्रजनन एवं प्रकृति से परिचित हुआ। इस प्रकार पशुपालक खानाबदोशी जीवन-शैली का आरम्भ पशुओं को पालतू बनाने से आरम्भ हुआ। हालांकि पश्चिम एशिया से ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि कृषि और पशुपालन का आरम्भ लगभग साथ-साथ हुआ। कुछ समुदायों ने कृषि को अपना जीवनयापन का साधन बनाया, तो कुछ समुदायों द्वारा पशुपालन को प्राथमिकता दी गई।

कुत्ता, सूअर और घोड़े जैसे पशुओं को पालने का प्रमाण मध्यपाषाण काल से ही मिलता है। परन्तु भेड़, बकरी और मवेशी के पालने की शुरुआत ने मनुष्य की जीवन पद्धति को काफी प्रभावित किया। पशुपालन के आरम्भ के साथ ही मानव की जीवन-शैली में व्यापक परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले शिकारी-संग्रहकर्त्ता जीवनयापन शैली में जानवरों को मारकर तुरन्त खा लिया जाता था, वहीं पशुपालन के बाद अब जानवरों को पाला जाने लगा तथा अन्य भोज्य पदार्थ के अभाव में इसका उपयोग भोजन के रूप में किया जाने लगा। पशुपालक खानाबदोशों की एक खास विशेषता यह होती थी कि वे पशुओं के लिए चरागाह की खोज में निरन्तर घूमा करते थे। अर्थात् किसानों की तरह इनका निवास स्थान नहीं होता था। इन पशुपालकों का क्षेत्र आमतौर पर एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के घास के मैदान होते थे, जहाँ इनके पशुओं के लिए पर्याप्त चरागाह उपलब्ध होते थे। हालांकि ऐसा नहीं था कि सभी पशुपालक खानाबदोश एक ही तरह के पशुओं को पाला करते थे, बल्कि क्षेत्र के अनुसार उनकी पशु प्रजातियों में भिन्नता भी होती थी।

पश्चिम तथा दक्षिण एशिया एवं उत्तरी तथा पूर्वी अफ्रीका के मैदानों में रहने वाले खानाबदोश पशुपालक सामान्यत: बकरी, भेड़ एवं मवेशी पाला करते थे। उनकी सम्पत्ति इनके पशु ही होते थे। यूरेशियाई स्टेप्स में हालांकि पशुपालन व्यवस्था के आरम्भ से पूर्व रेन्डियर को पालतू बनाया जाना शुरू कर दिया गया था। पशुपालक समुदाय आमतौर पर समकालीन सभ्यताओं के मुख्य केन्द्र से दूर रहा करते थे। अरब एवं अफ्रीका में रहने वाले पशुपालक खानाबदोश विशेषकर ऊँट पाला करते थे, क्योंकि यह कम भोजन एवं पानी पर भी कई दिनों तक जिंदा रह सकता था। हालांकि ऊँट पालने से सहारा एवं अरब मरुभूमियों से गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों पर इनका नियन्त्रण भी हो गया था। खानाबदोश समूहों को अपने जीवनयापन के लिए पशुओं को पालना तथा इनका रखरखाव करना अपरिहार्य था। आधुनिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि सच्चा खानाबदोश गरीब होता है। ज्यादा सम्पत्ति उसके लिए भार होती है। उसके पास उतना ही सामान होता था, जितना वह ढो सके। खानाबदोश पशुपालक आमतौर से घुमन्तू होते थे। ये मौसम के अनुसार चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण किया करते थे। हालांकि जानवरों की संख्या में वृद्धि होने पर जब उपलब्ध चरागाह कम पड़ जाता था, तो ऐसी स्थिति में भी उन्हें पशुओं के लिए चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था। ये अपनी जरूरत के सामानों को पड़ोसी स्थानबद्ध समूहों से विनिमय के माध्यम से प्राप्त करते थे। आमतौर पर ये अपने पशु या उनका उत्पाद उन्हें देते थे तथा बदले में इनसे अनाज आदि पदार्थ प्राप्त करते थे। जब कोई खानाबदोश अमीर हो जाते थे, तो वे एक स्थान पर बस जाया करते थे। हालांकि जो खानाबदोश बहुत गरीब होते थे, वे भी बहुत दिनों तक इस जीवन-शैली को नहीं अपना पाते थे। जब कभी इनके पशुओं की अचानक बीमारी आदि से बड़े पैमाने पर मृत्यु हो जाती थी, तो या तो ये लोग स्थायी बसे समुदायों की सेवा में लगकर अपना जीवनयापन करते थे या फिर लूटमार का पेशा अपनाकर जीवनयापन करते थे। आमतौर पर पशुपालक खानाबदोशों में योद्धा पुरुषों का वर्चस्व होता था। शारीरिक सौंदर्य और साहस पुरुष का अलंकार माना जाता था। बाद में खानाबदोश पशुपालकों द्वारा घोड़े के प्रयोग के कारण विशाल साम्राज्य भी स्थापित किया गया। घोड़े को पालतू बनाने के बाद इनकी प्रकृति आक्रामक हो गई तथा स्थिर बसे समाज के लिए ये आक्रमणकारी के रूप में माने जाने लगे। खानाबदोश समूह का ही सुप्रसिद्ध नेता चंगेज खां था, जिसने तेरहवीं शताब्दी में अब तक के सबसे बड़े साम्राज्य का निर्माण किया था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि खानाबदोश पशुपालक जीवन-शैली का आरम्भ पशुओं को पालतू बनाने से हुआ। इनकी जीवन-शैली घुमन्तू प्रकृति की थी। ये अपने पशुओं के लिए चरागाह की खोज में निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे, हालांकि इनका गंतव्य स्थान हमेशा ऐसा होता था, जहाँ पर्याप्त वर्षा एवं वनस्पति की उपलब्धता हो। आमतौर पर ये गरीब हुआ करते थे, पर घोड़े को पालतू बनाने के बाद ये इतिहास में आक्रमणकारी के रूप में पहचाने जाने लगे। साम्राज्य जैसी व्यवस्था का आधार इन्हीं के द्वारा रखा गया था।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**प्रश्न 5. कृषि के परिणामों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–नवपाषाण काल में कृषि का प्रारम्भ विश्व के एक बड़े हिस्से में हुआ तथा इसका प्रभाव मानव समाज पर व्यापक रूप से पड़ा। कृषि के विकास के कारण मानव के विकास की प्रकृति में परिवर्तन हुआ। आवास के साथ-साथ कृषि ने मानव जनसंख्या को भी प्रभावित किया। इसके कारण कई ऐसे समुदायों का उदय हुआ, जो पहले अस्तित्व में नहीं थे। कृषि के कारण एक ओर जहाँ लोगों की खाद्य आवश्यकताएँ पूर्ण हुईं, वहीं दूसरी ओर इसने अनेक नई बीमारियों को भी जन्म दिया। कृषि के आगमन के पहले का समाज सामान्यत: सरल समाज था, पर कृषि के आरंभ से समाज का स्वरूप जटिल हुआ तथा इस नई व्यवस्था ने समाज में टकराव भी उत्पन्न किया।

प्रारम्भिक मानव शिकार और संग्रहण का जीवन व्यतीत करता था, परन्तु कृषि के प्रारम्भ के साथ ही उसके जीवनयापन में व्यापक परिवर्तन हुआ। कृषि के विकास के परिणामस्वरूप ही गाँव का उदय हुआ। लोगों का जीवन स्थायी हुआ तथा लोग एक स्थान पर टिककर रहने लगे। इस प्रकार कृषि के विकास ने ग्रामीण संस्कृति को जन्म दिया। कृषि के पहले ग्रामीण संस्कृति नहीं थी। जब लोग एक स्थान पर टिककर रहने लगे, तो गाँव एवं शहर दोनों का विकास हुआ। साथ ही ग्रामीण बस्तियों के निर्माण के साथ ही गाँव की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होनी भी प्रारम्भ हो गई। एक जगह बसे समुदायों की जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगी। बच्चों की जन्म-दर में तेजी आई। साथ ही खाद्य-पदार्थों की पर्याप्त उपलब्धता के कारण मानव की जीवन अवधि भी लंबी होती गई। जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप बस्तियों का विस्तार भी हुआ तथा जहाँ पहले लोग छोटे-छोटे समूहों में रहा करते थे, वहीं अब लोग बड़े-बड़े गाँवों में रहने लगे। साथ ही जब जनसंख्या वृद्धि के कारण जमीन कम पड़ने लगी, तो लोगों ने खेतों का विस्तार करना भी प्रारम्भ किया। इसका परिणाम हुआ आरम्भिक काल के कई अनछुए स्थानों पर भी मानव की बस्तियों का विकास हुआ। जहाँ पहले जब मानव शिकारी-संग्रहकर्त्ता था, तो इसके जीवनयापन के लिए बड़े भूभाग की आवश्यकता थी, वहीं जब मानव कृषि करने लगा, तो जमीन का एक छोटा टुकड़ा भी कई लोगों के लिए भोजन की आपूर्ति करने में सक्षम हो गया। कृषि के विकास के कारण ही दासता जैसी नई व्यवस्था भी समाज में प्रवेश कर गई। लोगों के बीच सामाजिक अन्तर भी बढ़ने लगा।

हालांकि कृषि के विकास का एक परिणाम यह भी हुआ कि लोगों में दीर्घावधि तक सहयोग की भावना का भी विकास हुआ। पर उन लोगों को एक बार शिकार होने के बाद भी उस समूह का अस्तित्व नहीं होता था, जबकि कृषिकार्य ऐसा था कि इसमें लंबे समय तक सहयोग की आवश्यकता होती थी। परिणामत: जनजातीय समुदाय का उदय हुआ। कृषि विकास के इस सकारात्मक परिणामों के साथ-साथ हमें कुछ नकारात्मक परिणाम भी देखने को मिलते हैं, जैसे कई प्रकार की नई महामारियों एवं बीमारियों की सम्भावना बढ़ गई। पहले जहाँ शिकारी-संग्रहकर्त्ता एक स्थान पर टिककर नहीं रहते थे तथा जल स्रोत आमतौर से गतिमान होते थे, वहीं कृषि के विकास के बाद मानव एक स्थान पर टिककर रहने लगा तथा खेतों में पानी का जमाव भी प्रारम्भ हो गया, क्योंकि यह कृषि के लिए आवश्यक था। ऐसी परिस्थितियों में मच्छरों की संख्या में वृद्धि होने लगी। ये मच्छर मलेरिया जैसी बीमारी के वाहक होते थे। इसके प्रकोप से कई लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी। साथ ही कूड़ों का ढेर इकट्ठा होने के कारण विविध प्रकार के कीड़े-मकोड़े भी आकर्षित होते थे, जिनसे भी कई प्रकार की बीमारियाँ होती थीं। इसके अलावा कृषि के विकास के कारण समाज के स्वरूप में परिवर्तन आया। जहाँ पहले का समाज सरल था, वहीं अब समाज जटिल हो गया। समाज में जटिलता के कारण समाज में आपस में कई मुद्दों को लेकर टकराव की स्थिति भी उत्पन्न होने लगी थी। इस टकराव के कारण कभी-कभी दो समूहों में आपस में युद्ध जैसी घटनाएँ भी होने लगी थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवपाषाण काल में जब कृषि का विकास हुआ, तो उसका प्रभाव नवपाषाण कालीन समाज पर व्यापक रहा। कृषि के विकास के कारण ही समाज में पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हुआ, जिसके कारण नाते-रिश्तेदारी जैसे सम्बन्धों का दायरा बढ़ा। कृषि ने नवपाषाण काल में ग्रामीण संस्कृति का विकास किया तथा बाद में इसी संस्कृति के विकास के रूप में शहरों का उदय हुआ। जब लोगों को पर्याप्त भोजन पदार्थ मिलने लगे, तो इससे इनकी जन्म दर में भी वृद्धि हुई तथा जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी। जनसंख्या में वृद्धि का परिणाम था कि लोगों के खेतों एवं निवास स्थान का विस्तार हुआ। साथ ही ऐसे समुदाय का विकास हुआ, जिनसे आपस में सहयोग की भावना होने लगी। पर नकारात्मक प्रभाव के रूप में नई बीमारियों एवं समाज में टकराव भी इसके परिणाम के रूप में देखा जाता है।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न–औजारों एवं आग की खोज ने आदिमानव के जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर**–जब मानव जीवन का प्रारम्भ हुआ, तो उस समय मानव के पास कोई ज्ञान नहीं था। मानव आमतौर से पशु की तरह ही रहा करता था। उसकी जीवन-शैली एवं खान-पान की आदतें भी पशुओं के समान ही थीं। आरम्भिक मानव आमतौर से मरे हुए जानवरों का मांस एवं कदंमूल इकट्ठा करके खाता था तथा अपना जीवनयापन करता था। इस परिस्थिति में कभी-कभी मानव भोजन न मिलने की समस्या का भी सामना करता था क्योंकि इसके पास भोजन प्राप्त करने के स्वनिर्मित कोई साधन नहीं थे। पर जैसे ही मानव ने पत्थरों का प्रयोग औजार के रूप में करना प्रारम्भ किया, तो उसने अब जानवरों के मरने का इन्तजार करना छोड़ दिया। प्रारम्भ

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



में मानव द्वारा साधारण किस्म के पत्थर के औजार विकसित किए गए, जिनसे वह छोटे-छोटे जानवरों का शिकार कर पाता था। पर समय के साथ उसने औजारों को परिष्कृत किया तथा उनकी धार भी तेज करनी आरम्भ की। इसका परिणाम हुआ कि मानव ने अब छोटे-छोटे जानवरों के साथ-साथ बड़े जानवरों का भी शिकार करना प्रारंभ कर दिया तथा इसकी भोजन की समस्या पहले की अपेक्षा कम होती गई।

समय के साथ मानव ने औजार के निर्माण में नई प्रौद्योगिकी का विकास किस्म के औजार बनाने आरंभ किए। मानव द्वारा कृषि का आरंभ मुख्यत: औजार पर ही निर्भर करता था, क्योंकि कृषि जैसे कार्य के लिए उन्नत किस्म के औजारों का होना अनिवार्य था। कृषि के विकास के लिए मानव को विविध प्रकार के कार्य करने पड़े, जैसे–जंगलों को साफ करना, खेतों की जुताई करना, बीजों की बुआई करना आदि। मानव के इन कार्यों में कुल्हाड़ी एवं हंसिया जैसे उन्नत किस्म के औजारों ने काफी मदद की तथा मानव का जीवन बदलता गया। जहाँ पहले मानव घुमन्तू जीवन व्यतीत करता था, वहीं कृषि के विकास के साथ उसका जीवन स्थायी होता गया। उसने स्थायी घर बनाकर रहना आरम्भ किया तथा गाँव का उदय होना प्रारम्भ हुआ। ये औजार ही थे जिससे समाज के साथ मानव जीवन के जीवन स्तर को व्यापक रूप से प्रभावित किया। औजारों के प्रयोग से मानव धीरे-धीरे शिल्प एवं अन्य प्रकार के कार्यों को भी सम्पन्न करने लगा। औजारों के विकास का ही परिणाम था कि मानव ने बुनाई जैसा कार्य भी करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार औजारों ने मानव जीवन के पूरे परिदृश्य को बदल डाला।

मानव जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन करने में औजारों के साथ आग की खोज ने महती भूमिका निभाई। आग की खोज से पहले मानव आमतौर से कच्चा भोजन ही किया करता था। आग के प्रयोग एवं उस पर नियन्त्रण करने के ज्ञान ने मानव के जीवन को पूरी तरह बदल दिया। अब मानव अपने भोजन को पकाकर खाने लगा। भोजन को पकाकर खाने के बाद उसने स्वाद में भी परिवर्तन महसूस किया। पहले मानव भोजन को प्राकृतिक रूप से ही ग्रहण करता था, जिससे कई प्रकार के विषैले पदार्थ भी जो कि भोजन में पहले से मौजूद रहते थे, उनको भी मानव भोजन के रूप में ग्रहण कर लेता था, जिससे उसके स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता था। आग के ज्ञान के कारण जब मानव भोजन पकाकर खाने लगा, तो भोजन में उपस्थित विषैले पदार्थ आग की गर्मी के कारण समाप्त हो जाते थे। आग के कारण मानव को कृषि में भी मदद मिली। मानव जंगलों को साफ करता था और फिर आग से जलाकर कटी हुई वनस्पतियों को नष्ट करता था। उसके बाद उस स्थान पर कृषि करता था। बाद के वर्षों में जब मानव ने मिट्टी के बर्तन बनाना प्रारम्भ किया, तो आग के ज्ञान के कारण ही उसने आग में ऊंचे तापमान पर पकाना प्रारंभ किया, जिससे बर्तनों के रंग एवं मजबूती में परिवर्तन आया। आरम्भिक काल में आग के माध्यम से मानव खूंखार जंगली जानवरों से अपनी रक्षा भी करता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि औजार और आग की जानकारी ने मानव के जीवन को पूरी तरह बदल दिया। अगर मानव के पास उन महत्त्वपूर्ण चीजों का ज्ञान न होता, तो शायद मानव आज इस अवस्था में नहीं पहुँच पाता। औजार एवं आग ने मानव के लिए भोजन प्राप्ति को भी सुगम बनाया तथा मानव को निरन्तर आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि औजार तथा आग की खोज ने मानव जीवन के पूरे परिदृश्य को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

कांस्ययुगीन सभ्यताएँ

# आरम्भिक सभ्यताओं का सांस्कृतिक और प्राकृतिक परिवेश

6

## परिचय

प्रस्तुत अध्याय में हम प्रारंभिक कांस्ययुगीन सभ्यताओं के बारे में चर्चा की गई है। इसी सभ्यता में हमें प्रौद्योगिकी, आर्थिक और राजनैतिक विकास का एक नया चरण देखने को मिलता है, जिसे कांस्य युग के नाम से जाना जाता है। इन परिवर्तनों के साथ-साथ इस युग में (कांस्य युग में) हमें अन्य परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। जैसे–मानवीय सम्बन्ध में बदलाव, राजनैतिक भूमिकाओं में बदलाव, नयी सामाजिक सभ्यताओं का विकास, जो इस युग में हमें पहली बार देखने को मिलते हैं और इसी को शहरीकरण का नाम दिया जाता है या शहरी क्रान्ति कहा जाता है।

इस अध्याय में निम्नलिखित सभ्यताओं के बारे में अध्ययन किया गया है–

(1) मिस्र की सभ्यता
(2) मेसोपोटामिया
(3) हड़प्पा सभ्यता (भारत-पाकिस्तान)
(4) उत्तरी और मध्य चीन की शांग सभ्यता

इन सभी सभ्यताओं में जो एक बात हमें देखने को मिलती है, सभी सभ्यताएँ बड़ी और बाढ़ लाने वाली नदियों के मध्य विकसित हुईं, परन्तु इन सभ्यताओं के भौगोलिक विस्तार में काफी अन्तर देखने को मिलता है। नदियों के किनारे सभ्यता के विकसित होने का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह होता है कि यहाँ संचार आसान होता है, जिसके कारण सभ्यता का विस्तार काफी बड़े क्षेत्र पर हो जाता है और नये सास्कृतिक समुदायों का अस्तित्व देखने को मिलता है।

इस अध्याय में विभिन्न सभ्यताओं की एक साथ चर्चा करने का एक कारण यह भी है कि इन सभ्यताओं में आपसी समानता देखने को मिलती है। उपर्युक्त दी गई सभ्यताओं में केवल चीन की शांग सभ्यता अन्य सभ्यताओं से भिन्न नजर आती है।

यदि सभ्यताओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आरंभिक मत देखें, तो इस समय के इतिहासकार यह मानते हैं कि दूर-दूर के क्षेत्रों और विभिन्न प्रकार की प्रजातियों की संस्कृतियों में काफी समानताएं दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि समान प्रतिक्रियाओं के कारण भी समान होते हैं। इस प्रकार का मत देने वाले इतिहासकारों हम *ई.बी. टाइलर* और *एल.एच. मार्गन* के रख सकते हैं। परन्तु जैसे-जैसे इस सम्बन्ध में शोध और उत्खनन होते गये, विचारों में परिवर्तन आता चला गया।

इसी प्रकार का मत *बी. गार्डन चाइल्ड का* है। वे कहते हैं कि विश्व के कई क्षेत्रों में जो परिवर्तन देखने को मिलते हैं, वे पाषाण, कांस्य और कृषि के क्रम में दिखाई देते हैं। मिस्र, मेसोपोटामिया और भारत की जो शहरी सभ्यताएं थीं, वे धातु विज्ञान, परिवहन आदि क्षेत्रों में समान खोजों पर आधारित थीं। इसके अलावा गार्डन चाइल्ड यह भी चाहते हैं कि नगरीय जीवन और लेखन कला के साथ-साथ विकास को महज एक संयोग नहीं माना जा सकता। मानव सभ्यताओं में एक खास बात यह होती है कि वे एक-दूसरे से सीखने की प्रवृत्ति रखती हैं। जैसे–तांबे को गलाना, पहिए की गाड़ी और लेखन कला का विकास तो एक ही साथ हुआ, परन्तु बाद के कई समूहों ने इसे सीखना और उपयोग करना जाना। इसका अर्थ यह हुआ कि मानव संस्कृतियों ने क्रमिक विकास में विस्तारण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस क्रमिक विकास का अर्थ सामाजिक संरचनाओं का एक निश्चित क्रमिक विकास है, जिसमें समाज सरल से जटिल की ओर विकास करता हुआ दिखता है। जटिलता का सम्बन्ध हम आन्तरिक भेद से लगा सकते हैं। इस प्रकार सरलता से जटिलता की ओर जाने में श्रम-विभाजन और विशेषता बढ़ती है। नये-नये औजार और तकनीकियों का विकास होता है जिसके कारण समाज में सामाजिक भूमिकाएं निर्धारित होने लगती हैं।

अब हम ऊपर दी गई चारों सभ्यताओं के बारे में संक्षिप्त रूप से जानेंगे, जिससे हमारी समझ इन सभ्यताओं के सम्बन्ध में बन सके–

**(1) मिस्र की सभ्यता (नील का उपहार)**–प्रागैतिहासिक काल में यहाँ के लोग कछार घाटी में पश्चिमी मरुस्थल के निकट पहाड़ियों और पूर्वी मरुस्थल की मौसमी नदियों का उपयोग करते

थे। पश्चिम मरुस्थल में जो हरियाली देखने को मिलती है, उसके विकसित होने का एक कारण वहां के झरने भी थे और जब वर्षा होती थी, जिसके फलस्वरूप यहाँ घास भर ही उगती थी, के कारण यहाँ पशुचारण आसान हो जाता था। पूर्वी मरुस्थल में धातु जिसमें मुख्यतः तांबा, सोना और अर्ध मूल्यवान पत्थर पाये जाते थे जिनसे इमारत बनाने में काफी मदद मिलती थी। चूंकि ये क्षेत्र सूखे थे इसी कारण यहाँ अच्छी मजबूत लकड़ी नहीं मिलती थी, जिससे नाव तैयार की जा सके, इसीलिए यहाँ के लोगों को इस प्रकार की लकड़ी के लिए लेबनान से सम्पर्क करना पड़ता था।

मिस्र की भूमि एक उपजाऊ भूमि थी, जिस कारण यहाँ फसल अच्छी पैदा होती थी और यहाँ से गेहूं रोम शहर को भी निर्यात किया जाता था। कम श्रम व कम बीज का उपयोग करके भी अच्छी फसल पैदा होती थी। इसी कारण यहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ा। परन्तु जहाँ जनसख्या का घनत्व अधिक होगा, वहाँ किसी न किसी समय जमीन की कमी हो सकती है और जमीन के लिए आपसी संघर्ष बढ़ता है। इस प्रकार जब दो वर्गों में संघर्ष होता है, तो एक वर्ग की विजय होती है और उसका प्रभुत्व वहाँ कायम होता है। परन्तु मिस्र के सम्बन्ध में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि राज्य के उदय से पूर्व यहाँ किसी प्रकार का जनसंख्या दबाव बढ़ा हो और संघर्ष हुआ हो। पूर्वकाल के युद्ध नायकों की स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी नहीं मिलती है।

मिस्र की सभ्यता में हमें पिरामिड भी देखने को मिलते हैं, जिनको प्राचीन राजशाही ने बनवाया था। इनका समय 2700 से 2160 ई.पू. था। यह इस युग की अद्भुत और अनुपम कृति और उपलब्धि कही जा सकती है। पिरामिड को हम एक विशाल स्मारक या मकबरा कह सकते है, जिसमें मृत शासकों के शव रखे जाते थे और देवत्व प्राप्त (मरने के बाद) शासकों की पूजा भी की जाती थी।

**(2) मेसोपोटामिया की सभ्यता**–इस सभ्यता की मुख्य विशेषताओं में हम शहरी विकास, नगरीय जीवन, सत्ता, व्यापारिक मार्गों को देख सकते हैं। यहाँ एक अन्य बात जो महत्त्वपूर्ण है कि इस सभ्यता में मिस्र के विपरीत जमीन के लिए संघर्ष दिखाई देता है। इस सभ्यता की जनसंख्या का जमाव एक जगह पर अधिक हो जाता था। इस सभ्यता की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता थी कि ये लोग अपने लेन-देन का लिखित दस्तावेज रखते थे, जो मिट्टी की बनी थी, टिकिया पर लिखा जाता था। इस सभ्यता की लिपि कीलाक्षर थी।

दक्षिणी मैदानी हिस्से को सुमेर के नाम से जाना जाता था। ये लोग सुमेरियाई भाषाभाषी थे। इन्होंने ही सबसे पहले नगरों का विकास किया और अर्द्धशुष्क मरुस्थल होने कारण यह वनस्पति विरल थी। मछली मारना, जंगली जानवरों का शिकार करना आदि इस सभ्यता की अन्य विशेषताएँ थीं।

इस सभ्यता के लोग खेती के साथ-साथ पशुचारण भी करते थे और एक ही समुदाय के लोग भिन्न काम भी करते थे। मेसोपोटामिया में हमें पशु अधिक संख्या में देखने को मिलते हैं। यहाँ से ऊन का निर्यात भी किया जाता था। यह पशुधन उनकी ऐसे समय सहायता करता था, जब वहाँ ठीक से खेती नहीं हो पाती थी, तब दूध और दूध से बने खाद्य-पदार्थों का सहारा लिया जाता होगा।

इस सभ्यता में सिंचाई व्यवस्था भी देखने को मिलती है और पानी के लिए संघर्ष भी देखने को मिलता है, क्योंकि जो लोग ऊपरी हिस्से में रहते थे, वो निचले हिस्से में रहने वाले लोगों के लिए पानी नहीं छोड़ते थे। इसीलिए अक्सर ऊपरी और निचले हिस्से में रहने वालों के बीच संघर्ष होता था।

**(3) हड़प्पा सभ्यता**–हड़प्पा सभ्यता की विशेषताओं में हमें कुछ लक्षण मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यताओं से मिलते-जुलते दिखाई पड़ते हैं, जैसे कि मेसोपोटामिया और मिस्र में जो अनाज उपजाए जाते थे, वे ही अनाज हड़प्पा सभ्यता में भी उपजाए जाते थे। मेसोपोटामिया की तरह यहाँ पर पशुपालन जोरों पर था। यहाँ कपास उगाया जाता था, जिसके कपड़े बनाये जाते होंगे। इस सभ्यता में पानी की उपलब्धता पर ध्यान देना यहाँ के लोगों की खास विशेषता कही जा सकती है, क्योंकि मोहनजोदड़ो में घरेलू उपयोग के लिए 700 कुएं हाकर नदी के किनारे (पाकिस्तान) पानी का स्तर काफी ऊँचा था। प्राकृतिक झरने और कुएं थे। अल्लाहदिनो जो कि एक हड़प्पाई बस्ती थी, में पत्थर के कुओं द्वारा सिंचाई होने के प्रमाण मिलते हैं।

मिस्र और मेसोपोटामिया की तरह ही यहाँ भी अच्छी लकड़ी, पत्थर और धातुएं उपलब्ध थीं, जिसके प्रमाण यहाँ से मिले हैं; जैसे कि पंजाब से शीशम व टीक गुजरात से मंगाई जाने वाली लकड़ी थी।

रोपड़ से शिवालिक पहाड़ियों की ओर जाना आसान था और मोहनजोदड़ो में अपने उपयोग के लिए लकड़ियां वहीं से मंगवाई जाती थीं। दक्षिणी राजस्थान से तांबा आता था। कौड़ियों के लिए सौराष्ट्र का क्षेत्र उपयुक्त था। इसी सभ्यता के एक स्थल रोहरी से स्फटिक मिला है जिसका उपयोग पूरे हड़प्पाई क्षेत्र द्वारा घरेलू उपकरण बनाने के लिए किया जाता था।

इस सभ्यता की अन्य विशेषताओं में तकनीकों के क्रमशः विकास के लक्षण मिलते हैं। शहरी काल में बाह्य सम्पर्कों की पद्धति में परिवर्तन हुआ। समुद्री व्यापार शुरू हुआ। जेवरात बनाना, हाथीदांत पर नक्काशी, चांदी के बर्तन आदि का उपयोग इस सभ्यता में होने लगा था। पक्की ईंटों का उपयोग, लेखन कला का विचार इस सभ्यता के शहरी जीवन की कुछ खास विशेषताएं थीं।

**(4) उत्तरी और मध्य चीन की शांग सभ्यता**–चीन में नवपाषाण संस्कृति का आरम्भ 600 ई.पू. में हो चुका था। यहाँ

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कांस्य युग का प्रारम्भ सिया (Hsia) राजवंश के शासन काल से शुरू हुआ माना जाता है। इस सभ्यता के कांस्य युग को इरहलिटू (Erhlitou) के नाम से भी जाना जाता है। सिया (Hsia) वंश के बाद शांग राजवंश का उदय हुआ, जिसके नाम पर इस सभ्यता का नाम पड़ा, क्योंकि इस सभ्यता के अधिकांश स्थल इसी राजवंश के काल के मिले हैं। इसी समय में इस सभ्यता में बलि और लेखन कला के भी प्रमाण मिलते हैं। यहां राजनैतिक एकता का अभाव दिखाई देता है।

इस सभ्यता के नवपाषाण के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि अधिकांश स्थल हुआंग हो, जिसे पीली नदी भी कहा जाता है तथा यांगतेज (Yangtze) के किनारे बसे हुए थे। इस नवपाषाण संस्कृति की हमें निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती हैं–

– पूर्वी समुद्र तट और यागतेज नदी-घाटी में चावल की खेती।
– सन के रेशे के बने वस्त्र।
– हड्डी और पत्थर के बने खेती करने के उपकरण आदि।

इस समय यहाँ पशुपालन का चलन तो था, परन्तु पशुपालन को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता था।

हुआंग हो (Huang Ho) घाटी और इसके उत्तर और दक्षिण में यांगतेज के पास का क्षेत्र छोड़कर कुछ हद तक समुद्र तट पर कांस्ययुग से समृद्ध स्थल देखने को मिलते हैं। वेई नदी-घाटी क्षेत्र में भी कांस्ययुगीन स्थल मिलते हैं। यह नदी-घटी हुआंग हो की ही सहायक नदी थी। अन्यंग से मिली विभिन्न प्रकार की हड्डियों से इस बात का अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है कि यहाँ का जंगल काफी घना रहा होगा। यांगतेज सबसे बड़ी नदी थी और इसके आसपास के क्षेत्र में भी प्रचुर मात्रा में वर्षा होती थी, जिससे यहाँ चावल उत्पादन को बढ़ावा मिला। आज भी यह क्षेत्र चावल उत्पादन में अग्रणी स्थल है।

इस सभ्यता में जिस मिट्टी के बने बर्तन का उपयोग होता था, उसे कैओलिन (Kaolin) कहा जाता था। यहाँ सन के बने वस्त्रों का उपयोग होता था। सिल्क का भी यहाँ उपयोग होता था। समुद्र से सीपी और कौड़ियां प्राप्त की जाती थीं। जेड यहाँ मिलने वाला एक कीमती पत्थर था, जिसका उपयोग गहनों और धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता था।

उपर्युक्त चारों सभ्यताओं का अध्ययन करने के बाद हम देखते हैं कि इन सभ्यताओं में कुछ समानता के लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हैं और मानवीय सभ्यता का एक कृत्रिम विकास भी यहाँ देखने को मिलता है, जो पाषाण से कांस्य और लौह क्रम में दिखाई देता है। मिस्र, मेसोपोटामिया और हड़प्पा सभ्यता अपने में काफी समानता रखती है, परन्तु चीन की शांग सभ्यता में इन सभ्यताओं से भिन्न लक्षण दिखाई देते हैं व यह इन सभ्यताओं से बाद में विकसित हुई थी।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. मिस्र और मेसोपोटामिया सभ्यताओं के कृषीय उत्पादन की तुलना कीजिए।**

**उत्तर**–मिस्र और मेसोपोटामिया सभ्यताओं के कृषीय उत्पादन की तुलना के अन्तर्गत हम इन दोनों सभ्यताओं की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हैं। दोनों की भौगौलिक स्थिति क्या थी, वहाँ पानी (सिचांई) की सुविधा, वर्षा, बाढ़ आदि की स्थिति क्या थी, इन सब बातों को ध्यान में रखकर हम इन दोनों सभ्यताओं के कृषीय उत्पादन की तुलना कर सकते हैं, क्योंकि ये ही वे कारण होते हैं, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

**मिस्र सभ्यता में कृषि उत्पादन**–मिस्र को नील नदी का उपहार कहा जाता है। मिस्र एक उपजाऊ भूमि रही है और यहाँ बीज और श्रम की अपेक्षा अच्छी खेती होती थी। अर्थात् कम श्रम और कम बीज से भी अच्छा उत्पादन होता था। यहाँ जनसंख्या का सकेन्द्रण भी अधिक था और इस कारण शायद जमीन पर एक वर्ग के प्रभुत्व को लेकर संघर्ष हुआ हो, परन्तु यहाँ से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है, क्योंकि यहाँ के पूर्व युग में युद्ध नायकों की भूमिका क्या थी और कैसी थी, इसके प्रमाण कम मिलते हैं।

नील नदी की लम्बाई 700 कि.मी. है और इसकी चौड़ाई 10 कि.मी. है। मानसून के समय इस नदी में इथोपिया के ऊंचे पहाड़ों से पानी आता है। इस प्रकार जून के महीने में इसमें पानी काफी बढ़ जाता है और यह काफी ऊपर तक पहुँच जाता है। यह बाढ़ उत्तर की ओर बढ़ती है। ऊपरी मिस्र में नदी के दोनों ओर बसे क्षेत्रों में बाढ़ का पानी 4 से 6 सप्ताह तक भरा रहता है। जब अक्टूबर में बाढ़ का पानी कम होता है, तो यहाँ नवम्बर में जौ की फसल बोयी जाती है। यहाँ पूरे वर्ष में 100 मि.ली. से भी कम वर्षा होती है। यह बाढ़ का पानी जब कम होता है और बिल्कुल उतर जाता है, तो यहाँ के क्षेत्रों में उपजाऊ गाद छोड़ जाता है। फिर यहाँ सिंचाई करने की आवश्यकता भी नहीं रहती, क्योंकि जो मिट्टी बाढ़ के पानी से यहाँ जमा होती है, वह काफी नमी लिए होती है। इसी कारण मिस्र को नील नदी का उपहार कहा जाता है। डेल्टा के बाद यहाँ बेसिन में भी पानी भरता है और जिसके कारण केवल कुछ ही हिस्सों में खेती हो पाती है। यहाँ उगने वाली घास मुख्य रूप से सरकंडा होता है। इस डेल्टा में बहुत मात्रा में पशु चरने के लिए आते हैं, इसी कारण इसे मिस्र का चरागाह भी कहा जाता है। यहाँ उगने वाला सरकंडा भी लोगों के कई प्रकार से काम आता है।

यहाँ जो फसलें उगाई जाती हैं; जैसे–गेहूं, जौ, फलियां, चना और अन्य रबी फसलें, इनको उगाने में दक्षिणी एशिया की अपेक्षा कम श्रम में अच्छी फसल हो जाती थी।

**मेसोपोटामिया सभ्यता में कृषि उत्पादन**–यहाँ की स्थिति मिस्र की सभ्यता के विपरीत थी। यहाँ जमीन के लिए आपसी

www.neerajbooks.com

संघर्ष था और जनसंख्या तो यहाँ अधिक नहीं थी, परन्तु जनसंख्या का संकेन्द्रण बड़े-बड़े शहरों में ही था। इस सभ्यता में दक्षिणी हिस्से का जो मैदानी भाग था, वह सुमेर के नाम से जाना जाता था। इस क्षेत्र में वर्षा अधिक नहीं होती थी, जिससे यहाँ गेहूं पैदा किया जा सके। यहाँ लगभग औसत वर्षा 200 मि.ली. होती थी और वर्षा के अनुरूप ही यहाँ फसलें उगाई जाती थीं। इन फसलों में मुख्यत: मसूर, मटर, बीन्स, मोठ, प्याज, खीरा आदि थीं।

खेती करने में यूफ्रेटस नदी की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि इसी के बहाव पर कृषि निर्भर करती थी। सर्दी का मौसम शुरू होते ही इस नदी में पर्याप्त पानी आने लगता था, जिसको यहाँ के लोग सिंचाई आदि के उपयोग के लिए नहरों और गड्ढों में पहुंचाते थे, फिर इन नहरों और गड्ढ़ों से ताड़ के पत्ते की सहायता से नालियां बनाकर खेतों तक पहुंचाते थे, जिससे कृषि को बढ़ावा मिलता था। परन्तु एक बात जो मिस्र की नील नदी और मेसोपोटामिया की यूफ्रेटस नदी के बीच थी, वह यह कि यूफ्रेटस नदी के पानी में नमक की मात्रा नील की अपेक्षा कहीं अधिक थी, क्योंकि जब इस पानी से खेतों की सिंचाई की जाती थी, तो यह नमक ऊपर आता जाता जिससे फसल की बुआई आदि को नुकसान पहुँचता था। इसका हल निकालने के लिए यहाँ के लोग खेतों को एक साल तक बिना खेती किए छोड़ देते थे, फिर अगले साल उस पर खेती करते थे, जिससे फसल उत्पादन को काफी नुकसान पहुंचता था। इन खेतों को एक साल तक खाली छोड़ने का नुकसान यह होता था कि इन पर झाड़ियां उग आती थीं और जमीन नीचे धंसती चली जाती थी। पानी का स्तर भी बहुत नीचे चला जाता था। इन जंगली झाड़ियों और घास-फूस को चरने के लिए वहाँ जानवर आते थे, जो मलत्याग करते थे, जिससे यहाँ जमीन उपजाऊ बनने में मदद मिलती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि पशुपालन ने भी कृषि उत्पादन में सहायता की।

मेसोपोटामिया सभ्यता में कृषि के लिए सिंचाई को लेकर संघर्ष होता था, ऐसे प्रमाण भी मिले हैं। ऊपर रहने वाले लोग पानी का अधिक उपयोग करते थे व नदी की धाराओं की सफाई नहीं करते थे, जिससे निचले हिस्से में रहने वाले लोगों को पानी की मात्रा कम मिलती थी और कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था, जिससे निचले हिस्से में रहने वाले लोगों को ऊपरी हिस्से वाले लोगों की कृपा पर ही पानी मिल जाता था, जिससे ऊपरी हिस्से वाले व निचले हिस्से वाले लोगों के बीच पानी को लेकर सघंर्ष होता था। नहरों में नदी द्वारा लाई गई गाद भी भर जाती थी, जिसको बार-बार साफ करना पड़ता था और यूफ्रेटस नदी भी कई बार अपना मार्ग परिवर्तन कर देती थी, जिससे यहाँ के लोगों को सिंचाई में असुविधा होती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र में जहाँ नदियों की सुविधा से उत्पादन को बढ़ावा मिला, वहीं मेसोपोटामिया के लोगों को नदी की स्थिति के कारण कई परेशानियों का सामना करना पड़ता था, जिससे उनके उत्पादन पर खासा असर पड़ता था। परन्तु दोनों सभ्यताओं में पशुपालन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

**प्रश्न 2. उबेद काल से उरूक काल तक मेसोपोटामिया में हुए बदलावों को संक्षेप में प्रस्तुत कीजिए।**

**उत्तर–**मेसोपोटामिया सभ्यता आरंभिक राजवंश काल (2900–2370 ई.पू.) में फली-फूली। इसके बाद अक्कद काल में (2370–2150 ई.पू.) में उत्तर-पश्चिम की ओर राजनैतिक प्रसार होना प्रारम्भ हुआ।

यदि मेसोपोटामिया सभ्यता के उबेद (Ubaid) काल और उरूक (Uruk) काल (4000–3100 ई.पू.) के बीच हुए बदलाव के सम्बन्ध में देखें, तो हमें निम्नलिखित परिवर्तन नजर आते हैं–

उबेद काल के सम्बन्ध जो कि निचले टिगरिस और यूफ्रेटस के मैदानी इलाकों पर बस्तियां बस गई थीं शुरू-शुरू में यहाँ मछुआरों की बस्तियां थी, फिर धीरे-धीरे यहाँ कृषि जीवन स्थापित होना शुरू हो गया, परन्तु भौतिक गतिविधियों अभी भी कम ही थी। उबेद काल का महत्त्व कृषि जीवन के प्रारम्भ होने से ही नहीं, बल्कि इसी काल में मेसोपोटामिया लोगों का सम्बन्ध खाड़ी देशों के लोगों से भी स्थापित होना शुरू हुआ। इसी काल में मन्दिर बने, जो आगे चलकर शहरी संस्थानों की स्थापना में मददगार साबित हुए, परन्तु इस काल में बने मन्दिर सरल और सामान्य थे, जिनमें देवी-देवताओं की प्रतिमा स्थापित की जाती थी और उन पर चढ़ावा भी चढ़ाया जाता था, जिसके प्रमाण इस सभ्यता से मिले हैं।

इस प्रकार इस काल की विशेषताओं में कृषि उत्पादन और खाड़ी देशों से सम्पर्क और मन्दिरों की स्थापना मुख्य थे।

उबेद काल के बाद मेसोपोटामिया में उरूक काल (4000 से 3100 ई.पू.) शुरू होता है। इस काल के आते-आते जनसंख्या में बढ़ोतरी होने लगी, जिससे कई गांव अस्तित्व में आये। इस युग में अन्य विशेषताओं में

– पहिए का आविष्कार
– लिखित दस्तावेजों का मिलना
– भौतिक समृद्धि और संस्कृति का विकास था।

इस युग में लिखित दस्तावेज मिलते हैं और यहाँ से बेलनाकार मुहर भी मिली है, जो कि उरूक काल के अन्तिम चरण से सम्बधित है। मेसोपोटामियाई मन्दिर स्थापत्य, लेखन, मिट्टी के बर्तन को सुमेर से बाहर भी कई समुदायों ने अपनी भौतिक संस्कृति के साथ-साथ अपनाया। यहाँ से मिले प्रमाणों के आधार पर यह बात आसानी से कही जा सकती है कि ऐसा शायद व्यापार के कारण हुआ होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उबेद काल से लेकर उरूक काल तक मेसोपोटामिया सभ्यता में कई तरह के परिवर्तन नजर आते हैं जो कि कृषि उत्पादन से लेकर नगर विकास तक देखे जा सकते हैं। जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ पहिए और हल के प्रमाण मिले

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



हैं। इसी प्रकार अन्य प्रमाण मिले हैं, जो इस सभ्यता को विकसित बनाने में सहायक सिद्ध हुए।

**प्रश्न 3. हड़प्पा की सिंचाई व्यवस्था मेसोपोटामिया से किस प्रकार भिन्न थी?**

**उत्तर**–मुख्य हड़प्पा क्षेत्र पश्चिमी एशिया के शीत वर्षा काल क्षेत्र और दक्षिणी एशिया के मानसून वर्षा व्यवस्था के बीच वाले क्षेत्र में पड़ता है। पंजाब और सिंध क्षेत्र में मानसून के दिनों में पर्याप्त वर्षा होती है। परन्तु जाड़े के दिनों में पंजाब में सिंध की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। परन्तु वर्षा से अधिक महत्त्वपूर्ण व ज्यादा भरोसेमंद पानी का स्रोत भूमिगत जल होता है और इस बात को हड़प्पा सभ्यता के निवासी शायद अच्छी तरह जानते थे, क्योंकि यहाँ की खुदाई से जिस तरह के प्रमाण मिलते हैं, उससे यह बात सिद्ध हो जाती है। मोहनजोदड़ो से घरेलू उपयोग के लिए 700 कुएं मिले हैं। हाकरा नदी क्षेत्र (पाकिस्तान) में कुओं के ज्यादा प्रमाण मिलते हैं। सिंध और पश्चिमी पाकिस्तान में कुओं द्वारा ज्यादा सिंचाई होती है, क्योंकि यहाँ कुएं अधिक संख्या में मिले हैं। एक अन्य हड़प्पाई बस्ती अल्लाहदिनो से पता चलता है कि यहाँ पत्थर के बने पक्के कुओं द्वारा पानी खींचा जाता था। गुजरात में जाड़े के मौसम में कम वर्षा होती है और यहाँ के स्थल लोथल से प्रमाण मिलते हैं कि यहाँ निचले द्रोण में भरे पानी से सिंचाई की जाती थी, जो कि 19वीं शताब्दी तक इसी प्रकार चलता रहा। कच्छ क्षेत्र में पड़ने वाले धौलावीरा से प्रमाण मिले हैं कि बांध बनाकर छोटी-छोटी पानी की धाराओं को तालाबों में इकट्ठा किया जाता था, क्योंकि धौलावीरा में कोई बारहमासी नदी नहीं थी और तालाब के इकट्ठा किए गए पानी को शहरों में भी प्रयोग में लाया जाता था।

सिंचाई के सम्बन्ध में हड़प्पा सभ्यता के सम्बन्ध में सिन्धु नदी के विषय में जानना बहुत आवश्यक है, क्योंकि यह नदी इस सभ्यता की एक मुख्य नदी थी। सिन्धु नदी को यदि यूफ्रेटस और नील नदी की तुलना में देखा जाये, तो इस नदी में यूफ्रेटस से आठ गुना और नील नदी से दुगना पानी प्रतिवर्ष बहता है। पानी ज्यादा होने से और जमीन के ढलवां होने से इस नदी का बहाव भी काफी तेज था, इसीलिए यह विनाशकारी नदी थी। इस नदी ने कई बार सैंकड़ों गांवों को तबाह किया है। अप्रैल तथा फरवरी में जो गेहूं और जौ का मौसम था, नदी में पानी बहुत कम आया करता था।

जहाँ बाढ़ आती होगी और यह बाढ़ वहाँ कुछ समय के लिए ठहरती होगी, तो वहाँ की जमीन इस पानी को सोखकर पर्याप्त नमी अपने अन्दर बना लेती होगी, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम ही पड़ती होगी। परन्तु जिन इलाकों में वर्षा नहीं होती होगी, वहाँ के लोग पानी को गड्ढे, तालाब या झील में इकट्ठा करते होंगे, फिर इसका उपयोग सिंचाई आदि के लिए करते होंगे। नीचे से पानी खींचने के लिए शायद जानवरों का भी उपयोग किया जाता होगा, क्योंकि इस क्षेत्र में पशुओं की संख्या अधिक मात्रा में देखने को मिलती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नील और यूफ्रेटस घाटी की अपेक्षा हड़प्पा में सिंचाई के लिए अधिक श्रम लगाना पड़ता होगा।

मेसोपोटामिया सभ्यता में सिंचाई व्यवस्था देखने पर हम देख पाते हैं कि यह हड़प्पा सभ्यता से भिन्न थी। यहाँ पर यूफ्रेटस नदी जब अपने उफान पर होती थी (नवम्बर से अप्रैल), तो एक साधारण तकनीक के द्वारा यूफ्रेटस के पानी को गड्ढों और खेतों में पहुंचाया जाता था। पानी के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए गड्ढों के आरपार बड़े-बड़े ताड़ के पत्तों की चटाइयों को गोलाई में मोड़कर रख दिया जाता था और इसके उपर मिट्टी लगायी जाती थी (आज के पाइपों जैसा बनाकर)। सिंचाई और हल के उपयोग से कृषि उत्पादन भी बढ़ा।

कृषि करने वाले विभिन्न समुदायों के बीच सिंचाई के लिए संघर्ष भी होता था, जो कि हमें हड़प्पा सभ्यता में देखने को नहीं मिलता है। यहाँ ऊपरी हिस्से में रहने वाले और निचले हिस्से में रहने वाले लोगों के बीच अक्सर संघर्ष देखने को मिलता था, क्योंकि ऊपर के हिस्से में रहने वाले लोग पानी का उपयोग अधिक मात्रा में करते थे। निचले हिस्से में रहने वाले लोगों के लिए वे कम मात्रा में पानी छोड़ते थे या फिर अत्यधिक तेज प्रवाह से पानी छोड़ते थे, जिससे नीचे खेती करने वाले लोगों को हानि उठानी पड़ती थी। ऊपर के हिस्से में रहने वाले लोग नदी की धारा की सफाई भी नहीं करते थे। इसका मतलब यह है कि निचले हिस्से में रहने वाले लोगों को पानी के लिए ऊपर के हिस्से में रहने वाले लोगों की इच्छा पर रहना पड़ता था।

परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह व्यवस्था स्थायी नहीं कही जा सकती, क्योंकि बाढ़ के कारण नहरों में गाद भर जाती थी और इन्हें बार-बार ठीक करना पड़ता था। कई बार यूफ्रेटस नदी भी अपना मार्ग बदल देती थी और यहाँ के लोग सिंचाई से वंचित रह जाते थे।

इस प्रकार हमें हड़प्पा और मेसोपोटामियाई सभ्यता में सिंचाई व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। मेसोपोटामिया सभ्यता में जहाँ इसके लिए संघर्ष दिखाई पड़ता है, वहीं हड़प्पा सभ्यता में यह संघर्ष नहीं था। दोनों ही जगह के लोग पानी को इकट्ठा करना जानते थे। दोनों ही जगह के लोगों को सिंचाई के लिए नदी की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था। सिन्धु और यूफ्रेटस नदियों में बाढ़ का आना भी दोनों सभ्यताओं के लोगों के लिए असुविधाजनक था।

**प्रश्न 4. 'आरम्भिक सभ्यताओं का सांस्कृतिक और प्राकृतिक परिवेश' के अन्तर्गत जिन विभिन्न प्रकार के शिल्पकालाओं का अध्ययन किया गया है, उनकी चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–चार सभ्यताओं–मिस्र की सभ्यता, हड़प्पा सभ्यता, मेसोपोटामियाई सभ्यता, चीन की शांग सभ्यता में जिन-जिन शिल्पकलाओं का प्रयोग किया गया, उनका क्रमवार वर्णन प्रस्तुत

www.neerajbooks.com

है। सबसे पहले मिस्र की सभ्यता में प्रयोग की जाने वाली शिल्पकलाओं के सम्बन्ध में विवरण निम्न प्रकार है–

मिस्र सभ्यता में 3500 और 3000 ई.पू. के बीच राजनीतिक, सैनिक या आर्थिक महत्त्व की कुछ बस्तियाँ स्थापित हुईं। यहाँ से मिस्र की शिल्पकलाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है। यहाँ से सुन्दर कढ़े हुए पत्थर के कलश, हाथीदांत से बने सामान और शृंगार, जिसमें राजा की सैन्य शक्ति को दर्शाया गया है। मादी नामक बस्ती से भी शिल्पकलाओं के सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिलती है, जिनमें ऊपरी मिस्र के जैसी नक्काशी की हुई रंगपट्टिका और मिट्टी के बर्तन मिले हैं। कुछ घरों में मिट्टी के बर्तन भी मिले हैं। मादी बस्ती से ही तांबा, खच्चर की हड्डियां और ऊपरी मिस्र बस्तियों की वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

नील नदी घाटी (मिस्र सभ्यता) में काफी हद तक एकीकृत भौतिक संस्कृति विकसित हुई। लेखन कला का जन्म हुआ। ताम्र धातु विज्ञान से सम्बन्धित प्रौद्योगिकी विकसित हुई। प्राचीन मिस्र सभ्यता की अन्य विशेषताओं में जिनमें हमें शिल्प प्रौद्योगिकी के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है, वे हैं–उत्कृष्ट लेखन, चित्रकला, मदिरों तथा मकबरों की दीवारों पर बने चित्र, पिरामिड की इमारत, शवगृह के सांस्कृतिक महत्त्व, पत्थरों-धातुओं पर उत्कृष्ट कला-कृतियां आदि।

हड़प्पा सभ्यता में भी हमें शिल्पकलाओं से सम्बन्धित विशेष जानकारी मिलती है। प्रारंभिक काल में ईंट से घर बनाये जाते थे और कुओं का प्रयोग होता था। तांबे का प्रयोग इस समय शुरू हो चुका था। सीप-सेलकड़ी के गहने भी बनाये जाते थे। खेती में हल का प्रयोग भी होता था। हड्डी का सूआं भी मिला है। घरेलू कार्यों के लिए जेवर बनाने के लिए हाथीदांत का प्रयोग किया जाता था। स्फटिक का प्रयोग भी होता था। चमकदार लाल कार्नेलियन पत्थर की लम्बी और पतली माला बनाई जाने लगी थी। मुहरों पर आमतौर पर जंगली जानवरों के चित्र बनाये जाते थे। चाँदी के बर्तनों का प्रयोग भी हड़प्पा संस्कृति में होने लगा था। उत्कृष्ट और उच्चकोटि के सोने के गहने भी बनाये जाने लगे थे। इस समय लेखन कला का विकास भी सिद्ध हुआ।

मेसोपोटामिया सभ्यता से हमें एक महत्त्वपूर्ण जानकारी मिट्टी की बनी टिकिया पर कीलाक्षर साहित्य की समृद्धि और सार्वजनिक लेन-देन रखने की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में मिलती है, जो इस सभयता की एक विशिष्टता थी।

बेलनाकार मुहरों पर बेहतरीन नक्काशी से घिसाई करके इन्हें गीली मिट्टी की टिकिया से दबाकर चला दिया जाता था। फिर जार या किसी मोटरी को मिट्टी की मुहर से बन्द करके उस पर उत्कीर्ण बेलन चला दिया जाता था। इससे पता चलता है कि ये लोग पढ़ना-लिखना सीख रहे थे। उबेद और उरूक काल में हमें मन्दिर स्थापत्य देखने को मिलते हैं। मेसोपोटामिया के जमदात नस्र (Jamdat Nasar) युग के दौरान लेखन कला और मुहर बनाने की कला का विकास हुआ। इसके बाद के आरंभिक राजवंशों ने नगरों की स्थापना की। मन्दिर और किलाबन्द महल भी बनाये जाने लगे। मेसोपोटामिया के लोगों ने शिल्पों के सम्बन्ध में बाहरी संस्कृतियों से भी बहुत कुछ सीखा।

चीन की शांग सभ्यता में नवपाषाण युग से चाक पर बहुत ही उत्कृष्ट भूरे रंग की मिट्टी के बर्तन बनाये जाते थे। बर्तन को चिकना और पतला करने के लिए चाक का उपयोग किया जाता था। चीन में पाये जाने वाले सुन्दर कड़े पत्थर पर नक्काशी का काम हमें नवपाषाण युग से ही देखने को मिलता है। कैओलिन मिट्टी के बने बर्तनों को प्रयोग किया जाता था। अन्य प्रकार की मिट्टियों का प्रयोग भी बर्तन बनाने में किया जाता था। लकड़ी का जो फर्नीचर बनाया जाता था, उसे सुन्दर दिखाने के लिए लाख का रोगन इस फर्नीचर पर किया जाता था। मोटे सन के वस्त्र बनाये जाते थे। जेड पत्थर का प्रयोग कई प्रकार के गहने आदि बनाने में किया जाता था। सीपियों का उपयोग भी किया जाता था।

अत: इन चारों सभ्यताओं में शिल्पकलाओं का विकास हुआ, जो अपने समय की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इन सभ्यताओं में समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इन शिल्पों को विकसित किया गया। सभी सभ्यताओं में शिल्पकलाओं में बाह्य सम्पर्क का भी प्रमाण मिलता है।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

**प्रश्न 5. मिस्र और शांग सभ्यताओं में दफनाने की रीतियों की तुलना कीजिए।**

**उत्तर–मिस्र और शांग सभ्यताओं में दफनाने की रीतियां–**दसवें शांग सम्राट् ने चेंगचाऊ को अपनी राजधानी बनाया। यहाँ से मिली कब्रों के अध्ययन से शांग सभ्यता में दफनाने की रीतियों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। यहाँ से मिली कब्रों से पता चलता है कि ये लोग मृत्यु के बाद भी जीवन में विश्वास रखते थे, क्योंकि यहाँ से मिली कब्रों में हमें कुछ बर्तन व जीवन सम्बन्धी कुछ अन्य चीजें भी देखने को मिलती हैं। यहाँ से शव के साथ कुत्ता भी दफनाने का प्रमाण मिलता है। कब्र में कई तरह के कांस्य उपकरण, बर्तन और कुत्ते की हड्डियां भी मिली हैं, जिन पर कुछ अंकित है। 19वें शांग सम्राट् चेंगचाऊ ने अपनी राजधानी अन्यंग में बनाई। इसी क्षेत्र में सायियो तुन (Saio Tun) की विस्तार से खुदाई के परिणामस्वरूप इसमें गड्ढों के साथ-साथ कड़ी मिट्टी के बने चबूतरे, शिल्प उत्पादन केन्द्र, कांस्य, जेड पत्थर के साथ-साथ संभ्रांत लोगों की कब्रें भी मिली हैं। इन कब्रों में से कुछ के अध्ययन के परिणामस्वरूप ऐसा मालूम पड़ता है कि मानव बलि की प्रथा यहाँ थी। परन्तु यह प्रथा सब कब्रों से यह प्रथा नहीं देखने को मिलती है। यहीं पर 16 अन्य कब्रें मिली हैं। इस प्रकार हमें शांग सभ्यता से मिले प्रमाणों के आधार पर वहाँ प्रचलित प्रथाओं के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

**मिस्र की सभ्यता में दफनाने की रीतियाँ–**यहाँ से मिली कब्रों में दफनाए गये शवों के साथ सोना-चाँदी, फिरोजा कार्नेलियन

www.neerajbooks.com



और गार्नेट के गहने भी रखे मिलते हैं। इन कब्रों के आधार पर ऐसा लगता है कि ये संभ्रांत व्यक्तियों की कब्रें थीं।

मिस्र में पिरामिड भी देखने को मिलते हैं। ये प्राचीन राजशाही में बनवाये गये। इन पिरामिड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये उस समय की अद्‌भुत और अद्वितीय कलाकृति रहे होंगे। यह पत्थर का बना एक विशाल स्मारक और मकबरा है, जिसमें मृतक शासकों के शव रखे जाते थे और मृतक व देवत्व प्राप्त शासकों की पूजा भी की जाती थी। यहाँ से सामंतवर्ग के पत्थर के मकबरे भी मिले हैं, जिन्हें मस्तवा कहा जाता था। मिस्र की सभ्यता में हमें एविडोस नाम का दूसरा केन्द्र भी देखने को मिलता है, जिससे ऐसा लगता है कि इसमें नव संभ्रांत वर्ग रहता था।

ये मकबरे ईंटों के बने हैं। इन पर छत भी है। इन मकबरों के चारों ओर सामान रखने के धाने भी मिले हैं। इसमें संभवत: मृतकों के खानपान का सामान रखा जाता था, ताकि मृतक को कई तकलीफ न हो इससे इस बात का अनुमान लगाया जाता है कि ये लोग मृत्यु के बाद भी जीवन में विश्वास करते थे।

चीनी और मिस्र दोनों की सभ्यताओं को देखने से यह लगता है कि इन दोनों ही सभ्यताओं के लोग मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास करते थे, क्योंकि दोनों जगहों की कब्रों में जीवन की आवश्यक वस्तुएं मिली हैं। परन्तु दोनों सभ्यताओं में दफनाने की प्रथा अलग-अलग थी। मिस्र सभ्यता में जहाँ पिरामिड देखने को मिलते हैं, वहीं चीनी सभ्यता में ऐसे स्मारक देखने को नहीं मिलते।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. मिस्र, हड़प्पा, मेसोपोटामिया, शांग (कांस्य युगीन) सभ्यताओं में नदियों की भूमिका पर चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–चारों सभ्यताओं में नदियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ये सभ्यताएं बाढ़ लाने वाली नदियों के किनारे मैदानी इलाकों में विकसित हुईं। नदियों का मैदानों में संचार आसान होता है, जिससे जनसमान्य को उत्पादन आदि में महत्त्वपूर्ण योगदान मिलता है। इन नदियों के सहारे वे अपना कृषि उत्पादन बढ़ा सकते हैं। मिस्र, हड़प्पा, मेसोपोटामियाई सभ्यताओं में तो सामान्यत: कुछ एक जैसी विशेषताएं देखने को मिलती हैं, परन्तु चीन की शांग सभ्यता इन तीनों सभ्यताओं से भिन्न थी।

मिस्र को नील नदी का उपहार कहा जाता है, क्योंकि इस सभ्यता में नील नदी की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। नील नदी की घाटी की लम्बाई 700 मी. व चौड़ाई 10 कि.मी. है। इस नदी की लम्बाई बहुत है। और जब मानसून आता है, तो इथोपिया के ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से बर्फ पिघलने के कारण इसमें (झील में) पानी भर जाता है और यहाँ बाढ़ जैसी स्थिति बन जाती है। ऊपरी मिस्र में यह बाढ़ का पानी एक-डेढ़ महीने भरा रहता है और यहाँ जब यह बाढ़ का पानी घटता है, तो यह अपने साथ लाये उपयोगी गाद को यहीं छोड़ जाता है, जिससे बाद के महीनों में गेहूं की फसल बोयी जाती है और यह फसल अच्छी मात्रा में पैदा होती है। इस बाढ़ के कारण जो नमी और उपजाऊपन बनता है, वह वर्षा कम होने के बावजूद और सिंचाई की नमी के कारण भी अच्छी पैदावार देने में सहायक होता है। इसी कारण मिस्र को नील नदी का उपहार कहा जाता है।

बाढ़ के बाद भी बेसिन में पानी भरा रहता है और केवल कुछ हिस्से में ही खेती हो पाती है। यहाँ सरकंडा बहुत बड़ी मात्रा में उगता है, जिससे चरागाह जैसा क्षेत्र बन जाता है और यह यहाँ के पशुओं के चारे के रूप में उपयोग में लाया जाता है। नील नदी का यह डेल्टा मिस्र का चरागाह कहा जाता है।

यूफ्रेटस (Euphrates) और टिगरिस (Tigris) मेसोपोटामिया की दो मुख्य नदियां हैं। इनमें से यूफ्रेटस को प्राचीन सभ्यता की जीवन-रेखा कहा जाता था। मेसोपोटामिया में भी मिस्र की तरह ही सिंचाई करने प्रमुख साधन बाढ़ थी और इससे यहाँ अच्छी पैदावार होती थी। इस सभ्यता में इन दोनों नदियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, जिससे सिंचाई में सुविधा मिलती थी। यूफ्रेटस और टिगरिस नदियों के निचले हिस्से की भूमि दलदल वाली थी। और उनके आस-पास जो गांव बसे हुए थे उन तक पहुंचने के लिए नाव का इस्तेमाल किया जाता था। और इस प्रकार ये गांव एक-दूसरे से जुड़ते थे। इन नदियों से मछली मारना एक प्रमुख रोजगार था। इन्ही नदियों के आसपास सरकंडे उग जाते थे, जिससे पशुओं आदि को चारा मिलता था और पशुपालन को बढ़ावा मिलता था।

मेसोपोटामिया सभ्यता के दक्षिणी इलाके को सुमेर कहा जाता था। वहाँ इतनी वर्षा नहीं होती थी कि उससे गेहूं पैदा किया जा सके। इसके अलावा यहाँ अन्य फसलें भी उगाई जाती थीं, जो कम वर्षा में भी पैदा हो सकें। यहाँ की कृषि बहुत कुछ यूफ्रेटस नदी के बहाव पर भी निर्भर करती थी। सर्दी के मौसम में यूफ्रेटस का जलस्तर बढ़ने लगता था। इसका कारण यह था कि नवम्बर महीने में तुर्की की पहाड़ियों पर बरसात होती थी, जिसका पानी इस नदी में लगातार आता रहता था और नवम्बर के महीने में यह नदी अपने जलस्तर के चरम बिन्दु पर होती थी। इस नदी के जल को नियंत्रित करने के लिए इसके जल को गड्ढों और खेतों में पहुंचाया जाता था। गड्ढ़ों में पानी को एकत्रित किया जाता था, जिसको सिंचाई के काम में लाया जाता था। इस प्रकार मेसोपोटामिया सभ्यता में इन नदियों द्वारा सिंचाई के द्वारा अच्छी पैदावार हो जाती थी।

हड़प्पा सभ्यता में सिन्धु नदी प्रमुख नदी थी। वैसे तो इस सभ्यता में कई महत्त्वपूर्ण नदियां थीं, जैसे–चिनाब, सरस्वती, झेलम आदि। परन्तु सिन्धु नदी यहाँ की सबसे प्रमुख नदी थी। इस सभ्यता में इस नदी की भूमिका को जानने से पहले इसके विस्तार व क्षमता को जान लेते हैं। सिन्धु नदी में यूफ्रेटस से लगभग आठ गुना और नील से लगभग दो गुना पानी प्रतिवर्ष बहता था। इस नदी की धारा भी तीव्र थी, जिसका कारण जमीन का ढालदार होना थ। इसीलिए इस नदी को विनाशकारी नदी भी कहा जाता है। परन्तु इस

www.neerajbooks.com

नदी में छोटी-मोटी बाढ़ें नहीं आया करती थीं। अगस्त के महीने में सिन्धु नदी अपने उफान पर होती थी, क्योंकि हिमालय क्षेत्र में भारी वर्षा होती थी, जिस कारण इस नदी में पर्याप्त पानी आता था। परन्तु वहीं जब गेहूं की फसल का मौसम होता था, तो इस नदी में पानी की मात्रा कम होती थी। परन्तु जिन क्षेत्रों जब बाढ़ आती होगी, तो जमीन पर्याप्त पानी अपने में सोख लेती होगी, जिसके कारण इसमें नमी बनी रहती होगी और फसल उत्पादन में सहायता मिलती होगी। परन्तु जिन क्षेत्रों में बाढ़ नहीं आती होगी, वहाँ लोगों को सिंचाई के लिए पानी को पहले गड्ढों, तलाब व झील में एकत्रित करना पड़ता होगा, फिर उसका उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता होगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हड़प्पा के लोगों को मिस्र और मेसोपोटामिया के लोगों से सिंचाई के लिए श्रम अधिक करना पड़ता होगा।

चीनी सभ्यता के सम्बन्ध में नवपाषाण काल के गांव हुआंग हो, जिसे पीली नदी भी कहा जाता है और यांगतेज नदियों के किनारे बसे हुए थे। हुआंग हो (Huang Ho) घाटी और इसके उत्तर (बीजिंग तक) और दक्षिण (लेकिन यांगतेज के पास नहीं) और कुछ हद तक समुद्र तट तक कांस्ययुगीन स्थल प्राप्त हुए हैं। हवाई नदी और हुआंग हो की एक सहायक नदी वेई नदी के तट पर भी कांस्ययुगीन बस्तियों के प्रमाण मिलते हैं। हुआंग हो नदी नौकायन की दृष्टि से कम, परन्तु तटवर्ती इलाकों में खेती के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण थी। यांगतेज नदी सबसे बड़ी नदी थी और इसके आसपास के क्षेत्रों और घाटियों में खूब वर्षा होती थी। हुआंग हो क्षेत्र में हमें गेहूं और बाजरा की फसल अधिक देखने को मिलती है, क्योंकि यह नदी अपने साथ पीली गाद लाती थी, जो उपजाऊ होती थी। इसी कारण इस नदी को पीली नदी कहा जाता था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त चारों कांस्ययुगीन सभ्यताओं में नदियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी और ये यहाँ के जनसामान्य के जीवन का मुख्य आधार बनी हुई थीं। इन नदियों का योगदान इन सभ्यताओं की अर्थव्यवस्था पर भी दिखता था, क्योंकि ये उत्पादन बढ़ाने या घटाने (बाढ़ आने पर) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।

**प्रश्न 2. मेसोपोटामिया और मिस्त्र सभ्यता का कालक्रम स्पषट करें।**

**उत्तर–मेसोपोटामिया सभ्यता का कालक्रम–** मेसोपोटामिया सभ्यता आरंभिक राजवंश (2900–2370 ई.पू.) में फली-फूली। तदुपरान्त (2370–2150 ई.पू.) का काल अक्कद काल कहलाता है। इस काल की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में–

– उत्तर और उत्तर-पश्चिम की ओर राजनीतिक प्रसार शुरू होना।
– एकीकरण शुरू होना है।

2000 ई.पू. के बाद उर का पतन हुआ। इसके बाद कई दशकों तक यहाँ राजनैतिक उथल-पुथल का समय रहा, जिसका मुख्य कारण इसिन और लारसा के बीच अपनी-अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करना था।

हम्मुरापी एक प्रसिद्ध शासक हुआ, जिसका सम्बन्ध बेबीलोन के प्रथम राजवंश (1840 से 1600 ई.पू.) से था। इसके बाद लगभग 1150 ई.पू. तक भारोपीय भाषा बोलने वाले राजवंश केसाइट बेबीलोनिया शासक बने।

इसके बाद लगभग 900 से 600 ई.पू. के बीच कबीलाई गडरियों का दबदबा पश्चिम एशिया पर बना, जिनको मेसोपोटामिया में असिरीयाई के नाम से जाना जाता था।

बाद के समय में जब बेबीलोनियाई सत्ता की पुन: वापसी हुई, तो इसी काल में 539 ई.पू. में अक्कामेनिद एक महत्त्वपूर्ण प्रान्त के रूप में उभरा, जो एक धनी प्रान्त बना और बाद में 330 ई.पू. में सिकन्दर ने अक्कामेनिदो को जीत लिया।

मेसोपोटामिया सभ्यता के कालक्रम में काफी उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है।

**मिस्त्र की सभ्यता का कालक्रम**–मिस्त्र सभ्यता में बने पिरामिड अपने समय की एक कलाकृति है। इनको 2700 से 2160 ई.पू. के आसपास बनाया गया था और इस समय जो राजवंश यहाँ शासन करता था, उसे प्राचीन राजशाही के नाम से जाना जाता है।

इससे पूर्व के काल को अगर देखें, तो यहाँ 4000 से 3000 ई.पू. का काल नाकदा (Naqada) संस्कृति का काल था, जिसमें पुरातात्विक और ऐतिहासिक दोनों तरह के साक्ष्य मिलते हैं और 3500 ई.पू. के आसपास इसके पहले और दूसरे चरण में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यहां 3000 से 2700 ई.पू. तक दो महत्त्वपूर्ण राजवंशों ने शासन किया। प्राचीन राजशाही की समाप्ति के बाद यहाँ कुछ समय के लिए अराजकता का काल रहा। इसके बाद 1980 ई.पू. के आसपास मध्ययुगीन राजशाही राजवंश की स्थापना हुई जो लगभग 1780 ई.पू. तक चलता रहा।

इसके बाद नयी राजशाही (राजवंश XVIII से XX) की स्थापना हुई। मध्ययुगीन और नयी राजशाही के बीच कई कमजोर शासकों का शासन काल स्थापित हुआ, जिससे कोई नया परिवर्तन नहीं हुआ। साथ ही अर्थव्यवस्था का ह्रास हुआ। नयी राजशाही के अन्तर्गत ही तूतन्खामेन (Tutankhamen) नामक प्रसिद्ध शासक हुआ।

1000 ई.पू. के आसपास मिस्त्र में कांस्ययुगीन युग समाप्त हो जाता है। परन्तु लेखन कला, धर्म और कलाएं ईस्वी सन् के आरम्भ होने तक विकसित होती रहीं।

**प्रश्न 3. मिस्त्र, मेसोपोटामिया, चीन की शांग और हड़प्पा सभ्यता में पशुपालन किस प्रकार का था व उसका क्या महत्त्व था? संक्षेप में वर्णन करें।**

**उत्तर**–हड़प्पा, मिस्त्र, मेसोपोटामिया और शांग सभ्यता में कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी किया जाता था, जिसका इन सभ्यताओं में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मिस्र के लोग पशुओं के अलावा हंस और बत्तख भी पालते थे। वे कई पक्षियों को पकड़कर अपने पास रखते थे और उन्हें खूब खिलाते-पिलाते थे, व उनका उपयोग कई रूपों में करते थे। कई महत्त्वपूर्ण अवसरों पर वे इन पशुओं की बलि भी चढ़ाते थे। हाथीदांत आदि को वे कई प्रकार के जेवरात बनाने में प्रयोग करते थे। खेती के उत्पादन के लिए भी पशुओं का प्रयोग किया जाता होगा।

मेसोपोटामिया सभ्यता में यूफ्रेटस नदी के पानी में नमक अधिक था। गर्मी के दिनों में जब खेत जोते जाते थे, तो नमक ऊपर आ जाता था, जो फसल उत्पादन के लिए नुकसानदायक होता था। इस नुकसान से बचने के लिए लोग खेतों को एक साल तक बिना खेती किए छोड़ देते थे, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ झाड़-झाड़ियाँ, सरकंडे आदि उग आते थे। लोग यहाँ अपने पशुओं को चराने के लिए लाते थे, जिसके परिणामस्वरूप उनके मलमूत्र त्याग के कारण यहाँ जमीन पुनः कृषि उत्पादन योग्य बन जाती थी। इस प्रकार, मेसोपोटामिया सभ्यता ने पशुपालन के साथ-साथ कृषि का भी विकास हुआ और प्राचीन मेसोपोटामिया सभ्यता में इसके महत्त्वपूर्ण सामाजिक और राजनैतिक परिणाम समाने आये। पशुपालन के साथ-साथ लोग यहाँ कृषि कार्य भी करते थे। समुदाय के कुछ सदस्यों में खेतिहर और पशुपालक दोनों ही होते थे। प्राचीन मेसोपोटामिया में पशुधन बड़ा समृद्ध था। यहाँ से ऊन का निर्यात किया जाता था। जिस साल ठीक से कृषि उत्पादन नहीं हो पाता था या अनाज कम पैदा होता था, ऐसे समय में पशुओं के दूध से बने पदार्थों का सहारा लिया जाता था।

हड़प्पा सभ्यता में भी कृषि के साथ-साथ पशुपालन होता था, जिसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस क्षेत्र में पशुओं द्वारा सिंचाई की जाती थी, क्योंकि पानी निचले क्षेत्र से ऊपर सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता था। इसीलिए यहाँ पशुओं की अधिक संख्या में जरूरत पड़ती होगी और फसल या खेती में शीतकालीन कृषि के दौरान श्रम की किल्लत पड़ती होगी और फसल या खेती करने के लिए पशुपालन भी एक महत्त्वपूर्ण कारक रहा होगा। यहाँ चरवाहों का समुदाय भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता था, जो दूर-दूर तक अपने पशु चराने के लिए जाते थे।

चीन की शांग सभ्यता अन्य सभ्यताओं से भिन्न थी। यहाँ भी पशुपालन का चलन था और दूध-दही खाने का भी चलन था। परन्तु अन्य सभ्यताओं की तरह पशुपालन को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। शांग सभ्यता में हुई खुदाई के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहाँ ज्यादातर जो हड्डियां हैं वे भैंस के अलावा यहाँ पर जो अन्य पशु पाले जाते थे—बकरी भेड़, सूअर, मुर्गी आदि, की हैं।

उपर्युक्त चारों सभ्यताओं से मिले प्रमाणों के आधार पर यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि इन सभ्यताओं में पशुपालन बड़े समृद्ध ढंग से किया जाता होगा (शांग को छोड़कर) और इनका कृषि उत्पादन के साथ-साथ जनसामान्य के जीवन से भी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रहा होगा। ■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# प्रौद्योगिकीय आधार और सामाजिक-आर्थिक मानदंड

7

## परिचय

प्रस्तुत अध्याय में धातु का उपयोग किस प्रकार हुआ है और कौन-सी प्रौद्योगिकी धातु-निर्माण और इससे विभिन्न प्रकार की चीजें बनाने के लिए अपनायी गई हैं, इस सम्बन्ध में चर्चा की गई है। इसके साथ-साथ कांस्ययुगीन सभ्यताओं में किस प्रकार शहरीकरण और व्यापार को बढ़ावा मिला, इसके सम्बन्ध में भी इस अध्याय में अध्ययन किया गया है। कांस्य युग में धातु से बने औजार और प्रौद्योगिकी का विकास भी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। प्रौद्योगिकी विकास इसलिए महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि इससे श्रम-विभाजन और विशेषज्ञता इस युग में दिखाई पड़ती है और प्रौद्योगिकी का एक अन्य लाभ यह हुआ कि इसके कारण शहरीकरण को बढ़ावा मिला और नये-नये शहरों का उदय हुआ। राज्यों के राजनैतिक विकास पर भी इसका सीधा प्रभाव पड़ा।

धातु के उपयोग के सम्बन्ध के चर्चा की जाये, तो इस बात के हमारे पास पर्याप्त प्रमाण हैं कि दुनिया के अधिकांश हिस्सों में जो धातु पहले प्रयोग की गई, वह तांबा थी। तांबे के बाद प्रयोग में आने वाली धातु कांसा था। कांसा तांबे का ही रूप है, जिसमें संखिया सीसा या टिन मिलाकर कांसा बनाया जाता है। पत्थर की तुलना में धातु अधिक बेहतर होती है, क्योंकि इसमें पत्थर की अपेक्षा लोच है व इसे पिघलाया भी जा सकता है। इससे विभिन्न आकार व माप की वस्तुएँ बनायी जा सकती हैं। इन धातुओं से बने औजारों पर आसानी से धार भी बनायी जा सकती है। धातु की वस्तुओं के हथियार, घरेलू उपयोग के सामान, मूर्तियां आदि कुछ भी आसानी से बनाया जा सकता है। जबकि पत्थर से यह इतनी आसानी से नहीं बनायी जा सकती और पत्थर के हथियारों में धातुओं की अपेक्षा कम धार होती है।

पश्चिम एशिया के संदर्भ में देखा जाये, तो यहाँ लगभग 7000 ई.पू. में तांबे का प्रयोग गहने बनाने के लिए किया जाने लगा था। तांबे से ये गहने उसे पीटकर बनाये जाते थे। यह प्रौद्योगिकी के विकास का पहला चरण था। उत्तरी मेसोपोटामिया में तांबे का प्रयोग 500 ई.पू. के आस-पास शुरू हुआ। यहाँ के खेतिहर लोगों ने इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से किया। मिस्र में तांबे का प्रयोग हथियारों के रूप में शुरू हुआ, जिसमें मुख्यत: छुरे व कुल्हाड़ियां थीं। यहां तांबे का प्रयोग लगभग 3500 ई.पू. के आस-पास शुरू हुआ।

कांस्य युग में धातु प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास होना प्रारम्भ हुआ और इस समय तरह-तरह के धातु के औजार बनाये जाने लगे। *गार्डन चाइल्ड* के अनुसार ये औजार आम जनता के लिए नहीं, बल्कि शहरों में रहने वाले वर्ग विशेष के लिए बनाये जाते थे। इस समय औजार व अन्य चीजें बनाने के लिए सांचों का प्रयोग भी बड़ी मात्रा में होने लगा था। प्रौद्योगिकी के विकास को सामाजिक संदर्भ में देखने से एक बात स्पष्ट होती है कि श्रम-विभाजन और विशेषताएं होते हुए भी अन्य शासकीय वर्ग की मांगों के अनुरूप उत्पादन किया जाने लगा।

शहरों का विकास बहुत हद तक कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है, क्योंकि उत्पादन अधिक होना जरूरी है, जिससे शहरों में रहने वाले लोगों की जरूरत पूरी की जा सके। शहरों के लिए परिवहन व्यवस्था भी अच्छी होनी चाहिए। शहरी जीवन और लोगों का एक जगह बसना तभी सम्भव होता है जब कई लोग अलग-अलग गैर खाद्यान्न उत्पादक रोजगार, जैसे–धातुकर्म, मुहर, नक्काशी, प्रशासन, व्यापार आदि में लगे हों। गाँवों की अपेक्षा शहरों में बसावट ज्यादा घनी होती है और कम जगह में अधिक लोग बसते हैं। गाँवों से उनका सम्बन्ध बना रहता है, क्योंकि गाँव ही उन्हें ईंधन-भोजन आदि उपलब्ध कराते हैं।

शहरों के विकास के सम्बन्ध में यदि मेसोपोटामिया सभ्यता की बात की जाये, तो यहाँ शहर बसने के इतिहास से साफ हो जाता है कि आरंभि राजवंशी शासन के आरंभ में उरूक जैसा एक बड़ा शहर निर्मित हुआ। इस शहर का निर्माण शताब्दियों से स्थानीय जनता की जनसंख्या बढ़ने की अपेक्षा छोटे-छोटे कई गाँवों को छोड़कर एक जगह लोगों के बसने के कारण हुआ। मेसोपोटामिया साहित्यिक परम्परा में गिलमेश एक महान शासक हुआ। उसने उरूक नगर की दीवार बनवायी। मेसोपोटामिया की तरह मिस्र के शहरों का विस्तृत उत्खनन नहीं हो पाया, जिसका कारण है नील

www.neerajbooks.com



नदी-घाटी का पतला होना यहाँ हजारों वर्षों में एक-दूसरे के ऊपर शहर बनते चले गये और पुराने शहर आधुनिक शहर की गर्त में दब गए। मिस्र के शहरों की खुदाई ठीक से नहीं हो पाने का कारण यह भी रहा भूमिगत जल का ऊपर उठा होना, घाटी के किनारे-किनारे प्राचीन शहरों का समतल पर फैलाव, आधुनिक कृषि का फैलाव, बस्तियों के किनारे कब्रिस्तान का होना आदि, परन्तु प्राचीन नगरों के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी हमें मिलती है, जिससे इन घरों के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता है। घर आयताकार होते थे। गलियाँ पतली होती थीं। प्रत्येक शहर चार भागों में विभाजित होता था और प्रत्येक भाग में एक मंदिर था। प्रांगण शहरों की स्थापना और बाद में एक मंदिर की स्थापना के प्रमाण भी यहाँ मिलते हैं।

मेसोपोटामिया और मिस्र सभ्यता में शहरीकरण देखने के बाद अब हम हड़प्पा सभ्यता के शहरीकरण के संबंध में चर्चा करेंगे। हड़प्पा सभ्यता में मोहनजोदड़ो इस दृष्टि से खासा महत्त्वपूर्ण है। मिस्र की सभ्यता की तरह इसकी खुदाई बड़े पैमाने पर हुई है, क्योंकि हड़प्पा के शहरों के ऊपर बाद के युगों में शहर नहीं बसे, इसलिए इसकी खुदाई बड़े पैमाने पर हो सकी। मोहनजोदड़ो में स्नानागार, भंडारगृह संभ्रांत लोगों के घर देखने को मिलते हैं। इस सभ्यता से शहरी जीवन में निर्वाह के लिए योगदान करने वाले शिल्पकला के अवशेष मिलते हैं। सीप काटने, मनका बनाने, मोहरों पर नक्काशी करने, धातुकर्म, मिट्टी के बर्तन और अन्य शिल्प लगभग सभी छोटे और बड़े स्थलों से पाये गये हैं। हड़प्पा के शहरी केन्दों की विशेषताओं में नागरिक व्यवस्था की देखरेख और वृहत् जल-प्रणाली का पता चलता है। जल-निकासी के लिए गली में एक नाली बनी होती थी। गली में बनी हुई यह नाली पूरे नियोजन का एक हिस्सा थी। प्रत्येक घर अपने ढंग से अलग-अलग कार्य नहीं कर सकते थे। इसका मतलब यह हुआ कि वहाँ एक व्यवस्था थी, जो इस सारी व्यवस्था का नियंत्रण और देखरेख करती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि हड़प्पा सभ्यता में शहरीकरण कितना व्यवस्थित और विकसित था। शहरीकरण के संबंध में ही चीन की शांग संस्कृति में शहरीकरण की चर्चा करेंगे।

चीन की संस्कृति और हड़प्पा संस्कृति में पर्याप्त अंतर था। मेसोपोटामिया में जिस प्रकार दीवारों का निर्माण भारी संख्या में मजदूर लगाकर किया गया था, उसी प्रकार शांग संस्कृति में भी किया गया है। इस संस्कृति की विशेषताओं में घरों को देखने से पता चलता है कि घर या तो मिट्टी का लकड़ी के ढाँचे से मिट्टी के चबूतरे पर बनाया जाता था। ऐसा हम चेंग चाऊ से मिले चबूतरे के अवशेषों के आधार पर कह सकते हैं। यहाँ से मिले ये प्रमाण इस ओर संकेत करते हैं कि ये संभ्रांत लोगों के घर रहे होंगे।

इस संस्कृति में घरों को बनाने में मौसम की विशेषताओं को ध्यान में रखकर बनाया गया है, क्योंकि उत्तरी चीन में गडढों में बने घर मिलते हैं, जो ठंड में लोगों को गरमाहट प्रदान करते थे। शांग वंश के बाद अन्यांग राजधानी की खुदाई से भी गड्ढा घरों में हड्डी, पत्थर के औजार आदि मिले हैं। अनाज भंडार, धातु के बने हथियार, पत्थर की दराँती, आदि मिले हैं, जिनमें से कुछ पर लेख भी लिखे गये हैं। शांग वंश के शहरों को बड़े नियोजित ढंग से बसाया गया था, जहां एक ही वंश और छः पीढ़ियों तक लोग रहते थे। इन बस्तियों या शहरों की जमीन खेती के लिए साफ की जाती थी। अन्यांग जैसे शहरों में प्रौद्योगिकी के विकास का अच्छा चरण देखने को मिलता है। यहाँ विशेष रूप से प्रशिक्षित कारीगर एक छत के नीचे संभ्रांत वर्ग के नेतृत्व में उत्पादन करते थे।

उपर्युक्त वर्णन में हमने कांस्ययुगीन शहरीकरण, राज्यों के राजनैतिक विकास, शासकीय संभ्रांत वर्ग के उदय के संबंध में जाना। और ये किस प्रकार एक-दूसरे के विकास में सहायक हुए, यह भी समझना और जाना। शहरीकरण नये शिल्प और उनकी विशेषताओं, नई संस्थाओं और विभिन्न प्रकार के उत्पादन कार्यों में सहायक होता है। इसलिए इसे शहरी क्रांति की संज्ञा भी दी जाती है, जैसे कि गार्डन चाइल्ड और अन्य विद्वान मानते हैं।

शहरीकरण को समझने के बाद अब हम इन सभ्यताओं में व्यापार की भूमिका को समझने का प्रयास करेंगे। प्रश्न यह उठता है कि इस कांस्ययुगीन सभ्यता में बाह्य व्यापार की भूमिका क्या रही है। यह इन आरंभिक सभ्यताओं के स्वरूप और स्वभाव निर्धारण में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुआ। तांबा, टिन, सीसा आदि की भूमिका कांस्य युग में सामाजिक और आर्थिक बदलाव के लिए महत्त्वपूर्ण है। व्यापारी इस समय मुख्यतः राज्य नियोजित आयात उन्मूलन कार्यक्रम किया करते थे, क्योंकि मेसोपोटामिया और मिस्र से मिले दुभाषिए का प्रमाण इस बात को अच्छी तरह से व्यक्त करता है। ये दुभाषिए दो विदेशी भाषाओं के जानकार होते हैं, जो एक-दूसरे की भाषा समझने में मध्यस्थ का काम करते थे और व्यापारी को इससे बहुत सहूलियत होती थी। इस प्रकार व्यापार सुचारु रूप से चलता था। आरंभिक राज्यों में व्यापार की व्यवस्था के जो प्रणाम मिले हैं उनको देखकर यह कहा जा सकता है कि इस व्यापार में किस प्रकार सिन्धु और नील और स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। इस प्रकार इस संदर्भ में कुछ बातें कही जा सकती हैं। जैसे हिमालय से हड़प्पा इलाकों तक लकड़ी लाने की जरूरत के कारण चेनाब और सतलुज नदियों के किनारे उन स्थलों पर जहाँ से नौका से यात्रा की जा सकती थी, गाँव बसाए गए, इसका प्रमाण मोहनजोदड़ो में शिवालिक के देवदार के वृक्षों से बनी छत का शहतीर प्राप्त हुआ है। देवदार की लकड़ियों का प्रयोग फर्नीचर बनाने, गाड़ी बनाने और जहाज बनाने में किया जाता था। इस प्रकार कच्चे माल की खोज के कारण भी हड़प्पा बस्तियाँ बनाई गईं। मेसोपोटामिया और भारत के बीच निर्यात होता था, जिसके कारण काफी लोगों को रोजगार मिला। सुमेरियाई साहित्य व अभिलेखों में ऐसे साक्ष्य मिलते हैं कि राजा बड़े पैमाने पर युद्ध के लिए हथियार तैयार करवाता था। इस बात से इस विषय का पता लगाया जा सकता है कि जिस राज्य के पास जितनी अधिक

www.neerajbooks.com

तांबा और मिश्र धातुएँ थीं, उतना ही उसका सैन्य बल अधिक होता था।

मूल्यवान पत्थर, धातु आदि का प्रयोग उस समय का संभ्रांत वर्ग करता था। इन चीजों की माँग धीरे-धीरे बढ़ने लगी, क्योंकि संभ्रांत वर्ग में शामिल होने और उन जैसा दिखने की होड़ लोगों में बढ़ने लगी और इन चीजों को बढ़ावा मिला। उर नामक स्थान जो दक्षिणी सुमेरियाई क्षेत्र में है, से मिले कब्रिस्तान से पता चलता है कि यहाँ भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों की कब्रें हैं, जिनमें से कुछ बड़ी और समृद्ध कब्रें भी मिली हैं, जो शासकीय वर्ग के पुरुषों और महिलाओं की कब्रें हैं। इनकी कब्रों से नक्काशीदार सोने और चाँदी के कलश, सोने के हत्थे, ढेर सारे सोने के मनके, फर्नीचर मिले हैं। अन्यत्र भी संभ्रांत वर्ग के लोगों की कब्रें मिली हैं, जिससे इस प्रकार का सामान मिलता है। इस प्रकार के महँगे और आयातित धान को जमीन में गाड़ देने से धीरे-धीरे इनका लेन-देन कम होने लगा और ये लुप्त होने लगे। अगली पीढ़ी को इन बहुमूल्य धातु और पत्थर को फिर से मंगवाना पड़ता होगा। जिन विदेशी स्थलों से कच्चा माल मिला है, उसके संबंध में एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है, जो लोग इनके सम्पर्क में आए, उन्होंने अपनी रक्षा के लिए स्वयं काँसे के हथियार बनाने की कोशिश नहीं की या कोई संभ्रांत वर्ग नहीं बना, जो विदेशी शासकों से सौदा कर सकता। यदि ऐसा था तो सभ्यता के हाशिए या सीमांत पर भी सामाजिक परिवर्तन हुआ होता। हड़प्पा क्षेत्र के सीमांत यानी हरियाणा के कुणाल और श्रीनगर के बुर्जहोम में हड़प्पा क्षेत्र के गहने मिले हैं। यह सामग्री अलग-अलग घरों से नहीं, बल्कि एक जगह से मिली है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि हड़प्पा से आने वाले लोगों ने स्थानीय बुजुर्गों या सरदारों को यी सामग्री उपहार में दी होगी।

उस समय के व्यापार में भिन्न-भिन्न स्थानों से परस्पर चीजों को आयात किया जाता थां। मिस्र और सुमेर में लेबनान से कीमती लकड़ियाँ मँगाई जाती थी। सिनई का फिरोजा मिस्र से मँगाया जाता था। मध्य एशिया के कुनूलून पहाड़ियों पर पाया जाने वाला जेड चीन से मंगवाया जाता था। मेसोपोटामिया, दक्षिणी एशिया और मिस्र में उत्तरी-पश्चिमी अफगानिस्तान से लैपिस लैजूली मँगाया जाता था। इसी प्रकार हड़प्पा शहर से सुमेर में हाथीदाँत, सोना और लकड़ी मंगवाई जाती थी। चीन में यांगत्जे मुहाने के दक्षिणी प्रशांत तट से कौड़ियाँ मंगायी जाती थीं। इन सबका उपयोग समाज के उच्च स्तरीय लोग करते थे और इससे वे अपनी हैसियत प्रदर्शित करते थे।

उपर्युक्त वर्णन उस समय होने वाले वर्णन को दर्शाता है, परन्तु इन विशेषताओं से जुड़े कुछ प्रश्न भी उठते हैं। जैसे मिस्र, सुमेर, और दक्षिणी राज्यों के उदय व व्यापार के विस्तार में एक परस्पर संबंध हैं। मिस्रवासियों और मिस्र द्वारा उत्कृष्ट रंगपट्टिका के उपयोग, ताँबे पर अधिक से अधिक निर्भरता से नई और दक्षिणी फिलिस्तीन के बीच डेल्टा के मुहाने पर मादी के पास संपर्क की पहले चर्चा की जा चुकी है। पश्चिम एशिया में न केवल उरूक से मिट्टी के बर्तन, मोहर, मंदिर और पूर्वी व ईरान के मैदानी हिस्सों से लिखित सामग्री प्राप्त हुई है, जो उस समय के बढ़ते व्यापार की और संकेत करते हैं।

ऊपर किया गया वर्णन मिस्र, मेसोपोटामिया, चीन और हड़प्पा सभ्यताओं में धातु के प्रयोग जिसमें मुख्यत: ताँबे और कांसे का प्रयोग और इसी के कारण विकसित हुई प्रौद्योगिकी, शहरीकरण, व्यापार आदि के संबंध में संक्षिप्त अध्ययन किया गया है, जो उस समय की स्थिति हमारे सामने स्पष्ट करता है। ताँबे और काँसे के प्रयोग से इन सभ्यताओं को क्या लाभ हुआ, यह भी जाना। कांस्य धातु से बने औजार और प्रौद्योगिकी का विकास उस समय का उल्लेखनीय पहलू है। प्रौद्योगिकी के विकास से श्रम-विभाजन और विशेषज्ञता बढ़ी। प्रौद्योगिकी के विकास से ही शहरों का उदय, संभ्रांत वर्ग के लोगों का उदय हुआ। राज्यों के राजनैतिक विकास पर इसका सीधा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आरंभिक राज्य के निर्माण में व्यापार की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. खनिज से तांबा निकालने की विविध तकनीकों की चर्चा करें।**

**उत्तर**–प्राचीन सभ्यताओं में खनिज से तांबा निकालने की कोई विशेष तकनीक नहीं थी, लेकिन जैसे-जैसे लोगों ने इसकी महत्ता को समझा, इससे भिन्न प्रकार की चीजें बनानी सीखी, इसके सांचे की तकनीक से इसको पिघलाकर इसमें अन्य धातु मिलाकर भिन्न-भिन्न चीजें बनायी जाने लगीं।

तांबे का प्रयोग भिन्न-भिन्न समय में हुआ। जैसे लगभग 7000 ई.पू. में पश्चिम एशिया के कबीलाई खेतिहरों ने पहली बार तांबे का प्रयोग किया। धातु विज्ञान विशेषज्ञतापूर्ण कार्य है, क्योंकि हर व्यक्ति को यह पता नहीं होता है कि जमीन में कौन-सी धातु कहाँ है, उसके गुण क्या हैं और कैसे उस धातु को प्राप्त किया जा सकता है, किस तरह धातु में भट्टा या आवा लगाया जायेगा और उसे नियंत्रित कैसे किया जायेगा। यह जानना भी एक आम आदमी की समझ से परे है। साथ ही साथ काष्ठ-कोयले का प्रयोग करना भी एक विशेषज्ञतापूर्ण कार्य है। शुरू-शुरू में धातु विज्ञान की जानकारी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँची। तांबा, सीसा और टिन की प्रारम्भ में कमी थी और ये जमीन में किस जगह थी, इसकी जानकारी के लिए आज जैसे आधुनिक यंत्र नहीं थे, जिससे इनकी उपस्थिति का पता लगाया जा सके। इसी कारण लोगों को इन्हें घूम-घूमकर इकट्ठा करना पड़ता था। धातु विज्ञान विशेषज्ञता का क्षेत्र उस समय बनना शुरू हुआ, जब चीन में शाही पूर्वजों के

www.neerajbooks.com



अनुष्ठान के लिए विशेषज्ञतापूर्ण वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। मेसोपोटामिया में मंदिर और महल बनाने के लिए औजारों की जरूरत पड़ी। धातुकर्म के महत्त्व को नवपाषाण खेतिहर जनजातीय समाज के समय में नहीं, बल्कि राज्यों या शहरों बनने के बाद ही इसके महत्त्व को समझा गया।

तांबे के प्रयोग के संबंध में इसका प्रयोग सर्वप्रथम इसको पीटकर इसको गहने बनाने के लिए किया गया। प्रौद्योगिकी के पहले चरण में उत्तरी मेसोपोटामियाई गाँव के लोगों ने करीब 5000 ई.पू. के आसपास तांबे का प्रयोग करना शुरू किया गया। लोग ढलाई की कला जानते थे। खनिज से शुद्ध तांबा निकालने के लिए पहले इसे गलाया जाता था। फिर इसके बाद ईंट के भट्ठे को जमीन में खोदकर आवा बना लिया जाता था, जिसमें काष्ठ-कोयला और खनिज के चूर्ण को 700° C के तापमान पर कुछ घण्टों तक रखा जाता था। इस खनिज के द्वारा अजुराइट और मालासाइट जैसे ऑक्साइट खनिज भी प्राप्त किये जाते थे। ये खनिज सुन्दर और रंगीन होते हैं तथा मुख्यत: तांबे की खानों के ऊपरी हिस्से से प्राप्त किये जाते हैं। दूसरी तरह के सल्फाइट खनिज खानों के निचले हिस्सों से प्राप्त किये जाते हैं। आमतौर से खनिजों को भट्ठी में गर्म किया जाता है, क्योंकि इससे सल्फाइट की मात्रा खत्म हो जाती है। तांबे को 1084° C पर गलाया जाता है। इस तापमान पर तांबे को बहुत कम समय की जरूरत होती है और वह गल जाता है। इससे मनचाही वस्तु बनायी जा सकती है। प्राचीन काल में मिस्र में भट्ठे की आग को तेज करने के लिए धौंकनी का इस्तेमाल किया जाता था। तांबे में 0 से 17 प्रतिशत किसी दूसरी वस्तु को मिला देने से धातु के गलनांक का तापमान काफी नीचे चला जाता है। यदि कांसे में 10% टिन मिलाया जाये तो यह 1000° से. ताप पर ही गल जाता है। यदि इसमें सीसा मिलाया जाये, तो यह 1000° C से कम ताप पर ही गल जाता है। इसका एक कम लाभ यह होता है कि टिन मिला कांसा शुद्ध तांबे से अधिक मजबूत होता है और इसे टिन तांबे के मुकाबले भारी काम में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

प्रारंभिक दिनों में जब तांबे की ढलाई शुरू हुई, तो यह आसान थी, किन्तु यह धीरे-धीरे जटिल होती चली गई। मेसोपोटामिया के आरंभिक राजशाही के काल में मंदिर की जो मूर्तियाँ बनाई जाती थीं, उनको बनाने के लिए दो साँचों की तकनीक का इस्तेमाल किया जाता था। इसी तकनीक से कुल्हाड़ी बनायी जाती थी, जिसमें हत्था लगााने के लिए छेद भी होता था। तांबे का इस्तेमाल इसको पीटकर अन्य वस्तुएं बनाने के लिए भी किया जाता था; जैसे योद्धाओं के पहनने के लिए टोप या हेलमेट। मेसोपोटामिया के आरंभिक चरण में देखने को मिलता है कि संखिया मिश्र धातु अधिक प्रचलित थी। परन्तु 2500 ई. के आसपास टिन, काँसा का प्रयोग अधिक होने लगा। सुमेर में तीसरी सहस्त्राब्दी के कुछ स्थानों की खुदाई की गई है, जहाँ से तांबे और कांसे के हथियारों का एक बड़ा भंडार मिला है, जो निस्संदेह इस बात की ओर संकेत करता है कि धातुकर्म पर उनकी पकड़ मजबूत हो गयी थी।

चीन में धातुकर्म का आगमन तेजी से हुआ। इरहलिटू चरण में तांबे के साथ टिन या सीसा मिलाया जाता था। ढलाई के लिए एक साथ कई खाँचे और साँचे प्रयोग किये जाते थे।

**प्रश्न 2. युद्ध को छोड़कर तांबे और इसकी मिश्र धातु के विभिन्न उपयोगों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–दुनिया के अधिकांश हिस्सों में सबसे पहले प्रयोग में आने वाली धातु तांबा थी, इसके बाद तांबे का प्रयोग शुरू हुआ। सीसा या टिन मिलाकर ताबे से कांसा बनाया जाता था। ये धातुएं पत्थर से कहीं अधिक उपयोगी साबित हुईं, क्योंकि इन्हें पिघलाया जा सकता था और इस पिघली धातु को मनचाहा आकार देकर आवश्यकतानुसार वस्तु बनायी जा सकती थी। बढ़ईगिरी पत्थर और हाथीदाँत पर नक्काशी करने वाला या चमड़ा काटने के लिए भी इनसे बेहतर और औजार बनाये जा सकते थे। तांबे से पतली चादर बनाकर उससे बर्तन आदि भी बनाये जा सकते थे। तांबे से घर में काम आने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ भी बनायी जा सकती थी, क्योंकि इसको पिघलाना आसान होता था और पिघलाकर इसे मनचाहा आकार दे दिया जाता था।

यदि तांबे के उपयोग के संबंध में मिस्र की बात की जाये, तो यहां 3500 ई.पू. के आसपास तांबे का उपयोग शुरू हुआ और इसे गलाने की विधि लोगों ने सीखी। इससे भिन्न-भिन्न प्रकार के औजार बनाने सीखे। इनमें मुख्य रूप से छुरे व कुल्हाड़ियां आदि होती थीं। पहले-पहल तो तांबे का प्रयोग हथियार बनाने के लिए ही किया जाता था, परन्तु बाद में इसका प्रयोग अन्य शिल्पों में काम आने वाली वस्तुओं और उन शिल्पों में सहायक औजारों के रूप में भी होने लगा, जिससे इन शिल्पों का विकास हुआ। क्योंकि बढ़ईगिरी, पत्थर के काम, चमड़ा उद्योग आदि के काम में तांबे के बने औजारों के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। चमड़ा काटने के लिए तिरछे और घुमावदार आकार के चाकुओं का इस्तेमाल होता है। नाव बनाने के लिए और छेनियों, आरी, कील आदि बनाने के लिए लिए तांबे का प्रयोग होता था। पत्थर की रंगपट्टिका और कलशों के निर्माण के लिए सही आकार के धातु के औजारों की भी जरूरत पड़ती थी।

हड़प्पा संस्कृति में धातु के प्रयोग के प्रमाण कम मात्रा में मिलते हैं। परन्तु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से खुदाई के दौरान मिले प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि यहां धातु का प्रयोग औजार आदि बनाने में होता था, क्योंकि कुल्हाड़ियों के टुकड़े छड़ तथा चूड़ियों के टुकड़े आदि पाये गये हैं। हड़प्पा में जैसे ही शहरी युग का आरम्भ हुआ, यहां धातु के औजार बनाने की तकनीक में प्रगति देखने को मिलती है। क्योंकि हाथीदांत पर किये गये काम से इस बात का अनुमान लगाया जा

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सकता है कि बिना धातु के बने नुकीले औजार से यह सम्भव नहीं था। मनकों में छेद करना, माला बनाना आदि में कांसे के बरमे का प्रयोग निश्चित रूप से दिखाई देता है। रोजमर्रा के इस्तेमाल के लिए भी धातुओं की बनी चीजों का प्रयोग किया जाता था; जैसे–मछली मारने का कांटा और उस्तरा आदि। तांबे को पीटकर बर्तन भी बनाये जाते थे। तराजू के पलड़े भी धातु के बने होते थे। तीर, छुरा, तलवार आदि हथियार भी धातु के ही बनाये जाते थे। हड़प्पा में धातु की ठुकाई, ढलाई व सांचे के द्वारा ढालना आदि तकनीकों का प्रयोग होने लगा था। हड़प्पावासियों ने दो धातुओं को आपस में जोड़ने की तकनीक भी विकसित कर ली थी और तांबा, सीसा मिश्रित धातु का भी प्रयोग होता था।

चीन में तांबा व इसकी मिश्रित धातु का प्रयोग भी बड़े पैमाने हुआ। पश्चिम एशिया की तुलना में चीन में धातुकर्म का आगमन तेजी से हुआ। यदि इस सभ्यता के इरहलिटू चरण की बात की जाए तो इस चरण में तांबे के साथ टिन या सीसा मिलाया जाता था तथा ढलाई के लिए एक साथ कई सांचों का प्रयोग किया जाता था। चीनी सभ्यता से खुदाई के दौरान मिले पुरातात्त्विक अवशेषों से यह बात सामने आती है कि यहाँ पूर्वजों के क्रियाकलापों के दौरान अधिक मात्रा में धातु के बने बर्तनों का प्रयोग किया जाता था। धातु के बने इन बर्तनों और मिट्टी के बने बर्तनों को देखने से पता चलता है कि दोनों में कोई अन्तर नहीं है। धातु के ये बर्तन मिट्टी के बने बर्तनों के समान ही हैं। यहां के शांग काल में तांबे का आयात किया जाता था। यांगत्से और उत्तरी सेनई के निकट के पहाड़ों से तांबा मंगाया जाता था तथा दक्षिणी सेनई प्रान्त से टिन मंगाया जाता था। चीनी मान्यता है कि सिया राजवंश के संस्थापक ने खनन और चारपाए के गोल कांसे के बर्तन की ढलाई का काम शुरू करवाया था। इन सभी बर्तनों पर असंख्य आकृतियां बनी हैं। शांग शासकों के बाद पश्चिमी छाउ में यह परम्परा शुरू हुई। इस परम्परा के अनुसार कांसे की ढलाई का संबंध शाही बलिदान से था और यह शक्ति और वैधता को प्रतीकित करता था। अश्व रथ यहां लकड़ी के बनाये जाते थे और सम्भवत: इन्हें बनाने में कांसे के औजार प्रयोग किए जाते थे। रथ के पहिए को बनाने में कांसे के औजारों के साथ-साथ कांसे की बनी कीलों का प्रयोग इन्हें रथ के साथ जोड़ने के लिए किया जाता था। शांग शासन में धातु के बने बर्तन जिसमें तांबा व कांसा मुख्य रूप से प्रयुक्त हुआ है। इन बर्तनों के बारे में पुरातत्त्वविदों ने बहुत कुछ सीखा है। खाना बनाने, परोसने, खाना खाने आदि के दर्जनों बर्तन मिले हैं, जिनकी बनावट और आकार अलग-अलग हैं व बहुत जटिल प्रकार के हैं। शांग काल में कांसे के बने औजारों का प्रचलन था। परन्तु यहां ये बड़ी संख्या में नहीं पाये गये। इसका कारण है इन्हें गलाकर दूसरी प्रकार की चीजें बनायी जाती थीं। यहां से कुल्हाड़ी, छुरी, तीर आदि धातु की बनी चीजें मिली हैं। चीन में टिन और तांबा प्रचुर मात्रा में मिलता था। इसीलिए इन दोनों को मिलाकर कांसा तैयार किया जाता था। यही कारण है कि यहां कांसे की बनी चीजें अत्यधिक मात्रा में मिली है। यहां की खुदाई के दौरान कांसे के औजार बड़ी मात्रा में मिले हैं।

तांबा और इससे बनी मिश्रित धातु कांसा (क्योंकि तांबे में टिन मिलाने पर कांसा तैयार होता है) का प्रयोग मिस्र, मेसोपोटामिया, चीन, हड़प्पा सभ्यताओं में किया गया और इन धातुओं से न सिर्फ युद्ध संबंधी औजार व हथियार बनाये गये, बल्कि इससे भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि युद्ध में प्रयुक्त चीजों से अधिक इन धातुओं से घरेलू और और दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएं बनायी गयी और शिल्पों के विकास में इन धातुओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि इससे बने औजार इन शिल्पों में प्रयुक्त होते थे। इन धातुओं की अलग-अलग सभ्यता में अलग-अलग भूमिका रही है। जहां चीन में आनुष्ठानिक क्रियाकलापों में प्रयुक्त हुई, वहीं मेसोपोटामिया में मन्दिर और महल बनाने में प्रयुक्त हुई और मिस्र में मूर्ति पूजा में, क्योंकि इन धातुओं से बर्तन आदि बनाये जाते थे।

**प्रश्न 3. मिस्र और हड़प्पा के शहरों की योजना की तुलना कीजिए।**

**उत्तर–**मिस्र और हड़प्पा के शहरों की क्या योजना थी–इस प्रश्न पर विचार करने लिए दोनों शहरों के नगरों की भिन्नताओं, समानताओं व उनकी बनावट की योजनाओं को समझना होगा, तभी हम सही ढंग से दोनों सभ्यताओं के शहरों की तुलना कर सकते हैं। इसके लिए हम दोनों सभ्यताओं की नगर-योजनाओं पर अलग-अलग विचार करेंगे।

**मिस्र सभ्यता के शहरों की योजना–**मिस्र के शहरों का उत्खनन अधिक व विस्तृत नहीं हो पाया है, क्योंकि नील नदी घाटी इतनी पतली है कि इस पर हजारों वर्षों में एक-दूसरे के ऊपर एक के बाद एक शहर बनते चले गये और कई प्राचीन शहर आधुनिक शहरों की गर्त में दबे हुए हैं। इसका उदाहरण है अबीदॉस जो पुरानी राजशाही का एक प्रमुख केन्द्र हुआ करता था। मिस्र की खुदाई न हो पाने के कई अन्य कारण भी रहे हैं; जैसे–

– भूमिगत जल का ऊपर उठना
– घाटी के किनारे-किनारे शहरों का समतल पर फैलाव
– आधुनिक कृषि का फैलना
– बस्तियों के किनारे कई कब्रिस्तानों के होने से भी खुदाई कार्य नहीं हो पाया है। परन्तु खुदाई न होने के बावजूद भी जो साक्ष्य हमारे पास हैं। उनके आधार पर शहरों और उसमें बने घरों की योजना पर अनुमान लगाया जा सकता है।
– घर आयताकार होते थे;
– गलियां पतली होती थीं;
– शहर चार भागों में विभाजित होता था और प्रत्येक भाग में एक मंदिर होता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



इसके बाद के चरण में हमें पिरामिड, शहर और मंदिर शहरों की स्थापना के प्रमाण मिलते हैं। इतने विशाल पिरामिड बनाने के लिए अधिक संख्या में मजदूरों की आवश्यकता रही होगी। उनके खाने-पीने की व्यवस्था व औजारों की आवश्यकता, कच्चे माल की आवश्यकता तथा शिल्पगत वस्तुओं की जरूरत रही होगी। इसके लिए एक राज्य, एक संगठन का होना बहुत जरूरी है। प्रत्येक मृतक सम्राट् या ईश्वर को एक मंदिर में स्थापित किया जाता था और इस प्रकार प्रत्येक ट्रस्ट और उपासनागृहों का निर्माण हुआ, जिसके चारों ओर शहर विकसित हुये।

अत: हम कह सकते हैं कि मिस्र में खुदाई के अभाव में शहरों की योजनाओं के संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। अनुमान के आधार पर ही यहां की शहर योजना के संबंध में जानकारी दी जाती है। यहां नगर किस प्रकार बसे। यह आवश्यकता के लिए बसाये गये थे, क्योंकि मृतक शासक के लिए बने उपासनागृहों के आसपास ये बसते चले गये।

**हड़प्पा सभ्यता के शहरों की योजना**–हड़प्पा सभ्यता में शहरी योजना के संबंध में समझने के लिए मोहनजोदड़ो एक महत्त्वपूर्ण शहर था, जो पूरी सभ्यता का एक विकसित और समृद्ध शहर था। इसी कारण इसे इस सभ्यता की द्वितीय राजधानी भी कहा जाता है। मिस्र की तरह यहां शहरों के ऊपर बाद के युगों में शहर नहीं बसे, इसी कारण यहां की खुदाई बहुत विस्तृत ढंग से हुई है। इस सभ्यता के शहरों की दीवार मजबूत बनायी जाती थी। इसमें मोहनजोदड़ो एक प्रमुख उदाहरण है। यहां की दीवारें अच्छी मजबूत हैं। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि ये आज भी बहुत ऊँची खड़ी हैं। शहरों में गढ़ी का मिलना एक आम बात थी। यह ऊँचाई पर बनी होती थी। इसमें बने घरों में संभ्रांत लोग या शासक वर्ग रहता था। धौलावीरा, कालीबंगा इसके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। मोहनजोदड़ो शहर की विशेषताओं के बारे में देखा जाये तो यहां स्नानागार, भण्डारगृह (अन्नागार) और एक सभा भवन भी मिला है, जो कि बहुत बड़ी संरचना थी। इसका आंगन चारों ओर से घिरा हुआ है और इसका कक्ष इतना बड़ा है कि इसकी छतों को ईंटें से खंभों के सहारे खड़ा किया गया है। कालीबंगा की गढ़ी में आनुष्ठानिक संरचनाएं और संभ्रांत लोगों के घरों का स्थापत्य मिलता है। हड़प्पा शहरों की एक अन्य विशेषता यह है कि अधिकांश गढ़ियां दीवारों से घिरी हुई हैं। इसका कारण इतिहासकार यह बताते हैं कि शासक वर्ग अपनी प्रजा से, जो कि निचले हिस्से में रहती थी, से दूरी बनाकर रहना चाहते थे।

हड़प्पा की विस्तृत पैमाने पर खुदाई के फलस्वरूप ही वहां शिल्प और कलाओं की जानकारी भी मिलती है। इन शिल्पकलाओं में सीप काटना, मनके बनाना, मुहरों पर नक्काशी करना, धातुकर्म, मिट्टी के बर्तन बनाना व अन्य छोटे-छोटे शिल्प के प्रमाण भी यहां मिले हैं, जो कि खाद्यान्न उत्पादक रोजगार के रूप में अपनाए जाते होंगे और शहरी जीवन सरलता से चलता होगा, क्योंकि शहरी जीवन में यह आवश्यक है कि लोग अलग-अलग और खाद्यान्न उत्पादक रोजगार अपनाएं।

मोहनजोदड़ो में हर ओर पानी के लिए कुएं खुदे हुये थे। बड़े घरों के निकट पानी के लिए एक कुआं होता था। आंगन के चारों ओर कमरे बने होते थे। मोहनजोदड़ो से एक आश्चर्यजनक बात सामने आती है कि यहां सीप काटने, मनके बनाने, मुहरों पर नक्काशी करने आदि का तरीका शहर के एक ही हिस्से के अलग-अलग घरों में अलग-अलग था, क्योंकि इस प्रकार के प्रमाण यहां से मिले हैं।

हड़प्पा के जो शहरी क्षेत्र थे, वे बड़े व्यवस्थित और सुनियोजित ढंग से बसाये गये थे। यहां पर नागरिक व्यवस्थाओं की बड़ी अच्छी व्यवस्था की गई थी। यहां सुन्दर और व्यवस्थित जल-निकास प्रणाली थी। गली में नाली बनी होती थी। सड़कें साफ होती थीं और एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं, ताकि हवा चलने पर सड़कें साफ हो सकें। इस पूरी व्यवस्था को देखने पर ऐसा लगता है कि पूरे शहर के लिए कोई संस्था थी, जो नियन्त्रण और संचालन का कार्य करती थी। सड़कें मिट्टी की बनी होती थीं, परन्तु सफाई की अच्छी व्यवस्था थी। कूड़ा-करकट इकट्ठा करने के लिए स्थान-स्थान पर गड्ढे बने होते थे, जिससे कूड़ा इकट्ठा किया जा सके या फिर कूड़ेदान रखे जाते थे।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि हड़प्पा की नगर-योजना काफी व्यवस्थित थी और उस समय की अद्वितीय नगर-योजना थी, क्योंकि शहरों की प्रत्येक आवश्यकता पर ध्यान दिया जाता था। सफाई, जल-निकास, प्रकाश आदि जो शहरी जीवन के लिए आवश्यक था। इस समूची व्यवस्था के संबंध में जानकारी और प्रमाण जुटाने का आधार यहां पर हुई विस्तृत खुदाई द्वारा ही सम्भव हो पाया है, जबकि मिस्र के संबंध में यह बात सम्भव नहीं है। मिस्र की तरह हड़प्पा में एक ही स्थान पर बार-बार बस्तियों का निर्माण नहीं हुआ। हड़प्पा के केवल कुछ ही स्थलों पर शहर बसने से पहले लोगों के रहने के प्रमाण मिलते हैं।

हड़प्पा और मिस्र की शहर योजना में पर्याप्त अन्तर था। जहां मिस्र में शहरों का विकास मृतक शासक या ईश्वर के उपासना-गृहों के इर्द-गिर्द हुआ, वहीं हड़प्पा में नगर योजनाबद्ध तरीके से बसे और शहरों की व्यवस्था पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। संभ्रांत वर्ग के लोगों के घर विशेष प्रकार के व बड़े होते थे। मिस्र में पिरामिड और मन्दिर शहरों के प्रमाण मिलते हैं, जबकि हड़प्पा में इस प्रकार की कोई संरचना देखने को नहीं मिलती है मिस्र में एक के ऊपर एक शहर बसता चला गया, जिससे खुदाई के दौरान शहरों के बारे में अनुमान लगाने में सरलता होती है, परन्तु हड़प्पा में इस प्रकार नगर नहीं बसे।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा की नगर-योजना मिस्र की नगर-योजना से बेहतर थी।

**प्रश्न 4. मेसोपोटामिया और शांग शहरों की तुलना कीजिए।**

www.neerajbooks.com

**उत्तर**–मेसोपोटामिया के शहरों में सुमेर सबसे ज्यादा शहरीकृत था। मेसोपोटामियाई कला और साहित्य को देखने से पता चलता है कि इनका स्वरूप मूलतः शहरी था। मन्दिर और महल सामाजिक जीवन के मुख्य केन्द्र हुआ करते थे। इनकी बनावट सुन्दर व प्रभावशाली थी। हिसाब-किताब रखने के लिए इनके पास अच्छी-खासी व्यवस्था होती थी। ये सब शहरी संस्थाएं होती थीं। यहां शहरी जीवन से संबद्ध एक बेलनाकार मुहर मिली है, जिस पर उत्कृष्ट नक्काशी की गई है। शहरों का लेन-देन अवैयक्तिक होता था और जिन लोगों के बीच लेन-देन होता था, वे अधिकांशतः एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते थे, इसलिए संदेशों, दस्तावेजों और सामान भेजे जाने वाले गट्ठरों पर इस प्रकार मुहर लगाना अनिवार्य होता था। इसीलिए यह बेलनाकार मुहर जिस पर नक्काशी की गई है, को शहरी जीवन से संबद्ध माना जाता है।

शहरी जीवन में मन्दिर और महल सार्वजनिक जीवन के प्रमुख केन्द्र होते थे। शुरू-शुरू मे मन्दिरों को द्विपक्षीय योजना के अनुसार बनाया जाता था। शहरों के विकास के लिए कुछ भी अपरिहार्य नही है। यह कहना भी सही नहीं होगा कि शहरों का विकास धीरे-धीरे हुआ। मेसोपोटामिया के शहर बनने से यह अधिक स्पष्ट रूप से समझ में आता है। आरम्भिक राजवंशी शासन के आरम्भ में उरूक शहर बसा। इस शहर का निर्माण शताब्दियों से स्थानीय जनता की जनसंख्या बढ़ने की अपेक्षा छोटे-छोटे कई गांव को छोड़कर एक जगह लोगों के बसने के कारण हुआ। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है, तो विभिन्न समुदायों के बीच आपसी झगड़े होने की संभावना बढ़ती जाती है और लोगों का पलायन शुरू हो जाता है। अपने शहर की सुरक्षा के लिए उरूक नगर की दीवार बनवायी गयी, जो शहर के चारों ओर थी। उनके ऊपर शासन करने के लिए एक राजा का उत्कर्ष हुआ। शहर के चारों ओर दीवार बनवायी गयी, जिससे गांव की अपेक्षा यहां ज्यादा सुरक्षा उपलब्ध हुई। मेसोपोटामिया में यहीं से 'शहर राज्य' के विकसित होने की पृष्ठभूमि थी।

मेसोपोटामिया साहित्य के अनुसार नगर की दीवार सम्राट गिलमेश ने बनवायी, जो एक महान शासक था। इस सम्राट और इस दीवार का मेसोपोटामिया साहित्य में बार-बार उल्लेख आया है यह दीवार काफी मजबूत थी और शहर को सुरक्षा प्रदान करती थी।

इस प्रकार, मेसोपोटामिया में शहरों की सुरक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया, ताकि आक्रमण आदि से नगर की सुरक्षा की जा सके और यहां रहने वाले नागरिक भी गांवों की तरह इधर उधर बिखरे हुए न रहकर एक जगह व्यवस्थित ढंग से रह सके।

**शांग शहर**–शांग शहर एक अलग ढंग से बसाया गया था यहां मिट्टी की बनी आयताकार दीवार होती थी और मेसोपोटामिया के समान यह दीवार भारी संख्या में मजदूरों को लगाकर बनवायी थी। यहां के घर भी दो प्रकार के थे–मिट्टी या लकड़ी के बने घर, गड्ढा खोदकर बनवाये गये घर। चेंग चाऊ (Cheng Chou) के कुछ चबूतरों के चारों ओर स्तम्भों के कई गड्ढे मिले हैं, जिनके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि ये संभ्रांत वर्ग के लोगों के घर थे। घर बनाने में मौसम का भी ध्यान रखा जाता था, क्योंकि उत्तरी चीन में अधिक ठण्ड पड़ती थी, इसी कारण यहां गड्ढा घरों को प्राथमिकता के आधार पर बनाया जाता था। इसका एक अन्य कारण यह था कि उत्तर की मिट्टी अधिक मुलायम थी, जो आसानी से खोदी जा सकती थी। इस गड्ढा घरों के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग भी कम होता था। इन गड्ढा घरों की छत लकड़ी या फूस की बनी होती थी। इन गड्ढा घरों की अन्य विशेषता यह है कि जहां शिल्प उत्पादन होता था। वहां तिकोने गड्ढे मिले हैं। इन गड्ढों में तांबे के, कुल्हाड़ी के अवशेष मिले हैं और ढलाई के लिए सांचे भी मिले हैं।

शांग कालीन शहरों को देखने से पता चलता है कि इन शहरों को बड़े नियोजित ढंग से बसाया गया था, जहां एक ही कुल के या वंश के लोग कई पीढ़ियों तक रहते थे। राजा को यह अधिकार था कि वह किसी कुल या वंश के या किसी उच्च पदाधिकारी को नए क्षेत्र में बसने या वहां इमारत बनाने की इजाजत दे और राजा ऐसा करते भी थे। जब नई बस्ती बसाई जाती थी, तो इसके आसपास की जमीन को कृषि कार्य के लिए साफ किया जाता था और फिर विधिवत् पूजा-पाठ से नई बस्ती का नाम रखा जाता था और यहां एक मन्दिर की स्थापना की जाती थी। इस प्रकार की बस्ती में एक वंशीय समुदाय का अनुष्ठान करने वाले लोग रहते थे और राजा के लिए सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से हर समय तैयार रहते थे। इन्हें राजा अपनी सैन्य इकाई के रूप में इस्तेमाल करता था। चूंकि ये बस्तियां छोटी हुआ करती थीं, इसीलिए इन्हें शहर कहना शायद ठीक नहीं होगा।

अन्यंग शहर की प्रौद्योगिकी प्रवीणता, अनुष्ठान, कांस्य शिल्प में दिखाई देती है। यहां जो कारखाने बने हुये थे, उनमें प्रशिक्षित कारीगर काम करते थे। ऐसा नहीं था कि इन कारखानों में एक ही परिवार के लोग आनुवंशिक आधार पर कार्य करते हों या युद्धबन्दियों को कार्य पर लगाया गया हो, जिसके कारण इस शहर की प्रौद्योगिकी में विकास हुआ। इन कारखानों का संचालन संभ्रांत परिवार के लोग करते थे।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि मेसोपोटामिया और शांग के शहरों में पर्याप्त अन्तर था। मेसोपोटामिया के शहरों में जहां शहर के चारों ओर दीवार बनाने के साक्ष्य मिलते हैं, वहीं शांग के शहरों में इस प्रकार के साक्ष्य नहीं मिलते हैं। शांग में लकड़ी या मिट्टी व गड्ढों में बने घर देखने को मिलते हैं, जो वातावरण के अनुसार व परिस्थिति के अनुसार बनाये गये लगते हैं, जबकि मेसोपोटामिया में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया। शांग शहरों में प्रौद्योगिकी और शिल्पों का भी पर्याप्त मात्रा में विकास देखने को मिलता है। शांग सभ्यता में एक ही वंश के लोग कई पीढ़ी तक रहते थे, जबकि मेसोपोटामिया में इस प्रकार का साक्ष्य नहीं मिलता

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



है। शांग में चबूतरों पर बने घर भी देखने को मिलते हैं, जो शायद संभ्रांत वर्ग के लिए थे। अतः मेसोपोटामिया और शांग दोनों सभ्यताओं के घर योजनाबद्ध तरीके से बसाये गये थे व दोनों ही सभ्यताओं के शहरों का विकास लगातार होता रहा।

**प्रश्न 5. मिस्र और हड़प्पा सभ्यताओं की व्यापार पद्धति का विवेचना कीजिए।**

**उत्तर**–जिसे हम व्यापार का नाम देते हैं, वह राज्य द्वारा संचालित व नियोजित आयात-उन्मुख कार्यक्रम होते हैं। मिस्र में दुभाषियों का उल्लेख मिलता है, जो दो विदेशी भाषाओं के जानकार होते थे और सम्भवतः व्यापार में मध्यस्थ का काम किया करते थे। वे एक देश से दूसरे देश के बीच भाषा को समझने के लिए व्यापारियों की मदद किया करते थे, जिससे व्यापारियों का काम आसान होता था और व्यापारी वर्ग आपसी लेन-देन में एक दूसरे की भाषा समझ जाते थे। मिस्र के सम्राट् एक बड़ा दल बनाकर खनन कार्य करने के लिए मजदूरों को पूर्वी मरुस्थल भेजा करते थे। मजदूरों के खाने-पीने की व्यवस्था वहीं खान के पास की जाती थी। जब इन मजदूरों का कार्य समाप्त हो जाता था, तो यह दल वापस लौट आता था। सिनेई से फिरोजा और तांबा इसी प्रकार लाया जाता था। लेबनान से देवदार की लकड़ी मंगाई जाती थी, जिसका इस्तेमाल इमारत बनाने में किया जाता था। मिस्र सम्राटों और संभ्रांत वर्ग के लोगों ने मकबरे बनवाये और उन पर जीवनी अंकित करवाई, जिससे व्यापार के सम्बन्ध में विशेष जानकारी मिलती है। राजवंश VI के एक अधिकारी हरखुफ के मकबरे से उसके न्यूबिया अभियान के बारे में जानकारी मिलती है, जो सात महीने चला था। हरखूफ ने न्यूबियन निवासियों के साथ सम्पर्क स्थापित किया और सुगंधित पदार्थ सेन्दू की लकड़ी, तेल, चीते के चमड़े, हाथीदाँत और भी कई सामान 300 गधों पर लाद कर लाया। जब वह अपने अभियान से वापस लौट रहा था, तो नील नदी में एक अन्य पदाधिकारी का जहाज उसे मिला, जो खजूर की शराब, केक, ब्रेड और बीयर से भरा हुआ था। यह सामान उसे सम्भवतः ईनाम में मिला था।

इस प्रकार के विवरण अन्य मकबरों पर भी उपलब्ध हैं, जो उस समय के होने वाले व्यापार की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं।

दक्षिण एशिया में बलूचिस्तान से जमीन के रास्ते सिन्धु क्षेत्र में लेपिस लेजूली जैसी सामग्रियों की आपूर्ति बन्द हो गई। पूर्वी अफगानिस्तान में लेसिस की खानों के पास एक हड़प्पाई गाँव बसाया गया और अब लेसिस व अन्य सामग्रियाँ समुद्र के रास्ते मेसोपोटामिया भेजी जाने लगीं।

इन आरम्भिक व्यापारिक गतिविधियों का सिन्धु और नील नदी ने क्या भूमिका अदा थी। और किस प्रकार स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। इस संदर्भ में कुछ बातें कहीं जा सकती हैं। सिन्धु क्षेत्र यानी हड़प्पा के सम्बन्ध में हमें इसके प्रभावपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते है। हिमालय क्षेत्र से हड़प्पाई इलाकों में जो लकड़ियाँ लाई जाती थीं, नौका के द्वारा वह जहां से नौका लाने ले जाने का स्थान था, जैसे–चेनाब, सतलुज आदि, इनके किनारे गाँव बस गये। इसके प्रमाण भी मिलते हैं। मोहनजोदड़ो में शिवालिक के देवदार से बनी छत का शहतीर प्राप्त हुआ है। देवदार का इस्तेमाल गाड़ी बनाने, उच्चस्तरीय फर्नीचर बनाने, जहाज आदि बनाने में किया जाता था और इसका मेसोपोटामिया को निर्यात भी किया जाता था। इस प्रकार कच्चे माल की खोज के फलस्वरूप हड़प्पाई बस्तियाँ बसती गईं। कुणाल (हरियाणा) और बुर्जाहोम (श्रीनगर) में हड़प्पा क्षेत्र के गहने मिले हैं। इन जगहों पर यह सामग्री अलग-अलग घरों पर नहीं, बल्कि एक स्थान पर इकट्ठी मिली है। अतः इस प्रमाण से अनुमान लगाया जा सकता है कि हड़प्पा से आने वाले लोगों ने स्थानीय बुजुर्गों व पूर्वजों को ये सामग्रियाँ उपहारस्वरूप दी होंगी, क्योंकि ये स्थल हड़प्पा के सीमांत क्षेत्र में आते थे। हालांकि ये स्थल बस्तियों के रूप में विकसित नहीं हो सके और वहाँ जटिल प्रौद्योगिकी या आर्थिक स्तरों के निशान नहीं मिलते हैं।

मिस्र ने बिबलौस से एजियन के रास्ते देवदार मंगाना शुरू किया, तो लेबनान के तट पर बिबलौस एक सामूहिक व्यापारिक केन्द्र बना, तब मिस्र ने उसे देवदार की लकड़ी प्राप्त करने के लिए एक केन्द्र और कृषि और एजियन के जाने के मार्ग में एक पड़ाव की तरह प्रयोग किया। राजवंश II से मिस्र में इस उद्यम की शुरुआत हो चुकी थी, यहाँ आने वाले मिस्रवासियों ने मन्दिर भी बनाये पर बिबलौस केवल कच्चा माल भेजने वाला क्षेत्र ही नहीं बना रहा। हम जानते हैं कि मिस्र को बिबलौस तक बारीक मलमल के वस्त्र और महंगे नक्काशीदार पत्थर के प्याले भी लाने पड़ते थे। मिस्र के नजदीक के होने से और वहाँ से ठीक-ठाक व्यापारी सम्बन्ध होने के बावजूद बिबलौस में दक्षिण में दक्षिणी और समाजों तक मिस्र की कला, लेखन और धातुकर्म नहीं पहुँच सकें।

मिस्र और हड़प्पा की व्यापारिक पद्धतियाँ अलग-अलग थीं। हड़प्पा की व्यापारिक गतिविधियों के दौरान जहाँ बस्तियों का बसाव होता है, वहीं मिस्र में ऐसा नहीं था। मिस्र की व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी मकबरों व अन्य साहित्यिक अभिलेखों के द्वारा भी मिलती है। इस प्रकार, हम दोनों जगहों के व्यापार-आंतरिक और बाह्य थे, इसके प्रमाण भी दोनों जगहों से मिलते हैं।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. प्राचीन सभ्यताओं में शहरीकरण का विकास किस प्रकार हुआ, समझाइए।**

**उत्तर**–सभ्यताओं का अधिकतर विकास नदियों के किनारे होता है, ताकि इन नदियों के द्वारा सिंचाई की सुविधा आसानी से उपलब्ध हो सके। नील, यूफ्रेटस, सिन्धु आदि नादियाँ इसके उदाहरण हैं। शहरीकरण का विकास तभी संभव है, जब खेतों में अच्छी फसल हो सके, ताकि शहरों में रहने वाले लोगों के लिए

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अन्न उपजाया जा सके और उनको आसानी से खाद्यान्न उपलब्ध हो सके, क्योंकि शहरों में अधिकतर लोग गैर-कृषि कार्य से जुड़े होते हैं और उन्हें खाद्यान्न आदि गाँवों से ही प्राप्त होता है।

शहरों में लोग घनी बस्तियों में रहते हैं। ये लोग गाँव की तरह अधिक भूमि में कम लोगों की तरह नहीं रहते, बल्कि यहाँ कम भूमि में अधिक लोग रहते हैं और शहरों की परिवहन व्यवस्था भी सुचारु व मजबूत होती है, जिसके कई फायदे शहरी लोगों को होते हैं। एक तो उनके लिए गाँव से अनाज आसानी से लाया जा सकता है और दूसरे उनका सम्पर्क भी आसपास के क्षेत्रों से आसानी से बना रहता है, जिससे उनके व्यापार आदि में उन्हें सहायता मिलती रहती है। शहरीकरण में नदियों की भी भूमिका प्राचीन समय में महत्त्वपूर्ण रही, क्योंकि इससे नौका द्वारा आसपास से कच्चा माल आसानी से लाया जा सकता था और शहरी लोगों को रोजगार मिलता रहता था। जैसे मिस्र में नील नदी आवागमन का प्रमुख साधन थी। इसमें नौका चलाने के लिए हवा और इसके बहाव का ध्यान रखा जाता था। मेसोपोटामिया में भी यूफ्रेटस नदी परिवहन का एक महत्त्वपूर्ण साधन था और नगर के पास ढेर सारे नाव खेने वाले मल्लाह होते थे। सिन्धु नदी में भी नाव चलती थी।

शहरों में लोगों का एक जैसा कारोबार नहीं होता। वे गैर-कृषि कार्य अधिक करते हैं, जो शिल्पों से जुड़े होते हैं, जैसे–धातुकर्म, मोहर, नक्काशी प्रशासन, मंदिर, सेना, व्यापार आदि। इस प्रकार शहरों में ये लोग इकट्ठे रहते हैं, जिससे एक-दूसरे के कार्य में फायदा होता है। प्राचीन समय में जीवन-निर्वाह के लिए जरूरी वस्तुओं के उत्पादक ज्यादातर शासकों और मंदिरों पर आश्रित होते थे। श्रम न करने वाला शासकीय संभ्रांत वर्ग केवल कानून और प्रशासनिक व्यवस्था की देखरेख नहीं करता था, बल्कि ऐसे ढांचे का निर्माण भी करता था, जिससे श्रम-विभाजन को नियंत्रित किया जा सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शहर गाँव की अपेक्षा अधिक बड़े और विस्तृत क्षेत्र में बसे होते थे और गाँव से इनका जुड़ाव होता था, क्योंकि ईंधन और भोजन इन्हें गाँव से मिलता था। इसी लिए गाँव की भी शहरीकरण में मुख्य भूमिका होती थी। कृषि कार्य तो अधिकतर गाँव से ही होते थे और शहरों में ज्यादातर गैर-कृषि कार्य होते हैं। शहर का रहन-सहन, क्रियाकलाप ग्रामीण जीवन से बिल्कुल भिन्न होता है। शहरी जीवन में व ग्रामीण जीवन में कुछ मूलभूत अन्तर होते हैं। शहरों में लोग एक-दूसरे से परिवार या कुल के आधार पर नहीं जुड़ते और न ही शहरों में ग्रामीण समुदाय के समान रीति-रिवाज परम्परा और आस्थाओं के आधार पर इनके बीच कोई सम्बन्ध होता है। इनका आपस में जुड़ाव का कारण एक-दूसरे के कार्य पेशों से आश्रित होना होता है। परन्तु शहरी जीवन में कुछ हद तक सामुदायिक सम्बन्ध जरूर होता है। परन्तु इसे शहरी जीवन की विशिष्टता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि समाज में जैसे-जैसे विशेषता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे व्यक्ति खुद में सिमटता जाता है। सामुदायिक सम्बन्ध कम होते चले जाते हैं। एक ऐसा व्यापक सम्बन्ध बन जाता है, जिसमें लोग एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं। उनके कार्यों और पेशों के अनुसार एक शहर में एक कुल या परिवार के लोग ही नहीं रहते, बल्कि यहाँ भिन्न-भिन्न परिवारों, कुलों के लोग रहते हैं। शहरों की जनसंख्या गाँव की जनसंख्या से कहीं अधिक होती है और यह जनसंख्या नियंत्रणों और समन्वय के आधार पर एक-दूसरे के साथ बंधी होती है। इसीलिए शहरों के उदय और राज्यों का संभ्रांतों द्वारा शासित समाजों के उदय के बीच एक सीधा सम्बन्ध बनता है। वास्तव में, सामाजिक रूपान्तरण में शासक वर्ग की केन्द्रीय भूमिका होती है, इसी कारण शहरों और राज्यों के साथ ही लेखन कला का भी विकास होता है।

**प्रश्न 2. मिस्र, मेसोपोटामिया, शांग और हड़प्पा सभ्यता में बाह्य व्यापार की भूमिका पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–मिस्र, मेसोपोटामिया, शांग और हड़प्पा सभ्यता में बाह्य व्यापार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। बाह्य व्यापार से इन लोगों ने एक-दूसरे से सम्बन्ध बनाया और अपनी जरूरत की वस्तुओं का एक-दूसरे को आयात और निर्यात किया। जहाँ इन सभ्यताओं के आपस में भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। वही इनके अन्य देशों से भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस बाह्य व्यापार के सम्बन्ध में समझने के लिए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आन्तरिक व्यापार नगरीय था, परन्तु यहाँ हम केवल बाह्य व्यापार पर ही चर्चा करेंगे।

उस समय बाह्य व्यापार को कितनी गम्भीरता से लिया जाता था, इस बात का प्रमाण मिस्र और मेसोपोटामिया साहित्य में उल्लिखित दुभाषियों से पता चलता है। ये दो भाषाओं के जानकार होते थे। जो दो विदेशी भाषाएं जानते थे और ये व्यापार में व्यापारियों के लिए बड़े उपयोगी होते थे क्योंकि व्यापारी दूसरे देश की भाषा नहीं जानते थे, इसीलिए उन्हें अपनी वस्तु के सम्बन्ध में बताने, उसका मूल्य तय करने में इन दुभाषियों की मदद लेनी पड़ती थी। मिस्र के सम्राट् खनन कार्य के लिए मजदूरों के दल को पूर्वी मरुस्थल में भेजा करते थे। जब ये मजदूर अपना कार्य समाप्त करके लौटते थे, तो वहाँ से फिरोजा ओर तांबा इसी प्रकार मंगाया जाता था, जो कि बाह्य व्यापार को बढ़ावा देते थे। मिस्र में राजाओं और उच्च पदाधिकारियों के मकबरों प्राप्त लेख में बाह्य व्यापार की चर्चा मिलती है, जो कि बाह्य व्यापार के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराते हैं। बाह्य व्यापार के सम्बन्ध में हम देखते हैं किस प्रकार एक जगह न पायी जाने वाली वस्तुएं बाह्य व्यापार के अन्तर्गत ही अन्य जगहों से मंगाई जाती थी, जहाँ इनकी उपलब्धता होती थी। जैसे सिनई का फिरोजा मिस्र में पाया जाता था। मध्य एशिया के कुनलुन पहाड़ियों में पाया जाने वाला जड़ चीन से मंगवाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। मेसोपोटामिया, दक्षिणी एशिया और मिस्र में उत्तर-पश्चिम अफगानिस्तान से लेपिस लैजुली से मंगाया जाता था। हड़प्पा क्षेत्र

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



से सुमेर में हाथीदांत, सोना लेपिस लैजुली से मंगाया जाता था और लकड़ी मंगायी जाती थी। चीन के यांगत्जे के दक्षिणी प्रशांत तट से कौड़ियाँ मंगाई जाती थीं। इस सबका प्रयोग समाज के उच्च वर्ग के लोग करते थे और अपनी हैसियत का प्रदर्शन करते थे, क्योंकि ये वस्तुएं अधिक कीमती होती थीं और आम आदमी की पहुँच से बाहर होती थीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आम आदमी की जगह सम्राट् वर्ग के लोगों के कारण ही बाह्य व्यापार में समृद्धि हुई। मिस्र में लेबनान से देवदार की लकड़ियाँ मंगाई जाती थी, जिनका प्रयोग इमारत, फर्नीचर आदि बनाने में किया जाता था। एक साहित्य का प्रमाण मिलता है कि सुमेर के कुछ राजाओं ने लेबनान या एमानस क्षेत्र में मजदूरों को लकड़ी लाने के लिए भेजा और इसके लिए कांस्य की कुलहाड़ी बनवाई गई थी। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि बाह्य व्यापार के कारण शिल्पों को भी बढ़ावा मिला।

संभ्रांत वर्ग के लोग दूर-दराज की धातु और मूल्यवान पत्थरों का इस्तेमाल करते थे। इसी कारण इनकी मांग बढ़ती गई, क्योंकि संभ्रांत वर्ग में शामिल होने और इन जैसा दिखने की होड़ लोगों में बढ़ती गई और वे इन महंगी चीजों का इस्तेमाल करने लगे। इसी कारण हम कह सकते हैं कि विदेशी व्यापार और बाह्य व्यापार उपरोक्त चारों सभ्यताओं की अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। उर नामक दक्षिणी सुमेरियाई शहर के छोर पर एक बड़ी कब्रगाह है। यहां से बड़ी समृद्ध कब्रें मिली हैं, जिनमें से अधिकतर संभ्रांत वर्ग के लोगों व ऋषियों की हैं। इनकी खुदाई करने से पता चला है कि इन कब्रों में उत्कृष्ट नक्काशीदार सोने और चांदी के कलश, सोने के हत्थे, तलवारों की म्यान आदि हथियार, ढेर सारा सोना, लेसिस तथा कार्नेलियन के गहने व कलात्मक फर्नीचर मिला है। चीन के एक शहर अन्यंग से भी कब्रों में इसी प्रकार के सामान मिले हैं, जो कि संभ्रांत वर्ग के लोगों की कब्रों से ही मिले हैं। यह सामान काफी महंगे होते थे और बाह्य देशों से मंगाये जाते थे। इसी प्रकार महंगे और आयातित सामान कब्रों में गाड़ दिये जाते थे, जिसके कारण धीरे-धीरे यह सामान लुप्त होने लगे और अगली पीढ़ी को बहुमूल्य धातु और पत्थर मंगाने पड़े होंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि संभ्रांत वर्ग के कारण ही बाह्य व्यापार को बढ़ावा मिला।

हड़प्पा में भी बाह्य व्यापार सुचारु ढंग से होता था। यहां के लोगों के अफगानिस्तान, तुर्कमानिया, मेसोपोटामिया आदि से व्यापारिक संबंध थे और ये लोग अपने उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त करते थे। विभिन्न प्रकार की धातु और बहुमूल्य पत्थरों का आयात अधिक मात्रा में होता था। उस समय सिक्कों का प्रचलन नहीं था। यह व्यापार वस्तु-विनिमय पर ही आधारित होता था। हड़प्पावासियों का विदेशी व्यापार बढ़ा और धीरे-धीरे इसके संबंध चीन, मिस्र और बहरीन द्वीप आदि से स्थापित हुए। उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान के भुर्तघई से हड़प्पा बस्तियां मिली हैं, जो यहां व्यापारिक संबंध होने का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं, क्योंकि इन बस्तियों की संरचना हड़प्पा बस्ती जैसी है और यहाँ हड़प्पा की मुहर आदि भी मिली है।

मेसोपोटामिया और हड़प्पा के व्यापारिक संबंध के साक्ष्य अधिक मात्रा में मिले हैं। यहां पुरातत्त्व लेख भी मिलते हैं, जो दोनों के व्यापारिक संबंध होने का साक्ष्य हैं। मेसोपोटामिया के विभिन्न शहरों में सुमेर उर, तेल, अस्मर, किश, उम्मा आदि से सैंधव कारीगरों अथवा उनके प्रभाव से निर्मित वस्तुएं मिलती हैं, जैसे हड्डियों के मनके, मुहरें आदि। मेसोपोटामिया और हड़प्पा के बीच व्यापार जल व स्थल दोनों मार्गों से होता था। हड़प्पा के लिए प्रवेश द्वार का काम उर बन्दरगाह करता था।

मिस्र के साथ हड़प्पा के व्यापारिक संबंध थे और हड़प्पा क्षेत्र के लोथल से दोनों के बीच व्यापार होता था। क्योंकि लोथल से एक गोरिल्ला की मृण मूर्ति और ममी प्राप्त हुई है, जिसे मिस्री सम्पर्क का ही प्रभाव बताया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं। इन सभ्यताओं में बाह्य व्यापार पर्याप्त मात्रा में फला-फूला और विदेशों से उनके संबंध कायम हुए। बाह्य व्यापार में स्थल व जल मार्ग दोनों की ही भूमिका रही। उन सभ्यताओं के आपस में संबंध होने के साथ-साथ अन्य देशों से भी व्यापारिक संबंध स्थापित हुए और अपने उद्योगों के लिए उन्हें कच्चा माल आदि आसानी से उपलब्ध होने लगा।

**प्रश्न 3. मेसोपोटामिया सभ्यता में तांबे की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–मेसोपोटामिया के खेतिहर गांव में 5000 ई.पू. के आसपास तांबे का प्रयोग शुरू हुआ। मेसोपोटामिया के दक्षिण में उबेद संस्कृति के लोग ढलाई कला से परिचित थे। यह ढलाई दिन-ब-दिन जटिल होती चली गई। मेसोपोटामिया के आरम्भिक राजशाही के समय में मन्दिर की मूर्तियां बनाने के लिए दो भागों में विभक्त सांचों का प्रयोग हुआ। इसी तकनीक द्वारा यहां कुल्हाड़ी बनाई जाती थी, जिसमें हत्था लगाने के लिए छेद होता था। तांबे को पीटकर मेसोपोटामिया के लोग ठप्पे आदि बनाते थे, जिनको सैनिक युद्ध के दौरान प्रयोग करते थे, ताकि उनके सिरों की रक्षा हो सके। यहां के लोगों ने आरम्भिक चरणों में मिश्र धातु के रूप में संख्या का प्रयोग करना शुरू किया। परन्तु 2500 ई.पू. के आते-आते यहां मिश्र धातु के रूप में टिन का प्रयोग होने लगा और तांबे में टिन मिलाकर ये लोग कांसा बनाने लगे। इसका प्रमाण है कि सुमेर की खुदाई के दौरान कांसे के ढेर सारे औजार मिले हैं; जो टिन मिलाकर बनाए गए हैं। इससे ऐसा लगता है कि उस समय तक धातुकर्म पर लोगों की पकड़ काफी मजबूत हो गयी थी और अब वे तांबे का प्रयोग भी भिन्न-भिन्न तरीकों से करना सीख गये थे।

मेसोपोटामिया के लोग भी जल्दी समझ गये थे कि पत्थर की अपेक्षा तांबा अधिक लोचदार है और इसको गलाया जा सकता है

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

व इसके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की मनचाही वस्तुएं बनाई जा सकती हैं। इससे धारदार व नोकदार हथियार बनाए जा सकते थे। पत्थर की अपेक्षा भिन्न-भिन्न प्रकार की आरी, कुल्हाड़ी, छैनी, धारदार बसूला बनाया जा सकता था। मेसोपोटामिया के लोगों ने तांबे का प्रयोग अन्य शिल्पों को बढ़ावा देने और औजार बनाकर भी किया जैसे हाथीदांत पर बारीक नक्काशी के लिए तांबे का बारीक सूआ बनाया गया, जिससे हाथीदांत पर नक्काशी आसानी से और सुन्दर ढंग से की जाने लगी। इससे इस उद्योग को आसानी से बढ़ावा मिला, क्योंकि अब कारीगरों का काम पहले की अपेक्षा अधिक आसान हो गया था। इसी प्रकार अन्य उद्योगों में भी तांबे के औजारों के फलस्वरूप बढ़ावा मिला; जैसे भारी कुल्हाड़ी बनाई गई, जिससे बढ़ईगिरी के काम आसानी से किया जाने लगा। चमड़ा काटने के लिए धारदार औजार बनाये गये व अन्य कार्यों के लिए भी बेहतर औजार बनाये गये। इसके अलावा तांबे का प्रयोग मेसोपोटामिया के लोगों द्वारा अन्य उपयोगों में भी किया गया; जैसे तांबे को पिघलाकर या पीटकर इसकी पतली चादर बनाई जाती थी और फिर इस चादर का प्रयोग बर्तन बनाने के लिए किया जाता था। इससे बारीक वस्तुएं भी बनाई जाने लगीं। इस प्रकार तांबे का प्रयोग मेसोपोटामिया के लोगों ने भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए किया, जिससे यह धातु काफी प्रयोग में लाई गई, बाद के समय में तांबे में विभिन्न धातुएं मिलाकर इसका प्रयोग होने लगा। इन धातुओं में मुख्य रूप से संखिया, टिन, सीसा आदि मिलाया जाता था और कांसा बनाया जाता था, क्योंकि यह एक उपयोगी धातु साबित हुई। जब मेसोपोटामिया में मंदिर और महल बनवाने के लिए अधिक औजारों की जरूरत पड़ी, तो कारखानों में कांसे का प्रयोग भी हथियार आदि बनाने के लिए होने लगा, जो कि तांबे का मिश्र रूप था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेसोपोटामिया में तांबे के उपयोग से बहुत-से उद्योगों को बढ़ावा मिला और जैसे-जैसे आवश्यकता बढ़ती गई, वहां के लोगों ने इसमें टिन मिलाकर कांसा बनाया और अपनी आवश्यकता को पूरा किया। विश्व में अन्य जगहों के साथ-साथ मेसोपोटामियाई लोगों ने भी तांबे का प्रयोग जल्द ही सीख लिया और इसकी गलाई, ढलाई व पिटाई में वे निपुण हो गये और जल्द ही उन्होंने विभिन्न वस्तुएं बनाना सीख लिया।

**प्रश्न 4. हड़प्पा सभ्यता में शिल्प उद्योग में किस प्रकार धातुकर्म व प्रौद्योगिकी का प्रयोग हुआ? समझाइए।**

**उत्तर**–मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के दौरान वस्तुएं प्राप्त हुई हैं, उन्हें देखने पर ऐसा लगता है कि यहां उन वस्तुओं को बनाने में अच्छी तकनीक का प्रयोग किया जाता होगा। यहां जो वस्तुएं पाई गई हैं, उनमें कुल्हाड़ी के कुछ टुकड़े और छड़ तथा चूड़ियों के टुकड़े पाए गये हैं। हड़प्पा के शहरी युग तक आते-आते औजारों व वस्तुओं को बनाने की तकनीक अच्छी-खासी प्रगति देखने को मिलती है, क्योंकि यहां जो हाथीदांत मिला है, उसको देखने से ऐसा लगता है कि उस पर जो नक्काशी की गई है, वह इतनी बारीक है कि बिना किसी उत्कृष्ट और नुकीली धातु या छैनी के प्रयोग से वह सम्भव नहीं है। सेलखड़ी से जो गहने और मुहरें बनती थीं, उन्हें बनाने के लिए सेलखड़ी की छड़ी को आरी से काटा जाता था। मोहरों पर नक्काशी करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अच्छी तकनीक से बने औजारों का प्रयोग किया जाता था, जिसमें छोटा सूआ, बरमा और तक्षणी जो सभी नुकीले औजार थे, प्रयोग किए जाते थे। इसके अलावा दैनिक जीवन में भी धातु से बने औजारों का प्रयोग बड़ी मात्रा में किया जाता था। इसमें तांबे को पीटकर बड़े बर्तन आदि बनाये जाते थे। तराजू के पलड़े, मछली मारने का कांटा, उस्तरा, तलवार आदि भी धातु से बनाये गये औजार प्रयोग में लाये जाते थे।

हड़प्पा में धातुकर्म तकनीक ने हथौड़े से ठुकाई, ढलाई, सांचे में ढालना और कभी-कभी मोम को गलाकर ढलाई पद्धति का प्रयोग भी किया जाता था। हड़प्पा में दो धातुओं को एक साथ जोड़ने की तकनीक की भी जानकारी मिलती है। हड़प्पा में शुद्ध तांबे में टिन, सीसा मिलाकर कांस्य बनाया जाता था। हड़प्पा के भिन्न स्थलों से हुई खुदाई के दौरान जो साक्ष्य मिले हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि यहाँ भिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धों का प्रचलन था; जैसे–खुदाई से प्राप्त कताई-बुनाई के उपकरणों, नकली सुई आदि का पता चला और यहाँ कपड़ा उद्योग एक प्रमुख उद्योग रहा होगा। ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ के बुनकर कपड़ों पर कढ़ाई करना भी जानते थे और रंगे हुये वस्त्रों के साक्ष्य भी यहाँ मिलते हैं। धातु में वे सोना, चांदी, कांसा, सीसा, तांबा आदि का प्रयोग करते थे। खुदाई से भिन्न प्रकार के तांबे व कांसे के औजार व गहने मिले हैं। तांबा, कांसा धातु ही यहाँ सबसे अधिक प्रयोग होने वाली धातु थी। ऐसा इस आधार पर कहा जा सकता है कि यहाँ से खुदाई में इन धातुओं के बने उपकरण, मूर्तियां आदि ज्यादा संख्या में मिले हैं। तांबा, कांसा से कृषि सम्बन्धी उपकरण, अस्त्र-शस्त्र, बर्तन, कुल्हाड़ी आदि वस्तुएं मिली हैं। इनका प्रयोग पशुओं और मानव मूर्तियाँ बनाने में भी किया जाता था।

तांबे, कांसे के अलावा यहाँ जो अन्य धातु प्रयोग होती थी, उसमें चांदी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। चांदी से बर्तन, आभूषण भी बनाये जाते थे। सोने से भी गहने आदि बनाये जाते थे। परन्तु सोने का कोई बर्तन वहाँ नहीं मिला है। सीसे के भी कुछ उपकरण मिले हैं। यहाँ धातु को गलाने, उन्हें पीटने, उन पर पानी चढ़ाने की तकनीक हड़प्पा निवासी जानते थे। लकड़ी की बनी वस्तुओं से पता चलता है कि यहाँ बढ़ईगिरी का व्यापार भी होता था। गाड़ी के पहियों तथा तख्तों के अवशेष यहाँ मिले हैं। यहाँ के भवन पक्की ईंटों के बने होते थे, जिससे पता चलता है कि ईंट उद्योग

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



भी अच्छी अवस्था में था और विकसित था। यहाँ के निवासी नाव बनाना जानते थे। हड़प्पा निवासियों ने विभिन्न उद्योग-धन्धों में निपुणता प्राप्त कर ली थी और आभूषण-बर्तन, मूर्ति कला में अच्छी कला-प्रौद्योगिकी प्रयोग करने लगे थे। चहूदडो व लोथल से मनका बनाने के व्यवसाय के साक्ष्य मिलते हैं। यहाँ भट्ठियाँ पायी गई हैं, जिन्हें मनका आदि बनाने आदि के लिए प्रयोग किया जाता होगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिल्प उद्योग में धातु और तकनीक का प्रयोग निपुणता के साथ किया गया था और वे लोग धातुओं के प्रयोग में अच्छी तकनीक का प्रयोग करते थे।

**प्रश्न 5. चीनी सभ्यता में तांबे व कांसे का प्रयोग सामाजिकीय दृष्टिकोण से किस प्रकार हुआ?**

**उत्तर**–चीन में धातुकर्म का विकास पश्चिमी एशिया की अपेक्षा अधिक तेजी से हुआ। इस सभ्यता के प्रथम चरण के आते-आते यहाँ के निवासियों ने तांबे में टिन मिलाने की तकनीक सीख ली थी और कांसा बनाया जाने लगा था। यहाँ ढलाई के साथ-साथ धातु का प्रयोग सांचों द्वारा भिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाकर किया जाने लगा था। यहाँ खुदाई से पता चलता है कि यहाँ अपने पूर्वजों के क्रियाकर्म में उपयोग लाये जाने वाले बर्तन अधिक संख्या में मिले हैं, क्योंकि ये लोग मृतकों के साथ बर्तन रखा करते थे, जो उनके समाज की प्रचलित रीति होगी। तांबे के बने ये बर्तन मिट्टी के बर्तनों के समान ही हैं। चीनी मान्यता के अनुसार सिया राजवंश के संस्थापक ने घनन और चारपाये के गोल बर्तनों की ढलाई शुरू कराई थी। इन सभी पर भिन्न प्रकार की असंख्य आकृतियाँ बनी हुई हैं। शांग शासकों के बाद चीन में यह परम्परा पश्चिमी छाउ प्रांत में शुरू हुई। इस परंपरा का सम्बन्ध शाही बलिदान से था और यह शक्ति और वैधता का प्रतीक मानी जाती थी।

शांग काल में कांसे के बनाये गये बर्तनों के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में उल्लेख मिलता है। ये बर्तन खाना बनाने, परोसने, बर्तन धोने, पानी रखने और अन्य प्रकार से काम आने वाले बर्तन हैं। इनका आकार भी अलग-अलग है और इनके आकारों में जटिलता भी पाई जाती है। बर्तनों पर जो चित्र बनाये गये हैं, वे ढलाई के कारण ही संभव ही हो सके हैं। इस प्रकार चीन से बड़ी मात्रा में खुदाई के दौरान बर्तन प्राप्त हुये हैं। इन्हें प्रयोग करने के बाद जमीन में गाड़ दिया जाता था तथा फिर इनका प्रयोग संभव नहीं था और न ही पुनः इन्हें गलाया जा सकता था, जिससे नये फैशन के अनुसार इन्हें नया रूप दिया जा सके।

ऐसा नहीं कि शांग सभ्यता में औजारों का प्रचलन नहीं था या कांसे के औजार नहीं बनाये जाते थे। परन्तु ये बहुत बड़ी संख्या में नहीं मिले हैं, जिस प्रकार से बर्तन मिले हैं। इसका एक कारण यह रहा होगा कि इन औजारों को गलाकर दूसरी चीजें बनाई जाती थीं। चीन में टिन और तांबा पर्याप्त मात्रा में पाये जाते थे। दोनों को मिलाकर कांसा बनाया जाता था और फिर इससे आनुष्ठानिक क्रिया में काम आने वाले बर्तन बनाये जाते थे।

आनुष्ठानिक क्रियाकलापों में अधिक मात्रा में बर्तनों का प्रयोग किया जाता था, जो कांसे के बने होते थे। इसके प्रमाण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। शांग की रानी के मकबरे में 217 प्रकार के आनुष्ठानिक कलश मिले हैं, जो 21 भिन्न-भिन्न आकारों के बने हुये हैं। इसमें 150 कांसे के हथियार भी मिले हैं। इस प्रकार मकबरे में कुल 1625 किलोग्राम कांसा पाया गया है। इससे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि चीन में कांसे का प्रयोग सामाजिकीय दृष्टिकोण से अधिक मात्रा में किया जाता था।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# लेखन और कलात्मक अभिव्यक्ति

8

## परिचय

यदि हम उस समय की कल्पना करें जब लेखन कला का विकास नहीं हुआ था, तो लोग कैसे अपने विचारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाते होंगे, इसका तरीका शायद मौखिक रहा होगा। यदि आज तक लेखन कला का विकास न हुआ होता तो क्या आज के युग में चलने वाले कम्प्यूटर का आविष्कार होता, यदि होता, तो किसलिए होता। लेकिन हमें यह नहीं सोचना है। हमें तो अब जब लेखन कला अपने चरम पर है, उसके पीछे जरूर सोचना चाहिए कि प्रारम्भ में लेखन कैसा रहा होगा? इसका विकास किस प्रकार हुआ? और विभिन्न सभ्यताओं में किस प्रकार की लेखन पद्धति थी? आइए, इन्हीं प्रश्नों के सम्बन्ध में यहां विचार करें।

लेखन कला का विकास एक बौद्धिक उपलब्धि है। लेखन लिपि चिह्नों की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके माध्यम से सूचना प्रदान की जाती है। इसमें ध्वनि को किसी प्रतीक चिह्न के रूप में व्यक्त किया जाता है और प्रत्येक भाषा के अलग-अलग चिह्न होते हैं।

यहां हम सिर्फ कांस्ययुगीन सभ्यताओं में अभिव्यक्ति किस प्रकार होती थी, उसके सम्बन्ध में जानेंगे। लेखन कला के साथ ही एक नई तकनीक का विकास हुआ। आज एक छोटा बच्चा भी लिख सकता है, क्योंकि आज के समय में पेपर, पेन/पेंसिल आसानी से उपलब्ध है। परन्तु जब ये पेपर पेन/पैंसिल नहीं थे, तब कैसे लोग अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते थे। इसके बारे में यदि हम सुमेर का उदाहरण देखें, तो हम देखते हैं कि यहाँ के लोग मिट्टी की एक नुकीली सुई द्वारा चिह्न अंकित करते थे। इसी प्रकार मिस्र के लोग मन्दिरों-मकबरों की दीवारों पर चित्रलिपि अंकित करते थे। इससे इस बात का अन्दाजा तो लगाया ही जा सकता है कि इस प्रकार का लेखन कार्य कोई बच्चा नहीं कर सकता था। इसे वयस्क लोग ही करते होंगे। जब शुरू-शुरू में लेखन कला का विकास हुआ, तो यह प्रतीक-चिह्नों के रूप में शुरू हुई और इस प्रकार का लेखन कार्य करने के लिए सरकंडे की डंडी का प्रयोग पेपीरस के ऊपर लिखने के लिए किया जाता था। यह पद्धति मिस्र में विकसित हुई। चीन के सम्बन्ध में आरंभिक लेखन कार्य में कछुए के खोल का प्रयोग हुआ। मेसोपोटामिया में यह कार्य गीली मिट्टी पर नुकीली कील की सहायता से प्रारम्भ हुआ। मेसोपोटामिया के अलावा सभी सभ्यताओं में यदि लिपि को देखा जाये तो एक शब्द के लिए एक चिह्न का प्रयोग किया जाता था। मिस्र में यह व्यवस्था चौथी शताब्दी तक चलती रही, वहीं चीन में काफी सुधार के बाद आज भी यही व्यवस्था प्रचलित है। हड़प्पा सभ्यता की लेखन कला उस सभ्यता से काफी आगे है।

सूचना संगृहीत करने के लिए समाज को लेखन की आवश्यकता होती है। सूचना को संगृहीत करने के कई फायदे थे। सूचना संगृहीत करने के बाद राज्य संस्थाएं जटिल विनिमय कर सकती थी और इनमें कई भागीदार भी शामिल हो सकते थे। लेन-देन में भी आसानी होती थी और यह लम्बे समय तक चल सकता था। भण्डारों में आने-जाने वाले सामानों का ब्यौरा रखा जा सकता था। लेखन कला के विकास से दिन और समय का भी हिसाब लगाया जा सकता था। मेसोपोटामिया इस मामले में अति भाग्यशाली रहा कि वहाँ साक्षरता पहले आरम्भ हुई। इसी कारण वहाँ दूसरे क्षेत्रों से पहले गणित, खगोलशास्त्र आदि का विकास हो सका। लेखन कला के विकास से अन्य फायदे भी हुए; जैसे-

- इसके विकास से एक-दूसरे से दूर बैठे व्यक्तियों के बीच सम्प्रेषण सम्भव हो सका।
- लेखन कला के विकास से लिखित आदेश जारी किये जाने लगे।
- राज्य के अधिकारियों की पहचान पत्र लिखकर या मुहर लगाकर की जाने लगी।
- राजनैतिक एकीकरण सम्भव हुआ। क्योंकि स्थानीय सरदारों या मुखियाओं को राजा के समक्ष उपस्थित होने की जरूरत नहीं पड़ती थी। राजा अब उन्हें लिखित आदेश देने लगा।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मेसोपोटामिया के सम्बन्ध में लेखन कला का विकास देखने से लगता है कि लेखन कला का क्रमिक विकास नहीं हुआ। यहाँ के कुम्हार अपने बर्तनों पर जो चिह्न लगाते थे उनमें भी लिपि की विशेषता मिलती है। इनके द्वारा लगाये गये चिह्नों के खास अर्थ होते थे। ये किसी खास कुम्हार या मालिक के प्रतीक चिह्न होते थे। मेसोपोटामिया में लेखन कला के विकास से पहले भी हिसाब-किताब के लिए विभिन्न प्रकार के मिट्टी के छोटे-छोटे चिह्नों का प्रयोग होता था। इन चिह्नों में मुख्य रूप से गोल, पिरामिड, शंकु आदि होते थे। क्योंकि ये उस समय का हिसाब रखने के लिए रहे होंगे, जब भेड़-बकरियों को चराने के लिए बाहर ले जाया जाता था, तो उनकी संख्या याद रखने के लिए इन प्रतीक चिह्नों का प्रयोग किया जाता होगा। क्योंकि गडरिये भेड़-बकरियों को चराने के लिए जब बाहर ले जाते थे तो वे कई-कई महीनों के बाद वापस लौटते थे। इस बीच में कुछ भेड़-बकरियाँ मर जाती थीं और कुछ का जन्म होता होगा। इस प्रकार के हिसाब-किताब के लिए ये लोग इस प्रकार के प्रतीक चिह्नों का प्रयोग करते होंगे।

यही बात मिस्र के सम्बन्ध में सही प्रतीत होती है, क्योंकि जब सैनिक राजा के साथ किसी अभियान पर निकलते थे, तो लकड़ी की बनी गोटियों के विभिन्न आकार के प्रतीक चिह्न दिये जाते थे, जिन पर अंक खुदे होते थे। इन प्रतीक चिह्नों द्वारा यह व्यक्त किया जाता था कि धारक को कब और कितनी खाद्यान्न सामग्री दी जानी है। मिस्र में लेखन कला का सबसे पहले प्रमाण 310 ई.पू. में रंगीन और उत्कीर्ण ठीकरों के रूप में मिलता है। इस लेखन में अक्षर एक-दूसरे ये जुड़े हुए होते हैं और इनमें राजाओं या सरदारों के नाम से या उनके मकबरे के लिए लाए जाने वाले सामानों का विवरण होता था। मिस्र में भी चित्राकार लिपि मिलती है। परन्तु यहाँ से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहाँ यह लिपि देर से शुरू हुई, इस लिपि के साथ हाथीदांत की पट्टियों से मिलते हैं जो कि मन्दिर में दी गई वस्तुओं राजाओं/सरदारों के मकबरे, कब्रों की दीवार से बंधी मिलती है।

आरम्भ में लेखन कला का उपयोग चीजों को पहचानने या उन पर लेबल लगाने के लिए होता था। परन्तु बाद में इसमें एक साथ कई पाठ या लाइनें लिखी जाने लगीं। जिस तरह धीरे-धीरे लेखन कला का विकास होता गया, इसमें पत्र, शोक संदेश, लोगों की आत्मकथाएं आदि भी लिखी जाने लगीं और प्रारंभिक राजशाही से मध्ययुगीन राजशाही के आते-आते कहानियाँ आदि संवाद भी लिखे जाने लगे। मिस्र के साहित्यिक साक्ष्यों में लेखक बनने की प्रक्रिया भी देखने को मिलती है। विद्यार्थियों को मिट्टी के बर्तन और पत्थर के पत्तर पर लिखने का अभ्यास कराया जाता था। क्योकि पेपीरस बहुत महंगा होता था। उन्हें अभिलेखों की नकल करने का अभ्यास, गणित, लेख लिखना आदि सिखाया जाता था।

बाद के समय में ध्वनि चिह्नों और भाषा चिह्नों के माध्यम से पाठ का विकास होने लगा। सुमेरियाई भाषा की ध्वनियों को अब लिखित रूप में ढाला जाने लगा। इस लेखन कला में किसी खास देसी भाषा को लेकर नहीं चला गया। इस समय का लेखन चित्रात्मक होता था, जिसे गीली मिट्टी पर किसी नुकीली चीज (कील जैसी) से उभारा जाता था। इसी कारण इस लिपि को कीलाक्षर लिपि कहा जाता है। यहाँ नुकीली चीज, गीली मिट्टी पर लिखने के लिए जो अधिक प्रयोग होती थी। वह नुकीली सरकंडे की कलम थी। मेसोपोटामिया में भी मिस्र की तरह जैसे-जैसे लेखन कला का विकास होता गया, वैसे-वैसे इसके उपयोग भी बढ़ते गये। शाही परिवार को भूमि हस्तांतरण करने के दस्तावेज का प्रारूप तैयार किया गया। विजय स्तम्भों पर शाही आदेश आदि लिखे जाने लगे। वस्तु पर लेख/अभिलेख लिखे जाने लगे। राजा द्वारा बनाये गये नियमों को अब लिखित रूप दिया जाने लगा। यहाँ तक कि देवी-देवताओं के चिह्नों को भी अब लिखित रूप दिया जाने लगा, जो कि अभी तक मौखिक होता था।

इस प्रकार जो लेखन शुरू हुआ था, उसमें कोई कलात्मक आकर्षण भले ही न हो परन्तु इसे सीखना मुश्किल भरा कार्य था। इसके बावजूद भी यह पश्चिम एशिया के कई देशों में फैला। सीरिया में तटीय राजवंशों से लेकर ओरोन्टो (Oronto) से नदी तक था। अनातोलिया में हिट्टी राजवंश से लेकर आगे तक इसका फैलाव हुआ। कीलाक्षर लिपि के माध्यम से मिस्र और पश्चिमी एशियाई देशों के बीच सम्पर्क स्थापित हुआ और यह सम्प्रेषण का माध्यम बना। इस फैलाव में राजनीतिक कोई भूमिका नहीं रही। लिपि और लेखन का विकास साहित्य की कुछ खास विधाओं के साथ हुआ।

मिस्र में जो लिखावट मिलती है, यदि उसमें हिसाब-किताब रखने वाली लिखावट को देखा जाये, तो यह घसीटकर लिखी जाती थी। परन्तु मिस्र की जो चिह्नात्मक लिपि थी, वह लेखन की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। इसके लिए कागज और गेरू के साथ लाल रंगों का इस्तेमाल भी किया जाता था। मेसोपोटामिया की भांति यहाँ भी सरकंडों के कलम, मोटे-पतले ब्रश और नुकीले रेजर का इस्तेमाल होता था। ये चिह्न आपस में मिले होते थे और उनके आकार एक जैसे होते थे।

2100 ई.पू. के आसपास उर का एक अभिलेख मिला है, जिसमें यहाँ के राजा शुलगी ने यह दावा किया है कि वह एकमात्र राजा है, जो लिखना-पढ़ना जानता है। इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि लिखना राजाओं के विशेषाधिकार के अन्तर्गत आता था और न ही लिखने वालों का कोई वर्ग विशेष तैयार हुआ और न ही राजाओं के बनाने में लेखन का कोई योगदान था। शुलगी की बात का मात्र इतना अर्थ है कि वह अपने आप में सन्तोष व्यक्त करता है कि वह लिख सकता है और उसके जो मंत्र हैं, उनको

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



लिखित रूप दिया जा सकता है और वे स्थायी हो सकते हैं। बाद में उनमें परिवर्तन की सम्भावना कम है।

मौखिक परम्परा से लिखित परम्परा की ओर बढ़ना एक संक्रमण का दौर था। लेखन कला का आविष्कार होने से मौखिक अभियानों का तरीका भी बदला, क्योंकि मौखिक संवाद में वक्ता और श्रोता का आमने-सामने होना जरूरी था, जबकि लिखित संवाद में ऐसा जरूरी नहीं था।

लेखन-कला के विकास से वक्ता को अपने संवाद को व्यक्त करने में आसानी लगी, क्योंकि अब उसको भाषा में उतार-चढ़ाव नहीं करना पड़ता था। लेखन-कला में लिखते वक्त ऐसा जरूरी नहीं है कि किस शब्द को धीरे बोला जाये और किसको तेज, जबकि मौखिक संवाद में यह जरूरी होता है। इसीलिए लेखन कला के विकास से संवाद आसान हुए, क्योंकि अब संवादों को व्यक्त करने के लिए केवल शब्द थे। वर्णक्रम और लिपि व्यवस्था लेखन कला का सबसे आसान तरीका होता है। इसमें स्वर और व्यंजनों को तेजी से लिखा जा सकता है। इस प्रकार किसी भी पाठ का लिखित रूप परम्परागत मौखिक रूप से अलग होता है। इसका एक और परिणाम होता है कि किसी भी देश की जिस भाषा या बोली में महान और विपुल साहित्य की रचना होती है, वह उस देश की  मानक भाषा बन जाती है।

मौखिक और लिखित परम्परा तथा किसी समाज की साक्षरता के बीच क्या सम्बन्ध होता है। यदि इस बारे में विचार किया जाये, तो मेसोपोटामिया के उदाहरण से यह बात सामने आती है कि मौखिक और लिखित परम्परा को अलग-अलग नहीं रखा जा सकता है। साक्षरता प्रारम्भ होने पर भी सभी समाजों में मौखिक परम्परा चलती रही। यह मौखिक परम्परा तो लिपि और लेखन के आसान तरीके विकसित होने के बाद भी जारी रही। बल्कि इस मौखिक परम्परा ने लिखित परम्परा को प्रभावित किया और परिवर्तन भी किया। ऐसा नहीं कि मौखिक परम्परा ने ही लिखित परम्परा को प्रभावित व परिवर्तित किया, लिखित परम्परा ने भी मौखिक परम्परा के साथ ऐसा ही किया। मेसोपोटामिया में जो लिपि और साहित्य परम्परा बनी रही, उसका फायदा यह हुआ कि वहाँ के इतिहास की परम्परा जीवित रही। यह लेखन-कला के विकास से ही सम्भव हो सका कि 2000 ई.पू. के आसपास गिलगमेश की लिखी एक कविता चार शताब्दियों बाद सैकड़ों मील दूर अनातोलिया में फिर से लिखी गयी और उसकी प्रति तैयार की गई और पहली शताब्दी तक इसके संस्करण निकलते रहें। क्योंकि इसी शताब्दी में इसका अन्तिम संस्करण मिलता है। लोगों को लिपि सिखाने के लिए विद्यालयों की स्थापना की गई। इसमें जो अध्यापक पढ़ाते थे। वे आनुवंशिक आधार पर नियुक्त नहीं होते थे। खुदाई से मिले साहित्य के आधार पर इस बात का संकेत मिलता है कि मिट्टी की टिकियों पर लिखा गया साहित्य उन विद्यार्थियों द्वारा लिखा गया है, जिन्हें अभिलेखों की कृतियों की नकल करने की जिम्मेदारी दी गई थी। इस बात का अन्दाजा इस संकेत से भी लगाया जाता है। क्योंकि साहित्य स्रोतों में कई पाठ एक जैसे मिलते हैं, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि कई विद्यार्थियों ने एक ही अभिलेख व कृति की नकल की होगी, क्योंकि इस समय विद्यार्थियों को लेखन कला का ज्ञान इसी प्रकार कराया जा सकता था। साहित्यिक स्रोतों में कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों की चर्चा की गई है। मेसोपोटामिया की लिखित परम्परा ने ही उसे एक सभ्यता के रूप में स्थापित किया। राजनैतिक विघटन के बावजूद कई प्रकार की बोलियाँ मेसोपोटामिया में प्रचलित हुईं, परन्तु लेखन कला जारी रही और धीरे-धीरे यह लिखित परम्परा विद्यालयों और विद्यालयों के पाठ्यक्रम में अपना स्वरूप ग्रहण करती रही।

मौखिक और लिखित संप्रेषण दोनों ही प्रकार के संप्रेषण शाब्दिक होते हैं, जिन्हें व्यक्त करने के लिए शब्दों और भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। एक अन्य संप्रेषण भी होता है और वह होता है छवियों और तस्वीरों/चित्रों द्वारा। मिस्र के मकबरों से इस प्रकार के छवि और तस्वीर संप्रेषण मिलते हैं। ये उस समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, जानकारी उपलब्ध कराने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

हड़प्पा सभ्यता की तस्वीरों और लेखन को जानने के लिए वहाँ पर पाई जाने वाली मुहरों का सहारा लिया जाता है। ये मुहरें शहरी क्षेत्रों में ज्यादा पाई गई हैं। इन मुहरों में अधिकांश मुहरें आयताकार हैं। कुछ वर्गाकार मुहरें भी मिली हैं। इन मुहरों पर जो चित्र बने हैं, उन्हें देखने से ऐसा लगता है कि वे किसी लिपि की पंक्तियां हैं, उन मुहरों पर लगभग सौ प्रकार की तस्वीरें पाई गई हैं जिसमें सबसे अधिक संख्या किसी एक जीव की है। इन चित्रों के आधार पर हड़प्पा सभ्यता की भौगोलिक स्थिति को व्यक्त नहीं किया जा सकता है। कहने का अर्थ यह है कि इन चित्रों के माध्यम से सामाजिक प्रतीक, समूह, वंश, पीढ़ियों आदि का बोध जरूर मिलता है। कम्प्यूटर विशलेषण के माध्यम से यह ज्ञात हुआ है कि इन चित्रों का और हड़प्पा की मोहरों पर किसी लिपि का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं था। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखन और दृश्यात्मक घटक के बीच कोई अपरिहार्य सम्बन्ध होता है।

मोहनजोदड़ो से तांबे की टिकियाँ मिली हैं, जिनकी संख्या लगभग 200 है। इन टिकियों पर एक तरफ बारीक नुकीली चीज से चित्र उकेरे गये हैं, तो दूसरी तरफ कुछ लिखा गया है। इन टिकियों में कई पर एक जैसे चित्र और एक जैसे लेखन देखने को मिलते हैं। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन चित्रों और लेखन में कोई सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। क्योंकि इन तांबे की टिकियों का प्रयोग उस समय इसी प्रकार किया जाता होगा जैसे आज ताबीजों का प्रयोग किया जाता है। ताबीज में तांबे की एक टिकिया होती है और उसके बीच में एक कागज रखा होता है,

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जिस पर पीर का नाम, कोई पवित्र श्लोक, मंत्र आदि लिखकर उस डिब्बी के नीचे रखा जाता है। फिर उसे किसी काले या नीले धागे से बांधकर शरीर के किसी भाग में बांध दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि ये ताबीज बुरी आत्माओं, भूत-प्रेतों से लोगों की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार ये ताबीज हड़प्पा सभ्यता में भी यही भूमिका निभाते होंगे और हड़प्पा में यह अभिव्यक्ति शब्द और चित्रों दोनों के माध्यम से की जाती थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक दृष्टिकोण से मौखिकता और साक्षरता दोनों अलग-अलग नहीं होते।

मेसोपोटामिया के सम्बन्ध में मूर्ति को देखें, तो वहाँ के साहित्यिक स्रोतों में राजा के जो चित्र बनाये गये हैं उसमें राजा को एक विशाल पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। इसके उदाहरण के रूप में हम नरम सिन (Naram Sin) का चित्र देख सकते हैं जो तीसरी शताब्दी का एक महत्त्वपूर्ण राजा था और उसकी सैन्य उपलब्धियाँ बहुत अधिक थीं। नरम सिन का एक अभिलेख मिलता है। उसका यह स्मारक एक पहाड़ी पर कीर्तिस्तंभ के रूप में प्राप्त होता है। इसमें एक या दो पेड़ भी लगाये गये हैं, जो पहाड़ी जंगल को दर्शाते हैं। इसमें सबसे बड़ी प्रभावशाली तस्वीर नरम सिन की है, जो अपने तीर-कमान, कुल्हाड़ी सहित पहाड़ पर चढ़ता हुआ दर्शाया गया है। उसने अपने सिर पर सींगयुक्त मुकुट पहन रखा है, जिसे मेसोपोटामिया में दिव्यता का प्रतीक माना जाता है। इस चित्र में राजा के सैनिक भी कतार में उसके साथ दिखाये गये हैं। नरम सिन के पैर के नीचे शत्रु का शरीर है और लुल्लुबी कबीले के दो लोग उसके पैरों पर गिरकर दया की भीख मांगते दिखाये गये हैं। इससे मेसोपोटामिया में आरंभिक शासकीय वर्ग के उदय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, जो चित्र के द्वारा दर्शाई गई है। यह चित्र सामाजिकीय मान्यताओं को दर्शाता है, क्योंकि इस चित्र के ऊपरी सिरे पर सूर्य के दो प्रतीक चिह्न दिखाई देते हैं। ईरान के राजा ने इस प्रस्तर स्मारक पर नरम सिन के अलावा अपना भी अभिलेख खुदवाया है। इस प्रकार का प्रस्तर स्तम्भ यह दर्शाता है कि स्मारकों और प्रतीकों का व्यापक प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है।

यदि मेसोपोटामिया कला की बात की जाये, तो एक अन्य राजा गुडिया (Gudea) की मूर्ति भी महत्त्वपूर्ण है। यह राजा लगाश में शासन करता था। इसकी प्रतिमा भी एक विशाल पुरुष के रूप में बनाई गई है। इस प्रतिमा को लगाश के प्रमुख मंदिर में स्थापित किया गया है। इस प्रतिमा को मंदिर में रखने का उद्देश्य इसकी पूजा करवाना नहीं था। देवताओं के साथ-साथ राजा की भी पूजा हो सके, इसका अर्थ ऐसा नहीं था। बल्कि राजा गुडिया की प्रतिमा मंदिर में इसलिए रखी गई है, ताकि वह देवता की हर समय सेवा कर सके और देवता को भी यह ध्यान रहे कि उसे गुडिया की रक्षा करनी है।

इसी प्रकार, हड़प्पा सभ्यता से मिली 'पुरोहित राजा' की मूर्ति भी है। हड़प्पा में केवल पुरुषों की प्रतिमाएं पत्थरों पर औपचारिक या स्मरणीय शैली में बनायी गई हैं। मोहनजोदड़ो से मिली इस पुरोहित राजा की पाषाण मूर्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त चर्चा में हमने कांस्ययुगीन सभ्यताओं के विभिन्न और कलात्मक अवशेषों के सम्बन्ध में चर्चा की है और यह जानने का संक्षिप्त प्रयास किया है कि किस प्रकार लेखन कला का विकास इन कांस्ययुगीन सभ्यताओं में हो सका और प्रारम्भिक लेखन किस प्रकार का था। फिर इसका विकास कैसे हुआ और एक लेखक बनने तक की बातों की चर्चा की गई है। प्रारम्भ में विद्यार्थी को किस प्रकार लेखन का ज्ञान कराया जाता था। हमने यह भी जाना है कि प्रारम्भिक लेखन केवल वस्तुओं की पहचान तक ही सीमित था। परन्तु धीरे-धीरे यह लेखन कला वस्तु पहचान से आगे बढ़ने लगी और संवाद और सम्प्रेषण का माध्यम बनी। इसके द्वारा दस्तावेजों को सुरक्षित रखा जाने लगा, जो आने वाली पीढ़ियों के काम आये। किस प्रकार एक हिसाब-किताब से शुरू होकर लेखन कला साहित्य के रूप में विकसित हुई। जब इस लेखन कला का आविष्कार हुआ, तो तपस्वियों, मुनियों द्वारा दिये गये मौखिक उपदेश को लेखन का रूप दिया जाने लगा, जो साहित्य की अमूल्य धरोहर है। लेखन के आविष्कार के बाद मौखिक परम्परा या अभिव्यक्ति का तरीका भी बदला, क्योंकि अब श्रोता और वक्ता आमने-सामने नहीं होते थे, जबकि मौखिक संवाद में ऐसा होना जरूरी था। परन्तु लेखन कला की शुरुआत के बावजूद मौखिक अभिव्यक्ति भी समान्तर चलती रही। लिखित और मौखिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ चित्रात्मक अभिव्यक्ति का भी प्रयोग होता था। लेखन कला के विकास से एक नई प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। आज छोटा बच्चा भी लिख सकता है, परन्तु उस समय ऐसा नहीं था।, क्योंकि उस समय आज पेन/पेंसिल और पेपर उपलब्ध नहीं था। इनकी खोज धीरे-धीरे हुई। आज ये बहुत सस्ते रूप में हमें उपलब्ध होते हैं। यह लेखन के विकास से ही सम्भव हो सका, क्योंकि जैसे-जैसे इसका विकास होता गया, इसके लिए साधन भी जुटाये जाने लगे।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. विभिन्न सभ्यताओं में लेखन के लिए उपयोग किए गये विभिन्न माध्यमों की चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–आज के समय में लेखन कार्य करना आसान व सरल हो गया है, क्योंकि आज के समय में लिखने के लिए उपयोग होने वाली सामग्री आसानी से व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। आज एक छोटा बच्चा भी लेखन कार्य आसानी से कर सकता है। परन्तु जब लेखन कला का विकास इसके आरम्भिक चरण में था और आज

www.neerajbooks.com

की तरह पेपर पेन/पेंसिल का आविष्कार नहीं हुआ था, उस समय लोगों ने लिखने के लिए भिन्न माध्यम अपनाये।

सुमेर के लोग मिट्टी पर एक नुकीली सुई द्वारा चिह्न अंकित करते थे और मिस्र के निवासी मन्दिर, मकबरों की दीवारों और पेपीरस पर चिह्न अंकित करते थे और चित्र बनाते थे। यह कार्य कठिन था। इसे कोई बच्चा नहीं कर सकता था। यह कार्य उस समय के वयस्क पुरुष ही करते थे। मिस्र में पेपीरस पर लिखने के लिए सरकंडे की नुकीली डंडी का इस्तेमाल होता था। चीन मे कछुए के खोल का इस्तेमाल होता था। यह बात बता देना महत्त्वपूर्ण होगा कि जब कछुए के खोल पर देववाणी लिखने की परम्परा भुला दी गई, तो अनुष्ठानों से जुड़े प्रतीक चिह्न भी लुप्त हो गये। इस प्रकार इन चिह्नों का बाद में कोई विकास नहीं हुआ। मेसोपोटामिया में लेखन के लिए गीली मिट्टी का प्रयोग किया जाता था। यहां के निवासी गीली मिट्टी पर एक नुकीली सुई के माध्यम से चिह्न उकेरते थे।

कुम्हारों द्वारा बनाये गये बर्तनों पर लिपि की यह विशेषता देखी जा सकती है। परन्तु कुम्हारों द्वारा बनाये गये बर्तनों के चिह्नों पर कुछ खास निशान ही देखे जा सकते हैं, जो उनके मालिक द्वारा खास अर्थ के लिए लगाये जाते थे। जिस प्रकार आज के समय में धोबी हमारे कपड़ों को पहचानने के लिए चिह्न लगाते हैं और ये चिह्न कभी भी लिपि का रूप नहीं ले सके। लेखन कला के आविष्कार से पहले भी लोगों द्वारा विभिन्न आकार-प्रकार के प्रतीक चिह्नों को सम्प्रेषण का माध्यम बनाया था। इन चिह्नों में मुख्य रूप से पिरामिड, गोल पिरामिड, शंकु आदि होते थे। भेड़-बकरियों की संख्या को याद रखने के लिए मिट्टी की गोलियों को माध्यम बनाया जाता था। क्योंकि जब भेड़-बकरियां गांव से बाहर चरने के लिए जाती थीं तो नर और मादा के अनुसार मिट्टी की गोलियां बनाकर उनका हिसाब रखा जाता था। इससे गडरियों को इनकी संख्या याद रखने में आसानी होती थी। क्योंकि जब गडरिया भेड़-बकरियों को गांव से बाहर चराने के लिए ले जाता था, तो वह कई महीनों बाद लौटता था। इस बीच में कुछ भेड़-बकरियां मर जाती थीं और कई जन्म लेती थीं।

मिस्र में लेखन कला का सबसे पहला प्रमाण रंगीन उत्कीर्ण ठीकरों के रूप में मिला है। मिस्र में चित्रलिपि के लिए हाथीदांत की पट्टियों को माध्यम बनाया गया है, जो कि मन्दिर की दीवारों, सरदारों या राजाओं की मकबरों की दीवारों के पास रखे गये थे। मिस्र में हिसाब-किताब रखने के लिए घसीटकर लिखने की प्रवृत्ति थी, परन्तु मिस्र में चित्रलिपि औपचारिक लेखन की महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका सौंदर्य पक्ष है। इसमें काजल और लाल गेरू के साथ अन्य रंग मिलाकर इसका इस्तेमाल होता था। इसे लिखने के लिए सरकंडों की कलम, मोटे-पतले ब्रुश और नुकीले रेजर का इस्तेमाल किया जाता था। धीरे-धीरे जैसे-जैसे लेखन कला का विकास होता गया। ध्वनि चिह्नों, भाषाचित्रों के माध्यम से लिखित रूप में ढाला जाने लगा। परन्तु अभी तक भी किसी खास देशी भाषा को लक्ष्य नहीं बनाया गया था। मेसोपोटामिया में शब्दों, अक्षरों को गीली मिट्टी की टिकिया पर किसी नुकीली चीज से उकेरा जाता था, जिसे कीलाक्षर लिपि कहते थे। इसके लिए सरकंडे की नुकीली कलम का प्रयोग किया जाता था।

हड़प्पा सभ्यता के लोग भोजपत्र या कपड़े या नष्ट होने वाली किसी चीज पर लिखते थे। हमें हड़प्पा की मुहरों, हाथीदांत की पट्टियों, मिट्टी के बर्तनों पर पुरातात्त्विक अवशेषों पर संक्षिप्त अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि विभिन्न कांस्ययुगीन सभ्यताओं में विभिन्न प्रकार के लेखन के माध्यम का प्रयोग किया गया है। परन्तु लेखन कला के विकास के लिए शुरुआती दौर में ये माध्यम उपयोगी साबित हुए, क्योंकि उस समय की जरूरत और उस समय की आवश्यकता के अनुरूप ये माध्यम सही थे। धीरे-धीरे लेखन कला का विकास होता गया। ये माध्यम भी आवश्यकतानुसार बदलते गये, जिससे एक प्रोद्यौगिकी का जन्म हुआ और लेखन कला के लिए आवश्यक माध्यम जुटाने में यह प्रौद्योगिकी महत्त्वपूर्ण रूप से सफल साबित हुई।

**प्रश्न 2. लेखन के आरम्भिक चरण में जिन विषयों का चित्रण किया गया था, उन विषयों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–चित्रलिपि शुद्ध रूप से चित्र-लेखन पद्धति नहीं है, क्योंकि इन चिह्नों का सम्बन्ध ध्वनियों से भी होता है। मिस्र में चित्रलिपि में लिखे गये चिह्न आपस में मिले होते थे और उनके आधार एक जैसे होते थे। जीवित वस्तुएं पार्श्व रूप में यहाँ दर्शायी जाती थीं और सींग और आँखें सामने की ओर होते थे। कभी-कभी तो इस चित्रकला और चित्रलिपि में अन्तर कर पाना बड़ा मुश्किल होता था। मन्दिर, मकबरों की दीवारों पर चित्रकला और चित्रलिपि के उदाहरण देखने को मिलते हैं। मिस्र में हिसाब-किताब रखने के लिए जो घसीटकर लिखने की प्रवृत्ति थी, वह धीरे-धीरे बदलती गयी और इसके साथ औपचारिक और सौंदर्यप्रधान चित्रलिपि का लगातार प्रयोग होने लगा व इसमें बदलाव भी आया।

लेखन कला के आरम्भिक चरणों में सम्प्रेषण के लिए तीन तरीके अपनाये गये थे, जिनमें थे–लिखित, मौखिक और छवियां और तस्वीर/चित्र आदि। प्रारम्भिक चरण में लेखन के लिए जो चित्र बनाये गये, उनके विषय भिन्न थे। मिस्र के सम्बन्ध में यदि प्रारम्भिक चरण की बात की जाये, तो एक मकबरे पर बने एक चित्र का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें एक चरवाहा अपने पशुओं को हांक रहा है। इस चित्र में ऊपर की ओर दो पंक्तियों में कुछ लिखा गया है, जो कि शाब्दिक व चित्रित सम्प्रेषण का एक साथ उदाहरण प्रस्तुत करता है।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



नारमेर रंग पट्टिका पर भी शाब्दिक और गैर-शाब्दिक सम्प्रेषण का समायोजन देखने को मिलता है, पर यह जटिल है। यह हिराकोनपोलिस से लाया गया था। यहाँ मन्दिर में आनुष्ठानिक कलाकृतियों के साथ मिला है। यह उत्कीर्ण गदा के ऊपरी हिस्से और सजावटी रंगपट्टिकाओं की श्रेणी में आता है।

हड़प्पा सभ्यता में तस्वीरों और लेखन का प्रमुख स्रोत वहाँ पायी गई ढेर सारी मुहरें हैं, जो ज्यादातर बड़े शहरों में पायी गई हैं। यहाँ पर ज्यादातर मुहरें आयताकार बनी हुई हैं। इनमें से कुछ वर्गाकार भी हैं। इन मुहरों पर चित्र बने हुए हैं, जो किसी लिपि की पंक्ति है। इस प्रकार की लगभग 100 तस्वीरें यहाँ से मिली हैं। इन तस्वीरों में सबसे ज्यादा एक शृंगी जीव भी है। हड़प्पा की मुहरों से मिले चित्रों को देखने पर हम कह सकते हैं कि ये वंश, कुल और पीढ़ियों को प्रदर्शित करती हैं।

मिस्र में आरम्भिक काल में जो टिकियां मिली हैं, इन टिकियों पर प्रत्येक पर एक बात लिखी हुई है। इन टिकियों पर मछली-बैल आदि के चित्र बने हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रारम्भिक लेखन कला में विभिन्न विषयों का चित्रण किया गया है। यह चित्र उस समय की लेखन कला को समझने के लिए किया गया था, क्योंकि इस समय तक एक वर्णक्रम या लिपि का विकास नहीं हो सका था और अलग-अलग स्थानों पर लोग अलग-अलग प्रकार के चित्रों द्वारा अपनी बातों और संवादों को एक-दूसरे तक पहुँचाते थे। इन चित्रों में मछली, बैल, तीर आदि के चित्र थे, जिसके द्वारा लोगों को अपनी बात प्रतीकात्मक रूप में कहना आसान हो जाता था।

**प्रश्न 3. मौखिक परम्परा से आरम्भिक लिखित साहित्य में संक्रमण का विवेचन कीजिए।**

**उत्तर**–मौखिक परम्परा द्वारा अपनी बात कहना और लेखन द्वारा अपनी बात कहना दोनों में अन्तर होता है। जहाँ मौखिक रूप में अपनी बात कहा ज्यादा कठिन है, वहीं लेखन द्वारा अपनी बात कहना आसान हो जाता है। क्योंकि मौखिक संवाद द्वारा भाषा के उतार-चढ़ाव का ध्यान रखना पड़ता है, जबकि लेखन में ऐसा नहीं होता है। मौखिक रूप में अपनी बात कहने के लिए वक्ता और श्रोता का आमने-सामने होना जरूरी होता है, जबकि लेखन में यह जरूरी नहीं होता। अब संवाद को शब्दों के माध्यम से आसानी से व्यक्त किया जा सकता था। संवाद के लिए भाषा के सटीक शब्दों का इस्तेमाल किया जाने लगा और भाषा का एक शब्द-भण्डार भी विकसित कर लिया गया। किसी भी पाठ का मौखिक रूप लिखित रूप से अलग होता है। इसका एक फायदा यह भी होता है कि किसी भी देश की जिस भाषा या बोली में महान और विपुल साहित्य की रचना होती है, वह उस देश की मानक भाषा बन जाती है।

मेसोपोटामिया के अन्तर्गत देखा जाये, तो वहाँ जिस समय लिखित और मौखिक परम्परा एक साथ चल रही थी, तो उस समय के कई ग्रन्थों में लय, धुन और छंद की परम्परा जारी रही, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि मन ही मन में पढ़ने की परम्परा काफी बाद में विकसित हुई। प्रारम्भ में साहित्य को बोलकर और लय, धुन और छंद के साथ पढ़ा जाता है, जिससे आज की भाषा में हम तुक मिलाकर पढ़ना कह सकते हैं। अक्कड के सम्राट् सारगॉन की बेटी एनहेडुना जैसे ही अन्य राजकुमार और राजकुमारियों की रचनाओं को छोड़कर मेसोपोटामिया का अधिकांश साहित्य मौखिक होने के कारण बेनाम है, जिसके रचनाकार का कोई नाम नहीं मिलता है। मेसोपोटामिया के आरम्भिक लेखन में कई विशेषताएं हैं, जैसे एक तरह के विश्लेषण और आरम्भिक वाक्य-रचना और लम्बे-लम्बे दुहराव आदि।

मेसोपोटामिया के उदाहरण से इतना तो समझ में आता है कि मौखिक और लिखित परम्परा को अलग-अलग नहीं रखा जा सकता है। लेखन कला का विकास होने पर भी समाज में लिखित परम्परा जारी रही। यह परम्परा अपनी असलियत उस समय भी बनाये हुए थी, जिस समय लिपि का विकास हो चुका था और जिसके कारण लेखन कला आसान हो गयी थी। मौखिक परम्परा इस समय तक भी जारी रही। एक अन्य बात जो महत्त्वपूर्ण है कि लिपि का विकास होने से लेखन आसान हो गया था। उस समय भी मौखिक परम्परा लेखन परम्परा को परिवर्तित और प्रभावित करती रही। मेसोपोटामिया की लिपि और साहित्यिक परम्परा का यह फायदा हुआ कि वहाँ के इतिहास की परम्परा जीवित रही। इस सम्बन्ध में गिलगमेश का उदाहरण देखने से यह बात अधिक स्पष्ट रूप से समझ में आती है। 2000 ई.पू. के आसपास गिलगमेश ने एक कविता लिखी थी। इस कविता को चार शताब्दियों बाद में एनातोलिया में फिर से लिखा गया और इसकी प्रतियां बनायी गयीं और इसके संस्करण निकलते रहे। पहली शताब्दी में इसका अन्तिम संस्करण मिलता है। प्रारम्भ में लोगों को लिपि का ज्ञान कराने के लिए विद्यालयों की स्थापना की गई।

हड़प्पा सभ्यता में कोई भी साहित्यिक परम्परा नहीं मिलती है। इस सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है कि राज्य और सभ्यता का पतन और अन्तःक्षेत्रीय संवाद का अभाव इसका कारण हो सकता है। क्या इसका कारण यह हो सकता है कि हड़प्पा युग में लेखन का बहुत सीमित और उपयोगितावादी प्रयोग होता था।

2100 ई.पू. के आसपास उर के राजा शुलगी ने अपने अभिलेख में दावा किया है कि वही एकमात्र ऐसा राजा है जिसे लिखना-पढ़ना आता है। इस बात से ऐसा अन्दाजा नहीं लगाना चाहिए कि उस समय लिखना केवल राजाओं का विशेषाधिकार था और इस अधिकार का प्रयोग केवल राजा ही कर सकता था। लेखन कला के विकास से लेखन करने वाला कोई वर्ग विशेष तैयार नहीं हुआ और न ही यह किसी एक जगह उत्पन्न हुई शुलगी की बात से तो केवल उसके मन के उद्‌गार के भाव का पता चलता है, जिसमें वह सन्तोष व्यक्त करता है कि उसे लिखना

www.neerajbooks.com

आता है और इस समय यह भी नहीं था कि कोई अन्य व्यक्ति साहित्य नहीं जानता था, क्योंकि वे लोग शायद मौखिक परम्परा में साहित्य की समझ रखते होंगे। इस प्रकार लिखित और मौखिक परम्परा साथ-साथ चली।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि लेखन के आविष्कार से मौखिक परम्परा में भी बदलाव आये। वही मौखिक परम्परा ने लिखित परम्परा को प्रभावित और परिवर्तित किया, क्योंकि लेखन के माध्यम से संवाद जब आसान बन गया, तो मौखिक संवाद एकदम लुप्त नहीं हो गया। इसने भी लिखित परम्परा को प्रभावित किया।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. लेखन कला के विकास से समाज को क्या फायदे हुए? समझाइए।**

**उत्तर**–लेखन कला के विकास से समाज को कई फायदे हुए। पहले विचार व संवाद मौखिक सम्प्रेषण के द्वारा एक दूसरे तक पहुँचाए जाते थे और उनको व्यक्त करने के लिए भी भाषा में उतार-चढ़ाव जरूरी नहीं था। संवादों को व्यक्त करने के लिए अब शब्द थे। बाद में जैसे-जैसे लिपि का विकास हुआ, यह लेखन और भी आसान होता गया। लेखन कला के विकास के वैसे तो कई फायदे उस समय के समाज को हुए। उनमें से प्रमुख फायदों को नीचे दिया गया है-

– व्यापार की दृष्टि से इस लेखन ने सहयोग दिया। अब आने-जाने वाले सामान का ब्यौरा रखा जा सकता था और भण्डार करने के समय उनका हिसाब-किताब रखा जा सकता था।

– गणित और खगोलशास्त्र का विकास भी लेखन के बाद ही प्रारम्भ हुआ, क्योंकि मेसोपोटामिया में साक्षरता सबसे पहले शुरू हुई। इसी कारण गणित और खगोलशास्त्र का प्रारम्भ भी सबसे पहले ही हुआ।

– लेखन के विकास से एक-दूसरे से दूर बैठे व्यक्तियों के बीच सम्प्रेषण सम्भव हुआ, जो मौखिक रूप से सम्भव नहीं था।

– राज्य के कार्यों में भी लेखन कला के विकास से कई फायदे हुए। अब शाही आदेश लिखित रूप में जारी किये जाने लगे। राज्य अधिकारियों की पहचान पत्र लिखकर या मुहर लगाकर की जाने लगी। सिन्धु के मैदानी इलाकों जैसे बड़े क्षेत्रों में राजनैतिक एकीकरण सम्भव हुआ। अब प्रत्येक सरदार या मुखिया को राजा के समक्ष आदेश प्राप्त करने लिए उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं रही। अब राजा लिखित आदेश शाही नौकर द्वारा इन सरदारों या मुखियाओं के हाथ पहुंचा दिया करते थे।

– लेखन कला के विकास से दस्तावेजों को सुरक्षित रखना सम्भव हुआ।

– प्रारम्भ में लेखन का प्रयोग वस्तुओं को पहचानने या उन पर लेबल लगाने के लिए होता था। बाद के समय में इसके साथ-साथ कुछ पंक्तियां भी लिखी जाने लगीं। बाद के समय में इसे अन्य कार्यों के लिए भी प्रयोग किया जाने लगा। जैसे–राजशाही पत्र, शोक संदेश और लोगों की आत्मकथाएं।

– मिस्र में मध्ययुगीन राजशाही के आते-आते कहानियों और संवाद को भी लिखित रूप दिया जाने लगा।

– ऋषि-मुनियों के वचन, जो बहुत बहुमूल्य होते थे और जो मौखिक रूप में दिये गये होते थे तथा जो एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप से पहुंचाए जाते थे, अब उनको लिखित रूप दिया जाने लगा, ताकि आने वाली कई पीढ़ियाँ उससे लाभ उठा सकें।

– लेखन का विकास जैसे-जैसे होता गया, हमें इसमें लेखक बनने की प्रक्रिया भी देखने को मिलती है। मिस्र में विद्यार्थियों को लेखन सिखाने के लिए मिट्टी के बर्तन और पत्थर के पत्तर दिये जाते थे, जिन पर विद्यार्थी लेखन का अभ्यास करते थे, क्योंकि उस समय पेपीरस बहुत महँगा होता था। उन्हें अभिलेखों की नकल करने को दी जाती थी। इसके अलावा उन्हें गणित और लेख लिखना भी सिखाया जाता था।

– मेसोपोटामिया के सम्बन्ध में देखें, तो यहाँ लेखन कला के कई परिवर्तित रूप सामने आते हैं। शाही परिवारों को भूमि का हस्तांतरण करने के लिए दस्तावेज का प्रारूप तैयार किया गया। विजय-स्तम्भों पर शाही आदेश और संदेश लिखे जाने लगे। मन्दिर की मन्नत शिलाओं पर अभिलेख लिखे गये। राजाओं द्वारा बनाये गये नियमों को लिखित रूप दिया जाने लगा। यहाँ तक कि देवी-देवताओं के मन्त्रों को भी अब लिखित रूप दे दिया गया। पेशों, पौधों, जानवरों व खनिजों आदि की सूची बनायी गयी।

– मेसोपोटामिया में 2000 ई.पू. तक आते-आते मिथकों, महाकाव्यों और शौर्यपूर्ण कथाओं तथा लोक कथाओं को लिखित रूप प्रदान किया गया, जो अब मेसोपोटामिया में मौखिक रूप से अपना अस्तित्व बनाये हुए थी।

मेसोपोटामिया में लेखन कला के विकास का एक अन्य फायदा यह भी हुआ कि वहाँ इतिहास और वहाँ की परम्परा जीवित रही, क्योंकि यहाँ हम गिलगमेश का उदाहरण देख सकते हैं, जो हमारी बात को और शक्ति प्रदान करता है कि गिलगमेश द्वारा 2000 ई.पू. में लिखित कविता को चार शताब्दियों बाद एनातोलिया में फिर से लिखा गया और उसकी प्रतियां तैयार की गईं

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



और पहली शताब्दी ई.पू. का इसका अन्तिम संस्करण मिलता है। इस प्रकार हम देखते है कि लेखन के द्वारा ही इतने पुराने साहित्य को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सका।

– लोगों को लेखन सिखाने के लिए विद्यालयों की स्थापना की गई।
– सबसे महत्त्वपूर्ण व अहम् बात यह है कि मेसोपोटामिया की लिखित परम्परा ने ही उसे एक सभ्यता के रूप में विकसित किया। मेसोपोटामिया में जब राजनैतिक विशिष्टिकरण हुआ और वहाँ कई बोलियां थीं। इन बोलियों में भी लगातार परिवर्तन होते रहे। इतना सब होने के बावजूद भी वहाँ लिखित परम्परा जीवित रही। यह लिखित परम्परा वहां के विद्यालयों व विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अपना स्वरूप ग्रहण करती रही और विद्यालयों के लिए एक पाठ्यक्रम का निर्धारण हो सका।

इस प्रकार उपर्युक्त किये गये विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कांस्ययुगीन सभ्यताओं में लेखन कला के विकास के कई फायदे हुए। जहाँ आरम्भिक काल में लेखन का मुख्य रूप वस्तु को पहचानने तक सीमित था। धीरे-धीरे इसका प्रयोग साहित्य को सुरक्षित खने के लिए किया जाने लगा। उस समय लेखन का महत्त्व कितना बढ़ चुका था, यह एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह से समझ में आता है। एक पिता अपने पुत्र से कहता है कि धातु का काम करने से अच्छा है कि लेखन का काम करो, क्योंकि धातु के काम करने वाले व्यक्ति में मछली की तरह दुर्गन्ध आती है। आगे वह कहता है कि नाई बनने से बेहतर काम भी लेखन का ही है। अत: उपर्युक्त उदाहरण के आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय के समाज में लेखन कला के काम में लोगों की रुचि भी बढ़ने लगी थी, जिससे लेखन कला को बढ़ावा मिलता गया। लेखन द्वारा शाही आदेश, पत्र, आत्मकथाएं आदि लिखना संभव हुआ।

**प्रश्न 2. हड़प्पा के धार्मिक विश्वासों में लेखन कला के प्रभाव पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–हड़प्पा की लेखन और तस्वीरों को जानने का हमारे पास प्रमुख स्रोत वहाँ पाई गई मुहरें हैं, जो ज्यादातर बड़े-बड़े शहरों में पायी गई हैं और आयताकार व वर्गाकार रूप में मिलती हैं। हमारे पास उपलब्ध मुहरों में देखने पर लगभग 100 प्रकार की तस्वीरें इन मुहरों पर बनी हुई है। इन मुहरों पर एक ओर तस्वीर बनी हैं, जबकि दूसरी ओर कुछ पंक्तियाँ लिखी गई हैं। इन तस्वीरों में सबसे ज्यादा संख्या किसी जीव की है।

मोहनजोदड़ो में पायी गयी 200 तांबे की टिकियां जो पतली और छोटी हैं। इन तांबे की बनी टिकियों पर (जो तांबे की पतली पत्थर की बनी होती थी) एक ओर किसी नुकीली चीज से कुछ चित्र उकेरे गये हैं। वहीं दूसरी ओर इन टिकियों पर कुछ पंक्तियाँ लिखी गई हैं। इन चित्रों में जानवरों, हाथी, सांड, एक सींगी बैल, पत्ते के वस्त्र पहने व्यक्ति, जिसे शिकारी कहा जाता है, आदि चित्र मिलते हैं। ये टिकियाँ वहाँ धार्मिक प्रयोजन के लिए इस्तेमाल की जाती थीं, जिस प्रकार आज के समय में ताबीज आदि प्रयोग किये जाते हैं। यह माना जाता है कि इन ताबीजों को पहनने से दुरात्माओं या दुष्ट आत्माओं से रक्षा होती है, जो रोग या दुर्भाग्य के बाधक होते हैं। ये व्यक्ति को हानि पहुंचाकर लुप्त हो जाते हैं। इन दुरात्माओं और दुष्ट आत्माओं को दूर भगाने के लिए हड़प्पा में उस समय ताबीजों का प्रयोग किया जाता था। ताबीजों पर एक ओर लिखावट व दूसरी ओर कोई चित्र होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक कार्यान्वयन व धार्मिक विश्वासों में भी लेखन कला हड़प्पा में प्रयोग की जाती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हड़प्पा सभ्यता में धार्मिक विश्वासों में लेखन का प्रयोग किया जाता था और बुरी आत्माओं आदि से रक्षा के उद्देश्य से ताबीज आदि बनाये जाते थे।

**प्रश्न 3. हड़प्पा की लेखन कला पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–हड़प्पा की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। इसीलिए हड़प्पा की लेखन सम्बन्धी जानकारी का पूर्ण ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है। अधिकांश विद्वान लिपि को चित्राक्षर लिपि कहते हैं। इस लिपि में 400 अक्षर ज्ञात हैं। लिपि के चिह्नों को देखने पर उनमें स्पष्टता, विस्तार और विभिन्नता नजर आती है। सामान्यत: यह दायें से बायें लिखी गयी है। कालीबंगा से खुदाई के दौरान दो मृद्भांड ऐसे प्राप्त हुए हैं, जिन पर सैन्धव लिपि के दो लघु लेख जुड़े हुए हैं। इससे यह अन्दाजा लगाया गया है कि लिपि दायें से बायें लिखी जाती थी। इस लिपि की भाषा का अभी तक निर्धारण नहीं हो पाया है, क्योंकि विद्वानों में अभी तक इसे लेकर मतभेद बने हुए हैं। इस मतभेद का प्रमुख कारण इस लिपि का न पढ़ा जाना ही है। कई विद्वानों ने इसे पढ़ लेने का दावा किया है, परन्तु अभी तक किसी को भी प्रामाणिकता नहीं मिल पायी है।

हड़प्पा सभ्यता के भवनों आदि को देखने से इस बात का ज्ञान तो आवश्यक रूप से होता है कि वे ज्यामितीय विधि से अवश्य परिचित रहे होंगे, क्योंकि उनका नगर नियोजन जिस प्रकार था, उससे यह बात सही प्रतीत होती है और भवन-निर्माण योजना के अलावा भार-माप पैमाना, बातों में अद्भुत समानता आदि इस बात की द्योतक हैं। हड़प्पा सभ्यता में जो मुहरें पायी गई हैं। उन पर जो चित्र व लिपि लिखी गई है, उसके आधार पर भी कुछ बातों का ज्ञान होता है। ये चित्र व लिपि के अध्ययन के आधारों पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ये चित्र किसी भौगोलिक विभाजन को प्रदर्शित नहीं करता। यह नहीं कहा जा सकता है कि हड़प्पा के लिए स्थल से कौन-सा चित्र मिला है। अर्थात् किसी स्थल विशेष पर किसी चिह्न विशेष के प्रचलित होने का बोध नहीं होता है। सम्भवत: ये चित्र सामाजिक प्रतीक यानी समूहों, वंशों या कबीलों के प्रतीक थे।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि हड़प्पा सभ्यता में जो लिपि प्रचलित थी, उसके न पढ़े जाने से अभी इस लिपि के सम्बन्ध में

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सही ज्ञान नहीं हो पाया है और सही ज्ञान के अभाव में इस सभ्यता से सम्बधित अभी कई तथ्य उजागर नहीं हो पाये हैं। जैसे यह लिपि पढ़ी जायेगी, हड़प्पा सभ्यता के सम्बन्ध में और नयी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

**प्रश्न 4. शासकीय वर्गों के उदय पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–मेसोपोटामिया की मूर्ति कला को देखने पर वहाँ प्रदर्शित राजा के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। वहाँ प्रारम्भिक राजा को किस प्रकार प्रदर्शित किया गया है। इसके सम्बन्ध में यदि मेसोपोटामिया से सम्बन्धित पुस्तक का अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि आरम्भिक राजवंशीय युग में राजा को एक विशाल पुरुष के रूप में प्रदर्शित किया गया है। मेसोपोटामिया से मिले एक चित्र में अक्कड के राजा नरम सिन का एक प्रस्तर स्तंभ दिखाया गया है, जिसमें प्रदर्शित राजा नरम सिन तीसरी शताब्दी का है और यह राजा सैन्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। नरम सिन के अभिलेख से पता चलता है कि उसका यह प्रस्तर स्तम्भ एक पहाड़ी कबीले लुल्लुबी को पराजित करके कीर्ति स्तंभ के रूप में लगवाया था। इसमें प्रदर्शित पेड़ जंगल को दर्शाते हैं। इस चित्र में सबसे बड़ी और प्रभावशाली तस्वीर नरम सिन की है, जो अपने तीर-कमान और कुल्हाड़ी के साथ पहाड़ पर चढ़ता दर्शाया गया है। उसके सिर पर सींगयुक्त मुकुट है, जिसे मेसोपोटामिया में दिव्यता का प्रतीक माना जाता था। नरम सिन पहाड़ पर चढ़ता दर्शाया गया है। साथ ही उसके सैनिक भी दो कतारों में पहाड़ों पर चढ़ रहे हैं। नरम सिन के पैर के नीचे शत्रु का शरीर है और इसके अलावा लुल्लुबी कबीले के दो लोग उसके पैरों में गिरकर उससे क्षमा-याचना कर रहे हैं। यह प्रस्तर स्तम्भ सिप्पर (Sipper) शहर में स्थापित किया गया था, जो शहर लुप्त हो चुका है। इस चित्र में ऊपरी हिस्से में दो सूर्य के चित्र भी दिखाये गये हैं। यह प्रस्तर मूर्ति ईरान शहर के सूसा से खोजी गई है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि नरम सिन के बाद जिस राजा ने मेसोपोटामिया पर कब्जा किया, वह ही इसे वहाँ ले गया होगा। ईरान के इस राजा ने नरम सिन के अलावा अपना एक अभिलेख इस प्रस्तर स्तम्भ पर खुदवाया था।

इस प्रकार, इस प्रस्तर स्तंभ का इतिहास यह बताता है कि स्मारकों और प्रतीकों का व्यापक प्रभाव दर्शकों पर पड़ता था। राजा के विशाल रूप को प्रदर्शित करके राजा की शक्ति को दर्शाया गया है। साथ ही राजा के शक्ति रूप के साथ-साथ धार्मिक विश्वासों को प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य उदाहरण देखने से इतिहास के शासकीय वर्ग की उदय की बात और अधिक स्पष्ट होती है।

एक राजा गुडिया जिसने लगाश पर शासन किया था। उसकी प्रतिमा भी एक प्रभावशाली पुरुष के रूप में प्रदर्शित की गई है। इस प्रतिमा को कठोर काले और प्राकृतिक रूप से चमकीले पत्थर डायोराइट पर प्रदर्शित किया गया है। इसका दाहिना हाथ पूरी तरह प्रतिमा से जुड़ा हुआ है। इस पूरी प्रतिमा के सम्बन्ध में यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि यह प्रतिमा नक्काशी का बेहतरीन नमूना है। सिर के एक निश्चित अनुपात में बांह और छाती की मांसपेशियां और उस पर पहनाया गया वस्त्र और पतली-पतली अंगुलियां चलाकर भी बेहतरीन कलाकारी का नमूना प्रदर्शित करती है। इस प्रतिमा की खास बात यह है कि एक ओर तो इस प्रतिमा में राजा गुडिया को साधारण रूप में दिखाया गया है, वहीं दूसरी ओर इसे देखने पर शाही लिबास में एक मजबूत और आदर्श राजा की छवि को प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार मांसपेशियां शक्ति प्रदर्शन और शारीरिक सामर्थ्य अपने आप में एक मुद्दा नहीं है। राजा के हाथ बंधे हैं और उसे प्रार्थना की मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। चेहरे पर सौम्यता और दीन भाव है। इस प्रतिमा को लगाश के एक प्रमुख मन्दिर में स्थापित किया गया था। इसलिए नहीं कि लोग इसकी पूजा कर सकें, बल्कि इसलिए कि राजा गुडिया सदैव अपने देवता के पास रहकर उसकी सेवा कर सके और देवता को भी सदैव यह ध्यान रह सके कि उसे राजा गुडिया की रक्षा करनी है।

हड़प्पा के मोहनजोदड़ो से भी एक 'पुरोहित राजा' की सिर तक की प्रतिमा मिली है। यह भी विशाल रूप में है। मोहनजोदड़ो में मिली इस प्रतिमा के सम्बन्ध में भी विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है। कि प्रारम्भ में राजा को एक विशाल रूप में प्रदर्शित करके उसके शक्ति प्रदर्शन को ध्यान में रखा जाता था। परन्तु धार्मिक विश्वासों का, जनता में उनकी आस्था का भी ध्यान रखा जाता था। नरम सिन की प्रतिमा के ऊपर सूर्य का प्रदर्शन और गुडिया राजा की प्रतिमा को मन्दिर में स्थापित करना धार्मिक विश्वासों को ही प्रदर्शित करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रारम्भ में शासकीय कर्म के उदय के समय राजा का शक्तिशाली होने के साथ-साथ धार्मिक विश्वास और जनता की भलाई आदि की ओर ध्यान आवश्यक होता था।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# सामाजिक ढांचे की पुनर्संरचना

# 9

## परिचय

कांस्ययुगीन समाजों में कैसा सामाजिक ढांचा था? राज्य का उदय और राजत्व की अवधारणा, दैवी राजा और राजत्व का स्वरूप आदि बिन्दुओं की इस अध्याय में चर्चा की गई है। इस अध्याय में कांस्ययुगीन सभ्यताओं में समाज और उसके विकास के सम्बन्ध में चर्चा की गई है।

कांस्य युग की सामाजिक संरचना को परिभाषित करने के लिए हमें मेसोपोटामिया के प्रमाणों पर निर्भर रहना पड़ता है, क्योंकि मेसोपोटामिया से ही तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. के लिखित टिकियाएँ मिली हैं, जो बहुत अधिक संख्या में हैं और यह उस समय के समाज के सम्बन्ध में जानने के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इस मिट्टी की लिखित तिथियों से हमें उस समय के समाज के सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है-

– उस समय के एक प्रभारी अधिकारी द्वारा समाज में वितरित करने का ब्यौरा मिलता है।
– बस्तियाँ बसाने का विवरण भी इनसे पता चलता है।
– एक अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारी इन स्रोतों से मिलती है, वह यह है कि तीसरी सहस्राब्दी से यूफ्रेटस और इसकी शाखाएं पश्चिम की ओर चली गईं, इसीलिए आज जिस क्षेत्र में जमकर खेती होती है, उस क्षेत्र में कांस्ययुगीन स्थलों को नुकसान नहीं पहुँचा। इसी सम्बन्ध में मिस्र की समिति अलग थी और नील नदी क्षेत्र के सम्बन्ध में भी यह बात बिल्कुल अलग थी। नील नदी में भी तेज बाढ़ें अक्सर आया करती थीं और उनके तट डूब जाया करते थे। इसीलिए इन घाटियों के प्राचीन शहर बचे रहने की संभावना कम है। परन्तु सिन्धु क्षेत्र की शाखा जो सरस्वती नदी का सबसे छोटा हिस्सा थी। यह नदी हड़प्पा युग के तुरन्त बाद सूख गयी। इस कारण पाकिस्तान के निचले हिस्से में आज तक कई पुरातात्त्विक टीले बने हुए हैं।

मेसोपोटामिया के सम्बन्ध में विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 3000 ई.पू. में इसकी अर्थव्यवस्था में सामुदायिक और निजी दो प्रकार के क्षेत्र थे, जिसका नियन्त्रण स्वयं राज्य करता था। सामुदायिक हिस्से में ग्रामीण लोग रहते थे और यहां अभी तक वंश परम्परा व कबीलाई परम्परा प्रचलित थी। निजी सम्पत्ति की अवधारणा अभी यहां विकसित नहीं हुई थी। लिखित प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि संभ्रांत वर्ग के लोग जमीन खरीदते थे और ये निजी तौर पर इसके मालिक बन जाते थे।

जमीनें शासक वर्ग और उच्च पदाधिकारी वर्ग भी खरीदता था और इसका भुगतान वह खाद्यान्न, कपड़ा, मछली, तेल और तांबे की बनी वस्तुओं के रूप में करता था और इस सम्बन्ध में जो अनुबंध होता था, उसे पत्थर आदि पर अंकित किया जाता था। जो सामुदायिक जमीनें होती थीं, उन्हें निजी हाथों में बेचना या हस्तांतरित करना आमतौर पर प्रचलित नहीं था। उस समय के शाही अभिलेखों से हमें जानकारी प्राप्त होती है कि लोगों को शहर, मन्दिर या जमीनों पर मजदूरी करने के लिए वंश या कुल के आदेशानुसार जाना होता था। इस समय में भूमि का आज की तरह पंजीकरण या सरकार द्वारा जमीन के आंकड़े या हिसाब-किताब रखने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। राज्य के क्षेत्र में मन्दिर और महल आते थे व इनकी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भी राज्य को ही नियन्त्रण करना पड़ता था, क्योंकि ये ईश्वर, राजा, शासकों की सम्पत्ति माने जाते थे। मेसोपोटामिया में जो लेख मिले हैं, उनके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि मेसोपोटामिया के मन्दिरों के पास बहुत अधिक जमीन होती थी और साथ ही साथ ये पशुपालन भी करते थे तथा इनके पास पशुओं की भी बहुत अधिक संख्या होती थी। शाही महलों के पास भी बहुत जमीन होती थी, जो ग्रामीण समुदायों से खरीदी गई होती थी। इस प्रकार की शाही जमीन पर खेती किसानों द्वारा शासकों के लिए की जाती थी। जमीन के उत्पादन और पशुओं का हिसाब-किताब रखा जाता था। मन्दिर और महलों में कृषि कार्य करवाने के अलावा अन्य काम; जैसे–आटा पीसने, रोटी बनाने का काम भी करवाया जाता था। इस सम्बन्ध में कोई जानकारी वहां लिखित या पुरातात्त्विक स्रोतों से नहीं मिलती है कि कृषकों को किसी प्रकार का कर भी राज्य को देना पड़ता था और यदि यह कर देना पड़ता था, तो वह

किस रूप में राज्य द्वारा लिया जाता था–अनाज के रूप में या फिर किसी अन्य प्रकार से। इतना तो अवश्य पता चलता है कि लोग राजा और ईश्वर के लिए बेगार करते थे। कभी-कभी मन्दिर पर चढ़ावा चढ़ाना भी अनिवार्य होता था। इस समय राज्य-निर्माण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था, इसी कारण अभी तक कोई स्थायी सेना की अवधारणा विकसित नहीं हो पाई थी। युद्ध के समय लोगों को युद्ध के लिए इकट्ठा कर लिया जाता था। इस बात का सही अन्दाजा नहीं लगाया जा सका है कि ये सब कर के रूप में राज्य सेवाएं लेता था या नहीं।

महल के कारखानों में कपड़ा, हथियार, चमड़े के सामान, काँसे के औजार आदि बनते थे। महल एक बार में कम से कम 400 लोगों को कच्चा माल, भोजन, कपड़ा आदि मुहैया करता था। तैयार माल महल में रखा जाता था। व्यापारी राजा के प्रतिनिधि के रूप में ही होते थे। सामानों पर राजा की निजी मुहर लगी होती थी। इस प्रकार महल के कारखानों में जो माल तैयार किया जाता था, उसमें मजदूर लगे होते थे। इन मजदूरों को मजदूरी के बदले में राज्य द्वारा नगदी धन की जगह अनाज दिया जाता था। जैसे–आटा, रोटी, ऊन, मछली आदि वस्तुओं के रूप में मजदूरी दी जाती थी और मजदूरों को इस मजदूरी को हर महीने दिया जाता था। प्रत्येक मजदूर की मजदूरी भुगतान की सूची होती थी। इस सूची में बच्चे, बूढ़े और महिलायें शामिल होती थी। उसी के अनुसार उनकी मजदूरी की दर तय की जाती थी।

राजा और उसके परिवार और सैनिक अधिकारी, महल व उसकी जमीन, मन्दिर की सम्पदाओं, पशुओं, कारखानों आदि पर अपने अधिकार का दावा रखते थे। ये मजदूरी नहीं करते थे, करवाते थे। उनके दफनाने में धन खर्च होता था। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि उस समय के समाज में कहीं-न-कहीं वर्ण संरचना मौजूद थी, परन्तु अभी तक इसका रूप अधिक विकसित नहीं था। इस प्रकार यह तो कहा जा सकता है कि वंश या कुल पूरे समाज पर अपना दबदबा रखता था। कबीले और वंश आधारित समूहों में जमीन के लिए युद्ध नहीं होता था। यदि कोई संभ्रांत वर्ग अपना दावा शक्ति के साथ करता था, तो इसके सम्बन्ध में निर्णय राजा और अधिकारी लेते थे। प्रचलित कानूनों के मुताबिक अपराधी को दण्ड दिया जाता था।

मिस्र में जमीन के स्वामित्व निर्माण की जो परम्परा थी, वह मेसोपोटामिया से भिन्न थी। मिस्र में सम्राट् या राजा को फैरोह कहा जाता था। जब फैरोह मरता था, तो उसके लिए पिरामिड या कब्रगाह बनवायी जाती थी और धीरे-धीरे इन मृतक राजाओं की पूजा होने लगी व उनके लिए भूमि आरक्षित कर ली गई। इस प्रकार की पूजा के लिए पुजारियों को नियुक्त किया जाने लगा और उनके ऐशो-आराम की सभी चीजें वहां उपलब्ध कराई जाती थीं। इस प्रकार, संभ्रांत लोग अनुष्ठान में मिली भूमि की कमाई पर ही आश्रित थे। इस जमीन पर काम करने वाले खेतिहर मजदूरों को इस भूमि को छोड़कर बाहर जाने की अनुमति नहीं थी।

पिरामिडों को बनाने में अधिक संख्या में मजदूरों को लगाया जाता था, क्योंकि इस पिरामिडों का निर्माण कार्य 20 वर्षों में पूरा हो सका। इसी प्रकार चीन के शहर चेंग चाऊ शहर की सुरक्षा के लिए दीवार बनाई गई और इस कार्य में भी भारी संख्या में मजदूरों को लगाया गया था। शांग दैव अभिलेख से पता चलता है कि एक सैनिक अभियान में लगभग 13000 पुरुषों को युद्धबन्दी बनाया गया था। इसमें से कुछ युद्धबन्दी शाही परिवार की सेवा में लगाये गये और सम्भवतः इन्हीं युद्धबन्दियों द्वारा इस दीवार को बनवाया गया होगा। इस प्रकार राज्य में इस प्रकार के बड़े निर्माणों में राज्य का हाथ रहा होगा। यही बात हड़प्पा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है कि हड़प्पा के शहरों की योजना में भी राज्य का हाथ रहा होगा। प्राचीन समय में जहाँ-जहाँ नियोजित बस्तियां मिलती हैं। वहां इस बात का पता चलता है कि सड़कों की योजना का विकास धीरे-धीरे नहीं, बल्कि एक खास समय में हुआ। कई मामलों में बस्ती फिर से बसाने के कारण भी ऐसा हुआ। यदि यह बात स्वीकार कर ली जाये, तो हड़प्पा के शहरों के बारे यह तर्क विश्वसनीय लग सकता है कि हड़प्पा के शहरों की ईंटों के आकार इसलिए एक जैसे नहीं हैं, क्योंकि कोई कड़ा प्रशासन नियन्त्रण नहीं था। इसका अर्थ चाहे जो हो, परन्तु इतना तो सत्य प्रतीत होता है कि लोगों को व्यापक पैमाने पर ईंट बनाने के लिए नियुक्त किया जाता होगा। इसी संदर्भ में हड़प्पा के विभिन्न स्थलों से मिले एक ही जैसे तांबे-कांसे के बर्तन मिले हैं। इसी प्रकार हड़प्पा के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि हड़प्पा के विभिन्न स्थलों पर सड़कों और नालियों के निर्माण का कार्य राज्य द्वारा किया जाता होगा। यदि कृषि से सम्बन्धित सुविधाओं के सम्बन्ध में देखा जाये, तो यह बात सामने आती है कि राज्य के पास कृषि सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव था; जैसे–सिंचाई आदि। राज्य के पास व्यापक स्तर पर सिंचाई करने का प्रबन्ध नहीं था। मिस्र में भी यही बात सामने आती है। यहां भी जनता सिंचाई का प्रबंध स्वयं करती थी। मध्य युग से लेकर आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरण तक प्राचीन इराक में भी कबीलाई लोग अपने मुखिया के सुझाव पर नहरों को साफ करने व नहरें खोदने का काम किया करते थे, ताकि नदी का पानी इन नहरों से खेतों तक पहुंच सके।

इन जो नये राज्यों का विकास हो रहा था, उनमें स्वायत्त कबीले, शिकारी और संग्रहकर्त्ता आदि समूह रहते थे। मेसोपोटामिया शहर मारी के अभिलेखों से पता चलता है कि सिंचाई वाले इलाकों में गडरियों के आवागमन पर नजर रखी जाती थी। कभी-कभी उसे नियन्त्रित भी किया जाता था, क्योंकि ये चरवाहे कभी उपयोगी तो कभी नुकसानदायक साबित हो सकते थे।

नौकरशाही व्यवस्था के सम्बन्ध में कांस्ययुगीन समाज में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अभी तक जो

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



दस्तावेजों या अभिलेख मिले हैं, उनके आधार पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वहां नौकरशाही व्यवस्था थी और अगर नौकरशाही व्यवस्था थी, तो किस प्रकार की थी। परन्तु नौकरशाही वहां होने का अनुमान अवश्य लगाया जाता है। कांस्य युगीन सभ्यताओं में नौकरशाही के अन्तर्गत सब लोगों को खास काम पर लगाया जाता था। ये वेतनभोगी अधिकारी थे। मिस्र के मकबरों से मिले लेखों को पढ़ने से पता चलता है कि एक बड़ा अधिकारी कई उपाधियां रखता था। ये केवल मानद उपाधियां थीं।

कांस्ययुगीन समाज में राज्य ऐसे समाज से उदित हुए थे, जिनमें उत्पादन सम्बन्ध नातेदारी पर निर्भर था। यहां कोई मुद्रा अर्थव्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। कानून बनाने और क्रियान्वित करने के लिए कुछ ही संस्थाएं थीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शासक ज्यादातर अपनी प्रजा के साथ अपने सम्बन्धों पर निर्भर करता था अर्थात् एक शासक के लिए यह जरूरी था कि उसके प्रजा के साथ सम्बन्ध कैसे होने चाहिए। वह दैविक पवित्रता और आनुष्ठानिक कार्यों के आधार पर अपनी श्रेष्ठता को साबित करता था, न कि अपने विशेषाधिकारों और आर्थिक विशेषाधिकारों के बल पर। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कांस्ययुगीन शासक अपनी शक्ति का प्रयोग संसाधनों की अपेक्षा अपनी प्रजा पर अधिक करते थे।

कांस्ययुगीन समाज में दैविक राजत्व की अवधारणा के सम्बन्ध में भी यहां चर्चा की गई है। इस सम्बन्ध में यह बताया गया है कि मिस्र और मेसोपोटामिया में कई विद्रोह हुए। उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुए और इन युद्धों में कई राजाओं को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। नृशास्त्री *वेबस्टर* का कहना है कि दैवी या पवित्र राजत्व का अर्थ यह नहीं होता है कि आरम्भिक राजा एकदम दैवी व्यक्ति होता था या राजनैतिक व्यवस्था पूरी तरह से धार्मिक थी या फिर दैवी राजत्व के कारण उसकी शक्ति का वर्चस्व और युद्ध करने की सामर्थ्य बेमानी हो गए थे। वेबस्टर महोदय इस बात पर बल देते हैं कि यह जो कर्मकाण्डीय और आनुष्ठानिक व्यवस्था बनी हुई थी, इसके पीछे राजा का दूसरा चेहरा होता था। यह नहीं कहा जा सकता की शाही शक्ति का स्रोत धर्म था, क्योंकि शक्ति दूसरों में श्रम को नियंत्रित और नियमित करने से आती है। इसके लिए सैन्य शक्ति और दूसरों को दबाकर अपनी बात मनवाने की ताकत होनी चाहिए।

आरम्भिक राजाओं के शक्ति के सम्बन्ध में देखने से पता चलता है कि उनके पास नाममात्र की फौज हुआ करती थी। भूमि और पानी की सिंचाई के सम्बन्ध में उनके पास बहुत कम अधिकार थे। राजा के साथ दैवी अवधारणा विकसित करने और उसमें दैवी गुणों को बताने के पीछे समाज के टकराव का हाथ होता था। जिस समय में टकराव ज्यादा होता था। राजा अपने को उतना ही दैवी गुणों से युक्त होने का प्रदर्शन करता था, ताकि वह अपनी आलोचना से बचा रहे। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि मिस्र में राजा को फैरोह कहा जाता था। इस शब्द की उत्पत्ति मिस्र के एक मूल शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है विशाल घर। दो ताजों को बारी-बारी पहनकर फैरोह ने मिस्र को एकीकृत किया। उसे होरस या बाज का अवतार माना जाता था। जब उसकी मृत्यु होती थी, तो कहा जाता था कि बाज क्षितिज की ओर उड़ गया। पुरानी राजशाही के समय तक मिस्र के राजाओं ने अपने को विभिन्न देवी-देवताओं से जोड़कर कई उपाधियां धारण कीं और वे इस दैवी राजत्व की अवधारणा को बनाये रखने के लिए अनुष्ठान आदि किया करते थे। परन्तु उन्होंने कभी भी अपने को ईश्वर घोषित नहीं किया और प्रजा के उनको ईश्वर नहीं मानती थी।

मिस्र मे पिरामिड का निर्माण घाटी के एक छोर पर राजधानी मेमफिस के पश्चिमी मरुस्थल में पश्चिम दिशा में हुआ है। ये पिरामिड बहुत विशाल हैं। इनमें राजा की कब्र के साथ-साथ उनके दैनिक जीवन में काम आने वाले व अन्य बेशकीमती सामानों को रखा जाता था। इन सामानों में तांबे के बर्तन, सोने के बर्तन, उस्तरा, चाकू, पत्थर की मूर्तियां, फूलदान, हीरे, चांदी के जेवरात आदि रखे जाते थे। कुछ पिरामिडों को लुटेरों द्वारा लूट भी गया है। इसी प्रकार चीन में मृतक के शरीर के साथ आनुष्ठानिक कलशों आदि को रखा जाता था, जिनका प्रयोग बलि से जुड़े अनुष्ठानों और भोजों में भी होता था। इन कलशों के ऊपर जानवरों के चित्र बने होते थे, जो वास्तविक और काल्पनिक चित्र होते थे। ऐसा माना जाता था कि इन्हीं जानवरों की सहायता से राजा स्वर्ग तक पहुंचता है और अपने पूर्वजों के सम्पर्क में आता है। वास्तविक रूप से पशुओं और मनुष्यों की बलि दी जाती थी।

मिस्र, मेसोपोटामिया, हड़प्पा और चीन सभ्यताओं में जब कांस्ययुग समाप्त हुआ, तो इन सभ्यताओं में बदलाव आया। उत्तरी और मध्ययुगीन में पश्चिमी चाऊ ने जो शांग के पश्चिमी पड़ोसी थे और शांक्सी प्रांत में शक्तिमान थे। शांग को हराकर 1122 से 771 ई.पू. तक शासन किया। यहाँ से भी पूर्वज आराधना के अनुष्ठानों और काँस्य कलश ढाले जाने के प्रमाण मिलते हैं और पहले से चली आ रही मूर्तिकला और शाही परम्परा के तरीके भी जारी रहे। परन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि शासक स्वयं हड्डियों पर नक्काशी नहीं करते थे। इन कलशों पर अभिलेख खुदे हैं। वे अभिलेखों की तुलना में विस्तृत हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य लेखन की प्रवृत्ति में तेजी आयी।

क्रीट के द्वीप में मिस्र और भूमध्य सागरीय यूरोप से तालमेल के कारण एक केन्द्रित राज्य-व्यवस्था जो महल में केन्द्रित होती थी और एक लेखन कला का विकास हुआ। तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. में बहरीन द्वीप का सुमेर और दक्षिणी एशिया के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हुआ। और बहरीन द्वीप के सुमेर के साथ स्वतंत्र सांस्कृतिक सम्पर्क भी स्थापित हुआ। यहाँ शहरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कांस्ययुगीन सभ्यताओं के बाद हड़प्पा के सम्बन्ध में जो परिवर्तन हुए, वे उल्लेखनीय हैं। परन्तु कुछ चीजें ऐसी थीं, जो अभी भी पहले से चली आ रही परम्पराओं के अनुरूप चलती रही। इन परम्पराओं में लोक-परम्पराएं ज्यादा थीं, जो कांस्य युग के बाद भी चलती रहीं। हड़प्पा सभ्यता अचानक समाप्त हो गई और बाद के साम्राज्य निर्माण में इस सभ्यता की कोई भूमिका नजर नहीं आती है। क्योंकि जब हड़प्पा के बाद भारतीय साम्राज्य निर्माण की ओर बढ़ा, तो इसकी लिपि ब्राह्मी हो गयी। हड़प्पा की लिपि चित्रात्मक थी और इसे भारतीय सभ्यता ने ग्रहण किया। प्राचीन और मध्ययुगीन समाजों में हमें हड़प्पा से भिन्न प्रकार की जल-निकास प्रणाली देखने को मिलती है। इस समय ऊर्ध्वरूपीय व्यवस्था पानी न रिसने वाली चीनी-मिट्टी की नालियां बनायी गई थीं। इसका विकास पहली शताब्दी ई.पू. में गांगेय प्रदेश में हुआ। इन्हें मोहनजोदड़ो की खुदी नालियों से बेहतर और स्वच्छ माना गया था। सिन्धु घाटी से जुड़ी चमकीले लाल कर्नेलिपन मनकों से बने नक्काशीदार गहने और उससे जुड़ी कला भी समाप्त हो गयी। हड़प्पा युग के समाप्त होने के साथ ही ओमान, बहरीन और मेसोपोटामिया से होने वाला समुद्री व्यापार तथा बड़े शहर भी नष्ट हो गये। ऐसा प्रतीक होता है कि लोग फिर से गाँवों में जाकर रहने लगे। इन सब परिवर्तनों के बाद भी कुछ चीजें ऐसी होती हैं, जो बाद में समय तक चलती रही और जिन्हें हड़प्पा की देन माना जाता है। 2000 ई.पू. की बनी पहिए वाली गाड़ी मिली है। ठीक उसी प्रकार का एक नमूना 500 ई.पू. में भी प्राप्त हुआ है। इसके बहुत वर्षों बाद तक हाल तक सिन्ध में जिस प्रकार की बैलगाड़ी का प्रयोग किया जाता था, वह लगभग उसी प्रकार के नमूने पर आधारित है। क्या यह बैलगाड़ी हड़प्पा युग की ही देन है।

पश्चिमी एशिया में कांस्ययुगीन युग में मन्दिर और महल-केन्द्रित राजव्यवस्था थी। इस व्यवस्था के पतन का अध्ययन जलवायु परिवर्तन, भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट, बाढ़ आदि के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। परन्तु अब इन तर्कों की मान्यता समाप्त हो चुकी है और अब यह पता चल चुका है कि अतीत में प्राकृतिक आपदाएं आती रहती थीं और संस्कृति व सभ्यताएं इसके बावजूद भी कायम रहीं।

इन राजनैतिक व्यवस्थाओं और लौह युग के शुरू होने में भी परस्पर सम्बन्ध दिखाई देता है, क्योंकि हम देखते हैं कि भूमध्यसागर से ईरानी पठार तक 1200 से 1000 ई.पू. के बीच अन्य धातुओं के साथ-साथ हमें लोहे के सामान बनाने के साक्ष्य मिलते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। व्यापारिक मार्गों के अधिक होने और सागरवासियों के पूर्वी भूमध्यसागर और अन्दरूनी हिस्से की ओर सामूहिक रूप से स्थानान्तरण की कुछ क्षेत्रों में टिन मिलना बन्द हो गया होगा और मजबूरन इन्हें कांसे की जगह लोहे का इस्तेमाल करना पड़ गया होगा। जब लोगों ने अयस्क से लोहा प्राप्त करने की प्रक्रिया जान ली तो लोहे का प्रयोग जोरों से शुरू हुआ और लोहा जमीन के ऊपरी हिस्से में काफी मात्रा में उपलब्ध था, जबकि टिन दुर्लभ धातु बन चुका था। महल अर्थव्यवस्थाओं को इसे प्राप्त करने के लिए बहुत दूर नहीं जाना पड़ता था। अब गाँव में भी लोहे का उत्पादन छोटे स्तर पर शुरू हुआ। इस प्रकार पश्चिमी एशिया की कांस्ययुगीन महल केन्द्रित अर्थव्यवस्थाओं का अन्त हुआ और कांसे की जगह अब लोहे ने लेनी शुरू कर दी।

सागरवासी (सी पिपल्स) के भूमध्य क्षेत्र में अचानक आ जाने से और उनके लूटपाट से अनातोलिया, सीरिया और फिलिस्तीन आदि क्षेत्रों को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। इनकी लूटपाट से शहर नष्ट हो गये। कांस्ययुगीन शहरों के विनाश और शहरों की अर्थव्यवस्थाओं और राजवंश व्यवस्थाओं आदि का विनाश हुआ। ये लुटेरे स्वयं शासन करने में असमर्थ थे और शहरों के नष्ट होते ही लोग गाँव की ओर लौटने लगे व कृषि जीवन फिर से शुरू किया। समय के साथ सीरिया, फिलिस्तीन आदि क्षेत्रों में कई कबीलाई व्यवस्थाएं उभरीं।

जहाँ तक इस सम्बन्ध में मिस्र का प्रश्न है, तो मिस्र ही एकमात्र ऐसा देश था, जो इस आक्रमण को झेलने में सफल रहा। मेसोपोटामिया भी इस आक्रमण से बचा रहा, मिस्र और मेसोपोटामिया देवकुल, लेखन कला, लेखन परम्परा, स्थापत्य और मूर्तिकला प्रथम शताब्दी ई.पू. तक चलती रही।

कांस्ययुग में मेसोपोटामिया को कई आक्रमणों का सामना करना पड़ा। लौह युग में शासक वर्ग की शक्ति और धन में कृषि और शिल्प उत्पादन और व्यापार गतिविधियों पर अपेक्षाकृत कम निर्भर था। अब सेना की सहायता से लूटपाट की जाती थी और प्रजा के द्वारा उत्पादन पर यह शासकीय वर्ग निर्भर होता चला गया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हमने कांस्ययुगीन सभ्यताओं के समाज के सम्बन्ध में चर्चा की। इस समय वर्ग-निर्माण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था, जिसे हम भूमि स्वामित्व पर आधारित वर्ग समाज नहीं कह सकते। इस समय राजा और संभ्रांत वर्ग के लोगों का एक समूह अवश्य दिखलाई पड़ता है। इस समय राजा अपनी प्रजा से सम्बन्ध स्थापित करते थे और अपने राजत्व को दैवी राजस्व के रूप में प्रदर्शित करते थे। कांस्य युग के बाद चारों सभ्यताओं में परिवर्तन देखने को मिलते हैं। लोहे का प्रयोग होने लगा। पश्चिम एशिया में महल केन्द्रित कांस्ययुगीन अर्थव्यवस्थाओं की जगह अब लोहे ने ले ली थी। गाँव स्तर पर भी कम मात्रा में लोहे का उत्पादन शुरू हुआ।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. मेसोपोटामिया और मिस्र की सामाजिक संरचना का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–मेसोपोटामिया की सामाजिक संरचना जानने के लिए वहाँ से मिले तीसरी शताब्दी की लिखित टिकियों से पता चलता है,

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जो उस समय के समाज के सम्बन्ध में जानकारी देने का मुख्य स्रोत है। इन टिकियों के आधार पर उस समय की जानकारियां मिलती हैं। इन टिकियों पर अनाज का मासिक वितरण का ब्यौरा मिलता है। पुरातात्त्विक बस्तियाँ बसाने की व्यवस्था का पता भी इन टिकियों से चलता है। रूसी विद्वान *आई. डियानोनॉफ* के अनुसार मेसोपोटामिया की अर्थव्यवस्था (3000 ई.पू.) के सम्बन्ध में बताया गया है कि इस समय की अर्थव्यवस्था में भूमि के दो प्रकार के क्षेत्र मौजूद थे–(1) सामुदायिक, (2) निजी क्षेत्र। सामुदायिक क्षेत्र में ग्रामीण लोग रहते थे। यहां अभी तक कबीलाई और वंश परम्परा जीवित थी, क्योंकि निजी स्वामित्व की अवधारणा का विकास अभी तक नहीं हो पाया था। तीसरी शताब्दी के दस्तावेजों के आधार पर पता चलता है कि कुछ संभ्रांत वर्ग के लोगों ने जमीन खरीदी थी और वे इसके निजी तौर पर मालिक हुआ करते थे। उस समय विक्रेता जमीन बेचा करते थे और वह उनके पदाधिकारियों द्वारा खरीदी जाती थी। इस प्रकार के अनुबन्ध को पत्थर पर अंकित किया जाता था। आमतौर पर खाद्यान्न, कपड़ा, मछली तेल और कभी-कभी तांबे की वस्तुओं द्वारा जमीन का मूल्य चुकाया जाता था। समाज में जमीन के हस्तान्तरण के बाद कुछ अनुष्ठानों का प्रचलन भी था, जैसे–तेल डालना, दीवार पर कील ठोंकना और सभी विक्रेताओं को भोजन कराना आदि।

राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मन्दिर और महल की अर्थव्यवस्था शामिल थी, जो ईश्वर व राजा की सम्पत्ति होती थी। मेसोपोटामियाई मन्दिरों के पास ढेर सारी जमीन और पशु होते थे। इसी प्रकार महल के पास भी ये चीजें होती थीं। जमीन व पशुधन का हिसाब रखा जाता था और मन्दिरों और महलों में आटा पीसने और रोटी बनाने का भी काम किया जाता था। यहां भेड़ की ऊन से गर्म कपड़े बनाये जाते थे। इसके अलावा धातु-पत्थर और दूर-दराज से मंगाए गये शंख से शिल्पकृतियां बनायी जाती थीं।

इस बात का प्रमाण नहीं मिलता है कि लोगों को कर आदि भी देना होता था। यदि यह कर देना होता था, तो वह किस रूप में दिया जाता था–नगद या अनाज के रूप में। इतना जरूर पता चलता है कि लोग राजा और ईश्वर के लिए बेगार करते थे। बेगार से यहां अर्थ है बिना मजदूरी लिए मजदूरी करना और कभी-कभी मन्दिर में चढ़ावा चढ़ाने की अनिवार्यता भी देखने को मिलती है तथा लोगों को युद्ध के लिए ले जाया जाता था, क्योंकि अभी तक कोई स्थायी सेना वहां नहीं थी। परन्तु ये सब कर रूप में कराया जाता था। अन्य किसी कारण से ऐसा प्रमाण वहां नहीं मिलता है।

महल बहुत बड़े होते थे। स्रोतों की जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महल के कारखानों में कपड़ा, हथियार, चमड़े का सामान और कांसे के औजार बनते थे। महल एक बार में कम से कम चार सौ लोगों को कच्चा माल और भोजन उपलब्ध कराते थे। उत्पाद महल में रखा जाता था और व्यापारी राजा के प्रतिनिधि के रूप में व्यापार करते थे। सामानों पर राजा की निजी मुहर हुआ करती थी। इस काम के बदले मजदूरों को मजदूरी नकद धन के स्थान पर अनाज के रूप में जाती थी।

मिस्र में सामाजिक ढाँचा कांस्ययुगीन समाज के सम्बन्ध में जानने के लिए वहां से मिले पुरातात्त्विक स्रोतों के आधार पर ही समझा जा सकता है। मिस्र में जमीन के स्वामित्व की अवधारणा मेसोपोटामिया से अलग थी और मिस्र में सम्राट् या राजा को फैरोह कहा जाता था। फैरोह के लिए पिरामिड या कब्रगाह, मंदिर आदि बनवाये जाते थे। इन मृतक राजाओं की पूजा के लिए जमीन सुरक्षित कर ली जाती थी। इस पूजा पद्धति को सुरक्षित रखने के लिए पुजारियों को नियुक्त किया जाता था। इन पुजारियों के लिए सभी प्रकार के सामानों का प्रबन्ध किया जाता था। इस प्रकार मेसोपोटामिया से भिन्न मिस्र में संभ्रांत जन अनुष्ठान में प्राप्त भूमि की कमाई पर आश्रित होते थे। इस भूमि पर काम करने वाले खेतिहर मजदूरों को इस भूमि से अलग जाने की इजाजत नहीं होती थी। मिस्र में पिरामिड बनवाने में भी बहुत संख्या में लोगों को लगाया जाता था और यह कार्य कई वर्षों तक चला था। राज्य के पास कृषि सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव नजर आता है राज्य के पास व्यापक स्तर पर सिंचाई करने की कोई सुविधा नहीं थी। मिस्र की जनता स्वयं सिंचाई का प्रबंध करती थी। इसी प्रकार मेसोपोटामिया में भी कबीलाई लोग अपने सरदार के आह्वान पर नहरों को साफ करते थे और नई नहरें को खोदते थे, ताकि नदियों का पानी इन नहरों द्वारा आसानी से घरों तक पहुंचाया जा सके।

कांस्ययुगीन समाज में नौकरशाही के सम्बन्ध में सही प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि नौकरशाही का निर्माण हो चुका था या नहीं। नौकरशाही में सब लोगों को एक खास काम दिया जाता था और उनके आदेश और पदों की एक श्रृंखला बनायी जाती थी। मिस्र के अधिकारियों के मकबरों के अभिलेख पढ़ने से पता चलता है कि एक पदाधिकारी कई-कई उपाधियां रखता था। कांस्य युग के राज्य एक ऐसे समाज से उदित हुए थे, जिनमें उत्पादन सम्बन्ध नातेदारी पर निर्भर था। यहां कोई मुद्रा व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। कुछ संस्थाएं थीं जो कानून बनाने और क्रियान्वित करने का कार्य करती थीं। इसका अर्थ यह है कि शासक वर्ग अपनी प्रजा के साथ सम्बन्ध बनाने पर अधिक जोर देते थे। राजा अपनी विशेष स्थिति आर्थिक विशेषाधिकारों की अपेक्षा दैविक पवित्रता और आनुष्ठानिक कार्यों के आधार पर अपनी श्रेष्ठता साबित करता था।

कांस्ययुगीन सामज में सामाजिक ढाँचा मुख्यत: जमीनी सम्बन्धों के सम्बन्ध में दिखाई देता है। मेसोपोटामिया और मिस्र दोनों में सामाजिक ढाँचा भिन्न-भिन्न प्रकार का था और जमीनी सम्बन्ध भी भिन्न-भिन्न प्रकार के थे। जहां हमें मेसोपोटामिया में जमीनी सम्बन्ध दो प्रकार के दिखाई देते हैं–सामुदायिक और निजी। वहीं मिस्र में यह राजा के मकबरे व पिरामिड के आधार पर बने दिखाई

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



देते हैं। मजदूरी नकद न देकर अनाज रूप में दी जाती थी। कर सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

**प्रश्न 2. पिरामिडों पर एक टिप्पणी लिखिए और बताइए कि आप इस वक्तव्य से सहमत हैं या नहीं कि कांस्ययुगीन शासक अपनी शक्ति का प्रयोग संसाधनों की अपेक्षा अपनी प्रजा पर अधिक करते थे।**

**उत्तर**–मिस्र में अधिकांश पिरामिडों का निर्माण घाटी के एक छोर और राजधानी मेमफिस के नजदीक पश्चिमी मरुस्थल में सूर्यास्त की दिशा में हुआ है। चौथे राजवंश के खुकु द्वारा गीजा में पिरामिड बनवाया गया। यह पिरामिड बहुत विशाल है, जो अन्य बने सभी पिरामिडों में विशाल है। इसका आधार चौकोर है और इसे 12.5 एकड़ भूमि में बनवाया गया है। इस पिरामिड की ऊंचाई 481 फीट या 144 मीटर है। इस महान पिरामिड को बनाने के लिए चूने के पत्थरों का प्रयोग किया गया है। इस पिरामिड के भीतर जमीन से 16 मीटर ऊपर कई कक्ष और गलियारे बने हुए हैं। इसमें राजा का कक्ष भी शामिल है प्राचीन लुटेरों द्वारा इस पिरामिड को लूटे जाने के साक्ष्य मिलते हैं, जिसमें लुटेरों ने सम्राट् की लाश और जो चढ़ावे इसमें थे, सब लूट लिये थे। गीजा के अन्य पिरामिडों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्त्येष्टि के समय चढ़ाए गए चढ़ावों में तांबे के बर्तन, सोने के बर्तन, उस्तरा और चाकू, पत्थर की मूर्तियां, सेलखड़ी के फूलदान, सुगंधियों की छोटी बोतलें, मैलेकाइट, गोमेद जड़े चांदी के जेवर आदि पाये गये हैं।

इस प्रकार के पिरामिड बनवाने के पीछे क्या उद्देश्य रहा होगा, इस सम्बन्ध में इतना अवश्य जान पड़ता है कि इस तरह के ढाँचे बनवाने का उद्देश्य फैरोह (सम्राट्) की मृत्यु के बाद भी उसके शरीर को सुरक्षित रखना और उससे प्रसन्न रखना था। परन्तु इसके पीछे अन्य कारण भी थे। जीवन के हर मोड़ पर अनुष्ठानों को महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। जब फैरोह मरता था, तो उसका स्थान लेने के लिए उसके उत्तराधिकारियों में होड़ छिड़ जाती थी और इसके परिणामस्वरूप असन्तोष व विद्रोह होते थे। इस समय मृत्यु से जुड़े अनुष्ठान, जैसे–शव को धोना, चढ़ावा चढ़ाना, शव यात्रा निकालना, पशु की बलि देना और अन्त में पिरामिड को बन्द करना आदि थे। ये अनुष्ठान सम्पन्न कराने के लिए एक अनुष्ठान विशेषज्ञ की सहायता ली जाती थी और राजा का उत्तराधिकारी भी शायद इसमें शामिल होता था। ये अनुष्ठान राजत्व के दैवी स्वरूप और निरन्तरता की अभिव्यक्ति थे। इससे जनता के समक्ष एक वृहद् परिदृश्य प्रस्तुत किया जाता था। इसके बाद मृत राजा की पूजा शुरू कर दी जाती थी। उसे नियमित रूप से चढ़ावा चढ़ाया जाता था। इतने बड़े विशाल पिरामिड को बनाने के पीछे कारण यह भी रहा होगा कि यह पिरामिड अधिक ऊंचा बनाया जाये, ताकि सूर्य की पहली किरण उस पर पड़े और राजा उसे नमस्कार कर सके। यह उस दैवी स्वरूप का भी निर्धारण करता था कि फैरोह स्वर्ग पहुंच सके और एक तारा बन जाये।

पिरामिड बनवाने के पीछे हमें धार्मिक अनुष्ठानों को बनाये रखना और प्रजा में यह सन्देश देना कि राजा दैवी उत्पत्ति है, कारण नजर आते हैं, राजा के बाद आने वाले उत्तराधिकारियों में युद्ध आदि न हो।

कांस्ययुगीन शासक अपनी शक्ति का प्रयोग संसाधनों की अपेक्षा अपनी प्रजा पर अधिक करते थे। यह बात सही है क्योंकि इस समय के शासक अपनी विशेष स्थिति आर्थिक विशेषाधिकारियों की अपेक्षा दैवी पवित्रता और आनुष्ठानिक कार्यों के आधार पर अपनी श्रेष्ठता साबित करते थे जो सीधे प्रजा से जुड़े कार्य होते थे।

उन नवनिर्मित राज्यों में जो अभिलेख, हिसाब-किताब आदि रखने के स्रोत मिले हैं, उनके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि यहां नौकरशाही का विकास हो चुका था। नौकरशाही में सब लोगों को खास काम दिया जाता है और उनमे पद तथा आदेशों की एक श्रृंखला बनती है। इसमें वेतनभोगी अधिकारी होते हैं, जो कि बिना अपने निजी सम्बन्धों का ध्यान रखते हुए कार्य करते हैं। इस प्रकार की नौकरशाही के अभिलेखीय साक्ष्य यहां से नहीं मिलते हैं। मिस्र के मकबरों के अभिलेख पढ़ने से पता चलता है कि यहां का एक पदाधिकारी कई बड़ी उपाधियां रख सकता था; जैसे–मुहरधारी, दो खजानगारों का संरक्षक या एक मित्र आदि। ये किसी राज्य के कार्य हेतु दिये गये नाम नहीं थे, बल्कि ये उपाधियां थीं। कांस्ययुगीन समाज में कोई मुद्रा अर्थव्यवस्था नही थी। यह वस्तुओं के लेन-देन पर ही निर्भर था।

इस बात का कोई प्रमाण इन राज्यों से नहीं मिला है कि गांव के लोगों को किस प्रकार कर देना पड़ता था। यहां कोई कर व्यवस्था थी या नहीं, यदि कोई कर व्यवस्था थी, तो उसका स्वरूप क्या था। कर किस प्रकार लिया जाता था। यह नकद या फिर अनाज के किस रूप मे लिया जाता था। इतना जरूर पता चलता है कि लोग ईश्वर व राजा के लिए कार्य करते थे, जिसे बेगार कहा जाता है। बेगार का अर्थ होता है बिना अपनी मजदूरी लिए मुफ्त में मजदूरी करना। परन्तु यह कर के रूप में कराया जाता था या फिर अन्य किसी उद्देश्य से, यह भी स्पष्ट नहीं हैं। कभी-कभी मन्दिर में चढ़ावा चढ़ाना जरूरी होता था। राज्य के पास कोई स्थायी सेना नहीं थीं, क्योंकि राज्य-निर्माण अभी अपने आरम्भिक चरण में था। युद्ध के समय युवा लोगों को जुटा लिया जाता था। महल के कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को मजदूरी नकद न देकर अनाज के रूप में दी जाती थी।

कबीले और वंश-आधारित समूह आपस में जमीन के लिए नहीं लड़ सकते थे, न ही एक-दूसरे के बदले की बात कर सकते थे। यदि कोई शक्ति सम्पन्न संभ्रांत अपना दावा करता था, तो इस बात का निर्णय राजा और उसके पदाधिकारी करते थे। अपराधी को कानून के अनुसार दण्ड दिया जाता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**प्रश्न 3. विभिन्न प्रारम्भिक सभ्यताओं में दफनाने की प्रथा पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–मेसोपोटामिया, मिस्र, हड़प्पा और चीन सभ्यताओ में दफनाने की प्रथाओं में अन्तर था। परन्तु कुछ जगहों पर कुछ सामान्य बातें दफनाने के सम्बन्ध में एक जैसी भी थीं।

मेसोपोटामिया में दफनाने की प्रथा के सम्बन्ध में जानने के लिए हमें उस शहर की शाही कब्रों के सम्बन्ध में जो जानकारी है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि मृतकों के साथ कई प्रकार के महंगे सामान और कारीगरी से पूर्ण सामान रखे जाते थे। शाही कब्रों के विश्लेषण से पता चलता है कि मृतक के साथ काफी मात्रा में सोना, चांदी, बहुमूल्य पत्थर और सीप की कलात्मक कृतियां आदि भी दफनायी जाती थीं। यहां कई तरह के धार्मिक अनुष्ठान भी मृतक के लिए किये जाते थे। यहां तक कि इन शाही मृतकों के साथ सुरक्षा सैनिक, संगीतज्ञ और नौकर-चाकरों को भी दफना दिया जाता था।

मिस्र में दफनाने की प्रथा अन्य सब सभ्यताओं से भिन्न थी। यहां मृत राजा की कब्र पर पिरामिड बनाये जाते थे, जो बहुत विशाल होते थे। मिस्र में अधिकांश पिरामिडों का निर्माण घाटी के एक छोर और राजधानी मेमफिस के नजदीक पश्चिमी मरुस्थल में सूर्यास्त की दिशा में हुआ है अर्थात् पश्चिम दिशा में हुआ है। यहां बना गीजा का पिरामिड बहुत विशाल और भव्य है, जिसे राजा खुफु ने बनवाया था। यह पिरामिड 12.5 एकड़ भूमि में बना हुआ है। यदि ताजमहल से इसकी तुलना की जाये, तो ताजमहल की नींव आधार 186 फीट है, जबकि इस पिरामिड का आधार 755 फीट है। इस पिरामिड की ऊंचाई भी बहुत है, जो कि 481 फीट या 144 मीटर है। जबकि यदि कुतुबमीनार की ऊंचाई देखी जाये, तो यह 238 फीट है। इन पिरामिडों में राजा को दफनाया जाता था। मिस्र से मिले पिरामिडों में राजा के मृतक शरीर के साथ तांबे के बर्तन, सोने के बर्तन, उस्तरा और चाकू, पत्थर की मूर्तियां, फूलदान मैकेलाइट और गोमेद से जड़े चांदी के जेवरात मिले हैं। इस प्रकार ये विशाल पिरामिड बनवाने के पीछे मिस्रवासियों का एक उद्देश्य था-मृतक शरीर को सुरक्षित रखना और राजा को प्रसन्न रखना। मृत्यु के समय कुछ अनुष्ठान भी किये जाते थे; जैसे-शव को धोना, चढ़ावा चढ़ाना, शव-यात्रा निकालना, पशु बलि देना और अन्त में पिरामिडों को बन्द करना आदि। ये सब अनुष्ठान किसी अनुष्ठान विशेषज्ञ द्वारा सम्पन्न कराये जाते थे। इस प्रकार के अनुष्ठान विशाल पिरामिड बनाने का उद्देश्य था। राजा के दैवी स्वरूप और निरन्तरता को बनाये रखना। मृत राजा की पूजा की जाती थी। उसे नियमित रूप से चढ़ावा आदि चढ़ाया जाता था। पिरामिडों को ऊंचा इसलिए बनाया जाता था या लाल सूर्य की पहली किरण इस पिरामिड पर पड़ सके और मृतक राजा उसे नमस्कार कर सके। इस प्रकार राजा स्वर्ग पहुंच जाता था और तारा बन जाता था।

चीन में दफनाने की प्रथा में मृतक शरीर के साथ आनुष्ठानिक कलशों आदि को रखा जाता था। चीनी लोगों का विश्वास था कि बुद्धिमान और गुणवान लोग सब-कुछ जानते हैं और उनमें एक प्रकार की दूरदृष्टि होती है। यही व्यक्ति अनुष्ठानों के दौरान आत्माओं की स्थिति का निर्धारण करते हैं और इन बुद्धिमान और गुणवान लोगों की पहुंच स्वर्ग तक होती है। शांग शासक इसी प्रकार के माने जाते थे। वे स्वर्ग तक गये और वहां से पृथ्वी तक कई विभिन्न अनुष्ठानों से जुड़ी प्रार्थनाएं और गीत अपने साथ लेकर आये। चीन में आनुष्ठानिक कांस्य कलशों का भी प्रयोग किया जाता था। इसके ऊपर कई जानवरों के चित्र बने होते थे, जिनमें कई वास्तविक और काल्पनिक होते थे। ऐसा माना जाता था कि इन्हीं जानवरों की सहायता से राजा स्वर्ग पहुंचते थे। पशुओं की बलि दी जाती थी और इन कलशों को मृत राजा के शरीर के साथ दफनाया जाता था।

हड़प्पा से तीन कक्षों वाला एक विस्तृत कब्रिस्तान मिला है। इससे पता चलता है कि मृतकों को पूर्ण रूप से दफनाने की प्रथा थी। यहां के अध्ययन से पता चलता है कि शवों को खुले मैदान में जंगली जानवरों के खाने के लिए छोड़ दिया जाता था। इसके बाद बची हुई हड्डियों का अन्तिम संस्कार किया जाता था। इसे आंशिक शवाधान कहा जाता था। हड़प्पा कब्रों की खुदाई के फलस्वरूप पता चला है कि शवों के सिर उत्तर-दक्षिण दिशा में रखे जाते थे। यहां शवों को दफनाने की प्रथा प्रचलित थी; परन्तु कहीं-कहीं इसका अपवाद भी देखने को मिलता है। कहीं-कहीं शवों को दफनाने की प्रथा में सिर और पैर की दिशा भी बदल दी जाती थी। एक अन्य प्रकार की प्रथा भी शवाधान के लिए प्रचलित थी, जिसे दाह कर्म कहा जाता था। इस दाह कर्म विधि में शवों को जलाकर उसकी बची हुई भस्म को घड़ों में रखकर समाधियों में गाड़ दिया जाता था। इन घड़ों में दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएं भी रखी जाती थीं, जिनमें बर्तन, आभूषण आदि होते थे। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि यहां के लोग मरने के बाद भी जीवन में विश्वास रखते थे। सामान्य तौर पर एक कब्र में एक ही व्यक्ति को दफनाया जाता था। परन्तु कहीं-कहीं दो शवों या तीन शवों को भी एक साथ दफनाया गया है, जो इस बात की ओर संकेत करता है कि शायद यहां सती प्रथा का भी प्रचलन था।

इस प्रकार, विभिन्न सभ्यताओं (मिस्र, मेसोपोटामिया, हड़प्पा और चीन की) में शवाधान की विधियां अलग-अलग थीं। जहां मिस्र में बड़े-बड़े पिरामिड बनाये जाते थे और मृत राजाओं के शरीर को इसमें रखा जाता था और उसके साथ अन्य सामान भी रखे जाते थे। बाद में इनकी पूजा भी की जाती थी। वहीं मेसोपोटामिया में भी और चीन व हड़प्पा में भी शवों के साथ जेवरात व दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुएं रखी जाती थीं। हड़प्पा सभ्यता

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



के लोग इस सामान को शवों के साथ इस कारण रखते थे कि शायद मृत्यु के बाद भी जीवन है। अन्य सभ्यताओं से भिन्न हड़प्पा सभ्यता में एक से अधिक शव एक साथ दफनाये जाने का प्रमाण मिलता है, जिसके आधार पर विद्वान यह मानते हैं कि हड़प्पा में शायद सती प्रथा प्रचलित थी। चीन में भी कलशों को शवों के साथ रखा जाता था और धार्मिक अनुष्ठान आदि किये जाते थे।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. कांस्ययुगीन समाज में दैवी राजत्व की क्या अवधारणा थी? समझाइए।**

**उत्तर**–किसी कबीले का सरदार या मुखिया वही जाना जाता है, वैसे ही औजारों का प्रयोग करता है, जैसा कि उसके अधीनस्थ करते हैं, तो उसे यह साबित करने के लिए कि वह उनका नेता है, तो कुछ सामाजिक शिष्टाचारों का सहारा लेना पड़ता है।

कांस्य युग में मिस्र में और मेसोपोटामिया में कई विद्रोह हुए उत्तराधिकार के लिए युद्ध भी हुए। इसी के आधार पर दैवी राजत्व की अवधारणा को व्याख्यायित किया जा सकता है। नृशास्त्री विद्वान *वेबस्टर* ने यह बताया है कि दैवी राजत्व के सम्बन्ध में यह नहीं समझना चाहिए या फिर वे स्वयं को ईश्वर नहीं मानते थे। इस समय के राजा को कर्मकाण्ड और अनुष्ठान करते थे और अपने को दैवी व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित करते थे। इसके पीछे इन राजाओं का दूसरा चेहरा भी होता था। दैवी राजत्व के सम्बन्ध में यह भी नहीं माना जा सकता। शक्ति का स्रोत धर्म था। शक्ति दूसरों को नियन्त्रित और नियमित करने से आती है। इसके लिए सैन्य शक्ति और दूसरों को दबाकर अपनी बात मनवाने की ताकत होनी चाहिए।

आरम्भिक राजाओं के पास शक्तिशाली फौज नहीं होती थी और युद्ध आदि के समय युवाओं को जुटा लिया जाता था। भूमि और सिंचाई के पानी पर भी उनका थोड़ा-बहुत अधिकार होता था। इससे इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि राजा के पास अधिकार उस समय कम थे। वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन अधिक नहीं कर सकता था। इससे समाज में टकराव की सम्भावना बढ़ती चली जाती थी। राजा के लिए इससे नियंत्रित करना कोई आसान काम नहीं रहा होगा। इन सबको व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए राजा के पद के साथ कुछ रहस्यात्मक तत्त्वों को जोड़ दिया जाता था, ताकि उनका स्थान आलोचना से परे हो और लोग उसका भय मानें तथा उससे डरे रहें। मिस्र के एक साहित्यिक अभिलेख से मिले उदाहरण को देखने से यह बात अधिक स्पष्ट ढंग से समझ में आती है। "ऊपरी और निचली मिस्र का राजा क्या है? वह ईश्वर है, जिसकी कृपा से हम जिंदा हैं, वह सभी का पिता और मां है, वह अपने आप में अकेला है और सबसे परे है।" इस प्रकार के लेख से पता चलता है कि ईश्वर को प्रजा द्वारा सम्मान दिलाये जाने के लिए ये रहस्यात्मक तत्त्व राजा के पद के साथ जोड़े जाते होंगे।

मिस्र में राजा के लिए प्रयोग किए जाने वाले शब्द फैरोह का अर्थ होता है विशाल घर अर्थात् राजा एक विशाल घर के समान है, जिसमें सब रहते हैं। वह होरस या बाज का अवतार माना जाता था। जब राजा की मृत्यु होती थी, तो कहा जाता था कि बाज क्षितिज की ओर उड़ गया। पुरानी राजशाही के अन्तर्गत मिस्र में राजाओं ने अपने आप को विभिन्न देवी-देवताओं से जोड़ा और कई प्रकार की उपाधियां धारण कीं और इस ब्रह्मांडीय व्यवस्था को बनाए रखने के लिए वे अनुष्ठान भी किया करते थे। परन्तु वे ईश्वर नहीं थे और उनकी जनता भी इस अन्तर को समझती थी कि ईश्वर अलग है और राजा उसका प्रतीक है, स्वयं ईश्वर नहीं।

इस प्रकार दैवी राजत्व के स्वरूप में राजा अपने को प्रतिनिधि के रूप में घोषित करते थे और इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए वे अनुष्ठानों का सहारा भी लेते थे। कांस्ययुगीन राजाओं के पास कोई शक्तिशाली सेना नहीं थी और न ही उनके पास बहुत विस्तृत अधिकार होते थे। जिससे प्रजा उनसे भय खाये या उन पर आश्रित होकर रहे, क्योंकि इस समय कोई कर सम्बन्धी निश्चित स्वरूप नहीं दिखाई देता है। इस प्रकार प्रजा को उनके नेता के रूप में प्रदर्शित करने के लिए राजा अपने को दैवी स्वरूप में प्रदर्शित करता था और अनुष्ठान आदि करता था, जिससे कि प्रजा उसको अपना नेता मानती रहे।

**प्रश्न 2. कांस्य युग के बाद आप चारों सभ्यताओं (मिस्र, चीन, हड़प्पा, मेसोपोटामिया) में क्या-क्या परिवर्तन देखते हैं? समझाइए।**

**उत्तर**–कांस्य युग के बाद लौह युग शुरू हुआ और इसमें इन चारों सभ्यताओं में बहुत-से परिवर्तन देखने को मिलते हैं। मेसोपोटामिया में कांस्य युग में कई आक्रमण हुए, जहां कांस्य युग में शासकीय वर्ग की निर्भरता संभ्रांत वर्ग की शक्ति और धन, कृषि, व्यापार गतिविधियों पर अधिक थी, वहीं लौह युग में इस निर्भरता में कमी आई। लौह युग में शासकीय वर्ग की आय के स्रोत बदले। इस समय शासक प्रजा द्वारा उत्पादित फसल, लूटपाट से प्राप्त धन, दास, बंदी बनाये गए शिल्पी और लगातार मिलने वाले नजराने से इस समय के शासकों को धन प्राप्त होने लगा। इस बात का अर्थ इस प्रकार भी लगाया जा सकता है कि लौह युग में जिस राज्य की जनसंख्या जितनी होती थी, वे उतने ही समृद्ध होते थे, क्योंकि जनता द्वारा उत्पादन, शिल्प-कार्य आदि किये जाते थे। लौह युग में क्रीट द्वीप में मिस्र और भूमध्य सागरीय यूरोप से तालमेल स्थापित होने के परिणामस्वरूप महल केन्द्रित राज्य-व्यवस्था और लेखन का उदय हुआ। तीसरी शताब्दी ई.पू. में सुमेर और दक्षिणी एशिया के बीच व्यापार सम्बन्ध स्थापित हुए और दक्षिणी एशिया के सुमेर के साथ स्वतंत्र सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हुए।

कांस्य युग पश्चिमी एशिया और मिस्र में 1200–1100 ई.पू. तक समाप्त हो गया था, वहीं दक्षिणी एशिया में कांस्य युग

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



पश्चिमी एशिया और मिस्र से पहले समाप्त हो गया था। दक्षिणी एशिया में कांस्य युग समाप्त जरूर हो गया था, परन्तु इसकी कुछ लोक-परम्पराएं बाद के समय तक चलती रहीं। दक्षिणी एशिया की हड़प्पा सभ्यता एकदम और अचानक समाप्त हो गयी और बाद के साम्राज्य निर्माण में भी हम हड़प्पा सभ्यता की कोई भूमिका नहीं देखते हैं। इसके सम्बन्ध में इतना कहना जरूरी होगा कि हड़प्पा सभ्यता में जहां चित्रात्मक लिपि का प्रचलन था, वहीं बाद के भारतीय साम्राज्य ने चित्रात्मक लिपि को नहीं अपनाया, बल्कि इसकी लिपि ब्राह्मी हो गयी।

चीन में (उत्तरी और पश्चिमी चीन) पश्चिमी चाऊ ने जो शांग के पश्चिमी पड़ोसी थे और शांक्सी प्रान्त मे रहते थे व शक्तिशाली थे, इन्होंने शांग को हराया। इनका शासन आने के बाद जो कि लौह युग कहलाता है, चीन में हमें परिवर्तन दिखाई देते हैं; जैसे–कांस्य अनुष्ठानों में प्रयुक्त कलशों पर शांग राजा जो अभिलेख अंकित करवाते थे, उनके अभिलेखों की तुलना में चाऊ शासकों द्वारा जो अभिलेख खुदवाये गये हैं, वे अधिक विस्तृत थे। साहित्य लेखन में भी तेजी आयी और इस समय कुछ ऐतिहासिक आख्यान और कविताएं लिखी गईं, जिनका पता बाद में हुए इसके संकलन और सम्पादन से चलता है।

हड़प्पा के कांस्य युग के बाद हमें गुजरात, सिंध और घग्घर सरस्वती-हाकरा के मैदानी इलाकों में कई ग्रामीण बस्तियां देखने को मिलती हैं। सीमित मात्रा में धातु का प्रयोग होता था। शिल्प उत्पादन कम हुआ और तकनीकी पक्ष में भी गिरावट आयी, क्योंकि तकनीकी पक्ष में कमी का पता इस बात से भी चलता है कि लोग पहिए की तकनीक से परिचित थे और वे कुम्हार के चाक के सम्बन्ध में भी जानते थे, परन्तु पहिये का प्रयोग कम किया गया।

लौह युग में 1200 और 1000 ई.पू. के बीच भूमध्य सागर से ईरानी पठार तक औजारों और हथियारों को बनाने के लिए कांस्य के स्थान पर लोहे का प्रयोग होने लगा था, इसके पीछे चाहे जो कारण रहे हो।

कांस्य युग के बाद लोहे युग में चारों सभ्यताओं में परिवर्तन देखने को मिलते हैं, परन्तु कुछ लोक-परम्पराएँ ऐसी थीं, जो बाद के समय तक चलती रहीं। जहां चीन ने चाऊ शासकों के आने लेखन कला की प्रवृत्ति तीव्र हुई, वहीं मिस्र के सम्बन्ध भूमध्य सागरीय यूरोप से बढ़े। दक्षिणी एशिया में हमें तकनीकी और शिल्प में ह्रास नजर आता है।

**प्रश्न 3. हड़प्पा सभ्यता की भारतीय साम्राज्य निर्माण में क्या-क्या भूमिका रही? स्पष्ट कीजिए।**

**उत्तर**–हड़प्पा की महान सभ्यता एकदम और अचानक समाप्त हो गई। भारतीय साम्राज्य निर्माण में इस सभ्यता ने कोई भूमिका नहीं अदा की। इतना जरूर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता की कुछ लोक-परम्पराएं और कुछ अन्य प्रचलित तकनीकी और विश्वास बाद के भारतीय साम्राज्य तथा आज तक भी बने हुए हैं। जैसे सिन्ध क्षेत्र में हाल के दिनों तक चलने वाली बैलगाड़ी उसी नमूने पर आधारित थी, जिस प्रकार का एक नमूना हड़प्पा सभ्यता से मिला है, जो मिट्टी का बना हुआ है, भारतीयों ने पुनः निर्माण और प्राचीन निर्माण की प्रेरणा हड़प्पावासियों से ही प्राप्त की। सुनियोजित ढंग से नगर बसाने का ज्ञान भी हमें हड़प्पा से ही मिलता है। हड़प्पा सभ्यता में हमें स्तम्भ युक्त भवन बनाने के साक्ष्य मिलते हैं, जिसके आधार पर बाद में आने वाले शासकों ने भी अपने महल स्तम्भयुक्त बनवाए। मूर्तिकला के प्रथम साक्ष्य के हड़प्पा में देखने को मिलते हैं। यहां के कलाकार तांबे, कांसे, पाषाण आदि की मूर्ति बनाया करते थे, जिसके आधार पर बाद में कलाकारों ने भी मूर्तियां बनाई। नगर जीवन की शुरुआत हड़प्पा सभ्यता से ही मानी जाती है।

इन सबके बावजूद भी हम हड़प्पा सभ्यता को यह श्रेय नहीं दे सकते हैं कि इसका भारतीय साम्राज्य निर्माण में कोई भूमिका थी। क्योंकि उपर्युक्त वर्णित विषय इस सभ्यता की देन कही जा सकती है। साम्राज्य निर्माण में योगदान नहीं कहा जा सकता है। भारतीय सभ्यता ने अपनी लेखन कला ब्राह्मी लिपि से ग्रहण की, न कि हड़प्पा की चित्रात्मक लिपि से और एक साम्राज्य के निर्माण में लेखन का बड़ा योगदान होता है। प्राचीन और मध्य युगीन शहरों में जल निकासी के लिए ऊर्ध्वरूपीय व्यवस्था का विकास हुआ। इसके लिए पानी न रिसने वाली चीनी-मिट्टी की नालियां बनाई जाती थीं, जिसका विकास प्रथम शताब्दी ई.पू. में गंगा प्रदेश में हुआ और इस जल निकासी की व्यवस्था को हड़प्पा की व्यवस्था से अधिक प्रभावी माना जाता था।

– सिन्धु घाटी से जुड़ी चमकीले लाल कर्नेलिपन कनकों से बने नक्काशीदार गहने और उनसे जुड़ी सौंदर्य कला का विकास भी आगे नहीं हो सका।
– बहरीन और मेसोपोटामिया से होने वाला समुद्री व्यापार भी इसी सभ्यता के साथ समाप्त हो गया।
– बड़े शहर भी नष्ट हो गये।
– लोग फिर से ग्रामीण जीवन की ओर लौटे।
– ये लोग राहजनी भी करते थे। इन्हें सही अर्थों में चरवाहे नहीं कहा जा सकता। ये राज्य और समाज अपना तालमेल बैठाने में असमर्थ थे और घूमते रहते थे। बाद के राज्य में ग्रामीण पाषाण ताम्र युग संस्कृतियाँ देखने को मिलती हैं, जिनमें धातु का प्रयोग सीमित मात्रा में होता था।
– शिल्प कला का पतन हुआ
– तकनीकी पक्ष में गिरावट आयी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हड़प्पा सभ्यता की भारतीय सभ्यता की देन तो कई प्रकार की है। परन्तु उसका भारतीय

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



साम्राज्य निर्माण में योगदान नहीं के बराबर है, क्योंकि एक साम्राज्य के निर्माण के लिए जरूरी पक्ष सभ्यता का पतन होने के साथ ही समाप्त हो गये थे जिनमें व्यापार तकनीक, शिल्पकला, शहर आदि प्रमुख थे।

**प्रश्न 4. कांस्ययुगीन राज्यों में खानाबदोश जीवन के सम्बन्ध में टिप्पणी कीजिए।**

**उत्तर**–कांस्ययुगीन राज्यों से हमें स्वायत्त कबीले, शिकारी और संग्रहकर्त्ता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। मेसोपोटामिया के बाहरी शहर से प्राप्त अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिंचाई वाले क्षेत्रों में गडरियों के आवागमन पर नजर रखी जाती थी और इसको नियमित करने पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था, क्योंकि ये चरवाहे कभी फायदेमंद साबित होते थे, तो कभी नुकसानदायक। यमनी कबीले के चरवाहे अपने जानवरों को लेकर घास के मैदान और यूफ्रेटस के निचले इलाकों में पतझड़ और जाड़े के मौसम में पश्चिम-पूर्व और उत्तर की मरुभूमि में चले जाते थे। लम्बी यात्रा करके वे घाटी पहुंचते थे और अप्रैल से अक्टूबर तक वे वहीं रुकते थे। इनके साथ लाए गए जानवरों, भेड़ों आदि के मल से खेती को फायदा होता था और यह चरवाहे फसल कटाई के समय मजदूरों के रूप में भी काम करते थे। लेकिन यदि यही भेड़-बकरियां सही समय पर नहीं पहुंचती थीं, तो खेतों को बहुत नुकसान उठाना पड़ता था, क्योंकि फसल उगने के बाद यदि इन भेड़-बकरियों का आगमन होता था, तो हरे-भरे खेतों से जब यह भेड़-बकरियां गुजरती थीं तो फसलों को नुकसान होना स्वाभाविक था, क्योंकि इनकी संख्या बहुत अधिक होती थी और ये आवागमन के प्रमुख रास्तों को नुकसान पहुंचाया करते थे।

साहित्य ग्रन्थों में इन खानाबदोशों की आलोचना की गई है कि इनका कोई धर्म नहीं है। ये अपने मृतकों को नहीं दफनाते थे। मेसोपोटामिया से मिले इस सम्बन्ध में स्रोतों से इन खानाबदोश जीवन बताने वाले लोगों के सम्बन्ध में पता चला है कि हाबिरू लोग समाज के हाशिए पर रहते थे और घास के मैदानों या सड़कों पर तम्बू बना कर रहते थे। ये लोग राहजनी भी करते थे, इनको सही अर्थों में चरवाहा नहीं कहा जा सकता है। ये राज्य और समाज में अपना तालमेल बिठाने में असमर्थ थे और घूमते रहते थे।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

राज्यों और साम्राज्यों का निर्माण

# राज्यों और साम्राज्यों का निर्माण : सामान्य परिचय

10

## परिचय

प्रस्तुत अध्याय में राज्यों और साम्राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया, बेबीलोनियाई, असीरियाई और मेदियाई साम्राज्यों के उदय के सम्बन्ध में बताया गया है। मेसोपोटामिया से जुड़े क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। प्रथम शताब्दी ई.पू. में एशिया के साथ-साथ विश्व के अन्य हिस्सों में भी नए साम्राज्यों का उदय हुआ। इस अध्याय में पश्चिमी एशियाई राज्यों और साम्राज्यों के निर्माण का परिचय दिया गया है।

कांस्ययुगीन प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ मिस्र और मेसोपोटामिया दोनों ने ही पश्चिम एशिया के ऐसे हिस्सों के साथ अपने लेन-देन का रिश्ता बनाया, जो इन दोनों क्षेत्रों के लिए आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कर सके, क्योंकि इन दोनों ही क्षेत्रों में जिन वस्तुओं की कमी थी, वे पश्चिमी एशिया से मगाई जाती थीं; जैसे–तांबा, टिन, सोना आदि। अनातोलिया, लेबनान और कैसपियन सागर के दक्षिण में स्थित क्षेत्र तांबा, टिन, लकड़ी प्राप्त करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र थे और अनातोलिया के केन्द्रीय भाग में मेसोपोटामिया की व्यापारिक बस्तियाँ मिलती हैं, जो इस व्यापार में शामिल थीं। खनिजों के व्यापार में आयी तेजी के कारण अनातोलिया भी तीव्रता से कांस्य युग में पहुँच गया और बाद के समय में अनातोलिया भी कांस्ययुगीन सभ्यता के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुआ, जिसे हित्ती सभ्यता (1800-1200 ई.पू.) के नाम से जाना जाता है। इस सभ्यता के विकास के कारण यदि ढूंढे जायें, तो वे स्वयं अनातोलिया के सामाजिक विकास में नजर आते हैं। इतना जरूर कहा जा सकता है कि मिस्र और मेसोपोटामिया ने इसके विकास में सहायक के रूप में जरूर कार्य किया।

तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध (2500-2000 ई.पू.) में अधिकांश पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया के पूर्वी हिस्सों में कबीलों का देशांतरण हुआ। कई कबीले और जातीय भाषायी समूह एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसे थे। लोग पहले से बसे लोगों के साथ या तो घुल-मिल जाते थे, या उन्हें अपदस्थ कर देते थे। इन कबीलों की प्रवृत्ति को जानने से पता चलता है कि इनमें से कुछ घुमक्कड़, तो कुछ बेहतर आजीविका की खोज में, कुछ अपने पशुओं के लिए ताजा चरागाह खोजने के लिए इधर-उधर भटकते थे। इन कबीलाई समूहों, जातीय और भाषायी समूहों को कई बार अन्य कबीलाई समूहों के कारण अपनी जगह भी छोड़नी पड़ती थी। और जो स्थायी रूप से खेती करने वाले लोग थे, उनके दबाव के कारण भी इन्हें अपने मूल स्थान से वंचित होना पड़ता था, जिसके कारण पश्चिमी एशिया और मिस्र में कई परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

उत्तरी मेसोपोटामिया, सीरिया, फिलिस्तीन, अनातोलिया, पूर्वी भूमध्यसागर और बाद में ईरान में बड़ी संख्या में नये राज्यों का उदय हुआ, जिसका कारण इन कबीलों का विभेदीकरण और नये राज्यों का निर्माण था। इन राज्यों के शासकों के रूप में ये बने जातीय समूह सामने आये। इन नये राज्यों में मिस्र और मेसोपोटामिया की कई प्रचलित परम्पराएं दिखाई देती हैं, जिन्हें इन नये राज्यों ने अपनाया, जैसे लेखन, सैन्य, तकनीकी, प्रशासनिक संगठन आदि। हालांकि ये नये राज्य सामाजिक विकास की दृष्टि से पिछड़े हुये थे और जनजातीय समूहों का इन नये राज्यों पर वर्चस्व था, फिर भी इन राज्यों ने अपना गठन किया और तेजी से प्रगति की। एमोराइयों ने मेसोपोटामिया में बेबीलोनिया साम्राज्य की स्थापना में मदद की। नेसियाइयों ने अनातोलिया में हित्ती साम्राज्य की स्थापना में मदद की।

नये राज्यों का उदय लगभग 1800 ई.पू. से होना शुरू हुआ, जिन्हें सामान्य तौर पर साम्राज्य कहा जाता है। इनका आरम्भ पश्चिमी एशिया से शुरू हुआ। एक साम्राज्य के रूप में राज्य का भौगोलिक विस्तार बहुत अधिक था और यह साम्राज्य विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र, राजतंत्रीय व्यवस्था, वृहत् सैन्य संसाधन, लूट पर आधारित था। साम्राज्य का एक मुख्य केन्द्र हुआ करता था, जहाँ शासकीय वर्ग रहा करता था और अन्य क्षेत्रों में संभ्रांत वर्ग व अन्य लोग रहा करते थे, जो राजा को नजराना आदि पहुँचाते थे। साम्राज्य का भौगोलिक विस्तार अधिक था और इसने विविध प्रकार के लोगों और समुदायों को एक राजनैतिक इकाई के रूप में बांधा। साम्राज्य के अन्तर्गत सरकार चलाने, करों की वसूली, संचार सुविधाओं का विकास, बड़ी सेना का रखरखाव, विस्तृत नौकरशाही ढाँचे का निर्माण करना पड़ा।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



1800 ई.पू. के बाद पश्चिमी एशिया के कई राज्यों ने साम्राज्य खड़ा करने की कोशिश की। इस क्षेत्र के कई हिस्सों में समय-समय पर साम्राज्य स्थापित करने के प्रयास किए गए। आरम्भ में मेसोपोटामिया में बेबीलोनियाई राज्य और थोड़े बाद में अनातोलिया में हित्ती आक्रमणों के कारण प्रथम बेबीलोनियाई साम्राज्य का अन्त हुआ। हालांकि ऐतिहासिक दृष्टि से मेसोपोटामिया प्रयोग के दूरगामी परिणाम सामने आये। उत्तरी मेसोपोटामिया में बसे असीरियाइयों ने एक विशाल साम्राज्य असीरियाई साम्राज्य की स्थापना की, जो सदियों तक कायम रही।

बेबीलोनिया के अधीन मेसोपोटामिया पश्चिम एशिया का सबसे शक्तिशाली राज्य बना। इस राजवंश की स्थापना सुमु-अबुम (1894-1881 ई.पू.) द्वारा हुई थी। इस राजवंश के छठे शासक हम्मुराबी ने दक्षिणी मेसोपोटामिया को एकीकृत किया और उत्तरी मेसोपोटामिया के बड़े हिस्से को अपने नियन्त्रण में ले लिया। एमोराई लोग पश्चिमी सामी के नाम से जाने गए कबीलाई समूह के सदस्य थे। इन्होंने प्राचीन बेबीलोनिया साम्राज्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अक्कादियाई इस साम्राज्य की सरकारी भाषा बनी।

हित्ती आक्रमणों के पश्चात् प्राचीन बेबीलोनियाई साम्राज्य का अंत हो गया। इसके बाद दूसरे कबीलाई समूह कैसियाई थे, जिन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया और ये लोग भारोपीय भाषायी समूह सम्बन्ध रखते थे। इन्होंने हित्ती आक्रमणों के परिणामस्वरूप फैली अव्यवस्था का लाभ उठाया और मेसोपोटामिया में एक नई राजशाही की स्थापना की।

असीरियाई साम्राज्य के निर्माण के सम्बन्ध में देखें, तो लगभग 1350 ई.पू. के आसपास उत्तरी मेसोपोटामिया में एक नई घटना घटी और इस समय असीरियाई साम्राज्य का उदय हुआ। असीरियाइयों ने एक वृहत् साम्राज्य की स्थापना की, जिसने कई शताब्दियों तक पश्चिमी एशिया पर अपना वर्चस्व बनाये रखा। इस आधार पर कहा जाता है कि असीरियाइयों ने ही साम्राज्य के युग की शुरुआत की। जातीय स्थानान्तरण के दौरान कई सेमेटिक समूहों ने उत्तरी मेसोपोटामिया में प्रवेश किया और अपना अधिकार जमा लिया। इन्हीं समूहों में से जो ऊपरी टिगरिस में बसे हुये थे, उनको असीरियाइयों के नाम से जाना जाता है। जिन लोगों को हम असीरियाई कहते हैं। वे सभी अप्रवासी और इस क्षेत्र के मूल निवासी थे, असीरियाइयों ने अपने साम्राज्य का विस्तार करना शुरू किया और सम्पूर्ण ऊपरी टिगरिस क्षेत्र को अपने साम्राज्यों के अन्तर्गत लाने के बाद असीरियाई राज्य शलमनेसर के नेतृत्व में सीरिया तक फैला। लेबनान समुद्र तट पर बसे फीनिशियाइयों ने शहरों से नजराना वसूल किया और बेबीलोनिया को अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि असीरियाई धीरे-धीरे पश्चिमी एशिया की बहुत बड़ी शक्ति बनते चले गये। इसके बाद भी असीरियाई राज्य का लगातार विस्तार होता रहा।

असीरियाई शासक तिगलेथपिलेसर III ने असीरियाई साम्राज्य में प्रशासनिक और सैनिक तंत्र के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। तिगलेथपिलेसर III ने असीरियाई राज्य को एक केन्द्रीय रूप देने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी शासक ने जीते गये प्रदेशों को प्रशासनिक प्रान्तों में विभाजित किया। इन प्रान्तों में राज्यपालों को नियुक्त किया जाता था और उन्हें अपने-अपने राज्य में प्रशासनिक वित्तीय न्यायिक सैनिक अधिकार दिये जाते थे। कर वसूल करना और केन्द्रीय सरकार को नजराना भेजते रहना इन राज्य वालों का प्रमुख कर्त्तव्य होता था। इसके अलावा ये लोग असीरियाई राज्य के लिए सैनिक भी एकत्रित करते थे। तिगलेथपिलेसर III ने ही असीरियाई राज्य में एक सुदृढ़ सेना का गठन किया। अभी तक असीरियाई सेना बड़े भूमिपतियों द्वारा जुटाई गई सेना की टुकड़ियों पर आधारित होती थी। असीरियाई राज्य के प्रमुख क्षेत्रों में किसान और दासों का क्साव अधिक था। जो राज्य के लिए खेती व नौकरी का कार्य करते थे और इन्हीं को युद्ध के लिए जबरन सेना में भर्ती कर लिया जाता था। तिगलेथपिलेसर III असीरियाई साम्राज्य का प्रथम शासक था, जिसने स्थायी सेना रखने की ओर बल दिया और साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में सैनिकों की तैनाती की जाने लगी तथा राज्यपालों को भी स्पष्ट निर्देश दिया कि वे अपने पास सैनिक रखें। तिगलेथपिलेसर III ने उन क्षेत्रों को भी अपने साम्राज्य में मिलाया, जो कभी असीरियाई राज्य का हिस्सा नहीं रहे थे। ऐसे क्षेत्रों में हम मेदिया का जिक्र कर सकते हैं। तिगलेथपिलेसर III ने इतनी विशाल सेना एकत्रित की, जिसके भरण-पोषण के लिए अन्य राज्यों पर आक्रमण करना जरूरी था।

सातवी शताब्दी ई.पू. में पश्चिमी एशिया में साम्राज्य निर्माण के नये युग का प्रारम्भ हुआ। मेदिया साम्राज्य का उदय भी इसी समय हुआ। मेदिया साम्राज्य के बाद अकामेनिद या साम्राज्य की स्थापना हुई। इन साम्राज्यों का प्रमुख और केन्द्रीय क्षेत्र ईरान था। अकामिद साम्राज्य को विश्व का पहला साम्राज्य भी कहा जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत एक विशाल क्षेत्र शामिल था, जिसमें मिस्र, पश्चिमी एशिया के अधिकांश हिस्से, अनातोलिया आदि शामिल थे। यह पश्चिम में एजियन सागर से लेकर पूर्व में हिन्दूकुश पहाड़ियों तक फैला हुआ था। यह साम्राज्य दो शताब्दियों तक कायम रहा, जब तक कि सिकन्दर के आक्रमण ने इसे तबाह नहीं कर दिया।

कबीलाई स्थानान्तरण जो कई शताब्दियों से चल रहा था। इसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में कबीले, विशेषकर भारोपीय या भारतीय आर्य शाखा के भारतीय यूरोपीय लोग द्वितीय शताब्दी पूर्व के उत्तरार्द्ध में ईरान में दाखिल हुए। ईरान प्रमुख रूप से भारोपीय भाषायी परिवार के कबीलों का घर बन गया। सातवीं शताब्दी तक आते-आते ईरान में काफी हद तक भाषायी और सांस्कृतिक समानता व्याप्त हो गयी। ईरान में सातवीं शताब्दी के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



आते-आते ईरानी कबीलों में अपनी घुमंतू प्रवृत्ति छोड़कर स्थायी जीवन बिताने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। ईरान के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग कबीलाई समूह रहने लगे और ये इलाके उन्हीं के नाम से पहचाने जाने लगे। मेदिया कबीला कैसपियन सागर के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में फारसी फार्स अर्थात् दक्षिणी-पश्चिमी ईरान में; पार्थियन कैसपियन सागर के पूर्व में और बैक्ट्रियन हिन्दूकुश के उत्तर में जा बसे। इन ईरानी कबीलों ने पहले बसे लोगों की अपेक्षा प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन किया। पशुपालन को उन्होंने अपने जीवनयापन का मुख्य आधार बना लिया था। जल संसाधनों का अपने पक्ष में उपयोग किया और मेदिया कबीले के लोग घोड़ा पालते थे और उनके लिए यह महत्त्वपूर्ण कार्य था। बैक्ट्रियन अर्थव्यवस्था में ऊंट पालन को विशेष स्थान दिया जाता था। जहाँ सूखा क्षेत्र था, वहां भेड़-बकरियां आदि पाली जाती थीं। विद्वानों ने यह विश्लेषण निकाला है कि ईरानी अर्थव्यवस्था के विकास में घोड़ों और ऊंटों का विशेष स्थान रहा, क्योंकि इनकी सहायता से यात्रा करना आसान हो गया। सामान ढोने में आसानी हो गयी, जिससे व्यापार को बढ़ावा मिला क्योंकि व्यापार में अब सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना आसान हो गया था।

मेदिया उत्तरी-पश्चिमी ईरान का पुराना नाम था। वह शहर आधुनिक शहर जंजान (Zanjan), हमदान (Hamdan) और तेहरान के त्रिकोण में बसा हुआ था। आठवीं शताब्दी ई.पू. में मेदियाई जनजाति इस क्षेत्र के किलाबन्द गांवों में रहा करती थी और यही किलाबन्द बस्तियाँ बाद में शहरी केन्द्रों के रूप में विकसित हुईं। सातवीं शताब्दी ई.पू. के आरम्भ में ये कबीले संघ के रूप में एक गठबंधन के रूप में बंधे हुये थे। मेदिया पर तिगलेथपिलेसर III ने आक्रमण कर इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। बाद के समय में जब असीरियाई साम्राज्य का नियंत्रण कम हुआ, जो मेदियाई कबीले ने अपने आपको एक संघ के रूप में बांध लिया। इसके बाद मेदियाई असीरियाइयों से ज्यादा शक्ति से लड़ सके। फिर मेदियाइयों का शासन कायम हुआ। मेदिया पर एक बार असीरियाई नामक घुमंतू लोगों का अधिकार हो गया और इन लोगों का शासन 652-625 ई.पू. तक कायम रहा। लगभग 625 ई.पू. में साइआरेक्सेज ने सीरियाई सरदारों को मौत के घाट उतारा और उनके कब्जे से मेदिया को मुक्त कराया और मेदियाई राज्य की पुनर्स्थापना की। इस साम्राज्य को एक शक्तिशाली रूप देने में इस शासक का बहुत बड़ा योगदान रहा। साइआरेक्साज ने ईरान के कई पड़ोसी राज्यों को अपने राज्य में मिलाकर इस राज्य का विस्तार किया। बाद में इस राज्य का अधिकार असीरियाई राज्य पर भी हो गया और एक नई राजशाही का उदय हुआ।

साइआरेक्सेज (625-585 ई.पू.) ने एक नियमित और स्थायी सेना का गठन किया और मेदिया साम्राज्य में मौजूद संसाधनों का सुनियोजित ढंग से प्रयोग किया। सेना को अलग-अलग टुकड़ियों में विभाजित किया गया और उन्हें अलग-अलग काम सौंपे गये। पैदल टुकड़ी, घुड़सवार टुकड़ी और तीरंदाजों की टुकड़ी आदि से सेना को लैस किया गया। मेदवासी घोड़ा पालने में विशेषज्ञ थे, इसी कारण घोड़ों के लिए उनका विस्तार किया गया। और साइआरेक्सेज की मदद से मेदियाई साम्राज्य का भी विस्तार किया गया। साइआरेक्सेज ने इस साम्राज्य के विस्तार को पूरब में बैक्ट्रिया तक पहुंचा दिया था। असीरिया पर आक्रमण करने के लिए मेदों ने बेबीलोनिया संधि की।

जिस समय असीरिया की ताकत घट रही थी, उस समय मेदे और बेबीलोन ने अपने साझे शत्रु असीरिया के खिलाफ गठजोड़ किया। पश्चिमी एशिया में असीरिया की दमनात्मक नीतियों के खिलाफ व्यापक असंतोष फैला। उन्होंने अपनी प्रजा पर भारी बोझ डाला, जिसके चलते छोटे असीरियाई शासकीय संभ्रांत वर्ग के खिलाफ एक जबरदस्त विरोध भाव प्रकट हुआ, जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हुआ। मेदियों और बेबीलोनियाई दोनों के संयुक्त आक्रमण के फलस्वरूप असीरियाई साम्राज्य ध्वस्त हो गया।

मेदियाई राज्य के संगठन और इसके प्रशासनिक ढाँचे के बारे में हमारे पास बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि साम्राज्य का संगठन कमजोर था और मेदियाई कबीलों के प्रमुख परिवारों से ही बड़े और कुलीन तन्त्रों की नियुक्ति होती थी। पूरे प्रशासन पर इनकी ही सत्ता का कब्जा होता था। इसी कुलीन तन्त्र में विद्रोह करके राजा की सत्ता को चुनौती दी और मेदियाई साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया। एकबातना या अगबातना शहर, जिसे आधुनिक हमदान शहर के नाम से जाना जाता है, इस साम्राज्य की राजधानी था। मेदिया ने मेसोपोटामिया की अपेक्षा पिछड़ा होने के कारण मेसोपोटामिया शहर की कई विशेषताएं ग्रहण कीं। मेदिया पर बेबीलोनियाई शहर का भी गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। मेदिया के शासकों ने बेबीलोनिया के कई रीति-रिवाजों को अपनाया।

साइआरेक्सेज के बाद उसका पुत्र अस्तयगेश (Astyages) मेदिया भी गद्दी पर बैठा और उसके समय में मेदिया का विकास हुआ। इस शासक के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। अस्तयगेश के शासन-विस्तार के परिणामस्वरूप बेबीलोनिया को बहुत क्षति हुई। बेबीलोनिया में नेबुछदनेज्जर II एक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली शासक हुआ। इसके शासन के दौरान बेबीलोनिया अपने शीर्ष पर पहुंचा और इसी के समय में अधिकांश मेसोपोटामिया बेबीलोनिया के अन्तर्गत आ गया था। सीरिया-फिलीस्तीन आदि भी इस साम्राज्य के अन्तर्गत आ गये थे। जिस समय बेबीलोनिया में यह हो रहा था, उसी समय मेदिया साम्राज्य में भी कई परिवर्तन हो रहे थे। कुछ आन्तरिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा था।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



छठी शताब्दी ई.पू. में साइरस जो कि अस्तयगेश के अधीनस्थ था और अकामेलिद राजवंश का सदस्य था। ये अकामेनिदियाइयों के साथ मिलकर मेदियों के खिलाफ विद्रोह का झण्डा बुलंद किया। इसमें उन्हें अस्तयगेश के विरोधी मेदिया कुलीन तन्त्रों का भी समर्थन प्राप्त था। साइरस ने 549 ई.पू. में अस्तमगेश को पराजित करके मेदियाई राजधानी एकबातना पर कब्जा कर लिया। इसके साथ ही मेदियाई साम्राज्य का अन्त हो गया। अब यहाँ अकामेनिदियाइयों का शासन शुरू हुआ। इन्होंने पश्चिम में एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और यह साम्राज्य दो शताब्दियों तक कायम रहा।

उपर्युक्त चर्चा में जिन साम्राज्यों का जिक्र किया गया है, वे तीसरी शताब्दी ई.पू. में पश्चिमी और मध्य एशिया के पूर्वी हिस्से में बड़े पैमाने पर कबीलों के देशान्तरण के परिणामस्वरूप विकसित हुये थे। कबीले यहाँ बसने के बाद अपनी घुमंतू प्रवृत्ति छोड़कर अब स्थायी जीवन बिताने लगे थे। इन्हीं कबीलों के सामाजिक विभेदीकारण और राज्यों के निर्माण के कारण कई नए राज्यों का उदय हुआ। प्रशासनिक सरंचनाएं विकसित हुईं। स्थायी सेना की प्रवृत्ति आयी। साम्राज्यों को प्रान्तों में विभक्त किया गया और वहाँ स्थायी सेना और राज्यपालों को नियुक्त किया जाने लगा, जो वहाँ नियंत्रण और अनुशासन बनाये रखने का काम करते थे तथा केन्द्र को नजराना भेजते थे। उपर्युक्त चर्चा में बेबीलोनियाई-असीरियाई साम्राज्यों के सम्बन्ध में बताया गया है। बाद में मेदियाई राजशाही के क्षेत्र पर अकामेनिदियाई राजाओं का शासन स्थापित हुआ और यह फारसी साम्राज्य के शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में फला-फूला।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. साम्राज्यों के उदय की पृष्ठभूमि पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।**

**उत्तर**–साम्राज्यों के उदय की पृष्ठभूमि को जानने के लिए उस समय हुये कुछ परिवर्तनों को जानना भी बहुत जरूरी है, क्योंकि ये परिवर्तन यह बताने में सक्षम होंगे कि साम्राज्यों का उदय किन परिस्थितियों में हुआ और ये साम्राज्य किन सहायक परिस्थितियों के कारण फले-फूले।

कांस्य युग में जो प्रौद्योगिक विकास हुआ, उसके सहारे मिस्र और मेसोपोटामिया के व्यापारिक सम्बन्धों में बदलाव आया और इनके सम्बन्ध पश्चिमी एशिया के ऐसे क्षेत्रों से बने, जिन क्षेत्रों से वे अपने लिए जरूरी वस्तुओं को मंगवा सकते थे। ऐसी वस्तुओं में तांबा, टिन, सोना, चांदी और लकड़ी आदि वस्तुएँ थीं। मिस्र और मेसोपोटामिया का सम्पर्क अब ऐसे क्षेत्रों से बना, जिनके जीवन का आधार मुख्य रूप से खेती था और ये कम विकसित क्षेत्र थे। अनातोलिया, लेबनान, कैसपियन सागर के दक्षिण का क्षेत्र-तांबा, टिन, लकड़ी प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था। अनातोलिया से व्यापारिक सम्बन्ध होने का प्रमाण यह है कि केन्द्रीय अनातोलिया में मेसोपोटामिया की एक व्यापारिक बस्ती मिलती है। तौरस की पहाड़ियों के दक्षिण में स्थित ऐसी ही बस्ती से भी कुछ ऐसी ही बस्ती के प्रमाण मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि 2000 ई.पू. अनातोलिया से जो कि तांबे का एक महत्त्वपूर्ण भण्डार हुआ करता था, उसका दोहन शुरू हो चुका था। इन खनिजों के व्यापार में जो वृद्धि हुई, उसका फायदा अनातोलिया को भी मिला और वह कांस्ययुग में शीघ्र ही पहुंच गया और कांस्ययुगीन सभ्यताओं के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा, जिसे हित्ती सभ्यता के रूप में जाना जाता है। अनातोलिया के इस विकास में स्वयं अनातोलिया के सामाजिक विकास जिम्मेदार हैं परन्तु मिस्र और मेसोपोटामिया ने इसके विकास में सहायक के रूप में आवश्यक योगदान जरूर दिया।

साम्राज्य के उदय की पृष्ठभूमि में जनजातीय देशान्तरण को जानना भी बहुत जरूरी है, क्योंकि राज्यों के उदय के लिए जातीय देशान्तरण भी सहायक हुआ। तीसरी शताब्दी ई.पू. में अधिकांश पश्चिमी और मध्य एशिया के पूर्वी भाग में बड़े पैमाने पर कबीलों का देशान्तरण देखने को मिलता है। कई कबीले और जातीय-भाषायी समूह एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसे। जहाँ ये लोग जाकर बसते थे, उस जगह पहले से बसे लोगों को यह तो अपदस्थ कर देते थे। इन समूहों में ज्यादातर तो घुमक्कड़ थे जो बेहतर जीविका की खोज में निकले या फिर अपने पशुओं के लिए नये चरागाह की खोज में निकले या फिर इन्हें अपनी जगह अन्य कबीलाई समूहों के दबाव में आकर त्यागनी पड़ी। यह देशान्तरण का सिलसिला 1500 ई.पू. तक चला, जिसके परिणामस्परूप पश्चिमी एशिया मिस्र और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में कई परिवर्तन हुये।

इन कबीलों का इतिहास अस्पष्ट है। इनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक विवरण इसके समय की बड़ी सभ्यताओं के साथ इनके सम्पर्क और संघर्ष के सम्बन्ध में मिलता है। इतिहासकारों ने इन्हीं दस्तावेजों का उपयोग करके इन कबीलों के देशान्तरण के सम्बन्ध में जानने का प्रयास किया है और इन कबीलों को भाषायी आधार पर वर्गीकृत करने में भी ये एतिहासिक विवरण ही काम आते हैं। इन कबीलों की भाषाओं को दो मुख्य भाषाओं में बांटा जाता है–(1) भारोपीय (2) सामी; परन्तु कुछ भाषा समूह ऐसे भी हैं, जो इन दोनों भाषाओं के अन्तर्गत नहीं आते हैं। कबीलों में एमोराई, कैनेनाई आदि दो प्रमुख कबीले थे। इनमें से एनोराई तो सीरिया और मेसोपोटामिया में बसे, जबकि कैनेनाई सीरिया और फिलिस्तीन में बस गये।

इन कबीलों के सामाजिक विभेदीकरण और राज्य निर्माण के फलस्वरूप उत्तरी मेसोपोटामिया, सीरिया, फिलीस्तीन, अनातोलिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय और बाद में ईरान में बड़ी संख्या में नये राज्यों का उदय हुआ। नये जातीय समूह इन राज्यों के शासकीय

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



वर्ग के रूप में उभरे। इन राज्यों ने मिस्र और मेसोपोटामिया राज्य की कई विशिष्टताएँ, जैसे–लेखन, सैन्य तकनीक और प्रशासनिक संगठन अपनाए। इस प्रकार जनजातीय समूहों के वर्चस्व और सामाजिक विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत पिछड़े होने के बावजूद उन्होंने नए राज्यों के गठन में तेजी लाने में योगदान दिया। एमोराइयों ने मेसोपोटामिया में बेबीलोनिया साम्राज्य की स्थापना की। नेसियाइयों ने अनातोलिया में हित्ती साम्राज्य की नींव डाली। इसी प्रकार फीनिशियाई बस्तियाँ लेबनान के समुद्र तट के किनारे नगर-राज्यों के रूप में उभरीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये राज्यों के उदय की पृष्ठभूमि में इन कबीलों और जातीय-भाषायी समूहों का योगदान रहा। इन्होंने नये राज्यों की स्थापना की। ये लोग कई भाषायी समूहों में होते थे। इन कबीलों का इतिहास चूंकि स्पष्ट नहीं है, परन्तु जिन क्षेत्रों में ये गये वहाँ की बड़ी सभ्यताओं से इनके सम्पर्क और संघर्ष ऐतिहासिक साहित्य से इनके सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

**प्रश्न 2. आरम्भिक साम्राज्यों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–1800 ई.पू. के आसपास नये प्रकार के साम्राज्यों का उदय हुआ और इनका आरम्भ पश्चिमी एशिया से हुआ। एक राज्य के रूप में साम्राज्य का भौगोलिक विस्तार बहुत अधिक विस्तृत था। इन साम्राज्यों में हमें निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती हैं–

- विस्तृत भौगोलिक विस्तार,
- राजतन्त्रीय व्यवस्था,
- वृहद् सैन्य संसाधन,
- व्यापक पैमाने पर नजराना वसूली,
- संचार सुविधाओं का विकास,
- स्थायी सेना की अवधारण,
- व्यवस्थित कर ढाँचा,
- नौकरशाही ढाँचा,
- कानून-व्यवस्था आदि।

प्रत्येक साम्राज्य में राजनीति का एक प्रमुख केन्द्र हुआ करता था। इस क्षेत्र में शासकीय वर्ग रहा करते थे। राज्य के दूसरे क्षेत्रों में संभ्रांत वर्ग के लोगों को शासकीय वर्ग में शामिल किया जाता था, परन्तु संभ्रांत वर्गों का वर्चस्व ही इस क्षेत्र में बना रहता था। ये संभ्रांत वर्ग किसी खास कबीले वर्ग से सम्बन्धित होते थे, जो केन्द्र को नजराना आदि भेजते थे। विभिन्न सामुदायिक लोगों को एक निश्चित राजनैतिक इकाई में बांधने का प्रयास किया जाता था। ये समुदाय सामाजिक विकास के विभिन्न स्तरों पर थे। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार पूर्व आधुनिक साम्राज्यों के लिए एक सीमा से ज्यादा केन्द्रीयकरण सम्भव नहीं था। इसलिए स्थानीय और क्षेत्रीय मुखियाओं को अपना काम करने के लिए ज्यादा स्वायत्तता प्राप्त थी। इस प्रकार के क्षेत्र अपने आंतरिक मामलों के स्वायत्त होते थे। जब तक वे केन्द्र को नियमित नजराना भेजते रहे, उनका कोई नुकसान या कोई अन्य हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। परन्तु इस प्रकार बाह्य क्षेत्रों को ज्यादा दिनों तक नियंत्रण में रखना संभव नहीं था और इन क्षेत्रों को बार-बार सैनिक अभियान करके इन्हें नियंत्रित रखने की कोशिश की जाती थी। साम्राज्य निर्माण के लिए बड़े स्तर पर एक सेना का गठन किया गया है और इसके लिए बड़े स्तर पर संसाधनों को जुटाया गया। राज्य के लगातार होने वाले विस्तार से सेना और संसाधनों का विकास भी हुआ। जितना प्रसार साम्राज्य का होता गया, उतनी ही अधिक सेना की जरूरत पड़ती गई। इस प्रकार साम्राज्य निर्माण और बड़े पैमाने पर सेना का रखरखाव एक दूसरे से जुड़े हुये थे। इसके संदर्भ में हम पश्चिम एशिया का उदाहरण देख सकते हैं, जिसमें कई साम्राज्यों ने विशाल साम्राज्य खड़ा करने की कोशिश की और इस क्षेत्र के कई हिस्सों में समय-समय पर अपने राज्य का विस्तार किया; जैसे मेसोपोटामिया में बेबीलोनिया राज्य और अनातोलिया में हित्ती साम्राज्य ने विस्तृत क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में लाने का प्रयास किया। हित्ती आक्रमण के कारण बेबीलोनिया साम्राज्य समाप्त हो गया। उत्तरी मेसोपोटामिया में बसे असीरियाइयों ने एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये राज्यों के उदय से (जिन्हें साम्राज्य) कहा जाता है। जहाँ इनका विकास हुआ, परिवर्तन आये और पुरानी व्यवस्था के स्थान पर एक नयी व्यवस्था कायम हुई। जिसमें व्यवस्थित कर ढांचा स्थायी व विशाल सेना, न्यायिक कानून आदि थे। इन साम्राज्यों ने विशाल सेना की सहायता से दूसरे राज्यों पर आक्रमण किये और अपने क्षेत्र का विस्तार भी किया। परिस्थितियों के कारण ये राज्य अधिक केन्दीकृत नहीं हो पाये। इन्होंने क्षेत्रीय व स्थानीय स्वायत्तता को बनाये रखा, चाहे उसे सैनिक बल के आधार पर ही कायम क्यों न रखना पड़ा।

**प्रश्न 3. असीरियाइयों के प्रशासनिक और सैनिक तंत्र का विश्लेषण करें।**

**उत्तर**–तिगलेथपिलेसर III ने असीरियाई साम्राज्य के निर्माण में और इसके प्रशासनिक व सैनिक तंत्र के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस शासक का मुख्य उद्देश्य असीरियाई साम्राज्य को मजबूत केन्द्रीकृत रूप देना तथा शासक की स्थिति की और मजबूत करना था। इसके लिए सबसे पहले तिगलेथपिलेसर III ने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया और वहां का प्रशासन देखने के लिए राज्यपालों की नियुक्ति की गई। इस राज्यपालों को प्रशासनिक वित्तीय, न्यायिक व सैनिक अधिकार दिये गये। ये कर वसूल करते थे और सरकार को नजराना भेजते थे। और जब केन्द्रीय सरकार को सैनिकों की आवश्यकता होती थी, तो ये उसके लिए सैनिक भी जुटाते थे।

तिगलेथपिलेसर III ने एक बड़ी सेना का गठन किया और उसे प्रशिक्षित भी कराया, क्योंकि अभी तक जो सेना असीरियाई साम्राज्य के लिए काम आती थी, वह बड़े भूमिपतियों द्वारा जुटाई

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



गयी सैन्य टुकड़ियों से बनी होती थी और इस प्रकार की सेना में राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले किसान और दास होते थे, जिन्हें जबरदस्ती युद्ध के लिए सेना मे भर्ती किया जाता था। तिगलेथपिलेसर III ने ही साम्राज्य की आवश्यकता के लिए साम्राज्य का विस्तार करने और उसे नियंत्रित करने के लिए एक बड़ी सेना का गठन किया। साम्राज्य के विभिन्न भागों में सैनिकों की नियुक्ति की जाती थी और साम्राज्य के प्रांतों के राज्यपालों को सेना के लिए सैनिक जुटाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। इन सैन्य टुकड़ियों को अलग-अलग टुकड़ियों में विभाजित करके इन्हें अलग-अलग काम सौंपे जाते थे। सेना में नये ढंग के रथ और घोड़ों को रखा गया। पैदल सेना, ऊंट सवारों आदि की नियुक्ति सेना में की जाती थी। इन सबके कारण सेना की क्षमता बढ़ी। सेना के बल पर ही तिगलेथपिलेसर III ने अपने साम्राज्य में उत्तरी ईरान में स्थित मेदिया को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

इतनी बड़ी और विशाल सेना के रखरखाव के लिए व्यापक संसाधनों की जरूरत थी और इसके भरण-पोषण के लिए दूसरे क्षेत्रों पर आक्रमण करना भी जरूरी था। तिगलेथपिलेसर III ने असीरियाई सेना में सुधार किये। उसमें से सबसे महत्त्वपूर्ण था सेना को हमेशा सक्रिय रखना। इस सेना का भरण-पोषण लूट के माल से होता था और इस सेना में रथों के अलावा घुड़सवार सेना पर ज्यादा बल दिया जाता था और इसके लिए लगातार घोड़ों की आवश्यकता बनी रहती थी। मेदिया पर अधिकार होने का फायदा असीरिया को यह लगा कि उसके लिए अब घोड़ों की आपूर्ति आसान हो गयी थी, क्योंकि मेदिया क्षेत्र घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। असीरियाई साम्राज्य में विद्रोह कम हो इसके लिए प्रशासनिक पदाधिकारियों का स्थानान्तरण भी किया जाता था। साम्राज्य के एक हिस्से में रहने वाले लोगों को उनके मौलिक क्षेत्र से उजाड़ कर जबरदस्ती दूसरे क्षेत्रों में बसाया जाता था। यह व्यवहार उन क्षेत्रों से सम्बन्ध में अधिक होता था, जिन क्षेत्रों में सैनिक अभियानों द्वारा कब्जा कर लिया जाता था। इसका उदाहरण हमें ईरान में 744 ई.पू. में हुए अभियान से मिलता है, जहां से 65000 लोगों को विस्थापित किया गया था। इससे लोगों के रूप में असीरिया के प्रति घृणा की भावना भी उत्पन्न होती थी।

तिगलेथपिलेसर III के समय में असीरियाई साम्राज्य का विस्तार हुआ और उसे मजबूती मिली। यहीं से साम्राज्य युग की शुरुआत मानी जाती है। तिगलेथपिलेसर III के समय में प्रशासनिक नियमों को मजबूती दी गई और एक स्थायी और विशाल सेना का निर्माण किया गया, जिसको कई टुकड़ियों में बांटा गया। साम्राज्य को एक समुचित ढांचा प्रदान किया गया।

**प्रश्न 4. साइआरेक्सेज ने मेदियाई राजशाही को कैसे मजबूत बनाया?**

**उत्तर**–मेदियाई राजशाही के उदय के आरम्भिक चरण के संबंध में अधिक जानकारी नहीं है, परन्तु इतना कहा जाता है कि 675 ई.पू. में फ्रओर्टस या क्षशथ्रिता नामक शासक ने इन कबीलों को एकीकृत किया। यह भी सम्भव है कि आरम्भिक मेदियाई जनजाति और कुलवंश के सरदारों के बीच से उसका चुनाव हुआ हो। क्षशथ्रिता ने अपनी स्थिति को मजबूत करना प्रारम्भ किया और अपने राज्य का विस्तार प्रारम्भ किया और आने वाले समय में उसने एक आनुवंशिक राजतंत्र की स्थापना की। क्षशथ्रिता के बाद उसका पुत्र उवक्ष गद्दी पर बैठा, जिसे यूनानी स्रोतों साइआरेक्सेज के नाम से जाना जाता है।

मेदियाई साम्राज्य को थोड़ा झटका उस समय लगा, जब उनके राज्य पर सीथियाई नामक घुमंतू लोगों ने कब्जा किया। लगभग 652-625 ई.पू. तक इनका शासन कायम रहा। लगभग 625 ई.पू. में साइआरेक्सेज ने असीरियाई सरदारों को हराया और मेदियाई साम्राज्य की पुनः स्थापना की। इसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया और ईरान में कई क्षेत्र अपने साम्राज्य में मिला लिए। साइआरेक्सेज ने मेदिया में एक नियमित और स्थायी सेना रखी और इसके भरण-पोषण के लिए मेदियाई संसाधनों का प्रयोग किया। इस सेना को अलग-अलग टुकड़ियों में विभाजित किया गया जिसमें पैदल टुकड़ी, घुड़सवार टुकड़ी, तीरंदाजों की टुकड़ी आदि बनायी गयी। मेदियाई घोड़ों के मामले में विशेष जाने जाते थे और घोड़ों की उनकी सेना एक मजबूत सेना के रूप में सामने आयी। इस सेना की मदद से कई क्षेत्र जीते गये। साइआरेक्सेज ने कई क्षेत्रों को जीतकर मेदियाई साम्राज्य में मिलाया। वह बैक्ट्रिया तक पहुंचा। परन्तु इस बात का प्रमाण नहीं मिल पाया है कि उसने इस क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिलाया या नहीं।

असीरिया पर आक्रमण करने के लिए साइआरेक्सेज ने बेबीलोनिया से सन्धि की और जिस समय असीरिया की शक्ति अपने उतार पर थी, उस समय मेदों और बेबीलोनिया ने असीरियों को हराया। इसके कुछ आंतरिक कारण भी थे। असीरियों की दमनात्मक नीति के खिलाफ पश्चिम एशिया में असन्तोष बढ़ रहा था और इन्होंने अपनी प्रजा पर जो भारी बोझ डाले थे, उसके चलते संभ्रांत वर्ग के खिलाफ विरोधी भाव प्रकट होने लगे थे। फिर इसी समय मेदियों और बेबीलोनिया की संयुक्त सेना ने असीरियाइयों पर आक्रमण किया और उन्हें ध्वस्त कर दिया। साइआरेक्सेज ने असीरिया पर हमला किया और 612 ई.पू. में मेदों ने बेबीलोनियों के साथ मिलकर इस पर अधिकार कर लिया।

मेदिया राज्य के संगठन या इसके प्रशासनिक ढांचे के सम्बन्ध में कम जानकारी मिलती है। साइआरेक्सेज के बाद उसका पुत्र अस्तयगेश (585-549 ई.पू.) शासक बना। इसके समय में भी मेदियाई साम्राज्य का विकास हुआ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साइआरेक्सेज के समय में मेदियों को एक मजबूत और सुगठित साम्राज्य मिला। उसने अपने

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



साम्राज्य को कबीलों में एकीकृत करके बैक्ट्रिया और असीरिया तक विस्तृत किया। एक स्थायी सेना का निर्माण किया, जिससे इस क्षेत्र का विस्तार हो सका और सेना के रखरखाव के लिए जिन संसाधनों की आवश्यकता थी, उनको उसने जुटाया। बेबीलोनिया से संधि की और उसका लाभ उठाते हुये असीरिया को हराया और उसके प्रमुख शहरों पर कब्जा किया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साइआरेक्सेज मेदिया का एक प्रमुख शासक हुआ, जिसने इसे एक संगठित रूप दिया।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. बेबीलोनिया साम्राज्य के विकास पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–बेबीलोनिया पहले राजवंश के अधिक मेसोपोटामिया पश्चिमी एशिया का सबसे शक्तिशाली राज्य बना। इस राजवंश की स्थापना सुमु-अबुम (1894-1881 ई.पू.) में की। परन्तु हम्मुराबी ने दक्षिणी एशिया को एकीकृत किया और उत्तरी मेसोपोटामिया के बड़े हिस्से पर अपना कब्जा जमाया। यह बेबीलोन वंश का एक साम्राज्य था। इसके बाद इसके उत्तराधिकारी के रूप मे समसु-इलुना ने इस साम्राज्य का विस्तार किया और नये-नये क्षेत्रों को इस साम्राज्य में शामिल किया गया। इस साम्राज्य को प्राचीन बेबीलोनिया साम्राज्य के नाम से जाना जाता है। हालांकि समसु-इलुना के बाद के समय में इस साम्राज्य का ह्रास होना शुरू हुआ, परन्तु बेबीलोन दक्षिणी मेसोपोटामिया का प्रमुख राजनीतिक केन्द्र बना रहा। इसीलिए दक्षिणी मेसापोटामिया को बेबीलोनिया के नाम से जाना जाता है। प्राचीन बेबीलोनिया साम्राज्य के बाद इस क्षेत्र के इतिहास को बेबीलोनिया के इतिहास के नाम से जाना जाता है। बेबीलोन एक प्रमुख एमोराई बस्ती थी, जो उत्तरी मेसोपोटामिया में अक्क और सीरिया से उदित हुई थी। ये एमोराई लोग सामी कबीले से सम्बन्धित थे। इन्होंने प्राचीन बेबीलोनिया साम्राज्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और अक्कादियाई इस साम्राज्य की कई वर्षों तक प्रमुख भाषा रही।

सारगोन और उर के तीसरे राजवंश के राजाओं के नाम मे उभरी राजतन्त्रीय परम्पराओं में बेबीलोनिया साम्राज्य में राजतन्त्र की अवधारणा को विकसित किया गया। इस साम्राज्य पर जैसे हित्ती साम्राज्य का आक्रमण हुआ, तो यह साम्राज्य ढह गया। इसके बाद वहां का शासन एक भारोपीय भाषायी समूह कैसियाई कबीले ने संभाला। इससे पहले यह कबीला जगरोस की पहाड़ियों में बसता था। इन लोगों ने हित्ती आक्रमणों से पहली अव्यवस्था का लाभ उठाया और इस क्षेत्र पर अपना अधिकार करके एक नयी तानाशाही की नींव डाली। कैसियाइयों ने बेबीलोन से शासन किया। उन्होंने मेसोपोटामिया सभ्यता की परम्परा को अपनाया। इसके साथ-साथ इन लोगों ने घोड़े पालने की कला भी सीखी मेसोपोटामिया में घोड़ों को लोकप्रिय बनाने का क्षेत्र इन्हीं कैसियाइयों को दिया जाता है। कैसियाइयों के प्रभुत्व में मुख्य रूप से दक्षिणी क्षेत्र ही था, जबकि उत्तरी क्षेत्र पर अन्य लोगों का कब्जा था, जिनमें मित्तानी प्रमुख थे।

**प्रश्न 2. असीरियाई साम्राज्य के उदय और विकास को समझाइये।**

**उत्तर**–1350 ई.पू. के आसपास असीरियाई साम्राज्य का उदय हुआ और उत्तरी मेसोपोटामिया में यह एक नयी घटना थी, जिसका पश्चिमी एशिया के इतिहास मे अपना स्थान है। पश्चिमी एशिया में एक वृहत् साम्राज्य की स्थापना की, जिसके कारण वे पश्चिमी एशिया में कई वर्षों तक अपने वर्चस्व को बनाये रखने में सफल रहे। इनके साम्राज्य निर्माण के संबंध में यह कहा जाता है कि इन्होंने ही साम्राज्य युग की शुरुआत की। जनजीवन स्थानान्तरण का जो दौर मेसोपोटामिया में शुरू हुआ था। उसी के फलस्वरूप असीरियाई लोग भी मेसोपोटामिया में प्रवेश कर गये। ये लोग ऊपरी टिगरिस क्षेत्र के रहने वाले थे। इनके नाम भी उत्पत्ति अश-शुर के नाम से हुई, जो इन लोगों का प्रमुख देवता था। इनके साम्राज्यों को भी बाद में इसी नाम से जाना जाने लगा। आधुनिक इतिहासकारों ने इनके साम्राज्य के लिए अस्सुर और उनकी राजशाही को और वहां के निवासियों को क्रमश: असीरिया और असीरियाई के नाम से जाना जाता है।

बेबीलोनिया साम्राज्य पर जब हित्ती आक्रमण से अव्यवस्था फैली, तो वहां कैसियाई कबीले का अधिकार हो गया। इनका मुख्य प्रभुत्व 1350 ई.पू. तक दक्षिणी क्षेत्र तक कायम रहा और उत्तरी क्षेत्र में प्रमुख रूप से नियन्त्रण बनाये हुये था। इसी क्षेत्र पर जब मित्तनियों के वर्चस्व का अन्त हुआ तो बाद में असीरियाई साम्राज्य का उदय हुआ। असीरियाई साम्राज्य का विस्तार शलमनेसर-I के शासन काल में पश्चिम की ओर सीरिया तक फैला। इन्होंने दक्षिणी में अपना अधिकार जमाए हुये कबीले कैसाइट पर कब्जा किया और शलमनेसर I के उत्तराधिकारियों ने भी असीरियाइयों को मजबूती प्रदान की और इस साम्राज्य का विस्तार किया। इस वंश का शासन असीरियाई साम्राज्य का विस्तार हुआ और इसको एक सुसंगठित रूप मिला। इसी राज्य ने सीरिया पर कब्जा किया। लेबनान समुद्र तट के किनारे पर बसे फीनिशियाइयों के शहर से इस राजा ने नजराना वसूल किया बेबीलोनिया पर अधिकार किया। और असीरियाई साम्राज्य को पश्चिमी एशिया की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति बना दिया।

असीरियाई साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अशुरनासिरपाल-II को माना जाता है। इसने असीरियाई साम्राज्य के विस्तार को स्थायित्व दिया और इस साम्राज्य को मजबूत आधार प्रदान किया। सीरिया पर इसने कई बार आक्रमण किया। अशुरनासिरपाल II ने अस्सुर के निकट कलहु को अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद इसका पुत्र शलमनेसर II शासक बना और उसने असीरियाई साम्राज्य का

www.neerajbooks.com

विस्तार किया। इस समय में अरमेनिया, सीरिया, फिलिस्तीन और फारस की खाड़ी से सटे कई क्षेत्रों पर आक्रमण किये गये। इसके बाद शलमनेसर III शासक बना और इसके बाद असीरियाई की गद्‌दी पर बैठने वाला तिगलेथपिलेसर था, जो कि महत्त्वपूर्ण शासक माना जाता है। इसके गद्‌दी पर बैठने के प्रारम्भिक समय से असीरियाई शक्ति लगातार बढ़ती जा रही थी। बाद के समय में इस शासक ने असीरियाई शक्ति को संगठित किया और असीरियाई राज्य को उसके उत्कर्ष तक पहुंचा दिया। इसने बेबीलोनिया पर अपने वर्चस्व को पुनः कायम किया। इसने पूर्व में जगरोस पहाड़ी तक अपना अधिकार स्थापित किया और ईरान के मेदिया क्षेत्र पर भी अपना कब्जा बनाया। तिगलेथपिलेसर III ने एक वृहद् साम्राज्य की स्थापना की, जो भूमध्यसागरीय तट से लेकर कैसपियन सागर तक और तौरस तथा जगरोस पहाड़ियों से लेकर फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था। इसके बाद आने वाले शासक सारगोन II के अधीन भी इस साम्राज्य की शक्ति बढ़ती रही। सारगोन II के उत्तराधिकारियों के समय इस साम्राज्य का ह्रास होना शुरू हुआ और यह साम्राज्य नष्ट हो गया।

असीरियाई साम्राज्य में वास्तविक रूप से जो विस्तार और इसकी शक्ति में जो बढ़ोतरी हुई, वह इसके महत्त्वपूर्ण शासकों के कारण हुई, क्योंकि इस पर समय-समय पर एक बढ़कर एक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली शासकों ने शासन किया था।

**प्रश्न 3. कबीलाई देशान्तरण के परिणामस्वरूप ईरान में हुये परिवर्तनों की चर्चा करें।**

**उत्तर**–तीसरी शताब्दी में पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया के पूर्वी भाग में बड़े पैमाने पर कबीलों का देशान्तरण हुआ। कई शताब्दियों से हो रहे कबीलाई स्थानान्तरण के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में नये कबीले आमतौर पर भारोपीय भारतीय-आर्य शाखा के भारतीय यूरोपीय लोग द्वितीय शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध में ईरान में प्रविष्ट हुये। ईरान में इन भारोपीय भाषाइयों की संख्या बढ़ती गई आठवीं शताब्दी ई.पू. के आते-आते ईरान में काफी हद तक भाषायी और सांस्कृतिक समानता देखने को मिलती है।

इस समय इन कबीलों की प्रकृति में भी परिवर्तन आने शुरू हो गये थे और ये अपनी घुमंतू प्रवृत्ति छोड़कर स्थायी जीवन की ओर बढ़ने लगे थे। ईरान के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग कबीलाई समूहों ने अपना अधिकार जमा लिया था और यहां तक कि यह क्षेत्र उस कबीले के नाम से ही जाना जाने लगा था। मेदिया कबीला समूह कैसपियन सागर के दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र में रहने लगा। भाषायी रिश्तों के साथ-साथ इन कबीलों की सांस्कृतिक और धार्मिक परम्पराओं में भी समानता देखने को मिलती है। पारसी धर्म ने ईरान के अन्य क्षेत्रों में बसे ईरानी कबीलों को एक सूत्र में बांधने का कार्य किया।

इन कबीलों ने ईरान में पहले से बसे लोगों की अपेक्षा ईरानी संसाधनों का बेहतर ढंग से उपयोग किया और इन कबीलों ने पशुपालन को अपने जीवन का मुख्य आधार बनाया। मेदिया कबीले के लोग घोड़े पालते थे और घोड़े पालने में उन्हें महारत हासिल थी। इसी प्रकार बैक्ट्रिया के लोग ऊंट पालने में विशेषज्ञता रखते थे। जहां सूखा या अर्द्ध-सूखा क्षेत्र था, वहां भेड़ और बकरी पालने का कार्य किया जाता था। इस प्रकार पशुपालक भी इन कबीलों की सहायता से एक-दूसरे से जुड़ते चले गये। इतिहासकार इस बात पर बल देते हैं कि ईरान मे घोड़े और ऊंट पालन से ईरानी अर्थव्यवस्था को बहुत फायदा हुआ। इससे व्यापार में सहायता मिली। इसकी सहायता से यात्रा करना आसान हो गया। समान ढोने में आसानी हुई, जिससे व्यापारिक लेन-देन बढ़ा। घोड़ों और ऊंटों की सहायता से कबीले के आवागमन की गति बढ़ती गई। इसका उदाहरण हमें मेदिया साम्राज्य को स्थापित करने में मिलता है। मेदियाइयों को घोड़ों के कारण प्रारम्भ में आर्थिक और सैन्य सहायता मिली, जिसकी मदद से उन्होंने साम्राज्य की स्थापना की। कृषि कार्य करने के लिए इन कबीलों ने सिंचाई तकनीक को खोजा, जिससे पानी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जा सके, क्योंकि अब ये कबीले अपना घुमंतू जीवन छोड़कर स्थायी जीवन में आ गये थे और आजीविका के लिए कृषि तथा पशुपालन पर बल देने लगे थे। पानी के लिए नहरें बनायी गयीं। इन नहरों से पूरे क्षेत्र को जोड़ा गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईरान में इन कबीलों के आने से वहां कृषि, सामाजिक, आर्थिक संगठन का विकास हुआ। नयी तकनीकों की सहायता से ज्यादा संसाधनों का प्रयोग हो सका, जिससे ईरानी अर्थव्यवस्था में मजबूती आयी। व्यापार को बढ़ावा मिला, जिसमें घोड़ों और ऊंटों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

# फारसी साम्राज्य

# 11

## परिचय

फारसी साम्राज्य एक वृहद् और विकसित साम्राज्य था, जिसमें पश्चिमी एशिया, अनातोलिया और मिस्र शामिल था। यह साम्राज्य 250 वर्षों तक कायम रहा और सिकन्दर के आक्रमण (331 ई.पू.) के साथ ही इस साम्राज्य का अन्त हुआ।

ईरान में सबसे पहले मेदियाइयों ने साम्राज्य की स्थापना की। परन्तु पहला ईरानी विश्व साम्राज्य स्थापित करने का श्रेय अकामेनिदियाइयों को है। इन लोगों ने मेदियाइयों को हराया और पश्चिमी एशिया, अनातोलिया और मिस्र को मिलाकर एक बड़े साम्राज्य की नींव डाली। यह उस समय के विश्व का सबसे बड़ा राज्य था जिसमें अकामेनिदियाई मूलतः परसा या परसिया के रहने वाले थे, जो ईरान के फार्स (परसा) का क्षेत्र था। इसीलिए इनके साम्राज्य को परसिया (फारस) कहा जाने लगा। इस साम्राज्य की स्थापना, प्रसार और सुदृढ़ीकरण करने में 50 साल लगे। इस अध्याय में इस साम्राज्य के विभिन्न शासकों अन्तर्गत विकास, धर्म, भाषा, मुद्रा- व्यवस्था आदि पर प्रकाश डाला गया है।

इस साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण करने में साइरस महान और दारियस प्रथम का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इन शासकों के अन्तर्गत इस साम्राज्य के विकास की चर्चा की गई है। साइरस महान ने इस साम्राज्य की नींव मेदियाई शासक अस्तयगेश को अपदस्थ करके रखी। साइरस को साइरस महान उसे अन्य शासकों से अलग करने के लिए कहा जाता है। यह कोई उसकी उपाधि नहीं थी। साइरस ने अस्तयगेश को अपदस्थ तो किया, परन्तु मेदियाई साम्राज्य की कई विशेषताओं को भी अपने साम्राज्य में बनाए रखा, क्योंकि अस्तयगेश के अपदस्थ होने के परिणामस्वरूप मेदियाई साम्राज्य का तुरन्त अंत नहीं हो पाया था। साइरस के मेदियाई और कारली कबीले के संघों का एकीकृत राजत्व शामिल किया, क्योंकि साइरस को अस्तयगेश को अपदस्थ करने में मेदियाई कुलीन तन्त्रों का सहयोग भी मिला था। साइरस ने अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद पश्चिमी एशिया में जो रिक्तता की स्थिति आयी थी, उसका लाभ अकामेनिदियाइयों ने उठाया और अपने साम्राज्य का विस्तार तेजी से करना शुरू किया। साइरस का पहला अभियान अनातोलिया पर हुआ, फिर मेसोपोटामिया पर आक्रमण किया गया। साइरस के समय बेबीलोनिया पर नेबोनिदस नामक शासक शासन करता था। 539 ई.पू. में साइरस ने बेबीलोनिया पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। पश्चिमी एशिया के इतिहास में इस घटना को एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप देखा जाता है, जिसका उल्लेख हमें ओल्ड टेस्टामेंट व अन्य कई समकालीन ग्रन्थों में मिलता है। नेबोनिदस के अभिलेखों में भी इस घटना का जिक्र मिलता है। बेबीलोनिया पर कब्जा करने के बाद मेसोपोटामिया, सीरिया, फिलिस्तीन में बेबीलोनियाई क्षेत्र भी अकामेनिदियाई साम्राज्य के अन्तर्गत आ गये। इस प्रकार साइरस ने पश्चिमी एशिया में मेसोपोटामिया से ईरान की ओर राजनैतिक प्रभुत्व के परिवर्तन की उस प्रक्रिया को पूरा किया, जिसकी शुरुआत मेदियो ने की थी। बैक्ट्रिया भी साइरस के साम्राज्य में शामिल था और उसकी मृत्यु के समय तक उसके शासन का विस्तार हिन्दूकुश की सीमा की पहाड़ियों तक हो गया था। साइरस की मृत्यु 529 ई.पू. में हो गयी।

साइरस की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कैम्बिसेस (529-522 ई.पू.) में शासक बना। उसके विषय में ज्यादा जानकारी नहीं मिलती है। अपने शासन काल में वह मिस्र अभियानों में व्यस्त रहा और इसने मिस्री साम्राज्य को अकामेनिद साम्राज्य में मिला लिया और वहाँ के शासक समटेक III को परास्त किया। यूनानी साहित्य में उसे पागल, सनकी और क्रूर शासक बताया गया है, जिसके मन में मिस्र की परम्पराओं के लिए कोई सम्मान नहीं था। परन्तु मिस्र से मिले प्रमाणों के आधार पर इन आरोपों की पुष्टि नहीं होती है। मिस्र पर कब्जा कर लेने के बाद कैम्बिसेस ने अपनी सत्ता को वैधानिक दर्जा दिलवाने के लिए वहाँ सम्राट् से जुड़े कुछ प्रतीकों को अपनाया, ताकि वहाँ की जनता उसमें विश्वास करे और उसे अपना शासक ही समझे। अकामेनिदियाइयों का शासन मिस्र में तब तक चलता रहा, जब तक कि सिकन्दर ने मिस्र पर अधिकार नहीं कर लिया। कैम्बिसेस ने मिस्र के आसपास के क्षेत्रों पर भी सैन्य अभियान किये। इन अभियानों के बहुत खतरनाक और घातक परिणाम उसके सामने आये। इन पराजयों के परिणामस्वरूप

www.neerajbooks.com



ईरान में उसकी स्थिति डगमगा गयी। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि उसे अपने राज्य के अन्तर्गत भी विद्रोह का सामना करना पड़ा। कैम्बिसेस के शासन के अन्तिम वर्षों में अकामेनिदियाई राज्य की राजनैतिक स्थिति संकटग्रस्त हो गयी और विद्रोह हुये। इसमें से अन्तिम विद्रोह कुछ प्रमुख अकामेनिद अधिकारियों का था, जिसका उल्लेख हमें 'सात सरदारों' के विद्रोह के रूप में मिलता है और इसका नेता दारिसय I था। वह सत्ता पलटने में सफल हुआ और 522 ई.पू. में वह अकामेनिदियाई साम्राज्य का शासक बना।

दारियस I हितस्ताप्स का पुत्र था। यह अकामेनिदियाइयों में सबसे महत्त्वपूर्ण शासक हुआ। इसने साइरस और कैम्बिसेस के द्वारा जीते गये क्षेत्रों को सुगठित और सुनियोजित किया व एक स्थिर साम्राज्य की नींव डाली। 522 ई.पू. तक दारियस I ने विद्रोहों को दबा दिया और अकामेनिदियाई सत्ता पर पकड़ मजबूत की। दारियस I ने साम्राज्य प्रसार की नीति को जारी रखते हुये पूरब और पश्चिम की ओर अभियान किये। पूरब में उसका साम्राज्य हिन्दूकुश की पहाड़ियों तक पहुँच गया था। इस क्षेत्र के राज्यों को अकामेनिदियाई साम्राज्य का अंग बना लिया गया। एजियन सागर तट का हिस्सा फारसी नियंत्रण में आ गया था। फारस की खाड़ी, लाल सागर, पूर्वी भूमध्यसागर, एजियन सागर के तटीय इलाकों पर भी फारसी नियंत्रण मजबूत हुआ। दारियस I के आरम्भिक शासन काल के सम्बन्ध में पश्चिमी ईरान में बेहिस्तुन में एक चट्टान पर लिखे अभिलेख से महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली है। यह एक त्रीभाषीय अभिलेख है। यह पुरानी फारसी, इलामाइत और बेबीलोनियाई भाषा में लिखा गया है। इस अभिलेख से कीलाकार लिपि को पढ़ने की शुरुआत हुई। इस शिलालेख के साथ दारियस I का एक चित्र भी है।

दारियस I ने अपने साम्राज्य के विद्रोहों को दबाने के बाद थ्रेस पर आक्रमण किया। मरमरा सागर पार करके वह यूरोप पहुँचा और थ्रेस के धुर दक्षिण में अपनी फारसी सेना का पड़ाव स्थल बनाया और स्पार्टा सहित सभी यूनानी राज्यों को अपनी अधीनता स्वीकार कराने के लिए दारियस I ने पत्र भेजे। यूनानियों ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसके बाद दारियस I को अपना ध्यान अनातोलिया में आयोनियाई राज्य की ओर कन्द्रित करना पड़ा। इस राज्य पर लम्बे संघर्ष के बाद दारियस I का अधिकार हो गया। दारियस I ने अपनी कूटनीति से यूनानी संभ्रांतों को अपने पक्ष में मिला लिया। क्योंकि जब यूनानी राज्यों पर कब्जा हुआ, तो इस संभ्रांतों को प्रांतीय प्रशासन और सेना में प्रमुख पद दिये गये। दारियस I की मृत्यु 490 ई.पू. में हुई और इसके बाद इसके पुत्र जेरेक्स I ने शासन किया।

जेरेक्स I ने योजनाबद्ध तरीके से यूनान पर फिर से आक्रमण किया। इसके लिए उसने व्यापक तैयारी भी की थी; जैसे-आपूर्ति स्थलों का निर्माण कराया, सड़कें बनवायीं, पुलों का निर्माण कराया और नये दोस्त बनाये। जेरेक्स I ने समुद्र और जमीन दोनों तरफ से आक्रमण किया। यूनानी सेनाओं की विजय हुई। इन पराजयों के बाद फारसी सेनाएं यूनान के केन्द्रीय भाग से पूरी तरह हट गयीं। इस क्षेत्र में दूसरा फारसी आक्रमण नहीं हुआ, परन्तु अकामेनिदियाई यूनानियों के लिए खतरे के रूप में अवश्य बने रहे। अनातोलिया के सम्बन्ध में अपनी उपस्थिति के कारण यूनानी और फारसियों के हित आपस में टकराते थे।

दारियस I के समय में फारसी साम्राज्य उस समय के विश्व का सबसे बड़ा राज्य था। इसमें एशिया माइनर, अरमेनिया, फिलीस्तीन, सीरिया, मेसोपोटामिया, मिस्र, फारसी, अरबिया का उत्तरी हिस्सा अफगानिस्तान, तुर्कीस्तान, अजबोइजान, उज्बेकिस्तान, तजाकिस्तान, मकदून तथा सिन्धु घाटी के कुछ हिस्से तथा छोटे-छोटे क्षेत्र शामिल थे। इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने के लिए एक कुशल प्रशासक की आवश्यकता थी, जिससे राज्य को नियंत्रित और सुगठित रखा जा सके। इसके लिए दारियस I द्वारा उठाये गये कदम महत्त्वपूर्ण थे। इसने इस साम्राज्य का पुनर्गठन किया और जो क्षेत्र दूर थे, उन्हें एक राजनैतिक इकाई के रूप में गठित किया गया तथा नियंत्रित किया गया। नजराना वसूलने के लिए एक नियमित व्यवस्था बनाई गई, ताकि राज्य के केन्द्रीकृत प्रशासनिक ढांचे और विशाल सेना के रखरखाव का खर्च आसान हो सके। दारियस I ने एक शक्तिशाली और समृद्ध राजतंत्रीय राज्य के रूप में फारसी साम्राज्य को परिवर्तित किया। इसमें से शासकीय संभ्रांत वर्ग के लोगों के पास बहुत दौलत इकट्ठी हो गयी। ये लोग फारसी परिवारों से थे। इनमें से अधिकांश दारियस I के नजदीकी थे, जिन्होंने राजनैतिक सत्ता और केन्द्रीय सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत बना ली थी।

फारसी साम्राज्य को विभिन्न राज्यों में विभाजित किया गया, जिसे सत्रप (Satraps) कहा जाता था। यह प्रथा कोई नयी नहीं थी। यह मेदियाई युग से ही चली आ रही प्रथा थी। ये प्रशासनिक इकाइयाँ केवल जीते गये क्षेत्रों में ही स्थापित की जाती थी। दारियस I ने इन सत्रपियों को प्रशासन की आधारभूत इकाई के रूप में स्थापित किया। इन सत्रपियों का नाम वहाँ के निवासियों के समूह पर रखा गया था। इनका प्रशासक अर्द्ध-स्वायत्त राजा था। फिर राजा द्वारा नियुक्त उच्च पदाधिकारी होता था। परन्तु राजा अपने सैनिक-असैनिक अधिकारियों द्वारा इन सत्रपियों पर निगाह रखता था और उन पर नियंत्रण बनाये रखता था।

सत्रपियों को यह निर्देश दिया जाता था कि वे केन्द्रीय सम्राट् के सम्पर्क में रहें और उससे पत्र-व्यवहार करते रहें। इन पर नियंत्रण रखने के लिए 'श्रोता' नामक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी, जो राज्य के कान की तरह होता था। वे प्रान्तों से प्रत्येक खबर केन्द्र को भेजते थे और इन सत्रपियों में व्यवस्था और कानून बनाये रखते थे।

चूंकि फारसी साम्राज्य अधिक विस्तृत था, इसी कारण साम्राज्य के किसी एक भाग से इस पूरे साम्राज्य पर शासन करना बड़ा

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मुश्किल कार्य था। इसी परेशानी से बचने के लिए राजा अपने मुख्य प्रशासनिक केन्द्र को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलता रहता था। आरम्भिक अकामेनिदियाइयों ने भी यही किया। दारियस और उसके उत्तराधिकारियों के अधीन दक्षिणी-पश्चिमी ईरान में सूसा राजधानी के रूप में उभरा। दारियस ने यहां एक बहुत बड़ा महल बनवाया और इसे राजधानी के रूप में विकसित करने का प्रयास किया। अकामेनिदियाई शासकों को परसेपोलिस के निकट नक्श-ए-रुस्तम नामक स्थान पर दफनाया गया है। परसेपोलिस, पसरगदाई शहर के निकट था और इस शहर की स्थापना साइरस महान ने की थी तथा अपनी राजधानी के रूप में विकसित किया था। आरम्भिक अकामेनिदों की पुरानी मेदियाई राजधानी एकबातना भी प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र थी। इस प्रकार फारसी साम्राज्य की राजधानी समय-समय पर बदलती रही।

दारियस I को यह भी श्रेय जाता है कि उसने अकामेनिदियाई साम्राज्य में एकीकृत सिक्का व्यवस्था शुरू की। मानवीकृत माप और तौलों की व्यवस्था की और एक नयी लिपि का विकास करके साम्राज्य का एकीकरण करने का प्रयास किया। धातु के बने सिक्कों के चलने से अकामेनिदियाई साम्राज्य की आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तन हुए। व्यापार-विनिमय को बढ़ावा मिला। आर्थिक लेनदेन आसान हुए। लीदिया पर कब्जा करने का फायदा अकामेनिदियाई साम्राज्य को निश्चित रूप से मिला, क्योंकि लीदिया नियमित रूप से सिक्का जारी करने वाला विश्व का सबसे पहला राज्य था इस समय सिक्का ढालना एक कठिन कार्य था। सिक्कों पर उस राज्य की मुहर होती थी और यह सरकार की सत्ता को व्यक्त करती थी। सिक्कों का मूल्य, उसके आकार, वजन और शुद्धता के अनुरूप होता था और राज्य इस पर अपनी मुहर लगाकर इसकी शुद्धता की पुष्टि करता था और इस तरह सिक्के के जारी करने की एक लम्बी प्रक्रिया होती थी।

चांदी को मानकीकरण का मुख्य आधार बनाया गया था। विनिमय के लिए धातु का प्रयोग होता था तथा बिना सिक्का ढाले ही इस धातु से विनिमय किया जा सकता था। परन्तु अनातोलिया में सिक्का मानकीकरण का आधार प्रारम्भ में चांदी की बजाय सोना था, जो लीदियाई प्रभाव के कारण था। राज्य ने सोने और चांदी दोनों धातुओं के सिक्के जारी किये और दोनों के बीच निश्चित विनिमय दर कायम की गई । सोने और चांदी दोनों धातुओं के सिक्कों पर भी राज्य गारंटी देता था। सिक्का ढलाई के परिणामस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों में तेजी आई। राज्य के लिए अब एक बड़ा व्यापारिक बाजार बना, क्योंकि अब लेन-देन आसान हो गया था और वस्तु-विनिमय से अब मुद्रा व्यवस्था कायम होने लगी थी।

अकामेनिदियाई साम्राज्य बहुत बड़ा था और इसमें विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले लोग रहते थे। इस राज्य के लिए एक सम्पर्क भाषा को विकसित करने का कार्य दारियस I ने ही किया। उसने एक सम्पर्क भाषा विकसित करने के लिए एक नीति बनाई। इस साम्राज्य में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा आरमाइक थी। यह मूलत: उत्तरी मेसोपोटामिया के कुछ कबीलों की भाषा थी। असीरियाई साम्राज्य में भी आरमाइक भाषा का प्रयोग तेजी से हुआ और कालान्तर में इस भाषा का प्रयोग बेबीलोनियाई साम्राज्य में भी होने लगा। फारसी साम्राज्य की स्थापना के समय आरमाइक भाषा मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलीस्तीन की जन भाषा थी और पश्चिमी व्यापार के रूप में भी इसी भाषा का प्रयोग किया जाता था। दारियस I और उसके उत्तराधिकारियों ने इस भाषा को प्रोत्साहन दिया और आरमाइक लिपि का विकास हुआ। आरमाइक आम प्रजा की भाषा थी वहीं फारसी अकामेनिदियाई साम्राज्य के संभ्रांत लोगों की भाषा की थी और यह इस राज्य की सरकारी भाषा थी। पुरानी फारसी में ही अभिलेख व राजाज्ञाएं लिखी जाती थीं।

फारसी साम्राज्य का विस्तार लगातार होता रहा और यह उस समय के विश्व में सबसे बड़ा राज्य बना और इसके विस्तार के परिणामस्वरूप भिन्न क्षेत्रों को इसमें मिलाया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि यहां विभिन्न मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों में आस्था रखने वाले भिन्न-भिन्न लोग रहने लगे। इन लोगों के प्रति भी अकामेनीदियाई शासकों ने भी उदारवादी रूप अपनाया और यह धार्मिक सहिष्णु राज्य बना रहा। हालांकि इस बात के प्रमाण भी मिलते हैं कि दारियस I के समय में जरथुस्त्रवाद संभ्रांत वर्ग के लोगों का प्रमुख धर्म बन गया था। परन्तु सामान्य जनता अपनी धार्मिक परम्पराओं मान्यताओं में जिन-जिनको भी वह मानते थे, इस समय भी उन्हीं को मानते रहे। साइरस का झुकाव जरथुस्त्रवाद की ओर था। परन्तु यह केवल व्यक्तिगत रूप से ही हो सकता है। इस संबंध में हमारे पास कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। दारियस I के समय में जरथुस्त्र फारसी शासकीय वर्ग का प्रमुख धर्म बन गया था। जरथुस्त्र का उदय सातवीं शताब्दी ई.पू. या उससे भी पहले हुआ था। पैगम्बर जरथुस्त्र ने अपने धर्म की प्रमुख शिक्षाओं को प्रसारित किया था। जरथुस्त्रवाद की ओर झुकाव होने के बावजूद साइरस ने अपनी जनता पर इस धर्म को जबरदस्ती पालन करने के लिए या पूरे राज्य के राजधर्म के रूप में लागू नहीं कराया। वह उदारवादी ही बना रहा। वह यूनानी देवी-देवताओं का भी सम्मान करता था। दारियस I के शासन काल में एक अभिलेख से इस बात की जानकारी मिलती है कि वह अपोलो का बहुत आदर करता था और दारियस I के उत्तराधिकारियों के संबंध में भी यही बात देखने को मिलती है कि वे भी उदारवादी बने रहे और जो लोग ईरानी पंथ को नहीं मानते थे, उनके साथ कोई जबरदस्ती नहीं की थी, परन्तु जरथुस्त्र राजधर्म के रूप में उभरा। यह राजतंत्र पर अपनी पकड़ बनाने लगा। परन्तु ऐसा इस राज्य के अंत तक नहीं हुआ कि यह धर्म जबरदस्ती लोगों पर थोपा गया हो। शासक अंत तक उदारवादी ही बने रहे।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अकामेनिदियाई साम्राज्य उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरता रहा और इस प्रकार यह अपना अस्तित्व 200 वर्षों तक बनाए रखने में सफल रहा। शासक की मृत्यु के बाद जो प्रान्त थे, जिन्हें सत्रपी कहा जाता था, वहां विद्रोह अवश्य होते थे। परन्तु इनको दबा दिया जाता था। सीमाओं पर लड़ाई होती थी। राज्य की सीमाओं में भी इन लड़ाइयों के परिणामस्वरूप परिवर्तन आते रहते थे। परन्तु यह सब होने के बावजूद भी राज्य को कोई अधिक नुकसान नहीं उठाना पड़ा और यह अपना अस्तित्व दो शताब्दियों तक बनाए रखने में सफल रहा, जिसमें कई महत्त्वपूर्ण शासक हुये और इस साम्राज्य को विस्तारित व सुगठित बनाने में अपना योगदान दिया। राज्य की भाषा, सिक्का, धर्म आदि को एक सुसंगठित रूप प्रदान किया। इस फारसी साम्राज्य का अंत उस समय हुआ, जब इस राज्य पर दारियस III शासन कर रहा था। इसी के समय में इस राज्य पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ और उसने इस राज्य का अंत कर दिया। सिकन्दर जब सीरिया की ओर बढ़ा, तो उसने 333 ई.पू. में इसस नामक स्थान पर दारियस III की नेतृत्व वाली फारसी सेना को हरा दिया। 331 ई.पू. में सिकन्दर ने उससे मिस्र भी छीन लिया। इसके बाद सिकन्दर टिगरिस की ओर बढ़ा और इसे पार करने के बाद 331 ई.पू. में गउगमेला की लड़ाई में दारियस III को मात दी। दारियस III भाग कर एकबातना चला गया। सिकन्दर का बेबीलोनिया, सुसा और परसेपोलिस पर कब्जा हो गया। फारसी साम्राज्य के अंत की घोषणा करते हुए सिकन्दर ने परसेपोरेलिस को ध्वस्त कर दिया। 300 ई.पू. में दारियस III की हत्या कर दी गई और सम्पूर्ण अकामेनिदियाई साम्राज्य पर सिकन्दर महान का अधिकार हो गया। इस प्रकार 200 वर्षों से चले आ रहे फारसी साम्राज्य का अंत हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त चर्चा में हमने यह जानने की कोशिश की है कि किस प्रकार फारसीवाद साम्राज्य का उदय, विकास और उसका सुदृढ़ीकरण हुआ। इसके निर्माण में कई राजाओ ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, परन्तु इनमें से साइरस महान और दारियस I का योगदान अधिक महत्त्वपूर्ण है। साम्राज्य को सत्रपी नामक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित करने से साम्राज्य के स्थायित्व को बल मिला और इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करना आसान हो गया। इन सत्रपियों में अर्द्धस्वायत्त या राजा के उच्च पदाधिकारी शासक होते थे, जो केन्द्र को नियमित रूप से नजराना भेजते थे, जिससे विशाल सेना का भरण-पोषण हो पाता था। एक मजबूत नौकरशाही की व्यवस्था की गई थी, जो प्रशासन के कार्यों को सम्भालते थे। एक मानकीकृत मुद्रा व्यवस्था बनाई गई। चांदी को मानक मुद्रा के रूप में अपनाया गया, जिससे व्यापार और वाणिज्य गतिविधियों को बढ़ावा मिला और आरम्भिक लिपि का विकास हो सका व विभिन्न भाषा बोलने वाले लोगों को एक सम्पर्क भाषा मिली, जिससे लोग एक-दूसरे के करीब आये। जरथुस्त्र को राज्य के प्रमुख धर्म के रूप में मान्यता मिली, परन्तु इसे लादा नहीं गया। आम जनता किसी भी धर्म को मान सकती थी और शासक इसके प्रति उदार ही बने रहें। इस प्रकार, फारसी साम्राज्य 200 वर्षों तक फलता-फूलता रहा, जब तक सिकन्दर ने इस राज्य को जीत नहीं लिया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. साइरस और दारियस I के शासनकाल में फारसी साम्राज्य के प्रसार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर–**फारसी साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार और सुदृढ़ीकरण करने में 50 वर्षों से भी अधिक का समय लगा। इस कार्य में कई शासकों ने अपना योगदान दिया। परन्तु इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान साइरस और दारियस I का है।

साइरस ने ही फारसी साम्राज्य की नींव डाली। उसने अस्तयगेश को अपदस्थ करके इस साम्राज्य की नींव डाली, जो कि मेदियाई साम्राज्य का शासक था और साइरस उसका अधीनस्थ था। साइरस ने अपने व्यक्तित्व में मेदियाई और फारसी कबीले के संघों का एकीकृत राजत्व शामिल किया। मेदियाई शासक को अपदस्थ करने में साइरस का साथ कुछ मेदियाई कुलीन तन्त्रों ने भी किया था। इसी कारण इन कुलीनतन्त्रों को साइरस ने अपने साम्राज्य में अच्छे पदों पर नियुक्त किया और इसके राज्य में मेदियाई और फारसी दोनों सभ्यताओं का मिश्रण देखने को मिलता है। परन्तु धीरे-धीरे इस साम्राज्य में फारसी तत्त्वों का वर्चस्व बढ़ने लगा और राज्य केन्द्रीकृत होने के साथ धीरे-धीरे यह शक्तिशाली होता चला गया। अपनी स्थिति को मजबूत करने के बाद साइरस ने अकामेनिदियाई साम्राज्य का विस्तार करने की योजना बनायी और उसके हाथ एक अवसर भी लगा, जब पश्चिमी एशिया में असीरियाई साम्राज्य की समाप्ति हुई, तो यहां रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गई, जिसका लाभ उठाते हुए साइरस ने यहां अपना कब्जा जमा लिया तथा इस क्षेत्र पर अकामेनिदियाइयों का शासन स्थापित किया। बेबीलोनिया में नेबुछदनेज्जर II शासन करता था। बेबीलोनिया के पास अपने इस साम्राज्य को ज्यादा दिनों तक कायम रखने के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे और मेदियाई शासक अस्तयगेश के समय इसमें समय-समय पर घुसपैठ होती रहती थी। नेबुछदनेज्जर II के उत्तराधिकारी इस घुसपैठ को रोकने में असमर्थ रहे और अंत में उन्होंने अकामेनिदियाइयों के समक्ष घुटने टेक दिये। इस प्रकार साइरस के समय में असीरियाई साम्राज्य भी फारसी साम्राज्य में मिला दिया गया। साइरस अनातोलिया को भी जीतना चाहता था। मेदियाई शासक अनातोलिया के राज्य को अपने राज्यों के अधीन लाने का प्रयास कर रहे थे। इन राज्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण था लीदिया राज्य। साइरस ने सबसे पहले अमेनिदियाइयों को लीदिया के खिलाफ विद्रोह करने के लिए उकसाया, जो उसकी एक कूटनीतिक चाल थी। जब वह इसमें सफल नहीं हो सका, तो उसने लीदिया पर सीधे आक्रमण कर दिया और 545 ई.पू. में यहां के शासक क्रोएसस को हराकर लीदिया और पश्चिमी अनातोलिया के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अधिकांश हिस्से पर कब्जा कर लिया। इस विजय के बाद अमेनिदियाई राज्य को भी परास्त करके अपने साम्राज्य के कब्जे में ले लिया। इस तरह साइरस का साम्राज्य एजियन सागर तट तक फैल गया। अनातोलिया में सारदिस आरम्भिक लीदियाई राजधानी थी।

अकामेनिदियाई प्रसार के दूसरे चरण में मेसोपोटामिया पर आक्रमण किया गया। साइरस के समय में बेबीलोनिया पर नेबोनिदस का शासन था। 539 ई.पू. में साइरस ने बेबीलोनिया पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। प्राचीन पश्चिमी एशिया में इस घटना को एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में देखा जाता है। इस घटना का उल्लेख ओल्ड टेस्टामेंट सहित कई समकालीन साहित्य ग्रंथों में मिलता है। साइरस ने उन यहूदियों को भी वापस बुला लिया, जिन्हें नेबुछदनेज्जर II ने अपने शासन काल में जबरन बेबीलोनिया भेज दिया था। यह नीति साइरस की मिस्र, सीरिया, फिलीस्तीन में अपने सम्बन्धों को दोस्ताना सम्बन्ध के रूप में प्रकट करने के लिए अपनाई गई। साइरस के इस कदम से उसे न्यायप्रिय और सहिष्णु शासक के रूप में ख्याति मिली। साइरस ने विभिन्न लोगों के सम्बन्ध में धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के मामले में एक उदार नीति अपनाई। बेबीलोनियाई परम्पराओं का भी उसने सम्मान किया। इसी कारण बेबीलोनियाई लेखक उसकी प्रशंसा करते हैं। साइरस ने बेबीलोन, मेसोपोटामिया, सीरिया, फिलीस्तीन आदि क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। साइरस ने पूर्व की ओर अकामेनिदी अभियान जारी किया, उसकी जानकारी हमें पूर्ण रूप से नहीं है। बैक्ट्रिया पर भी सम्भवत: उसने अधिकार लिया था। साइरस की मृत्यु तक अकामेनिदियाई साम्राज्य का विस्तार हिंदूकुश पर्वत तक पहुँच गया था। 529 ई.पू. में साइरस की मृत्यु हो गयी थी।

साइरस की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कैम्बिसेस (529-522 ई.पू.) शासक बना। इसके बाद अकामेनिदियाई साम्राज्य की बागडोर दारियस I (522-486 ई.पू.) के हाथों में आयी। इसने इस साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण में अपना विशेष योगदान दिया। सिक्कों का चलन, भाषा, धर्म आदि के सम्बन्ध में इसने अपनी महत्त्वपूर्ण नीति अपनाई। यह अकामेनिदियाई शासकों में सबसे महत्त्वपूर्ण शासक सिद्ध हुआ। इसी ने साइरस और कैम्बिसेस द्वारा जीते गये क्षेत्र को सुगठित और सुनियोजित किया और एक सफल साम्राज्य का निर्माण किया। दारियस I ने अपने साम्राज्य में हो रहे विद्रोहों को दबाकर सत्ता पर अपना कब्जा प्रकट किया। दारियस I ने अपनी प्रसार की नीति को पूरब और पश्चिम दोनों दिशाओं में लागू किया। पूरब में उसके साम्राज्य की सीमाएं हिन्दूकुश पर्वत की पहाड़ियों तक पहुँच गयी थी और इन क्षेत्रों पर कब्जा करके उसने इन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया था। पश्चिम में एजियन सागर तट का अधिकांश हिस्सा और थ्रेस तक का हिस्सा साम्राज्य का भाग बन चुका था। फारस की खाड़ी लालसागर, पूर्वी भूमध्यसागर और एजियन सागर के तटीय इलाकों पर भी दारियस I का नियन्त्रण हो चुका था। दारियस I ने फारस की खाड़ी में जहाज रखने शुरू किये और अनातोलिया के सागर तट पर उसने नौसेना तैनात की, जिसने साम्राज्य को सुदृढ़ किया कि इसके ऊपर अपना नियन्त्रण मजबूत किया जा सके। दारियस I ने यूनान के मुख्य भूमि वाले राज्यों पर भी कब्जा कर लिया था। परन्तु वह यूनानियों को पूरी तरह समाप्त न कर सका और ये फारस को समय-समय पर चुनौती देते रहे। इतिहासकार *हेरोडोटस* ने फारसियों और यूनानियों के सम्बन्ध में लिखा है। उसने इसके बीच हुई एक लड़ाई का जिक्र किया, जो कि अकामेनिदियाइयों के बारे में जानने का प्रमुख स्रोत है। हेरोडोटस ने मुख्य रूप से यूनानी राज्यों के खिलाफ फारसी सैन्य अभियानों की चर्चा की। अनातोलिया पहले से ही अकेमेनिदियाई साम्राज्य का हिस्सा था और फारसी राज्यों को अपने राज्यों में हराकर उन पर कब्जा जमाकर यूनानी दुनिया में अपने हाथ-पैर जमा चुके थे। फारसियों को यूनानियों पर अपना अधिकार कायम करने में बहुत लम्बा समय लगा। दारियस I ने थ्रेस पर आक्रमण किया। उसने मरमरा सागर पार करके यूरोप और थ्रेस पर दक्षिण में अपनी सेना का पड़ाव डाला। इसी समय उसने स्पार्टा सहित यूरोप के सभी राजाओ को अपनी अधीनता स्वीकार कराने के लिए पत्र भेजे। यूनानियों ने इसे स्वीकार नहीं किया, तो दारियस I ने अनातोलिया में आइयोनियाई राज्यों की ओर बढ़ा, क्योंकि इन राज्यों ने 499 ई.पू. में पारसियों के खिलाफ विद्रोह किया था। आइयोनियाई विद्रोह छ: वर्षों तक चला था और अन्त में इसे कुचल दिया गया था। यूनान के कुछ राज्यों ने आइयोनियाइयों का समर्थन किया, जो यूनान के केन्द्र में स्थित राज्य थे। इसी कारण दारियस I ने यूनान के केन्द्रीय भाग पर पूरी ताकत के साथ चढ़ाई की। थ्रेस पर पहले से ही अधिकार हो चुका था और यहीं से पारसियों ने मेसिडोनिया और एथेन्स पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ना शुरू किया। फारसियों ने यूनान के कुछ संभ्रांतों को अपनी ओर मिला लिया था। क्योंकि जब यूनान पर फारसियों का कब्जा हुआ और इसे फारसी साम्राज्य में मिला लिया गया, तो इन संभ्रांतों को प्रशासन में प्रमुख पद प्रदान किये गये। इसके बावजूद भी दारियस I का यह अभियान सफल नहीं हुआ, क्योंकि 490 ई. पू. की एथेन्स की लड़ाई में फारसी सेना को एथेन्स ने पराजित किया था।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि साइरस और दारियस I के समय में फारसी साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ था। इन राजाओं ने फारसी साम्राज्य को उसके उत्कर्ष की ओर पहुँचाया।

**प्रश्न 2. अकामेनिद साम्राज्य में सत्रपियों की व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए।**

**उत्तर**–दारियस I के समय में अकामेनिद साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ। यह साम्राज्य एशिया माइनर, अरमेनिया, फिलीस्तीन, सीरिया, मेसोपोटामिया, मिस्र, फारस, अरबिया का उत्तरी हिस्सा, अफगानिस्तान, तुर्कीस्तान, अजबोइजान, उजबेकिस्तान, तजाकिस्तान,

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मकदून और सिन्धु घाटी के कुछ हिस्से तथा कई बड़े-बड़े क्षेत्रों तक फैला हुआ था। इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने के लिए एक प्रभावी शासनतंत्र का होना जरूरी था, जिससे शासन सुचारु और नियन्त्रित रूप से चलाया जा सके। उसने पूरे साम्राज्य को विभिन्न राज्यों में विभक्त किया, जिन्हें सत्रपी कहा जाता था। यूनानी ग्रन्थों में भी फारसी प्रान्तों को सत्रपी (Satraps) कहा गया है। दारियस I इस व्यवस्था को शुरू करने वाला उस समय का पहला शासक नहीं था, बल्कि इतना कहा जा सकता है कि फारसी साम्राज्य में इस व्यवस्था को शुरू करने वाला वह पहला शासक था, क्योंकि उससे पहले भी यह व्यवस्था उस समय के राज्यों में मौजूद थी। उस समय यह व्यवस्था मेदियाई राज्य में विभक्त थी, जिन्होंने अपने प्रान्तों को सत्रपियों में बांटा था। उस समय यह व्यवस्था केवल जीते गये राज्यों में ही लागू की जाती थी। दारियस I ने प्रान्तीय स्तर पर सत्रपियों को प्रशासन की आधारभूत इकाई बना दिया। इसके बाद सत्रपियों की सीमाएं जीती गई भूमि की सीमा से अलग होने लगीं। इन सत्रपियों का नाम वहां रहने वाले प्रसिद्ध कबीले के नाम पर रखा जाता था।

सत्रप में एक प्रशासक होता था, जो या तो अर्द्धस्वायत्त प्रांतीय शासक या राजा द्वारा नियुक्त एक उच्च पदाधिकारी होता था। परन्तु राजा अपने सैनिक-असैनिक अधिकारियों द्वारा इन सत्रपों पर नियन्त्रण रखता था। ये केन्द्रीय सरकार के द्वारा नियंत्रित होते थे। इन सत्रपियों में किस प्रकार शासन किया जा रहा है, विद्रोह या षड्यन्त्र के सम्बन्ध में ये अधिकारी राजा को समय-समय पर अवगत कराते रहते थे।

*हेरोडोटस* ने भी इन सत्रपियों का उल्लेख किया है। उसने 20 सत्रपियों का उल्लेख किया है। परन्तु वहीं अगर बेहिस्तुन अभिलेख को देखा जाये तो इसमें सत्रपियों की संख्या 23 मिलती है। इन सत्रपियों में कुछ सत्रपियां इस प्रकार थीं–परसा, बेबीरस, याउना, मादा, अरमिना, स्पारदा, पार्थवा और बख्तरिश। इसमें से कुछ सत्रप दारियस I के पहले के भी थे। दारियस I ने सत्रपियों को प्रान्तीय प्रशासनिक इकाई के रूप में ठोस रूप प्रदान किया। इस रूप में ये सत्रप कई सदियों तक कायम रहे। समय-समय पर इनमें थोड़े-बहुत फेरबदल अवश्य होते रहे। फारसी साम्राज्य पर जब सिकन्दर का अधिकार हो गया, तो उसने भी इन सत्रपियों को बनाये रखा।

सम्राट् सत्रप और अपनी सेना के माध्यम से साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों पर अपना अधिकार और नियन्त्रण रखता था। सत्रपियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे सम्राट् के सम्पर्क में रहे और पत्र-व्यवहार द्वारा अपने प्रशासन की जानकारी समय-समय पर केन्द्रीय सरकार को उपलब्ध कराते रहें। इन सत्रपियों पर निगरानी रखने के लिए जिस अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी, उसे 'श्रोता' कहा जाता था, जो राजा के कान की तरह कार्य करते थे। ये प्रान्तों से लगातार खबर राजा को भेजते रहते थे और उनके बारे में राजा को अवगत कराते रहते थे कि वहां का शासन किस प्रकार चल रहा है। सत्रपों के अधिकार क्षेत्र में स्थानीय प्रशासन होता था और इन्हें प्रान्तों में कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए सेना की एक टुकड़ी भी रखनी होती थी।

परन्तु सत्रपियों में विद्रोह की सम्भावना भी बनी रहती थी कभी-कभी बड़ी-बड़ी सत्रपियों में शासक बड़े शक्तिशाली हो जाते थे और विद्रोह कर देते थे। इसीलिए इन सत्रपियों पर राजा को लगातार निगाह रखनी पड़ती थी। राजा के पास भी शक्तिशाली सेना होती थी, जिससे वह राज्य में नियन्त्रण बनाये रखता था और उसकी मदद से वह कहीं भी और कभी भी आक्रमण कर सकता था और राज्य में होने वाले विद्रोह को भी दबा सकता था। इस प्रकार सेना की मदद से भी सत्रपियों पर नियन्त्रण रखा जाता था।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि इतने बड़े और विशाल साम्राज्य को सत्रपियों में बांटकर शासन करना ज्यादा सुविधाजनक था और सारी प्रजा का ध्यान रखा जा सकता था। राजा को इन सत्रपियों के प्रशासकों पर नियंत्रण रखना होता था। इसके लिए वह अधिकारी भी नियुक्त करता था। जब कभी ये सत्रपी विद्रोह आदि कर देते थे, तो केन्द्रीय सेना की सहायता से इस विद्रोह को आसानी से दबा दिया जाता था।

**प्रश्न 3. फारसी साम्राज्य में सिक्कों के मानकीकरण पर टिप्पणी कीजिए।**

**उत्तर–**अकामेनिदियाई साम्राज्य (फारसी) बहुत विस्तृत था। इसी कारण इसमें अलग-अलग प्रकार के जातीय और भाषायी समूह रहते थे। इस विविधता के कारण भी यह साम्राज्य बहुत समय तक अखण्ड बना रहा। इस साम्राज्य को एकीकृत करने का प्रयास दारियस I द्वारा किया गया, जिसने एकीकृत सिक्का व्यवस्था, मानकीकृत माप-तौल की व्यवस्था की। साथ ही साथ उसने राज्य को एक सम्पर्क भाषा देने का प्रयास भी किया। एक बेहतर धातु से सिक्कों को ढालने के कारण राज्य को कई प्रकार के आर्थिक लाभ हुये; जैसे–व्यापार विनिमय आसान हो गया। लीदिया राज्य मुद्रा शुरू करने वाला विश्व का पहला राज्य था। जब इस पर फारसी साम्राज्य का अधिकार हो गया, तो यहां की मुद्रा-व्यवस्था के विकास में भी इस राज्य ने काफी सहायता की। राज्य जो मुद्राएं (सिक्के) जारी करता था, उस पर राज्य की मुहर होती थी। यह मुहर सरकार की सत्ता की प्रतीक होती थी। इन सिक्कों का आकार, वजन और शुद्धता तय होने के बाद ही इन पर राज्य की मुहर लगाई जाती थी। इस प्रकार के सिक्कों को जारी करने और उन्हें मानक रूप देने में एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरना होता था। मानक धातु के आधार पर चांदी को अपनाया गया था। सभी बहुमूल्य धातुओं और वस्तुओं का निर्धारण चांदी के मूल्य पर निर्भर करता था। विनिमय के रूप में चांदी पहले से ही प्रचलित थी और विनिमय के लिए इस धातु का प्रयोग बिना सिक्का ढाले भी किया जाता था। चांदी को तोलकर उसे विनिमय के रूप में काम में लाया जाता था। सिक्का ढालने का कार्य अकामेनिदियाइयों ने लीदिया से

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सीखा। जो बेबीलोनियाई तौल मानदण्ड प्रचलित थे, उनमें दारियस I ने फेर-बदल किया। इसने टेलेन्ट का वजन 30.240 ग्राम, मिना का वजन 504 ग्राम और शेकेल का वजन 8.40 ग्राम रखा। दारियस I के सिक्के संशोधित शेकेल पर आधारित थे।

जब अकामेनिदियाइयों ने लीदिया पर कब्जा किया, तो उस समय वहां सोने और चांदी के सिक्के प्रचलित थे, जिन्हें विद्वानों ने 'हल्के क्रोसिड्स' कहा है। इन्हें अलग-अलग वजन के हिसाब से सोने और चांदी में ढाला गया था। लीदिया पर कब्जा होने के बाद पश्चिमी फारस में ये सिक्के कई वर्षों तक चलते रहे और ये इसी क्षेत्र में इसी वजन और इसी धातु रूप में ढाले जाते रहे। दारियस I के समय में विभिन्न आकार और डिजाइनों में सिक्के ढाले जाने लगे। ये पहले अकामेनिदियाई सिक्के थे, जिन्हें लिविया की पूर्व राजधानी और पश्चिमी अनातोलिया के फारसी इलाके के मुख्यायालय सारदिस में ढाला जाता था। यूनान में चाँदी के सिक्के को सिगलोस और दारियस के सोने के सिक्के को डेरिक्स कहा जाता था। स्वर्ण डेरिक्स शकेल के समान था। दारियस I और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा जारी किये गये सिक्कों का चलन साम्राज्य के पश्चिमी भाग मुख्य रूप से अनातोलिया तक सीमित था। अकामेनिदियाई सिक्कों के अलावा इस क्षेत्र में एथेनियाई सिक्के भी चलते थे और साम्राज्य के अन्य इलाकों में विनिमय के लिए अन्य धातु भी प्रयोग में लायी जाती थी।

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि सिक्कों की ढलाई के परिणामस्वरूप माप-तौल में मानकीकरण आया और व्यापार, वाणिज्यिक गतिविधियों को बढ़ावा मिला। व्यापारिक गतिविधियों के लिए राज्य के पास एक बड़ा बाजार उपलब्ध हुआ।

**प्रश्न 4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–**

**(1) आरमाइक (2) जरथुस्त्रवाद**

**उत्तर–(1) आरमाइक–**अकामेनिदियाई साम्राज्य बहुत विस्तृत था और विभिन्न भाषायी लोग यहां रहते थे। इन सब लोगों को एक सम्पर्क भाषा की जरूरत थी, ताकि पूरे साम्राज्य में सम्प्रेषण सूत्र एक जैसा हो सके। दारियस I ने इस प्रकार की भाषा को प्रोत्साहन देने के लिए एक नीति बनायी। यह माना जाता है कि साम्राज्य में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा आरमाइक थी। आरमाइक भाषा मूलत: उत्तरी मेसोपोटामिया के कुछ कबीलों की भाषा थी। असीरियाई साम्राज्य में इस भाषा का प्रयोग तेजी से होना शुरू हुआ। फिर यह भाषा बेबीलोनियाई साम्राज्य में आ गयी जिस समय फारसी साम्राज्य की स्थापना हो रही थी, उस समय आरमाइक भाषा मूलत: मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलिस्तीन की भाषा बनी हुई थी। आरमाइक भाषा ने पश्चिमी एशिया मे व्यापारिक भाषा के रूप में भी कार्य किया। इसीलिए नि:संकोच भाव से दारियस I और उसके उत्तराधिकारियों ने अपने साम्राज्य में आरमाइक भाषा को प्रोत्साहन दिया। इसी के परिणामस्वरूप आरमाइक लिपि का विकास हुआ। यह लिपि सरल थी और इसका प्रयोगों कई कार्यों के लिए किया जाता था। इसमें 20 वर्ण होते थे। यह मूलत: फोयेनियाई लिपि से विकसित हुई थी। इस लिपि ने हेब्रू व पश्चिमी एशिया की कई लिपियों को भी प्रभावित किया।

फारसी साम्राज्य में दो प्रकार की भाषाएं थीं–आरमाइक और पुरानी फारसी या फारसी। आरमाइक जहां आम जनता की भाषा थी, वहीं फारसी संभ्रांतों की भाषा थी। यह अकामेनिदियाई सरकारी भाषा थी। इस भाषा का प्रयोग अभिलेखों और शासकीय राजाज्ञाओं में किया जाता था। वहीं आरमाइक भाषा का प्रयोग सरकारी दस्तावेजों और रोजमर्रा के शाही सम्प्रेषण की प्रमुख भाषा के रूप में किया जाता था। कहीं-कहीं पुरानी फारसी लिपि लिखने के लिए भी आरमाइक का ही प्रयोग होता था।

**(2) जरथुस्त्रवाद–**दारियस I के समय मे जरथुस्त्रवाद फारसी संभ्रांत वर्ग का प्रमुख धर्म बन गया था। परन्तु साम्राज्य में रहने वाली जनता, विभिन्न समुदाय अपनी-अपनी धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं से जुड़े रहे। साइरस ने व्यक्तिगत रूप से जरथुस्त्रवाद अनुष्ठानों को अपनाया होगा। परन्तु इस संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। वहीं दारियस I के समय में जरथुस्त्र एक प्रमुख धर्म के रूप में उभरा।

जरथुस्त्र का उदय 9वीं शताब्दी ई.पू. में उस समय हुआ, जब पैगम्बर जरथुस्त्र ने अपने धर्म की शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों को प्रसारित किया। यह इस इलाके के अर्धघुमंतू वर्ग का धर्म था। यह इस धर्म का प्रारम्भिक दौर कहा जा सकता है। बाद के समय में जरथुस्त्र का प्रचार-प्रसार ईरान के दूसरे हिस्सों में भी होना शुरू हुआ। मेदियों में भी इस धर्म को व्यापक पैमाने पर अपनाया जाने लगा था। धीरे-धीरे जैसे-जैसे जरथुस्त्रवाद का प्रचार-प्रसार बढ़ता गया, इसमें बहुदेववाद और ईरानी परम्पराओं को भी शामिल कर लिया गया। परन्तु जरथुस्त्र ने एकदेववाद पर जोर दिया था और इसमें मुख्य रूप से आहुर-मजदा की पूजा की जाती थी। जैसे-जैसे सिद्धान्तों का विकास होता गया, इसमें ब्रह्मांड को चलाने वाली दो विरोधी शक्तियों की बात की जाने लगी। एक ओर प्रकाश और अच्छाई की बातें थी, तो दूसरी ओर अन्धकार और बुराई की। दोनों के बीच एक संघर्ष चलता रहा। आहुर-मजदा प्रकाश और अच्छाई की ताकत थी। आहुर-मजदा को दिव्य प्रकाश और बुद्धि का देवता माना जाता था। जरथुस्त्रवाद में अग्नि-पूजा मुख्य अंग थी, क्योंकि आग अन्धकार के खिलाफ प्रकाश को प्रतीकित करती थी। बाद में जरथुस्त्रवाद में कई अन्य देवी-देवताओं को भी शामिल कर लिया गया। दारियस I ने अपने को जरथुस्त्रवाद के आराधक के रूप में प्रदर्शित किया।

जरथुस्त्र फारसी साम्राज्य के प्रमुख धर्म के रूप में उभरा, परन्तु इसके शासकों ने कभी भी इस धर्म को यहां की जनता पर लादने की कोशिश नहीं की। वह अपनी-अपनी परम्पराओं और धर्मों को मानती रही। फारसी साम्राज्य में आनुवांशिक पुजारी जरथुस्त्र अनुष्ठानों पर अपना एकाधिकार जमाता चला गया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. फारसी साम्राज्य के पतन पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–अकामेनिदियाई (फारसी) साम्राज्य 200 वर्षों तक फलता-फूलता रहा और समय-समय इसमें होने वाले शासकों ने इसको सुदृढ़ और सुगठित बनाया। यह साम्राज्य बहुत विस्तृत था। इसी कारण दारियस I के समय में इसे प्रान्तों में बांटा गया था। इन प्रान्तों को सत्रपी कहा जाता था। यह प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से होता था। वहां एक प्रशासक नियुक्त किया जाता था। केन्द्र में जब एक राजा की मृत्यु होती थी और उसका उत्तराधिकारी शासन संभालने वाला होता था, तो इन सत्रपियों में भी हलचल जरूर होती थी और बीच-बीच में विभिन्न क्षेत्रों में विद्रोह भी होते रहे, परन्तु उनको कुचल दिया जाता था। सीमा पर छिटपुट लड़ाइयां होती रहती थीं। परन्तु यह राज्य निर्बाध रूप से 200 वर्षों तक चलता रहा और जब सिकन्दर का आक्रमण इस साम्राज्य पर हुआ, तो यह साम्राज्य पतन के गर्त में चला गया।

सिकन्दर महान के आक्रमण के परिणामस्वरूप ही फारसी साम्राज्य का अन्त हुआ। जिस समय इस साम्राज्य पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ, उस समय यहां का शासक दारियस III था। सिकन्दर ने फारसी सेना को सबसे पहले 334 ई.पू. में पश्चिमी अनातोलिया में ग्रैनिकास की लड़ाई में हराया था और उस समय से लेकर इस साम्राज्य के पतन तक फारसी सेना लगातार हारती रही। इस लड़ाई के बाद अनातोलिया को मकदूनियाई साम्राज्य का अंग बना लिया गया।

इसके बाद सिकन्दर सीरिया की ओर बढ़ा और उसने 333 ई.पू. में इससं नामक स्थान पर दारियस III के नेतृत्व वाली सेना को पराजित किया और 331 ई.पू. में सिकन्दर ने दारियस III से मिस्र को छीन लिया और उस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके बाद सिकन्दर ने एक अन्य लड़ाई जिसे गउगमेला (Gaugamela) की लड़ाई कहा जाता है, 331 ई.पू. में दारियस III को हराया। दारियस III इस समय एकबताना भाग गया।

सिकन्दर ने स्थिति का फायदा उठाते हुए बेबीलोन, सुसा और परसेपोलिस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। 330 ई.पू. में जब दारियस III की हत्या कर दी गई, तो सिकन्दर ने फारसी साम्राज्य के अन्त की घोषणा करते हुये परसेपोलिस को ध्वस्त कर दिया और सम्पूर्ण फारसी साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इस प्रकार, 200 वर्षों तक चले इस विशाल साम्राज्य का अन्त सिकन्दर द्वारा 330 ई.पू. में कर दिया गया।

**प्रश्न 2. फारसी साम्राज्य के प्रशासनिक पुनर्गठन से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में समझाइए।**

**उत्तर**–फारसी साम्राज्य बहुत विस्तृत था। उस समय के विश्व का यह सबसे विस्तृत साम्राज्य था। इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने के लिए क्षमतावान और प्रभावी प्रशासनिक तन्त्र की आवश्यकता थी, जो दारियस I ने यहां स्थापित किया।

फारसी साम्राज्य के प्रशासनिक पुनर्गठन के अन्तर्गत दारियस I की उपलब्धियां बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसने दूर-दराज के क्षेत्रों को सुगठित राजनैतिक इकाई के रूप में एक सूत्र में बांधा। नजराना वसूल करने के लिए एक नियमित व्यवस्था बनायी गयी, जिससे राज्य के केन्द्रीकृत प्रशासनिक ढांचे और विशाल सेना की जरूरतों को पूरा किया जा सके। दारियस I ने एक शक्तिशाली और समृद्ध राजतन्त्रीय व्यवस्था को बनाया। फारसी साम्राज्य में जो संभ्रांत वर्ग था, जिसके अधिकांश लोग दारियस I के काफी नजदीक माने जाते थे और जिनकी प्रशासिक तन्त्र में मजबूत पकड़ थी। इन संभ्रांतों की ताकत को वैध बनाने के लिए राजा का सम्मान और सत्ता महत्त्वपूर्ण और निर्णायक थी। सम्राट् के विशाल वैभव को प्रदर्शित करने के लिए एक भव्य दरबार का निर्माण किया गया। फारसी राजतन्त्रीय राज्य का विकास मिस्र, असीरिया और बेबीलोनिया साम्राज्य के राजतन्त्र से प्रभावित था।

इस साम्राज्य की प्रमुख विशेषता थी कि इस साम्राज्य को सत्रपों में विभाजित किया गया था। प्रान्तीय स्तर पर सत्रपियों को प्रशासन की आधारभूत इकाई बना दिया गया। यहां पर एक अर्द्ध-स्वायत्त प्रांतीय शासक नियुक्त किया जाता था, जिस पर नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय सत्ता की ओर से अधिकारी आदि नियुक्त किये जाते थे।

राजा के पास एक शक्तिशाली सेना होती थी, जिसका प्रयोग वह कभी भी, कहीं भी कर सकता था, चाहे वह किसी राज्य पर आक्रमण करने के संबंध में हो या विद्रोह दबाने के संबंध में हो। मुख्य सेना में फारसी लोगों का वर्चस्व होता था। परन्तु अन्य लोगों को भी इस सेना में शामिल किया जाता था। 'अक्षय सहस्राब्द' उस सेना को कहा जाता था जो राजा के प्रति सबसे अधिक निष्ठावान होती थी। इस शब्द का अर्थ भी यही भाव प्रकट करता है, जिसका अर्थ है नाश न होने देने वाले दस हजार और इस प्रकार की सेना में भालेसाज और घुड़सवार होते थे।

इस साम्राज्य की विशालता के कारण किसी एक जगह पर राजधानी बनाकर शासन करना एक बहुत जटिल कार्य था। इसी कारण आमतौर पर मुख्य प्रशासनिक केन्द्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलता रहता था। यह प्रथा इस साम्राज्य के प्रारम्भ से चली आ रही थी और दारियस I के समय में भी यह प्रथा जारी थी। दारियस I और उसके उत्तराधिकारियों ने दक्षिणी-पश्चिम ईरान में सुसा को प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र के रूप में अपनाया। दारियस I ने यहां एक भव्य महल बनवाया और आने वाले समय में यह शहर शासन के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा। बेबीलोन भी एक प्रमुख शहरी केन्द्र के रूप में उभरा। यहां भी भव्य महल आदि बनवाये गये। अकामेनिदियाई शासकों को परसेपोलिस के निकट नक्श-ए-रुस्तम नामक स्थान पर दफनाया जाता था। इस शहर की

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



स्थापना साइरस ने की थी और यह शहर उसकी राजधानी के रूप में विकसित हुआ था। इस साम्राज्य में एकबातना भी एक प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र के रूप में उभरा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इतने बड़े और विशाल साम्राज्य का प्रशासनिक ढांचा मजबूत था और उसके लिए शासकों द्वारा समय-समय पर महत्त्वपूर्ण कदम भी उठाये गये थे, जिसके परिणामस्वरूप यह साम्राज्य 200 वर्षों तक निर्बाध रूप से चलता रहा।

**प्रश्न 3. कैम्बिसेस के समय हुये फारसी साम्राज्य के विस्तार पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–एक सैन्य अभियान के दौरान 529 ई.पू. में साइरस की मृत्यु हो गयी, तो उसके स्थान पर उसका पुत्र कैम्बिसेस शासक बना। इसने फारसी साम्राज्य पर 529 से 522 ई.पू. तक राज्य किया। यह अपने शासन काल के दौरान मिस्र सैन्य अभियान में व्यस्त रहा और इसने मिस्र को फारसी साम्राज्य में मिलाया।

कैम्बिसेस ने 525 ई.पू. में मिस्र पर आक्रमण किया और वहीं के शासक समटेक III को परास्त किया। यह साइत राजवंश का शासक था, जो अपनी आन्तरिक समस्याओं के कारण पतन के कगार पर खड़ा था। इस स्थिति का लाभ निश्चित रूप से कैम्बिसेस को मिला और बिना किसी अधिक परेशानी के उसका अधिकार मिस्र पर हो गया।

यूनानी ग्रन्थ कैम्बिसेस को पागल, सनकी और क्रूर शासक के रूप में दिखाते हैं। ये ग्रंथ कहते हैं कि इस शासक के मन में मिस्री परम्पराओं के प्रति कोई सम्मान नहीं था। परन्तु पिछले कुछ दशकों से मिस्र से, जो प्रमाण मिले हैं वे इन सब बातों की पुष्टि नहीं करते हैं। इन प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि जब कैम्बिसेस ने मिस्र शासन पर अपना अधिकार कर लिया, तो वहां की गद्दी पर अपना वैधानिक अधिकार दर्शाने के लिए इसने मिस्री शासक फैरोह से जुड़े कुछ प्रतीकों को धारण किया। फारसियों ने मिस्र में लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया और मिस्री इतिहास में इन्हें 27वें शासक के रूप लिखा गया है।

कैम्बिसेस ने मिस्र के आस-पास के इलाकों पर भी आक्रमण किये, परन्तु उसके वे आक्रमण सफल नहीं हुये और इनके भयंकर परिणाम उसके सामने आये। इन भयंकर परिणामों ने ईरान की स्थिति को भी हिलाकर रख दिया। कैम्बिसेस के अन्तिम दिनों के शासन के संबंध में अधिक जानकारी नहीं मिलती है, लेकिन इतना अवश्य पता चलता है कि अपने अन्तिम दिनों में कैम्बिसेस को आन्तरिक विद्रोह का सामना करना पड़ा, जिसका कारण उसका ईरान से लम्बे समय तक अनुपस्थित रहना रहा होगा। सैन्य अभियानों के कारण कैम्बिसेस को ईरान से दूर रहना पड़ा और इन विद्रोह और सैन्य अभियानों के बीच 522 ई.पू. में कैम्बिसेस की मृत्यु हो गयी।

कैम्बिसेस फारसी साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण शासक था, जिसने मिस्र जैसे साम्राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाया और फारसी साम्राज्य के विस्तार में अपना योगदान दिया। यूनानी दस्तावेज पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर इस शासक के बारे में उल्टा-सीधा लिखते हैं। परन्तु बाद में मिले प्रमाणों के आधार पर इन उल्टी-सीधी बातों की पुष्टि नहीं हो पाती है। अपने छोटे-से शासनकाल के दौरान कैम्बिसेस ज्यादातर युद्ध अभियानों में व्यस्त रहा और ईरान से अनुपस्थित रहा, जिसके कारण यहां आन्तरिक विद्रोह उभरे। इसी बीच उसकी मृत्यु भी हो गयी।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# प्राचीन यूनान

12

## परिचय

साम्राज्यों के युग में यूनान के विकास की पद्धति एक अपवाद ही थी, क्योंकि यह एक महान सभ्यता थी। परन्तु एक साम्राज्य के रूप में इसका विकास नहीं हो पाया था। यहाँ हमें केन्द्रीय सत्ता और क्षेत्रीय राज्य भी देखने को नहीं मिलते हैं। 500 ई.पू. के आसपास क्लासिकल युग की शुरुआत होती है। इसी को प्राचीन यूनानी सभ्यता का उत्कर्ष काल माना जाता है। यह 338 ई.पू. तक जारी रहा और मकदूनियाई आक्रमण ने इसे समाप्त कर दिया।

इस अध्याय में यूनानी सभ्यता की भौगोलिक सीमाओं व यूनानी सभ्यता के विकास के संबंध में बताया गया है। इसे दो भागों में बांटकर इसके विकास की चर्चा की गई है–(1) आरम्भिक यूनानी सभ्यता, (2) पुरातन और क्लासिकी युग। आरम्भिक यूनानी सभ्यता में तीन युगों को शामिल किया जाता है–(1) मिनोआई सभ्यता, (2) माइसीनियाई सभ्यता, (3) अन्धकार युग। भूमिपति कुलीनतन्त्र और किसानों के बीच संघर्ष और लोकतन्त्र की ओर बढ़ना इस सभ्यता की विशेषता थी।

प्राचीन यूनान में वे क्षेत्र भी शामिल थे, जो आज इससे बाहर हैं। प्राचीन यूनान में पश्चिमी अनातोलिया, थ्रेस, एजियन सागर के द्वीप, क्रीट, साइप्रस, यूनान का केन्द्रीय क्षेत्र, दक्षिणी इटली और सिसली शामिल थे। यूनान का केन्द्रीय क्षेत्र दक्षिणी यूरोप में एक अनियमित आकार वाला प्रायद्वीप था, जो पश्चिम में आयोनियन सागर, पूर्व में एजियन सागर, दक्षिण में भूमध्यसागर से घिरा हुआ था। इस द्वीप का दक्षिणी हिस्सा हथेली के आकार का था, जो भूमध्यसागर में मिला हुआ था। इसी को पेलोपान्नेस के नाम से जाना जाता था। एजियन सागर प्राचीन यूनान का भौगोलिक केन्द्र था। इसी सागर में छोटे बड़े कई द्वीप थे, अनातोलिया के पश्चिमी तट पर लेमनोस, लेसबोस, सिओस, समोस और रोड्स, जैसे–कुछ बड़े द्वीप थे। इसके अलावा दक्षिणी एजियन सागर में कुछ द्वीप थे, जिन्हें सामूहिक रूप से साईक्लेड्स (Cyclades) कहा जाता था। दक्षिणी इटली और सिसली में जो यूनानी बस्तियाँ बसी हुई थीं, उन्हें पश्चिमी यूनान कहा जाता था।

मिनोआई सभ्यता प्राचीन यूनान की सबसे पुरानी और इस क्षेत्र की पहली कांस्ययुनीन सभ्यता थी। इस सभ्यता का उदय तीसरी शताब्दी के अंत में हुआ और यह सभ्यता 1400 ई.पू. तक चलती रही। इस सभ्यता का नाम राजा मिनोस के नाम पर रखा गया था। इस सभ्यता में हमें शहरीकरण के प्रमाण भी मिलते हैं। भेड़ पालन और उनके बालों से ऊन बनाना यहाँ की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था। यहाँ खेती की जाती थी और मुख्य फसल के रूप में गेहूँ, अंगूर और जैतून आदि उगाये जाते थे। ये उत्पाद शहरी केन्द्रों को भी पहुँचाये जाते थे। इस सभ्यता के व्यापार के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त होती है, उसी के आधार पर कहा जा सकता है कि इस सभ्यता का व्यापार मिस्र, अनातोलिया, लेबनान के समुद्र तट और एजियन से समुद्र के रास्ते व्यापार होता था। ये लोग लिनियर 'ए' लिपि का प्रयोग करते थे। इस लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। यह उन्हें व्यापार में भी सहायता करती होगी। इस सभ्यता का मुख्य केन्द्र क्रीट था।

माइसीनियाई सभ्यता यूनान की मुख्य भूमि में स्थित थी। इस सभ्यता का कालक्रम 1600 और 1200 ई.पू. के बीच का है। इस सभ्यता का नाम माइसीनियाई स्थल के नाम पर रखा गया था, जो पेलोपान्नेस के उत्तरी पश्चिमी कोने में स्थित था। इस सभ्यता के प्रमुख स्थल थे। ताइरिन्स, पिलोस, थेबेस, आरचामेनस और नौसोस आदि। यहाँ पर जो बस्तियाँ मिलती हैं वे अलग-अलग राज्यों के रूप में थीं। इस राज्य के प्रशासक योद्धा सरदार हुआ करते थे। इन सरदारों के किलाबन्द महल हुआ करते थे। ये शाही वर्दी पहनते थे और ये मुख्य शहरी केन्द्रों में रहा करते थे। शासकीय संभ्रांत वर्ग में योद्धा, कुलीन तन्त्र और नौकरशाही को शामिल किया जाता है। अर्थव्यवस्था में हर क्षेत्र में नौकरशाही का दबदबा होता था। यहाँ के लोग बड़े स्तर पर तेल, मिट्टी के बर्तन और कपड़ों का निर्माण करते थे। सोना, तांबा, टिन आदि आयात की वस्तुएं थीं। यहाँ से मिले प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि राजमहलों की अर्थव्यवस्था में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। यहाँ के लोग जिस लिपि का प्रयोग करते थे, उसे लिनियर 'बी' लिपि कहा जाता है। इस लिपि को पढ़ लिया गया है।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



माइसीनियाई सभ्यता 1200 ई.पू. तक कायम रही। 1200 ई.पू. के आसपास जब कांस्ययुनीन सभ्यताओं का पतन होना शुरू हुआ तो कबीलों का देशांतरण बढ़ना शुरू हुआ। प्राचीन यूनान के आने वाले कालों में 1200 से 800 ई.पू. के बीच के काल को अन्धकार का काल माना जाता है। इस समय माइसीनियाई शहरों का पतन हो चुका था लिनियर 'बी' लिपि भी समाप्त हो चुकी थी। माइसीनियाई सभ्यता का पतन डोरियाई आक्रमण के परिणामस्वरूप माना जाता है। हालांकि अब ऐसा नहीं माना जाता।

अन्धकार युग की जानकारी के लिए बहुत कम मात्रा में स्रोत उपलब्ध हैं। इसी कारण इसे अन्धकार का युग कहा जाता है। अन्धकार युग 1200 से 800 ई.पू. के बीच का काल है। इस प्रकार यह काल लगभग चार शताब्दियों तक रहा। इसी काल में दो महान यूनानी काव्यों की रचना हुई–इलियड और ओडिसी। ये काव्य होमर नामक कवि द्वारा रचे गये। इन काव्यों को यूनान के इतिहास में एक नये युग का परिचायक माना जाता है। महान साहित्यिक कृति होने के साथ-साथ ये महाकाव्य प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत के रूप में भी काम आते हैं। ये दोनों कृतियाँ महाकाव्य परम्परा का अभिन्न अंग हैं। इतिहासकार अध्यनन की सुविधा के लिए अन्धकार युग को दो भागों में विभक्त करते हैं–(1) 1200 से 1050 ई.पू. (2) 1050 से 800 ई.पू.। पहले उपकाल में माइसीनियाई शहरी केन्द्रों का पतन और यहाँ की जनसंख्या कम होती है। पुरातात्त्विक स्रोतों से पता चलता है कि 1300 से 1100 ई.पू. के बीच जनसंख्या तेजी से कम हुई थी। इसी समय में बस्तियाँ कम हुईं और उनका आकार भी पहले की अपेक्षा छोटा होता चला गया। कबीलाई देशांतरण बढ़ता चला गया और कभी-कभी इसमें हिंसा भी दिखाई पड़ती है। 1000 ई.पू. से पहले यूनान में नई अर्थव्यवस्था और समाजीकरण का विकास होने लगा था और कबीलाई देशान्तरण के परिणामस्वरूप इस पूरे प्रायद्वीप में यूनानी भाषायी लोगों का वर्चस्व बढ़ने लगा था। एजियन द्वीप और अनातोलिया का पश्चिम तट भी यूनानी भाषायी क्षेत्र में शामिल हो गये थे। दक्षिणी इटली में यूनानी बस्तियां बसने लगी थीं और यहाँ यूनानी भाषा बोली जाने लगी थी। यहाँ तीन प्रमुख बोलियाँ बोली जाती थीं, जो इस प्रकार थी–आयोनिक, डोरिक, एवलिक। लगभग 1000 ई.पू. के बाद लौह प्रौद्योगिकी का विस्तार और प्रयोग इस युग की एक अन्य विशेषता थी। 1200 ई.पू. के बाद पूर्वी भूमध्यसागरीय व्यापार टूटने से यूनानी धातु प्रौद्योगिकी के लिए समस्या का कारण बन गई थी–क्योंकि तांबा और टिन की प्राप्ति इस क्षेत्र को नहीं हो पा रही थी। 1050 और 800 ई.पू. के बाद, जो दूसरा उपकाल माना जाता है। इस सभ्यता के विकास की प्रगति फिर से देखने को मिलती है, जिसमें लौह प्रौद्योगिकी का विशेष योगदान था।

अन्धकार युग के बाद के काल को यूनान में पुराना युग कहा जाता है। यह लगभग 800 से 500 ई.पू. के बीच का काल था। इसी युग में क्लासिकी यूनानी सभ्यता की नींव पड़ी। मोटे तौर पर यूनान में 500 से 338 ई.पू. के बीच के काल को क्लासिकी युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

पुरातन युग 800 से 500 ई.पू. का काल पूरे यूनान में भूमिपति अभिजात वर्ग और किसानों के बीच टकराव का काल था। लगभग 800 से 600 ई.पू. के बीच भूमिपति अभिजाती वर्ग ने भूमि और यूनानी राज्यों के राजनीतिक ढांचों पर अपना अधिकार कायम कर लिया था, जिससे छोटे किसानों को समस्याओं का सामना करना पड़ा और वे भूखे मरने लगे। इसी कारण लाचार होकर इन छोटे किसानों ने अभिजात वर्ग के खिलाफ झंडा खड़ा कर दिया। यह संघर्ष लगातार चलता रहा और 600 ई.पू. तक आते-आते संकट की स्थिति में पहुँच गया था। अभिजात वर्ग यह सोचने पर मजबूर होने लगे थे कि किसानों के लिए कुछ किया जाना चाहिए, जिससे उनकी समृद्धि बची रह सके। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें किसानों के लिए कुछ सुधार करने पड़े और किसानों को कुछ रियायतें दी गईं।

इसी प्रकार के सुधार हमें एथेन्स में भी देखने को मिलते हैं। एथेन्स व अन्य राज्यों से मिलने वाले प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि 594 ई.पू. में पूरे एथेन्स में एक जैसे परिवर्तन हो रहे थे। एथेन्स में इस सुधारों को लागू करने के लिए सोलोन नामक एवं पंच की नियुक्ति की गई। इसे व्यापक अधिकार दिये गये थे। सोलोन ने किसानों को ऋणों से मुक्त किया। इसका अर्थ यह था कि यदि एथेन्सवासी मुक्त किसान ऋण का भुगतान करने में असमर्थ होते थे, तो उन्हें बंधुआ या गुलाम नहीं बनाया जा सकता था। किसानों पर जो उस समय कर्ज था, वह भी माफ कर दिया गया। सोलोन के इन सुधारों के बाद ही छह दशकों में स्वाभाविक रूप से एथेन्स में आन्दोलन शुरू हो गये, क्योंकि ये राज्य भी इसी प्रकार के सुधारों को चाहते थे और उन राज्यों में भी आन्दोलन शुरू हुए, जहाँ सुधारों को आधे-अधूरे ढंग से शुरू किया गया था। इसी अज्ञात माहौल में राजनैतिक सत्ताओं को पलट दिया गया और अपने-अपने राज्यों में तानाशाही स्थापित कर ली गई। एथेन्स में पेसीसट्रेटस नामक व्यक्ति ने सत्ता पलट दी। वह स्वयं इस शहर का सर्वोच्च शासक बन गया। इस प्रकार एक नये प्रकार की सरकार और शासन व्यवस्था कायम होने लगी, जिसे समकालीन इतिहासकार तानाशाही का नाम देते हैं। पेसीसट्रेटस ने जिस प्रकार सत्ता पर कब्जा किया, उसे तानाशाह कहा जाता है। इस यूनानी तानाशाही को एक ऐसे वर्ग का समर्थन प्राप्त था जिसमें जनता और खासतौर पर गरीब किसानों, जिनके पास व्यापार से कमाया गया धन तो था, परन्तु राजनैतिक सत्ता में कोई भागीदारी नहीं थी। 527 ई.पू. में पेसीसट्रेटस की मृत्यु हो गयी। उसकी जगह उसका पुत्र हिप्पियास शासक बना। इस प्रकार तानाशाही शासक को राजवंशीय शासन में

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



बदले जाने के परिणामस्वरूप लोगों में बहुत असन्तोष उत्पन्न हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि हिटिपयास को अपदस्थ कर दिया गया। 510 ई.पू. में इसे अपदस्थ किया गया और यही तिथि यूनान में क्लासिकी जनता की शुरुआत की तिथि मानी जाती है।

तानाशाही शासन-व्यवस्था ने राजनैतिक सत्ता के परम्परागत आनुवंशिक आधारों को तोड़ा। क्योंकि यूनानी अभिजात एक-दूसरे से सम्बधित थे और इन्होंने आनुवंशिक परम्परा पर बल दिया था। इसके पास सत्ता इसलिए नहीं होती थी कि इसके पास धन होता था, बल्कि यह तो इन्हें आनुवांशिक आधार पर मिलती चली जाती थी और ये अभिजात वर्ग अपने सम्बन्धियों को ही आनुवंशिक आधार पर कार्यकारी, न्यायिक और सैनिक पदों पर नियुक्त करते थे। इसीलिए पुरातन युग के यूनानी राज्यों की सत्ता व्यवस्था को कुलीनतंत्रीय व्यवस्था कहा जाता है। तानाशाही शासन व्यवस्था ने इस कुलीनतंत्रीय व्यवस्था का नाश किया और जनतंत्र के लिए एक रास्ता बनाया। पुरातन युग में कई राज्यों में प्रजातन्त्र कायम हुआ, जिनमें शियोस और मेगरा आरम्भिक प्रजातन्त्र राज्य थे।

यूनान में 600 ई.पू. के आसपास जनतांत्रिक संस्थानों का विकास हो चुका था। परन्तु इनका स्वरूप अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार का था। प्राचीन यूनान में पोलिस शब्द का इस्तेमाल उन राजनैतिक स्वरूपों के लिए किया था, जिनमें जनतंत्र के बीज छिपे थे। विभिन्न प्रकार की पोलिस सरकारों में जहाँ कुछ कुलीनतंत्रीय शासन और दूसरी ओर परिपक्व जनतंत्र के लक्षण भी देखने को मिलते हैं। इनमें ऐसे राज्यों की संख्या अधिक थी, जिनमें अलग-अलग अनुपात में ज्यादा या कम रूप से कुलीनतंत्रीय व्यवस्था थी। जिन राज्यों की जानकारी हमें मिलती है, उनके बारे में कहा जा सकता है कि उनकी पोलिएस संरचना में कोई समानता नहीं थी। क्लासिकी युग प्रारम्भ होने तक यूनान में एथेन्स और स्पार्टा के राज्य दो प्रमुख पोलिस के रूप में उभरे। इस प्रकार के राज्यों के बारे में ऐतिहासिक स्रोत भी कम मात्रा में मिलते हैं। जैसे एथेन्स के बारे में अधिक जानकारी मिलती है। स्पार्टा के बारे में इसके मुकाबले कम जानकारी मिलती है और कोरिन्थ तथा साइरेस के सम्बन्ध में इससे भी कम जानकारी मिली, जो कि महत्त्वपूर्ण जनतंत्र थे। क्षेत्रफल के हिसाब से पोलिस छोटी राजनीतिक इकाई होते थे। इनकी संख्या भी कम होती थी। परन्तु इस सम्बन्ध में सामाजिक सीमाओं को देखने पर यह बात यह सामने आती है। यदि पोलिस का क्षेत्रफल बड़ा होता और यहां की जनसंख्या अधिक होती, तो यहाँ जनतंत्र कभी स्थापित नहीं हो सकता था।

यूनान में नागरिकता की अवधारणा ज्यादा व्यापक नहीं थी। वह सीमित आधार पर थी। केवल देसी और स्थानीय पोलिस के निवासी ही नागरिक माने जाते थे। जनतंत्र में रहने वाले सभी आजाद लोगों को नागरिकता प्राप्त नहीं थी। महिलाओं को नागरिकता से वंचित रखा गया था। केवल वयस्क पुरुषों को ही नागरिकता प्रदान की जाती थी। दूसरे वे लोग जो कि पोलिस के मूल निवासी नहीं थे, इन लोगों में वे लोग आते थे, जिन्हें जीतकर पोलिस में शामिल किया जाता था। उन्हें भी नागरिकता से वंचित रखा जाता था। नागरिकों को ही कुछ अधिकार प्राप्त होते थे; जैसे-जमीन, सैनिक सेवा आदि में केवल नागरिकों की ही हिस्सेदारी होती थी गैर-नागरिकों की नहीं। यूनानी राज्यों के पास कोई स्थायी सेना नहीं थी। इसका कारण यह था कि राज्य के पास स्थायी सेना रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध नहीं थे। सभी आजाद वयस्क नागरिकों को अनिवार्य तौर पर सैनिक सेवा करनी पड़ती थी। यूनानी पोलिस के नागरिक ही सभा में भाग ले सकते थे और इन्हें ही मत देने का अधिकार प्राप्त था। ये नागरिकों के मौलिक और मूलभूत अधिकार होते थे। इन्हें सभा में स्वयं उपस्थित होना पड़ता था और प्रत्येक नागरिक सभा में उपस्थित होता था। यह सभा शहर के केन्द्र में एक खुली जगह में आयोजित की जाती थी, जिससे लोग अपने अधिकारों का उपयोग कर सकें। चूँकि सभा में सभी लोग उपस्थित होते थे। इसी कारण इसका आकार बड़ा होता था और बार-बार सभा आयोजित करने में भी कठिनाई होती थी। इसके बड़े स्वरूप के कारण बैठक में केवल कुछ ही मुद्दों पर बहस हो पाती थी और लोग मत देते थे। इसीलिए सभा के कर्मी के लिए परिषद के पास अधिक अधिकार होते थे। परिषद ही सभा की बैठक आयोजित करती थी। परिषद एक शक्तिशाली निकाय होता था और कई मामलों में इसकी सदस्यता पर भूमि अभिजात वर्ग का अधिकार होता था। परन्तु एथेन्स में 500 ई.पू. तक परिषद में जनता की भागीदारी होनी शुरू हो गयी थी।

सोलोन ने एथेन्स के नागरिकों को चार वर्गों में बाँटा था। नागरिकों की सम्पत्ति या धर्म के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया था। उच्च वर्ग को पेन्टाकोसिओमेदिमनी कहा जाता था। इस वर्ग के लोगों के पास इतनी भूमि अवश्य होती थी, जिससे कम से कम 500 मेदिमनोइ इकाई गेहूँ या इसी के बराबर वाइन या तेल निकाला जा सकता था। इसके बाद के नागरिक होते थे जिनके पास इतनी भूमि हो जिससे कि 300 मेदिमनोइ पैदावार हो। तीसरे वर्ग के लोगों को ज्यूगिताई कहा जाता था। इनके पास कम से कम 200 मेदिमनोई इकाई पैदावार के लिए भूमि होती थी।

510 ई.पू. में हिप्पियस को अपदस्थ किये जाने और 431 से 404 ई.पू. के बीच एथेन्स और स्पार्टा के बीच लड़ाई हुई, जिसे पोलोपानिसयाई युद्ध के नाम से जाना जाता है, के बीच 100 वर्षों में एथेन्स में जनतांत्रिक ढांचे का तेजी से विकास हुआ, और इसके विकास में क्लिस्थेन्स ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। एथेन्स के नागरिक परम्परागत रूप से चार आयोनियाई कबीलों में विभक्त थे। इससे उनके कबीले या वंश का पता चलता था, जो मूलत: एटार्टप्का से आये थे। सोलोन ने राजनैतिक सुधारों के बाद प्रत्येक कबीले ने बुले में 100 सदस्यों को भेजा। क्लिस्थेन्स के नागरिकों

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



का समूहीकरण करने के लिए इस वंश-परम्परा को समाप्त कर दिया।

क्लिस्थेन्स ने देम नामक एक जनतांत्रिक संरचना की स्थापना की, प्रत्येक नागरिक किसी-न-किसी देम का प्राथमिक सदस्य होता था। यह सबसे छोटी भौगोलिक इकाई थी, जिसे एथेन्स के पोलिस को राजनैतिक उद्द्श्यों के लिए विभाजित किया गया था। कुल 139 देम थे। आगे इनकी संख्या बढ़ती चली गयी थी।

यूनानी सभ्यता में दास मजदूरों का अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान होता था। मिस्र, मेसोपोटामिया, फारस, हित्ती जैसी प्राचीन सभ्यताओं में भी दास मजदूरों के होने के प्रमाण मिलते हैं। यूनान में उत्पादन के लिए पहली बार दास मजदूरों का व्यापक तौर पर इस्तेमाल किया गया था। प्रारम्भ में युद्धबन्दियों को दास बनाया जाता था और बाद में जो ऋण नहीं चुका पाते थे, उन्हें भी दास बनाया जाने लगा और यहाँ तक कि महिलाओं को भी दास बनाया जाने लगा। इन दासों को खनन, हस्तशिल्प, कृषि कार्यों आदि में प्रयोग में लाया जाता था। एथेन्स में दास सम्पत्ति की तरह से रखे जाते थे, क्योंकि इन्हें समीप के बाजारों से खरीदा और बेचा जा सकता था।

यूनान में विभिन्न पक्षों पर विचार करने के बाद यहाँ का दार्शनिक पक्ष भी जानना बहुत जरूरी है, क्योंकि यूनान में कई महत्त्वपूर्ण दार्शनिक हुए; जैसे-थेल्स, एनेक्सिमैंडस, एनेजेमेनस, पाइथागोरस, होरोडोटस सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि। इन दार्शनिकों ने इतिहास, दर्शन, गणित और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यूनान की परिस्थिति के कारण भी इस प्रकार के बौद्धिक विमर्श और विकास को अधिक माहौल मिला। यहाँ आयोनियाई चिंतन की विचारधारा उत्पन्न हुई, जिसका समय 600 ई.पू. माना जाता है। यह प्रारम्भिक दार्शनिक विचारधारा थी। इस विचारधारा में प्रकृति के आधारभूत तत्त्वों (वायु, जल और जमीन) और उन्हें चलाने वाली शक्ति के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। पाइथागोरस आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करता था और उसने आत्मा के सामंजस्य पर बल दिया। हेरोडोटस को इतिहास का पिता कहा जाता है, क्योंकि उसने ज्ञान की शाखा के रूप में इसकी पहचान की थी।

होरोडोटस ने इतिहास जिसे आमतौर पर तथ्यों, कथाओं मिथकों और किंवदंतियों का सम्मिश्रण माना जाता था, इसने इतिहास के तथ्यों की खोज करके, छानबीन करके विश्वसनीयता को आधार बनाया और एक नया अर्थ व रूप दिया। सुकरात, प्लेटो और अरस्तु, क्लासिकी यूनान दर्शन के सर्वश्रेष्ठ चिंतक माने जाते हैं। सुकरात ने प्रकृति के बारे में चिंतन की बजाय मानव अस्तित्व के स्वरूप पर चिंतन के लिए अधिक बल दिया।

338 ई.पू. में मकदूनियाइयों का यूनानी प्रायद्वीप में और एजियन सागर के पोलिसों पर कब्जे के परिणामस्वरूप क्लासिकी युग समाप्त हो गया।

उपर्युक्त चर्चा में हमने यूनान के 200 वर्ष के इतिहास को जानने का प्रयास किया है, जिसमें हमने यूनान के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में विचार किया है। यूनान एक बड़ी सभ्यता का केन्द्र होने के बावजूद भी एक साम्राज्य के रूप में विकसित नहीं हो सका, जो कि एक अपवाद ही है। इस चर्चा में हमने मिनोआई, माइसीनियाई और अन्धकार युग में हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डाला है। इस समय किसानों और अभिजात वर्ग के बीच हुए संघर्ष जो कि जनतन्त्र की ओर परिणित होते हैं, महत्त्वपूर्ण परिवर्तन थे। 500 ई.पू. और 480 ई.पू. के बीच फारसी साम्राज्य से जो संघर्ष चला, उसका मुकाबला करने के लिए यूनानी राज्य एकजुट हुए और विदेशी आक्रमणों का मुकाबला किया। इस उद्देश्य के लिए एक संघ का निर्माण हुआ, जिसे डेनियल लीग कहा गया। क्लासिकी युग में देम नामक एक जनतांत्रिक इकाई का निर्माण हुआ, जिससे राजनैतिक ढांचा मजबूत हुआ। उत्पादन के लिए दास मजदूरों को बहुत बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया, जिससे उत्पादन बढ़ा। यूनान में कई महान दार्शनिक हुए, जिन्होंने विचारधाराओं को अपनाया और यूनान को एक मजबूत बौद्धिक पक्ष देने में अपना योगदान दिया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. आरंभिक यूनानी सभ्यताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**—आरम्भिक यूनानी सभ्यताओं पर तीन भागों में विचार किया जाता है—

(1) मिनोआई सभ्यता

(2) माइसीनियाई सभ्यता

(3) अन्धकार युग

**(1) मिनोआई सभ्यता**—मिनोआई सभ्यता प्राचीन यूनान की सबसे पुरानी सभ्यता थी और इस सभ्यता को इस क्षेत्र की पहली यूनानी कांस्ययुगीन सभ्यता माना जाता है। यह सभ्यता तीसरी शताब्दी ई.पू. से शुरू होकर 1400 ई.पू. तक चलती रही। इस सभ्यता के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी 20वीं शताब्दी में *सर आर्थर्स इवेन्स* के द्वारा हुई खुदाई के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस सभ्यता का नाम राजा मिनोस के नाम पर रखा गया था। इस सभ्यता के अवशेष खुदाई के दौरान कई शहरों, जैसे—कनौसोस, फाइस्टोस और मालिया से मिलते हैं। ये शहर राजनैतिक केन्द्र होने के साथ-साथ इस सभ्यता के व्यापारिक केन्द्र भी रहे होंगे। भेड़ पालना और इससे ऊन प्राप्त करने के साथ-साथ यहाँ के लोग गेहूँ और जैतून की खेती भी करते थे। व्यापार और पुन: वितरण के कारण ये उत्पाद शहर भी भेजे जाते थे। इस सभ्यता में व्यापार भी

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अच्छे पैमाने पर किया जाता था और इस सभ्यता के व्यापारिक सम्पर्क मिस्र, अनातोलिया, लेबनान के समुद्री तट, एजियन से समुद्र के रास्ते भी होता था। ये लोग जितना भी जानते थे और इनकी लिपि लिनियर 'ए' के नाम से जानी जाती है। इस लिपि ने इन लोगों के व्यापार आदि के क्षेत्र में भी बढ़ावा दिया होगा। इस लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

यह सभ्यता 1400 ई.पू. के आसपास समाप्त हो गयी थी। इस सभ्यता के पतन का कारण दक्षिण एजियन में उठने वाले ज्वालामुखी का भयंकर विस्फोट था, जिसके कारण भयंकर प्राकृतिक विपदाएं आईं और इस सभ्यता को लील गयी। धीरे-धीरे यूनान की मुख्य भूमि से आकर क्रीट में बसने वाले लोगों ने अपना वर्चस्व कायम कर लिया। उन्होंने इस सभ्यता से भी काफी कुछ ग्रहण किया, क्योंकि इस सभ्यता का केन्द्र क्रीट था।

**(2) माइसीनियाई (Mycenean) सभ्यता**–इस सभ्यता का कालक्रम 1600 से 1200 ई.पू. के बीच का माना जाता है। *हेनरिच श्लेमैन्न* (Heinrich Schleimann) द्वारा की गई खुदाई के परिणामस्वरूप इस सभ्यता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इस सभ्यता का नाम माइसीनियाई स्थल के नाम पर पड़ा। इस सभ्यता के प्रमुख केन्द्र–टाइरिन्स, पिलोस, थेबेस, आरचोमेनस और नौसोस थे।

इस सभ्यता में जो बस्तियाँ थी, वे अलग-अलग राज्यों के रूप में थीं और उन पर शासन भी अलग ई.पू. अलग योद्धा सरदारों का था। ये सरदार वनस्क की शाही पदवी धारण करते थे और अपने किलाबन्द शाही महलों में रहा करते थे। यहाँ शासकीय संभ्रांत वर्ग में शक्तिशाली योद्धा, कुलीन वर्ग और विस्तृत नौकरशाही को शामिल किया गया था। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में नौकरशाही नियंत्रण था। ये बड़े पैमाने पर विदेशी व्यापार में संलग्न थे। इनकी आयात की वस्तुएं थी–सोना, तांबा, टिन और निर्यात की वस्तुओं में तेल, मिट्टी के बर्तन और कपड़े होते थे। माइसीनियाई सभ्यता का समाज कई वर्गों में बंटा था। माइसीनियाई सरदारों को मधुमक्खी के छत्ते के आकार के मकबरों में दफनाया जाता था, जिन मकबरों से प्राप्त धन और कलाकृति के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि इन सरदारों के पास बहुत-सा धन होता था।

माइसीनियाई सभ्यता से जो विभिन्न दस्तावेज मिले हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि ये लोग लिखना जानते थे और इन्होंने अपनी एक लिपि विकसित कर ली थी जिसे लिनियर बी लिपि के नाम से जाना जाता है। इस लिपि को 1952 में माइकल वेन्टरिस ने पढ़ा है। इन्होंने यह बताया है कि यह लिपि यूनानी भाषा का ही प्रारम्भिक रूप थी।

यह सभ्यता 1200 ई.पू. तक कायम रही। 1200 ई.पू. के पूर्वी भूमध्यसागर के क्षेत्र में कांस्ययुगीन सभ्यताओं के समाप्त होने के साथ-साथ एक बार फिर कबीलों का देशान्तरण शुरू हुआ। आमतौर पर माइसीनियाई सभ्यता के पतन का कारण डोरियाई आक्रमण को माना जाता है। हालांकि यह धारणा अब मान्य नहीं रही।

**(3) अंधकार युग**–प्राचीन यूनानी इतिहास के कालक्रम में 1200 से 800 ई.पू. का काल अंधकार युग कहलाता है। इस समय माइसीनियाई शहरों का पतन हो गया था। लिनियर बी लिपि लुप्त हो चुकी थी। इस समय की जानकारी के लिए स्रोत बहुत कम उपलब्ध हैं। इसी कारण इसे अंधकार युग कहा जाता है। अंधकार युग चार शताब्दियों तक कायम रहा और 800 ई.पू. में इसका अन्त हुआ। इसी युग में दो महान यूनानी काव्य–इलियड आर ओडिसि लिखे गये, जिसके रचनाकार होमर हैं। ये महाकाव्य प्राचीन यूनान के नये एतिहासिक युग के सम्बन्ध में ऐतिहासिक जानकारी के स्रोत हैं।

आधुनिक इतिहासकार अन्धकार युग को अध्ययन की सुविधा के लिए दो उपभागों में बांटते हैं-(1) 1200 से 1050 ई.पू. का काल, (2) 1050 से 800 ई.पू. का काल माइसीनियाई सभ्यता के पतन के बाद कबीलाई देशान्तरण शुरू हुआ। यहाँ के शहरों केन्द्रों का पतन हो गया और जनसंख्या भी घटने लगी। यह पहले उपकाल में देखने को मिलता है। इस जनसंख्या के घटने की पुष्टि 1300 से 1100 ई.पू. के बीच के पुरातात्त्विक साक्ष्य भी करते हैं बस्तियों की संख्या घटती चली गयी और उनका आकार भी छोटा होता चला गया। कांसा बनाने के लिए जो टिन और तांबा बाहरी देशों से मंगाया जाता था, उसका व्यापारिक मार्ग भी इस समय बाधित हो गया था। इस व्यापारिक मार्ग को बाधित होने के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। 1000 ई.पू. के आसपास यूनान में एक नयी अर्थव्यवस्था और नये सामाजिक ढांचे का सूत्रपात हुआ। माइसीनियाई सभ्यता के पतन के बाद, जो कबीलाई देशान्तरण शुरू हुआ था, उसके परिणामस्वरूप पूरे प्रायद्वीप में यूनानी भाषायी लोग भर गये। दक्षिणी इटली में भी यूनानी बस्तियाँ बसाई गयीं। इसी अवधि में तीन प्रमुख यूनानी बोलियों का उदय हुआ, ये थी–डोरिक, एवलिक और आयोनिक। यह काल लौह संक्रमण का काल था। इस काल में लौह प्रौद्योगिकी का विस्तार हुआ। लौह प्रौद्योगिकी के उद्भव के कारणों के सम्बन्ध में हमारे पास सही जानकारी नहीं है। पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर इतना कहा जाता है कि अनातोलिया और उत्तरी मेसोपोटामिया में लौह प्रौद्योगिकी का प्रयोग सबसे पहले हुआ। एक बार लौह प्रौद्योगिकी के आने से पूरे यूनान में लोहे का प्रयोग तेजी से बढ़ा। इससे पहले तांबे और टिन के आयात पर यहाँ के लोगों को निर्भर रहना पड़ता था। 1200 ई.पू. में जब पूर्वी भूमध्यसागरीय व्यापार टूटा, तो यूनानी धातु प्रौद्योगिकी के लिए संकट उत्पन्न हो गया, क्योंकि तांबे और टिन की प्राप्ति इन लोगों को अब नहीं हो पा रही थी। लौह प्रौद्योगिकी के आने से यहाँ फिर से धातु प्रौद्योगिकी की शुरुआत हो सकी।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



यूनान के पास लोहे का भण्डार था। इसी कारण यहाँ के लोगों ने धातु के रूप में इसी का अधिक से अधिक प्रयोग करना शुरू कर दिया, क्योंकि टिन और तांबे के आयात में धन भी खर्च होता था और समय भी। दूसरे उपचरण में (1050 से 800 ई.पू.) में इस सभ्यता के विकास में प्रगति देखने को मिलती है, जिनमें लौह प्रौद्योगिकी ने विशेष योगदान दिया।

**प्रश्न 2. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर 100 शब्द लिखिए–**
**(1) इलियड और ओडिसि (2) लीनियर बी लिपि**

**उत्तर–(1) इलियड और ओडिसि**–इलियड और ओडिसि महाकाव्यों की रचना अन्धकार युग में हुई, जिसका समय 1200 ई.पू. से 800 ई.पू. का है। होमर नामक कवि ने इनकी रचना की। ये महाकाव्य यूनानी इतिहास के नये युग के पीरचायक माने जाते हैं। एक लम्बे समयांतराल के बाद यूनान के लिखित दस्तावेज इलियड और ओडिसि साथ-साथ प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत के रूप में भी काम आते हैं। ये दोनों कृतियाँ महाकाव्य परम्परा के अभिन्न अंग हैं।

इलियड में मुख्य रूप से यूनानी राज्यों के संयुक्त मोर्चे का ट्राय नामक राज्य के साथ विवरण है। इस महाकाव्य में ट्रोजन नामक युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध एक दशक तक चलता रहा।

ओडिसि में ट्रोजन युद्ध के नायक ओडिसस ने इस अभियान से वापसी की यात्रा का वर्णन है। जिसमें उनकी रास्ते में हुई कुछ मुठभेड़ों का भी वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य से हमें उस समय के धर्म, मिथक, मान्यताएं, खानपान और वेशभूषा की जानकारी मिलती है।

इन महाकाव्यों में कुछ विवरण माइसीनिया सभ्यता से भी प्रेरित है। इसमें माइसीनियाई युग के नायक, राजा और योद्धाओं का वर्णन है। इसी आधार पर विद्वान इन काव्यों को माइसीनियाई युग का मानने लगे थे और यह समझते थे कि इसमें मुख्य रूप से माइसीनियाई सभ्यता का ही वर्णन है, परन्तु पुरातात्त्विक तथ्यों के आधार पर जब इन महाकाव्यों की पुनर्व्याख्या की गई, तो यह पता चला कि ये अन्धकार युग की रचनाएं हैं। इसमें अन्धकार युग के दैनिक जीवन का वर्णन है, जो माइसीनियाई युग से भिन्न है। इसमें अन्धकार युग के समाज के बारे में बताया गया है, जो बिल्कुल सरल और आत्मनिर्भर समाज था। राजा बहुत शक्तिशाली नहीं था। व्यापार विनिमय कम मात्रा में होता था। अन्धकार युग में यूनानी बड़ी संख्या में छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गये और छोटे-छोटे सरदारों ने यहाँ अपनी सत्ता कायम कर ली।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इलियड और ओडिसि अन्धकार युग के समाज, राजनीति और व्यापार आदि को जानने के लिए हमारे पास यूनानी स्रोत के ऐतिहासिक रूप में काम में आते हैं।

**(2) लिनियर बी लिपि**–यह लिपि माइसीनियाई सभ्यता की लिपि है। इस लिपि को 1952 में माइकल वेन्टरिस द्वारा पढ़ा गया था। वेन्टरिस ने इस विधि का अध्ययन करके यह बताया कि यह लिपि प्रारम्भिक यूनानी भाषा का ही प्रारम्भिक रूप थी। माइसीनियाई इस प्रायद्वीप में बसने वाले यूनानी भाषी लोग थे और यूनानी भारोपीय लोगों की एक शाखा थी। तीसरी शताब्दी ई.पू. में ये लोग कबीलाई प्रायद्वीप में बस गये थे। माइसीनियाई भाषा बाद के यूनानियों से थोड़ी अलग थी, जिसे विद्वान प्राक् यूनानी भाषा कहते हैं। यह लिनियर बी लिपि की भाषा है। लिनियर बी लिपि में लिखे गये दस्तावेज हमें मिट्टी की टिकियाओं के रूप में मिलते हैं। इन टिकियाओं पर जो लिखा गया है, उनसे हमें इतिहास या धार्मिक प्रभावों के सम्बन्ध में जानकारी नहीं मिलती है। ऐसा मालूम होता है कि इस लिपि का प्रयोग राजमहल के पदाधिकारी लेन-देने का हिसाब रखने के लिए करते होंगे, ताकि व्यापारिक गतिविधियों को व्यवस्थित और नियंत्रित रखा जा सके। यह लिपि पूरे माइसीनियाई इलाके से पायी गई है। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि नौकरशाही पूरे राज्य में फैली हुई थी, क्योंकि इस लिपि का प्रयोग ज्यादातर नौकरशाही द्वारा हुआ प्रतीत होता है। 1200 ई.पू. के आसपास जब माइसीनियाई सभ्यता का पतन हुआ, तो यह लिपि लुप्त हो गयी और जिसके कारण व्यापार भी बाधित हुआ।

**प्रश्न 3. संभ्रांत वर्ग और किसानों के बीच हुए संघर्ष की संक्षिप्त चर्चा कीजिए और यह भी बताइए कि जनतंत्र की स्थापना में यह कैसे सहायक हुआ?**

**उत्तर**–संभ्रांत वर्ग और किसानों के बीच हुए संघर्ष का समय पुरातन युग 800 से 500 ई.पू. के बीच का है। इस संघर्ष के मूल कारण हमें अन्धकार युग के उत्तरार्द्ध में ही मिलने शुरू हो जाते हैं। इस समय भूमिपति अभिजात वर्ग की स्थिति मजबूत होती चली गयी। पुरातन युग में इस अभिजात वर्ग ने भूमि और यूनानी राज्यों के राजनैतिक ढांचे पर अपना अधिकार जमा लिया था। इस समय छोटे किसानों के लिए कई समस्याएं खड़ी हुईं, जैसे

– छोटे किसान भूख से मरने लगे।
– किसान ऋण के बोझ तले दबे जा रहे थे।
– जिन अमीर भूमिपतियों से वो ऋण लेते थे, उसे न चुका पाने की स्थिति में उन्हें गुलाम बना लिया जाता था।
– किसानों से उनकी जमीन छीन ली जाती थी।
– राजनैतिक सत्ता में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी, आदि।

इस प्रकार की अनेक समस्याओं का सामना किसानों को करना पड़ रहा था, जिससे परेशान होकर छोटे किसानों ने अभिजात वर्ग के खिलाफ झंडा बुलंद कर दिया। यह संघर्ष लम्बा चल रहा था। इससे अभिजात वर्ग के लिए संकट पैदा होना शुरू हो गया और अब वे अपनी समृद्धि बचाने के लिए किसानों को कुछ रियायतें

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



व सुधार देने के लिए राजी हो गये थे।

एथेन्स में हुए कुछ सुधारों के सम्बन्ध में हमें प्रमाण मिलते हैं। जैसे 594 ई.पू. में एथेन्स में सोलोन नामक व्यक्ति को पंच नियुक्त किया गया, जिससे सुधार किये जा सकें और उनके लिए प्रारूप तैयार किया जा सके। सोलोन को व्यापक अधिकार दिये गये थे। इन सुधारों को बनाने और लागू करने के लिए उसने निम्नलिखित सुधार किये–

भूमि का पुनर्वितरण और ऋण बंधन से मुक्ति किसानों की सबसे बड़ी मांग थी, क्योंकि ऋण बंधन उनके सामने सबसे बड़ी समस्या थी। सोलोन के सुधार किये कि जो किसान ऋण नहीं दे सकते उन्हें बन्दी न माना जाये। किसानों का मौजूदा ऋण भी माफ कर दिया गया।

सोलोन के सुधारों के कुछ दशकों के भीतर ही स्वाभाविक रूप से एथेन्स में नए आन्दोलन शुरू हो गये। दूसरे राज्य भी इस प्रकार के सुधारों को लागू करवाने के लिए आन्दोलन करने लगे या जिन राज्यों में सुधार आधे-अधूरे रूप से हुए थे, वहां भी इन्हें पूर्ण रूप से कराने के लिए आन्दोलन शुरू हो गये। इस अशांत माहौल में कई राजनीतिक सत्ताओं का तख्ता पलट दिया गया और उसकी जगह तानाशाही शासन ने ले ली। इन घटनाओं के कारण अधिकांश यूनानी राज्यों के शासन की प्रकृति पूरी तरह से बदल गयी। एथेन्स में पेसीसट्रेटस नामक व्यक्ति ने सत्ता पर कब्जा कर लिया और अपने आपको सर्वोच्च शासक घोषित कर दिया।

इस प्रकार की सरकार को तानाशाही का नाम दिया गया। इसने कई सुधार किये, जैसे–मौजूदा संवैधानिक व्यवस्था का अन्त किया गया। कुलीनतंत्रीय संस्थाओं का सफाया किया। इन यूनानी तानाशाही सरकारों को गरीब किसानों का और ऐसे वर्ग का समर्थन प्राप्त था, जिन्होंने व्यापार से धन तो कमाया था, परन्तु राजनैतिक सत्ता में उनकी भागीदारी नहीं थी। 527 ई.पू. में जब पेसीसट्रेटस की मृत्यु हुई, तो उसकी जगह उसका पुत्र हिप्पियास गद्दी पर बैठा। इस प्रकार एक तानाशाही शासन को राजवंशीय शासन में बदलने का प्रयास किया गया। इससे लोगों में बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ और वैसे भी इस समय तक तानाशाही शासन की कोई जरूरत नहीं रह गई थी। परिणामस्वरूप 510 ई.पू. में हिप्पियास को अपदस्थ कर दिया गया। यह विधि यूनान में क्लासिकी जनतंत्र की शुरुआत मानी जाती है।

क्लासिकी युग और उसके बाद भी यूनान में तानाशाही शासन को अच्छी दृष्टि नहीं देखा जाता था। परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इस तानाशाही ने ही कुलीनतंत्र से जनतंत्र की ओर बढ़ने का रास्ता साफ किया। तानाशाहों ने उन समस्याओं को कमजोर कर दिया था, जिसके तहत अभिजात वर्ग राजनैतिक सत्ता हथियाए हुए था। यह घटना 600 ई.पू. के आसपास होनी शुरू हुई और सिर्फ एथेन्स तक सीमित न होकर यह घटना कई जगहों पर हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस तरह किसानों द्वारा शुरू किये गये अभिजात वर्ग के संघर्ष से तानाशाही की स्थापना हुई और उसका स्थान धीरे-धीरे जनतंत्र ले लिया।

**प्रश्न 4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–**

**(1) डेनियल लीग (2) देम**

**उत्तर–(1) डेनियल लीग–**छठी शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध में यूनान के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण समय था, क्योंकि इस समय यूनान अपना विस्तार फ्रांसीसी साम्राज्य से पश्चिम की ओर करना चाहता था। एथेंन्स और स्पार्टा के नेतृत्व में यूनानी एकजुट हुए और उन्होंने फारसी आक्रमण का सामना किया। सलमिस और प्लाशिया की निर्णायक लड़ाइयों के बाद फारसी साम्राज्य का बढ़ाव यूनान की ओर रुक गया, परन्तु फारसी आक्रमणों का खतरा बना रहा। यूनानी राज्य इस तरह का सामना करने के लिए दीर्घावधि आधार पर एकजुट रहने और संसाधन जुटाने के महत्त्व को समझते थे। यूनान का कोई भी राज्य फारस से अकेले अपने बलबूते पर नहीं लड़ सकता था। पोलोपोनिस में स्पार्टा के नेतृत्व में एक मजबूत गठबन्धन कायम हुआ। इसके बाद पोलोपोनियन वासी अपनी रक्षा बेहतर ढंग से कर सकते थे। द्वीपों और तटीय राज्यों के लिए समस्या अधिक गम्भीर थी, क्योंकि यहाँ ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। इस समस्या के समाधान के लिए सलमिस और प्लाशिया के बाद एथेन्स ने अपने नेतृत्व में राज्यों का एक सम्बन्ध बनाने के लिए पहल की और एक संघ बनाया, जिसका नाम डेलोस के द्वीप पर डेलियन लीग रखा गया। चूँकि इसी द्वीप में इस संघ का मुख्य कोष रखा जाता था। इस लीग का प्रमुख उद्देश्य एजियन सागर में नौसेना की नियुक्ति इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए डेनियल लीग के सदस्य अपना-अपना हिस्सा दिया करते थे। जैसे-जैसे फारसी आक्रमण का खतरा कम होने लगा, एथेन्स वासियों ने लीग का स्वरूप बदल दिया। चूँकि लीग में एथेन्स वासियों का प्रभुत्व था। इसी कारण वे लोग लीग के संसाधनों का उपयोग अपने हित में करने लगे। इस प्रकार लीग धीरे-धीरे स्वयंसेवी संघ से एथेन्स वासियों द्वारा शासित साम्राज्य में बदल गयी और इसके सदस्य राज्यों को लगने लगा कि वे अब अपना हिस्सा लीग को न देकर जबरन एथेन्स को नजराने के रूप में दे रहे हैं। इस प्रकार एथेन्स के पास काफी धन एकत्रित हो गया और साथ ही उसका नियंत्रण एजियन सागर पर भी हो गया।

**(2) देम–**देम क्लिस्थेन्स द्वारा स्थापित जनतांत्रिक संरचना की प्राथमिक इकाई थी। प्रत्येक नागरिक किसी खास देम का सदस्य होता था। देम राज्य की सबसे छोटी भौगोलिक इकाई होती थी, जिसमें एथेन्स के पोलिस को राजनैतिक उद्देश्यों के लिए विभाजित किया गया था। कुल 139 देम थे। इन देमों के कार्यों में नागरिकों का ब्यौरा रखना और उनकी देखभाल करना था। इनमें अपनी चुनी हुई सरकारें होती थी, जिसमें एक सभा होती थी और

www.neerajbooks.com

इनके पदाधिकारी होते थे, स्थानीय सरकारों के मुखिया को डेमारकोस कहा जाता था।

**प्रश्न 5. प्राचीन यूनान में दास प्रथा की महत्त्वपूर्ण विशेषता क्या थी?**

**उत्तर**–यूनानी सभ्यता की अर्थव्यवस्था में दूसरे दासों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। इन दासों को उत्पादन कार्यों में लगाया जाता था। यूनान में दास प्रथा अन्य साम्राज्यों से भिन्न थी। उत्पादन के लिए व्यापक तौर पर दासों का उपयोग यहाँ पहली बार देखने को मिलता है। यहाँ सबसे पहले महिलाओं को दास बनाने के प्रमाण भी मिलते हैं, जो कि अन्य साम्राज्यों से भिन्न था। होमर के महाकाव्य में भी युद्धों के दौरान महिलाओं को दास बनाये जाने के कई प्रसंग मिलते हैं। युद्धबंदियों को भी दास बनाया जाता था और इसके बाद उन लोगों को भी दास बनाया जाने लगा जो लोग ऋण लेकर वापस नहीं कर पाते थे। इस प्रकार दासों की संख्या लगातार बढ़ती चली गयी। यूनान के पुरातन और क्लासिकी युग में उत्पादन के सभी क्षेत्रों, जैसे–खनन, हस्तशिल्प और कृषि आदि में बड़े पैमाने पर दासों का उपयोग किया जाता था।

स्पार्टा ने जब पोलोपान्नेस में स्थित मेसेनिया पर अपना कब्जा जमा लिया, तो वहां की पूरी आबादी को ही दास बना लिया था। स्पार्टावासियों ने एक नये प्रकार की दास प्रथा शुरू की, जिसको हेलोट्री के नाम से जाना जाता है। हेलोट इस प्रथा के अन्तर्गत बनने वाले दास को कहा जाता था और हेलोट वे दास हुआ करते थे, जिस पर स्पार्टा समुदायों का अधिकार होता था। स्पार्टावासी इन दासों से अपनी खेती कराया करते थे। हेलोट को वितरित करने का राज्य का अधिकार था। राजा प्रत्येक परिवार को उसकी जरूरत के हिसाब से दास दिया करता था। होलोटी प्रथा और अन्य प्रकार के दासों में अन्तर होता था कि हेलोट पर किसी एक व्यक्ति का व्यक्तिगत अधिकार नहीं होता था और हेलोट अपना परिवार बसा सकते थे। इनके बच्चों की स्थिति भी इनके माता-पिता जैसी ही होती थी। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि हेलोट दास प्रथा एक मानवीय रूप था। परन्तु यह सही प्रतीत नहीं होता है। हेलोट प्रथा दास प्रथा के प्रारम्भिक रूप में देखी जानी चाहिए, जिससे स्पार्टा की अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का भी पता चलता है। स्पार्टा में निजी सम्पत्ति का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाया था। इसका सामाजिक स्वरूप भी कबीलाई अवशेषों को बनाए हुए था। इसी कारण स्पार्टा में इस प्रकार की व्यवस्था में हेलोट प्रथा विकसित हुई होगी। यह प्रथा सिर्फ स्पार्टा में ही प्रचलित नहीं थी। यूनान के अन्य भागों में भी इस प्रथा में प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। जैसे–थिसेली, क्रीट, अरगोस आदि। यूनान के अन्य हिस्सों में भी दास रखे जाने की प्रथा बढ़ती गई और यूनानी समाज और अर्थव्यवस्था की यह दास प्रथा की एक विशिष्टता बन गई। दासों के लिए डोउलोस शब्द का प्रयोग सबसे ज्यादा प्रचलित था।

एथेन्स में जो दास प्रथा देखने को मिलती थी, उसमें दासों को सम्पत्ति के समान रखा जाता था। अर्थात् उन्हें बाजार में बेचा और खरीदा जा सकता था। क्लासिकी युग में एथेन्स में जो समृद्धि हुई, वह इन्हीं दासों द्वारा उत्पादन करने के आधार पर बढ़ी, हालांकि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दास मजदूरों को लगाया जाता था, परन्तु साथ ही आजाद मजदूरों को भी अर्थव्यवस्था को भी उत्पादन कार्य में लगाया जाता था।

**प्रश्न 6. शब्दों में प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के विचार लिखिए।**

**उत्तर**–यूनानी चिंतकों ने इतिहास, दर्शन, गणित और चिकित्सा पर बहुत कुछ लिखा, जिससे यूनान निश्चित रूप से लाभान्वित हुआ।

यूनान में थेल्स, एनेक्सिमैंडस और एनेजेमेनस आदि दार्शनिकों ने आयोनियाई चिंतनधारा का प्रतिपादन किया, जो 600 ई.पू. में प्रतिपादित की गई। यह आरम्भिक दार्शनिक विचारधारा थी। इस विचारधारा में प्रकृति के आधारभूत तत्त्वों–वायु, जल और जमीन और उन्हें चलाने वाली शक्तियों के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। एक अन्य दार्शनिक पाइथागोरस हुए, जो आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। उन्होंने आत्मा के लिए सामंजस्य पर बल दिया। पाइथागोरस ने मुख्य रूप से ज्यामितीय सिद्धान्तों पर बल दिया। चिकित्सा के क्षेत्र में हिप्पोक्रेट्स क्लासिकी युग के महान चिन्तक थे। होरोडोटस को इतिहास का पिता माना जाता था, क्योंकि उसने ज्ञान की शाखा के रूप में इसकी पहचान बनाई। इतिहास तथ्यों, और मिथकों और किंवदंतियों का मिश्रण माना जाता था। होरोडोटस ने तथ्यों की छानबीन करके विश्वसनीयता के आधार पर इनको नया रूप दिया।

सुकरात, प्लेटो और अरस्तु क्लासिकी यूनान दर्शन के सर्वश्रेष्ठ चिंतक माने जाते हैं। सुकरात (469-399 ई.पू.) ने प्रकृति के बारे में चिंतन करके मानव अस्तित्व के स्वरूप पर चिंतन किया। विभिन्न कोटियों के दर्शन का परिष्कार उसका प्रमुख योगदान कहा जा सकता है।

**प्लेटो (427-347 ई.पू.)**–यह सुकरात का शिष्य था। इसने एथेन्स में एक अकादमी स्थापित की, जिसमें दर्शन पढ़ाया जाता था। प्लेटो को आदर्शवादी माना जाता है। उसके अनुसार किसी भी वस्तु का हमारे मस्तिष्क के बाहर कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है। केवल विचार वास्तविक होते हैं। प्लेटो के चिंतन की विचारधारा से अरब और पश्चिमी चिंतन बहुत प्रभावित हुआ।

**अरस्तु (384-32 ई.पू.)**–यह प्लेटो का शिष्य था और इसके विचार अपने गुरु से भिन्न थे। वह प्लेटो की इस विचारधारा से असहमत था कि वास्तविकता को समझने के लिए अनुभव आवश्यक नहीं है। वह विज्ञान का विद्यार्थी था और उसने वनस्पति

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

और पशुओं का अध्ययन किया।

प्लेटो और अरस्तु दोनों ही निर्णय लेने की प्रक्रिया में जनता की भागीदारी के खिलाफ थे। इनका मानना था कि सरकार में जनता की भागीदारी सीमित होनी चाहिए। एथेन्स के संभ्रांतों की सोच के परिणामस्वरूप ही वे जनतांत्रिक अधिकारों को सीमित करने के पक्षधर थे।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. संभ्रांत वर्ग और किसानों के बीच हुए संघर्ष के फलस्वरूप जो सुधार किये गये, उनको संक्षेप में लिखिए।**

**उत्तर**–संभ्रांत वर्ग और छोटे किसानों के बीच हुए संघर्ष के फलस्वरूप अभिजात वर्ग किसानों को कुछ सहूलियतें और रियायतें देने को तैयार हुआ। एथेन्स में जो सुधार किये गये, उसके लिए सोलोन नामक व्यक्ति को पंच नियुक्त किया गया और एक आम सहमति से सोलोन को व्यापक अधिकार दिये गये। सोलोन ने ऋण बंधन से मुक्ति लागू की, जो उसका सबसे बड़ा सुधार था, क्योंकि किसान ऋण के बोझ तले दबे थे और उनकी यह प्रमुख समस्या थी क्योंकि इन किसानों के पास पहाड़ी पर बहुत थोड़ी जमीन होती थी और इन्हें खेती करने के लिए भूमिपति अमीरों से ऋण लेना पड़ता था। ऋण भुगतान के कानून बड़े सख्त थे और ऋण न चुका पाने की स्थिति में उन्हें बंधुआ मजदूर बना लिया जाता था। इन किसानों की जमीनें भी हड़प ली जाती थीं। इस प्रकार किसानों को अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ता था। साथ ही इन्हें दास भी बनना पड़ता था। इसीलिए भूमि का पुन: वितरण और ऋण बंधनों से मुक्ति किसानों की प्रमुख मांग थी। सोलोन ने ऋण बंधन से मुक्ति दिलाई, जिसका मतलब था कि जो किसान ऋण वापस करने में असमर्थ थे, उन्हें बंधक न बनाया जाये और किसानों के मौजूदा ऋण भी माफ कर दिये गए। सोलोन ने राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन किया और आम एथेन्सवासी की भी सरकार में भागीदारी होने लगी।

जब एथेन्स में सुधार लागू किये गये, तो अन्य राज्यों में भी इस प्रकार के सुधार लागू कराने के लिए आंदोलन और संघर्ष चलने लगे। इसी के फलस्वरूप तानाशाही शासन स्थापित हुए। इस तानाशाही शासन ने भी तत्कालीन व्यवस्था और किसानों के हित में सुधार किये। मौजूदा संवैधानिक व्यवस्था को स्थगित कर दिया गया। कुलीनतंत्रीय संस्थाओं को समाप्त कर दिया गया। एथेन्स में तानाशाही सत्ता की स्थापना करने वाला पेसीसट्रेटस था। उसे वहाँ के गरीब किसानों और उस वर्ग का समर्थन हासिल था, जिन्होंने व्यापार के दौरान धन तो कमाया था, परन्तु सरकार में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी। पेसीसट्रेटस ने सार्वजनिक जमीन के अधिकार अपने हाथ में ले लिए, जो अभी तक अभिजात वर्ग के हाथों में थे। इस जमीन को छोटे तथा वंचित किसानों में बांट दिया। तानाशाही शासन स्थापित होने के परिणामस्वरूप राज्य से भागे चन्द अमीर भूमिपतियों की सम्पत्ति को भी जब्त कर लिया गया और जरूरतमंद किसानों में बांट दिया गया। पेसीसट्रेटस की इस नीति का यह फायदा हुआ कि अब गरीब व छोटे किसानों की स्थिति मजबूत होनी शुरू हुई और भूमिपति अभिजात वर्ग का राजनीतिक सत्ता से एकाधिकार भी समाप्त हो गया। इसी के आगे के चरण में धीरे-धीरे जनतंत्र का रास्ता साफ हुआ और जनतन्त्र की स्थापना हुई।

**प्रश्न 2. प्राचीन यूनान में नागरिकता की अवधारणा को समझाइए।**

**उत्तर**–यहाँ नागरिकता की अवधारणा काफी सीमित थी। सभी को नागरिक नहीं माना जाता था केवल स्थानीय, देसी और पोलिस के निवासियों को ही नागरिक माना जाता था। सभी आजाद लोग भी नागरिक नहीं थे और महिलाओं को भी नागरिकता के अधिकार से वंचित रखा गया था। केवल वयस्क पुरुषों को ही नागरिकता का विशेषाधिकार प्राप्त था और वे लोग भी नागरिकता से वंचित रखे गये थे जो कि पोलिस के मूल निवासी नहीं होते थे या किसी कारणवश उन्हें मूल निवासी नहीं माना जाता था। ऐसे लोगों में वे लोग भी शामिल होते थे, जिन क्षेत्रों को युद्ध के दौरान पोलिस में मिलाया जाता था। नागरिक लोगों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते थे; जैसे–

– केवल नागरिकों का ही जमीन पर अधिकार था।
– केवल नागरिकों का ही सैनिक सेवा करनी होती थी।

यूनानी राज्यों के पास कोई पेशेवर स्थायी सेना नहीं होती थी। इसका कारण यह था कि राज्य के पास इस प्रकार सेना को रखने के लिए संसाधन उपलब्ध नहीं थे। राज्य के सभी वयस्क नागरिकों को राज्य के लिए सैनिक सेवा करनी होती थी और नागरिकों को स्वयं अपने पैसे से हथियार खरीदने होते थे। इस सेना में मध्यवर्गीय किसान शामिल थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यूनानी सेना मुख्य रूप से किसान नागरिकों की सेना थी। यूनानी पोलिस नागरिकों को ही केवल मत देने और सभा में भाग लेने का अधिकार था, जो नागरिकों के मौलिक और मूलभूत अधिकार होते थे। इन्हें सभा की बैठक में स्वयं होना उपस्थित होना पड़ता था। प्रत्येक नागरिक का सभा में उपस्थित आवश्यक था। यह सभा शहर के मुख्य क्षेत्र में एक खुले स्थान पर होती थी, ताकि लोग अपने अधिकार का प्रयोग बिना भय के कर सकें।

सोलोन ने एथेन्स के नागरिकों को चार वर्गों में बांटा था। नागरिक की सम्पत्ति या धर्म के आधार पर उनका वर्ग-निर्धारण किया गया था–

(1) ऐसे लोग जिनके पास कम से कम 500 मेदिमनोइ (अनाज तोलने की इकाई) गेहूं या इसमें मूल्य के बराबर वाइन या तेल उत्पन्न होता हो। यह उच्च वर्ग था और इसे पेन्टाकोसि-

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अमेमेदिनिमनी कहा जाता था।

(2) दूसरे स्थान पर उन लोगों को रखा गया था, जिनके पास 300 मेदिमनोइ गेहूं पैदा होता हो या इसके मूल्य के बराबर की वाइन या तेल होता हो।

(3) तीसरी श्रेणी में उन लोगों को रखा गया था जिनके पास 200 मेदिमनोइ पैदावार होती हो। इस वर्ग के लोगों को ज्यूगिताई कहा जाता था। यह छोटे तथा मंझोले किसान होते थे और ये लोग ही एथेन्स पैदल सेना का मुख्य आधार होते थे।

(4) इस श्रेणी में वे लोग आते थे, जिनके पास 200 मेदिमनोई से कम पैदावार वाली जमीन हो। इस वर्ग के लोगों को थेतेस कहा जाता था।

इस प्रकार राजनैतिक भागीदारी नागरिक के पास होती थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नागरिकता की अवधारणा सीमित थी और सभी लोगों को नागरिक होने का अधिकार प्राप्त नहीं था और केवल नागरिकों को विशेषाधिकार प्राप्त थे।

**प्रश्न 3. प्राचीन यूनान में पोलिस क्या था? 100 शब्दों में लिखिए।**

**उत्तर**–प्राचीन यूनान में पोलिस शब्द का इस्तेमाल उन राजनैतिक स्वरूपों के सम्बन्ध में किया जाता था, जिनमें जनतंत्र के बीज छिपे होते थे। विभिन्न प्रकार की पोलिस सरकारों में जहां एक ओर शुद्ध कुलीनतंत्रीय शासन भी था, तो दूसरी ओर एथेन्स की तरह परिपक्व जनतन्त्र भी था। इस प्रकार पोलिस में दोनों प्रकार के शासनों के लक्षण देखने को मिलते हैं। जिन-जिन राज्यों में पोलिस रचना मौजूद थी। उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि इसका स्वरूप प्रत्येक राज्य में एक जैसा नहीं था। क्लासिकी युग के प्रारम्भ में एथेन्स और स्पार्टा दोनों प्रमुख पोलिस राज्य के रूप में उभरे।

यदि क्षेत्रफल के हिसाब से देखा जाए, तो पोलिस एक छोटी राजनैतिक इकाई होती थी और इसकी जनसंख्या कम होती थी। परन्तु प्राचीन समाज की सीमाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि पोलिस का क्षेत्रफल बड़ा होता, तो इसकी जनसंख्या भी अधिक होती और वहाँ जनतन्त्र स्थापित करने में कठिनाई होती। यूनानी जनतन्त्र एक प्रत्यक्ष जनतन्त्र था और इसका अर्थ था प्रतिनिधि सभा में सभी सदस्यों का शामिल होना। पोलिस के सदस्य नागरिक होते थे, जिनका मतलब था कि उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त हैं। जो लोग पोलिस के निवासी नहीं होते थे, उन्हें पोलिस का निवासी नहीं माना जाता था। ऐसे लोगों को नागरिकता के अधिकार से वंचित रखा जाता था और यूनानी पोलिस के नागरिकों को ही सभा में भाग लेने और मत देने का अधिकार था, जो नागरिक का मौलिक और मूलभूत अधिकार होता था।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



# रोमन साम्राज्य

13

## परिचय

रोमन साम्राज्य 500 ई.पू. से लेकर एक ईसवी तक चला। इस प्रकार यह साम्राज्य लगभग 500 वर्ष तक फलता-फूलता रहा। इस साम्राज्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यहाँ 500 ई.पू. में एक गणतन्त्र की स्थापना हुई। प्रस्तुत अध्याय में रोमन साम्राज्य के राजनीतिक ढांचे और समाज के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। यहाँ स्थापित गणतन्त्र किस प्रकार कार्य करता था और रोमन साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में दास मजदूरों का इस्तेमाल किस प्रकार किया जाता था आदि, के सम्बन्ध में इस अध्याय में चर्चा की गई है। रोमन साम्राज्य का केन्द्र इटली था। अपने राज्य के सभी राज्यों के मुकाबले यह साम्राज्य सबसे अधिक दिनों तक चलता रहा। रोम लैटिन भाषायी बस्तियों की तरह ही बस्ती थी। लैटिन भाषा भारोपीय भाषा समूहों का ही हिस्सा थी। रोम के इतिहास के आरम्भिक चरण में लैटिन और एट्रस्कन लोगों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रोम इटली के मध्य भाग के ताइबर (Tiber) नदी के तट पर बसा हुआ था, जो प्रायद्वीप में पश्चिमी तट से अधिक दूर नहीं था। इस शहर की स्थापना 753 ई.पू. में हुई थी।

रोम के आरम्भिक इतिहास के सम्बन्ध में हमारे पास बहुत अधिक जानकारी नहीं है। रोम में 510 ई.पू. में राजतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्र की स्थापना की गई थी। इस तिथि के बाद रोम में कुलीनतन्त्रीय शासन की स्थापना हुई। इस शासन पर रोम के धनी लैटिन अभिजात वर्ग का कब्जा था। इस प्रकार रोमन साम्राज्य अपने समय के सभी साम्राज्यों से भिन्न था, क्योंकि लगभग पांच शताब्दियों तक यहाँ शासन की गणतन्त्रीय व्यवस्था कायम रही। कॉन्सुल उन दो लोगों को कहा जाता था, जो इस सरकार के मुखिया होते थे और इनका चुनाव प्रतिवर्ष होता था।

रोमन साम्राज्य 500 वर्षों तक कायम रहा। यह साम्राज्य शक्तिशाली और विशाल था। रोमनवासियों ने रोमन के प्रसार के लिए कई लड़ाइयाँ भी लड़ीं और इसकी प्रसार प्रक्रिया लम्बे समय तक चलती रही। सुविधा की दृष्टि से विद्वान इसके प्रसार की प्रक्रिया को दो चरण में बांटकर अध्ययन करते हैं।

रोमन साम्राज्य के विस्तार के प्रथम चरण में रोम ने पूरे इतालवी प्रायद्वीप को अपने नियंत्रण के लेने का प्रयास किया। इसके लिए संघर्ष दो शताब्दियों तक चलता रहा। रोम ने इसकी शुरुआत मध्य इटली पर अपना अधिकार कायम करके की तथा लैटिन भाषायियों से गठजोड़ कायम किया। इन गठजोड़ों से रोम को कई संसाधन प्राप्त हुए, जिनका इस्तेमाल वह गैर-लैटिन राज्यों के खिलाफ कर सकता था। लगभग दस वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद रोम का कब्जा वेई पर हो गया, जो गैर-इतालवी राज्यों के खिलाफ रोम की महत्त्वपूर्ण विजय थी। अब रोम को वेई से उसकी भूमि और संसाधन प्राप्त हो गये, जिनका इस्तेमाल वह अपने प्रसार में कर सकता था। 295 ई.पू. तक रोम का अधिकार मध्य इटली पर हो गया और अब उसने अपना सारा ध्यान दक्षिणी इटली पर कब्जा करने के लिए लगाया। दक्षिणी इटली में रोम को यूनानियों से भी संघर्ष करना पड़ा, क्योंकि इस क्षेत्र में ये लोग रहते थे। घमासान युद्ध और लम्बे संघर्ष के बाद रोम का कब्जा इस क्षेत्र पर भी हो गया। इस प्रकार रोम के प्रसार का पहला चरण पूरा हुआ।

दूसरे चरण में रोम ने अपना प्रसार व अपना प्रभुत्व भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में करना चाहता था। इस भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर कार्थेजिनियों का शासन था। रोम और इन लोगों के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक था। इन दोनों के बीच हुए युद्धों को प्यूनिक युद्धों के नाम से जाना जाता है। कुल तीन प्यूनिक युद्ध हुए और तीसरे प्यूनिक युद्ध के दौरान लगभग 149-146 ई.पू. के आते-आते कार्थेजिनियाई शहरों का विनाश कर दिया गया और इस क्षेत्र पर रोम का कब्जा हो गया। और साथ ही रोम ने मैसीडोनिया और यूनानी राज्यों को भी अपने नियन्त्रण में ले लिया। 167 ई.पू. में मकदूनिया पर शाासन करने वाले एन्टेगोनिदो को मकदूनिया को रोमन साम्राज्य में मिला लिया गया।

रोमन साम्राज्य का राजनैतिक ढांचा और समाज के सम्बन्ध में जानने से हमें पता चलता है कि रोमन साम्राज्य में राजत्व के साथ-साथ सीनेट और सभा भी होती थी। सीनेट के पास कई अधिकार होते थे, जिसके कारण राजा से इनका झगड़ा चलता रहता था। 510 ई.पू. में रोमन में राजतन्त्र का अंत हुआ और गणतन्त्रीय

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



व्यवस्था कायम हुई। आरम्भ में इस गणतन्त्रीय व्यवस्था पर रोमन अभिजात वर्ग का प्रभुत्व था और इस प्रकार सम्पूर्ण सत्ता एक कुलीनतन्त्रीय परिषद सीनेट के हाथों में आ गयी थी, क्योंकि केवल अभिजात वर्ग के सदस्य ही सीनेट के सदस्य हो सकते थे।

रोमन साम्राज्य के ये नागरिक दो श्रेणियों में बंटे हुए थे, जो एक स्थायी विभाजन था। ये दो श्रेणियां थी–पैट्रिशियन और प्लेबियन। पैट्रिशियन में उन लोगों को रखा गया था, जो संभ्रांत वर्ग से थे। इनकी सख्या सीमित होती थी और प्लेबियन में आम जनता को रखा जाता था। यह विभाजन स्थायी था, जिसका अर्थ था कि जन्म लेने से ही कोई नागरिक पैट्रिशियन और प्लेबियन बन जाता था। अर्थात् जो व्यक्ति जिस श्रेणी में जन्म लेता था, वह उसी का सदस्य होता था। धन या राजनैतिक सत्ता प्राप्त करके कोई नागरिक अपनी श्रेणी नहीं बदल सकता था। इन दोनों श्रेणियों में आपस में विवाह सम्बन्धों पर भी प्रतिबंध था और इसके लिए कानून बनाये गये थे और पैट्रिशियन का अधिकार सीनेट पर होता था, जो राज्य का मुख्य अंग होती थी। प्लेबियन नागरिक तथा महिलाएँ इस सीनेट में शामिल नहीं हो सकते थे। प्रारम्भ में सीनेट के सदस्यों की संख्या 300 थी। धीरे-धीरे यह बढ़कर 600 तक पहुँच गयी और सीनेट का चुनाव में मत इसके सदस्य ही दे सकते थे। आरम्भ में अभिजात वर्ग के शक्तिशाली परिवारों के मुखिया, जिन्होंने राजतन्त्र का अन्त किया था। इसके सदस्य होने से इसकी सदस्यता आजीवन होती थी।

सीनेट की अध्यक्षता कॉन्सल करते थे, जो दो होते थे। ये सीनेट के कार्यकारी, न्यायिक और सैनिक दायित्व को पूरा करते थे। कॉन्सल का चुनाव प्रतिवर्ष होता था और इनके चुनाव में सभी नागरिको की सभा भाग लिया करती थी, जिसमें प्लेबियन भी शामिल होते थे। ये कॉन्सल अपना एक कार्यकाल पूरा करने के बाद पुनः चुनाव में खड़े हो सकते थे। प्रारम्भ से 367 ई.पू. तक केवल पैट्रिशियनों से ही कॉन्सल बनते रहे, परन्तु लम्बे संघर्ष के बाद 367 ई.पू. में एक पद प्लेबियनों के लिए भी छोड़ दिया गया। रोमन साम्राज्य में इन कॉन्सल मजिस्ट्रेटों के अलावा अन्य भी चुने हुए मजिस्ट्रेट होते थे, जो शासन-व्यवस्था देखते थे। दो अन्य शक्तिशाली मजिस्ट्रेट होते थे, जिन्हें सेन्सर्स कहा जाता था, जिनका चुनाव हर पाँचवें वर्ष होता था और ये लोग चुनाव जीतने के बाद एक पद पर लगातार 18 महीनों तक बने रह सकते थे। इन लोगों के कार्य में जगणना करना, प्रत्येक नागरिक की सम्पत्ति का ब्यौरा रखना आदि, होते थे क्योंकि यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण होता था, क्योंकि सम्पत्ति के ब्यौरे के आधार पर ही रोम का कोई नागरिक चुनाव लड़ सकता था और विभिन्न पदों को धारण करने की उसकी योग्यता का निर्धारण होता था। ये सेन्सर्स नागरिकों की नैतिकता पर भी नियंत्रण रखते थे, क्योंकि जो लोग नैतिकता का पालन नहीं करते थे, उन्हें दण्ड दिया जाता था।

पैट्रिशियनों और प्लेबियनों में अक्सर संघर्ष होते रहते थे। क्योंकि जहां एक ओर पैट्रीशियन समस्त सत्ता अपने हाथ में लेना चाहते थे, वहीं दूसरी ओर प्लेबियन अपनी मौजूदगी का अहसास कराना चाहते थे और इस बात का दबाव बना रहे थे कि राजनैतिक सत्ता में उनकी भागीदारी होनी चाहिए, क्योंकि गणतन्त्र की स्थापना के बाद पैट्रीशियनों ने जो व्यवस्था बनायी थी, उसमें प्लेबियनों की वह भागीदारी नहीं रखी गयी थी। इस प्रकार पैट्रिशियनों और प्लेबियनों के बीच संघर्ष के परिणामस्वरूप रोमन साम्राज्य में कृषक वर्ग जो कि प्लेबियन ही हुआ करते थे, को राजनीति के एक छोटे-से हिस्से में भागीदारी करने का मौका मिला।

रोमन साम्राज्य में एक सभा हुआ करती थी, जिसमें सभी नागरिक होते थे और जिसे कोमिशिया क्यूरियाटा के नाम से जाना जाता था। पैट्रिशियनों के सत्ता में आने और कुलीनतन्त्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना होने के साथ ही इस सभा का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। औपचारिक रूप से इसे बनाये तो रखा गया, परन्तु इसके पास अधिकार नहीं होते थे। यह वंशीय सम्बन्धों पर आधारित होती थी और एक सामाजिक इकाई के रूप में काम करती थी और इन सम्बन्धों के आधार पर सामाजिक इकाइयाँ भी बन गयी थीं, जिन्हें क्यूरिए कहा जाता था। यह एक ऐसा कुल होता था जिसमें पैट्रिशियन और प्लैवियन दोनों होते थे। रोम में आरम्भिक गणतन्त्र के दौरान 30 क्यूरिए थे। धीरे-धीरे पैट्रिशियन वर्ग कुलीन सम्बन्धों का उपयोग करते हुए अपने-अपने क्यूरिए को अपने विचारों से प्रभावित करने लगे। इसी के तहत धीरे-धीरे अधिकांश सदस्यों की भागीदारी अप्रासंगिक होती चली गई। क्रोमिशिया क्यूरियाटा की असमानता पर आधारित संरचना को देखते हुए इससे उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि यह सभा कभी प्लेबियनों का समर्थन करेगी। प्लेबियनों के बढ़ते दबाव के परिणामस्वरूप नयी सभा बनाने के लिए नागरिकों को एक बार फिर अलग-अलग समूहों में बांटा गया।

इस प्रकार जो नई सभा बनी, उसे कोमिशिया सेंच्यूरियाटा कहा गया। यह भी सभी रोमन नागरिकों की सभा थी। इसमें पैट्रिशियन और प्लैबियन दोनों शामिल हो सकते थे। इसमें नागरिकों के समूहों को अलग-अलग ढंग से जीत लिया जाता था। यह प्रारम्भ में एक सैन्य इकाई की भांति लगती थी। इसमें नागरिकों को 'सेंचुरिज' सौ के आधार पर गोलबंद किया गया था। प्रत्येक सेंचुरी के आधार पर वोटों का निर्धारण होता था, न कि एक व्यक्ति एक वोट के आधार पर। इस प्रकार अभिजात वर्ग के पास और बड़े भूमिपतियों के पास कम संख्या होने के बावजूद भी अधिक मत थे। सभा की कार्यवाही में पैट्रिशियनों का बड़ा नियन्त्रण था।

कोमिशिया क्यूरियाटा और कोमोशिया सेच्यूरियाटा के अलावा एक अन्य सभा थी, जिसका नाम कौंसिलियम प्लेबिस था। जहाँ उपर्युक्त दोनों सभाओं में रोम के सभी नागरिक शामिल हो सकते थे, वहीं कौंसिलियम प्लेबिस में केवल प्लेबिस ही शामिल हो

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सकते थे। इस सभा में केवल प्लेबियनों की समस्या पर ही विचार-विमर्श किया जाता था। जल्दी ही सभा ने अपनी कार्यनीति तैयार की और इस कार्य-पद्धति को चलाने के लिये अधिकारियों की नियुक्ति की गई।

रोम में गणतंत्र की स्थापना होने से पहले अधिकांश प्लेबियन कृषक थे। गणतन्त्र के अन्तिम दौर में प्लेबियनों की श्रेणियों में अन्तर आते चले गये। प्लेबियनों में भी अब कुछ संभ्रांत बने और कुछ छोटे किसान ही रह गये। इस प्रकार प्लेबियन भी अब दो वर्गों में विभाजित हो गये थे और इन संभ्रांत बने लोगों ने सत्ता और धन प्राप्त करने के लिए जो रियायतें प्लेबियनों को दी जा रही थीं, उनका उपयोग अपने पक्ष में करना शुरू कर दिया था। इस थोड़े-से प्लेबियन संभ्रांतों में से कुछ सीनेटर बन गये और पैट्रिशियन संभ्रांत वर्ग की तरह खुद सुविधा जुटाने लगे और गणतन्त्र के अन्तिम दौर तक तो ये संभ्रांत प्लेबियन लोग कुलीनतंत्रीय शासन में भागीदार बन गए। अब इन लोगों का अन्य प्लेबियन लोगों के साथ कोई जुड़ाव नहीं रहा। किसानों के अधिकारों की लड़ाई में उन्हें अब कोई रुचि नहीं रह गयी थी।

गणतन्त्र के अन्तिम सौ वर्षों में कुछ अन्य परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। अलग-अलग सेनानायकों के अधीन पेशेवर सेना का गठन हुआ। ये सेनायें अपने सेनानायकों के प्रति वफादर होती थीं। अपनी ताकत और संसाधन जुटाने के लिए सेनानायक युद्ध किया करते थे। एक बात को ध्यान में रखना चाहिए कि रोमन साम्राज्य की जो ये सेनाएँ बनीं, उनका मुख्य आधार छोटे किसान ही थे, क्योंकि सेना में सैनिकों के रूप में उनकी ही सत्ता सबसे अधिक होती थी। इन सैनिकों को अपने अस्त्र-शस्त्र और साजो-सामान का इन्तजाम खुद करना होता था। ये किसान इतने समृद्ध नहीं होते थे कि इन सामानों को आसानी से जुटा सकते थे। अतः इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सेना के पास साजो-सामान की कमी बनी रहती होगी। जमीन के पुनर्वितरण के विरोध और एसिडुई (रोम के छोटे किसानों को कहा जाता था) के क्षीण होने के कारण सैनिकों की भर्ती के लिए समस्या पैदा होने लगी और इसका हल निकालना आवश्यक हो गया, क्योंकि भूमिहीन नागरिकों के पास सेना के लिए संसाधन जुटाना आसान कार्य नहीं रह गया था। प्रारम्भ में अधीनस्थ क्षेत्रों की अतिरिक्त टुकड़ियां जुटाकर इस समस्या का समाधान निकालने का प्रयास किया गया और राज्य ने अपने खर्चे पर कुछ घुड़सवार भी रखे। वेतनभोगी सैनिक स्थायी रूप से युद्ध अभियानों पर जाते और उन्हें साम्राज्य के दूर-दराज के इलाकों में अभियान पर जाना पड़ता था, जिसके कारण उन्हें बहुत समय तक साम्राज्य से बाहर रहना पड़ता था। इससे सेना को एक पहचान मिली और उसमें स्थायित्व आया।

गणतन्त्र के अन्तिम दौर में जहाँ हमें कई सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर साम्राज्य द्वारा पश्चिमी एशिया में बड़े-बड़े सैनिक अभियान किये गये। पश्चिमी एशिया और भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में सैन्य अभियान करने का रोम का प्रमुख उदेश्य हेलेनेस्टिक राज्य पर अपना नियन्त्रण कायम करना था। मकदूनिया पर रोम का कब्जा हो गया और यूनानी राज्यों को भी रोम का शासन स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। अनातोलिया को जीतकर पश्चिमी एशिया में शामिल कर दिया गया। सेल्यूसिड को हराकर मिस्र पर अपना कब्जा रोम ने कर लिया था। इन सैन्य अभियानो को सफल बनाने के लिए रोम को बड़ी सेना रखनी पड़ी और इस सेना के संचालन पर रोम के सेनानायकों में मतभेद उत्पन्न होते रहे।

कुछ समय के लिए मारियस को इसकी कमान सौंपी गयी। इसका विरोध पैट्रिशियन अभिजात वर्ग के नेता सुल्ला ने किया। आगे चलकर मारियस और सुल्ला के बीच मतभेद इतने बढ़ गये कि इसने गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया। यह गृहयुद्ध 88 से 82 ई.पू. तक चला और इस गृहयुद्ध में सुल्ला को बढ़त मिली। इसी बीच 86 ई.पू. में मारियस की मृत्यु हो गयी। यह सुल्ला के लिए सुनहरा अवसर था। सुल्ला ने अनातोलिया और यूनान में रोम के खिलाफ होने वाले विद्रोह को दबाया। इसने रोम में भी अपने विरोधियों का सफाया किया और अपनी ताकत के बल पर वह साम्राज्य का शासक बन गया।

सैन्य अभियानों के इस दौर में रोम की राजनीति में चार युद्ध उभरकर सामने आये, ये थे-लुकुलस, क्रेसस, पॉम्पी और जूलियस सीजर। इनकी ताकत उस सेना पर निर्भर करती थी, जिसमें वे सेनानायक होते थे और इन्हें सेना की विजय से सम्मान प्राप्त होता था। सीनेट ने इन नेताओं की ताकत को कम करने का प्रयास किया, परन्तु वे ऐसा नहीं कर पाये, क्योंकि सेना पर सीनेट का नहीं, इन नेताओं का अधिकार होता था। सीनेट और इन नेताओं के बीच हुए टकराव के कारण गम्भीर राजनीतिक स्थिति पैदा हो गयी। पॉम्पी, जूलियस सीजर और क्रेसस एक होकर साम्राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए प्रयास करने लगे। 60 ई.पू. में इन तीनों नेताओं ने एक गठबंधन बनाया, जिसका नाम ट्रिओमविरेट रखा। इसका अर्थ था कि सत्ता अब तीनों में बराबर विभाजित रहेगी। रोम में इस समय कोई प्रभावी सरकार न होने के कारण ये तीनों नेता अपने मकसद में कामयाब हो गये और रोम की सारी सत्ता अब ट्रिओमविरेट में सिमटकर रह गयी। इन नेताओं ने गणतन्त्र की अन्य समस्याओं को समाप्त तो नहीं किया, परन्तु उनका महत्त्व नगण्य कर दिया गया। क्रेसस की 53 ई.पू. में उत्तरी मेसोपोटामियाई युद्ध में मृत्यु हो गयी। पॉम्पी और जूलियस सीजर के सम्बन्ध बिगड़े और गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया। 48 ई.पू. में पॉम्पी की हत्या कर दी गई और इस प्रकार रोम पर जूलियस सीजर का पूर्णरूपेण अधिकार हो गया। सीजर द्वारा इस प्रकार निरंकुश शासक बनने को अभिजात वर्ग ने चुनौती दी और 44 ई.पू. में उसकी भी हत्या कर दी गयी।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

सीजर के बाद आक्टोवियन सीजर रोम का शासक बना। इसके बाद रोमन साम्राज्य प्रिंसिपेट के नेतृत्व में आगे बढ़ता चला गया और 117 ई. में यह अपने उत्कर्ष पर पहुंचा। इस साम्राज्य में स्पेन गॉल, ब्रिटेन, इटली व डेन्यूब नदी के दक्षिण में पड़ने वाले मध्य और पश्चिमी यूरोप के इलाके शामिल थे। रोमानिया भी रोमन साम्राज्य में था। पूरब की ओर अनातोलिया, सीरिया, फिलिस्तीन, उत्तरी, मेसोपोटामिया के हिस्से और मिस्र शामिल था। उत्तरी अफ्रीका, सहारा मरुस्थल और भूमध्यसागर के इलाके भी इसमें शामिल थे।

प्राचीन रोम में हमें इसकी अर्थव्यवस्था में एक अन्य विशेषता देखने को मिलती है और वह थी–दास प्रथा। इस समय दास प्रथा अपने चरम पर पहुंच गयी थी। रोमन कानून के तहत दासों को सम्पत्ति माना जाता था और यहाँ दासों के लिए सर्वस शब्द का इस्तेमाल किया जाता था। दासों को वस्तु रूप में देखा जाता था, जिसका अर्थ यह था कि इन्हें बाजार में बेचा और खरीदा जा सकता था। रोमन साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में दासों का उपयोग किया जाता था; जैसे–कृषि, खनन, हस्तशिल्प आदि में दासों का उपयोग किया जाता था। हस्तशिल्प उद्योग में ज्यादातर काम दासों से लिया जाता था और सरकारी दफ्तरों में भी लिपिकों के रूप में दासों को मुक्त किया जाता था। अधिकांश लैटिफुंडिया में काम करते थे। लैटिफुंडिया पश्चिमी यूरोप में बड़ी जमींदारी को कहा जाता था। राज्यों का कड़ा नियन्त्रण होने के बावजूद भी इन दासों के विद्रोह भी देखने को मिलते हैं। इस तरह के विद्रोह के तीन प्रमाण हमारे पास हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त चर्चा में हमने रोम के 500 वर्षों के इतिहास पर एक संक्षिप्त नजर डाली। इस अध्याय में इतिहास के सभी पहलुओं पर विचार न करके इसकी मुख्य विशेषताओं पर चर्चा की गई है। रोमन साम्राज्य का विस्तार एक लम्बी प्रक्रिया थी, जो दो चरणों में है। पहला चरण 280 ई.पू. तक चला। दूसरा चरण द्वितीय शताब्दी ई.पू. तक चला। रोमन साम्राज्य के सामाजिक और राजनैतिक ढांचे के सम्बन्ध में भी चर्चा की गई है। सामाजिक श्रेणियों, सीनेटों और सभाओं का विश्लेषण करते समय हम देखते हैं कि किस प्रकार सामाजिक श्रेणियों में संघर्ष होने के बाद प्लेबियनों की शक्ति बढ़ी। स्थायी सेना के निर्माण को हमने देखा कि किस प्रकार इसका निर्माण हुआ, जो शुरू में किसानों की एक सेना होती थी और इसको संसाधन खुद जुटाने पड़ते थे। किन परिस्थितियों में यह पेशेवर सेना बनी। रोमन साम्राज्य के विस्तार को जाना जो कि एक विशाल साम्राज्य के रूप में स्थापित हुआ था।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. आरम्भिक चरणों में रोमन साम्राज्य के विस्तार पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–रोमन साम्राज्य के विस्तार के लिए कई लड़ाइयां लड़ी गईं और यह विस्तार लम्बे समय तक चला। इसके विस्तार को दो चरणों में बांटा जाता है–(1) पहला चरण 500 से 280 ई.पू. तक चला, (2) दूसरा चरण 280 ई.पू. से द्वितीय शताब्दी ई.पू. तक चला।

रोमन साम्राज्य ने अपने प्रसार के प्रथम चरण में पूरे इतालवी प्रायद्वीपीय क्षेत्रों को उपने कब्जे में लेने का प्रयास किया। उसका यह प्रयास दो शताब्दियों तक चलता रहा और रोमन साम्राज्य ने इसकी शुरुआत मध्य इटली पर अपना अधिकार कायम करके की। इस प्रकार का रोमन साम्राज्य की रणनिति के तहत उसने लैटिन भाषायियों से गठजोड़ किया। इससे रोम को गैर-लैटिन राज्यों पर आक्रमण करने के लिए संसाधन प्राप्त हो गये। लगभग 10 वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद वेई पर अधिकार कर लिया गया, जो रोम की एक महत्त्वपूर्ण विजय थी। वेई रोम से सटा हुआ एक एट्रस्कन शहर था और यह रोम का पुराना दुश्मन भी था। इस विजय से रोम को बहुत फायदा हुआ। अब रोम वेई की भूमि और संसाधन अपने प्रसार के लिये इस्तेमाल कर सकता था और अपने विस्तार को तेजी से पूरा कर सकता था। इस प्रथम चरण में मध्य इटली के अधिकांश हिस्से पर कब्जा कर लिया गया और रोम का मध्य इटली पर कब्जा 295 ई.पू. तक हो गया। इसके बाद उसने अपना विस्तार दक्षिण इटली की ओर करना चाहा। इस क्षेत्र में कुछ यूनानी बस्तियां भी थीं। इन यूनानियों ने रोम के साथ संघर्ष भी किया। एक घमासान युद्ध भी हुआ और इसके बाद यूनानी रोमन साम्राज्य के अधिकार क्षेत्र में आ गए। इसी के साथ रोमन साम्राज्य के विस्तार का प्रथम चरण पूरा होता है।

दूसरे चरण में रोमनवासी अपना प्रसार भूमध्यसागरीय क्षेत्र में करना चाहते थे। इस क्षेत्र पर कार्थेजिनियों का अधिकार था और दोनों के बीच लड़ाई छिड़ गयी। कार्थेज एक फोनिशियाई व्यापारिक बस्ती थी जो 9वीं शताब्दी ई.पू. में स्थापित हुई थी और धीरे-धीरे एक बड़े साम्राज्य के रूप में विकसित हो गयी थी। पश्चिमी भूमध्य सागर के अधिकांश हिस्से इसमें शामिल थे। इसमें सिसली और स्पेन जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र भी शामिल थे। दक्षिणी इटली में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद जब रोम ने सिसली पर कब्जा करना चाहा तो कार्थेजिनियाई साम्राज्य से उसका संघर्ष हुआ और यह लड़ाई लम्बी चली। कार्थेज को हराकर ही पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में प्रवेश किया जा सकता था, क्योंकि कार्थेज का अधिकार अधिकांश भूमध्यसागरीय क्षेत्रों पर था। रोम और कार्थेज के बीच हुई लड़ाई एक शताब्दी तक चली, जिन्हें प्यूनिक के युद्धों के नाम से जाना जाता है। प्यूनिक के कुल तीन युद्ध हुए। इसमें पहला युद्ध 264-241 ई.पू. में हुआ दूसरा 218-201 ई.पू. में और तीसरा व अन्तिम युद्ध 149-146 ई.पू. में हुआ। तीसरा युद्ध समाप्त होते-होते कार्थेजिनियाई साम्राज्य पूरी तरह से नष्ट हो गया। इसके इलाकों पर रोम का कब्जा हो गया। इस दौरान रोम के हाथ कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र लगे जिसमें सिसली, स्पेन और अफ्रीका थे।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



रोम ने मकदूनिया और यूनानी राज्यों को अपने अधिकार में कर लिया और 147 ई.पू. में मकदूनिया को रोमन साम्राज्य में मिला लिया गया। यूनानी राज्यों पर भी अप्रत्यक्ष रूप से रोमन साम्राज्य का अधिकार हो गया, क्योंकि अब इन पर मकदूनिया से नियन्त्रण रखा जा सकता था। मिस्र के सम्बन्ध में रोमन साम्राज्य की नीति यह रही कि मिस्र पर उस समय टोलेमिद राजवंश का शासन था और रोमन साम्राज्य ने इसे संरक्षण में ले लिया था, जिसका अर्थ यह हुआ कि मिस्र अपनी विदेश नीति का संचालन स्वयं नहीं कर सकता था। पश्चिमी अनातोलिया पर भी रोमन साम्राज्य का अधिकार हो गया और इसे एशिया का प्रान्त बना दिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरी शताब्दी ई.पू. तक रोमन साम्राज्य का अधिकार-क्षेत्र सम्पूर्ण भूमध्यसागरीय क्षेत्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हो गया था। इसके बाद भी दो शताब्दियों तक रोमन साम्राज्य का विस्तार होता रहा, परन्तु उसमें कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। भूमध्यसागर इस साम्राज्य का केन्द्रबिन्दु बना रहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रोमन साम्राज्य का आरम्भिक विस्तार मध्य इटली, दक्षिणी इटली और भूमध्यसागरीय क्षेत्रों तक हो गया था, जो कि रोमन साम्राज्य का विस्तार का सबसे बड़ा चरण था और इससे रोमन साम्राज्य अपने विशाल स्वरूप को धारण करने में कामयाब रहा, क्योंकि अब वे इन क्षेत्रों के संसाधनों और भूमि को अपने विस्तार में लगा सकता था।

**प्रश्न 2. पैट्रिशियन कौन थे? रोमन समाज में प्लेबियनों पर वे कैसे अपना वर्चस्व कायम रखते थे?**

**उत्तर**–रोमन साम्राज्य में नागरिक स्थायी रूप से दो श्रेणियों में बंटे हुए थे–पैट्रिशियन और प्लेबियन। पैट्रिशियन संभ्रांत आनुवंशिक और सीमित समाज था। एक नागरिक जन्मजात पैट्रिशियन या प्लेबियन हो सकता था। पैट्रिशियन आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक रूप से दबंग लोगों का समूह था। पैट्रिशियन में व्यक्ति को जन्म लेते ही धन, राजनीतिक अधिकार, उच्च सामाजिक हैसियत मिल जाती थी। पैट्रिशियन का रोमन धर्म पर भी एकाधिकार था और महत्त्वपूर्ण पदों पर, यहाँ तक कि पुरोहित पदों पर भी पैट्रिशियन की नियुक्ति होती थी।

ये लोग प्लेबियनों अपना अधिकार इस प्रकार रखते थे कि प्लेबियनों को सीनेट का सदस्य नहीं बनाया जाता था। इसके सदस्य केवल पैट्रिशियन लोग ही होते थे। आरम्भ में सीनेट के सदस्यों की संख्या 300 थी, जो बाद में बढ़कर 600 हो गयी। सीनेट के सदस्यों का चुनाव इसके सदस्य ही कर सकते थे। वे अतिरिक्त या नये सदस्यों का चुनाव भी खुद ही करते थे। प्लेबियनों का इसमें कोई योगदान नहीं होता था। आरम्भ में सीनेट के सदस्य उन शक्तिशाली परिवारों के मुखिया हुआ करते थे, जिन्होंने राजतन्त्र का अंत किया था। सीनेट के सदस्यों की सदस्यता आजीवन होती थी और इनके पास विशेष अधिकार हुआ करते थे, जो कि प्लेबियनों के पास नही होते थे। पैट्रिशियन बड़े भूमिपति हुआ करते थे और इस समय रोमन गणतन्त्र पर इन्हीं का शासन था, जो सीनेट के सदस्य होने के कारण इन्हें मिला हुआ था।

367 तक केवल पैट्रिशियन ही कॉन्सल बन सकते थे। 367 ई.पू. में एक लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप पैट्रिशियनों ने एक पद प्लेबियनों के लिए छोड़ दिया था, परन्तु काफी लम्बे समय तक यह महज औपचारिक बना रहा, क्योंकि पैट्रिशियनों का चुनाव प्रक्रिया पर नियन्त्रण होता था और वे अपने मन मुताबिक सदस्य का चुनाव करते थे। पैट्रिशियन समस्त राजनैतिक सत्ता को अपने हाथ में लेने का प्रयास कर रहे थे। प्लेबियन भी लगातार यह दबाव बना रहे थे कि उनकी भी राजनैतिक सत्ता में भागीदारी होनी चाहिए। गणतन्त्र की स्थापना के बाद पैट्रिशियनों ने जो व्यवस्था बनायी उसमें प्लेबियनों को कोई जगह नहीं दी गई।

जहाँ तक पैट्रिशियन प्लेबियनों पर अपना अधिकार दर्शाने के लिए कोई और कसर नहीं छोड़ते थे। वे प्लेबियनों को हर क्षेत्र में दबाना चाहते थे। सभा में भी मन मुताबिक अध्यक्ष का चुनाव करके वे सभा की कार्यवाही को नियन्त्रित करने का प्रयास करते थे, क्योंकि सभा में एक सदस्य एक मत के आधार पर मतदान नहीं किया जाता था। प्रत्येक क्यूरियाई सामूहिक रूप से मत देता था, ताकि एक क्यूरिया का विचार एक साथ व्यक्त हो सके। पैट्रिशियन वर्ग कुलीन सम्बन्धों का उपयोग करते हुए अपने-अपने क्यूरिए को प्रभावित कर लेते थे। वे समस्त क्यूरिए का प्रतिनिधित्व करते और अपनी बात सामने रखते थे। इस प्रकार आम आदमी मूक दर्शक की भांति नजर आता था। धीरे-धीरे अधिकांश सदस्यों की इसमें भागीदारी का कोई औचित्य नहीं बचा और सभा में सत्रों के विचार-विमर्श के लिये या मतदान करने के लिए प्रत्येक क्यूरिए से केवल एक सदस्य प्रतिनिधि के रूप में भेजा जाने लगा। इस प्रकार पैट्रिशियनों का दबदबा सभा में भी बना रहा।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि पैट्रिशियनों ने प्लेबियनों को हर क्षेत्र में दबाने की कोशिश की और अपना वर्चस्व कायम करने का प्रयास किया; जैसे–आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि हर क्षेत्र में पैट्रिशियन केवल अपना अधिकार चाहते थे।

**प्रश्न 3. कोमिशिया सेंच्यूरियाटा और कोमिशिया क्यूरियाटा में क्या अन्तर था?**

**उत्तर–क्रोमिशिया क्यूरियाटा** (Cromitia Curiata)–यह सभी नागरिकों की सभा होती थी, जिसे कोमिशिया क्यूरियाटा के नाम से जाना जाता था। पैट्रिशियनों के सत्ता में आने और कुलीनतन्त्रीय शासन स्थापित होने के साथ ही कोमिशिया क्यूरियाटा का महत्त्व घट गया। इसको समाप्त तो नहीं किया गया, परन्तु इसकी ताकत पहले से घट गयी थी। यह वंशीय सम्बन्धों पर आधारित सामाजिक इकाई थी, जिसे क्यूरिया कहा जाता था। रोम के जो मूल निवासी थे वे इस क्यूरिया नामक इकाई में विभाजित होते थे, क्यूरियाटा ऐसा था, जिसमें पैट्रिशियन और प्लेबियन दोनों को शामिल किया

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जाता था। आरम्भ में रोम में 30 क्यूरिए थे और वे इन कबीलों में बंटे रहे थे। सभा में पैट्रिशियन अपने मन मुताबिक अध्यक्ष का चुनाव करके कोमिशिया क्यूरियाटा की कार्यवाही को नियन्त्रित करते थे, क्योंकि सभा में एक सदस्य, एक मत के आधार पर मतदान नहीं किया जाता था। प्रत्येक क्यूरियाई सामूहिक रूप से मत देता था, ताकि एक क्यूरिया का विचार एक साथ व्यक्त हो सके। पैट्रिशियन वर्ग-कुलीन सम्बन्धों का उपयोग करके अपने-अपने क्यूरिए को प्रभावित कर लेते थे। वे समस्त क्यूरिए का प्रतिनिधित्व करते थे और अपनी बात सामने रखते थे। इस प्रकार आम आदमी मूक दर्शन ही बना रहता था। धीरे-धीरे अधिकांश लोगों की भागीदारी का इसमें काई औचित्य नहीं बचा था और सभा के सत्रों में भाग लेने या विचार-विमर्श करने के लिए प्रत्येक क्यूरिए से केवल एक सदस्य को प्रतिनिधि के रूप में भेजा जाने लगा। कोमोशिया क्यूरियाटा भी असमानता पर आधारित संरचना थी और इससे यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि यह प्लेबियनों के हितों की रक्षा करेगी। प्लेबियनों ने एक नयी सभा बनाने के लिए दबाव डालना शुरू किया और इसके लिए नागरिकों को फिर से अलग-अलग समूहों में बांटा गया।

**कोमिशिया सेंच्यूरियाटा**—प्लेबियनों के दबाव के चलते जो नयी सभा बनी, उसका नाम कोमिशिया सेंच्यूरियाटा रखा गया। इसमें भी कोमोशिया क्यूरियाटा की तरह दोनों श्रेणी-पैट्रिशियन और प्लेबियन दोनों नागरिक शामिल थे। दो नौ सभाओं में मुख्य अन्तर यह था कि इसमें दोनों श्रेणियों के नागरिकों को अलग-अलग ढंग से अलग-अलग समूहों में बांटा गया था। कोमिशिया सेंच्यूरियाटा में नागरिकों के 'सेंचुरिज' सौ की संख्या में समूह बनाए गए। सेंचुरी रोम की सबसे छोटी सामाजिक इकाई होती थी और इसमें 100 सदस्य होते थे। परन्तु व्यवहार में इनकी संख्या कम या ज्यादा हो सकती थी। प्रारम्भ में यह एक सैन्य इकाई की तरह होती थी सेंचुरिज की संख्या 193 थी और उन्हें पांच वर्गों में बांटा गया था और इनके विभाजन का आधार सम्पत्ति था। यह विभाजन भी असमान था। अधिकांश सेंचुरीज को पहले तीन वर्गों में रखा गया था, जिसमें अभिजात वर्ग और बड़े भूमिपतियों को रखा गया था। कोमिशिया सेंच्यूरियाटा में सेंचुरी एक प्रतीकात्मक इकाई थी। प्रत्येक सेंचुरी में नागरिकों की संख्या समान नहीं थी। सेंचुरी के पहले दो वर्गों में कम नागरिक थे और गरीब थे। इन नागरिकों को प्रोलेटरी कहा जाता था। यह सबसे निचला वर्ग था, इसमें लोग तो सबसे अधिक थे। परन्तु उन्हें केवल एक सेंचुरी ही दी गई थी। इस प्रकार। इन लोगों का इस सभा में प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं था और सभा में उनकी भागीदारी कोई मायने नहीं रखती थी। कोमिशिया सेंच्युरीयाटा में प्रत्येक सेंचुरी के आधार पर वोटों का निर्धारण किया गया था, न कि एक व्यक्ति एक मत के आधार पर। इस प्रकार अभिजात वर्ग और बड़े भूमिपति के पास कम संख्या होने के बावजूद भी अधिक मत होते थे और इस सभा कि कार्यवाही पर भी पैट्रिशियनों का नियन्त्रण रहता था। यह सभा 450 ई.पू. के आसपास बनी और जब तक रोम में गणतन्त्र रहा, यह सभा भी बनी रही। इस सभा का महत्त्वपूर्ण कार्य यह होता था कि यह सभा ही कॉन्सलों और सेन्सर्स का चुनाव करती थी और सारे कानून भी यही से पास किये जाते थे। युद्ध और शान्ति की घोषणा करना इस सभा के विशेषाधिकार में शामिल था।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि कोमिशियां सेंच्यूरियाटा और कोमिशिया क्यूरियाटा में पर्याप्त अन्तर था। जहाँ सेंच्यूरियाटा एक सैन्य इकाई की भांति थी वहीं क्यूरिया ऐसी नहीं थी। दोनों में ही प्लेबियनों और पैट्रिशियनों को शामिल किया जाता था। सेंच्यूरियाटा में समूहों को सौ के आधार पर बांटा गया था, जबकि क्यूरियाटा में क्यूरिए के आधार पर बांटा गया था। इनकी संख्या में भी अन्तर था। क्यूरियाटा की संख्या 80 थी, तो सेंच्यूरियाटा की संख्या 193 थी। वहीं दूसरी ओर क्यूरियाटा से अधिक अधिकार सेंच्यूरियाटा के पास थे; जैसे—कॉन्सल व सेन्सर्स का चुनाव करना और युद्ध-शांति की घोषणा करना आदि।

**प्रश्न 4. विभिन्न श्रेणियों के संघर्षों की चार प्रमुख उपलब्धियां बताइये।**

**उत्तर**—प्राचीन रोम में 510 ई.पू. से 287 ई.पू. के बीच के काल को श्रेणियों के संघर्ष का काल कहा जाता है। इन श्रेणियों में पैट्रिशियन और प्लेबियन ही थे। प्लेबियनों द्वारा पैट्रिशियनों के खिलाफ संघर्ष किया गया और वे अपने हितों को कुछ हद तक मनवाने में कामयाब हुए। इनके संघर्ष के परिणामस्वरूप चार उपलब्धियां सामने आयीं—

(1) प्लेबियन यह माँग कर रहे थे कि कानून संहिता लिखित होनी चाहिए, ताकि न्याय प्राधिकरण द्वारा मनमाने ढंग से इनका उपयोग न किया जा सके। लिखित कानून न होने के कारण पैट्रिशियन इन कानूनों को मनमाने ढंग से अपने हितों के लिए प्रयोग करते थे। इसी कारण प्लेबियन इनको लिखित रूप देने की माँग कर रहे थे और इसके लिए प्लेबियनों ने यह धमकी दी कि रोमन साम्राज्य का समुचित ढांचा कानूनी ढंग से न बनाया गया, तो वे सेना में भर्ती होना छोड़ देंगे।

सीनेट ने इस मांग को माना और कानूनी ढांचा तैयार करने के लिए 450 ई.पू. में एक 10 सदस्यीय आयोग बनाया गया, जिसको डेसेमविर्स के नाम से जाना जाता है। इसके अध्यक्ष एप्पिस क्लाडियस थे। इस आयोग ने रोमवासियों के लिए जो कानून बनाये, उन्हें "कोड आफ द ट्वेल्व टेबल्स" कहा जाता है और ये रोम के कानून का आधार बने। इन कानूनों के बनने के बाद पैट्रिशियनों द्वारा मनमाने ढंग से कानून मनवाने की सम्भावना कम हुई।

(2) रोम में दो कॉन्सल चुने जाते थे और दोनों ही पैट्रिशियन श्रेणी के नागरिकों से होते थे। परन्तु 367 ई.पू. में एक कॉन्सल प्लेबियन से भी होने लगा। परन्तु इसका वास्तविक चुनाव बहुत बाद में हो सका, क्योंकि कोमिशिया सेंच्यूरियाटा ही कॉन्सलों का

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



चुनाव करती थी और सीनेटर ही इनके उम्मीदवारों का नाम प्रस्तावित करते थे। इसी रोमन साम्राज्य में प्लेबियनों से उच्चस्थ मजिस्ट्रेट चुना जाना इतना आसान नहीं था। गणतन्त्र के अन्तिम 100 वर्षों में प्लेबियनों से मजिस्ट्रेट नियमित रूप से चुने जाने लगे और ये प्लेबियन कॉन्सल के पद पर चुने जाने के कारण सीनेट के सदस्य भी होने लगे। इस प्रकार के चुनाव के परिणामस्वरूप प्लेबियनों से बाद के समय में कई सीनेट सदस्य बने।

(3) तीसरा सुधार प्लेबियनों के हितों में नेक्सम (Nexum) को समाप्त करवाने का था, नेक्सम वह प्रथा थी, जब कोई व्यक्ति ऋण ले लेता था और वह उसे नहीं चुका पाता था, तो उसे ऋण बंधक के रूप में ऋणदाता के पास रहना पड़ता था, जिससे वह दासों की भांति काम कराता था, क्योंकि ऋण लेते वक्त व्यक्ति अपने को गिरवी रख देता था और इस नेक्सम का पालन कड़ाई से करवाने के लिए रोम में कानून भी बना हुआ था। युद्धों में निरन्तर भाग लेने के कारण और कई अन्य अर्थिक समस्याओं के कारण गरीब किसानों को ऋण लेना पड़ता था और यह उसके लिए जटिल समस्या बन जाती थी। इस प्रकार बड़े भूमिपति नेक्सम के सहारे किसानों को गुलाम मजदूर के रूप में अपने पास रखते थे। प्लेबियन इसीलिए इस नेक्सम को खत्म करवाना चाहते थे।

इस नेक्सम को समाप्त करने के लिए 326 ई.पू. में कानून बनाया गया और ऋण न चुकाने की दशा में रोमवासियों को बंधक नहीं बनाया जा सकता था।

(4) चौथी उपलब्धि का राजनैतिक स्तर पर बहुत महत्त्व है कौंसिलियन प्लेबिस प्लेबियनों की एक सभा थी और इस पर प्लेबियनों द्वारा ही प्लेबियनों की समस्याओं पर विचार-विमर्श होता था। इसके निर्णयों को मनवाने के लिए प्लेबियनों ने सेना में भर्ती न होने की धमकी दी और वह भी ऐसे समय में जब रोमन साम्राज्य दक्षिणी इटली और यूनानी राज्यों पर अपना अधिकार करने की योजना बना रहा था। इस धमकी से संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

287 ई.पू. में प्लेबियन ट्रिब्यून्स को पूरे तौर पर मजिस्ट्रेट के अधिकार दे दिये गये और कौंसिलियम प्लेबियन के निर्णयों को रोमन साम्राज्य में लागू करना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार ट्रिब्यून्स को कौंसिलियम प्लेबिस के निर्णयों को लागू करने का अधिकार मिल गया। इन निर्णयों को रोमन साम्राज्य का पूर्ण अनुमोदन प्राप्त था और इन निर्णयों को न मानने वालों को दंड भी दिया जाता था। इस प्रकार का कानून पास होने से कौंसिलियम प्लेबियन की महत्ता बढ़ी। इसमें निर्णयों को कानूनी मान्यता मिल गयी थी और अब ट्रिब्यून्स का पद भी एक शक्तिशाली मजिस्ट्रेट का पद हो गया था। यहीं से दोनों श्रेणियों के बीच होने वाले टकराव का अन्त माना जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त चारों उपलब्धियों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्लेबियनों ने अपने हितों की रक्षा के लिए जो संघर्ष किया, वह सफल रहा और उनके हितों की रक्षा हेतु कानून बनाये गये।

**प्रश्न 5. पेशेवर सेना के उदय की प्रक्रिया की चर्चा कीजिए। इसने रोमन जगत को कैसे प्रभावित किया?**

**उत्तर**–रोमन साम्राज्य में अलग-अलग सेनानायकों के अधीन पेशेवर सेना का निर्माण इस साम्राज्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। ये सेनाएं पूर्ण रूप से अपने सेनानायक के प्रति समर्पित होती थी और ये सेनानायक अपने संसाधन और सेना बढ़ाने के लिए युद्ध किया करते थे। इस प्रकार की सेना में छोटे खेतिहर किसान शामिल होते थे। इन खेतिहर किसान सैनिकों को अपने अस्त्र-शस्त्र और साजो-सामान का खुद ही इन्तजाम करना पड़ता था। इन सैनिकों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब होती थी, जिसके कारण इन्हें अस्त्र-शस्त्र जुटाने में दिक्कतों का सामना करना पड़ता था और इसका असर सेना की ताकत पर भी पड़ता था। इन भूमिहीन नागरिकों के लिए अपने संसाधनों का उपयोग करके सैनिक सेवा प्रदान करना सम्भव नहीं रह गया था और जमीन के पुनर्वितरण और एसिडुई के क्षीण होने आधार के कारण सैनिकों की भर्ती की समस्या सामने आने लगी थी। इसका हल खोजना जरूरी हो गया था। आरम्भ में इस समस्या के समाधान के लिए राज्य ने अपने खर्चे पर कुछ घुड़सवार रखे, अधीनस्थ क्षेत्रों से अतिरिक्त सैनिक टुकड़ियाँ मँगाकर इस समस्या का समाधान करने की कोशिश की गई, परन्तु यह पर्याप्त नहीं था।

मारियस ने 100 ई.पू. में सेना में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया और वेतनभोगी सैनिक रखने की शुरुआत की। रोम के सैनिकों को अब राज्य की ओर से वेतन मिलना शुरू हुआ। इस प्रकार यह सेना पेशेवर स्थायी सेना बन गयी, जिसका नेतृत्व अभिजात वर्ग के सेनानायक किया करते थे और इस सेना ने रोम के राज्य-विस्तार को एक नया मोड़ दिया। अब तो जो सैनिक सेना में भर्ती होते थे, वे युद्ध अभियानों से लौटकर अपने गाँव चले जाते थे और वहां खेती किया करते थे। परन्तु अब स्थायी पेशेवर सेना के निर्माण से सैनिक स्थायी रूप से सैनिक अभियानों पर जाते थे और ये दूर-दूर के सैनिक अभियान पर जाते थे, जिससे इन्हें बहुत दिनों तक बाहर रहना पड़ता था। पहले की सेना में एक संगठन का अभाव होता था। अब सेना में संगठन मजबूत हुआ और सैनिकों की भी आर्थिक स्थिति में अब सुधार हुआ। सेना अपने सेना नायकों की अंधभक्त होती थी और उनकी योजना और रणनीति पर चलना अपना कर्त्तव्य समझती थी। युद्ध में विजय प्राप्त करते ही सैनिकों को लूट-खसोटने का भी पूरा मौका दिया जाता था।

**प्रश्न 6. रोमन गणतन्त्र में दास संस्था पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–प्राचीन रोम में दास प्रथा अपने चरम विकास पर पहुँच गयी थी। दास प्रथा के प्रसार की सम्भावनाएँ उस समय बढ़ीं, जब रोमन साम्राज्य ने पश्चिमी इलाकों में अभिजात वर्ग ने जमीनें प्राप्त

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कर ली थीं। रोमन साम्राज्य में बड़े आकार की जमींदारी हुआ करती थी, जिसे लैटिफुंडिया कहा जाता था और इसमें दासों द्वारा खेती करायी जाती थी। यूनान में देखें तो वहाँ खेतों का आकार रोमन खेतों के आकार की अपेक्षा कम था। इसीलिए वहां दास प्रथा के प्रसार की सम्भावनाएँ कम थीं, जबकि रोमन साम्राज्य में लैटिफुंडिया में बहुत सारे दासों से काम लिया जाता था। इसी दौरान बन्दी बनाये गये लोगों को दास बना लिया जाता था।

रोमन साम्राज्य में दासों को सम्पत्ति की भांति समझा जाता था अर्थात् उन्हें बाजार में बेचा और खरीदा जा सकता था। रोमन साम्राज्य में दासों के लिए सर्वस शब्द का इस्तेमाल होता था। दासों की उपयोगिता रोमन साम्राज्य की अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में बनी हुई थी। कृषि, खनन, हस्तशिल्प आदि क्षेत्रों में मुख्य रूप से दासों को लगाया जाता था। हस्तशिल्प उद्योग में तो 90 प्रतिशत काम दासों से ही कराया जाता था। इसके अतिरिक्त दासों को सरकारी दफ्तरों में लिपिकों के काम पर लगाया जाता था। खेतों और खानों में काम करने वाले दासों को तो जंजीरों से बांधकर रखा जाता था। रोमन साम्राज्य में दासों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाता था और उन पर तरह-तरह के अत्याचार किये जाते थे। दासों को अलग-अलग रखा जाता था, क्योंकि उनके बीच एकता न हो सके, इसके लिए बड़ी सतर्कता बरती जाती थी। परन्तु राज्य के कड़े नियन्त्रण होने के बावजूद भी इन दासों ने तीन बार विद्रोह किया। पहला दास विद्रोह सिसली में 136-132 ई.पू. में हुआ। इसी द्वीप पर दूसरा विद्रोह 104-102 ई.पू. में हुआ। तीसरा विद्रोह 73-71 ई.पू. में हुआ। यह विद्रोह बहुत जबरदस्त था। इस विद्रोह को स्पार्टाकस विद्रोह के नाम से जाना जाता है, जो कापुआ में आधुनिक नेपल्स के निकट हुआ। इस विद्रोह को बड़ी निर्दयता के साथ कुचल दिया गया।

प्राचीन रोमन साम्राज्य में सबसे अधिक संख्या में दासों का उपयोग होता था और उस समय के किसी भी साम्राज्य में इतने दासों का उपयोग नहीं होता था। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि यूनान की तरह रोम दासों से मुक्त समाज नहीं था, बल्कि यह एक दास समाज था। इसे दास समाज इसलिए कहा जा सकता है, क्योंकि उत्पादन के लिए व्यापक पैमाने पर दास श्रमिकों को काम पर लगाया जाता था।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. प्राचीन रोमन गणतन्त्र में किस प्रकार के अधिकार पदाधिकारी के पास होते थे? पदाधिकारियों का चुनाव कैसे होता था? संक्षिप्त रूप से व्याख्या करें।**

**उत्तर**–रोमन साम्राज्य उस समय के विश्व के अन्य साम्राज्यों में अनूठा था, क्योंकि यहाँ लगभग 5 शताब्दियों तक गणतन्त्र व्यवस्था रही थी। कॉन्सल कहे जाने वाले दो मजिस्ट्रेट सरकार के मुखिया हुआ करते थे, जिनका प्रतिवर्ष चुनाव होता था। अभिजातीय सत्ता का सबसे बड़ा तन्त्र कुलीन सभा या सीनेट थी। यह रोमन साम्राज्य का सबसे बड़ा निकाय होता था। इसके अलावा अन्य नागरिकों की सभाएँ भी थीं। ये कान्सल कहे जाने वाले मजिस्ट्रेट गणतन्त्रीय सत्ता के सर्वोच्च अधिकारी होते थे। ये सीनेट की अध्यक्षता करते थे और इसके न्यायिक-सैनिक दायित्वों को पूरा करते थे। कॉन्सलों का चुनाव नागरिकों की एक सभा करती थी, जिसमें पैट्रिशियन और प्लेबियन दोनों होते थे। कॉन्सल बिना किसी प्रतिबन्ध के एक बार कार्यकाल पूरा होने के बाद पुनः चुनाव में खड़े हो सकते थे। 367 ई.पू. तक केवल पैट्रिशियन ही कॉन्सल बन सकते थे। परन्तु एक लम्बे संघर्ष के बाद एक पद प्लेबियनों के लिए भी छोड़ दिया गया। परन्तु यह महज औपचारिकता थी, क्योंकि चुनाव प्रक्रिया पर पैट्रिशियनों का नियन्त्रण होता था और वे अपने मन-मुताबिक कॉन्सलों का चुनाव कर लेते थे।

इन कॉन्सलों के अलावा भी अन्य कई अधिकारी/मजिस्ट्रेट रोमन गणतन्त्र में होते थे। शासन की देखरेख करते थे। दो अन्य मजिस्ट्रेट होते थे, जिन्हें सेन्सर्स कहा जाता था। इनका चुनाव हर पाँचवें वर्ष होता था और वे एक पद पर लगातार 18 महीने तक रह सकते थे। इन सेन्सर्स को अपने कार्यकाल के दौरान रोम के नागरिकों की गणना करनी होती थी। यह जनगणना अलग प्रकार की होती थी, क्योंकि इसमें केवल नागरिकों को गिना जाता था। प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति का ब्यौरा रखा जाता था, क्योंकि सम्पत्ति के आधार पर ही कोई व्यक्ति चुनाव लड़ सकता था या मत दे सकता था, जिसके लिए एक निश्चित सम्पत्ति का मालिक होना आवश्यक था। इस जनगणना के अलावा सेन्सर्स पर अन्य कार्यों की जिम्मेदारी भी होती थी; जैसे-नागरिकों की नैतिकता पर नियन्त्रण रखते थे। जो नागरिक नैतिकता का पालन नही करते थे, उनके खिलाफ कार्यवाही करने का अधिकार इन सेन्सर्स के पास होता था।

सेन्सर्स के पास सार्वजनिक जमीनों को किराये पर देने और राज्य की ओर से जमीन ठेके पर देने का अधिकार भी होता था।

प्रारम्भ में केवल पैट्रिशियनों को ही सेन्सर्स के पद पर चुना जाता था। परन्तु बाद में प्लेबियनों को भी इस पद के लिए चुना जाने लगा। सेंसर्स और कॉन्सलों के अलावा भी कई छोटे मजिस्ट्रेट हुआ करते थे। इनका भी चुनाव होता था और ये अवैतनिक मजिस्ट्रेट हुआ करते थे। इस प्रकार के पद थे-ऐडिल्स, क्वेस्टर्स आदि।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि रोमन साम्राज्य के गणतन्त्र में कई महत्त्वपूर्ण अधिकारी/मजिस्ट्रेट हुआ करते थे। और उनको राज्य के कई महत्त्वपूर्ण कार्यों करने होते थे। पहले ये पद केवल पैट्रिशियनों के लिए ही होते थे, परन्तु धीरे-धीरे और लम्बे संघर्ष के बाद ये पद प्लेबियनों को भी दिये जाने लगा, जिससे इन पदों में सभी की भागीदारी और समानता आती चली गयी।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**प्रश्न 2. कौंसिलियम प्लेबिस क्या था? 100 शब्दों में बताइए।**

**उत्तर**–कौंसिलियम प्लेबिस केवल प्लेबियनो की सभा थी। यह कोमिशिया क्यूरियाटा और कोमोशिया सेच्यूरियाटा की तरह सभी नागरिकों की सभा नहीं थी। इस सभा में केवल प्लेबियनों की समस्या पर विचार-विमर्श होता था। जल्दी ही सभा ने अपना ढांचा तैयार किया। इसने अपने अधिकारी चुनने शुरू किये और अपनी कार्य-पद्धति का निर्धारण किया। 494 ई. में प्लेबियनों ने दो अधिकारियों का चयन किया और रोमन साम्राज्य पर दबाव डाला जाने लगा कि वह इन्हें कौंसिलिसम प्लेबियस का अधिकारिक प्रतिनिधि माने। राज्य द्वारा इन्हें अधिकारिक रूप से मान्यता दे दी गई। इन अधिकारियों को ट्रिब्यून्स कहा जाता था, जो प्लेवियनों के प्रवक्ता होते थे। इनके उत्तरदायित्व बढ़ते गये तथा जिम्मेदारियाँ भी बढ़ती चली गयीं। इन पदों को प्राप्त करने के लिए प्लेबियनों में जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती थी, उनमें होड़ मचने लगी। क्योंकि ट्रिब्यूनों में चुने जाने के बाद उन्हें राजनैतिक सत्ता में भागीदारी मिल जाती थी।

281 ई.पू. में कौंसिनियम प्लेबियस के निर्णयों को रोमन राज्यों में लागू करना अनिवार्य कर दिया गया और इसके निर्णय रोमन राज्य में मान्य हो गये। इनको राज्य का अनुमोदन प्राप्त होता था और इनको न मानने वालों के खिलाफ कार्यवाही की जाती थी। इस प्रकार के प्रावधान में कौंसिलियम प्लेबियन की महत्ता बढ़ गयी, क्योंकि इसके द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को कानूनी मान्यता मिल गयी थी।

इस प्रकार कौंसिलियम प्लेबिस जो सिर्फ प्लेबियनों की संस्था थी और उनके ही हितों का प्रतिनिधित्व करती थी, अब उसके निर्णयों भी पूरे राज्य में लागू किया जाने लगा।

**प्रश्न 3. प्लेबियनों में सामाजिक विभाजन किस प्रकार का था?**

**उत्तर**–रोमन साम्राज्य में अधिकांश प्लेबियन किसान थे और सेना आदि में भी इन्हीं का वर्चस्व होता था। प्लेबियनों के सामाजिक विभाजन को देखने से पता चलता है कि इन्होंने अपनी एक अलग सभा भी बनायी थी, क्योंकि इस सभा से पूर्व बनी सभा में जिसमें प्लेबियनों और पैट्रिशियनों दोनों का योगदान था, इनकी समस्याओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। धीरे-धीरे इनके सामाजिक रहन-सहन में और परिवर्तन होते चले गये। यहाँ तक कि गणतन्त्र के अन्तिम दौर में इनकी सामाजिक श्रेणियों में भी अन्तर आने शुरू हो गये। प्लेबियनों में भी पैट्रिशियनों की तरह एक छोटा-सा वर्ग इस समय उभरकर सामने आया, जिसमें संभ्रांत और धनी प्लेबियन लोग होते थे, और ये लोग जो राजनैतिक परिवर्तन प्लेबियनों के हित में होते थे, उनका उपयोग उपने हितों के लिए करने लगे। यहाँ तक कि इन लोगों से जो सीनेट के पद तक पहुँचे, वे भी पैट्रिशियनों की तरह सुख-सुविधाओं का लाभ उठाने लगे। प्लेबियनों का यह समूह आगे चलकर राजनिति का हिस्सा भी बना। इन प्लेबियनों के राजनैतिक कार्यों और सुख-सुविधाओं ने इन लोगों की मानसिकता को भी बदल दिया। अब ये लोग किसान प्लेवियनों के बारे में अधिक नहीं सोचते थे और न ही उनके हितों पर ध्यान देते थे।

यदि हम प्लेबियनों की प्रारम्भिक स्थिति से (गणतन्त्र के प्रारम्भ की) से बाद की (गणतन्त्र के अन्तिम दौर की) स्थिति के सम्बन्ध में देखें, तो हमें पता चलता है कि प्रारम्भ में प्लेबियन एक छोटे किसान हुआ करते थे। तीसरी शताब्दी तक इनकी ज्यादातर जमीनें इनके हाथ से निकल गयी थीं और कोमिशिया सेंच्यूरियाटा में भी छोटे किसानों को केवल एक सेच्यूरी आबंटित की गयी थी और रोम की सेना में ज्यादातर भागीदारी इन छोटे किसानों की ही होती थी। इन किसानों को सेना के लिए अस्त्र-शस्त्र और साजो-सामान भी खुद ही जुटाना पड़ता था, जिससे इनकी आर्थिक स्थिति और भी खराब होती चली गयी। इनको ऋण लेना पड़ता था और ऋण न चुकाये जाने की स्थिति में इन किसानों को बंधक के रूप में कार्य करना पड़ता था व साथ ही इनकी जमीनें जब्त कर ली जाती थीं। इस प्रकार बाद के समय में इन किसानों ने संघर्ष किया और अपने हितों में कुछ सुधार करवाने में ये लोग कामयाब रहे।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि प्लेबियनों में भी समाज दो वर्गों में बंट गया था। एक ओर बड़े और संभ्रांत वर्ग का प्लेबियन समाज उभरा और दूसरी और वे ही छोटे किसान रहे, जिनको इस समय भी अपने हितों के लिए अब संभ्रांत प्लेबियनों और पैट्रिशियनों दोनों से संघर्ष करना पड़ा।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# अन्य सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियां

# लैटिन अमेरिका

# 14

## परिचय

माया सभ्यता, जिसका काल संभवतः 500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के बीच माना जाता है, यह आधुनिक गुआटेमाला, बेलिजे, दक्षिण पूर्व मैक्सिको और होंडुरास तथा अल सेलवेडोर के पश्चिमी इलाकों में फैली हुई थी। यह कोई स्वीकृत इकाई के रूप में नहीं था, बल्कि बिखरे हुए गांवों एवं शहरों की सांस्कृतिक इकाई थी। हालांकि शहर और गांव आपस में जुड़े हुए जरूर थे, उसका बड़ा केन्द्रीय शहर राज्य के अधीन था। यहाँ एक समय में चार बड़े प्राथमिक केन्द्र थे, जिनका राजवंश क्रमशः टीकल, कलकमुल, कोपान और पालेंके था। माया बस्तियों की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि लगभग सभी बस्तियों में शहर एवं उत्सव केन्द्र था। शहरों की बनावट इस प्रकार की थी कि उसके केन्द्र में उत्सव केन्द्र होता था, जिसके चारों ओर विशाल चौक होता था। उसके बाद शाही कर्मचारियों एवं पुरोहितों का घर होता था तथा सबसे अंत में आम जनता के घर होते थे। ऊपरी माया बस्तियों में सेनोट्स अर्थात् कुआं के भी प्रमाण मिले हैं, जिसका उपयोग रोजमर्रा की आवश्यकता के लिए होता था।

यहाँ की बस्तियों के स्थापत्य की विशेषता चूना-गारा और टोडा मेहराब का प्रयोग था। टोडा मेहराब में पत्थरों को एक के ऊपर एक इस प्रकार रखा जाता था कि मेहराबी छत का निर्माण हो जाता था। उसके लिए वजन और आकार के संतुलन का भी ध्यान रखा जाता था। यहाँ के भवनों का आकार-प्रकार काफी भव्य होता था। साथ ही उसमें नक्काशी का भी प्रयोग किया जाता था। यहाँ के विशाल भवनों में पिरामिड, बॉलकोर्ट, विशाल द्वार, स्नानागार आदि महत्त्वपूर्ण थे। युआक्साकटन उस सभ्यता का एक पुराना शहर था, उसमें माया सभ्यता की सारी विशेषताएँ मौजूद थीं। यहाँ की प्रमुख विशेषता थी यहाँ का प्रमुख मंदिर पिरामिड। उसमें चौड़ी सीढ़ियाँ बनी होती थीं, जिन्हें गचकारी नकाब से सजाया गया था। यहाँ तीन मंदिरों का एक समूह भी प्राप्त हुआ है, जिसमें चौड़ी सीढ़ियाँ तथा अलंकृत छत के शिखर एक-दूसरे के सामने बने हुए हैं। धीरे-धीरे तकनीक के विकास के साथ मंदिर में कई प्रकार की इमारतें बनने लगीं। पहली शताब्दी ई. में उत्तरी एक्रोपोलिस पर तीन बड़े तथा दो छोटे चबूतरे बनाए गए थे। उनकी सीढ़ियों को भी गचकारी रंग से अलंकृत किया गया था। गचकारी मुखौटों पर बने देवताओं के चित्र को शासक वर्ग संभवतः अपना देवता मानते थे तथा देवी-देवता एवं शासक के बीच एक खास संबंध स्थापित हो गया था। हालांकि उस सभ्यता में भव्य इमारतों के अलावा सर्वसाधारण के रहने के लिए साधारण और देशी घरों के अवशेष भी मिलते हैं। यहाँ के निवासियों ने चौड़ी सड़कें भी बनाई थीं, जिन्हें स्केब कहा जाता था। ये सड़कें शहरों को एक-दूसरे से जोड़ती थीं। उनका निर्माण दलदलों एवं जंगलों में भी हुआ था। उनके निर्माण का उद्देश्य था कि व्यापारियों को आने-जाने में सुविधा हो तथा प्रशासनिक कार्यों को संपन्न करने में भी मदद मिलती थी। ये सड़कें न केवल अंदरूनी इलाकों को जोड़ती थीं, बल्कि बड़े-बड़े शहरों को भी जोड़ती थीं। मायावासियों द्वारा समुद्री मार्ग का भी उपयोग किया जाता था। कोलम्बस ने उनकी नौकाओं को देखा भी था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

माया शहर के मुखिया 'असली पुरुष' होते थे। यह पद न तो चयनित था और न ही मनोनीत, बल्कि यह आनुवंशिक पद था। सरदार की मृत्यु के बाद उसका पुत्र उसका अधिकारी होता था। बड़े पुत्र के अयोग्य होने की स्थिति में छोटे पुत्र को उत्तराधिकारी बनाया जाता था। ये असली पुरुष उन शहर-राज्यों के अलौकिक तथा लौकिक प्रतिनिधि हुआ करते थे। उनके अधीन स्थानीय सरदार होते थे, जिन्हें अहाउ या बाताबोब के नाम से जाना जाता था। बाताबोब पर शहर की देख-रेख की जिम्मेवारी होती थी। शहर में नगर परिषद भी होती थी, जिसके अधिकारी बाताबोब के मातहत होते थे, परंतु ये बाताबोब के कार्य पर रोक लगा सकते थे। बाताबोब झगड़ा भी निपटाया करते थे। पुजारी लोग जो सलाह देते थे उनको पालन करवाने का कार्य भी बाताबोव का ही था। इस प्रकार बाताबोब प्रांत का मुखिया होता था, पर प्रांत का नेतृत्व युद्धनायक के हाथों में होता था, जिन्हें नाकोम कहा जाता था। आवश्यकता पड़ने पर बाताबोब भी सेना का नेतृत्व करते थे। ये आमतौर पर पालकी पर घूमा करते थे। माया सभ्यता में नौकरशाही

के भी प्रमाण मिलते हैं, जो कि काफी सख्त थी। उसमें समाज के प्रभुत्वशाली लोग शामिल थे। सामान्यजन या किसान अन्य वर्ग के लोगों की सेवा किया करते थे। ये भवनों के निर्माण में भी सहयोग करते थे।

मायावासी कई प्रकार की फसलों को उगाया करते थे। फलों, रंग, इत्र बनाने वाले पौधों आदि की खेती अलग-अलग ढंग से की जाती थी। मक्का यहाँ की प्रमुख फसल थी। इसके अलावा लोग फलियां, कुम्हड़ा, लौकी, मीठा कसावा आदि भी उपजाया करते थे। भूमि और नमक के भंडार पर सामुदायिक मिल्कियत होती थी। हालांकि समुदाय के सदस्यों को खेती करने तथा फसल उगाने के लिए जमीन आबंटित की जाती थी। उस क्षेत्र में पानी की समस्या थी, हालांकि वर्षा खूब होती थी। परंतु वर्षा का पानी जमीन पर टिक नहीं पाता था या फिर जमीन के भीतर चला जाता था। उनके पास कुशल कारीगर थे, जिन्होंने प्लाजा के निकट पानी सोखने वाले पूरे चूना-पत्थर, तेग को बंद करके विशाल जलाशय बनाया था। चाक उनका वर्षा का देवता था, जबकि यूम कॉक्स फसल के देवता थे। खेती के आरंभ के पहले इन देवताओं की पूजा भी की जाती थी। ये आमतौर से पौधों को रोपने के लिए शुभ दिन का इंतजार करते थे। उनके समाज में अहकिन नाम का पुजारी था, जो आमतौर से शिक्षक की भूमिका निभाता था। ये पुजारी लोगों को नक्काशीदार लिपि पढ़ना तथा पंचांग की व्याख्या करना भी सिखाते थे। यहाँ के निवासी संकट के दिनों के लिए अनाज जमा करके भी रखते थे। परंतु निचले तबके के लोगों को राजस्व एवं नजराना भी देना पड़ता था। किसान उपज का एक हिस्सा राजस्व के रूप में जमा करता था। साथ ही सरदार एवं पुजारियों के खेतों पर उन्हें बेगार का काम भी करना पड़ता था। मार्गों आदि के निर्माण में भी उन्हें मुफ्त श्रम देना पड़ता था, जिसे कौरवी कहा जाता था।

सार्वजनिक इमारतों के निर्माण के लिए लोगों से मुफ्त श्रम लिया जाता था। आम जनता के द्वारा दिये गए राजस्व पर सरदार, पुजारी, सैनिक एवं असैनिक अधिकारी मौज किया करते थे। उस सभ्यता में बड़ी संख्या में कुशल कारीगर भी उपलब्ध थे, जो मंदिरों एवं भवनों को सजाया करते थे। युद्ध के समय बंदी बनाये गए सैनिकों को दास बना लिया जाता था। उनसे तरह-तरह के काम लिये जाते थे। कभी-कभी ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए उनकी बलि भी चढ़ाई जाती थी। खेतों में कार्य करने के अलावा बुनाई भी मायावासियों का एक प्रमुख रोजगार था। पुरुष और महिला दोनों के द्वारा यह कार्य किया जाता था। विनिमय एवं व्यापार भी नियमित रूप से होता था। पंचांग और चित्रलिपि माया सभ्यता की प्रमुख उपलब्धि है। मायावासियों के पास तीन तरह के कैलेण्डर थे। हाब में वर्ष 18 महीनों में विभाजित था, जबकि जोलकिन कैलेण्डर में 260 दिन हुआ करते थे। तीसरे कैलेण्डर में लम्बी अवधि की गणना की जाती थी। चित्रित लिपि के अभिलेखों से भी कैलेण्डर होने की पुष्टि होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 9वीं शताब्दी में उस सभ्यता में इमारतें बननी बंद हो गई थीं, जो कि उसके पतन को दर्शाता है। विद्वानों ने उस सभ्यता के पतन का कारण अनुमान के आधार पर मलेरिया या पीले बुखार जैसी बीमारी को माना है। कुछ का यह भी मानना है कि उसका पतन सूखा या भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदा के कारण हुआ होगा, जबकि कुछ उसके पतन का कारण किसान विद्रोह को भी मानते हैं। जैसे प्रतीत होता है कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण संसाधनों पर दबाव बढ़ने लगा। हालांकि उस सभ्यता से प्राप्त कंकालों से ज्ञात होता है कि उनकी मौत किसी बीमारी के कारण हुई होगी। ऐसा माना जाता है कि जनसंख्या का दबाव बढ़ने के कारण लोगों द्वारा बार-बार खेतों को जोता जाता था तथा भूमि के विस्तार के लिए व्यापक तौर पर जंगलों को भी काटा गया होगा जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ा होगा। यही परिस्थिति असंतुलन आपदा में परिणत हुई होगी तथा सभ्यता का विनाश हो गया होगा।

हालांकि पतन का एक कारण कृषक विद्रोह भी माना जाता है। बोनामपाक से प्राप्त भित्तिचित्रों में कृषक विद्रोहियों को बंदी के रूप में चित्रित किया गया है। हालांकि विद्वानों में उस चित्र को लेकर मतभेद भी हैं। कुछ का मानना है कि यह चित्र कुलीनों का भी हो सकता है। हालांकि कुलीनों की संख्या उतनी नहीं थी कि उनके खत्म होने से पूरे सभ्यता का अंत हो जाए। हालांकि कृषकों ने जनसांख्यिकी को परिवर्तित करने का कोई प्रयास नहीं किया होगा। माया सभ्यता का पतन निःसंदेह एक जटिल प्रक्रिया है। पश्चिम के व्यापारिक मार्गों पर विभिन्न बस्तियों द्वारा नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास में अक्सर युद्ध हुआ करते थे। हालांकि अंदरूनी विद्रोह की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि शासकों द्वारा किसान वर्ग का शोषण होता था और समय के साथ उन किसानों ने जनता के नाम या शासक वर्ग के शोषण से अपने आपको मुक्त करने के प्रयास के तहत विद्रोह किया होगा। हालांकि माया सभ्यता की विभिन्न बस्तियों के पतन के अलग-अलग कारण हो सकते हैं।

12वीं से 16वीं शताब्दी के मध्य आधुनिक पेरू, बोलीविया, चिली, अर्जेन्टिना के इलाकों में उनकी सभ्यता फली-फूली। यह सभ्यता एक अन्य राज्य जो तवानतिनसुयु के नाम से जानी जाती थी, उसे उनका साम्राज्य भी कहा जाता था। कुसको के इन्कावासियों का दूसरे क्षेत्रों के विभिन्न जातीय समुदायों पर आधिपत्य स्थापित था। शावेन, मोथिका, नाजका, पराका और शिमू प्रमुख इन्का-पूर्व समुदाय थे, जो मुख्य रूप से खेतिहर थे। जौक्सा उनकी आरंभिक औपनिवेशिक राजधानी थी, के अधिपति ने डॉन फ्रेंसिस्को कुशिक ने लिखा था कि यूरोपियों को आने की अनुमति प्रदान करना उनकी सबसे बड़ी भूल थी।

13वीं एवं 15वीं शताब्दी में इन्का सभ्यता मजबूत स्थिति में थी। यहाँ के निवासियों ने सड़क के माध्यम से कृषकों को सभी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

दूर-दराज के इलाकों से जोड़ रखा था। 15वीं शताब्दी में कुसको तवानतिनसुयु की राजधानी बना। यहाँ एक उत्सव केन्द्र भी था जहाँ प्रतिदिन कपड़ों का दान किया जाता था। यहाँ बनी लंबी सड़कों ने उन जातीय समुदायों पर नियंत्रण रखने में मदद भी की जो कि उस साम्राज्य के अंग थे। यहाँ सड़कों के निर्माण पर काफी ध्यान दिया गया था। जंगलों एवं पहाड़ों को काटकर भी सड़कें बनाई गई थीं। नदी के रास्ते में सड़कों पर झूला पुल बनाया गया था। सड़कों की देखरेख की जिम्मेदारी पास के गांव पर होती थी। साथ ही सूचना तंत्र को मजबूत करने के लिए सड़कों के किनारे प्रत्येक एक कि. मी. की दूरी पर संदेशवाहक खड़े होते थे, जो संदेशों का आदान-प्रदान करते थे। स्थानीय अधिपतियों को अप्रत्यक्ष शासन के अनुकूल बनाया गया था। हालांकि यूरोपीय आक्रमणकारियों ने यहाँ के जातीय समूहों को बसा हुआ पाया। स्थानीय अधिपतियों को क्षेत्र पर शासन करने का अधिकार दिया जाता था, परंतु उन्हें अपने पुत्र को इन्का की राजधानी कुसको भेजना पड़ता था तथा उन्हें राजदरबार में इन्का की भाषा क्वेशुआ में शिक्षा दी जाती थी। शाही अधिकारियों की नियुक्ति सड़क के किनारे स्थित प्रशासनिक केन्द्रों पर होती थी। उनका काम स्थानीय अधिकारियों का निरीक्षण एवं सर्वेक्षण करना होता था। शाही अधिकारी स्थानीय अधिकारियों को सजा भी देता था। अपराध का कारण होता था शाही निरीक्षक का अपमान करना, बकाया जमा नहीं करना, विद्रोह करना आदि। गंभीर अपराधों के मामले में स्थानीय अधिपति को पद से हटा भी दिया जाता था तथा उनके स्थान पर उनके योग्य उत्तराधिकारी को पद दिया जाता था। स्थानीय अधिपति कभी-कभी शासक कुल से भी होते थे। हालांकि कभी-कभी पड़ोस के गांव के निष्ठावान युवक को भी स्थानीय शासक नियुक्त किया जाता था। उन्हें अल्लिकाक कहा जाता था। मिता के सिद्धांत के तहत स्थानीय अधिपति और उनके समुदाय कुसको में श्रमिक सेवा और सैन्य सेवा उपलब्ध कराते थे। सार्वजनिक काम करने के लिए बारी-बारी से एक जातीय समूह के बाद दूसरे समूह को कार्य करना पड़ता था। सैनिकों को अपना-अपना भाग खुद जुटाना पड़ता था। कुछ जातीय समूह जैसे-ऐमारा अपने आपको श्रेष्ठ योद्धा मानते थे। इस तरह के योद्धाओं को राजस्व करों तथा अन्य सेवाओं से छूट भी प्रदान की जाती थी। सार्वजनिक काम के अंतर्गत इमारतों का निर्माण, नजराना देना, निजी सेवा करना आदि शामिल था। नर्तकी और जोकर का काम भी सार्वजनिक काम माना जाता था।

ऐसा माना जाता है कि इस सभ्यता में लोगों द्वारा लम्बे समय तक सैन्य सेवा में रहने के कारण कृषि पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा होगा। किसान सामान्यत: कंद, तर्वी और प्यास बुझाने वाली कोकापत्ती उगाया करते थे। हालांकि उस सभ्यता में अधिकांश क्षेत्रों में मक्का की खेती बेहतर तकनीक से की जाती थी। यह लोगों के अन्न की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। उस क्षेत्र में सिंचाई हेतु नहरों की भी व्यवस्था थी। अइल्लू एक वंशाधारित सामाजिक समूह था, जिसके सभी सदस्यों की जमीन या सामूहिक मिल्कियत थी। क्वेशुआ या इन्का में भूमि पर व्यक्तिगत मिल्कियत नहीं थी। हालांकि ऐन्डियाई भौगोलिक क्षेत्र में खेती योग्य भूमि कम थी। यहाँ की जलवायु भी आज की तरह प्रतिकूल ही थी। यहाँ दिन का तापमान बहुत अधिक तथा रात का तापमान बहुत कम हो जाता था। यहाँ की तटीय भूमि को सिंचाई के बगैर तर नहीं किया जा सकता था, पर उस क्षेत्र में रहने वाले किसान उस जलवायु का इस्तेमाल भोजन एवं सब्जियों को सुरक्षित रखने के लिए करते थे। वे रात की ठंड में उन्हें जमा लेते थे और दिन की धूप में उन्हें सुखा लेते थे। यहाँ तक कि यहाँ के लोगों ने ग्लेशियर्स से सिंचाई के लिए नहरें भी बना ली थीं।

तटीय क्षेत्र में नमक, मछली और खाने योग्य शैवाल उपलब्ध था। लेक टिटिकाका के क्षेत्रों में कंद के साथ ही साथ ऐसे जानवर भी मिलते थे, जिनके मांस एवं ऊन का उपयोग किया जाता था। हालांकि निचले इलाकों में मक्का की जमकर खेती होती थी। उन प्रदेशों में रहने वाले लोगों के बीच विनिमय भी हुआ करता था। एक जगह रहने वाले लोगों को दूसरी जगह खेती के लिए भी भेजा जाता था। ऐसे लोगों को मितमाक कहा जाता था। हालांकि कुछ विद्वान यह मानते हैं कि ये लोग इन्का द्वारा बसाए गए थे। सामान्यत: इन मितमाकों का निवास स्थान इन्कावासियों के 'एक दिन चलने' की दूरी पर स्थित स्थान होता था। उनके बसाव से सामाजिकता एवं शादी-विवाह के तरीकों में भी परिवर्तन आया। हालांकि समय के साथ मितमाकों की ये बस्तियाँ विभिन्न प्रकार के शिल्पों का विशिष्ट केन्द्र बनने लगीं। लुपाका में कुम्हारों और धातुकर्मियों के अलग-अलग गांवों के होने का भी प्रमाण मिला है। इन्का काल में मितमाकों को नए काम सौंपे गए। हुआनकेन के समीप एक उत्पादन केन्द्र भी स्थापित किया गया। यह एक ऐसा गांव था, जहाँ हजारों बुनकर और हजारों कुम्हार काम किया करते थे। महिलाओं को बुनाई के काम में लगाया गया था। हालांकि इन्का में मितमाकों का उपयोग सैन्य सेवा के लिए भी होता था। उनकी सहायता विद्रोह को दबाने तथा क्षेत्र के विस्तार में भी ली जाती थी। इन्का राज्य के विस्तार के साथ इन्का शासन को मजबूत करने और राजस्व वसूलने के लिए भी मितमाकों का उपयोग होने लगा। उसे जुटाने अधिपतियों के माध्यम से लागू किया गया और इस प्रकार अप्रत्यक्ष शासन बना रहा।

इन्का शासकों द्वारा धार्मिक मामलों में स्थानीय धार्मिक आस्थाओं को सम्मान दिया गया। विजित क्षेत्रों के लोगों को इन्का के आराध्य सूर्य देवता और मातृदेवी की आराधना का निर्देश दिया जाता था। साथ ही स्थानीय समुदाय के देवी-देवता को कुसको ले जाया जाता था तथा उन्हें सूर्य मंदिर या विशेष मंदिर में स्थापित कर दिया जाता था। यहाँ मानव बलि की भी परंपरा थी। उन्होंने कैलेण्डर एवं दशमलव अंक पद्धति भी विकसित कर ली थी। हालांकि उनके पास मुद्रा नहीं थी। लिपि या लेखन कला नहीं थी, पर वे डोरियों

में गांठें लगाकर हिसाब-किताब रखते थे, जिसे खिपू कहा जाता था। कपड़े का उपयोग पहनने के अलावा नक्शा बनाने तथा आनुष्ठानिक क्रियाओं के लिए भी किया जाता था। अनाज भंडार उनकी महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, जिसमें मक्का और अन्य खाद्य पदार्थ रखे जाते थे। इन्काओं द्वारा क्वेशुआ भाषा का इस्तेमाल किया जाता था जो सांस्कृतिक एकता का प्रतीक था।

एजटेक सभ्यता भी मध्य अमेरिका में 12वीं से 15वीं शताब्दी के बीच अस्तित्व में रही। मैक्सिको प्रदेश में इस सभ्यता का भौगोलिक क्षेत्र था। उसका साम्राज्य 38 प्रांतों में विभाजित था। प्रत्येक प्रदेश का एक प्रदेशाध्यक्ष होता था, जो उस क्षेत्र के कबीलों पर शासन करता था। 1100 ई. में टॉलटेक्स को अपदस्थ कर अमेरिकी प्रदेशों में साम्राज्य राजनीतिक रूप से व्यवस्थित हुई। एजटेकों का टॉलटेक्स पर आधिपत्य का कारण उनके निर्भीक एवं कुशल कबीले थे। इन कबीलों ने धीरे-धीरे अपने पड़ोसी कबीलों जैसे–टोटोनाक्स, तबासक्स्स, तलाक्साकलान्स और शोलुलन्स पर भी कब्जा जमा लिया। हालांकि ये कबीले एजटेक को कर देते थे, परंतु उनकी शासन व्यवस्था एवं देवता अपने होते थे। पर उसके बावजूद भी एजटेक के कर्मचारी उनसे जोर-जबरदस्ती किया करते थे तथा बलि के लिए व्यक्तियों की मांग भी करते थे। हालांकि ये लोग एजटेक को नजराने के रूप में मक्का, मछली, सोना, जेड, पशु आदि भेजा करते थे।

14वीं शताब्दी में एजटेकवासियों द्वारा टेनोशटिटलान और टलाटेलोलको नामक दो शहर बसाए गए। मोक्टेजुमा II के काल में पूरे क्षेत्र पर उनका कब्जा हो गया। यह काल एजटेक के लिए उपलब्धियों का काल था। उस दौरान नहरों, सार्वजनिक इमारतों, चौड़ी सड़कों और महामार्गों का निर्माण किया गया। साथ ही एजटेकवासियों ने पराजित कबीलों के अधिशेष के बल पर अपनी राजधानी टेनोशटिटलान को एक समृद्ध एवं खुबसूरत नगर में तब्दील कर दिया। यह शहर एक द्वीप पर विकसित था, जिसका विस्तार टेक्सोको झील तक हुआ। उस शहर को तीन सेतु मार्गों द्वारा मुख्य भूमि से भी जोड़ा गया। कई बस्तियाँ भी अपनी पड़ोसी बस्तियों से उस मार्ग के कारण जुड़ी थीं। बाढ़ से बचाव के लिए शहर के चारों ओर सुरक्षात्मक मजबूत दीवार भी बनाई गई थी। रात में मशालें जलाकर उस पर रोशनी भी की जाती थी। शहर को पानी शापुलटेपेक से मिलता था। यहाँ के लोग अपने स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति भी जागरूक थे। संभ्रांत लोग पत्थर के घरों में रहा करते थे, जबकि साधारण जनता का घर शहर के केन्द्र से दूर होता था।

एजटेकवासी वाणिज्यिक विनिमय में धन या मुद्रा के मानक इकाइयों के रूप में सोने के चूरे से भरी थैलियों और खोखली नालियों का प्रयोग करते थे। इसके अलावा तांबे की पत्ती, सूती कपड़ा, कोको बीन्स आदि का प्रयोग भी लेन-देन में किया जाता था।

हालांकि विनिमय का मुख्य साधन वस्तुएँ या फिर काम के घंटे होते थे। टेनोशटिटलान में एक बड़े बाजार का भी प्रमाण मिला है। जहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ खरीदी-बेची जाती थीं। यह बाजार कई भागों में विभाजित था। पहले भाग में सोना-चाँदी जैसी बहुमूल्य चीजें बिकती थीं, जबकि दूसरे भाग में चॉकलेट एवं विभिन्न प्रकार के मसाले बिकते थे। तीसरे भाग में कपड़ा एवं पशु मिलते थे, जबकि चौथे भाग में मक्का, बीन्स, बीज, नमक, मुर्गे, खरगोश आदि मिलते थे। बाजार केवल वस्तुओं की खरीद-बिक्री का स्थल नहीं था, बल्कि यह सामाजिक आदान-प्रदान का भी स्थल था।

एजटेक साम्राज्य में तीन प्रमुख भागों के मिलन स्थल पर मंदिर परिसर था, जो चारों ओर से दीवारों से घिरा हुआ था। उसके परिसर के अंदर 30 से अधिक मंदिर थे। एजटेक के मुख्य देवता हुतिज्लिोपोशटलि का भी मंदिर था। उस परिसर में टोलेक्स के देवताओं को अराध्य देवों में शामिल किया गया, बल्कि पराजित लोगों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक रीति-रिवाजों को जारी रखने की छूट भी दी गई।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. माया बस्तियों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।**

**उत्तर**–माया सभ्यता अपने आप में कोई साम्राज्य या एकीकृत राजनीतिक इकाई नहीं थी, बल्कि बिखरे हुए बड़े और छोटे शहरों और गांवों की एक सांस्कृतिक इकाई थी। माया बस्तियों में शहरों का काफी विकास हुआ। उन शहरों के उत्सव केन्द्र भी माया बस्तियों की एक प्रमुख विशेषता रही है। शहरों की बनावट कुछ इस प्रकार की होती थी कि उसके केन्द्रीय उत्सव दरबार के चारों ओर विशाल चौक होता था। उस विशाल चौक में शहर का बाजार लगता था। सरदारों, पुजारियों और शासकीय कर्मचारियों का घर उत्सव केन्द्र के समीप होता था, जबकि साधारण लोगों के घर उत्सव केन्द्र से दूर होते थे। उन शहरों में छोटे चाक से लेकर विशाल जलाशय, चौड़ी सड़कें, क्रीडा प्रांगण और स्मारकों का ढांचा भी बना होता था। हालांकि ऊपरी माया बस्तियों में कुआं जिसे सेनोट्स कहा जाता था, भी पाए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका उपयोग रोजमर्रा की जरूरतों के लिए होता था।

माया बस्तियों की एक प्रमुख विशेषता थी चूना-गारा और टोडा मेहराब का प्रयोग। टोडा मेहराब का निर्माण पत्थरों द्वारा किया जाता था। टोडा मेहराब के निर्माण के लिए एक के ऊपर एक पत्थर इस प्रकार रखा जाता था कि दो दीवारें आपस में मिल जाती थीं तथा मेहराबी छत का निर्माण हो जाता था। इस प्रकार के मेहराब के निर्माण में पत्थरों के वजन और संतुलन का भी ख्याल रखा जाता था। माया बस्तियों में निर्मित भवनों का आकार एवं प्रकार की सुन्दरता का व्यापक ख्याल रखा जाता था। यहाँ के भवनों को नक्काशी के द्वारा सजाया भी जाता था। यहाँ की बस्तियों

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि यहाँ माया बस्तियों द्वारा विशाल पिरामिड का भी निर्माण किया गया है। थुआक्साकटन माया सभ्यता का एक पुराना शहर था हालांकि यह बहुत बड़ा नहीं था, लेकिन इस शहर में माया सभ्यता की सारी विशेषताएं मौजूद थीं। यहाँ की प्रमुख विशेषता यहाँ के मंदिर पिरामिड थे। उसमें चौड़ी सीढ़ियां हैं जिन्हें गचकारी नकाब से सजाया गया है। मंदिर परिसर में पत्थर का एक चबूतरा भी बना हुआ था, जिसमें लकड़ी का एक घर बना हुआ था। बाद में यहाँ एक ही तरह के तीन मंदिरों का भी निर्माण किया गया। उन मंदिरों की सीढ़ियों एवं छत को भी अलंकृत किया गया था। मंदिर में गचकारी मुखौटों पर जिन देवताओं के चित्र बने थे, उन्हें शासकीय लोग या सरदार लोग अपना पूर्वज मानते थे। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि देवी-देवता और शासक के मध्य एक खास संबंध का निर्माण हो चुका था। माया बस्तियों में शासकों एवं सरदारों के लिए भव्य इमारतें बनाई गई थीं। परंतु सर्वसाधारण के लिए साधारण तथा देसी घरों का निर्माण भी हुआ था। सर्वसाधारण के रहने के लिए बने उन घरों को 'ना' कहा जाता था, जिनके घरों की दीवारें लकड़ी की बनी होती थीं तथा छतें ताड़ के पत्तों द्वारा बनाई जाती थीं।

माया सभ्यता की बस्तियों की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता थी यहाँ की चौड़ी सड़कें। उन चौड़ी सड़कों को स्केब या स्केबेओब कहा जाता था। ये चौड़ी सडकें माया सभ्यता के विभिन्न शहरों एवं गांवों को एक-दूसरे से जोड़ती थीं। ये सड़कें दुर्गम स्थानों से भी गुजरती थीं। ये जंगलों एवं दलदलों से होकर भी जाती थीं। कुछ सड़कों का निर्माण पत्थरों को काटकर भी किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सड़कों के निर्माण का उद्देश्य था शहरों एवं गांवों को एक-दूसरे से जोड़ना ताकि उत्सव, आर्थिक कार्यकलाप तथा प्रशासनिक कार्यों को संपन्न करने में परेशानी न हो। ये विशाल शहरी केन्द्रों को जोड़ने के साथ-साथ अंदरूनी क्षेत्रों से भी जोड़ती थीं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि माया सभ्यता की बस्तियाँ काफी विकसित अवस्था में थीं। यहाँ सड़कों का एक विशाल जाल था, जो विभिन्न बस्तियों को आपस में जोड़ती था। माया बस्तियों में निर्मित भवनों में शिल्प एवं नक्काशी का भी सुन्दर नमूना देखने को मिलता है। मायावासी बस्तियों के लोगों के बीच आपसी सम्पर्क भी काफी उन्नत अवस्था में था। यहाँ की बस्तियों की एक प्रमुख विशेषता थी चूना-गारा एवं टोडा मेहराब का प्रयोग। बस्तियों के केन्द्र में मंदिर व उत्सव केन्द्र भी होते थे। मंदिरों के विकास पर माया बस्तियों ने काफी ध्यान दिया था। मंदिरों की छतों एवं दीवारों को अलंकृत भी किया जाता था।

**प्रश्न 2. इन्कावासी अपना भोजन कैसे सुरक्षित रखते थे?**

**उत्तर**–इन्का सभ्यता का फैलाव मुख्यत: आधुनिक इक्वाडोर, पेरू, बोलीविया, चिली, अर्जेन्टिना या मध्य एन्डियन के उच्चस्थ इलाकों में था। एन्डियाई क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र था, जहाँ के भौगोलिक वातावरण में काफी विविधता थी। उस क्षेत्र में खेती योग्य भूमि भी पर्याप्त नहीं थी। इसका कारण था कि यह एन्डीज के उच्चस्थ क्षेत्रों में विकसित सभ्यता थी। एन्डीज के कारण समतल भूमि का अभाव था। जो भी क्षेत्र थे वे काफी ऊबड़-खाबड़ थे, जिस पर खेती करना संभव नहीं था। साथ ही यहाँ की जलवायु में भी काफी विषमता होती थी। आज भी इस क्षेत्र में मौसम का मिजाज कभी खूब सर्दी होती है, तो कभी काफी गर्मी। उस समय भी यहाँ की जलवायु ऐसी ही थी।

एन्डियाई क्षेत्र की जलवायु की यह बहुत बड़ी विशेषता रही है कि यहाँ दिन हद से ज्यादा गर्म होते हैं तो रातें उतनी ही ठंडी। रात और दिन के तापमान में 25-30 डिग्री का अंतर होता था। यहाँ चरागाहों की भी पर्याप्त उपलब्धता नहीं थी, जो चरागाह थी, वह भी बिखरी हुई थी। तटीय भूमि इतनी सूखी थी कि सिंचाई के बगैर उसे तर करना मुश्किल था। पर यहाँ के लोग उस विषम जलवायु का भी बहुत सुन्दर तरीके से उपयोग किया करते थे। परंतु यहाँ के किसानों ने उस क्षेत्र की कमियों को इस प्रकार उपयोग किया कि वह यहाँ के लिए फायदेमंद साबित हुई। लोग उस जलवायु का इस्तेमाल अपनी सब्जियों एवं मांस को सुरक्षित रखने में करते थे। लोग अपने खाद्य पदार्थ को यहाँ की ठंड के कारण जमा लेते थे तथा फिर सुबह धूप में उन्हें सुखा लेते थे। इस प्रक्रिया से खाद्य पदार्थ खराब होने से बच जाते थे। खाद्य पदार्थों को इस प्रकार सुरिक्षत रखने की तकनीक का विकास होने के बाद लोग अपने खाद्य पदार्थ जैसे मछलियों आदि को लम्बे समय तक उपयोग हेतु रखा करते थे। इस तकनीक के कारण लोगों को न केवल खाद्य पदार्थों को रखने में मदद मिली, बल्कि इन खाद्य पदार्थों को दूसरी जगह भेजना भी आसान हो गया। खाद्य पदार्थों की सुरक्षा की तकनीक ने यहाँ के लोगों के जीवन को काफी हद तक सुगम बना दिया। उन खाद्य पदार्थों को लोग दूसरी जगह भेजकर वहाँ से अपनी अन्य आवश्कताओं की वस्तुएँ प्राप्त करते थे। हालांकि उस क्षेत्र की तटीय सूखी भूमि पर खेती करने के लिए ग्लेशियर से सिंचाई के लिए नहरें भी बनाई गई थीं। हालांकि उस क्षेत्र में सिंचाई के बगैर कृषि संभव नहीं थी, क्योंकि यहाँ की जलवायु काफी विषम थी।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि एन्डियाई क्षेत्र में रहने वाले इन्का वासियों ने यहाँ की कमियों का उपयोग करके उसे अपने लिए फायदेमंद बनाया। लोगों ने यहाँ की जलवायु में अपने भोजन को सुरक्षित रखकर उसका लंबे समय तक उपयोग करने में सक्षम हो सके तथा साथ ही उन वस्तुओं को अन्य स्थानों पर भेजना भी सुगम हो सका।

**प्रश्न 3. इन्कावासियों के आर्थिक जीवन में मितमाक की क्या भूमिका थी?**

**उत्तर**–मितमाक इन्का सभ्यता में लोगों का ऐसा समूह था, जिसे खेती के लिए किसी दूसरी जगह पर भेजा जाता था, जो इन

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



लोगों के लिए नई होती थी। हालांकि कुछ इतिहासकारों का मानना है ये इन्का द्वारा बसाए गए निष्ठावान लोग होते थे, जिनको विजित क्षेत्र में बसाया जाता था, ताकि वहाँ जाकर ये वहाँ की अर्थव्यवस्था एवं विकास को आधार दे सकें। वैसे सामान्यत: मितमाक वहाँ के स्थानीय निवासियों से 'एक दिन चलने' की दूरी पर अपना निवास बनाते थे। हालांकि समय के साथ अब दूरी में वृद्धि होती चली गई। जब क्षेत्र में संचार व्यवस्था सुरक्षित व बेहतर थी तथा शांति और सौहार्द की स्थिति होती थी, तो ये मितमाक स्थानीय लोगों से लगभग 60-80 दिन की पैदल यात्रा पर स्थित होते थे। जनगणना में इन मितमाकों की गणना उनके मूल स्थान पर ही जाती थी।

मितमाकों ने इन्कावासियों के आर्थिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया। मितमाक आमतौर पर कुशल और निष्ठावान लोग होते थे। ये आमतौर पर जिन स्थानों पर बसते थे, वे स्थान आगे चलकर शिल्प का विशिष्ट केन्द्र बन जाते थे। ये लोग जीवन के हर क्षेत्र में काफी कुशल होते थे। जिस स्थान पर ये जाते थे, वहाँ की अर्थव्यवस्था को ये गति प्रदान कर देते थे। उनकी बस्तियाँ पारिस्थितिक दृष्टि से कुछ खास होती थीं। लुपाका में ऐसे ही मितमाकों के द्वारा विकसित कुम्हार और धातु कर्मियों के अलग-अलग गांव होने का प्रमाण मिलता है। इन्का काल में मितमाकों को नए काम सौंपे गये थे। तितिकाका झील के तट पर हुआनकेन के समीप राज्य द्वारा संचालित एक उत्पादक केन्द्र स्थापित किया गया था। यह एक ऐसा गांव था, जहां हजारों बुनकर और हजारों कुम्हार काम किया करते थे, मितमाकों में से ही चुनी हुई महिलाओं को अपने जातीय परिवेश से अलग कर दिया जाता था, और उन्हें पूर्ण रूप से बुनाई में लगा दिया जाता था, जिसका उनके राजनीतिक जीवन में विशेष महत्त्व होता था। हालांकि इन्का काल में मितमाकों का उपयोग सैन्य सेवा के लिए भी होता था। राज्य मितमाकों की सहायता विद्रोह को दबाने एवं राज्य के विस्तार में लेता था। इसका एक उदाहरण यह मिलता है कि कोलपागुआ के किले की रक्षा करने के लिये मितमाकों को गुआरापा शहर दिया गया था, जहाँ उनके जातीय समूह के लोग अनाज उपजाते थे और उनके लिये खाद्यान्न उपलब्ध कराते थे। इन्का राज्य के विकास में मितमाकों ने इस रूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साम्राज्य के विस्तार की मदद की तथा उसके साथ ही समय के साथ उनकी जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। मितमाकों ने राज्य के विस्तार के साथ-साथ शासन को मजबूती प्रदान की तथा राजस्व वसूलने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। ऐसे किसान जो स्वयं खेती करते थे या अपने उपभोग के लिए खेती करते थे, उनसे कर नहीं लिया जाता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन्कावासियों के आर्थिक जीवन में मितमाकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। मितमाकों ने शिल्प एवं धातुकर्म के द्वारा उस समय की आर्थिक गतिविधियों को एक नई दिशा प्रदान की। ये लोग कुशल श्रमिक होते थे तथा साथ ही उनकी प्रकृति योद्धा की भी होती थी। ये लोग शासन के कार्यों में भी मदद किया करते थे। प्रशासनिक जिम्मेवारियाँ भी उनके द्वारा निभाई जाती थीं। मितमाक धातुकर्म एवं अन्य गतिविधियों के द्वारा इन्कावासियों की अर्थव्यवस्था को परिवर्तित कर देते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि मितमाकों ने इन्का सभ्यता के विकास में समग्र रूप से योगदान किया।

**प्रश्न 4. एजटेक सभ्यता पर एक टिप्पणी लिखिये।**

**उत्तर**–माया सभ्यता की तरह एजटेक सभ्यता का विकास भी मध्य अमेरिका में हुआ। इन्का काल 12वीं से 15वीं शताब्दी के मध्य था। इसका साम्राज्य 38 प्रांतों में विभाजित था एवं प्रत्येक प्रदेश के शासन के लिये एक प्रदेशाध्यक्ष होता था। उस क्षेत्र में 1100 ई. के आसपास एजटेक ने टॉलटेक्स को अपदस्थ करके राजनीतिक सत्ता अपने हाथों में ली। एजटेक लोग निर्भीक एवं अति कुशल लड़ाकू थे, जिस कारण ये टॉलटेक्स को सत्ता से अपदस्थ कर सके। इन लोगों ने धीरे-धीरे अपने पड़ोसी कबीलों पर भी आक्रमण करके उनके क्षेत्र पर कब्जा जमा लिया था। हालांकि ये कबीले एजटेक को कर देते थे तथा उनकी शासन-व्यवस्था अपनी होती थी।

एजटेकवासियों द्वारा 14वीं शताब्दी के आरंभ में टेक्सोको झील के पश्चिमी तट पर टेनोशटिटलान और टलाटेलोलको नामक दो शहर बसाए टेनोशटिटलान एजटेक की राजधानी थी। मोक्टेजुमा-II का काल एजटेक के लिए उत्कर्ष का काल था। इस दौरान नहरों, सार्वजनिक इमारतों, चौड़ी सड़कों और महामार्गों का निर्माण करवाया गया। हालांकि एजटेकवासी पराजित कबीलों के अधिशेष का काफी फायदा उठाते थे। लोग उनके करों पर शानो-शौकत का जीवन जीते थे। साथ ही उन्होंने अपनी राजधानी को काफी समृद्ध एवं खूबसूरत बना लिया था। उनकी विशाल एवं भव्य इमारतों का खंडहर आज भी बचा हुआ है, जो उनकी भव्यता एवं बुलंदी को प्रदर्शित करता है। उनकी राजधानी एक द्वीप पर विकसित थी, जिसका विस्तार टेक्सोको झील तक था। तीन सेतुमार्ग शहर को मुख्य भूमि से जोड़ते थे। बाढ़ से सुरक्षा के लिए उन लोगों ने पूरे शहर के चारों ओर विशाल सुरक्षात्मक दीवार बना रखी थी। रात में मशालें जलाकर इन पर रोशनी भी की जाती थी। दक्षिण छोर से शहर को बचाने के लिए झील में बांध भी बनाया गया था। दक्षिण में भी एक बंदरगाह था। एनाहुक के किसान नजराने के रूप में कृषि उत्पाद कृषि बंदरगाह तक पहुँचाते थे। शहर को पानी की आपूर्ति नालियों के माध्यम से शापुलटेपेक से होती थी। हालांकि एजटेकवासी अपने स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति भी काफी जागरूक थे। संभ्रांत लोग पत्थर के बड़े-बड़े घरों में रहा करते थे, जबकि साधारण जनता का घर शहरों से दूर होता था। आम जनता का घर मिट्टी और घास-फूस का बना होता था। मंदिर और बाजार भी शहर के केन्द्र से दूर होते थे।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



एजटेकवासी आर्थिक गतिविधियों के रूप में वाणिज्य तथा व्यापार भी किया करते थे। इन आर्थिक गतिविधियों में लेन-देन के रूप में धन या मुद्रा मानक इकाई के रूप में सोने के चूरे से भरी थैलियों, तांबे की पत्ती, सूती कपड़े आदि का उपयोग किया जाता था। हालांकि विनिमय का मुख्य साधन या तो वस्तुएँ होती थीं या फिर काम के घंटे। राजधानी शहर में एक बड़ा बाजार था, जिसके कई भाग थे। अलग-अलग भागों में अलग-अलग वस्तुओं का लेन-देन होता था। इस बाजार में बहुमूल्य पत्थरों से लेकर कपड़े, पशु, अनाज आदि का लेन-देन होता था। हालांकि बाजार केवल लेन-देन का ही स्थल नहीं था, बल्कि यह सामाजिक आदान-प्रदान का भी स्थल था। यहाँ के लोगों के जीवन में धर्म का भी महत्त्व था। तीन प्रमुख सेतुमार्गों के मिलन स्थल पर एक विशाल मंदिर बना हुआ था। उस मंदिर परिसर में अनेक मंदिर थे। मंदिरों को नक्काशीदार पत्थरों से सजाया गया था। इस परिसर में एजटेक के मुख्य देवता हुतिजिलोपोशटलि के साथ-साथ विजित कबीलों के देवता का भी मंदिर बना हुआ था। यहाँ की धार्मिक व्यवस्था ऐसी थी कि पराजित लोगों को भी अपने रीति-रिवाज तथा आराध्य देवता की पूजा करने की पूर्ण आजादी थी।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि एजटेक सभ्यता ने अपने पड़ोसी कबीलों के क्षेत्र पर कब्जा करके अपनी सभ्यता का विकास किया। यहाँ के लोगों ने उन पराजित कबीलों से कर प्राप्त करके अपनी जीवन-शैली तथा राजधानी को काफी भव्य एवं समृद्ध किया। परंतु धार्मिक मामले में यहाँ के लोग काफी उदार थे। इन लोगों ने पराजित कबीलों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ धार्मिक मामलों में भी पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। विकास का स्तर ऐसा था कि भवनों को भव्य बनाया जाता था। उन पर नक्काशी भी की जाती थी। संभ्रांत लोगों की जीवन-शैली ऐशो-आराम की थी, जबकि साधारण जनता सामान्य जीवन व्यतीत करती थी। साधारण जन के घर भी सामान्य हुआ करते थे।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# अफ्रीका

15

## परिचय

नील घाटी की सभ्यता अपने ऊंचे पिरामिड एवं नरसिंही मूर्ति के लिए इतिहास में अपना विशेष स्थान रखती है। आमतौर से यह कहा जाता है कि मिस्र अरबी सभ्यता है, किन्तु यह बात सर्वमान्य नहीं है। बाहर की विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित होने एवं उन्हें ग्रहण करने के बावजूद मिस्र की लेखन कला, संस्कृति एवं सोच अफ्रीकी है। नील घाटी सभ्यता का आरंभ 3000 ई.पू. पहले का है। अध्ययन के सुविधा हेतु इतिहासकारों ने उन्हें विभिन्न कालखंडों में विभाजित किया है। उसे क्रमशः प्राचीन, मध्य एवं नए राजवंशों में विभाजित किया गया है। यहाँ 332 ई.पू. तक 31 राजवंशों ने शासन किया। रोमवासियों ने 30 ई.पू. से 345 ई.पू. तक शासन किया। अरबों ने 642 से 1517 ई. तक मिस्र पर शासन किया। 1798 ई. में फ्रांसीसियों का प्रवेश हुआ एवं फिर 1882 में उस पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

फैरोह काल के मिस्र को भी कालक्रम में विभाजित किया गया है। तीसरे राजवंश के जोसेर के काल को पहले अंतराल के नाम से जाना जाता है। फैरोहों के पास स्थायी सेना नहीं थी। 2200 ई.पू. तक छठे राजवंश का अंत हो चुका था। पहले पिरामिड का निर्माण प्राचीन राजाशाही के समय हुआ था। 2050 ई.पू. में ग्यारहवें राजवंश की स्थापना के साथ ही पुनः केन्द्रीकृत शासन की स्थापना हुई। उस शासन काल को मध्यकालीन राजशाही के रूप में जाना जाता है। उनकी राजधानी थेबेस में थी। यह युग जल-निकास एवं सिंचाई परियोजनाओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। थोड़े से पिरामिडों का निर्माण उस काल में भी हुआ। हालांकि राजशाही धर्म में भी कुछ परिवर्तन हुआ। 1786 ई.पू. से 1560 ई.पू. में फैरोहों को हाइक्सोस से चुनौती मिली। ये लोग पश्चिमी एशिया के लड़ाकू कबीले थे। ऊपरी मिस्र के शासकों के विद्रोह के फलस्वरूप 1560 ई.पू. में अहमोस ने हाइक्सोस को खदेड़ने में सफलता पाई। उसने 18वें राजवंश की स्थापना की जो कि 1087 ई.पू. तक कायम रहा।

मिस्र का पहला पिरामिड तीसरे राजवंश के दूसरे राजा दजोसर द्वारा बनवाया गया। उसे सक्काशेह सीढ़ीनुमा पिरामिड के रूप में जाना जाता है। इसके बाद अनेक पिरामिड बने। गिजा में भी कई पिरामिड बने, जिन्हें खुकु, खाफरे और मेनकुरे नामक फैरोहों द्वारा बनवाया गया था। पिरामिड मुख्यतः मृत राजा के रक्षित शव को खाने के लिए बनाया जाता था। उस पिरामिड में ईश्वर और मृत राजा की पूजा के लिए मंदिर भी होता था। उसमें शासकों के सेवकों, पत्नियों एवं कभी-कभी बच्चों को भी दफनाया जाता था। उनके भीतर राजा की जरूरत की चीजें भी रखी जाती थीं। बाद में शासक के पिरामिड के बगल में सामंतों के पिरामिड भी बनने लगे। पुराने राजशाही में उनका निर्माण कम हुआ था, जबकि नए राजवंश के काल में पुनः उसके निर्माण ने गति पकड़ी। आमतौर से मिस्रवासी मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास रखते थे। यही कारण था कि मृत राजा के साथ उसकी जरूरत की वस्तुएँ भी दफनायी जाती थीं। बाद में मृत राजा की पूजा की परम्परा भी शुरू हुई।

2925 ई.पू. में राजनीतिक एकीकरण होने के बाद समन्तवाद की शुरुआत हुई तथा देवताओं के साथ संबंध स्थापित किए जाने लगे। सार्वभौमिक होने के कारण सूर्य देवता को सभी लोग स्वीकार करते थे। कई बार स्थानीय मंदिर राष्ट्रीय प्रतीक की भूमिका भी अदा करते थे। बाद में यह मंदिर आर्थिक और राजनीतिक भूमिकाएँ भी अदा करने लगे। मंदिर का पुजारी केवल धार्मिक भूमिका ही नहीं निभाता था, बल्कि उसकी कुछ प्रशासनिक जिम्मेदारियां भी थीं, जैसे–जमीन, पशुधन, परिवहन आदि की देखभाल तथा न्याय प्रदान करना। फैरोह पृथ्वी पर ईश्वर के दूत के रूप में शासन करते थे। उन्हें होरस के रूप में जाना जाता था। सम्राट् सेमसरेट I कहता है कि ईश्वर ने मुझे पृथ्वी पर गड़रिया बनाकर भेजा है, ताकि मैं सब कुछ व्यवस्थित रख सकूं। राजा से उम्मीद की जाती थी कि वह समाज में व्यवस्था को बनाए रखे।

मिस्रवासी राजा को दैवी पुरुष मानते थे। हालांकि यह पद भी षड्यंत्रों एवं सांसारिकता से मुक्त नहीं था। सम्राट् अमनोमहत के निर्देश में भी दैवी शक्ति से युक्त राजगद्दी से जुड़े षड्यंत्रों और

www.neerajbooks.com



दांवपेचों की चर्चा की गई है। उसमें अनधिकार राजगद्दी हड़पने का भी जिक्र है। हालांकि राजा के उत्तराधिकार का प्रश्न निर्विवाद नहीं था। उत्तराधिकार में सबसे बड़े बेटे को गद्दी पर बिठाने के नियम का उल्लंघन भी होता था। सेटी-I, रामसेस-II आदि ऐसे ही राजा थे, जिनके बारे में कहा जाता था कि उन्होंने उत्तराधिकार के नियम का उल्लंघन करके गद्दी प्राप्त की थी। हालांकि राजकुमारों का मकबरा उनकी हैसियत के अनुरूप नहीं होता था, जबकि महारानियों को शाही पिरामिड में स्थान मिलता था। यहाँ तक कि पुरानी राजशाही में राजकुमारों का नाम तक दर्ज नहीं होता था। कभी-कभी राजसिंहासन को शक्तिशाली प्रांतीय अधिकारियों द्वारा भी चुनौती मिलती थी। पुरानी राजशाही का अंत इसी कारण से हुआ था। साम्राज्य लोगों का न्यायदाता एवं व्यवस्थापक होता था। उसके कार्य में वजीर उसकी सहायता करता था। उत्पादन की देखभाल, कानून-व्यवस्था आदि की देखरेख राजकुमार या पुरोहित किया करते थे। कभी-कभी राजकुमार को सेनानायक की जिम्मेदारी भी दी जाती थी।

शाही परिवार के बाहर से भी अधिकारी हुआ करते थे। परंतु उसके लिए पढ़ा-लिखा होना आवश्यक था। मिस्रवासी पैपिरस जो कि एक प्रकार का पेड़ था, का प्रयोग लेखन हेतु करते थे। यही कारण है कि मिस्र की लेखन कला को पैपिरस कहा जाता है। लिपियों को सीखने के लिए विद्यालय भी खोले गए। उस काल में किसी पद को प्राप्त करने के लिए लेखन का ज्ञान अनिवार्य शर्त थी। पदाधिकारियों का एक समूह होता था, जिनका जीवन ऐशो-आराम का होता था। उसमें वास्तुकार, इंजीनियर, सेनानायक, पुजारी, प्रशासक आदि शामिल थे। लिपिकों द्वारा शासन के कार्यों का लेखा-जोखा रखा जाता था। फैरोहों का राज्य काफी सुव्यवस्थित और सुसंगठित था। हालांकि प्रशासन का काम कुशलतापूर्वक किया जाता था। पूरा राज्य नोम्स में विभाजित था और नोम्स में विभिन्न हैसियत वाले अधिकारी उसके प्रशासन की देखरेख करते थे। तजाति फैरोह का एकमात्र परामर्शदाता और प्रधानमंत्री होता था। हालांकि निचले तबके के लोग मजदूरी किया करते थे। मिस्रवासी पहियों का उपयोग नहीं करते थे। इसी कारण इमारत बनाने के लिए भारी-भरकम सामानों को ढोने का काम मजदूर ही किया करते थे। बाढ़ के मैदानों में उपज इतनी होती थी कि एक वर्ष की फसल से ही बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी की जा सकती थी। मजदूर कृषि का कार्य भी करते थे। पहिए के अभाव के बावजूद भी परिवहन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी। यहाँ के लोग परिवहन के लिए जलमार्गों का उपयोग किया करते थे। उन्हीं के माध्यम से खेतों के अनाज को भंडारगृह तक पहुँचाया जाता था।

पश्चिमी अफ्रीका में भी पाषाण युग और लौह युग सभ्यताओं की मानव बस्तियाँ प्राप्त हुई हैं। आधुनिक मारीशेनिया की पश्चिमी सीमा से लेकर आधुनिक नाइजीरिया की पूर्वी सीमा तक के क्षेत्र को आमतौर से पश्चिमी अफ्रीका के रूप में जाना जाता है। अरब के प्रभाव से पूर्व यहाँ भी कुछ राजतंत्रों का विकास हुआ था। उन राजतंत्रों में कावकाव, मालेल, घाना तथा चाद झील के निकट कनेम इनमें प्रमुख थे। उन राजशाहियों का भौगोलिक क्षेत्र काफी छोटा था, परंतु राज्य-व्यवस्था विकसित थी। यहाँ भी नगर एवं शहर का विकास हुआ था। यहाँ के बाजार केन्द्र एवं व्यापार केन्द्र एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। विकसित कृषि के कारण ही नगर और शहर का अस्तित्व था। इसके प्रमाण मिलते हैं कि 4000 ई.पू. नील घाटी सभ्यता के आकार ग्रहण के समय सहारा क्षेत्र में लोग टिक कर रहते थे तथा खेती करते थे। 2000 ई.पू. में सहारा क्षेत्र के मरुभूमि में तब्दील होने के कारण यहाँ के लोग दक्षिण में सावान्नाह में केन्द्रित हो गए। जिस काल में फैरोहों द्वारा नील घाटी में विशाल सभ्यता का निर्माण हो रहा था, उसी काल में पश्चिमी अफ्रीका के सावान्नाह क्षेत्र में भी थोड़े कम भव्य राजतंत्रों का उदय हुआ। यह राजतंत्र सेनेगल तथा नाइजर नदी के मध्य तथा दक्षिणी सहारा के छोर पर विकसित हुआ। उनकी आय का मुख्य स्रोत सहारा पार का व्यापार मार्ग था। हालांकि उनके पास सोना, हाथीदांत तथा अन्य कृषि उत्पाद भी थे। उनके पास नमक की कमी थी। लोहा उनके पास पर्याप्त मात्रा में था, जिनके बदले ये तांबा तथा अरबी लोहा खरीदते थे। ये दासों को भी बेचते थे। सहारा पार के व्यापार पर नियंत्रण हेतु ही घाना की प्राचीन राजशाही ने आकार ग्रहण किया। हालांकि ये लोग उस स्थान पर बाहर से आये थे, पर सफलता उन्हीं लोगों को मिली, जो यहाँ के समाज और संस्कृति में घुलमिल गए।

घाना एक शक्तिशाली राजशाही था। उसकी राजधानी कुम्बी सालेह थी, जो कि दो भागों में विभाजित थी। उसके एक भाग में मिट्टी का बना राजा का महल था, जबकि दूसरे भाग में पत्थर के घर एवं मस्जिदें थीं। यहाँ भी राजा ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में शासन करता था। यहाँ राजा को साष्टांग दंडवत करने की परम्परा थी। राजा के पास विशाल सेना भी थी, जिसका प्रयोग करके वह व्यापार मार्गों पर अपना नियंत्रण रखता था। इस समाज की समृद्धि का बहुत बड़ा कारण था व्यापार मार्गों पर उनका नियंत्रण। 10वीं शताब्दी तक उनका प्रभाव सांहाजा तक बढ़ चुका था। सांहाजा बरबर घुमक्कड़ी का क्षेत्र था। उन घुमक्कड़ों ने बाद में एकीकृत होकर आंदोलन कर दिया तथा 11वीं शताब्दी के अंत तक घाना की राजशाही पर उनका नियंत्रण हो गया। चूंकि ये घुमक्कड़ इस्लाम से प्रभावित थे अत: उन्होंने देशी शासकों को इस्लाम ग्रहण करने के लिए मजबूर किया।

13वीं शताब्दी में अलमोरावियों अर्थात् बरबर घुमक्कड़ों का शासन घाना पर कमजोर हुआ तथा 1235 ई. में उसके मातहत मांडेभाषी केईता राजा सुनियाता का आक्रमण होने लगा। उनका उद्देश्य टिम्बकटु एवं गाओ पर कब्जा जमाना था, क्योंकि यह सोने

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। बाद में उत्तर से होने वाले व्यापार केन्द्र के लिए नाइजर नदी महत्त्वपूर्ण हो गई। 15वीं शताब्दी तक सोंघाई समुदाय जो कि एक गैर मांडे समुदाय था, नदी मार्ग पर नियंत्रण का दावा करने लगा। सुल्तान सोन्नी अली जो कि एक सोंघाई था, ने माले राजशाही पर कब्जा जमा लिया। पूरब में कानेम राजशाही थी, जिसने 11वीं शताब्दी में इस्लाम ग्रहण किया। उस राजशाही की शक्ति भी 14वीं-15वीं शताब्दी तक कमजोर पड़ चुकी थी। सोलहवीं शताब्दी तक सोंघाइयों ने कानेन पर भी अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। बाद में मोरक्को के सादी राजवंश ने सोंघाई पर आक्रमण किया। उसके पास गोला-बारूद होने के कारण टिम्बकटु पर कब्जा कर लूटपाट की। हालांकि विजित क्षेत्र पर प्रशासन के साधन उनके पास नहीं थे। बाद में 16वीं शताब्दी में यूरोपीय भी सेना और दासों के लिए यहाँ बसने लगे तथा बाद में उनका उस क्षेत्र पर प्रभुत्व हो गया।

घाना राजशाही में कृषि उन्नत अवस्था में थी। साथ ही सहारा व्यापार मार्ग पर उनका नियंत्रण था, जिसके परिणामस्वरूप यह समृद्ध राजतंत्र था। उत्तर से दक्षिण नमक जाता था, जबकि दक्षिण से सोना एवं तांबा जाता था। 12वीं शताब्दी तक यहाँ के लोग इस्लाम ग्रहण कर चुके थे। समाज मात्र सत्तात्मक था। ग्राम का प्रधान मुखिया होता था। ग्राम के ऊपर गोत्र था। ग्राम को मिलाकर प्रांत बनता था। आम जनता साम्राज्य के लिए उत्पादन का काम करती थी। खेती के साथ पशुओं, खनन, शिल्प आदि का काम भी होता था। माले साम्राज्य सोने के लिए प्रसिद्ध था। उस क्षेत्र में बाजरा, बीन्स, चावल प्रमुख फसलें थीं। सिंचाई का कार्य वर्षा और नदियों से होता था। गोत्र विशेष अपना विशेष कार्य करते थे। जैसे माबो गोत्र बुनाई, सियाकी गोत्र सोने का काम आदि। दियोला और वंगरा यहाँ के व्यापारी थे। ग्रामीण आबादी काफी सघन थी। हालांकि शहर की आबादी भी अच्छी-खासी थी। शहर में शिल्प के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की धातुओं का कार्य भी होता था। शहर में अभिजात वर्ग के लोग ऐशो-आराम का जीवन जीते थे।

दक्षिणी अफ्रीका मानव सभ्यता के इतिहास की तुलना में नया राज्य था। उसके उत्तर में बोसवाना और नामिबिया है। काफी पहले से ही दक्षिणी अफ्रीकी क्षेत्र में लोग रहा करते थे। ये लोग मुख्यत: शिकारी-संग्रहकर्त्ता और जंगली जानवरों को मारकर अपना जीवनयापन करते थे। उस क्षेत्र में रहने वाले आदिम लोगों को बुशमेन कहा जाता है। ये लोग शिकारी संग्रहकर्त्ता के बाद पशुपालक बने तथा भेड़-पालन आरम्भ किया तथा उन पशुपालकों को होट्टेनटोट्स कहा जाता है। समय के साथ इन लोगों ने पशुपालन के साथ ही साथ खेती करना भी आरम्भ कर दिया। जिन लोगों ने कृषि कार्य आरम्भ किया, उन्हें काफ्फिर कहा जाता है। ये समुदाय, जाति, भाषायी आधार पर बँटे हुए थे। सान शिकारी-संग्रहकर्त्ता थे। खोईखोई पशुपालक थे। न्गुनी आधे किसान थे। न्गुनी को भाषा के आधार पर जुलु एवं जोसा में विभाजित किया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका की अर्थव्यवस्था मिश्रित खेती अर्थव्यवस्था थी। मिश्रित खेती में कृषि और धातुकर्म के साथ-साथ पशुपालन तथा शिकार और संग्रह भी शामिल था। बन्तु लोग मैगनाइट भी निकाला करते थे। ये लोग तांबे का उपयोग करना भी जानते थे। यहाँ के लोगों की अर्थव्यवस्था के आधार पशु थे। यहाँ के लोगों का धन पशु था, जो कि अकाल के समय उनके लिए काफी उपयोगी होता था। पत्नी प्राप्त करने के लिए भी पशुधन आवश्यक था। दुल्हन का मूल्य केवल पशु के रूप में ही होता था। खोईखोई समाज यहाँ का धनी वर्ग था। बन्तु लोग झाड़ियों को साफ कर उसे खेती योग्य बनाते थे, हालांकि उस क्षेत्र में सीसी नामक मक्खी का प्रकोप था। पशुपालन समाज में स्त्री और पुरुष के बीच काम का स्पष्ट बंटवारा था। पुरुष पशुधन की देखरेख करते थे। बच्चा 10 वर्ष की उम्र से ही काम करना प्रारम्भ कर देता था। दक्षिणी अफ्रीकी गांव पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर नहीं थे। धातु से बने सामानों की जनता में काफी मांग थी। हालांकि यहाँ किसी बड़े बाजार का प्रमाण नहीं मिला है। माल ढोने के लिए बैलों का इस्तेमाल किया जाता था। बुजुर्ग पुरुष चिकित्सा, पुरोहित आदि काम किया करते थे। महिलाएँ भी खेती में साथ देती थीं। पुरुष जंगल साफ करके खेत बनाने का काम करते थे। उसके बाद खेती का काम महिलाएँ किया करती थीं। परंतु महिलाएँ पुरुषों के अधीन होती थीं।

दक्षिणी अफ्रीका के बन्तुभाषी समाज में दुल्हन का मूल्य एक अनूठी परंपरा थी। शादी के बाद महिला पीहर जाकर वहाँ का काम संभाला करती थी। परंतु महिला की शादी के लिए ससुराल वालों को दुल्हन का मूल्य देना होता था। दुल्हन का मूल्य पशुधन होता था। जिन पुरुषों के पास ज्यादा पशुधन होता था, दुल्हन के माता-पिता उसी से अपनी बेटी की शादी करना चाहते थे, ताकि दुल्हन के मूल्य के रूप में उन्हें ज्यादा पशुधन मिल सके।

दक्षिणी अफ्रीका के लोगों की विशिष्ट राजनीतिक संस्थाएँ थीं। अधिकांश समुदायों में राजा या सरदार होता था। हालांकि अलग-अलग क्षेत्रों के राजवंश का आकार अलग-अलग था। न्गुनी राज्य बिखरा हुआ था। दक्षिणी सोथो राज्य भी छोटा था। राज्य के सरदारों से यह अपेक्षा की जाती थी कि अच्छी फसल के लिए वह अच्छी वर्षा करवाएँ। सरदारों के परिवारों में अन्तर्विवाह होने से भी राजनीतिक व्यवस्था छोटी होती थी। सरदार बनने के लिए भी पशु संसाधन का होना आवश्यक था। कुछ राज्यों में उनके समूहों का एक सामूहिक गण चिह्न भी होता था। राजनीतिक इकाइयों का मिलन और अलगाव जैसी घटनाएं भी होती थी। उसका कारण आक्रमण या राजकुमारों की महत्त्वाकांक्षा होती थीं। बढ़ती जनसंख्या के कारण भी संसाधनों पर उसका दबाव पड़ा होगा और लोगों द्वारा उसकी आपूर्ति करने के लिए आक्रमण किये जाते थे।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. दुल्हन का मूल्य क्या था और यह सामाजिक संबंधों को किस प्रकार नियंत्रित करता था?**

**उत्तर**–दक्षिण अफ्रीकी समाज में दुल्हन के मूल्य की एक अनूठी परंपरा थी। चूंकि यह समाज पशुधन पर आधारित समाज था। यहाँ के लोगों की मुख्य संपत्ति उनके पशु ही थे। दुल्हन का मूल्य पशुधन के रूप में होता था। इस समाज में जब किसी लड़की की शादी होती थी, तो लड़के वालों के द्वारा दुल्हन के मूल्य के रूप में पशुधन दिया जाता था। दुल्हन का मूल्य देने के बाद ही लड़के की शादी किसी लड़की से होती थी। इस प्रकार समाज में जिनकी हैसियत अधिक होती थी, लड़की के माता-पिता अपनी लड़की की शादी उसी से करना चाहते थे। यहाँ हैसियत का मूल्यांकन भी पशुओं की संख्या से लगाया जाता था अर्थात् जिस परिवार के पास पशुओं की संख्या अधिक थी, उसकी हैसियत अधिक होती थी।

पशुधन अधिक होने पर दुल्हन के मूल्य के रूप में लड़की के पिता को अधिक पशुधन मिल जाता था। अत: लड़की का पिता उसी के साथ अपनी बेटी की शादी करता था, जो उसे अधिक पशु दुल्हन के मूल्य के रूप में देता था। सामाजिक संबंधों पर उस परंपरा की गहरी छाप थी, जिनके पास अधिक पशुधन होता था, वे एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे, क्योंकि वे दुल्हन के मूल्य के रूप में पशुधन देने में सक्षम होते थे। साथ ही दुल्हन का पिता सामर्थ्यवान पुरुष या सरदार से ही अपनी बेटी की शादी करना चाहता था। साथ ही यदि कोई महिला तलाक लेती थी, तो उसे दुल्हन का मूल्य लौटाना पड़ता था। दुल्हन के मूल्य की परंपरा के कारण ही जिनके पास अधिक पशु होते थे, उनके पास शादी के प्रस्ताव भी अधिक आते थे। समाज में ऐसे लोगों को ज्यादा सम्मान दिया जाता था। इसका कारण स्पष्ट है कि दुल्हन की मूल्य परंपरा ने सामाजिक संबंधों को प्रभावित कर रखा था।

**प्रश्न 2. पश्चिमी अफ्रीका में व्यापार राज्य निर्माण का प्रमुख आधार था। क्या आप इससे सहमत हैं? कारण सहित उत्तर दें।**

**उत्तर**–सहारा क्षेत्र में रहने वाले लोगों ने सहारा क्षेत्र के मरुस्थल में तब्दील होने के बाद पश्चिमी अफ्रीका की ओर प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन्होंने राजतंत्रीय व्यवस्था स्थापित की। घाना ऐसी ही एक राजतंत्रीय व्यवस्था थी। हालांकि उनके क्षेत्र की सीमा के अंदर सहारा पार का व्यापारिक मार्ग भी था। उस व्यापारिक मार्ग से उत्तर एवं दक्षिण अफ्रीका के मध्य व्यापार होता था। उस व्यापारिक मार्ग पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए उस क्षेत्र के विभिन्न राजतंत्रों में युद्ध भी होते थे। उसका कारण यह था कि उस व्यापारिक मार्ग पर नियंत्रण स्थापित होने की स्थिति में राजतंत्र को काफी लाभ होता था। किसी भी राजतंत्र की आर्थिक समृद्धि उसका नियंत्रण होने से बढ़ जाती थी।

घाना राजतंत्र का उस व्यापारिक मार्ग पर नियंत्रण था। हालांकि घाना में कृषि की जाती थी, पर उसकी राजधानी एवं साम्राज्य की भव्यता का कारण कृषि नहीं था, बल्कि वह व्यापारिक मार्ग था, जिस पर उसका नियंत्रण था। पश्चिमी क्षेत्र में नमक की उपलब्धता नहीं थी, जबकि उसी क्षेत्र में सोना-चांदी जैसी धातुओं की उपलब्धता थी। इस व्यापारिक मार्ग से ही उन वस्तुओं का व्यापार होता था, जिस कारण जिस साम्राज्य के नियंत्रण में यह मार्ग होता था उसे व्यापक मात्रा में कर प्राप्त होते थे, जो वहाँ के क्षेत्रीय विकास में मदद करते थे। अत: यह सत्य है कि पश्चिम अफ्रीका में व्यापार राज्य निर्माण का प्रमुख आधार रहा, क्योंकि सर्वप्रथम यहाँ राज्य का उदय उसी व्यापारिक मार्ग के नियंत्रण के कारण हुआ। व्यापारिक मार्ग पर नियंत्रण होने से राज्य अपनी वस्तुओं का व्यापार भी करता था जिससे उसे काफी लाभ प्राप्त होते थे। चूंकि उस क्षेत्र की जलवायु समग्र रूप से कृषि के लिए बहुत उत्तम नहीं थी अत: लोगों का मुख्य व्यवसाय व्यापार ही होता था, व्यापार के द्वारा ही लोगों अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे तथा उससे राज्य को भी लाभ होता था।

**प्रश्न 3. मिस्र में राजत्व और सरकार के स्वरूप का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–मिस्र में राजा का पद दैवी माना जाता था। पर ऐसा नहीं कि यह पद पारिवारिक षड्यंत्रों, अनधिकार राजगद्दी हड़पने तथा सांसारिकता से मुक्त था। 'सम्राट् ओमनेमहत के निर्देश' में भी उस दैवी शक्ति से युक्त राजगद्दी से जुड़े षड्यंत्रों की चर्चा की गई है। यहाँ तक कि उस पुस्तक में एक जगह अनधिकार राजगद्दी हड़पने का भी हवाला दिया गया है। राजत्व आमतौर से उत्तराधिकारी से जुड़ा हुआ था। राजपद में उत्तराधिकारी के रूप में बड़े बेटे को अधिकार प्राप्त था, पर कभी-कभी उस उत्तराधिकार के नियम का उल्लंघन भी हुआ है। सेटी-I, रामसेसे-II आदि ऐसे ही राजा थे, जिन्होंने उत्तराधिकार के नियम का उल्लंघन करके गद्दी प्राप्त की थी।

राज्य की व्यवस्था और देखभाल की जिम्मेवारी राजा की होती थी। हालांकि राजा के इस कार्य के लिए उसके कई अधिकारी थे। राजा का प्रमुख परामर्शदाता तथा सलाहकार प्रधानमंत्री या वजीर होता था। उत्पादन की देखभाल, कर वसूली, कानून और व्यवस्था आदि की देखभाल की जिम्मेदारी राजकुमार या पुरोहित की होती थी। इसी प्रकार पुजारी या पुरोहित धाार्मिक कार्य के अलावा प्रशासनिक जिम्मेदारियां भी निभाता था। राज्य के प्रांतों की देखभाल के लिए अधिकारी या अधिपति होते थे। हालांकि कभी-कभी उन अधिपतियों या अधिकारियों ने राजसिंहासन को चुनौती भी दी। रानी की हैसियत राजकुमार से अधिक होती थी। इसका प्रमाण उस

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



रूप में भी देखने को मिलता है कि राजकुमार को राजशासन में राजा के बाद का दर्जा भी मिलता था। ऐसे राजकुमारों का उल्लेख भी मिला है, जो सेनानायक के रूप में थे तथा समय के अनुसार राजा का कामकाज भी देखते थे। उसी तरह 5वें राजवंश का राजकुमार नेफेर-सेशेम-शेसत का वजीर था तथा राजा का कामकाज भी देखता था। हालांकि राजा ईश्वर के दूत के रूप में राज करता था।

**प्रश्न 4. दक्षिणी अफ्रीका की अर्थव्यवस्था की संक्षेप में चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–दक्षिणी अफ्रीका की अर्थव्यवस्था मिश्रित खेती की अर्थव्यवस्था थी। मिश्रित खेती में केवल कृषि और धातुकर्म ही शामिल नहीं थी, बल्कि पशुपालन और शिकारी और पशुपालकों की अपेक्षा उन्नत स्थिति में थे। बंतु भाषाभाषी लोग मैगनाइट भी निकालना जानते थे। साथ ही उन्हें तांबे के उपयोग का भी ज्ञान था। जबकि दक्षिण बंतु समाजों में पशुधन अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार था। यहाँ लोग पशुओं के रूप में ही संपत्ति जमा किया करते थे, ताकि अकाल की स्थिति में उसका उपयोग कर सकें। यहाँ पशु का महत्त्व इसी से स्पष्ट होता है कि यहाँ दुल्हन का मूल्य केवल पशुधन के रूप में होता था। यहाँ के पशुपालकों, जो संभ्रांत होते थे, उनके पास बड़ी संख्या में पशु एवं भेड़ होते थे।

हालांकि बंतु समुदाय कृषि पशुपालन का काम साथ-साथ करते थे। हालांकि यहाँ के कृषि हेतु पुरुष सबसे पहले जंगलों को साफ कर तैयार करता था। उसके बाद महिलाएँ उस पर खेती का काम करती थीं। दक्षिणी अफ्रीका में लोग कृषि, पशुपालन के साथ-साथ धातुकर्म का कार्य भी करते थे। कुछ लोग शिकार और संग्रह के माध्यम से भी अपना जीवनयापन करते थे। अर्थात् स्पष्ट है कि यहाँ की अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था थी, जिसमें लोग विविध प्रकार के कार्य किया करते थे। मिश्रित अर्थव्यवस्था होने के कारण यहाँ की उत्पादकता भी शिकारी संग्रहकर्त्ता की अपेक्षा अधिक थी। हालांकि मिश्रित अर्थव्यवस्था होने के बाद भी यहाँ के लोगों का मुख्य कार्य पशुपालन था। उनकी संपत्ति भी उनके पशु ही होते थे। पशुओं की संख्या का सामाजिक संबंधों में बड़ा महत्त्व था। यहाँ तक कि सरदार या मुखिया जैसा पद धारण करने के लिए पशुधन आवश्यक था। जब किसी सरदार का पशुधन समाप्त हो जाता था, तो उसे अपना पद भी छोड़ना पड़ता था। अतः यहाँ की अर्थव्यवस्था मिश्रित होते हुए भी पशुधन पर ज्यादा आधारित थी।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न–मिस्र के पिरामिड वहाँ के धर्म से किस प्रकार जुड़े हुए थे।**

**उत्तर**–मिस्रवासियों की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वहाँ के लोगों को मृत्यु के बाद भी जीवन में विश्वास था। यही कारण है कि मिस्र के पिरामिड में जो कि शासकों कि कब्रगाहें होती थीं, में राजा के अन्य आवश्यकताओं की वस्तुओं को भी दफनाया जाता था। पिरामिड मृत राजा के रक्षित शव को रखने के लिए बनाया जाता था। उस कब्र में राजा के साथ-साथ उसके सेवकों, पत्नियों एवं अन्य जरूरत की वस्तुओं को भी दफनाया जाता था। साथ ही उस पिरामिड में ईश्वर और मृत राजा का मंदिर भी होता था जो कि पूजा के लिए बनाया जाता था। वैसे मिस्र में राजत्व को दैवी गुणों से संपन्न माना जाता था। वहाँ के लोगों में ऐसा विश्वास था कि राजा ईश्वर के द्वारा भेजा जाता है तथा वह ईश्वर का दूत है। ईश्वर ने ही राजा को पृथ्वी पर भेजा है, ताकि वह पृथ्वी पर व्यवस्था को बनाए रख सके।

लोगों की इसी मान्यता ने राजा के मृत होने पर भी उसकी पूजा के लिए उन्हें प्रेरित किया। लोग वहाँ ईश्वर के साथ मृत राजा की भी पूजा किया करते थे। पिरामिड में भी ईश्वर के साथ-साथ राजा का मंदिर बनाया जाता था तथा लोग उन मंदिरों में जाकर पूजा किया करते थे। समय के साथ में मंदिर मिस्र के लिए राष्ट्रीय प्रतीक का भी कार्य करने लगे। लोग अपने राजा को ईश्वर के समतुल्य मानते थे। पिरामिडों के निर्माण में भी उसका ख्याल रखा जाता था। पिरामिडों में बने मंदिर उस बात के प्रमाण हैं कि लोग ईश्वर के साथ-साथ राजा की भी पूजा किया करते थे। लोगों का ऐसा विश्वास था कि मृत्यु के बाद राजा पिरामिडनुमा मंदिर में निवास कर रहा है तथा वह ईश्वर के साथ रहता है। राजा के प्रति लोगों की यह धारणा कि वह पृथ्वी पर गडरिया है, जो यहाँ के लोगों के जीवन को व्यवस्थित करने के लिए आया है। अतः स्पष्ट है कि मिस्र में पिरामिड न केवल राजाओं की कब्रगाहें थीं, बल्कि उनका सम्बन्ध वहां की धार्मिक आस्थाओं से भी था।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# खानाबदोश साम्राज्य

16

## परिचय

खानाबदोश और पशुपालक खानाबदोश में अन्तर है। खानाबदोश घूमते थे। पर ये प्रत्यक्षतः पशुपालन नहीं करते थे। जबकि पशुपालक खानाबदोश घूम-घूमकर अपने पशुओं को चराते थे। भारत में गौड़िया लुहार का काम करते थे। खानाबदोश पशुपालक खानाबदोशों के बारे में कहते हैं कि यह एक ऐसी भोजन संग्रह करने वाली अर्थव्यवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण समुदाय भोजन की आपूर्ति के लिए अपने पशुओं पर आश्रित होता है। ये इसलिए घूमा करते थे ताकि उनके पशुओं को बेहतर चरागाह मिल सके। हालांकि इन खानाबदोश पशुपालकों का विकास स्थानबद्ध पशुपालकों से ही हुआ जो खेती भी किया करते थे और पशुपालन भी। जब भी ये खेती करने में असमर्थ हो गए, तो उन्होंने खानाबदोश पशुपालक की जीवन-शैली अपना ली।

उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना मौसम पर निर्भर करता था। ये मौसम के अनुसार अपने पशुओं को लेकर चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे। स्टेप्स साम्राज्य की गहराई से छानबीन करने से यह स्पष्ट होता है कि साम्राज्य राजशाही से अलग समझा जाता था। शासक भव्य राजधानी और विशाल सेना का निर्माण करता था। विदेशी राज्यों के प्रति उनका नजरिया भी बिल्कुल अलग होता था। मंगोल साम्राज्य के शासकों ने खानों के खान की पदवी धारण की। आधुनिक युग के यूरोपीय साम्राज्य पहले तरीके के साम्राज्य के उदाहरण है। *रोमिला थापर* के अनुसार साम्राज्य के तीन अनिवार्य घटक होते हैं। पहला साम्राज्य में कई राज्य शामिल होते हैं। उसका कुछ क्षेत्र केन्द्रीय होता है ऐतिहासिक काल में मौर्य साम्राज्य उसका अच्छा उदाहरण है। हालांकि विश्व व्यवस्था सिद्धांत में मुख्य रूप से आधुनिक पूंजीवादी विश्व और उनके कार्यों को ही व्याख्यायित किया जा सकता है।

यूरेशिया के विशाल भू-क्षेत्र के दो महत्त्वपूर्ण और भौगोलिक क्षेत्र था। तटीय राज्य जो समूह से जुड़े थे, जिनके पास कृषि और व्यापार से धन इकट्ठा होता था, जबकि अंदरूनी हिस्से में चरागाही जीवन पद्धति मौजूद थी। यूरेशिया महादेश का अंदरूनी हिस्से मे आर्कटिक समुद्र के तटीय क्षेत्र पर स्कैनडिनेविया और साइबेरिया स्थित था। हार्टलैण्ड तटीय राज्य का प्रतिछवि था। हार्टलैंड के दक्षिणी सीमा पर हिमालय का पहाड़ और विशाल हिन्दुकुश क्षेत्र फैला हुआ था। हार्टलैण्ड में चार मैदानी इलाके मध्य साइबेरिया, पश्चिम साइबेरिया आदि शामिल थे। खानाबदोशों का जो निवास क्षेत्र था, वहाँ वर्षा बहुत कम होती थी। यहाँ के लोगों का मुख्य धंधा पशुपालन ही था। हालांकि स्टेपस और अन्य क्षेत्रों में किए जाने वाले पशुपालन में एक खास अन्तर था। यहाँ के पशुपालक हमेशा बेहतर चरागाह और घास के मैदान की खोज में रहते थे। यहाँ से ज्यादातर लोग पश्चिम की ओर ही प्रस्थान किए। 1900 ई. तक देशांतरण के जो भी कारण रहे हो परंतु 1700 से 1500 ई.पू. के बीच हित्ती और कैसिटियाई एशिया माइनर की ओर बढ़े। आर्य भारत की ओर बढ़े। मध्य एशिया के बाहर हुए देशांतरण से वहां के क्षेत्रों और लोगों पर खास असर पड़ा। लोगों के संबंधों में परिवर्तन हुए और क्षेत्रों के आपसी संबंध भी बदले।

हालांकि मध्य एशिया से होने वाले उन देशांतरणों के फलस्वरूप कई दूरगामी परिणाम हुए। चीन के आंतरिक एशियाई सीमांत पर तिएन शान पहाड़ियों के पास जुंगरिया में हिस्युंग नु के लिए चिन और हन शासकों में संघर्ष हुआ। हालांकि हिस्युंग नु ने यू ची को परास्त कर दिया, जो पश्चिम की ओर भागा। उसके उत्तराधिकारियों ने कुषाण साम्राज्य की स्थापना की। 500 ई. के आसपास मध्य एशिया से सभी दिशाओं में लोगों का निकलना एक बार फिर शुरू हुआ और इसका चौतरफा प्रभाव पड़ा। भारत की ओर आए, गौथ और हूण यूरोप की ओर बढ़े। संभवतः 13वीं और 14वीं शताब्दियों में चंगेज खान और उसके उत्तराधिकारियों से लेकर तैमूरलंग तक योद्धाओं के नेतृत्व में मंगोलों ने देशांतरण और आक्रमण किया। यूरेशियाई स्टेप्स की दो आधारभूत विशेषताओं ने खानाबदोश साम्राज्य को काफी हद तक प्रभावित किया। परिस्थितिकी कारकों के कारण इस प्रकार का स्पष्ट विभाजन हुआ था, जिसके कारण हार्टलैण्ड और तटीय राज्यों दोनों का सांस्कृतिक संदर्भ बिल्कुल अलग-अलग था। इसलिए हार्टलैण्ड तटीय राज्यों पर कब्जा जमाना खानाबदोशों के लिए अनिवार्य हो गया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

घास का मैदानी इलाका दक्षिणी यूरोप से लेकर उत्तरी चीन तक फैला हुआ था। इसे चरागाही क्रांति कहा जाता था। अभी तक पूर्वी यूरोपीय घास के मैदान के खेतिहर समुदाय घोड़ा पालते थे, उनकी जमीन सूख चुकी थी और उस पर अब खेती नहीं की जा सकती थी। यही कारण था कि इन लोगों ने अपने पशुओं के साथ चरागाह की खोज में घूमना प्रारंभ कर दिया। 13वीं 14वीं शताब्दी तक मंगोल आक्रमणों तक यूरोप तथा एशिया का इतिहास स्थायी रूप से खेती करने वाले किसानों और घास के मैदानों में रहने वाले घुमंतू लड़ाकू समुदायों के संघर्ष का इतिहास रहा। लगभग 4 हजार ई.पू. से 300 ई. तक भारोपीय भाषा बोलने वाले कबीलों ने एक कठिन और घुमंतू जीवन जीया। वे काले सागर के तटीय इलाकों से लेकर चीन के पश्चिमी क्षेत्र तक फैले हुए थे। दूसरी ओर ईरानी भाषी शाक और अलान जैसे खानाबदोश कबीलों ने उत्तरी मध्य एशिया में गैर-भारोपीय समूहों में पशुपालक खानाबदोश जीवन का प्रसार किया। 250 ई.पू. से 450 ई. में जिओंग-नू जो कि तुर्की भाषी कबीले थे, पश्चिम की ओर गए। लगभग 155 ई. में उनका समूल नष्ट हो गया तथा उनका स्थान मंगोल मूल के जिएन-पि ने ले लिया। इन मंगोल भाषायी कबीलों ने मंगोलिया पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। 552 ई. में तुर्कों ने मंगोल को नष्ट कर दिया, जिन्हें जिओंग-नू का सीधा वंशज माना जाता था। 744 में उइघुरों ने तुर्कों को अपदस्थ अपना साम्राज्य स्थापित किया, जिसका केन्द्र आज का मंगोलिया था।

उत्तरी चीन में तांग वंश के कमजोर पड़ने पर स्टेप्स से आये लोगों ने अपना प्रभुत्व जमाना प्रारंभ कर दिया। उसमें मंगोल खितान, तिब्बती तनगुत्स के पूर्वज शामिल होते थे। हालांकि चंगेज खां ने 1206 तक मंगोल और पड़ोसी तुर्की कबीलों को स्वीकृत कर लिया। उइघुरों ने शांतिपूर्वक समर्पण कर दिया। जैसे ही मंगोलों का शासन समाप्त हुआ, वैसे ही खेतिहर स्थिर सभ्यता के लोगों ने अपनी राजनीतिक ताकत फिर से हासिल कर ली। तुर्कियों ने यूरोप छोड़ दिया और वे मंगोलिया में प्रवेश कर गये। 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों तक रूसी और चीनी प्रभाव फैलने लगा और सारे स्टेप्सवासियों को रूसी और चीनी साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

*खजानोव* कहते हैं कि खानाबदोश कभी भी अपने बल पर बाहरी दुनिया और पड़ोसी और खानाबदोशी समाजों के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकते। खानाबदोशों के राज्य निर्माण पर भी यही बात लागू होती है। हालांकि खानाबदोशों के लिए राज्य निर्माण एक महत्त्वपूर्ण घटना रही थी। खानाबदोश हमेशा अपने पड़ोसियों की सैन्यशक्ति की परीक्षा लेते रहते थे। किसी राज्य के कमजोर पड़ते ही या पतन होते ही वे उस पर आक्रमण कर देते थे और उस पर कब्जा जमा लेते थे। राज्य निर्माण की इस प्रक्रिया में सभी स्तरों पर सामाजिक और आर्थिक विभेद पैदा हुआ। उनके व्यक्तित्व के साथ दैवी गुण और विशेषताएँ जुड़ गई थीं। ये शासक या कगान बाद में सुलतान या बादशाह बने। इस प्रकार समय के साथ कभी हूणों का साम्राज्य बना, तो कभी मंगोलों का। हालांकि मंगोल साम्राज्य को एक विशाल राजनीतिक ताकत के रूप में देखा जा सकता है। मंगोलों ने रेशम मार्ग को पुनः खोला तथा यूरोप से एशिया जाने के मार्ग में अब कोई बाधा नहीं रही। इसी प्रकार एशिया में फारस और चीन के बीच विचारों का आदान-प्रदान हुआ। हालांकि यह व्यवस्था तभी तक जीवित रही, जब तक स्थायी समाजों से उनका आदान-प्रदान जारी रहा, जैसे ही यह आदान-प्रदान बंद हुआ, उनका अस्तित्व समाप्त हो गया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. सभ्यताओं के विकासक्रम में विकास के एक चरण के रूप में और वैकिल्पक सामाजिक व्यवस्था के रूप में खानाबदोश व्यवस्था का विश्लेषण करें।**

**उत्तर**–मानव ने शिकारी-संग्रहकर्त्ता के बाद कृषक एवं पशुपालक का जीवन अपनाया। खानाबदोश पशुपालक जीवन के संदर्भ में ऐसा माना जाता है कि मानव प्रारंभ में कृषि एवं पशुपालन दोनों करता था, पर जब उसके लिए कृषि कर पाना संभव नहीं रहा, तो वह पशुपालक खानाबदोश जीवन-शैली की ओर मुड़ा। मानव अपने पशुओं के लिए चरागाह की खोज में निरंतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करता था। हालांकि उसका यह विचरण मौसम से अधिक प्रभावित रहता था। सभ्यता के विकास के रूप में यह माना जाता है कि इन्हीं पशुपालक खानाबदोशों ने जब घोड़ों को पालतू बनाया, तो उनकी जीवन-शैली में परिवर्तन आया। साथ ही ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि जब उनके पशुओं की संख्या कम हो जाती थी तथा उनके लिए उन पर आश्रित होकर जीना संभव नहीं रहा। तब इन्होंने घोड़ों की मदद से आक्रमण करना प्रारंभ किया, उसी आक्रमण का परिणाम था कि समय के साथ उन्होंने कई बड़े साम्राज्यों का निर्माण किया, जो आगे चलकर सभ्यता के विकास का पहला चरण बना।

जहाँ तक उनके वैकल्पिक सामाजिक व्यवस्था के रूप में पशुपालन को अपनाने की बात है, तो इस कारण यह कह दिया जाता है कि ये प्रारंभ में कृषि एवं पशुपालन दोनों किया करते थे। जब उनके लिए कृषि कार्य करना संभव नहीं हुआ, तो इन्होंने अपने पशुओं के साथ उस स्थान को छोड़ दिया तथा उस स्थान की ओर गमन कर गए, जहाँ चरागाह की पर्याप्त उपलब्धता थी। इस प्रकार खानाबदोश पशुपालकों ने अपने जीवनयापन के लिए वैकल्पिक व्यवस्था को अपना लिया। यही कारण है कि पशुपालन समूह के लिए वैकल्पिक सामाजिक व्यवस्था के रूप में सामने आई तथा इन्होंने अपना जीवन इस वैकिल्पक व्यवस्था के माध्यम से जीना प्रारंभ किया। उनके जीवन में पशुओं का सबसे अधिक महत्त्व रहा है।

**प्रश्न 2. उन क्षेत्रों की भौगोलिक विशिष्टताएँ बताइए जहाँ से खानाबदोशों का देशांतरण शुरू हुआ था।**

www.neerajbooks.com



**उत्तर**–खानाबदोश पहले ऐसे क्षेत्रों में रहा करते थे, जहाँ कृषि एवं पशुपालन दोनों ही कार्य ये साथ-साथ करते थे। पश्चिम एशिया, मध्य एशिया तथा स्टेप्स ऐसे ही क्षेत्र थे, जहाँ सबसे पहले पशुपालक खानाबदोशों का विस्तार हुआ। हालांकि इन स्थानों में पहले कृषि भी होती थी। पर जब समय के साथ कृषि कार्य करना संभव नहीं हुआ, तो यहाँ के समुदायों ने पशुपालन को अपने जीवनयापन का साधन बनाया। उन क्षेत्रों की प्रारंभिक जलवायु मानव के बसाव के लिए अनुकूल थी, पर जैसे ही यहाँ की जलवायु में परिवर्तन आया, तो यहाँ के लोगों के जीवन में भी परिवर्तन आया। कृषि की समाप्ति के बाद भी यहाँ लोग खानाबदोश पशुपालक का जीवन व्यतीत कर रहे थे। पर जब यहाँ उनके पशुओं के लिए चरागाह की कमी होने लगी, तो इन्होंने उन स्थानों से अन्य स्थानों की ओर देशांतरण प्रारंभ कर दिया।

पश्चिम एशिया का क्षेत्र, मध्य एशिया का क्षेत्र तथा स्टेप्स का क्षेत्र खानाबदोशों के लिए निवास का प्रारंभिक स्थल माना जाता है। यहाँ से ही खानाबदोशों ने देशांतरण प्रारंभ किया। यहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी हो गई थी कि खानाबदोश पशुपालकों के लिए भी यहाँ अपने पशुओं के लिए चरागाह की कमी होने लगी थी। यहाँ से देशांतरण के बाद ही खानाबदोश पशुपालक बाहरी दुनिया के संपर्क में आये तथा सम्पर्क में आने के बाद उनकी जीवन-शैली में भी परिवर्तन आया। जब इन्होंने स्थिर बसे समाजों की जीवन-शैली देखी, तो उनकी समृद्धि को देखकर इन्होंने उन पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया। इसका कारण यह भी था कि खानाबदोश पशुपालक जिन क्षेत्रों में रहते थे, वहाँ पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं थे। यद्यपि उन क्षेत्रों से उनके देशांतरण का प्रमुख कारण भौगोलिक क्षेत्र का पर्यावरण ही था।

**प्रश्न 3. स्टेप्स से हुए देशांतरण की प्रकृति और प्रवृत्ति की संक्षिप्त चर्चा करें।**

**उत्तर**–स्टेप्स पशुपालन मुख्य रूप से खानाबदोश पशुपालक था। यहाँ एक प्रकार की अश्व संस्कृति थी। हालांकि खानाबदोश पशुपालक निरंतर चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान घूमा करते थे। हमेशा उनका प्रयास नए स्थानों की खोज ही होता था। उनकी खोज का मुख्य उद्देश्य पशुओं हेतु चरागाह की खोज होता था। आमतौर से इस क्षेत्र से पशुपालकों का देशांतरण सभी दिशाओं में हुआ। पर उनकी देशांतरण की प्रवृत्ति को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये पशुपालक पश्चिम की ओर तीन रूपों में देशांतरित हुए। हालांकि थोड़े बाद की अवधि से ज्ञात स्रोतों से यह भी पता चलता है कि उनका देशांतरण मध्य एशिया से चारों ओर हुआ। परंतु उनका ज्यादातर देशांतरण पश्चिमी इलाकों में ही हुआ। खानाबदोशों का मानना है कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पश्चिमी इलाका अधिक उर्वर और समृद्ध था। वहाँ की जलवायु भी उनके लिए अनुकूल थी। यद्यपि हर बार देशांतरण की प्रवृत्ति लगभग 200 वर्षों तक चली। पुन: अगले देशांतरण एवं पहले देशांतरण के मध्य लगभग 500 वर्षों का अंतराल रहता था। हालांकि गिल्स व फ्रैंक का मानना है कि 1700 ई.पू. से ही उस क्षेत्र में ऐसा विकास चक्र चलता था जिसमें 200 वर्षों तक तो आर्थिक विकास होता था, पर अगले 200 वर्षों में आर्थिक अवनति होने लगती थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्टेप्स क्षेत्र से खानाबदोशों का देशांतरण एक प्रक्रिया या चक्र के तहत हुआ जिसकी प्रवृत्ति 200 वर्षों तक चलती थी, जो कि देशांतर के क्षेत्र के विकास से जुड़ा हुआ था। खानाबदोशों की प्रकृति प्रारंभ से ही घुमंतू रही है, पर पहले आमतौर वह आंतरिक क्षेत्रों में ही घूमा करते थे। देशांतरण का अर्थ है एक भौगोलिक क्षेत्र को त्याग कर दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में जाकर बस जाना। इतना तो स्पष्ट है कि स्टेप्स लोगों का अधिकांश देशांतरण पश्चिम की ओर हुआ।

**प्रश्न 4. खानाबदोश समूहों द्वारा स्थापित साम्राज्यों की प्रक्रिया का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।**

**उत्तर**–*खजानोव* का मानना है कि खानाबदोशों का जीवन बाहरी दुनिया के बगैर नहीं चल सकता था। उनके द्वारा साम्राज्य के निर्माण में भी यही हुआ। ये आमतौर से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भोजन की खोज में घूमा करते थे। उसी क्रम में उनके एवं स्थिर बसे समाजों के बीच अनाजों एवं पशुओं को लेकर संघर्ष भी होता था। खानाबदोश धीरे-धीरे स्थिर बसे समाजों पर अनाज आदि भोजन पदार्थ के लिए हमला भी करने लगे। चूंकि ये लड़ाकू प्रवृत्ति के थे तथा उनको घोड़े की सवारी का ज्ञान था अत: ये स्थिर बसे समाजों पर आक्रमण करके उन्हें लूटा करते थे। लूटने के बाद धीरे-धीरे उनकी प्रवृत्ति उसके अनाज पर पूर्ण अधिकार की हुई। साथ ही ये स्थिर बसे समाजों की समृद्ध जीवन-शैली से भी प्रभावित हुए।

खानाबदोशों की यही प्रवृत्ति उनके साम्राज्य को स्थापित करने की प्रक्रिया का आरंभ था। खानाबदोशों ने इस प्रकार स्थिर बसे समाजों पर अधिकार करना प्रारंभ किया तथा वहाँ के लोगों द्वारा उपजाए गए अनाजों पर अधिकार करना प्रारंभ कर दिया। अनाज किसान उगाते थे, पर उसका उपभोग उस पर शासन करने वाले ये खानाबदोश करते थे। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें साम्राज्य का विकास खानाबदोशों द्वारा किया गया है। हूण साम्राज्य एक ऐसा ही साम्राज्य था जो खानाबदोशों द्वारा स्थापित किया गया था। हूणों ने काकेस के क्षेत्र से लगे हंगरी आदि क्षेत्रों पर आक्रमण करके वहाँ साम्राज्य स्थापित किया। बाद में उनका विस्तार अन्य क्षेत्रों में भी हुआ। इतिहास में मंगोल साम्राज्य जो कि अब तक का सबसे बड़ा साम्राज्य था, की स्थापना चंगेज खां द्वारा की गई थी। चंगेज खां खानाबदोशों का ही नेता था, जिसने पूरे मध्य एशिया एवं लगभग दक्षिण एशिया में उतने विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

■■

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



धर्म, राज्य और समाज

# परवर्ती रोमन संसार

17

## परिचय

44 ई.पू. में जूलियस सीजर की मृत्यु के बाद 31 ई.पू. में आक्टेवियन रोम का शासक बना। उस समय की गणतंत्रीय परंपरा के कारण उसका सम्राट् के रूप में शासन करना असंभव था। इस कारण उसने अपने को प्रिंसेप या प्रथम नागरिक कहा। उसने सेनेटरों को प्रसन्न रखा, पर सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर उसने अपने रिश्तेदारों और अपने खास लोगों को बैठाया। सेनेट ने उसे आगस्तस की उपाधि दी। उसके शासनकाल में सेनेट का अस्तित्व नाममात्र का रह गया। अपने शासनकाल में वह रोमन राज्य के तीन घटकों–सम्राट्, सेनेट और सेना के बीच में स्पेन और गॉल (फ्रांस) के रूप में विशाल भू-क्षेत्र पनपे, जिन्हें 'लैटिफुंडिया' कहा गया। इन स्थानों से ही लैटिन संस्कृति गाँवों तक पहुँची। आधुनिक मोरक्को और इथोपिया जैसे अफ्रीकी क्षेत्रों के रोमन साम्राज्य में आने के कारण समुद्री रास्तों के व्यापार का विकास हुआ। अपने राज्यकाल में आगस्तस को ईश्वर तुल्य कहा जाने लगा। लगभग 200 वर्षों तक आगस्तस के द्वारा स्थापित शांति का दौर चला। इसे पैक्स रोमना कहा जाता है।

सन् ई. 14 में आगस्तस की मृत्यु हुई और उसका दत्तक पुत्र ताइबेरियस सम्राट् बना। सन् 14 से ई. 68 ई. तक के सभी चार शासक उसके या उसकी तीसरी पत्नी लीविया के रिश्तेदार थे। 'जुडियो क्लाउडियन' नामक यह राजवंश नीरो की मृत्यु के बाद समाप्त हो गया। इसके बाद कुछ दिनों की अस्थिरता के बाद वेसपैसियन नया सम्राट् बना। उसके बाद उसके पुत्र टाइटस और डोमिशियन तथा डोमिशियन की हत्या के बाद सेनेट द्वारा नेरवा का चयन हुआ, जो केवल दो वर्ष शासन कर सका। नेरवा ने अपना उत्तराधिकारी जर्मनी के गवर्नर ट्रोजन को बनाया। उत्तराधिकारी चुनने की यह प्रक्रिया सन् 180 तक चली। इस दौरान ट्रोजन, हैड्रियन, एन्टोनिनस पिउस और मारकस औरेलियस ने शासन किया। इनके शासनकाल में सड़क, जल, सिंचाई, कृषि, व्यापार इत्यादि में काफी तरक्की हुई। दूसरी शताब्दी के अंत तक रोमन साम्राज्य में राजनीतिक स्थिरता रही, लेकिन तीसरी शताब्दी के मध्य तक शासक वर्ग का ढाँचा मिश्रित हो गया।

लगभग सौ वर्षों तक सम्राट्, सेनेट और सेना के बीच संघर्ष होता रहा। सन् 284 में डायक्लीशन के सत्ता में आने पर साम्राज्य में स्थिरता आई। इसने राज्य को चार हिस्सों में विभाजित किया। डायक्लीशन के बाद कौन्सटैनटाइन सम्राट् बना। उसने कौन्सटैंटिनोपल शहर को पूर्वी हिस्से की राजधानी बनाया। इसके साथ ही रोम की राजनीतिक भूमिका समाप्त हो गई। कौन्सटैनटाइन I पहला शासक था, जिसने ईसाई धर्म पर अत्याचार बंद करवाया और मरने से पहले ईसाई बन गया। इसके बाद कौन्सटैनटियस, वैलेनटिनियन, वैलेना और थियोडोसियस प्रमुख शासक हुए। थियोडोसियस ने 391 ई. तक शासन किया। ईसाई धर्म राज्य धर्म बना और गैर-ईसाई धर्म प्रतिबंधित कर दिये गए। थियोडोसियस के दो पुत्रों के बीच रोमन साम्राज्य को दो हिस्सों में बाँटा गया–पूर्वी राज्य आर्केडियस को मिला और पश्चिमी होनोरियस को। इनको क्रमश: विसिगोथिकों और वैन्डलस का समर्थन प्राप्त था। चौथी शताब्दी के अंत और पाँचवीं शताब्दी के शुरू में जर्मन कबीले आक्रमण करने लगे और सुरबी और अलानी कबीले रोम के पश्चिमी प्रांतों पर कब्जा जमाने लगे। अंत में 420 ई. में विसिगोथ कबीले ने रोम को नष्ट कर दिया।

पाँचवीं शताब्दी के मध्य में हूणों ने इटली और गॉल पर आक्रमण किया। 455 ई. में वैन्डलों ने रोम पर फिर आक्रमण किया और अंत में रोमुलस अगस्तुलस को गद्दी से हटा दिया गया। पश्चिमी राज्य की अपेक्षा पूर्वी राज्य में स्थायित्व था। विसिगोथों ने स्पेन, वैन्डल्स ने अफ्रीका, बरगुनडियनों ने दक्षिणी गॉल और अस्ट्रोगोथस ने इटली प्राप्त किया।

आगस्तस की मृत्यु के बाद तीसरी शताब्दी के मध्य तक रोमन साम्राज्य गणतंत्र बना रहा, परंतु सम्राट् का चयन कुलीनतंत्र के बीच से होता था। उत्तराधिकार का सिद्धात बहुत कमजोर था। लसम्राट् का चयन सेनेट करता था और इसमें सैनिकों की भी मंजूरी

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



ली जाती थी। अस्थायित्व ने कभी भी रोमन साम्राज्य का साथ नहीं छोड़ा और उत्तराधिकार के लिए बार-बार लड़ाइयाँ होती थीं। डायक्लीशन के काल में राज्य दो हिस्सों में बँट गया। इसमें इटली, गॉल, स्पेन और उत्तरी अफ्रीका पश्चिमी और सीरिया, फिलिस्तीन, इराक और आधुनिक बालकन पूर्वी राज्य के हिस्से बने। परवर्ती रोमन साम्राज्य के अधिकतर शासक डैनुबियन-बालकन क्षेत्र से आए थे, क्योंकि सेना के जवानों की नियुक्ति में इन क्षेत्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। डायक्लीशन ने सर्वप्रथम राजतंत्रीय व्यवस्था कायम की। उसने शाही परिधान पहनना और सिर पर मुकुट पहनना भी शुरू कर दिया। उसने डोमिनस इट डेअस की शाही पदवी भी धारण की। डायक्लीशन ने सम्राट् के सम्मान और सत्ता प्रदर्शन के लिए नए उत्सव भी आयोजित किये। रोमन कवि पैब्लियस वर्जिलस मैरो ने अपनी कविता में इस परम्परा का गुणगान किया है। रोम सहित सभी राज्यों में विजय द्वारा सम्राट् की मूर्तियाँ बनाई गईं तथा उनके सम्मान में पक्तियाँ लिखी गईं।

गणतंत्र और प्रिंसिपेट के युग में सेनेट एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संस्था थी। इसके सदस्यों का चुनाव पैट्रिशियनों में से होता था। डायक्लीशन और कौन्सटैनटाइन I के शासन में यह मृतप्राय हो गया। हालांकि इन्होंने भी एक समानांतर सेनेट की स्थापना की, पर यह पूर्णतः सम्राट् को समर्पित थी। सेना भी आरंभ से ही स्पेन साम्राज्य का एक प्रमुख अंग था। इसकी मदद से ही राज्य विस्तार और सुरक्षा संभव हो सकी थी। सम्राट् ही इसका प्रमुख सेनाध्यक्ष हुआ करता था। आगस्तस ने सैनिकों को पहले जमीन आवंटित की। प्रथम शताब्दी ई. से सेना ने सम्राट् के रूप में सेनाध्यक्षों को बिठाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। डायक्लीशन ने सैनिकों की भर्ती की शुरुआत की। तीसरी और चौथी शताब्दी में सैनिकों की संख्या करीब 450,000 थी। डायक्लीशन और कौन्सटैनटाइन ने सैनिकों के बेटों को सेना में भरती होने का आदेश दिया। तीसरी शताब्दी में राजमार्ग के दोनों ओर सैनिक रखे जाते थे और देहातों में सिपाही तैनात किए जाते थे। सामाजिक आंदोलनों को दबाने के लिए बड़ी संख्या में बर्बर सैनिकों को सेना में शामिल किया गया। अब उच्च सैनिक पद और नेतृत्व घुड़सवार सैनिकों को ही दिये जाते थे। डायक्लीशन ने सेनेट को नागरिक सत्ता के साथ-साथ सेना से भी हटा दिया। कौन्सटैनटाइटन I ने पूर्वजों की नीति को परिवर्तित कर दिया और कुलीनों में से कुछ लोगों को गवर्नर और प्रशासक बनाया, परंतु सेना में उन्हें जगह नहीं दी। कौन्सटैनटाइन I ने ईसाइयत को बढ़ावा दिया और नवपरिवर्तित ईसाइयों को प्रशासन में महत्त्वपूर्ण पद दिये। इनकी नियुक्ति प्रायः पूर्वी क्षेत्र से हुई। ईसाई धर्म के राज्यधर्म बनने के कारण रोमन साम्राज्य की धर्मनिरपेक्षता खतरे में पड़ गई, जिससे धर्म से जुड़ी नौकरशाही धर्मनिरपेक्षता की नौकरशाही से ज्यादा शक्तिशाली हो गई। सेना की बागडोर मैजिस्टर इक्विटम के पास थी और ड्यूसेस और कौमिट्स उनके नीचे रहा करते थे। कौन्सटैनटाइन के शासनकाल में सेना का विस्तार हुआ। चौथी शताब्दी के अंत तक सैनिकों की संख्या 650,000 हो गई थी। इससे यह पता चलता है कि उस वक्त रोमन साम्राज्य एक सुदृढ़ साम्राज्य था।

परवर्ती साम्राज्य की नागरिक सेवा में नौकरशाहों का पदानुक्रम पिरामिडनुमा था। शासक पदाधिकारियों का प्रमुख हुआ करता था और पदाधिकारियों को मजिस्ट्रेट कहा जाता था। उन्हें राजा के सामने खड़ा होना पड़ता था। 396 ई. के बाद दोनों सम्राटों ने अपनी अलग-अलग नियुक्ति आरंभ कर दी। उनकी अपनी पुलिस, अनाज आपूर्ति व्यवस्था, न्यायिक व्यवस्था आदि होती थी। उनके खजांची और प्रैक्टर भी अलग-अलग होते थे। सीनेट की ताकत खत्म होने के कारण प्रशासन सम्राट् के हाथों में आ गया। डायक्लीशन ने साम्राज्य को सौ प्रांतों में विभक्त किया। उसने कई प्रांतों को एक प्रांत में मिला दिया और उनका नियंत्रण एक प्रशासक और एक सेनाध्यक्ष को दे दिया। परवर्ती साम्राज्य में प्रशासन गवर्नरों के पास था।

रोमन साम्राज्य का आधार दीवानी कानून था। आगस्तस के समय रोमन न्यायाधिपतियों को प्रमुख पद दिये गए। सम्राट् नए कानून बनाकर पुराने कानूनों में संशोधन और सुधार करता था। परवर्ती रोमन साम्राज्य में राजा की इच्छा ही कानून बनने लगा। डायक्लीशन के राज्यकाल में न्याय संबंधी सारे कार्य सम्राट् के नाम पर किये जाते थे और राजधानी, शहरों और प्रांतों में क्रमशः प्राएफेएक्टस उरबी एवं प्राएसाइड्स सम्राट् के नाम पर न्याय का कार्य करते थे। आरंभ से ही दीवानी-फौजदारी कानून निम्न वर्गों के लिए बनाया गया था। कौन्सटैनटाइन के काल में फौजदारी कानून अत्यंत क्रूर और सख्त हो गया था। ईसाई वर्गों के खिलाफ रोमन शासकों ने कई कानून बनाए और इन सम्प्रदायों को विधर्मी घोषित कर दिया गया। छठी शताब्दी में सम्राट् जस्टिनियन के काल में न्याय संहिता निर्मित हुई, जिसका कौरपस जुरिस सिविलिस कानूनी व्यवस्था का आधार बना और पूरे यूरोप में इसका अनुकरण किया गया। चौथी शताब्दी में शहरी विकास में अस्थायी वृद्धि हुई और सोने के सिक्कों के जारी होने से मुद्रा संबंधी स्थायित्व तो कायम हुआ, परंतु सीमित तौर पर। शहरी विकास मुख्यतया नए सैनिक या प्रशासनिक केन्द्रों तक ही सीमित रहा। *पैरी एंडरसन* के अनुसार साम्राज्य के सभी प्रांतों में धीरे-धीरे व्यापार और उद्योग कम होता गया और साम्राज्य देहात की ओर बढ़ता गया। प्राचीनकाल में दासों की सहायता से उत्पादन होता था, लेकिन अब भूमिपतियों ने दासों को अपना काश्तकार बना लिया।

काश्तकारों की स्वतंत्र प्रकृति नष्ट होने से उनका स्थान भूमिपतियों ने ले लिया। दूसरी शताब्दी से स्वतंत्र किसानों की सत्ता

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



समाप्त हो गई और उन्हें भूस्वामियों की जमीन से बाँध दिया गया। चौथी और पाँचवीं शताब्दी में आश्रित काश्तकारों पर भूमिपतियों की न्यायिक शक्ति में वृद्धि हुई। इससे दास प्रथा समाप्त नहीं हो पाई। पश्चिम में साम्राज्य के अंत तक यह प्रथा जारी रही। शहरी उत्पादन में दासों की भूमिका कम तो हुई, परंतु इटली, स्पेन, गॉल इत्यादि में भूपति दासों से ही काम कराया करते थे। परवर्ती रोमन साम्राज्य की अर्थव्यवस्था आश्रित ग्रामीण उत्पादक, भूपति और राज्य के परस्पर संबंधों पर आधारित थी। परवर्ती रोमन साम्राज्य में कई प्रकार के कर लगाए गए। इन करों के रूप में नागरिकों से मुफ्त सैनिक सेवा ली जाती थी। साथ ही उन्हें हथियार भी खुद जुटाने होते थे। *मार्क्स* के अनुसार पैट्रिशियनों ने प्लेबियनों को सैनिक बनने पर मजबूर करके उन्हें कंगाल कर दिया। जनता को अन्य दूसरे प्रकार की सेवाएँ भी देनी होती थीं, जिन्हें अंगरिया कहा जाता था। इनमें माल ढोना, इमारत, सड़क बनाना शामिल था। पूर्वी राज्य में कर बढ़ाने की नीति सफल रही, परंतु पश्चिम में इसके कारण संकट पैदा हो गया। पश्चिमी अभिजात वर्ग के कर में लगातार हिस्सा बढ़ाने के कारण किसानों, कोलोनि, शिल्पकारों और छोटे व्यापारियों पर बोझ बढ़ गया। इसका कुप्रभाव कृषि, शिल्प और व्यापार पर पड़ा। डेकुरिओनस और कुरिअलेस समाहर्ता बनाए गए। इनमें कुरिअलेस कर समाहर्ता बने और वे किसानों, शिल्पियों और व्यापारियों से कर वसूलते थे। ये आपस में मिलकर कर चोरी करते थे। डायक्लीशन ने कुरिअलेस के इन भ्रष्टाचारों को रोकने के लिए कानून बनाए। डायक्लीशन और इसके परवर्ती अधिकारियों ने कर व्यवस्था को सुनियोजित करने का असफल प्रयास किया। अब सम्राट् के चयन में पश्चिमी कुलीनतंत्र का कोई योगदान नहीं रह गया था और रोम का प्रशासनिक महत्त्व समाप्त हो गया था। पश्चिमी शासकीय वर्ग ने कर देना बंद कर दिया। इसके फलस्वरूप साम्राज्य में विखंडन शुरू हो गया।

डायक्लीशन और कौन्सटैनटाइन के शासनकाल में रोमन समाज में कई सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। इस समय कोलोनेट प्रथा का जन्म हुआ, जिसने कुछ हद तक दास प्रथा का स्थान ले लिया। इसी दौरान इस्टेट्स का भी जन्म हुआ, जो अपने मालिक के लिए अर्धदास का काम करते थे। शोषण के इस नए ढंग से कई सामाजिक तनाव, विद्रोह और जन-आन्दोलनों का जन्म हो गया। डायक्लीशन ने इन्हें देखते हुए अपने साम्राज्य को कायम रखने के लिए कई नए तरीके अपनाए।

परवर्ती रोमन राज्य के उच्च वर्गों को इक्वेस्ट्रियन कहा जाता था। ये लोग इटली के अलावा अन्य प्रांतों में भी शीर्ष पदों पर बने हुए थे। परवर्ती रोमनकाल में इक्वेस्ट्रियन राजा के अत्यंत विश्वसनीय हुआ करते थे। धनी प्लेबियनों एवं दासता से आजाद पुरुषों ने सोने की अंगूठी जैसे प्रतीक चिह्न धारण कर इक्वेस्ट्रियन बनने का प्रयास किया। भूपति, उद्यमी, व्यापारी आदि भी ऊँची सामाजिक हैसियत वाले लोग थे, परंतु उन्हें इक्वेस्ट्रियन का दर्जा प्राप्त नहीं था। चौथी शताब्दी के मध्य से छठी शताब्दी तक उच्च वर्ग के अधिकारों में व्यापक बदलाव आया। कौन्सटैंटिनोपल के सेनेट में चौथी शताब्दी के अन्त तक 2000 ऐसे परिवार थे, जिन्होंने अपने पिता से इसे प्राप्त किया था। एक नया धार्मिक वर्ग जिसमें बिशप और पुजारी थे, की भी उत्पत्ति हुई, जिनका चर्च पर पूर्ण अधिकार था।

उच्च वर्ग के सेवक निम्न वर्ग के अंतर्गत आते थे। इनमें कृषक सबसे बड़ा वर्ग था। साथ ही कुम्हार, बाजीगर, शिक्षक और वेश्याएँ भी इनमें शामिल थीं। उच्च वर्ग की संख्या बढ़ने से निम्न वर्ग पर कर का बोझ भी काफी बढ़ गया था। शिल्प संघ या कलौजिया के अंतर्गत नानबाई, सुनार और ऊन का काम करने वाले आते थे। परवर्ती रोमन सम्राट् ने हर पेशे को जिन्दा रखने के लिए आनुवंशिक व्यवस्था बनाई। सेना और नागरिक प्रशासन में भी ऐसी ही व्यवस्था चल पड़ी। द्वितीय शताब्दी में हुए सामूहिक युद्धों के फलस्वरूप दासों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। इन्हें अफ्रीका, गॉल, इटली, स्पेन आदि के लैटिफुंडिया में काम पर लगाया गया। रोमन साम्राज्य में दासों को सम्पत्ति माना गया और उन्हें पशुओं की भाँति खरीदा-बेचा जाता था। परवर्ती रोमन साम्राज्य में दासों की संख्या में कमी आने से वे महँगे होते चले गए और उच्च वर्ग के लिए उनका रखरखाव मुश्किल हो गया। दासों की दयनीय स्थिति के कारण उनकी आबादी भी बहुत ज्यादा बढ़ नहीं पाई। इस समय दासों को जमीन का एक छोटा टुकड़ा दिया जाने लगा, जिससे उनका जीवनयापन हो सके। यह रोमन कानून के अंतर्गत ही होता था। दासों की इस सम्पत्ति को पेकुलिअम कहते थे। किसान राज्य के शोषण से बचने के लिए भूपतियों की शरण में जाते थे पर धीरे-धीरे उनकी स्थिति भी दासों की तरह हो जाती थी। इस समय कोलोनि का अस्तित्व सामने आया, जो भूपतियों से बीज और उपकरण लेते थे और बदले में उन्हें उपज का कुछ हिस्सा दे देते थे। डायक्लीशन ने इस प्रथा को व्यवस्थित करके उनके एक जगह से दूसरी जगह पर जाने पर रोक लगा दी। कौन्सटैनटाइन ने नए नियम बनाए, जिनके अनुसार अगर भूमि दूसरे के स्वामित्व में जाती है, तो कोलोनि भी दूसरे के अधीन हो जाएँगे। इसके कारण कोलोनेट का उदय और लैटिफुंडिया का पतन हुआ। सन् 332 ई. में कौन्सटैनटाइन ने घोषणा की कि अगर कोलोनस दूसरे व्यक्ति के पास चला जाता है, तो उस व्यक्ति को कोलोनस पहले व्यक्ति को लौटा देना चाहिए, परंतु इसे इस अवधि का पोल टैक्स भी देना होगा। भागने वाले कोलोनि को दासों की तरह कैद कर लेना चाहिए और उसे कठोर सजा दी जानी चाहिए। 364 ई. में इस कानून के अनुसार दास और कोलोनि के पुत्र-पौत्र, सैनिक या असैनिक सेवाओं में नहीं जा सकते थे। तीसरी शताब्दी के बाद

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



बर्बर कबीले रोमन साम्राज्य पर हमला करने लगे। वे धीरे-धीरे रोमन समाज के सदस्य भी बन गए। चौथी से सातवीं शताब्दी के मध्य का समय इस क्षेत्र में संकट और उठा-पटक का समय रहा, जिससे यहाँ का इतिहास निर्धारित हुआ।

रोमन साम्राज्य पर यहूदी और ईसाई धर्म का गहरा प्रभाव हुआ एवं आरंभिक मतभेद के बाद पूरे रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया गया। रोमन संभ्रांत वर्ग के लोग प्रारंभ में कई देवी-देवताओं को पूजते थे। बृहस्पति रोम शहर का देवाधिपति था। मंगल को युद्ध का देवता माना जाता था। रोमन साम्राज्य के अलग-अलग स्थानों पर विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। मंगल और अपोलो को कई प्राचीन नामों से पूजा जाता था। ब्रिटेन और गॉल में ड्राइडिज्म बहुत लोकप्रिय था, परंतु रोमनों ने प्रथम शताब्दी के मध्य में इसे कुचल दिया। रोमन राज्य में धर्म का आयोजन पोन्टिफेक्स के द्वारा होता था। बाद में इसे पोन्टिफेक्स मैक्सिमस कहा जाने लगा। आगस्तस पहला रोमन सम्राट् था, जिसने खुद को पेन्टिफेक्स मैक्सिमस घोषित किया। एटागार्टिस, साइबल और सेरापिस साम्राज्य के पूर्वी हिस्से के प्रमुख पंथ थे। एटागार्टिस सीरिया की प्रमुख देवी थी। सीरिया के सैनिक प्रतिदिन इनकी पूजा किया करते थे। साइबल अनातोलिया का एक प्रमुख पंथ था। इसमें बैलों की बलि दी जाती थी। ईरान में मिथरास पंथ की उत्पत्ति हुई। यह पंथ द्वैधवाद के आधार पर चलता था। इस पंथ के पूजा स्थल को मिथराकम कहा जाता था।

यहूदी और ईसाई धर्म की उत्पत्ति एक ही क्षेत्र, इजराइल और फिलीस्तीन में हुई थी। यहूदी धर्म ने ही ईसाई धर्म के लिए नींव तैयार कर दी। यहूदी धर्म एक प्राचीन धर्म था और 'बुक ऑफ जेनेसिस' में इसके जन्म की कहानी मिलती है। अब्राहम के नेतृत्व में कबीलों के स्थानांतरण के समय इस धर्म का जन्म हुआ। यहूदी याहवेह नामक ईश्वर में आस्था रखते थे। वे लोग मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। 'तोराह' यहूदियों का प्रमुख धर्मग्रन्थ था। रोमन साम्राज्य में यहूदियों को जगह मिली, परंतु उनका आपसी मनमुटाव कम नहीं हुआ। कुछ दशकों के बाद रोमन शासकों ने यहूदी धर्म स्वीकार कर लिया। यहूदियों में चार संप्रदाय प्रमुख थे–सेडुसीज सबसे प्रमुख था, जो मोजेज के विधान को मानते थे। फैरिसीज इसकी अलग व्याख्या करते थे, एसेनेस शरीर के भौतिक पुनरुत्थान में विश्वास रखते थे और जैलट्स रोमनों के नियंत्रण से अपने को मुक्त करने में विश्वास रखते थे। जैलट्स ने रोमनों का प्रतिरोध किया, लेकिन रोमनों ने इसे बर्बरता से दबा दिया।

ईसा मसीह (लगभग ई.पू. 29 ई.) का जन्म यहूदियों के पवित्र शहर जेरूसलम के निकट बेथलेहम में एक गरीब परिवार में हुआ था। ईसा तीस वर्षों तक अपने घरेलू शहर में रहे। परंपराओं के अनुसार उन्हें चालीस दिन के मरुभूमि प्रवास के दौरान दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। ऐसा लगता है कि ईसा उस समय के यहूदी धर्म से संतुष्ट नहीं थे। ईसा के शिष्य बाहर काफी प्रसिद्ध थे। कुछ यहूदी नेताओं ने ईसा को रोमनों के हाथ सौंप दिया और पौन्टिअस पिलेट ने 30 ई. में उन्हें मृत्युदंड दे दिया। ईसा ने मृत्यु तक कोई अलग धर्म नहीं चलाया। ईसाई धर्म को उनके शिष्यों ने चलाया। आरंभ में यह धर्म एक यहूदी सम्प्रदाय मात्र था। ईसा की मृत्यु के बाद उनके शिष्य साइमन पीटर ने उनके संदेशों को फैलाने की शुरुआत की। ईसाई भी एकेश्वरवादी थे और मूर्तिपूजा के विरोधी थे। इस कारण रोमन सम्राटों ने ईसाइयों को काफी प्रताड़ित किया। ईसा के उपदेशों और कार्यों की कहानियों को संकलित किया गया, जो बाद में बाइबिल का हिस्सा बनी। अनातोलिया के यहूदी परिवार में जन्मे सेंट पॉल का भी ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान रहा। उन्हें गिरिजाघर का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। तीसरी शताब्दी में ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य का लोकप्रिय धर्म बन गया। ईसाई मत ने प्यार के संदेश को अपनाकर जनता को प्रभावित किया। *मैरविन पेरी* के अनुसार गरीबों, शोषितों और दासों को ईसा का व्यक्तित्व, दया भाव सबके लिए प्रेम ने बहुत प्रभावित किया। इस कारण ईसाई धर्म का व्यापक विस्तार हुआ।

ईसाई धर्म ऐसा धर्म था, जिसमें कोई भी शामिल हो सकता था। अलग-अलग प्रकार के अनेक लोगों ने इस धर्म को अपनाया। ईसाई मिशनरियों ने गरीब लोगों को जागरूक करना शुरू किया। ईसा ने कहा कि अपने पड़ोसियों को अपना मानकर प्यार करो। अब लोग एक ही पूजा करने लगे और पुरुष-स्त्री और दास तथा मालिक एक ही जमीन पर खड़े हो गए। प्रेम और बंधुत्व के संदेश के साथ चर्च ने भी ईसाई धर्म का खूब प्रचार किया। ईसाई धर्म में सबसे पहले त्रित्व के सिद्धांत पर विवाद पैदा हुआ। इस मतभेद को सुलझाने के लिए कौन्सटैनटाइन ने 325 ई. में नाइकिया में बिशपों की एक सभा बुलाई। इस सभा में एरिअस के मतों को खारिज कर दिया गया। चौथी शताब्दी तक कैथोलिक चर्च पूरे रोमन साम्राज्य में छा गया। रोम के बिशप को अन्य प्रांतों के बिशपों की अपेक्षा ज्यादा महत्त्व दिया गया, क्योंकि सेंट पीटर ने रोम में ही चर्च की स्थापना की और वहीं वे शहीद भी हुए। रोम के बिशप को बाद में पोप कहा जाने लगा।

तीसरी शताब्दी में ईसाई धर्म के प्रचार से रोमन साम्राज्य के कान खड़े हो गए। वे लोग ईसाइयों को सामाजिक व्यवस्था का दुश्मन मानते थे। ईसाई धर्म को कुचलने के लिए लंबे समय तक दंड और प्रताड़ना का दौर चलता रहा, लेकिन इससे ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार रुका नहीं। सम्राट् डायक्लीशन ने भी ईसाई धर्म को कुचलने का भरपूर प्रयास किया। उसने कई स्थानों पर ईसाइयों की हत्या भी करवाई। सम्राट् ग्लैरिअस इससे सहमत नहीं था और उसने लोगों को ईसाइयों के प्रति सहिष्णु बनने का आदेश दिया। रोमन

www.neerajbooks.com

साम्राज्य के दमन के बावजूद ईसाई धर्म का तेजी से प्रचार हुआ। सन् 312 में कौन्सटैनटाइन ने ईसाई धर्म की प्रताड़ना बंद करवाई। इससे ईसाई धर्म का प्रभाव काफी बढ़ गया। सम्राट् ने स्वयं भी ईसाई धर्म अपनाया। सन् 392 तक थियोडोसिअस ने आदेश जारी करके ईसाई धर्म को राजधर्म घोषित कर दिया और मूर्तिपूजा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। इस प्रकार, ईसाई धर्म दूसरे देशों में भी फैलने लगा।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. तीसरी शताब्दी तक रोमन साम्राज्य में हुए विस्तार की संक्षेप में चर्चा कीजिए।**

**उत्तर–**44 ई.पू. में जूलियस सीजर की मृत्यु के बाद आक्टेवियन 31 ई.पू. में रोम का शासक बना। उसने अपने आपको सम्राट् नहीं, बल्कि प्रिसेंप या प्रथम नागरिक कहा। हालांकि उसने गणतंत्र को बरकरार रखा, परंतु महत्त्वपूर्ण पदों पर अपने लोगों को नियुक्त किया। सेनेट ने उसे आगस्तस यानी पूज्य की पदवी दी। इसके समय में स्पेन और गॉल में नए उपनिवेश बसाए गए। उसने मोरक्को, इथोपिया, मिस्र तथा सीरिया पर भी कब्जा किया। उसकी मृत्यु के बाद उसका दत्तक पुत्र ताइबेरियस शासक बना। उस वंश के अंतिम शासक नीरो की आत्महत्या के साथ ही 68 ई. में उस वंश का अंत हुआ। उसके उपरांत 68 ई. में ही वेसपैसियन ने रोमन साम्राज्य का नियंत्रण स्थापित किया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों ने 180 ई. तक शासन किया। उस वंश का अंतिम शासक औरेलिअस था। इस अवधि में भी रोमन साम्राज्य शक्तिशाली और समृद्ध हुआ। सड़क से लेकर सिंचाई तक की आधारभूत सुविधाओं का विकास हुआ। हालांकि दूसरी शताब्दी के अंत तक रोमन साम्राज्य की राजनीतिक स्थिति स्थिर रही तथा तीसरी शताब्दी के मध्य तक रोमन साम्राज्य में शासक वर्ग का स्वरूप मिश्रित हो गया। रोमनों का साम्राज्य सीरिया, फिलिस्तीन एवं अनातोलिया तक पहुँच चुका था। लगभग सौ वर्षों की लंबी अव्यवस्था एवं अस्थिरता के बाद 284 में डायक्लीशन रोम साम्राज्य की सत्ता पर आसीन हुआ तथा उसने रोमन साम्राज्य को चुस्त-दुरुस्त किया तथा साम्राज्य को चार स्वायत्त हिस्सों में विभाजित किया। प्रत्येक हिस्से पर एक सम्राट् का शासन स्थापित किया गया। डायक्लीशन को पूर्वी हिस्सा, मैक्सिमस को इटली और अफ्रीका, कॉन्स्टैनटियस को स्पेन, गॉल और ब्रिटेन तथा गैलेरियस को इलरिकम, मकदूनिया और ग्रीस प्राप्त हुआ। डायक्लीशन के प्रभावशाली और शक्तिशाली व्यक्तित्व के कारण चार सम्राटों के बावजूद प्रशासन में कोई समस्या नहीं आई। जब 306 ई. में डायक्लीशन सेवानिवृत्त हुआ, तो उसके बाद ये चार सम्राट्रीय व्यवस्था समाप्त हो गई, क्योंकि राजवंशों की महत्त्वाकांक्षाएँ आपस में टकराने लगीं।

**प्रश्न 2. परवर्ती रोमन साम्राज्य के राज्य और प्रशासन का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।**

**उत्तर–**पैक्स रोमाना का युग समाप्त होने के बाद लगभग एक सौ वर्षों तक रोमन साम्राज्य में अव्यवस्था एवं अस्थिरता का आलम रहा। उस काल में रोमन साम्राज्य पर लगभग बीस से अधिक सम्राटों ने शाासन किया। रोमन साम्राज्य को इन संघर्षों से स्थिरता 284 ई. में डायक्लीशन के सत्ता संभालने के बाद ही मिला। डायक्लीशन ने सत्ता संभालने के साथ ही रोमन साम्राज्य को स्थिरता प्रदान की। उसने प्रशासन को व्यवस्थित करने के लिए उसे चार भागों में विभाजित कर दिया। पूर्वी हिस्से को उसने अपने पास रखा था। अन्य तीन हिस्सों पर दूसरे सम्राटों को स्थापित किया। डायक्लीशन के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण चार सम्राटों की शासन-व्यवस्था होने के बाद भी प्रशासन में कोई समस्या नहीं आई।

परंतु 306 ई. में उसकी सेवानिवृत्ति के बाद राजवंशों की महत्त्वाकांक्षा के कारण यह व्यवस्था समाप्त हो गई। 324 ई. तक कौन्सटैनटाइन का पूरे साम्राज्य पर नियंत्रण स्थापित हो चुका था। वह रोमन राजधानी को पूरब में ले गया तथा कौन्सटैंटिनोपल शहर बसाया। उसने राज्य में ईसाई धर्म को भी बढ़ावा दिया। उसके बाद कई शासकों ने रोम पर शासन किया। 391 ई. थियोडोसियस रोम का शासक बना। उसकी मृत्यु के बाद उसके दो बेटों के बीच रोम साम्राज्य विभाजित हो गया–पश्चिमी एवं पूर्वी रोमन साम्राज्य। चौथी एवं पांचवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य पर एशियाई कबीलों एवं हूणों ने आक्रमण किया। परवर्ती रोमन साम्राज्य में डाक्लीशन वह पहला सम्राट् था, जिसने राज्य को राज्यतंत्रीय व्यवस्था प्रदान की और यह व्यवस्था अगले सौ वर्षों तक रही। हालांकि परवर्ती साम्राज्य की नागरिक प्रशासन में नौकरशाहों का पदानुक्रम पिरामिडनुमा था। पदाधिकारियों को मजिस्ट्रेट कहा जाता था। प्रत्येक मेट्रोपोलिस की अपनी पुलिस, अनाज आपूर्ति व्यवस्था और नागरिक व्यवस्था होती थी और प्रत्येक अलग-अलग स्प्रेक्टर और क्वेस्टर होते थे। क्वेस्टर राज्य का खजांची होता था। प्रांतों का प्रशासन राजाध्यक्षों के हाथों में होता था।

**प्रश्न 3. रोमन साम्राज्य में निम्न वर्गों एवं दासों की क्या स्थिति थी?**

**उत्तर–**रोमन साम्राज्य में निम्न वर्ग आमतौर से कृषि एवं उच्च वर्गों की सेवा किया करते थे। निम्न वर्ग में कृषकों का सबसे बड़ा वर्ग था। वे उच्च वर्ग की सेवा के साथ-साथ बेगार का भी काम करते थे। निम्न वर्ग में मजदूर भी शामिल थे। जब किसानों पर कर का बोझ बढ़ने लगा, तो वे कृषि का कार्य छोड़कर शहरों में मजदूरी करने के लिए प्रयास करने लगे थे। किसान सेना, चर्च और शहरों में मजदूरी करने लगे। निम्न वर्ग के अंतर्गत किसान एवं

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मजदूर के अलावा कुम्हार, शिक्षक, बाजीगर और वेश्याएँ भी आती थीं। निम्न वर्ग की स्थिति रोमन साम्राज्य में बहुत अच्छी नहीं थी। राजशाही द्वारा अक्सर निम्न वर्ग का शोषण विभिन्न रूपों में किया जाता था; जैसे–किसानों से अधिक कर लेकर, मजदूरों से बेगार करवाकर आदि।

जहाँ तक दासों की बात है, तो उनकी स्थिति भी काफी दयनीय थी। दासों द्वारा कड़ी मेहनत से पैदा किए गए कृषीय उत्पादों को रोमन अभिजात वर्ग द्वारा हड़प लिया जाता था। यहाँ तक कि रोमन कानून में दासों को सम्पत्ति माना जाता था और रोमन दासों को बेचा या खरीदा जाता था। उनकी स्थिति रोम साम्राज्य में पशुओं के समान थी। साथ ही दासों का रखरखाव थोड़ा महंगा होता था। खासकर जब दासों की संख्या कम हो जाती थी, तो उनकी कीमत बढ़ जाती थी। हालांकि बाद के कालों में दासों ने अपने मालिक की संपदा में स्थायी रूप से बसना भी प्रारंभ किया तथा उनके जीवन की गुजर-बसर के लिए उन्हें कुछ जमीन भी दे दी जाती थी। हालांकि रोमन कानून में यह भी था कि दासों के पास कुछ संपत्ति भी होनी चाहिए, जिसे पेकुलिअम कहा जाता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रोमन साम्राज्य में निम्न वर्गों एवं दासों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। निम्न वर्ग में कृषक एक बहुत बड़ा वर्ग था, जो कर के बोझ के तले दबा हुआ था, जबकि दासों की स्थिति ऐसी थी कि रोमन साम्राज्य में उसे संपत्ति माना जाता था तथा उसकी खरीद-बिक्री की जाती थी।

**प्रश्न 4. रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म की स्थापना और प्रसार की प्रक्रिया पर विचार कीजिए।**

**उत्तर**–रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म की स्थापना का मुख्य कारण भय था। रोमन शासकों को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके विद्रोही ईसा का समर्थन पाकर रोमन शासन के खिलाफ विद्रोह कर सकते हैं। अत: रोमन साम्राज्य में भी लोगों ने ईसाई धर्म को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। तीसरी शताब्दी में यह धर्म रोमन साम्राज्य में काफी लोकप्रिय हो गया। चूंकि ईसाई मत ने प्यार के संदेश से जनता को प्रभावित किया। ऐसा भी माना जाता है कि रोमन साम्राज्य का व्यापक विस्तार ईसाई धर्म के व्यापक स्तर पर फैलने का एक प्रमुख कारण था। चूंकि रोम के शासकों ने उस धर्म को संरक्षण प्रदान किया था तथा आगे चलकर इस धर्म को संरक्षण प्रदान किया था तथा आगे चलकर यह धर्म रोमन साम्राज्य का राज्यधर्म के बन चुका था। इस कारण जहाँ-जहाँ रोमन साम्राज्य का विस्तार हुआ, वहाँ-वहाँ उसका धर्म भी विस्तृत होता चला गया।

हालांकि तीसरी शताब्दी में जब ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य में काफी लोकप्रिय हो चुका था, तो वहाँ के शासकों ने उसे उसकी लोकप्रियता को दबाने का भी प्रयास किया। परंतु रोमन राज्य की दमन की नीति के बाद भी तीसरी और चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म तेजी से फैला। कौन्सटैनटाइन के शासनकाल में ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य में बिना रुकावट के विस्तार की ओर अग्रसर हुआ। उसने सहिष्णुता का आदेश जारी किया तथा ईसाइयों की प्रताड़ना को समाप्त किया। उसकी घोषणा के बाद रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म का प्रभाव काफी बढ़ गया और चौथी शताब्दी के अन्त तक यह साम्राज्य का प्रमुख धर्म बन गया। कौन्सटैनटाइन रोमन साम्राज्य का पहला शासक था, जिसने ईसाई धर्म को ग्रहण किया। इसी प्रकार 392 ई. में थियोडोसिअस ने आदेश जारी करके ईसाई धर्म को सम्प्रदाय का राज्यधर्म बना दिया तथा मूर्ति पूजा को कानून विरुद्ध कर दिया।

**प्रश्न 5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखें–**

**(क) रोमनों की सेना, (ख) रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म की स्थापना के पहले के धार्मिक सम्प्रदाय।**

**उत्तर–(क) रोमनों की सेना**–किसी भी साम्राज्य के विस्तार के लिए सेना महत्त्वपूर्ण पहलू होता है। सेना के बगैर किसी भी साम्राज्य का अस्तित्व होने काल तक नहीं बना रह सकता है। रोमन राज्य में भी सेना एक महत्त्वपूर्ण घटक थी। सम्राट् उसका प्रमुख सेनानायक होता था। सम्राटों के उस युग सेना के कारण ही रोमन राज्य सबसे ताकतवर राज्य था। सीमाओं की रक्षा करने के लिए तथा गैर-रोमन राज्यों से रोमन संसार की रक्षा करने के लिए सेना भेजी जाती थी। हालांकि रोमन गणतंत्र में लड़ाई के समय सैनिक अपने घरों से दूर रहते थे, जिसका परिणाम यह होता था कि उनके साथ से उनके घर की संपत्ति भी छूट जाती थी। गणतंत्र के पतन के बाद सेना द्वारा राजनीतिक लाभ के लिए भी सेना का उपयोग किया गया। रोमन साम्राज्य के पहले रोमन सम्राट् आगस्तस ने हजारों सैनिकों को जमीन आबंटित की थी। इन उपायों द्वारा सेना में अनुशासन एवं निष्ठा की भावना पैदा हुई। परवर्ती रोमन सम्राटों में डायक्लीशन ने सेना के महत्त्व को समझाया और सैन्य भर्ती की शुरुआत की। तीसरी और चौथी शताब्दी में सैनिकों की कुल संख्या लगभग 450000 थी। अब सैनिक की भर्ती वंशानुगत बना दी गई। साथ ही आंतरिक सुरक्षा बहाल करने के लिए राजमार्गों के दोनों ओर सैनिक तैनात किए गए। देहातों में भी सैनिकों की तैनाती होती थी। सेना का प्रयोग साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ विद्रोहों को दबाने के लिए भी किया जाता था। कभी-कभी जब स्थानीय सामाजिक आंदोलन होने लगते थे, तो उन्हें भी दबाने के लिए सेना को भेजा जाता था। इस प्रकार, स्पष्ट है कि रोमन साम्राज्य के निर्माण एवं स्थायित्व में सेना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**(ख) रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म की स्थापना के पहले धार्मिक संप्रदाय**–रोमन साम्राज्य में ईसाई धर्म से पहले आमतौर

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



पर लोग देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे। बृहस्पति रोमन शहर का देवाधिपति था। मंगल भी एक महत्त्वपूर्ण देवता था, क्योंकि उसे लोग युद्ध का देवता मानते थे। हालांकि लोगों द्वारा स्थानीय देवी-देवताओं की भी पूजा की जाती थी। मंगल और अपोलो को भी कई प्राचीन नामों से जाना जाता था। ब्रिटेन और गॉल में ड्रूइडिज्म लोकप्रिय थे। यह एक कबीलाई धर्म था। उस धर्म में प्रकृति की शक्तियों की पूजा की जाती थी। आमतौर पर रोमन साम्राज्य धर्म का आयोजन और संयोजन पोन्टिफेक्स के द्वारा होता था। एटागार्टिस, साइबल और सेशपिस सम्राज्य के पूर्वी हिस्से के प्रमुख पंथ थे। इन पंथों का जन्म क्रमश: सीरिया, अनातोलिया और मिस्र में हुआ था।

चूंकि यहूदी धर्म का जन्म ऐसे क्षेत्र में हुआ, जो कि बाद में रोमन साम्राज्य का हिस्सा बना अत: रोमन साम्राज्य में यहूदी धर्म का भी कुछ प्रभाव था। रोमन के कुछ भागों में लोग यहूदी धर्म को भी मानते थे। खासकर जिस क्षेत्र में अर्थात् फिलीस्तीन- इजरायल क्षेत्र में लोगों को यहूदी मानने की छूट शासकों द्वारा दी गई थी। यहूदी धर्म दुनिया का एक बहुत पुराना धर्म है। रोमन साम्राज्य में यहूदी धर्म मुख्यत: सीरिया-फिलीस्तीन के क्षेत्र में लोगों द्वारा माना जाता था। हालांकि रोमन शासकों एवं यहूदी धर्म मानने वाले धर्मावलंबियों के बीच टकराव की स्थिति भी होती थी। पर इतना तो अवश्य है कि रोमन साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों में आने से पहले अन्य धर्मों के साथ यहूदी धर्म को भी लोग मानते थे।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



# अरब संसार

18

## परिचय

इस्लाम का उद्भव कबीलाई व रेगिस्तानी परिवेश केन्द्र में हुआ था, परन्तु यह उस क्षेत्र में भी फैला, जो पहले से सभ्यताओं का केन्द्र रहा था; यथा–मिस्र व ईरान। इस्लामी समाज नील व ओक्सस नदियों के बीच के इलाकों में परंपराओं व विरासतों को लेकर विकसित हुआ। इसने बेबीलोन, मिस्र, यहूदी व फारसी परंपराओं को भी आत्मसात किया। इस्लामी सभ्यताओं ने नए तत्त्वों को ग्रहण करते हुए पुरानी परंपराओं को भी शामिल किया।

इस्लाम जिस क्षेत्र में फैला वह दो सांस्कृतिक और राजनीतिक शक्तियां, यथा–पूर्वी रोमन साम्राज्य व सासानियाई साम्राज्य था। तीसरी शताब्दी के अंत में पुराने रोमन साम्राज्य का एक केन्द्रीकृत राजनीतिक संरचना के तहत पुनर्गठन किया गया था, जिसका केन्द्र भूमध्यसागरीय क्षेत्र था। छठी शताब्दी तक सीजर पोपवाद की आधारशिला बनी, जिससे राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्र में स्थिरता आई, परन्तु इसके राजनीतिक स्वरूप के कारण धार्मिक असंतोष जुड़ गया। फलत: राज्य का विखंडन तेज हो गया। यद्यपि सम्राट् को नौकरशाही का समर्थन प्राप्त था, तथापि मिस्र, सीरिया विरोध करने लगे। इन विरोधियों को सासानियाई शासकों का समर्थन प्राप्त था, जो रोमन साम्राज्य के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी थे।

सासानियाई साम्राज्य इराक-ईरान के इलाकों तक फैला हुआ था जो पूर्ववर्ती पार्थियाई राज्यों से ज्यादा केंद्रीकृत था। पुरोहित वर्ग की राज्य संचालन में भूमिका का विरोध हुआ, जिसे शासक व पुरोहितों ने मिलकर दबा दिया।

ईसा से हजार वर्ष पहले से ही अरब प्रायद्वीप के दक्षिणी हिस्से में शक्तिशाली राजवंशों का उदय हो चुका था। इस हिस्से की मिट्टी उपजाऊ थी तथा लोबान (जो महंगी वस्तु थी) का उत्पादन बड़े स्तर पर किया जाता था। इन राज्यों के शाही शासक पुरोहित होते थे। लाल सागर व हिन्द महासागर के बीच होने के कारण व्यापार काफी विकसित अवस्था में था। दक्षिण अरबियों ने मरुभूमि मार्ग से उत्तर की ओर व्यापार स्थापित किया था। इसमें बद्दुओं के कबीलों को शामिल किया गया। ये आर्थिक क्रियाओं में काफी सहायक रहे। मक्का के व्यापारिक केन्द्र के निर्यात में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

अरब प्रायद्वीप इन साम्राज्यों के नजदीक स्थित था और राजनीतिक हलचलों से प्रभावित होता रहता था। इस क्षेत्र में यहूदी/ईसाई धर्म लोकप्रिय थे। एकेश्वरवाद धर्म व आस्था का हिस्सा था। दोनों धर्मों की एक पैगम्बरी परंपरा थी। दोनों मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास रखते थे।

परन्तु अरब प्रायद्वीप के बाकी हिस्से की स्थिति अलग थी। यह समाज आदिम अवस्था में था। उत्तरी पश्चिमी व मध्य अरब में पत्थर व रेत भरे इलाकों के साथ-साथ खेती भी होती थी, परंतु सीमित स्तर पर होती थी।

1000 ई.पू. से पहले इस क्षेत्र के लोग बद्दू गधे पालते थे परन्तु 1100 ई.पू. के आसपास ऊँट पालने लगे, जो काफी लाभदायक साबित हुआ। बद्दू ऊँटों की सहायता से राजनीतिक शक्ति बन गये, जो सैनिक उपलब्ध कराने लगे। ये भूमि पर जबरन कब्जा कर लेते थे। आर्थिक-सामाजिक जुड़ाव के कारण परिवार से कुनबा तथा कुनबा से कबीला का निर्माण हुआ। इनके साथ रहने वाले पशुपालक समाज से इनका तनावपूर्ण सहयोगी संबंध रहा। कबीला एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था, जो संप्रभुता संपन्न होता था। इसमें सामूहिकता का तत्त्व होता था। इसका प्रधान सैयद होता था, जिसकी सत्ता का स्रोत नैतिकता होती थी।

पैगम्बर मोहम्मद का जन्म व प्रारंभिक जीवन मक्का में बीता। यह वाणिज्यिक, धार्मिक व वित्तीय केन्द्र था। मक्का चारों ओर से पहाड़ियों से घिरे होने के कारण लाल सागर के लुटेरों से बचता रहा। मक्का, परवर्ती दक्षिण व पूरब-पश्चिम व्यापार मार्गों का मिलन-स्थल था, इस कारण दक्षिणी अरब राज्य विकसित हुआ। यमन राजशाही के बाद मक्कावासियों ने इस व्यापार पर नियंत्रण स्थापित किया। सासानियों व रोमन साम्राज्य के युद्ध के कारण मक्का के रास्ते होने वाले व्यापार का महत्त्व बढ़ गया।

400 ई. के करीब मक्का की स्थापना हुई थी। यहाँ के बाजार में वस्तु-विनिमय होता था, जो 600 ई. के आसपास एक पूर्ण विकसित बाजार बन गया। चीन, भारत व दक्षिण अरब से यहाँ

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सामान आता था। अफ्रीका के दासों का व्यापार होता था। मक्का को कुरैश कबीले ने वित्तीय रूप से समृद्ध किया। इन्होंने मक्का टाइकल द्वारा मार्ग में शांति स्थापित करके व्यापार को विकसित करके उसमें सहायता पहुँचाई। इसमें पैगम्बर मोहम्मद के परदादा हाशिम को श्रेय दिया जा सकता है। यह व्यापारिक व धार्मिक हितों की रक्षा करता था।

कुरैश कबीले ने व्यापार पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखी थी। परन्तु छठी शताब्दी के अंत में इसमें दरार पड़ने लगी। परन्तु मोहम्मद ने इन गतिरोधों को समाप्त करके प्रायद्वीप के एकीकरण को पूर्ण किया।

शहरीकरण के कारण मक्का पशुपालक संस्कृति के आदर्श से हट गया, परन्तु यह भोजन व बद्दुओं पर आश्रित था। मक्का विकास के चरम पर पहुँच चुका था, परन्तु बद्दुओं की आर्थिक स्थिति पिछड़ी ही रही। व्यापारिक अर्थव्यवस्था के कारण धन का संकेद्रण कुछ लोगों के पास रहा, जबकि बद्दुओं की समृद्धि नहीं बढ़ी। फलतः सामूहिक भाईचारे की अवधारणा की जगह व्यक्तिवदिता का विकास हो रहा था। सामाजिक जीवन की इकाई कबीला हो गया। पूँजी का सकेंद्रण बढ़ने से सामाजिक स्तरीकरण बढ़ा। नेताओं ने अपने अधिकारों को तो प्राप्त किया, परंतु कर्त्तव्यों को नहीं समझा, फलतः सामूहिकता की भावना समाप्त हो गई।

इसी परिस्थिति में पैगम्बर मोहम्मद ने मदीना में इस्लामी राज्य स्थापित किया। बदलते कबीलाई समाज की समस्याओं के समाधान हेतु इस्लाम की स्थापना हुई, जिसने संस्कृति व राजनीति को भी प्रभावित किया। पैगम्बर मोहम्मद ने अरब समाज में एकता व सौहार्द की स्थापना हेतु 'इस्लाम' का सिद्धांत दिया।

पितृहीन बालक पैगम्बर मोहम्मद के जन्म के बाद मां भी चल बसी फलतः पालन-पोषण दादा अब्दुल व चाचा अबु तालिब ने किया। अरब रिवाजों के अनुसार इन्हें अपने पिता की संपत्ति में हिस्सेदारी नहीं मिली। युवावस्था में पैगम्बर मोहम्मद की मुलाकात ईसाई व यहूदी पादरियों से हुई। 25 वर्ष की उम्र में पैगम्बर मुहम्मद ने विधवा खलीदा से निकाह किया।

610 ई. में एकांतवास के दौरान आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद पैगम्बर मोहम्मद को विश्वास हो गया कि उन्हें रसूल उल्लाह बनाकर भेजा गया है और इनके माध्यम से ईश्वर अपना संदेश पहुँचाना चाहता है। ये संदेश मृत्यु तक पहुँचते रहे, जिसमें ईश्वर की एकता, दान देने का उत्तरदायित्व व गरीबों व परित्यक्ताओं की सहायता की बात की गई।

सर्वप्रथम पत्नी खदीजा, इसके बाद भतीजे अली ने आध्यात्मिक वचन ग्रहण किया। इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी। पैगम्बर मुहम्मद ने  वाणिज्य की निंदा नहीं की, बल्कि गलत तरीके से व्यापार को त्याज्य बताया। इसमें धनी लोगों के सामाजिक दायित्व पर बल दिया गया। वे बताना चाहते थे कि सभी लोगों में बराबर का संबंध होना चाहिए। परन्तु जल्द ही विरोध शुरू हो गया, क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद ने व्यापारियों के हितों पर प्रहार किया था। इन्होंने सूदखोरी का विरोध किया था। व्यापारी पैगम्बर मुहम्मद से राजनीति खतरा भी महसूस करते थे, क्योंकि वे दावा किया करते थे कि इन्हें सीधे अल्लाह से शक्ति प्राप्त होती है। फलतः 622 में पैगम्बर मुहम्मद मदीना आ गया, जो हिजरत कहलाता है।

मदीना का मरुद्वीप यहूदियों से बसा था। समृद्धि के कारण कबीलों द्वारा इसे अधिकृत किया गया। धार्मिक व व्यापारिक महत्त्व का न होने के कारण शांति के प्रयास नहीं हुए। फलतः संघर्ष चलता रहा। पैगम्बर मोहम्मद ने समुदायों को जोड़ने की दिशा प्रदान की थी अतः वे न्यायाधीश की भूमिका निभाने हेतु आमंत्रित हुए। अब पैगम्बर मोहम्मद की धार्मिक भूमिका में राजनीतिक तत्त्व भी समाहित हो गए। 'मदीना के संविधान' में नई राजनीतिक व्यवस्था को रूप दिया गया और संबंधों को नियमित व नियंत्रित किया गया। पैगम्बर मुहम्मद ने मक्का की व्यापार व्यवस्था को चुनौती दी। 624 ई. में पैगम्बर मोहम्मद ने काफिले को लूटकर सफल सेनानायक का स्तर प्राप्त कर लिया। 625 ई. में मक्कावासियों ने हमला किया, परन्तु असफल रहे। पुनः मक्कावासी 'खाई की लड़ाई' में पराजित हुए।

पैगम्बर मोहम्मद की इन सफलताओं ने कबीलों को आकर्षित किया, परन्तु पैगम्बर मोहम्मद मक्का से टकराव नहीं चाहते थे क्योंकि व्यापार के हित में नहीं था, अंततः 630 ई. में एक सन्धि के तहत मक्का ने समर्पण कर दिया। मक्का पर नियंत्रण के बाद कई कबील पैगम्बर मोहम्मद से जुड़ने लगे। मक्का के पतन के बाद पैगम्बर मोहम्मद ने धर्मांतरण पर बल दिया। अब पैगम्बर मोहम्मद मुस्लिम समुदाय के सर्वोच्च नेता बन गए।

पैगम्बर मोहम्मद ने अरबों की भाषा की जरूरतों के अनुसार धर्म की स्थापना की, यद्यपि धर्मांतरण के लिए जबरदस्ती नहीं की, तथापि काफी लोगों ने इस धर्म को ग्रहण किया। इस्लाम ने केवल धार्मिक लोगों की आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा किया, बल्कि अरबों की राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि जरूरतों को पूरा किया।

पैगम्बर मोहम्मद की मृत्यु के बाद विभाजन हो गया, क्योंकि पैगम्बर मोहम्मद ने कोई धार्मिक/राजनीतिक उत्तराधिकारी नियम नहीं दिया था। यद्यपि धार्मिक मामले में निर्देश हेतु खलीफा की नियुक्ति की गई, जिसका धार्मिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं होता था।

प्रथम खलीफा अबु को मुस्लिम समुदाय की सत्ता बहाल करने के लिए प्रयास करना पड़ा। अबु के बाद उमर ने मिस्र व ईरान को अधिकृत किया। इसी समय इस्लामी शासन की सरकारी पद्धति व वित्त की व्यवस्था की गई। इन्होंने नई प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। इसने सैनिक शहरों का निर्माण किया। इससे सेना का इस्लामीकरण आसान हो गया। उमर की हत्या के बाद उस्मान खलीफा बना। इसने केन्द्रीकृत सत्ता स्थापित करने की नीति को कायम रखा और कुरान के पाठ का मानवीकरण किया। यद्यपि प्रशासनिक अक्षमता के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

कारण वित्तीय अनियमितता आई । कबीलों में असंतोष फैला, अतंत: मदीना में उस्मान की हत्या कर दी गई। इसके बाद अली खलीफा बना। इनको सीरिया में खलीफा मानने से इंकार कर दिया गया, फलत: प्रथम बार गृहयुद्ध हुआ।

मुआविया (661-80) ने खलीफा बनकर उम्मैयद खिलाफत प्रारंभ की, जो इस्लाम के धर्मनिरपेक्ष रूप की बात करता है मुस्लिम राज्य की केंद्रीकृत सत्ता को स्थापित किया। मारवान (683-85), अब्द अल मलिक (685-705) ने केंद्रीकृत खिलाफत की सत्ता बहाल की। इसने केन्द्रीकरण पर बल दिया, क्योंकि इसने साम्राज्य के आर्थिक संसाधनों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखने का प्रयास किया। सुलेमान (715-717) परपीड़क व अय्याश खलीफा था। उमर II (717-20) के समय राज्य के संसाधन कम होने लगे थे। इसने जिम्मियों को धर्मांतरित होने के लिए प्रोत्साहित किया। यजीद II (720-24) दुराचारी खलीफा था। इसके बाद हिशम (724-743) ने मजबूत शासन की स्थापना की। अल वलीद II (743-44) पथभ्रष्ट था। इसका अंतिम खलीफा मरवान II था। इसे पदच्युत करके अब्बासी वंश की खिलाफत स्थापित हुई।

अरबासियों की क्षमता खुरासानी सैनिकों के समर्थन पर टिकी थी। इन्होंने बगदाद का निर्माण करके उसे राजधानी बनाया। इन्होंने अरबों व नए मुसलमानों के बीच अंतर खत्म करने की कोशिश की। इसके काल में कला, शिक्षा व संस्कृति को काफी संरक्षण मिला। अत: महदी (755-85) ने वित्तीय व्यवस्था को सुव्यवस्थित किया और उदारवादी शियाओं से शांति स्थापित की। हारून अल रशीद के समय विज्ञान, कला, संस्कृति का केन्द्र बन गया। इसके बाद मामून 818 ई. में खलीफा बना। इसके बाद अल मुतसमिक (833-842) ने निजी सुरक्षा सैनिकों को तैयार किया। अल वासिक (842-47), मुतवक्किल (847-61) के समय अर्थव्यवस्था लड़खड़ा गई। फलत: केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुई। 909 में फातमियों ने अपदस्थ दिया। खिलाफत राज्य के स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया यद्यपि इनकी भूमिका मात्र प्रतीकात्मक रह गई।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. इस्लाम के उदय से पूर्व के अरब समाज का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत कीजिए।**

**उत्तर**–यह समाज विकास की आदिम अवस्था में था। 1000 ई.पू. से पहले इस क्षेत्र में रहने वाले लोग गधे पालते थे। 1100 ई.पू. के करीब ये ऊँट पालने लगे, जो इस क्षेत्र के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। फलत: मरुभूमि पर जीवन जीना आसान हो गया क्योंकि यह आरामदायक सवारी हो गई, जो प्रतिदिन 160 कि.ग्रा. बोझ उठाकर 40 कि.मी. की यात्रा कर सकता था। साथ ही 57° C तक तापमान में भी काम कर सकता था, 8 दिन बिना पानी पीए रह सकता था। इन विशेषताओं के कारण ऊँट व्यापार व सवारी हेतु महत्त्वपूर्ण था। इन ऊँटों के कारण बद्दू राजनीतिक शक्ति बन गये। ऊँटों का प्रयोग सैनिक लोगों में भी होने लगा। धीरे-धीरे बद्दू आर्थिक व सामाजिक कारणों से जुड़ने लगे। अंतत: कबीले का विकास हुआ। इनके साथ कृषि व वाणिज्य में संलग्न लोग भी रहते थे। यद्यपि इनका संबंध तनावपूर्ण था, परन्तु सहजीविता का था। किसान व व्यापारी वस्तुओं को अनाज, खजूर व हथियारों की आपूर्ति किया करते थे, बदले में खानाबदोश इन्हें जानवरों से निर्मित सामान व पशु उपलब्ध कराया करते थे। यदि इनके बीच कोई स्थायी समझौता हो जाता, तो वे कबीले से इनकी रक्षा भी किया करते थे। बद्दू व्यापार में मार्गदर्शन व रक्षक का कार्य भी किया करते थे।

इनके लिए कबीला महत्त्वपूर्ण था। इसके बिना इनका संचालन प्रभावित होता था। प्रत्येक कबीला अपने आप में संप्रभु हुआ करता था, यद्यपि अपनी अस्थायी प्रकृति के कारण कबीले टूटकर नई इकाइयां बनते थे। व्यापार, पशुचारण व दूसरे कबीले की बस्तियों पर हमला करना इनकी मुख्य आर्थिक गतिविधियाँ थीं। कबीला किसी व्यक्ति को अपना पद, पहचान देता था। इन कबीलों में सामूहिकता व सर्वकल्याण की भावना होती थी। इसी कारण कबीलों में शांति-व्यवस्था कायम रही। प्रत्येक कबीले का मुखिया सैय्यद कहलाता था। उसे यह पद उसकी कार्यक्षमता व नैतिकता की सहायता से मिलता था।

कबीला इस समाज का सर्वाधिक शक्तिशाली सामुदायिक संगठन था। अरब में इसके लिए एकता असंभव थी। पैगम्बर मोहम्मद ने आकर मुस्लिम समुदाय की एक व्यापक अवधारणा प्रस्तुत की, जो कबीले से ऊपर थी।

**प्रश्न 2. मक्का के शक्तिशाली कबीलों ने पैगम्बर मोहम्मद के संदेश का क्यों विरोध किया?**

**उत्तर**–आत्मज्ञान होने के बाद धीरे-धीरे पैगम्बर मोहम्मद के अनुयायियों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी, जो इनके आदर्श से सहमत थे, वे इनके संदेश को भी स्वीकार करने लगे। आरंभ में इनके अधिकांश अनुयायी कमजोर कुनबों के सदस्य थे या शक्तिशाली कुनबों के कनिष्ठ सदस्य थे। इनमें महिलाएं व समाज से त्याग दिए गए दास या ग्राहक अनुयायी बने। आरंभ में इनकी संख्या को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया गया, परन्तु जल्द ही विरोध शुरू हो गया, क्योंकि ये भाईचारे का संदेश व समानता पर बल देते थे, जबकि कबीलों के लोगों में धन का संकेन्द्रण हो रहा था। सामूहिकता की जगह व्यक्तिवादिता का तत्त्व आ रहा था, जो पैगम्बर मोहम्मद के सिद्धांतों के विपरीत था। पैगम्बर मोहम्मद ने यद्यपि वाणिज्य को त्याज्य बताया व धनी लोगों के सामाजिक उत्तरदायित्व पर बल दिया। इनकी समानता का संबंध धनिक कबीलों के लिए गहरा आघात साबित हो रहा था।

पैगम्बर मोहम्मद की शक्ति को बढ़ते देख मक्कावासियों को यह ठीक नहीं लगा कि कोई व्यक्ति उनकी आर्थिक सत्ता को चुनौती देकर उनके अस्तित्व को समाप्त करने का प्रयास करे। इन्हें लग रहा

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

था कि यदि इसके संदेशों पर अमल किया जाए, तो व्यापार करना मुश्किल हो जाएगा। फलत: इनके आर्थिक हितों को नुकसान पहुँच सकता है। इनका व्यापार मानव की पवित्रता से जुड़ा था फलत: आर्थिक हितों को नुकसान पहुँचने की संभावना थी।

पैगम्बर मोहम्मद ने सूदखोरी को इस्लाम व पूरे समुदाय हेतु अपराध घोषित किया फलत: व्यापारियों के आर्थिक हितों को चुनौती मिली। क्योंकि सूदखोरी ही इन व्यापारियों की संपन्नता का आधार था, इस कारण इनका विरोध खत्म हुआ।

इसके साथ ही पैगम्बर मोहम्मद से राजनीतिक खतरा भी महसूस हो रहा था, क्योंकि आत्मज्ञान के बाद यह दावा करते थे कि उन्हें सीधे अल्लाह से शक्ति प्राप्त होती है, इस कारण इनकी धार्मिक सत्ता को भी चुनौती नहीं दी जा सकती थी।

अत: अपने व्यापारिक व राजनीतिक हितों की रक्षा हेतु पैगम्बर मोहम्मद का विरोध प्रारंभ कर दिया।

**प्रश्न 3. पैगम्बर मोहम्मद मक्का पर अपना नियंत्रण करने में कैसे सफल हुए?**

**उत्तर**–'मदीना के संविधान' के द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था ने मदीना में संबंधों को नियंत्रित व नियमित किया। यद्यपि पैगम्बर मोहम्मद पंच के रूप में स्वीकृत नेता थे, परन्तु निर्णयों को लागू करने हेतु कोई कमी नहीं की।

मदीना में मुसलमान व्यवसायी थे अत: मक्का से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा आवश्यक-सी हो गई। मोहम्मद साहब ने उन कारकों को मक्का की व्यापार व्यवस्था से चुनौती दी। 624 में मक्का जा रहे व्यापारिक गुट को लूट कर काफी धन प्राप्त किया। पैगम्बर मोहम्मद ने 1/5 हिस्सा अपने पास रखा बाकी 4 हिस्से मुसलमानों में बाँट दिए, इससे एक ओर इन्हें सफल सेनानायक के रूप में स्थापित किया, तो दूसरी ओर नैतिक समर्थन भी मिला, क्योंकि लोगों को इनके लक्ष्यों में भाईचारा व समानता की समझ विकसित होने लगी। इस कारण कारण अरब ज्यादा संख्या में मुस्लिम धर्म स्वीकार करने लगे थे। मदीना में मुस्लिमों व यहूदियों में तनाव उत्पन्न हो रहे थे यद्यपि अब्राहम, मूसा व ईसा को अल्लाह के दूत के रूप में ही देखता था। दोनों एकेश्वरवादी थे तथा मुस्लिम भी येरूशलम की ओर मुँह करके नमाज अदा किया करते थे। परन्तु यहूदी पैगम्बर मोहम्मद के दावे को स्वीकार नहीं करते थे। इस स्थिति में पैगम्बर मोहम्मद ने मुस्लिमों को नमाज के वक्त काबा की ओर रुख करने का आदेश दिया।

625 में मुस्लिमों पर मक्कावासियों का आक्रमण हुआ। मोहम्मद साहब ने उहुद में छोटी सेना से सामना किया जिसमें 75 मुस्लिम मारे गये। इसी के बाद पैगम्बर मोहम्मद ने मुसलमानों को 4 निकाह की छूट दी, ताकि मृत सैनिकों की विधवाओं का निकाह हो सके। इस बार असफल रहने पर पुन: मक्कावासियों ने आक्रमण किया। इस बार 'खाई की लड़ाई' में पुन: मक्कावासियों को मुँह की खानी पड़ी। पैगम्बर मोहम्मद की इन सफलताओं ने कबीलों को इनकी ओर आकर्षित किया।

पैगम्बर मोहम्मद मक्का को नष्ट करने का विचार नहीं रखते थे, क्योंकि इनका मानना था कि ऐसा करने से प्रायद्वीप का व्यापार नष्ट हो जाएगा। अंतत: 630 ई. में संधि द्वारा मक्का ने समर्पण कर दिया। इस प्रकार पैगम्बर मोहम्मद ने मुस्लिम समुदाय की स्थापना की, जो उम्मा कहलाया।

**प्रश्न 4. उमर ने किस प्रकार इस्लामी राज्य को मजबूत बनाया?**

**उत्तर**–उमर ने मिस्र व ईरान पर कब्जा जमा लिया था। 636 में अरब सेना ने बाइजेन्टाइन सेना को परास्त किया। डैमस्कस व सीरिया के अधिकांश हिस्से को अधिकृत किया। 637 ई. में सासानियाई सेना को परास्त कर दिया। 638 ई. में जेरूशलम पर कब्जा किया। 641 ई. में मोसूल व 642 में एलेक्जेंड्रिया पर कब्जा किया।

नए विजित क्षेत्रों में प्रशासन हेतु अमीरों की नियुक्ति की। आक्रमणकारी सेना को बसने की अनुमति नहीं दी गई। खेतिहरों से इनके खेत नहीं छीने, फलत: कृषि व्यवस्था पूर्ववत चलती रही। इस नीति से जहाँ एक ओर विजित इलाकों पर नियंत्रण आसान हो गया, साथ ही सेना को नहीं बसने देने से इनकी तीव्रता व गति में बाधा नहीं आई। सामाजिक ढाँचे को तोड़ा गया। दूसरे धर्म को मानने वाले समुदायों को जिम्मी का दर्जा दिया गया, जिन्हें खराज व जजिया देना पड़ता था।

उमर ने ईरान में सैनिक शहरों का निर्माण किया था। इससे सेना का इस्लामीकरण भी आसान हो गया। ये सैनिक केन्द्र सांस्कृतिक व वाणिज्यिक केन्द्र के रूप में अभरने लगे, इन्होंने ऐसा रजिस्टर भी बनाया जिसमें उन लोगों के नाम थे जिन्हें राज्य सहायता करता था। उमर ने शोषणात्मक यूनानी कर व्यवस्था से किसानों को मुक्ति दी। धार्मिक रूप से फैले असंतोष को कम किया। इस समय रोमन व सासानिया शक्ति लुप्त हो गई थी। चर्च की जटिलता की जगह इस्लाम की सरलता व समानता के सिद्धांत को लोगों ने स्वीकार किया।

इस प्रकार, उमर ने राजनीतिक विस्तार किया। धार्मिक क्षेत्र में फैली अराजकता को समाप्त किया। आर्थिक ढाँचे को विकसित किया। इस्लाम ने समानता के सिद्धांत को लागू किया। इन सबके लिए इन्होंने बेहतर प्रशासनिक तंत्र का विकास किया।

**प्रश्न 5. उमय्यदों ने किस प्रकार केन्द्रीकृत शासन की स्थापना की? उमय्यद राजवंश का पतन क्यों हुआ?**

**उत्तर**–उमय्यदों ने इस्लाम के मजहबी समुदाय के मौलिक संपर्क की जगह धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना द्वारा केन्द्रीकृत राज्य की स्थापना की। मुआविया में मुस्लिम राज्य की सत्ता का स्वरूप

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



केन्द्रीकृत था, जो सीरिया के सेना व धन की शक्ति पर टिकी थी, असंतोष व राजनीतिक विखंडन के दबाव में अरब इनका समर्थन किया करते थे।

मुआविया ने विरोधियों का दमन केन्द्रीकृत सत्ता से प्रारंभ किया। अरब शासकीय विशिष्टता को बनाए रखने हेतु शहरों का निर्माण कराया, मुआविया ने तानाशाह के रूप में काम किया अब्द मलिक ने इस्लाम की राजनीतिक एकता को आदर्श बनाया। कुरान के वाचन में एकता पर बल दिया। इस्लामी अभिलेख से युक्त सिक्के ढाले गए। जेरूशलम में पाथर गुंबद बनाया गया। इस प्रकार धार्मिक तत्त्वों की सहायता से केन्द्रीकरण की प्रवृति राजनीति में दिखती है। इसके काल में केन्द्रीकृत व्यवस्था को इसलिए प्रोत्साहन मिला, क्योंकि साम्राज्य के आर्थिक संचालन पर प्रत्यक्ष नियंत्रण का प्रयास किया गया।

वस्तुत: राज्य की आर्थिक आवश्यकताओं के बढ़ने के कारण किसानों पर दबाव बढ़ने लगा। वे उत्पादकों व राज्य के बीच विशेषाधिकार प्राप्त बिचौलिया वर्ग के रूप में विकसित होने लगे। सैनिकों को लूट के माल की अपेक्षा व्यापारिक गतिविधियों में होने वाला मुनाफा लाभप्रद दिखने लगा फलत: आक्रमणकारी सैनिकों का रूपांतरण नागरिकों व व्यापारियों में होने लगा, परिणामस्वरूप पूर्ववर्ती स्वरूप समाप्त होने लगा।

बाद के काल में अयोग्य शासकों ने भी समस्याओं को और गंभीर बनाया; यथा—सुलेमान, उमर II, यजीद II, अल वलीद II।

इस प्रकार, अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण भी पतन हुआ।

**प्रश्न 6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—**

**(i) हारून अल रशीद (786-809 ई.) के शासनकाल के दौरान समाज और अर्थव्यवस्था।**

**(ii) हुसैन और उमय्यदों के बीच टकराव।**

**उत्तर—*(i)* हारून अल रशीद के काल में समाज व अर्थव्यवस्था—**हारून अल रशीद कला व शिक्षा का संरक्षक था। इसने संगीत व कविता के विकास में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बगदाद प्राकृतिक विज्ञान, तत्त्वमीमांसा के अध्ययन का केन्द्र बन गया। खगोल विज्ञान, औषधि विज्ञान व गणित की पुस्तकों का यूनानी व संस्कृत भाषा से अनुवाद होने लगा।

राज्य की यह शैक्षणिक व सांस्कृतिक प्रगति बिना आर्थिक गतिविधि के कारण संभव नहीं हो सकती। साम्राज्य में शांति होने के कारण व्यापार के विकास में मदद मिली। निजी संपत्ति की अवधारणा का विकास होने से विलासिता संबंधी वस्तुओं का आयात होने लगा। व्यापार से स्थानीय उत्पादन को भी सहायता मिली। बैंकिंग व लेनदेन की सुविधाएँ विकसित हुईं। शासकीय वर्गों ने व्यापार में पैसा लगाकर आर्थिक संपन्नता हासिल की। मुसलमानों व गैर-मुसलमानों में सामंजस्य रहा। हस्तकला में भी विकास किया गया। चीन से कागज बनाने की प्रौद्योगिकी जानने के बाद कागज के निर्माण में सहायता मिली। फलत: साहित्यिक गतिविधियों को काफी सहायता मिली।

इस समय धर्मांतरण में तेजी आई, परन्तु समाज में समाहित हो गये।

***(ii)* हुसैन व उमय्यदों के बीच टकराव—**मुआविया ने बेटे यजीद को उत्तराधिकारी बनाया गया। यजीद को मदीना की जनता ने राजवंश का उत्तराधिकारी मानने से इंकार कर दिया।

फलत: विरोधी गुट पैगम्बर मोहम्मद के नाती हुसैन को खिलाफत का दावा करने हेतु प्रोत्साहन देने लगे। हुसैन ने एक छोटी सेना लेथर यजीद की शक्तिशाली सेना का सामना किया, परन्तु 680 के प्रसिद्ध कर्बला के युद्ध में शहीद हो गया।

हुसैन की हत्या का भावनात्मक असर पड़ा। अंतत: अरब प्रायद्वीप में विद्रोह फैल गया, क्योंकि वह पैगम्बर मोहम्मद का नाती था।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



# चीन

19

## परिचय

इस अध्याय में प्राचीन चीन और आरम्भिक मध्यकालीन चीन के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। इस समय चीन में किस प्रकार का समाज था? धर्म और राजनैतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में भी इस अध्याय में चर्चा की गई है। चीनी साम्राज्य को चलाने में उसकी नौकरशाही की विशेष भूमिका रही। इस नौकरशाही की कार्य-शैली और अधिकार उस समय के अन्य किसी समाज में इस प्रकार की विशेषता देखने को नहीं मिलती है। इस समय के चीनी समाज की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था दुनिया की एक सबसे स्थिर और सुव्यवस्थित व्यवस्था थी और यह व्यवस्था हजारों वर्षों तक निरन्तर चलती रही। इस व्यवस्था में गृहयुद्ध, प्राकृतिक आपदा और विदेशी आक्रमण जैसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। परन्तु फिर भी यह व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रही और 20वीं शताब्दी में इस व्यवस्था का अन्त हुआ।

चीनी राज्य 221 ई.पू. में अस्तित्व में आया। इस समय सर्वोच्चता के लिए कई सामन्ती राज्यों में संघर्ष चल रहे थे। इन्हीं सामन्ती राज्यों में से एक था शासक किन, जिसने चीन को प्रशासनिक इकाइयों के रूप में विभाजित किया और नौकरशाही की स्थापना की तथा खुद को सम्राट् घोषित किया। चीन में शाही राज्य परम्परागत चीनी सभ्यता की देन है। यह परम्परा अपने में बिना किसी महत्त्वपूर्ण बदलाव में 1000 वर्षों तक चलती रही, जिसका कारण था मजबूत राजनैतिक इकाई का होना। चीन में सम्राट् की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती थी। इसे स्वर्गपुत्र कहा जाता था। यह शासन सत्ता का सर्वोच्च होता था। चीन के बाहर की प्रशासनिक सीमाओं के अन्तर्गत भी जनता उसका सम्मान करती थी। वास्तविक रूप से देखा जाये तो सम्राट् अप्रत्यक्ष रूप से शासन करता था। नौकरशाही का शासन पर प्रत्यक्ष नियंत्रण होता था। चीन में नौकरशाही एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था थी, जिसकी नियुक्ति परीक्षा के आधार पर होती थी। लम्बे समय से चली आ रही इस शासन व्यवस्था ने अपने आपको चीनी परिवेश के अनुकूल ढाल लिया था और यह व्यवस्था वहाँ के समाज के अनुसार अपना कामकाज बखूबी करना जान गयी थी। इस नौकरशाही को कानूनों और नियमों के आधार पर काम करना होता था; जैसे–इनकी नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानांतरण और यहाँ तक कि चाल-चलन और व्यवहार भी पूरी तरह नियमों के अन्तर्गत परखे जाते थे। इस नौकरशाही में काम करने वाले व्यक्ति के लिए दण्ड भी सामान्य नागरिकों की तरह ही लागू होते थे। परन्तु यह अलग बात है कि चीन में इनको दण्डित करने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। फिर चाहे चीन का शासन किसी तानाशाह शासक के हाथों में हो या फिर सम्राट् के हाथों में।

ये नौकरशाह अपने मामलों के विशेषज्ञ होते थे और उन्हें मनुष्यों व अन्य राजनैतिक मामलों को हल करने में महारत हासिल होती थी, परन्तु इन्हें तकनीकी विशेषज्ञ नहीं कहा जा सकता, ये तो किसी विषय के विशेष होते थे। ये नौकरशाह प्रशासन के प्रमुख पदों पर नियुक्त किये जाते थे। इन अधिकारियों की स्थिति को समझने के लिए हम इनकी तुलना आज के भारत के लोक सेवा अधिकारियों से कर सकते हैं।

चीन में नौकरशाही को नियुक्त करने का तरीका भी सर्वोत्तम था, क्योंकि इनकी नियुक्ति कड़ी परीक्षाओं की एक श्रृंखला द्वारा की जाती थी। फिर इनके कन्फ्यूशियाई ज्ञान की परीक्षा ली जाती थी। इस परीक्षा को लेने का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें सभी लोग बैठ सकते थे। किसी भी व्यक्ति को बिना कोई भेदभाव बरते इस परीक्षा को देने का मौका दिया जाता था। यह परीक्षा हर तीसरे वर्ष आयोजित की जाती थी। इन परीक्षाओं की तैयारी करने के लिए विद्यार्थियों को कड़ा परिश्रम करना पड़ता था तथा उन्हें 20 वर्षों का समय लगता था। परन्तु इस परीक्षा को पास करने से वह पदाधिकारी तो बनता ही था, समाज में उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ जाती थी।

सम्राट् और नौकरशाह दोनों को एक-दूसरे की जरूरत बनी रहती थी। क्योंकि सम्राट् को प्रशासन चलाने के लिए नौकरशाहों की आवश्यकता होती थी, तो नौकरशाहों को अपनी स्थिति और परीक्षा पद्धति को वैध बनाने के लिए सम्राट् की आवश्यकता होती थी। परन्तु हमें चीन में नौकरशाहों और सम्राट् के बीच खींचातानी

www.neerajbooks.com

की स्थिति देखने को मिलती है। क्योंकि सम्राट् इन नौकरशाहों को अपने नियंत्रण में रखना चाहता था और इन्हें शक्तिशाली बनने से रोकता था। इसके लिए पदाधिकारियों के लिए कुछ नियम भी बनाये गये थे, जैसे–वह अपने जिले में नौकरी नहीं कर सकता था और एक पद पर तीन सालों से अधिक नहीं रह सकता था। इस प्रकार सम्राट् द्वारा कुछ अन्य तरीकों से भी इन लोगों पर नियंत्रण रखने की कोशिश की जाती थी।

चीनी सम्राट् के प्रमुख दायित्वों में राजनैतिक-सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना और प्राकृतिक आपदाओं से जनता की रक्षा करना आदि प्रमुख उत्तरदायित्व होते थे। सैनिक मामलों में सम्राट् महत्त्वपूर्ण होता था तथा सर्वोच्च होता था। वह सभी अधिकारियों की नियुक्ति करता था तथा उन पर नियत्रंण रखता था। चीनी सम्राट् केवल उन प्रान्तों का सम्राट् नहीं होता था, जो उसके प्रत्यक्ष नियंत्रण में होते थे बल्कि उसकी स्थिति उन लोग में समाहित होती थी जो उसके राज्य से दूर रहते थे और इस छवि को नजराने की व्यवस्था के द्वारा बल मिलता था। नजराने से हमारा मतलब है गैर-चीनी राज्य के दूत लगभग नियमित रूप से सम्राट् को उपहार देने और सम्राट् के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए आते थे। इसी कारण चीन में हमें उसके साम्राज्य विस्तार के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण स्थिति नजर आती थी, यह वह थी कि चीन और इसके बाहर की सीमा कभी यूरोप की तरह या आधुनिक युग की तरह नियन्त्रित नहीं की गई। यह व्यवस्था ज्यादातर समय चलती रही। सम्राट् प्रत्यक्ष रूप से लगभग 18 प्रांतों पर अपनी नौकरशाही के द्वारा शासन करता था। सीमांत प्रदेश अपने ढंग से सत्ता चलाते थे और इन प्रांतों के मामले में तब तक दखल नहीं दिया जाता था, जब तक कि वे चीनी सम्राट् की सत्ता को खुली चुनौती न दें।

11वीं शताब्दी में सम्राट् की स्थिति में थोड़े परिवर्तन आये। सम्राट् चाहता था कि पूरी सैनिक शक्ति उसके हाथों में केन्द्रित रहे और कोई भी क्षेत्रीय विद्रोह न पनपे।

चीन की राजनैतिक व्यवस्था को निरंकुश या तानाशाही भी कहा जा सकता है। परन्तु सम्राट् की निरंकुशता पर कुछ नियंत्रण भी थे; जैसे–चीन का कोई भी सम्राट् अपने पूर्वज सम्राट् से हटकर काम नहीं कर सकता था, क्योंकि इससे उसकी सामाजिक स्थिति को धक्का लगता। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि कोई भी सम्राट् निर्धारित कार्य-पद्धति से हटकर काम करता, तो वहाँ के उच्च अधिकारियों द्वारा उसकी आलोचना की जा सकती थी और सम्राट् से यह उम्मीद की जाती थी कि वह इस आलोचना का सम्मान करेंगे और कोई दंड नहीं देंगे। इस प्रकार के अधिकारियों के समूह को सेंसर के रूप में देखा जा सकता था। अन्य कारणों में जिससे चीनी सम्राट् की निरंकुशता पर अंकुश लगता था, वहाँ की ब्रह्मांडीय भूमिका थी। वह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच मध्यस्थ माना जाता था, इस कारण उस पर प्रकृति को नियंत्रित करने की भी जिम्मेदारी होती थी। बाढ़, भूकंप प्राकृतिक आपदाओं को अपशगुन माना जाता था और लोग यह अनुमान लगाते थे कि सम्राट् अपने कर्त्तव्यों का ठीक से निर्वहन नहीं कर रहा है। चारों ओर विद्रोह होने लगते थे और यह समझा जाता था कि वह स्वर्ग से प्राप्त शासन करने के अधिकार खो चुका है। इसीलिए सभी सम्राट् और राजघराने अपनी स्थिति की स्थिरता को भली-भाँति जानते थे और वे कोई भी निरंकुशता का काम करने से डरते थे।

चीनी समाज के विषय में जानने के लिए हमें कृषि समाज को जानना बहुत जरूरी है, क्योंकि चीन का समाज मुख्यत: किसानों का ही समाज था, खेत जोतने वाले खेतिहर किसान किसी तरह से कृषि दास नहीं कहे जा सकते, बल्कि जमीन उनकी अपनी होती थी और वे राजा को कर देते थे। परन्तु समय के साथ-साथ इनकी स्थिति में बदलाव आना शुरू हुआ, क्योंकि करों का बोझ बढ़ा, खेत बँटते गये और छोटे हो गये और किसान बड़े भूमिपतियों के यहाँ काश्तकार के रूप में कार्य करने को मजबूर हो गये। इस रूप में इनका शोषण बढ़ा। उनसे उपज का आधा हिस्सा और इससे अधिक भी ले लिया जाता था। केन्द्रीय नियंत्रण कमजोर होने के कारण पदाधिकारियों के शोषण को रोकने के लिए मुश्किलों का सामना करना पड़ा। किसान खेती छोड़कर चोरी-डकैती करने लगा। 11वीं से लेकर 13वीं शताब्दी के बीच चीन की कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों से आंतरिक और विदेशी व्यापार बढ़ा, जिससे वाणिज्य उपकरण का विकास हुआ, कागजी मुद्रा का प्रचलन हुआ, बड़े व्यापारिक घरानों का उदय हुआ। शहरों एवं नगरों में तेजी से वृद्धि हुई, साक्षरता का तेजी से विकास हुआ। एक शहरी संस्कृति विकसित हुई, जिससे बाद में एक ऐसा चीनी समाज विकसित हुआ, जो अपने पहले के समाज से उत्तम था।

यदि हम पीछे जाकर 10वीं शताब्दी के समाज को देखें, तो इस शताब्दी की आधी शताब्दी तक गृहयुद्ध चलने के बाद चीन का तांग वंश खत्म हो गया। सभी बड़े अभिजात्य वर्ग के परिवारों के सदस्यों की हत्या कर दी गई। भू-संपदाओं को भी नष्ट कर दिया गया। इसके बाद जो स्थिति उभरी, उसने साम्राज्य में सैन्य शक्ति अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया। इसके बाद ही सम्राट की सेवा में जाकर ही सत्ता में भागीदारी की जा सकती थी और इसके लिए जरूरी था कन्फ्यूशियाई साहित्य में पारंगत होना वरिष्ठों के प्रति निष्ठा और आज्ञा का पालन करना, शाही परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करना।

इसके बाद चीन में जो वर्ग उभरा, उसे भद्रजन कहा जाता है। इस वर्ग के पास भू-स्वामित्व, शिक्षा और सरकारी नौकरी होती थी। जिससे वे अपनी शाही सेवा में सफल होते थे, जिससे ये लोग भी प्रतिष्ठा पा जाते थे। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि शाही परीक्षाओं में किसी भी वर्ग को बैठने का अधिकार प्राप्त था, चाहे वह गरीब हो या किसी भी जाति का हो। और इन परीक्षाओं को पास करके वह भी प्रतिष्ठित जनों में अपनी गिनती करवा सकता था। इन भद्रजनों का चीनी समाज पर वर्चस्व कायम हो गया

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



और इससे राजनैतिक शक्ति को भी बल मिला। क्योंकि स्थानीय स्तर पर कानून और व्यवस्था बनाये रखने का काम औपचारिक रूप से ये भद्रजन ही किया करते थे। परन्तु ये किसी पद विशेष पर नहीं होते थे। इन भद्रजनों को स्थानीय शासन की अधिक जानकारी होती थी, जो समाहर्ता के पास नहीं होती थी, क्योंकि समाहर्ता हमेशा बाहर का व्यक्ति होता था और वह इस पद पर कुछ ही समय के लिए कार्य करता था।

चीनी समाज में व्यक्ति की अपेक्षा परिवार या कुल को चीनी समाज का आधार माना जाता था। क्योंकि चीन से जो लिखित साक्ष्य मिलते हैं, उनके आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चीनी समाज पितृसत्तात्मक था। चूँकि चीनी समाज कृषि समाज था, इसी कारण इतना तो आवश्यक रूप से कहा जा सकता है कि इन लोगों के घर काफी बड़े नहीं होते थे। परिवार संयुक्त होते थे अर्थात् एक ही छत के नीचे परिवार का मुखिया और उसके बेटे का परिवार भी खुशी-खुशी रहते थे। इस संयुक्त परिवार में धार्मिक प्रथाएँ भी अपना महत्त्व रखती थीं। कन्फ्यूशियसवाद में चीनी परिवारों की बहुत गहरी आस्था थी। इस धर्म में ईश्वर के अस्तित्व, मृत्यु के बाद जीवन है या नहीं आदि प्रश्नों पर विचार नहीं किया गया है। चीनी लोग अलौकिक और अदृश्य शक्तियों में भी विश्वास रखते थे।

चीन में कन्फ्यूशियसवाद छठी शताब्दी ई.पू. में जन्मे दार्शनिक कन्फ्यूशियस के उक्त उपदेशों के कारण जन्मा। इस उदय के पीछे तात्कालिक कारण भी थे। चारों ओर अशांति फैली हुई थी। सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाएँ टूट रही थीं। इस माहौल में कन्फ्यूशियस ने इस अवस्था से मुक्ति दिलाने और व्यवस्था तथा नैतिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करने पर जोर दिया। उसके दर्शन का केन्द्रबिंदु यह था कि बच्चों में नैतिक पुरुष का निर्माण करके इस उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है, क्योंकि यदि कामकाज सही व्यक्तियों के हाथ में होगा, तो समाज में शांति-सद्भावना पुनः लौट सकेगी।

कन्फ्यूशियस के जीवनकाल में ही उसके कई शिष्य बने और इसकी विचारधारा से चीनियों के सोचने का ढंग, आचरण और उनकी प्रमुख संस्थाओं में आमूल-चूल परिवर्तन किया। इसके उपदेशों द्वारा चीनी व्यापारियों को सकारात्मक और सक्रिय रूप मिला। शिक्षा और सार्वजनिक सेवा पर बल दिया गया। व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्व को बल मिला।

कन्फ्यूशियसवाद के अलावा चीनी समाज में ताओ व बौद्ध धर्म का अस्तित्व भी देखने को मिलता है। चीनी जिन असंख्य देवी-देवताओं और दिव्य आत्माओं की पूजा करते थे और उनकी आराधना के फलस्वरूप समृद्धि  की जो परंपरा थी, इन पर ताओ धर्म और बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रभाव देखने को मिलता है। ताओ धर्म और कन्फ्यूशियसवाद लगभग एक ही समय में चीनी समाज में उभरे। इनकी शुरुआत एक साधारण आध्यात्मिक दर्शन के रूप में हुई। ताओ धर्म के संस्थापक लाओ जी थे। कन्फ्यूशियसवाद और ताओ धर्म में अंतर था। ताओ धर्म का सामाजिक या राज्य या नैतिक मूल्य से कोई लेना-देना नहीं था बल्कि प्रकृति, सहजता, जीवन के प्रति आनंद इसका दृष्टिकोण था। आगे चलकर इसमें कई विशेषताएँ और जुड़ गयीं।

बौद्ध धर्म के संबंध में भारत और चीन का गहरा संबंध था। पहली शताब्दी ई. के आसपास भारत से बौद्ध धर्म चीन आया और धीरे-धीरे फैलता गया। इसे चीनी शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ। बौद्ध धर्म काफी ताकतवर हो गया। चीन में बौद्ध धर्म की महायान शाखा का ज्यादा प्रभाव रहा, जिसने संसार में व्याप्त दुख की प्रकृति का एक ठोस दार्शनिक उदाहरण प्रस्तुत किया।

चीनी धर्म की कुछ सामान्य विशेषताएँ थीं। चीनी धर्म विभिन्न दर्शनग्राही था, आमतौर पर राज्य विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णु था। चीनी देवी-देवताओं का नैतिक आयाम मजबूत नहीं था, क्योंकि चीनी लोगों का मानना था कि इन देवी-देवताओं में किसी समूह या व्यक्ति की मदद करने या नुकसान पहुँचाने की ताकत है।

इस प्रकार, उपर्युक्त चर्चा के आधार पर हम कह सकते हैं कि चीन विविधताओं से पूर्ण देश रहा है। यहाँ कृषि समाज परिवारों के सूत्रों में बंधा हुआ था। चीनी साम्राज्य का आधार वंश परंपरा पर आधारित था। सामाजिक ढांचा और राजनीतिक सत्ता एक-दूसरे से अन्तर्निहित थे। राज्य के संचालन में नौकरशाही की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इनकी नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानांतरण के नियम थे और इनके कार्य करने की शैली भी और अन्य तात्कालिक समाज से अलग थी समाज में शासकीय संभ्रांत वर्ग को भद्रजन के रूप में जाना जाता था। एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता चीनी समाज में यह देखने को मिलती है कि ताओ धर्म और बौद्ध धर्म एक साथ पनपते रहे। कन्फ्यूशियसवाद में भी चीनियों की आस्था बनी हुई थी।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. क्या सम्राट् को चीनी राज्य का निरंकुश अध्यक्ष माना जा सकता था?**

**उत्तर**–चीनी सम्राट् की राज्य में भूमिका बहुत अधिक होती थी, क्योंकि राज्य के प्रति उसका दायित्व अधिक होता था। उसकी प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के नियंत्रण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। सैनिक और असैनिक दोनों मामलों में वह सर्वोच्च होता था। वह सभी अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानान्तरण करता था और नौकरशाह सीधे सम्राट् के प्रति उत्तरदायी होते थे। वह सभी मामलों में सर्वोच्च होता था व कानून निर्माता होता था। सरकार से जुड़े हर मामले की छानबीन करने का उसे पूरा हक होता था। सम्राट् सभी मामलों में सुनवाई करता था अर्थात् वह सर्वोच्च अदालत होता था। यह बात हमें 11वीं शताब्दी में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है कि इस समय सम्राट् ने सभी सैन्य दायित्वों को अपने कब्जे में ले

www.neerajbooks.com

लिया और कहीं भी क्षेत्रीय विद्रोह को उभरने का मौका नहीं दिया गया। चीनी सम्राट् चीनी समाज का सांस्कृतिक मुखिया भी होता था। शिक्षा और कला के संरक्षण में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी।

उपर्युक्त कारणों के आधार पर ही चीनी सम्राट् को निरंकुश शासक या तानाशाह कहा जाता है, परन्त सम्राट् की इन निरंकुशताओं पर कुछ नियंत्रण भी थे, जैसे–

- चीनी राज्य में पूर्वज सम्राटों का बहुत सम्मान किया जाता था और उन्हीं के पदचिह्न पर चलने की कोशिश आने वाले सम्राट् भी करते थे। इस कारण से वे कोई ऐसा तानाशाही भरा निर्णय नहीं लेते थे, जो पूर्वजों ने न लिया हो।
- सम्राट् यदि निर्धारित कार्य से हटकर कोई कार्य करना चाहता था या करता था, तो नौकरशाही द्वारा सम्राट् की आलोचना की जाती थी, जो चीनी परम्परा थी। सम्राट् से यह उम्मीद की जाती थी कि वे इन आलोचनाओं का सम्मान करेंगे और इसके लिए अधिकारियों को दण्ड नहीं देंगे।

सम्राट् की निरंकुशता पर अंकुश लगाने के लिए ब्रह्मांडीय भूमिका भी महत्त्वपूर्ण थी। चीनी समाज में सम्राट् को स्वर्ग और पृथ्वी के बीच मध्यस्थ माना जाता था। राजा पर लोगों के बीच कानून-व्यवस्था बनाये रखने के अलावा प्रकृति को भी नियंत्रित करने की जिम्मेदारी होती थी। प्राकृतिक आपदाओं के आने से; जैसे–बाढ़, भूकम्प, भुखमरी आदि के द्वारा राजा के सम्बध में सही से कर्त्तव्य पालन न करने का अनुमान लोग लगा लेते थे। वे इन प्राकृतिक आपदाओं के आने से यह समझ जाते थे कि सब कुछ ठीक नहीं चल रहा है और सम्राट् अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं कर रहा। इन प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ लोगों के बीच असंतोष भी उभरने लगता था और चारों ओर विद्रोह भी होते थे। इससे लोगों में यह विश्वास उभरने लगता था कि राजा ने अपने शासन करने का अधिकार खो दिया है और उसे शासन करने का अब दैवी अधिकार नहीं रहा है, क्योंकि प्रकृति उससे नाराज है और इसीलिए प्राकृतिक आपदायें आ रही हैं और प्रजा को उसके खिलाफ विद्रोह करने का पूरा अधिकार है। इस प्रकार सम्राट् की स्थिति अस्थिर होती थी और उसे अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए जनता का समर्थन जरूरी होता था। इसीलिए वह सलाहकार और पदाधिकारी सम्राट् के किसी कार्य को सही ठहराने के लिए उसके कार्य को प्रभावित करने के लिए स्वर्ग से प्राप्त विशेषाधिकार के सिद्धांत का सहारा लिया करते थे।

**प्रश्न 2. चीन की नौकरशाही किस प्रकार अनुठी थी राज्य चलाने में इसने क्या भूमिका निभाई?**

**उत्तर**–चीन में नौकरशाही को एक व्यवस्थित और सुसंगठित रूप से बनाया गया था। लम्बे समय से चली आ रही इस नौकरशाही ने एक स्वरूप और काम करने का तरीका सीख लिया था। इस नौकरशाही के लिए पर्याप्त नियम बनाये गये थे, जिसमें इन नौकरशाहों को स्थानांतरण, पदोन्नति और नियुक्त करने के नियम पूरी तरह से बने हुये थे। एक व्यक्ति के रूप में नौकरशाह को सम्राट् यातना और मृत्युदण्ड तक दे सकता था। परन्तु ऐसे उदाहरण सम्राट् और तानाशाहों के समय में भी कम ही देखने को मिलते हैं। ये नौकरशाह अपने समय के क्षेत्र विशेषज्ञ होते थे। इन्हें मानव और उनके व्यवहारों के सम्बध में विशेषज्ञता हासिल होती थी। ये प्रमुख प्रशासनिक पदों पर कार्य करते थे। यदि इनकी स्थिति को समझने के लिए इनकी तुलना की जाये, तो यह आज के भारतीय लोक सेवा अधिकारियों के समान थी। चीन में ये अधिकारी केन्द्र में महासचिवालय और महापरिषद के अधिकारी हुआ करते थे।

चीन में इन पदाधिकारियों की नियुक्ति की प्रक्रिया भी भिन्न थी। इन पदाधिकारियों की नियुक्ति के सम्बध में हमें जो जानकारी मिलती है, वह बड़ी जटिल थी। नियुक्ति के लिए परीक्षा होती थी, जो बड़ी कठिन होती थी और इसके लिए अधिकारी नियुक्त होने के लिए 20 वर्ष तक परिश्रम करना पड़ता था। परीक्षा शृंखला के रूप में ली जाती थी और बाद में कन्फ्यूशियाई ज्ञान की भी परीक्षा ली जाती थी। इस परीक्षा में सभी लोग बैठ सकते थे। उनसे किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। बिल्कुल तटस्थ भाव से नियुक्ति की जाती थी। यह परीक्षा तीन वर्ष में एक बार ली जाती थी। इस परीक्षा में मेधावी और धनी पुरुष ही पास हो पाते थे। इसी कारण चीनी सरकार को मेरिटोक्रैसी कहा जाता जाता था, जिसमें केवल ज्ञानी और मेधावी लोगों की ही सरकार में भागीदारी होती थी। हालांकि परीक्षा के विषय कन्फ्यूशियाई ज्ञान और साहित्यिक शैली होते थे।

सम्राट् और पदाधिकारियों दोनों को एक-दूसरे की जरूरत होती थी, क्योंकि सम्राट् को अपना शासन चलाने के लिए इन पदाधिकारियों की आवश्यकता होती थी, तो अपनी परीक्षा और अपनी स्थिति को वैध बनाने के लिए पदाधिकारियों को सम्राट् की आवश्यकता होती थी। परन्तु ऐसा नहीं है कि सम्राट् और नौकरशाही के सम्बन्ध हमेशा मधुर रहते थे। इनमें खींचातानी भी होती रहती थी। सम्राट् अपने को शक्तिशाली बनाना चाहता था, जिससे कि वह पदाधिकारियों पर नियंत्रण रख सके और इन्हें जरूरत से ज्यादा शक्तिशाली होने से रोका जा सके। इसके लिए कई नियम बनाये गये थे, जैसे–

- कोई पदाधिकारी अपने जिले में नियुक्त नहीं हो सकता था।
- एक पद पर तीन वर्ष से अधिक नहीं रह सकता था।
- जासूसों या हिजड़ों की मदद से इन पदाधिकारियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखा जाता था।

ये सब इन पदाधिकारियों को शक्तिशाली होने से रोकने के लिए किया जाता था। कुल मिलाकर इतना तो कहा जा सकता है कि सम्राट् और नौकरशाह आपसी तालमेल के साथ काम करते थे

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

और यही चीनी राज्य के स्थायित्व का कारण था। नौकरशाही के कारण ही चीन में सैनिक शासन की अपेक्षा असैनिक शासन को बल मिला। नौकरशाही शासन में कुछ रूढ़िवादी तत्त्व भी देखने को मिलते हैं। जहाँ एक ओर इन्हें कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान बने रहने का प्रशिक्षण दिया जाता था, वहीं नवीनतम मानस प्रयोगों को प्रोत्साहित किया जाता था। पदाधिकारी किताबी ज्ञान और नियम के अनुसार कार्य करते थे। इससे सुचारु रूप से काम चलता था। परन्तु विकट स्थिति और प्राकृतिक आपदा के समय नौकरशाही लड़खड़ा जाती थी, जिसके गम्भीर परिणाम होते थे।

चीन में नौकरशाही ने एक स्थायी शासन और सैनिक शासन देने के प्रमुख भूमिका निभाई परीक्षा पद्धति और कार्य पद्धति को देखने से हम यह समझते हैं कि यह अनूठी थी और इससे शासन को चलाने में अहम् भूमिका निभायी।

**प्रश्न 3. क्या कन्फ्यूशियसवाद को धर्म माना जा सकता है।**

**उत्तर**–कन्फ्यूशियस एक दार्शनिक थे, जिनका जन्म छठी शताब्दी ई.पू. में हुआ था और इन्हीं के उपदेशों ने कन्फ्यूशियसवाद को जन्म दिया। कन्फ्यूशियसवाद जिन परिस्थितियों में उभरा, उस समय की स्थिति यह थी कि चारों ओर अशांति फैली हुयी थी और राजनीतिक संस्थाएँ टूट रही थीं। कन्फ्यूशियस ने मुख्यत: इस अवस्था से निजात दिलाने की ओर और नैतिक मूल्यों को पुन: लाने पर बल दिया। उनके दर्शन का मुख्य आधार यह था कि सच्चा नैतिक पुरुष देश का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार उनके कहने का अर्थ यह था कि व्यक्ति में जन्मजात सटीक और नैतिक गुण नहीं होते, परन्तु इन्हें बाद में सदाचार, शिक्षा, अनुष्ठानों का पालन करके प्राप्त किया जा सकता है। इस वाद ने सद्भाव, पुत्रोचित सम्मान, निष्ठा, जिम्मेदारी आदि जैसे गुणों के सर्वोच्च महत्त्व को बल दिया। कन्फ्यूशियस का मानना था कि यदि सही कार्य सही व्यक्ति के हाथों में सौंपा जाये, तो यह समाज में शांति, सौहार्द और सद्भाव पुन: स्थापित कर सकते हैं।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

कन्फ्यूसियस के जीवनकाल में ही उसके कई शिष्य बन गये थे। परन्तु इसका प्रसार उस समय अधिक हुआ, जब कई शताब्दियों के बाद इस वंश ने इस कन्फ्यूशियसवाद को सरकारी मत के रूप में मान्यता दे दी। इस वाद के आने से चीनियों के नैतिक आचरण में आमूल-चूल परिवर्तन आने शुरू हुए। जैसे इसने चीनी नागरिकों को सकारात्मक और सक्रीय बनाया। इनका कहना था कि मनुष्य को समस्याओं से भागना नहीं चाहिए, वरन् उनके समाधान के लिए अपने अन्दर गुणों को विकसित करना चाहिए। इस संसार में घट रही घटनाओं से अनुभव लेना चाहिए और उन्हें सुधारने की कोशिश करनी चाहिए। इसने शिक्षा और सार्वजनिक होने पर बल दिया। कन्फ्यूशिसवाद ने व्यवस्था और व्यापार को समाजिक और सार्वजनिक उत्तरदायित्व पर बल दिया, जिससे शाही राज्य की मजबूती को बल मिला। सैनिक शक्ति या नियम कानूनों की अपेक्षा सद्भाव या नैतिक सत्ता पर आधारित शासन की पद्धति पर बल दिया।

कन्फ्यूशियसवाद से चीनी दर्शन और सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था या नैतिक मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है।

**प्रश्न 4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–**
**(1) चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार (2) चीन में परिवार।**

**उत्तर–(1) चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार**–बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में भारत और चीन का गहरा सम्बन्ध था। पहली शताब्दी ई. के आसपास भारत से बौद्ध धर्म चीन आया और धीरे-धीरे फैलता गया। इसे चीनी शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ। बौद्ध धर्म काफी ताकतवर हो गया था। चीन में बौद्ध धर्म की महायान शाखा का ज्यादा प्रभाव रहा। 5वीं शताब्दी से लेकर 8वीं शताब्दी तक यह उत्कर्ष पर था। जब-जब तानाशाही व्यवस्था को संकटों ने घेरा और शाही व्यवस्था जो कि कन्फ्यूशियसवाद के दार्शनिक आधार को मानती थी, उसमें थोड़ा लचीलापन आया, उस समय बौद्ध धर्म को चीन में फैलने का मौका मिला। महायान शाखा इस बात पर बल देती है कि संसार में दुख की प्रकृति है और इस शाखा ने इसका दार्शनिक आधार भी प्रस्तुत किया। करुणा को इस अवधारणा ने मुख्य आधार बनाया और बताया कि त्याग और बलिदान से ही मनुष्य को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार, बौद्ध धर्म ने चीन में उन दार्शनिक और आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा किया, जिनको कन्फ्यूशियसवाद नहीं कर पाया था। हान वंश के पतन के समय जब राजनीतिक अव्यवस्था फैली और जनता में भी भटकाव की स्थिति आयी, उस समय बौद्ध धर्म राज्य के हाथों में पहुँच गया। इसने सामाजिक अखंडता को एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक स्वरूप बताया, परन्तु यह अधिक दिन शाही दायरे में नहीं रह सका जब शाही व्यवस्था का पुनरुत्थान हुआ, तो बौद्ध धर्म का प्रभाव घटने लगा। 10वीं शताब्दी में जब कन्फ्यूशियसवाद का पुनरुत्थान हुआ, तो इसका प्रभाव घट गया, परन्तु यह पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ।

इसने चीनी समाज में कई आंदोलनों की विचारधारा को बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीन में बौद्ध धर्म एक महत्त्वपूर्ण धर्म के रूप में उभरा और चीनी समाज में इसे लोकप्रियता भी मिली। राज्य से संरक्षण मिला, जिससे यह चीन में फला-फूला।

**(2) चीन में परिवार**–चीन में समाज की आधारभूत इकाई परिवार या कुल था। चीन से प्राप्त लिखित दस्तावेजों के आधार पर यह बात नजर आती है कि चीनी समाज पितृसत्तात्मक था। ऊँच-नीच का पूरा ध्यान रखा जाता था। पूर्वजों की पूजा चीनी समाज की एक महत्त्वपूर्ण परंपरा थी। चीनी समाज मुख्यत: कृषकों का समाज था। जिनके परिवारों का आकार बहुत बड़ा नहीं होता था। परन्तु चीन में संयुक्त परिवार की अवधारणा थी कि एक ही छत के नीचे कई पीढ़ी के लोग बैठते थे। ऊँचे वर्ग के लोग भी इसी तरह रहते थे। चीन के बड़े कुलों के सदस्य एक साथ मिलकर अनुष्ठान किया करते थे। कब्रगाह या पूर्वज कक्ष जैसी

www.neerajbooks.com



साझी सम्पत्ति की देखभाल करते थे। परिवार अपने उत्तरदायित्व को भली-भाँति निभाते थे; जैसे–जरूरतमंद सदस्यों की मदद करना, युवा पुरुषों की पढ़ाई की व्यवस्था करना, आपसी झगड़ों को निपटाना, नैतिक मूल्यों को सिखाना, युवा सदस्यों को शिक्षित करना और अनुशासन बनाए रखना। कुलों में वर्गभेद और देखने को नहीं मिलता है। इसमें अमीर और गरीब दोनों सदस्य शामिल होते थे, परन्तु कुल मिलाकर कुलों की मौजूदगी के बावजूद वर्ग-विभाजन कम नहीं हुआ। सरकार भी बड़े और सुगठित परिवारों को प्राथमिकता देती थी, क्योंकि सरकार आज्ञाकारिता, निष्ठा और सम्मान अपने राज्य के लोगों में देखना चाहती थी और यही गुण परिवार के लोग अपने बड़ों से सीखते थे। परिवार अपने सदस्यों को स्थापित व्यवस्था पर चलने के लिए जोर देते थे। इस प्रकार, वे राज्य की कानून-व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करते थे। परन्तु राज्य बड़े और शक्तिशाली कुलों की गतिविधियों पर नजर रखते थे, ताकि वे विद्रोह न करें।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. चीन में धर्म की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–चीन में धर्म विभिन्न दर्शनग्राही था अर्थात् चीनी धर्म में कई दर्शनों का मिश्रण देखने को मिलता है। धार्मिक परंपराएँ एक-दूसरे से अलग-अलग नहीं थीं अर्थात् एक व्यक्ति एक साथ कन्फ्यूशियसवाद, बौद्ध धर्म, ताओ धर्म का अनुयायी हो सकता था परन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह इन तीनों को ही मानता हो। इनमें से किसी एक को भी वह मान सकता था। इससे विभिन्न परंपराएँ तो समाज में बनी रहीं और दूसरी परम्पराओं के आने से पहली परम्परा लुप्त नहीं हुई बल्कि वह सामान्य बनी रही। चीनी समाज में एक विशेषता यह भी देखने को मिलती है कि लोगों के बीच धर्म को लेकर कभी संघर्ष नहीं हुआ। राज्य सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होता था। वह इन धर्मों के मामलों में दखल नहीं देता था, जब तक कि राज्य को यह विश्वास न हो जाए कि कोई धर्म विशेष शक्ति का प्रतिद्वन्द्वी केन्द्र बन रहा है या फिर सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर रहा है। धार्मिक नियम-कानूनों का उल्लंघन करने के लिए किसी को अपवाद स्वरूप भी सजा दी जाती थी। इसीलिए जब बौद्ध धर्म पर तीन-चार बड़े हमले हुए और मठों को बंद कर दिया गया, उनकी भूमि जब्त कर ली गई थी, तो अधिकांश भिक्षुक और भिक्षुणियाँ साधारण जीवन व्यतीत करने लगे, परन्तु कोई नया धर्म ग्रहण नहीं किया। चीन में देवी-देवताओं का नैतिक आधार भी इतना मजबूत नहीं था। चीनी देवी-देवताओं की पूजा इसलिए की जाती थी, क्योंकि चीनी लोगों का मानना था कि इन देवी-देवताओं की किसी समूह या व्यक्ति को मदद देने या नुकसान पहुँचाने में मुख्य भूमिका होती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीनी धर्म की विशेषता यह है कि इसने सभी धर्मों के दार्शनिक पक्ष से कुछ न कुछ ग्रहण जरूर किया और चीनी समाज को नैतिकता अपनाने और संगठित होने के लिए बल दिया।

**प्रश्न 2. चीनी समाज किसानों का समाज था। व्याख्या कीजिए।**

**उत्तर**–चीनी सभ्यता का उदय उत्तरी चीन के मैदान में बसे कृषि समुदायों के आधार पर हुआ। चीन के खेतिहर किसानों को कृषि दास नहीं कहा जा सकता, जैसा कि उस समय के अन्य साम्राज्यों में था। जमीन इनकी अपनी होती थी और उस पर ये खेती करते थे और सीधे राजा को कर देते थे। लेकिन इनकी स्थिति समय के साथ-साथ बदलती चली गयी। धीरे-धीरे इन लोगों पर करों का बोझ बढ़ने लगा। सरकारी लोगों का शोषण भी बढ़ता गया। खेत बँटते गये और छोटे होते चले गए। इस प्रकार, किसान खेती करने में असमर्थ हुये और इन लोगों के हाथों से जमीन निकलने लगी तथा ये लोग अब बड़े भूमिपतियों के यहाँ खेती करने को मजबूर हुए। भूमिपति इनका शोषण करते थे और उपज में इनकी मेहनत के अनुसार इन लोगों का हिस्सा नहीं दया जाता था। केन्द्र में शासन कमजोर था, इसीलिए इन लोगों को हिस्सा नहीं दिया जाता था। केन्द्र में शासन कमजोर था, इसीलिए इन भूमिपतियों और सरकारी लोगों पर अंकुश आसानी से नहीं लगाया जा सकता था और शासन नहरों, बाँधों की व्यवस्था भी समुचित ढंग से नहीं कर पाता था, जिसके कारण खेती ठीक प्रकार से नहीं हो पाती थी और किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी कृषकों को नुकसान उठाना पड़ता था और उनकी आर्थिक हालत कमजोर होती चली गयी। किसान चोरी-डकैती करने को मजबूर हुये।

चीन के गुप्त समाज ने ऐसे किसानों की मदद की। ये गुप्त समाज उस आन्दोलन में भी मुख्य भूमिका निभाते थे, जो चीन में कमजोर-शोषित लोगों द्वारा चलाए जाते थे और यह गुप्त समाज इतना संगठित हो गया था कि यह सिंहासन का तख्ता तक पलट सकता था। 11वीं से लेकर 13वीं शताब्दी के बीच चीन में कृषि अर्थव्यवस्था में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। आन्तरिक और विदेशी व्यापार तेजी से बढ़ा, जिसके कारण कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ। कागजी मुद्रा का प्रसार बढ़ा। बड़े व्यापारिक घरानों का उदय भी इसी समय हुआ। इन व्यापारियों के पास बहुत धन होता था, परन्तु ये लोग समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त नहीं कर सके। क्योंकि ये व्यापारी लोग अपने लिए जमीन खरीदने और अपने परिवार के सदस्यों के लिए सरकारी पद प्राप्त करने में अधिक धन खर्च करते थे। परन्तु व्यापार बढ़ा, तो नगरों/शहरों का विकास हुआ और एक शहरी संस्कृति विकसित हुयी। इसने चीन

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



में एक ऐसे समाज के निर्माण में सहायता दी, जो अपने पहले के समाज से भिन्न था।

चीन में कृषि का महत्त्व था और इन्हीं कृषक लोगों ने चीनी सभ्यता के विकास में मुख्य भूमिका निभाई। चीन का समाज किसानों का ही समाज था। क्योंकि लोग व्यापार तो करते थे, परन्तु वे समाज में एक ऊँचा स्थान नहीं प्राप्त कर सके। वे भी अपना अधिकतर पैसा जमीन खरीदने में ही खर्च करते थे।

**प्रश्न 3. चीनी समाज में भद्रजन कौन थे और उनकी सामाजिक भूमिका क्या रही?**

**उत्तर**–चीन में गृहयुद्ध के बाद एक शासकीय संभ्रांत वर्ग उभरा, जिसे भद्रजन कहा जाता है। इस वर्ग के पास सरकारी नौकरी, शिक्षा और भूमि होती थी। ये अपनी भूमि द्वारा अपनी जरूरतों को पूरा करते थे, जिसमें इनकी प्राथमिकता अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने की होती थी। पढ़-लिखकर ये बच्चे सरकारी नौकरियों में जाते थे तथा इन लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ती थी। धीरे-धीरे इन भद्रजनों ने व्यापार करना शुरू किया और इस प्रकार इनके पास आमदनी के दो स्रोत हो गए। व्यापार और जमीन–इससे इन परिवारों के पास अधिक सम्पत्ति जमा हो गयी। शिक्षा प्राप्त करने और पैसा होने कारण इन भद्रजनों ने अपने आपको आम जनता की सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा से अलग कर लिया। इन्होंने विशेषाधिकार भी प्राप्त किए, जो दूसरे लोगों को प्राप्त नहीं थे। भद्रजनों के भीतर भी एक और समाज उभरा, जिनको राज्य में कर वसूली में छूट प्राप्त थी और इस वर्ग को अधिक धन कमाने का अधिकार प्राप्त था। इससे भद्रजनों को अपनी जड़ें मजबूत करने का मौका मिला और उसमें स्थायित्व की प्रवृत्ति आयी।

यह भद्रजनों का यह समाज कई प्रकार से शाही राजनैतिक व्यवस्था के लिए उपयोगी साबित हुआ। स्थानीय स्तर पर कानून व्यवस्था को कायम रखने का काम भद्रजन ही करते थे, परन्तु ये किसी पद विशेष पर कार्य नहीं करते थे। ये भद्रजन अन्य काम भी करते थे; जैसे–बांध, सेतु, सड़क अनाज भंडार का निर्माण, उनका रखरखाव व अन्य सार्वजनिक कार्य, जैसे–विद्यालय, अनाथालय और आरामगृहों आदि का रखरखाव और उनकी संचालन व्यवस्था का काम भी इन्हीं भद्रजनों द्वारा किया जाता था। ये लोग स्थानीय स्तर के लोगों के झगड़ों को निपटाते थे। जनता और जिला स्तर के प्रशासन के बीच मध्यस्थ कड़ी का काम करते थे और यहां तक कि ये लोग सेना और अनियमित सैनिक बलों का भी इंतजाम करते थे। इस प्रकार इनके कार्य राज्य के लिए महत्त्वपूर्ण होते थे। इससे राज्य के शासन को स्थायित्व मिलता था। भद्रजनों को स्थानीय पहलुओं की जानकारी होती थी, जो कि जिला समाहर्ता के पास नहीं होती थी। क्योंकि समाहर्ता हमेशा बाहर का व्यक्ति होता था और वह अपने पद पर स्थायी न होकर कम समय के लिए नियुक्त किया जाता था। इस प्रकार, ये भद्रजन स्थानीय समस्याओं से समाहर्ता को अवगत कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। ये भद्रजन शाही सरकार का स्थायित्व इसलिए भी चाहते थे, क्योंकि वह परीक्षा आयोजित करती थी और इसमें शामिल तथा उत्तीर्ण होकर भद्रजनों के पारिवारिक सदस्य इनकी प्रविष्ठा में चार चाँद लगाते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीन के समाज में इन भद्रजनों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। ये सरकार को भी स्थायित्व प्रदान करते थे और उसके लिए उपयोगी साबित होते थे। हालांकि किसी भी पुरुष भद्र समाज का सदस्य बनने का अधिकार था। और एक गरीब-से-गरीब आदमी भी इस समाज में शामिल हो सकता था। क्योंकि शाही नौकरियों में परीक्षा उत्तीर्ण करके वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा सकता था और भद्र समाज में शामिल हो सकता था। सामान्य तौर पर कहा जाता है कि पूर्ण आधुनिक चीनी समाज में सामाजिक गतिशीलता थी, परन्तु इसमें यथार्थ की जगह आदर्श ही अधिक था।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# 20 सामंतवाद पर विभिन्न दृष्टिकोण

## परिचय

आरम्भिक इतिहासकार सामंतवादी व्यवस्था के कानूनी पक्ष पर ज्यादा बल देते हैं। वे मुख्य रूप से फीफ के अधिकारों, अधीनता (दासत्व), राजकीय सेवाओं, अधिपतियों के न्याय से जोड़कर देखते हैं।

विद्वानों के अनुसार यह व्यवस्था भूमि पर आधारित थी, जिसमें विकेन्द्रीकरण, निजी लोगों के हाथों में सार्वजनिक शक्ति का जाना और एक ऐसी सैन्य व्यवस्था जिसमें सैन्य शक्ति निजी हाथों में दी गयी थी। आधुनिक इतिहासकारों ने सामंतवादी व्यवस्था को मध्ययुगीन यूरोप में आपसी संरक्षण, निष्ठा और प्रशासनिक, सैन्य या धार्मिक करार के रूप में देखा है।

मध्ययुगीन यूरोपीय राजनीतिक संगठन की लगभग सारी विशेषतायें पुरातन परम्पराओं से बिल्कुल अलग थीं। राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण के रूप में जर्मन कबीलों के बर्बर रीति-रिवाजों और तरीकों से मेल खाता है, जिन्होंने 5वीं शताब्दी में रोमन सम्राज्य के विघटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

परवर्ती रोमन साम्राज्य की संरचना के विविध प्रकार के भू-अधिकार और भू-सम्पदा, सामाजिक वर्ग और राजनीतिक ढाँचे का मूल ढूँढ़ते हुए *डोप्स्क* ने बताया है कि मध्ययुगीन यूरोप में, आक्रमणों के कारण आई अस्थायी अशांति के समय के अलावा, रोम की सड़कों पर व्यापार पहले की तरह होता रहा। व्यापार में विलासिता की वस्तुओं के साथ-साथ जीवन-निर्वाह की वस्तुएँ भी थीं। डोप्स्क के अनुसार शहर पहले की तरह कायम थे और प्रत्येक शहर बाजार था। फिर स्वाभाविक अर्थव्यवस्था का ह्रास गलत सिद्ध होता है। जर्मनी ने रोमन संस्कृति को नष्ट नहीं किया, बल्कि उसे बचाया। फ्रांसीसी इतिहासकार *फर्डिनेंड लॉट* (Ferdinand Lot) के अनुसार पुरानी सभ्यता और संस्कृति के विनाश से यूरोपीय सभ्यता पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। संक्रमण की गति काफी धीमी और सुस्त थी।

बेल्जियम के इतिहासकार *हेनरी पिरेन* ने यूरोप में इस्लामी प्रसार के सामंतवाद पर प्रभाव के सम्बन्ध में विचारधारा प्रस्तुत की। अपनी विचारधारा को उन्होंने दो अलग-अलग हिस्सों में बाँट दिया है। मेरोविन्जियन युग में क्लासिकी परम्परा की निरन्तरता दिखायी देती है। दूसरे में कैरोलिंजी युग के समाज में मौलिक परिवर्तन दिखाया गया है। 5वीं से 8वीं शताब्दी तक सीरियाई व्यापारी पूर्व से मसाले और कीमती कपड़े, गाजा की शराब, उत्तरी अफ्रीका के तेल और मिस्र से पैपिरस मिस्र और एशिया माइनर से लेकर पश्चिम के बंदरगाह तक लाते थे। इस व्यापार पर लगाया गया वाणिज्यिक कर शाही राजस्व का प्रमुख स्रोत था और भूमध्यसागरीय क्षेत्र में आर्थिक एकता बनी हुई थी। समुद्र ही संचार का साधन था। इस तरह मेरोविन्जी युग में प्राचीन सभ्यता की भूमध्यसागरीय प्रकृति नष्ट नहीं हुई।

पिरेन के अनुसार प्राचीन परम्परा से अलगाव का सबसे प्रमुख कारण उमय्यद खलीफा के तहत अरब मुसलमानों का तीव्र तथा अनपेक्षित आक्रमण था, जिसने 650 वर्षों तक भूमध्यसागर के गॉल समुद्र तट को बंद कर दिया और मर्सिलेस के वाणिज्य की धारा सूख गयी और सीरिया तथा मिस्र के साथ फ्रांसीसी सम्बन्ध बना रहा। हालाँकि बाइजेंटाइन शाही नौसेना ने एजियन सागर, एड्रिएटिक और इटली के दक्षिण तटों से अरब आक्रमणकारियों को भगाने में सफलता प्राप्त की। परन्तु ताइरहेनियन सागर पूर्णतः सरसीनियाइयों के आधिपत्य में आ गया। उन्होंने अपना क्षेत्र अफ्रीका और स्पेन के जरिये दक्षिण तक बढ़ा लिया था और बोलेरिक उपद्वीपों, कोरसिका, सार्डिनिया और सिसली के नौसैनिक अड्डों पर कब्जा जमा लिया। 8वीं शताब्दी में सारी आर्थिक गतिविधियाँ बगदाद की ओर तथा अफ्रीका तथा स्पेन जैसे देशों की ओर मुड़ गयीं, जो पहले भूमध्यसागरीय समुदाय के सदस्य थे। पिरेन के अनुसार भूमध्यसागर क्षेत्र अब पूर्व और पश्चिम की सभ्यताओं का माध्यम न होकर दो विपरीत और अलग-अलग सभ्यताओं के बीच दीवार बनकर रह गया। पिरेन के अनुसार सामंतवाद की स्थापना का यह पहला चरण था।

8वीं शताब्दी में शहरी जीवन और पेशेवर व्यापारी लुप्त हो गये। ऋण और करार-पत्र समाप्त हो गए। सोने के सिक्के के स्थान पर चाँदी के सिक्के का प्रचलन शुरू हो गया। अर्थव्यवस्था में बाजार का अस्तित्व समाप्त हो गया। उसके स्थान पर साप्ताहिक बाजार लगने लगे, जहाँ लोग अपनी जरूरत की चीजों की खरीद-बिक्री करते थे। वस्तुओं के आदान-प्रदान में वस्तु-विनिमय प्रणाली का प्रचलन शुरू हुआ। सारी आबादी खेती पर निर्भर हो गयी। लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने लगे। हालाँकि अभी भी सीमित मात्रा में व्यापार-वाणिज्य का कार्य होता था, परन्तु व्यापार अनियमित और अनिश्चित था। ये व्यापारी कीमती वस्तुओं का व्यापार करते थे। इनके ग्राहक भी सीमित थे। अब चल सम्पत्ति का आर्थिक जीवन में कोई महत्त्व नहीं रह गया था। भूमि का स्वामित्व ही सामाजिक अस्तित्व के स्वरूप का निर्धारण करता था। पूरा समाज कृषि सभ्यता की ओर लौट चुका था। राजनीतिक सत्ता कृषि क्षेत्र पर कब्जा जमाने वाले भूपतियों के हाथों में आ गयी थी। उसमें क्षेत्रीय अधिकार का उपयोग भूमिपति तथा उनके प्रतिनिधि स्वतंत्र रूप से करते थे। भूमि के स्वामी अपने विशेषाधिकार और सत्ता को बपौती मान बैठे थे। इस प्रकार, *पिरेन* ने कहा है कि ''इस्लाम के अभाव में फ्रैंकिश साम्राज्य संभवत: कभी अस्तित्व में नहीं आता और मोहम्मद के बिना शार्लमान्य की बात सोची भी नहीं जा सकती।''

पिरेन की अवधारणा को आलोचना तथा प्रशंसा दोनों मिली है। इतिहासकारों ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि यूरोप में सामंतवाद के विकास में इस्लाम ने निर्णायक भूमिका निभायी, जबकि अरब नीति में भूमध्यसागरीय वाणिज्यिक गतिविधियों में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं कहा गया है। पिरेन ने रोमन संसार की सांस्कृतिक सत्ता और मेरोविन्जी गॉल के आर्थिक जीवन में पूर्वी वाणिज्य की भूमिका पर जरूरत से ज्यादा बल दिया। बाद के अनुसन्धान ने कैरोलिंजी युग में व्यापार-वाणिज्य के प्रसार पर बल दिया गया। पिरेन ने अपने शोध में निश्चित रूप में आर्थिक प्रमाणों पर अध्ययन की परम्परा की शुरुआत की। इसके अलावा ऐतिहासिक प्रश्नों तथा कई अन्य दिशाओं में अनुसन्धान किये जाने के लिये नये द्वार खोले।

20वीं शताब्दी के आरम्भिक पूर्वार्द्ध में सामंतवाद सम्बन्धी दो अवधारणाएँ सामने आयीं। वैधानिक विचारधारा से निकली मुख्य धारा उदारवादी विचार के अनुसार सामंतवादी संस्थाओं की ऐसी व्यवस्था थी, जिसने एक तरफ सेवा और आज्ञापालन के दायित्व के विनियम को निर्मित और नियमित किया। दूसरी अवधारणा के अनुसार जब एक आजाद व्यक्ति दूसरे आजाद, परन्तु अधिक शक्तिशाली व्यक्ति के सामने समर्पण करता था, तो उसकी रक्षा और देखरेख की भी व्यवस्था की जाती थी। अधिपति रखरखाव के दायित्व को पूरा करने के लिए आमतौर पर अपने अधीनस्थ (वसाल) को भू-सम्पदा का एक भाग देता था, जिसे फीफ कहा जाता था।

दूसरी ओर मार्क्सवादी विचारधारा और खासकर सोवियत संघ के इतिहास ने सामंतवाद शब्द का दायरा बढ़ाते हुए सम्बद्ध समाज के आर्थिक ढाँचे और अधिक सामान्य परीक्षण के लिए इसका उपयोग किया। *कार्ल मार्क्स* के अनुसार पहले ही उत्पादन के विभिन्न तरीकों में कृत्रिम उतार-चढ़ाव के आधार पर सामाजिक, राजनीतिक और विचारधारात्मक प्रक्रियाओं का सामान्य चरित्र निर्धारित होता है। सैन्य संभ्रांत सदस्यों के बीच यह असमान वैयक्तिक सम्बन्ध उत्पादन के व्यापक सामाजिक सम्बन्धों का ही प्रतिफल है, जिसे ऐसे उत्पादन के तरीकों के तहत काम करना पड़ता है, जिसमें वस्तु-विनिमय नहीं होता।

इतिहासकार *मार्क ब्लॉक* (Marc Block) ने इस परिघटना की एक नई व्याख्या की और इसे 'व्यक्ति और व्यक्ति के बीच का गठबन्धन' माना। ब्लॉक के अनुसार सामंतवाद एक ऐसा सामाजिक परिवेश है, जिसमें भू-सम्पदा के अधिकारों के विभाजन द्वारा राजनीतिक सत्ता का विस्तार किया गया और व्यक्तिगत सुरक्षा और अधीनता का सम्बन्ध विकसित हुआ। सामंतवाद के विकास के साथ-साथ कुनबाई सम्बन्धों के बन्धन धीरे-धीरे मजबूत हुए हैं।

सैन्य अधिकारी उच्च वर्ग के सदस्य थे, जिनके मातहत उनके वसाल काम किया करते थे और वे उन पर पूरी तरह आश्रित थे। इस युग में राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण और 'मानसिक परिवेश' के कारण आज्ञापालन और सुरक्षा के आदान-प्रदान को विशेष महत्त्व दिया गया। कृषि अर्थव्यवस्था में मुद्रा का सीमित उपयोग होता था अत: वेतन के रूप में भूमि दी जाने लगी। दूसरी ओर इन्हें संरक्षण देने के लिये उनके पास अपार अधिकार होते थे और उन्हें राजस्व की प्राप्ति होती थी। ब्लॉक मैनर को अपने आपमें एक सामंती संस्था नहीं मानते हैं, हालाँकि वे इस बात से सहमत हैं कि इनमें एक बड़ी आबादी ने सामंतवाद के बसने में सकारात्मक भूमिका निभायी। ब्लॉक ने सामंती समाज, कुलीनों के संगठन की जटिलता या स्वरूप, कृषक निर्भरता की हद और धन भुगतानों के महत्त्व में काफी अन्तर पाया है। ब्लॉक के लिये सामंतवाद मध्ययुगीन समाज व्यवस्था की सम्पूर्ण परिभाषा न होकर स्थानीय परिघटना के तुलनात्मक अध्ययन की एक विधि है।

11वीं शताब्दी के मध्य यूरोपीय समाज में गहन और व्यापक परिवर्तन आये। उसने दो सामंती कालों का सिद्धांत प्रतिपादित किया। दूसरे काल में जीवन के लगभग हर क्षेत्र में गुणात्मक प्रगति आयी। दूसरे काल में अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। जनसंख्या वृद्धि हुई, शहरों का विकास हुआ, मुद्रा स्थिति में सुधार हुआ और सामाजिक मूल्यों में भी तदनुरूप संशोधन हुआ। लातिन ईसाई धर्म की स्थापना, भाषायी सम्मिश्रण की प्रक्रिया, रोमन कानून में फिर

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



से बढ़ती रुचि और अंततः मताधिकार की लगातार माँग ने अलग-अलग अनुपातों में इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में मदद की।

ब्लॉक ने सामाजिक प्रक्रिया की अंदरूनी गतिशीलता की बात कही है। ढीले कालानुक्रम, राज्य की अटल अवधारणा और वंशानुगत पुरानी अवधारणा के कारण भी ब्लॉक की आलोचना की जाती है।

*जॉर्ज दूबी* (George Duby) ने सामंती क्रांति की अवधारणा स्थापित की। उन्होंने 11वीं शताब्दी के आरम्भ को सामंती क्रांति कहा। शाही सत्ता स्थापित हुई। केसेलैन ने छोटे भूमिपतियों को अधीनस्थ बना लिया और सभी किसानों पर एक नये प्रकार का शासन–सिरेयूरि बैनाल लागू किया, जो टेन्योर की (लगानदारी के अधिकार) अपेक्षा काराधान पर आधारित था।

दूबी के अनुसार पहले अपने मालिक का काम करना केवल दासों का दायित्व था। अब इस सामंती अवधि, सामंती शक्तियों का प्रभाव बढ़ता चला गया। अब कार्य करने का दायित्व सारे गाँव वालों को वहन करना था। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक दायित्वों में परिवर्तन आया और दासों और सामान्य लोगों के बीच अन्तर खत्म हो गया। अब ग्रामवासियों को एकसमान और भारी कर चुकाना पड़ता था। इस युग में अस्त्र-शस्त्र लेकर चलना सामाजिक स्तर का प्रतीक बन गया। पुरोहित वर्ग बड़े जोर-शोर से कर मुक्त करने की माँग कर रहे थे। घुड़सवारों या नाइटों (Knights) को भी अभिजात वर्ग में निचला दर्जा दिया जाने लगा। अभिजातीय परिवार को पितृसत्तात्मक बनाया और मानसिक परिवेश में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। दूबी का मानना है कि पतन की यह प्रक्रिया बहुत धीमी और लगातार गति से आगे बढ़ती रही, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज के आन्तरिक विकास को प्रतिबिम्बित करती है।

दूबी ने बाद के अपने शोधों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की पर्याप्त प्रगति के स्रोतों और रास्तों की तलाश करते हुए बताया है कि इस दौरान सामंतवादी क्रांति ने आराम और श्रम का वैषम्य बढ़ा दिया। उन्होंने इसे युग की कल्पना या मानसिक दृष्टिकोण कहा। इस सामंतवादी समाज के मौजूदा विचारात्मक प्रारूपों के निर्माण और कार्य के साथ-साथ परिवर्तन की बात करते हुए इसी ने इस सामाजिक परिवर्तन का खाका भी खींचा।

*थियोडोर एवरगेट्स* के अनुसार दूबी ने स्वतंत्र केसेलैन और राजतंत्रीय राज्य के बीच जिस पूर्ण द्विभाजन की बात कही है, वह ब्लॉक की अवधारणा का अनुकरण है। *कौन्स्तांस बुर्शाद* और अन्य नारीवादी इतिहासकारों ने सामंतवादी क्रांति के साथ महिलाओं के दृष्टिकोण को सही स्थान न देने के लिये दूबी की आलोचना की है।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. यूरोप में सामन्तवाद के उदय सम्बन्धी पिरेन की अभिधारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।**

**उत्तर**–1922 और 1935 के बीच विख्यात बेल्जियन इतिहासकार हेनरी पिरेन ने यूरोप में इस्लामी प्रसार के सामन्तवाद पर प्रभाव सम्बन्धी अपनी अवधारणा सामने रखी। इस अवधारणा के दो अलग-अलग हिस्से थे-एक में मेरोविन्जियन युग में क्लासिकी परम्परा की निरन्तरता दिखायी गयी है। दूसरे कैरोलिंजी (Carolingian) युग के समाज में मौलिक परिवर्तन दिखाया गया है। पाँचवीं से आठवीं शताब्दी तक सीरियाई व्यापारी पूरब से मसाले और कीमती कपड़े, गाजा की शराब, उत्तरी अफ्रीका से तेल और मिस्र से पैपिरस मिस्र और एशिया माइनर से लेकर पश्चिम के बंदरगाहों तक लाते थे। इस वाणिज्य पर लगाया गया अप्रत्यक्ष कर तोनल्यू (Tonlieu) शाही राजस्व का प्रमुख स्रोत था। इसके साथ ही एक समय भूमध्यसागरीय इलाकों की आर्थिक एकता का प्रतीक और साधन रहा। रोमन सोना सोलिड्यूस (Solidus) भी प्रचलन में रहा। इटली, अफ्रीका, स्पेन और गॉल में स्थापित बर्बर अधिकृत क्षेत्रों के लिये बाइजेंटाइन साम्राज्य पहुँचने के लिये जमीन से घिरा समुद्र ही संचार का प्रमुख साधन रहा और इस प्रकार मेराविन्जी युग में प्राचीन सभ्यता की भूमध्यसागरीय प्रकृति नष्ट नहीं हुई।

पिरेन के अनुसार प्राचीन परम्परा से अलगाव सबसे प्रमुख कारण उमय्यद खलीफा के तहत अरब मुसलमानों का तीव्र तथा अनपेक्षित आक्रमण था, जिसने 650 वर्षों तक भूमध्यसागर के गॉल समुद्र तट को बन्द कर दिया और मर्सिलेस से वाणिज्य की धारा सूख गयी और सीरिया तथा मिस्र के साथ फ्रांसीसी सम्बन्ध बना रहा। हालांकि बाइजेंटाइन शांति नौसेना ने एजियन सागर, एड्रिएटिक और इटली के दक्षिणी तटों से अरब आक्रमणकारियों को भगाने में सफलता प्राप्त की। परन्तु ताइरहेनियन सागर पूर्णतः सरसीनियाइयों के आधिपत्य के जरिये दक्षिण तक बढ़ा लिया था। और बोलेरिक उपद्वीपों, कोरसिका, सार्डिनिया और सिसिली के नौसैनिक अड्डों पर कब्जा जमा लिया। इस घटना के बाद पूरब और पश्चिम पूरी तरह अलग हो गये और भूमध्यसागर की एकता समाप्त हो गयी। 8वीं शताब्दी के आरम्भ से इस क्षेत्र की सारी आर्थिक गतिविधियां बगदाद की ओर और अफ्रीका तथा स्पेन जैसे देशों की ओर मुड़ गयीं। भूमध्यसागर अब पूर्व और पश्चिम की सभ्यताओं का माध्यम न होकर दो विपरीत और अलग-अलग सभ्यताओं के बीच दीवार बनकर रह गया। पिरेन के अनुसार सामंतवाद की स्थापना का यह पहला चरण था।

चारों ओर से कट जाने के बाद पश्चिम अपने संसाधनों पर जीने के लिए मजबूर हो गया। आठवीं शताब्दी के दौरान शहरी जीवन और पेशेवर व्यापारी लुप्त हो गये। ऋण और करार का उपयोग समाप्त हो गया। लेखन का महत्त्व समाप्त हो गया। सोने के सिक्के के स्थान पर चाँदी के सिक्के का प्रयोग होने लगा। अर्थव्यवस्था में बाजार का अस्तित्व समाप्त हो गया। उसके स्थान साप्ताहिक बाजार लगने लगे, जहाँ लोग अपनी जरूरत की चीजों की खरीद-बिक्री करते थे। वस्तुओं का आदान-प्रदान में वस्तु-विनिमय प्रणाली का प्रचलन शुरू हुआ। सारी आबादी खेती पर निर्भर हो

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



गयी। लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने लगे। हालांकि अभी भी सीमित मात्रा में व्यापार-वाणिज्य का कार्य होता था। परन्तु व्यापार अनियमित और अनिश्चित था। वे व्यापारी कीमती वस्तुओं का व्यापार करते थे। इनके ग्राहक भी सीमित थे। अब चल सम्पत्ति का आर्थिक जीवन में कोई महत्त्व नहीं रह गया था। भूमि का स्वामित्व ही सामाजिक अस्तित्व के स्वरूप का निर्धारण करता था। पूरा समाज कृषि सभ्यता की ओर लौट चुका था और राजनीतिक हलके में भी इसका प्रभाव पड़ा, जहाँ राजनीतिक सत्ता कृषि क्षेत्र में कब्जा जमाने वाले भूमिपतियों के हाथ में गयी। उसमें क्षेत्रीय अधिकार का उपयोग भूमिपति अथवा उनके प्रतिनिधि लगभग स्वतंत्र रूप से किया करते थे। व्यापक स्तर पर एक बार फिर भूमध्यसागरीय एकता के टूटने से पोप की सत्ता को आघात लगा और यह पश्चिमी यूरोप तक सीमित हो गयी। स्पेन तथा अफ्रीका को कब्जे में कर लिये जाने के बाद फ्रैंक्स के राजा को क्रिश्चियन ऑक्सिडेंट (पश्चिमी यूरोप) का मालिक बना दिया, जो एकमात्र लौकिक सत्ता थी, जिसकी ओर पोप मुखातिब हो सकता था। इस प्रकार पिरेन ने एक प्रसिद्ध सूक्ति लिखी कि ''इस्लाम के अभाव में फ्रैंकिस साम्राज्य संभवत: कभी अस्तित्व में नहीं आता और मोहम्मद के बिना शार्लमान्य की बात सोची भी नहीं जा सकती।''

पिरेन की इस अवधारणा को आलोचना तथा प्रशंसा दोनों मिली है। इतिहासकारों ने इस बात को मानने से इंकार कर दिया कि यूरोप में सामन्तवाद के विकास में इस्लाम ने निर्णायक भूमिका निभायी, जबकि अरब नीति में भूमध्यसागरीय वाणिज्यिक गतिविधियों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

पिरेन ने रोमन संसार की सांकृतिक एकता और मेरोविन्जी गॉल के आर्थिक जीवन में पूर्वी वाणिज्य की भूमिका पर जरूरत से ज्यादा बल दिया। बाद के अनुसंधान ने कैरोलिंजी युग में व्यापार और वाणिज्य के प्रसार पर बल दिया है।

एम. साब्ब (M. Sabbe) ने बहुमूल्य वस्तुओं के व्यापार पर किये अपने अध्ययन में यह दिखलाया है कि भूमध्यसागरीय व्यापार को उतनी बाधा नहीं पहुँचायी गयी थी। वह पूरी तरह बन्द नहीं हुआ, जैसा कि पिरेन का मानना था। 8वीं और 10वीं शताब्दियों के बीच भूमध्यसागर के बन्दरगाहों में काफी कुछ व्यापार हो रहा था। इन सबके बावजूद पिरेन के इस शोध में निश्चित रूप से आर्थिक प्रमाणों पर गौर करने की परम्परा की शुरुआत की। इसके अलावा उसने ऐतिहासिक प्रश्नों के नये द्वार खोले और कई दिशाओं में अनुसंधान को प्रवृत्त किया।

**प्रश्न 2. मार्क ब्लॉक के अनुसार सामन्तवाद में निर्भरता के गठबंधन का क्या तात्पर्य था?**

**उत्तर**–वैधानिक विचारधारा और आर्थिक तत्त्वों से प्रभावित सामंतवाद की अवधारणा से अलग हटते हुए फ्रांसीसी इतिहासकार मार्क ब्लॉक (Marc Bloch) ने इसकी नई व्याख्या की और इसे 'व्यक्ति और व्यक्ति के बीच गठबंधन माना'। सामंतवाद एक ऐसा सामाजिक परिवेश है जिसमें भू-सम्पदा के अधिकारों के विपणन के द्वारा राजनीतिक सत्ता का विस्तार किया गया और व्यक्तिगत सुरक्षा और अधीनता का सम्बन्ध विकसित हुआ। सामंतवाद में विकास के साथ-साथ कुनबाई सम्बन्धों के बन्धन धीरे-धीरे मजबूत हुए हैं। रक्त सम्बन्ध पर समूह बनाए गये, जो एक व्यक्ति की सहायता और संरक्षण का आधार बने (रक्त सम्बन्धों के आधार पर होने वाली लड़ाइयों को इसे बड़ी आसानी और प्रभावी तरीके से लामबन्द किया जा सकता था)। सुरक्षा देने में राज्य की भूमिका और शक्ति का होना ही इसका कारण था। यह राज्य के स्वामित्व अधिकारों के लिये बाधा भी बना। इस आर्थिक गठबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि नए घरों को मिलाकर एक 'भाईचारा' कायम हुआ, जो न केवल एक छत के नीचे रहा करते थे और एक ही खेत जोतने पर बल्कि सामूहिक रूप से अपने अधिपति की सेवा करने और बकाए के भुगतान करने की भी इनकी सामूहिक जिम्मेदारी थी।

सैन्य अधिकारी उच्च वर्ग के सदस्य थे, जिनके मातहत उनके वसाल काम किया करते थे और वे उन पर पूरी तरह आश्रित थे। इस युग में राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण और 'मानसिक परिवेश' के कारण आज्ञापालन और सुरक्षा के आदान-प्रदान को विशेष महत्त्व दिया गया। कृषि अर्थव्यवस्था में मुद्रा का सीमित उपयोग होता था अत: वेतन के रूप में भूमि दी जाने लगी। दूसरी ओर इन्हें संरक्षण देने के लिए उनके पास अपार अधिकार होते थे और उन्हें राजस्व की प्राप्ति होती थी। ब्लॉक मैनर को अपने आप में एक सामन्ती संस्था नहीं मानते हैं, हालांकि वे इस बात से सहमत हैं कि इनमें एक बड़ी आबादी ने सामन्तवाद में सकारात्मक भूमिका निभायी। ब्लॉक ने सामंती समाजकुलीनों के संगठन की जटिलता का स्वरूप, कृषक निर्भरता की हद और धन भुगतानों के महत्त्व में काफी अन्तर पाया है। ब्लॉक के लिये सामंतवाद मध्ययुगीन समाज व्यवस्था की सम्पूर्ण परिभाषा न होकर स्थानीय परिघटना के तुलनात्मक अध्ययन की एक विधि है।

11वीं शताब्दी के मध्य में यूरोपीय समाज में गहन और व्यापक परिवर्तन आये। उसने दो सामंती कालों का सिद्धांत प्रतिपादित किया। हालांकि दूसरे सामन्ती काल ने पहले काल से पूरी तरह नाता नहीं तोड़ा, पर जीवन के लगभग हर क्षेत्र से गुणात्मक प्रगति दिखायी देती है। दूसरे काल में अर्थव्यवस्था में विकास हुआ, जनसंख्या में वृद्धि हुई, शहरों का विकास हुआ, मुद्रा स्थिति में सुधार हुआ और इस प्रकार सामाजिक मूल्यों में भी तब मुख्य संशोधन हुआ। क्लासिकी सामन्तवाद या रूपान्तरण के साथ-साथ सगोत्रीय समूहों का आकार छोटा होता जा रहा था और इस प्रक्रिया में रिश्तेदारी गठबन्धन ढीला पड़ता जा रहा था। प्रगति और विकास

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



के नये क्षेत्रों में व्यक्ति के उदय का संकेत पहले ही मिल चुका था। लातिन (Latin) ईसाई धर्म की स्थापना, भाषायी सम्मिश्रण की प्रक्रिया, रोमन कानून में फिर से होती रुचि, अंततः मताधिकार की लगातार माँग ने अलग-अलग अनुपात में इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में मदद की।

ब्लॉक ने सामाजिक प्रक्रिया की अंदरूनी गतिशीलता की बात कही है। ढीले कालानुक्रम, राज्य की अटल अवधारणा और वंशानुगत की पुरानी अवधारणा के कारण भी ब्लॉक की आलोचना की जाती है।

**प्रश्न 3. सामन्ती क्रान्ति से आप क्या समझते हैं?**

**उत्तर**–जॉर्ज दूबी (Georges Duby) ने सामन्ती क्रान्ति की अवधारणा स्थापित की। उन्होंने 14वीं शताब्दी के आरम्भ को 'सामन्ती क्रांति' कहा। इसी ने मध्ययुगीन समाज को एक नया नजरिया दिया और सामन्ती संस्थाओं को केवल आर्थिक नजरिए से न देखकर उसे विचारधारात्मक आयाम दिया। उन्होंने 12वीं शताब्दी के बीच फ्रांस की माकोने बस्ती (Maconnais Settlement) के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन का अध्ययन किया। 1953 में प्रकाशित अपनी पुस्तक में एक नया ऐतिहासिक अनुसन्धान सामने रखा और उन्होंने 11वीं शताब्दी के आरम्भ को सामन्ती क्रान्ति कहा। 10वीं शताब्दी के अंत और 11वीं शताब्दी के आरम्भ में किस प्रकार शाही सत्ता समाप्त हुयी और केसेलैन (Castellans दुर्गपतियों) ने छोटे भूपतियों को अपना अधीनस्थ बना लिया और सभी किसानों पर नए प्रकार का शासन-सिनेयूरि बैनाल (Seigneurie banale) लागू किया, जो टेन्योर (लगानदारी के अधिकार) की अपेक्षा कराधान पर आधारित था।

दूबी के अनुसार पहले अपने मालिक का काम करना दासों का दायित्व था। अब इस अवधि से सामन्ती शक्तियों का प्रभाव बढ़ता चला गया और अब यह बोझ सारे गाँव वालों को ढोना था। इसके फलस्वरूप सामाजिक दायित्वों को सारे गाँव वालों को पूरा करना था। इसके फलस्वरूप सामाजिक दायित्वों में उलट-फेर हुआ। एक ओर आजाद आदमी और कृषक दासों (सर्फ) के बीच अन्तर समाप्त होने लगा, क्योंकि अब सभी ग्रामवासियों को एक समान और भारी कर चुकाना पड़ता था। दूसरी ओर साधारण आदमी और पुरोहित वर्ग के बीच का अन्तर बढ़ता चला गया, क्योंकि पुरोहित पूर्ण ताकत के साथ अपने लिये सामन्ती करों से छूट की माँग कर रहे थे। इस युग में अस्त्र-शस्त्र लेकर चलना भी सामाजिक स्तर पर एक प्रतीक चिह्न बन गया था। अभिजात तंत्र में घुड़सवारों या नाइटों (Knights) को भी अभिजात वर्ग में निचला दर्जा दिया जाने लगा। अभिजाततंत्रीय परिवार को पितृसत्तात्मक बनाया और मानसिक परिवेश में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। दूबी का मानना है कि पतन की यह प्रक्रिया बहुत धीमी और लगातार गति से आगे बढ़ती रही, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज के आन्तरिक विकास को प्रतिबिम्बित करती है।

दूबी ने बाद में अपने शोधों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की पर्याप्त प्रगति के स्रोतों और रास्तों की तलाश करते हुए बताया है कि इस दौरान सामन्तवादी क्रांति ने आराम और श्रम का वैषम्य बढ़ा दिया। उन्होंने इसे युग की कल्पना या मानसिक दृष्टिकोण कहा। इस सामन्तवादी समाज में मौजूदा विचारधारा, प्रारूपों के निर्माण और कृषि के साथ-साथ परिवर्तन की बात करते हुए दूबी ने इस सामाजिक परिवर्तन का खाका भी खींचा।

थियोडो एवरगेट्स ने दूबी के स्वतंत्र केसेलैन और राजतंत्रीय राज्य के बीच जिस पूर्ण विभाजन की बात कही है, वह ब्लॉक की अवधारणा का अनुकरण है। *कौन्स्तांस बुर्शाद* और अन्य नारीवादी इतिहासकारों ने सामंतवादी क्रांति के साथ महिलाओं के दृष्टिकोण को सही स्थान न देने के लिये दूबी की आलोचना की है। गैर धार्मिक दस्तावेजों, खासतौर पर राज्य और रजवाड़ों में प्रशासनिक बही-खातों पर विचार न करने के कारण भी नए इतिहासकार इस अवधारणा से असहमत दिखायी पड़ते हैं।

**प्रश्न 4. समाज के निर्माण में प्रौद्योगिकी की क्या भूमिका थी? लिन ह्वाइट जूनियर का हवाला देते हुए टिप्पणी कीजिए।**

**उत्तर**–लिन ह्वाइट जूनियर ने 1962 में सामन्ती समाजों के निर्माण में प्रौद्योगिकी की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है। कृषि के क्षेत्र में तकनीकी विकास से किसान और शिल्पियों के जीवन में सुधार हुआ। जिस समय व्यापार-वाणिज्य की स्थिति अच्छी नहीं थी संस्कृति के उच्च आदर्शों का पतन हो चुका था। उस समय किसान और शिल्पी बेहतर स्थिति में थे। ह्वाइट के अनुसार मध्य युग की प्रौद्योगिकी संस्कृति मुख्य रूप से ईसाई धर्मशास्त्रियों की परम्परा से जुड़ी हुई थी, जो श्रम की प्रतिष्ठा और आध्यात्मिक मूल्य का सम्मान करती थी और इसने श्रम बचाने वाली मशीनों के निर्माण को बढ़ावा दिया।

मध्ययुग में कृषि के क्षेत्र में कुछ प्रौद्योगिकीय विकास हुआ। खेत जोतने के लिए लोहे के हल, घोड़े को जोतने के लिये जुआ (harness), हल चलाने वाली चक्की और सान चढ़ाने वाली मशीन, पनचक्की, मिट्टी को समतल बनाने का तरीका और अधिक फसल उगाने के लिये तीन खेतों का बारी-बारी से उपयोग शामिल था। उत्तर के पहिएदार हल के विकास और प्रसार से न केवल कड़ी और जल रहित मिट्टी को जोतना सम्भव हुआ, बल्कि इससे श्रम की भी बचत हुयी। सीधी जुताई प्रथा शुरू हुयी। जब नई उन्नति में पहिएदार हल का उपयोग शुरू हुआ, उसमें नये तरह की फाल, क्षैतिज फाल और साँचे की तख्ती लगी होती थी। यह हल इतना भारी था कि कई बैल एक साथ मिलकर खींचते थे और इस प्रकार जोत की सामूहिक जुताई होती थी। इस प्रकार

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मध्ययुगीन सहकारी कृषि समुदाय का उदय हुआ, जो 'मैनोर' का आधार बना। 8वीं शताब्दी के अंत में तीन खेतों को बारी-बारी से जोतने की प्रथा की शुरुआत की गई। तीन खेत व्यवस्था के अन्तर्गत बैल का स्थान घोड़े ने ले लिया। 9वीं शताब्दी के अन्त और 10वीं शताब्दी के आरम्भ में घोड़े के नाल, आगे-पीछे जोतने की विधि और घोड़ों के जुए के आविष्कार से एक से ज्यादा जानवरों से काम लेना सम्भव हुआ। ह्वाइट का यह विचार था कि बैल और दो खेती व्यवस्था के स्थान पर घोड़ा और तीन खेती व्यवस्था की शुरुआत होने से परवर्ती मध्ययुग के उत्तरी क्षेत्र के किसानों की श्रम उत्पादकता में बढ़ोतरी हुई।

रकाब और घोड़े के नाल के आविष्कार ने सामन्ती समाज के सैन्य संगठन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। रकाब के आविष्कार से घोड़े पर बेहतर ढंग से बैठने में सहूलियत होती थी तथा घुड़सवार को थकान नहीं होती थी, जिससे घुड़सवार रकाब पर बैठकर अच्छे ढंग से तलवारबाजी कर सकते थे। घुड़सवार सेना काफी खर्चीली होती थी और सामंत ही घुड़सवारों पर होने वाले खर्चे को वहन करने में सक्षम था। पश्चिम यूरोप में युद्ध का एक नया तरीका आया। जमीन के स्वामी एक नये योद्धा वर्ग का उदय हुआ।

ह्वाइट ने वृहद् और आर्थिक प्रक्रियाओं से हटकर केवल प्रौद्योगिक प्रगति की ही चर्चा की है। *हिल्टन* और *सायर* के अनुसार ह्वाइट की अवधारणा सिर्फ प्रौद्योगिक विकास पर आधारित है। *इयान हीथ* (Ian Heath), *फिलिप बार्कर* (Philip Barker) और *डेविड निकोल* (David Nicolle) ने अपने अनुसन्धानों में यह सिद्ध किया है कि सबसे पहले बाइजेंटाइन साम्राज्य और अरब की खिलाफत में इसका उपयोग हुआ।

प्रौद्योगिकीय विकास ने सामन्तवादी व्यवस्था को मजबूती और स्थिरता प्रदान की। प्रौद्योगिक विकास ने कृषि उत्पादन में वृद्धि की, जिससे अधिपतियों की आमदनी में वृद्धि हुई। प्रौद्योगिकी के विकास ने समाज के निर्माण में बहुत ज्यादा भूमिका नहीं निभायी।

**प्रश्न 5. उत्पादन के एक तरीके के रूप में सामन्तवाद की अवधारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।**

**उत्तर**–उत्पादन के तरीके के रूप में सामन्तवाद की अवधारणा पूरी तरह विकसित और पल्लवित करने का श्रेय अंग्रेज इतिहासकार पेरी एडरन्सन को जाता है। उन्होंने अपने ये विचार 1978 में सामने रखे। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अलग-अलग उपयोग के फलस्वरूप कई ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य सामने आए हैं।

पेरी एडरन्सन के विश्लेषण में सामन्तवादी व्यवस्था के खंडन को अर्थव्यवस्था के पिछड़ने या पतन या विखण्डीकरण का युग माना है। उनका मानना है कि क्लासिकी उत्पादन का तरीका, जिसमें दासों का इस्तेमाल किया जाता था, की अपेक्षा सामन्तवाद अधिक विकसित व्याख्या थी, जिससे कृषि उत्पादकता और कृषि अधिशेष में बढ़ोतरी हुई। सामन्तवाद के भीतर कई संरचनात्मक अन्तर्विरोध थे। इसके बावजूद कुल मिलाकर इस युग में कृषि अर्थव्यवस्था ने प्रगति की। सामन्ती अधिपतियों का वर्ग किसानों या प्राथमिक उत्पादकों से कई तरीकों से अधिशेष वसूलता था, कभी मजदूरी के रूप में, तो कभी लगान के रूप में, तो कभी नजराने के रूप में। राजनीतिक कानूनी सम्बन्धों के जरिए भी जबरन वसूली का यह रूप प्रकट हुआ। कृषि दास प्रथा इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक शोषण को न्यायिक और राजनीतिक मंजूरी दी गयी। किसान अपने अधिपति के कब्जे में रहता था, परन्तु जमीन पर अधिपति का पूर्ण स्वामित्व नहीं था। जमीन पर उसका अधिकार एक ओर उसके ऊपर के अधिपति से जुड़ा था, जो उसका मालिक था और वह अन्य सेवाओं के साथ-साथ सैनिक सेवाएँ भी उपलब्ध कराता था। दूसरी ओर उसके अधीन वसाल होते थे, जो उनकी सेवा किया करते थे। निर्भरता की यह शृंखला सैनिक सेवा से जुड़ी हुई थी। राजा सैद्धान्तिक रूप से अपने क्षेत्र की जमीन का स्वामी था। इस व्यवस्था का परिणाम यह था कि राजनीतिक संप्रभुता कभी किसी एक केन्द्र में बंधी नहीं रही। प्रत्येक स्तर पर राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्ध एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

एन्डरसन ने इस पूरी परिघटना को आदिम-सामुदायिक और दासों की सहायता से उत्पादन कराए जाने के तरीकों के समवर्ती विलयन से निकले तत्त्वों के संश्लेषण के रूप में देखा। मध्ययुगीन यूरोप का ठोस सामाजिक निर्माण का तरीका शुद्ध रूप से मौजूद नहीं था। मध्ययुगीन यूरोप के ठोस सामाजिक निर्माण का स्वरूप हमेशा मिला-जुला रहा, जिसमें उत्पादन के कई तरीके मौजूद रहे और सामन्तवाद में घुलमिल गये।

सामन्ती अर्थव्यवस्था के गतिशील अधिपति और किसान दोनों ही वस्तुनिष्ठ रूप से टकराव की प्रक्रिया में संलग्न थे, जिससे अंतत: दोनों ही सिरों पर उत्पादकता को तेज करने में मदद मिली। एक ओर अधिपति अपने मैनोर में ज्यादा से ज्यादा वसूली करना चाहते थे, दूसरी ओर उत्पादन की प्रक्रिया के प्रबन्धन और देखरेख में अधिपतियों की प्रत्यक्ष भूमिका कम होने से अधिशेष अपने आप बढ़ गया। किसानों के प्रतिरोध, तकनीकी औजारों में सुधार और सामन्ती शुल्कों के रिवाजी स्वरूप के मिले-जुले प्रभाव के फलस्वरूप इसकी बढ़ी हुई उत्पादकता का लाभ सीधे उत्पादनकर्त्ता को मिले, इसकी गुंजाइश पैदा की गयी। सम्प्रभुता को नष्ट करने की सामन्तवाद की तीव्र प्रवृत्ति और कुलीनतंत्र की वर्ग एकता का अंतर्विरोध उस हद तक उपयोगी साबित हुआ, जिस हद तक यह परवर्ती मध्य युग में शहरों की राजनीतिक स्वायत्तता के लिये अनुकूल अवसर प्रदान करने में मददगार साबित हुआ।

13वीं शताब्दी के मध्य में मध्ययुगीन कृषि को अपने इसी प्रगति का खामियाजा भुगतना पड़ा। जब उत्पादन के मौजूदा

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सम्बन्धों के तहत उत्पादन की शक्तियाँ जड़ और अधोगामी हो गयीं। मध्ययुगीन परिवर्तनशीलता से असम्बद्ध घटनाओं के सन्दर्भ में सामन्ती व्यवस्था के पतन को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया था। कृषि और खनन क्षेत्र में एक तकनीकी बाधा खड़ी हो चुकी थी। जहाँ से आगे शोषण को ले जाना अव्यावहारिक और हानिकारक भी होता। 'ग्रामीण सुधार को चलने वाली मशीन' जिसने तीन शताब्दियों तक की अर्थव्यवस्था को चलाया था। अंतत: ऐसे कगार पर पहुँच गयी, जहाँ उत्पादन की शक्तियाँ समाप्त हो गयीं।

जनसंख्या बढ़ने से उपज में कमी आयी, परिणामस्वरूप सामंती अधिपतियों की आमदनी में भी कमी आयी। आमदनी में कमी होने से अधिपति आपस में लड़ने लगे और लूटमार करने लगे, चारों ओर महामारी फैलने लगी, मजदूरों की कमी पड़ गयी। इस बदहाल स्थिति और संकट से उबरने के लिये मालिक अपने मातहतों पर जुल्म करने लगे। इसके परिणामस्वरूप भयंकर वर्ग-संघर्ष छिड़ गया। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामंती उत्पादन का तरीका अलग-अलग था। अब शहरी अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था के वर्ग-संघर्ष के परिणाम को प्रभावित कर सकती थी। मध्ययुगीन सामन्ती राजनीतिक व्यवस्था में संप्रभुता कई खांचों में विभाजित थी। शहर कृषि दासों की शरणस्थली बन गए। शहर में उत्पादन कार्य में बतौर मजदूर काम करने लगे। धीरे-धीरे इन मजदूरों को नकद वेतन दिया जाने लगा। इस प्रक्रिया से कृषि दासों का ढाँचा टूटने लगा। समाज की उत्पादक क्षमता का विस्तार को ढोने की क्षमता न रह पाने के कारण उत्पादन का यह तरीका डगमगाने लगा। उत्पादन के सामन्ती तरीके में आये संकट का गाँव के उत्पादनकर्त्ताओं की स्थिति खराब करने के बजाय इनके उद्धार और सुधार के बाद ही इसका अन्त हुआ।

एन्डरसन की इस अवधारणा की काफी आलोचना हुई है। सामन्ती समाज का जन्म और मृत्यु हुई, इस पक्ष पर जरूरत से ज्यादा बल देने के फलस्वरूप सामन्ती समाजों के कई व्यापक और विविधता से युक्त पक्ष छूट गये।

■■

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# सामंतवाद : रूप और संरचनाएँ

# 21

## परिचय

अधिपति और एक सामान्य व्यक्ति के बीच एक वैधानिक प्रक्रिया थी, जिसके अन्तर्गत एक इकरारनामा बनाया जाता था, जिसमें दोनों ही पक्षों पर कई बन्धन और दायित्व होते थे। व्यक्ति अपने स्वामी की सेवा और आदर का वचन देता है और अधिपति उस सम्मान और सेवा के बदले व्यक्ति को आजादी प्रदान करता है, उसकी देखरेख और सुरक्षा का वचन देता है। अपने अधिपति के प्रति समर्पण भाव रखना इस इकरारनामे की प्राथमिक और पहली शर्त थी। मेरोविन्जी युग में सभी वर्ग के सदस्यों को यह काम करना पड़ता था, पर कैरोलिंजी राजाओं के शासनकाल में यह अभिजात वर्ग के सदस्यों तक सीमित हो गया। इमिक्सिटो मेनम और वोलो या स्वीकृति का इजहार जिसमें वसाल अपने को अधिपति के अधीन घोषित करता था और अधिपति इस आत्मसमर्पण को बोलकर स्वीकार करता था।

8वीं शताब्दी के मध्य में इन मातहतों की हैसियत ऊपर उठने लगी। कैरोलिन्जियों ने स्वामिभक्ति की शपथ के एक समारोह में इस बात पर बल दिया कि मातहत अभिजात वर्ग के सदस्य होंगे और स्वतंत्र आदमी के तौर पर सेवा करेंगे। करार होने के पश्चात् आशीर्वाद और स्वामिभक्ति की शपथ दोनों पक्षों के जीवित रहने तक कायम रहती थी। इसे एकतरफा समाप्त नहीं किया जा सकता था।

खेती के लिये जमीन देने के समय आमतौर पर आशीर्वाद और स्वामिभक्ति की शपथ पूरी कर ली जाती थी। प्राप्त भू-सम्पत्ति पर कार्य करने और अपने मालिक के प्रति निष्ठावान रहने का दावा करता था। अधिपति अपने मातहतों के लिये प्रतीक चिह्न भेंट किया करता था। भूखण्ड पर अधिकार हो जाने के पश्चात् इसके बाद से किसी भी उल्लंघन के खिलाफ कानूनी तौर पर इसकी रक्षा की जाती थी। भू-स्वामित्व छोड़ने का अनुष्ठान भी किया जाता था, जिसमें मातहत औपचारिक तौर पर अपने को फीफ से अलग कर लेता था और अपने अधिपति और मालिक को वह वस्तुयें लौटा देता था, जो अभिषेक के दौरान प्राप्त की थीं।

मातहत कोई ऐसा काम नहीं करता था, जिससे अधिपति के सम्मान को किसी प्रकार का नुकसान पहुँचे। मातहत का दायित्व अपने मालिक की सेवा करना था, जिसे आमतौर पर सहायता और सलाह के रूप में वर्गीकृत किया गया था। सहायता में सैनिक सेवा भी शामिल थी। लॉर्ड अपने लिये वसालों की व्यवस्था करता था, ताकि उसके सैनिक उसको मिल सकें और यह संस्था का एक विशिष्ट सैन्य स्वरूप था। मातहतों से निजी सेवा ही करायी जाती थी। एक खास संस्था को सैनिक इकट्ठा करने का भार भी सौंपा जाता था। 11वीं शताब्दी के बाद से यह संस्था मातहत द्वारा हासिल भू-सम्पत्ति के महत्त्व के साथ जुड़ गयी। अब मातहत अपने अधिपति पर शर्तें रखने लगे जिससे सेवा की अवधि को निश्चित कर दिया गया और निश्चित अवधि के बाद सेवा करवाने पर वेतन देने की शर्तें भी लगा दी गयीं। सैनिक भूमिका के साथ-साथ अधिपति के घरेलू कार्य को भी देखना पड़ता था। मातहत को अन्य सभी मातहतों के साथ अधिपति की सेवा में उपस्थित होना पड़ता था। दो-तीन सालों में एक बार अधिपति द्वारा दरबार लगाया जाता था, जिसमें अधिपति आपसी टकरावों पर अपना फैसला देता था, जिसमें मातहतों को भी मदद करनी पड़ती थी।

अधिपति अपने मातहतों की रक्षा और देखभाल करता था। मातहतों पर होने वाले मुकदमों पर मातहतों की ओर से मुकदमा लड़ता था। अधिपति अपने मातहतों को यह आश्वासन देता था कि यदि उसकी जमीन पर कोई कब्जा करने की कोशिश करेगा, तो वह उसकी रक्षा करेगा। अधिपति अपने मातहतों की रक्षा तथा देखभाल करता रहेगा, ताकि मातहत अपने अधिपति की सेवा और सैनिक सहायता प्रदान करता रहे।

आशीर्वाद और स्वामिभक्ति के अनुदान और पारस्परिक उत्तरदायित्व की प्रवृत्ति व्यक्तिगत थी, इसलिये करार से सम्बद्ध दोनों पक्षों के अलावा यह किसी को प्रभावित नहीं करती थी। यदि अधिपति बिना किसी उत्तराधिकारी के मर जाता था, तो उसके मातहत उस समय तक अधिपति के मातहत माने जाते थे जब तक कि मृतक व्यक्ति का उत्तराधिकारी वैधानिक रूप से तय नहीं कर दिया जाता था।

कोई भी पक्ष यदि अपने उत्तरादायित्व को पूरा नहीं कर पाता था, तो उसको दंड देने का प्रावधान था। 12वीं और 13वीं शताब्दी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



तक यह व्यवस्था अप्रभावी हो गयी थी और अधिकांशत: दायित्व पूरा करने से जो टकराव उत्पन्न होता था, उसका समाधान सशस्त्र संघर्ष से ही किया जाता था। स्वामित्व के करार तोड़ने पर जमीन जब्त कर ली जाती थी, क्योंकि जमीन एक करार के तहत दी जाती थी। जमीन पर मातहतों के बढ़ते प्रभाव के कारण जब्ती करना कठिन हो गया था।

लॉर्ड (अधिपति या मातहतों के प्रमुख) अपने घरेलू कार्यों के लिये मातहतों को रख सकता था और इनके लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था लॉर्ड द्वारा की जाती थी। लॉर्ड अपने मातहतों को जमीन प्रदान करता था और ये मातहत उस जमीन से होने वाली आमदनी से अपना जीवन निर्वाह करते थे। इसके बदले में मातहतों को उनकी सेवा करनी पड़ती थी। मातहतों को जो भू-सम्पत्ति दी जाती थी, इसे बेनेफिस (Benefice) या फीफ कहा जाता था। बेनेफिस मातहतों की अपेक्षा घरेलू मातहत पुराने प्रकार के सम्बन्धों से बंधे थे। कैरोलिंजी शासनकाल में बेनेफिस मातहतों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई क्योंकि अधिपति एक बड़ी संख्या में मातहतों को रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था नहीं करवा सकते थे। दूसरी ओर कई मातहत अलग से अपनी कमाई चाहते थे, क्योंकि इससे उसके साथ एक राजनीतिक अधिकार और सम्मान का भाव जुड़ा हुआ था। मातहतों को अधिकांश समय इसी इलाके में गुजारना पड़ता था।

एक फीफ में भू-सम्पदा होती थी। भू-सम्पदा के अतिरिक्त सार्वजनिक प्राधिकार या दायित्व या अधिकार जिसमें कर वसूलने और बाजार से शुल्क वसूलने का अधिकार, सिक्का ढालने और न्याय देने का अधिकार था। फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड में इस प्रकार की फीफ व्यवस्था थी। नार्मन और एजेंविन शासनकालों में ब्रिटिश राजतंत्र ने इस फीफ के उपयोग को व्यापक तथा विधिवत् बना दिया। मातहतों को चर्च से आमदनी का 10 प्रतिशत भाग मिलता था और कभी-कभी चर्च की होने वाली आमदनी में भी उनका हिस्सा होता था। 11वीं शताब्दी में धार्मिक आन्दोलन में सर्वप्रथम फीफ को समाप्त करने का प्रयास किया गया और इस प्रथा को रोकने और कम करने में इन्हें सफलता मिली। इस प्रकार अधिपति की ताकत में कमी आयी।

अब फीफ मातहतों की पैतृक सम्पत्ति मानी जाने लगी। मूलत: मातहत को अपना जीवनयापन करने के लिये फीफ दिया जाता था। सिद्धान्तत: फीफ पर वंशानुगत अधिकार नहीं था। मातहत की मृत्यु के बाद फीफ पुन: अधिपति के पास चला जाता था। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं था। मातहत के उत्तराधिकारी उस फीफ पर अधिकार कर लेते थे। अधिपति द्वारा फीफ पर वंशानुगत अधिकार मान लेते थे। यदि अधिपति द्वारा कार्यवाही की जाती, तो इसका गम्भीर प्रभाव अन्य मातहतों पर पड़ सकता था और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। इंग्लैण्ड में 12वीं शताब्दी में फीफ के वंशानुगत अधिकार की प्रथा की शुरुआत हुयी। 12वीं शताब्दी के अंत तक लगभग सभी जगह फीफ पर वंशानुगत की प्रथा चल पड़ी।

जब तक फीफ वंशानुगत रूप से स्थापित नहीं बन गया तब तक अधिपति मातहत के उत्तराधिकारी को अधीनता प्रदान करने, आशीर्वाद देने और स्वामिभक्ति की शपथ लेने और अभिषेक करने के लिए शुल्क माँग सकता था। अधिपति द्वारा इस शुल्क की माँग को 'राहत' के नाम से जाता था, जो फीफ के महत्त्व के अनुसार होता था। मसलन एक घोड़ा और घुड़सवार के लिये हथियार से लेकर फीफ का एक साल तक का कर हो सकता था। धार्मिक आधार पर दिये गये भूखण्डों के काश्तकार किसी भी प्रकार के कर से मुक्त थे और सम्पत्ति के हस्तांतरण में उनसे कुछ नहीं लिया जा सकता था। यदि किसी मातहत की मृत्यु हो जाती थी और उसका उत्तराधिकारी नाबालिग होता था, तो उसका नजदीकी सम्बन्धी मातहत बनता था और तब तक परम्परा के अनुसार फीफ को उस समय तक के लिये अपने हाथ में ले लेता था, जब तक उत्तराधिकारी बालिग नहीं होता था और उसके उत्पादन का उपयोग करता था और उसके बदले में नाबालिग उत्तराधिकारी के जीवनयापन और शिक्षा का भार ग्रहण करता था। मूलत: महिलाओं को सामन्ती उत्तराधिकार प्राप्त नहीं था, परन्तु 10वीं शताब्दी के अन्त तक महिला उत्तराधिकार के कई मामलों को भी स्वीकार किया गया। दक्षिण फ्रांस और निचले देशों में जर्मनी से काफी पहले यह रिवाज शुरू हो चुका था।

फीफा के अनुवंशीकरण और विरासतीकरण के कारण इस विचार का विरोध हुआ कि फीफ एक अविभाज्य अधिकार है और इस प्रकार फीफ का विभाजन शुरू हुआ और उपसामन्तीकरण शुरू हो गया। धीरे-धीरे मातहत को दिये गये फीफ अपने परिवार को अन्य वस्तुओं के समान इसे अपनी सम्पत्ति समझने लगा और यह सोच विकसित हुई कि इसका लाभ उसके सभी बच्चों को मिलना चाहिए। धीरे-धीरे फ्रांस और जर्मनी में अधिकांश हिस्सों में फीफ का बँटवारा होने लगा। इंग्लैण्ड में मुख्य ज्येष्ठाधिकार का प्रचलन था। अब सम्पत्ति के अधिकारों से जुड़े कर्त्तव्य और दायित्व भी व्यक्तिगत होने लगे और यह एक ऐसी सम्पत्ति बन गयी जिसे ऊँची बोली लगाकर बेचा भी जा सकता था। 10वीं शताब्दी में फ्रांस में, 11वीं शताब्दी में जर्मनी में और इंग्लैंड में नोर्मन कब्जे के बाद मातहतों द्वारा फीफ बिक्री या उपहार के रूप में दिये जाने लगे।

मातहत मजबूत होने लगे। फीफ से बेदखली का अधिकार मातहत की तुलना में अधिपति के व्यक्तित्व में काफी प्रतिबंधित रहा।

9वीं शताब्दी के अंत में बहुल मातहती प्रथा शुरू हो गयी। अब एक मातहत कई अधिपतियों के प्रति निष्ठा रखता था। 11वीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस, इंग्लैण्ड, दक्षिणी इटली और जर्मनी में स्वामिभक्ति की प्रथा कई हिस्सों में व्याप्त हो गयी। इस व्यवस्था में मातहत के कई अधिपतियों में से एक अधिपति ऐसा भी होता

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

था जिसके प्रति उसे पूर्णत: निष्ठावान होना पड़ता था। इसे सामन्ती अधिपति कहते थे, जो आमतौर पर वसाल को सबसे बड़ा बेनेफिस या फीफ प्रदान करता था। धीरे-धीरे सामन्ती भूमि का भी विभाजन हो गया।

फीफ के अन्तर्गत कुछ ऐसी भी सेवाएँ शामिल थीं जिसमें व्यक्ति निष्ठा के साथ-साथ पेशेवर विशेषज्ञता भी शामिल थी। वीयंअ (Villein) कई प्रकार के बेगार और कई प्रकार के वस्तु कर देते थे। वीयंअ कानूनी रूप से अधिपति द्वारा दी गई भूमि पर काम करता था, परन्तु व्यावहारिक तौर पर स्थानीय रीति-रिवाज के अनुसार काम होता था और अर्धवैधानिक नियम के तहत कब्जा और अधिकार मिलता था। खेतिहर को एक कर अदा करना पड़ता था।

'एलौड्स' एक लचीली सामन्ती व्यवस्था का द्योतक था। एलौडियल अधिकार में पूर्ण स्वामित्व प्राप्त होता था और इसमें किसी प्रकार की सेवा या भुगतान की शर्त नहीं जुड़ी होती थी। हालाँकि 10वीं शताब्दी के बाद सामन्ती काश्तकारी का तेजी से विस्तार हुआ। एलौडियल अधिकार कम होते चले गये। यह व्यवस्था *मार्क ब्लॉक* के अनुसार सामन्तवाद वाले स्थानों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित रूप से संगठित थी। सारी जमीन अधिपति की होती थी और यह श्रृंखला बिना टूटे हुए राजा तक पहुँचती थी। अधिकांश यूरोप में किसान स्वतंत्र थे और उनके पास अपनी जमीन थी। वे सामन्त वर्ग के आर्थिक शोषण से बिल्कुल बच नहीं पाते थे, जिनका स्थानीय बाजारों और समग्र रूप से क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण था। एलौडियलिस्टो को समय-समय पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बिचौलियों को शुल्क देना पड़ता था। अपने छोटे व्यक्तिगत या सामूहिक आधार के कारण भी उनकी अर्थव्यवस्थाएं प्रबल सामन्ती अर्थव्यवस्था के आर्थिक शोषण दासता से बच नहीं पाती थीं।

सामन्ती व्यवस्था में आर्थिक उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक जीवन की भी आधारभूत इकाई थी। मैनोर में कई छोटे-छोटे आश्रित खेत शामिल होते थे जिन पर अधिपति का सीधा अधिकार होता था। इन खेतों पर कृषि दासों और इस जमीन से जुड़े किसानों से खेती करायी जाती थी।

जंगलों और परती जमीन को साफ-सुथरा करके जिन इलाकों को खेती के लायक तैयार कर दिया जाता था, उसे सम्पदा कहते थे। मैनोर में जो गाँव होते थे, उसमें छोटे-छोटे किसान रहा करते थे। गाँव के बीच में चर्च होता था। मैनोर में रोजमर्रा के उपयोग की वस्तुओं को आसानी से दुकानों से प्राप्त किया जा सकता था। ये गाँव पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं होते थे। नमक और धातु के बर्तन जैसी अनिवार्य वस्तुओं को बाहर से लाना पड़ता था। गाँव खेतों के बीच में होता था, जहाँ पानी आसानी से उपलब्ध होता था। किसान आजीवन अधिपति की भूमि पर काम करता था। मृत्यु होने पर गाँव के कब्रगाह में दफना दिया जाता था। किसान के पड़ोसी अधिपति होते थे, जो विशाल महल में रहते थे और महल को सुरक्षित रखने के लिये किलेबन्दी की जाती थी। दसवीं शताब्दी में बाह्य आक्रमणों से बचने के लिए चारों तरफ से सुरक्षित और किलाबन्द महल बनवाने की परम्परा चल पड़ी थी। अधिपति अपने क्षेत्रीय विस्तार के लिये हथियारों को जमा करने लगे और आक्रमण के समय लूटपाट और भूमि पर कब्जा किया जाता था। आक्रमण के समय किसान मैनोर के महल में जाकर छिप जाते थे। इस तरह महलों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से किलेबन्दी की परम्परा शुरू हुयी। खेतों के चारों ओर खुला मैदान, जंगल और बंजर जमीन होती थी, जिसे आमतौर पर 'कॉमन्स' (पंचायती जमीन) कहा जाता था। इस जमीन पर सभी के जानवर चर सकते थे। लोग जलावन काटते थे, मछली मारते और शिकार करते थे।

मैनोर में सबसे अधिक जनसंख्या कृषि दासों की थी, जिन्हें 'सर्फ' कहा जाने लगा। वे काश्तकार थे, परन्तु कानूनी रूप से उन्हें खेत छोड़ने की आजादी नहीं थी। उन पर अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे। वे सम्पत्ति बेच-खरीद नहीं सकते थे। वे मजदूरी नहीं कर सकते थे। अपनी मर्जी से शादी नहीं कर सकते थे। वीयंअ और सर्फ में एक महीन अन्तर था। वीयंअ अपने अधिपति के सम्बन्धों की दृष्टि से आजाद नहीं था, परन्तु अन्य मामलों में उसे आजादी मिली हुई थी। सामन्ती कृषि दास का स्रोत नि:सन्देह अन्धकार युगों और प्राचीनकाल की दास प्रथा है। जब रोम के भूमिपति अपने पूर्व लैटिफुंडिया से पिण्ड छुड़ाने लगे, क्योंकि अब वह उनके प्रत्यक्ष शोषण के लिये फायदेमन्द नहीं रह गया था, तो उन्होंने अपने कई दासों को इस शर्त पर अविभाज्य काश्तकारी आबंटित कर दी थी कि वे अधिपति के खेतों में काम करेंगे। उपज का दसवाँ हिस्सा देंगे और विभिन्न प्रकार के नजराने भी दिया करेंगे। सामाजिक न्याय पर नियंत्रण और संरक्षण देने के दावे ने भी आजाद किसान को दास बनाना शुरू कर दिया। दासता की प्रथा वंशानुगत हो गयी। उनसे बेगार लिया जाता था। खराब फसल या आक्रमणकारियों के चंगुल में फंसने से भी किसानों की आजादी छिन गयी।

अधिपति के खेतों में काम करने के लिये वीयंअ परिवार से एक व्यक्ति सप्ताह में तीन-चार दिन जाया करता था। वीयंअ को खेती से जुड़े सारे कार्य करने पड़ते थे। वीयंअ को अपनी बेटी की शादी करने पर मर्चेट (Formariage) नामक दास शुल्क अदा करना पड़ता था और हेरिओट (mainmorte) या उत्तराधिकार शुल्क के रूप में उसका सबसे अच्छा जानवर ले लिया जाता था। कृषि दास के लिये अधिपति स्वयं शादी के लिये लड़की पसन्द करता था। कृषि दास को प्रत्येक वर्ष हेरिओट (उत्तराधिकार कर), ताइले (Taille) (सम्पत्ति पर धन कर) और व्यक्ति कर (जिन्दा रहने के लिये) देना पड़ता था। इसके अलावा और भी छोटे-छोटे कई कर देने पड़ते थे।

www.neerajbooks.com



इसके अलावा मैनोर में आजाद खेतिहर और खेत होते थे। इन काश्तकारों का अधिपति के साथ एक निश्चित करार होता था। वे निश्चित दर से कर देते और सेवाएँ प्रदान करते थे। वीयंअ की तुलना में उसकी स्थिति अच्छी थी। इन किसानों की खेती में पूर्ण स्वामित्व के बावजूद उन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये थे। उनको पूर्ण रूप से स्वतंत्रता नहीं मिली हुई थी। पूर्ण स्वामित्व वाले किसान को बेगार करनी पड़ती थे और शुल्क देने पड़ते थे। गाँव के रीति-रिवाज और आर्थिक नियम उन पर साथ-साथ लागू होते थे।

मैनोर व्यवस्था में एक अलग कर्मचारी वर्ग का उदय हुआ, जिनकी उत्पत्ति वीयंअ और पूर्ण स्वामित्व वाले किसानों के बीच से हुई थी। ये मैनोर की अर्थव्यवस्था की देखभाल करते थे। इसमें स्टिवर्ड्स (Stewards) और शेनशल्स (Senschals) होते थे। इसके अलावा न्याय सम्बन्धी, लेखा-जोखा से सम्बन्धित कार्य और सभी अवसरों में अधिपतियों का प्रतिनिधित्व करना इनका काम था।

रीन्स (Reens) मुख्य रूप से ग्रामीणों और अधिपतियों के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। बोडेल (Beadles) और रेडनाइट (Red Nights) अथवा रैडमेन (Redman) का काम सम्मन देना और आदेशों का पालन करना था। वुडवर्ड चरागाहों और पेड़ों की बुआई और कटाई की देखरेख करता था। बार्डर के अधीन एक हेवार्ड था जो मेढ़ों की देखभाल करता था। 12वीं शताब्दी से खेती और सेवाओं से जुड़े रीति-रिवाज लिखित रूप से दर्ज कर दिये गये।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. सामन्ती व्यवस्था में अधिपति और मातहत के अधिकार और दायित्व क्या थे?**

**उत्तर**–सामन्ती व्यवस्था में अधिपति और मातहत दो महत्त्वपूर्ण वर्ग थे। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर थे। अधिपति और सामान्य व्यक्ति के बीच एक वैधानिक प्रक्रिया थी, जिसके अन्तर्गत एक इकरारनामा बनाया जाता था, जिसमें दोनों ही पक्षों पर कई बन्धन और दायित्व होते थे। व्यक्ति अपने स्वामी की सेवा और स्वामी सेवा के बदले व्यक्ति को आजादी प्रदान करता था, उसकी देखरेख और सुरक्षा का वचन देता था। अपने अधिपति के प्रति समर्पण भाव रखना इस इकरारनामे की प्राथमिक और पहली शर्त थी। मैरोविन्जी युग में सभी वर्ग के सदस्यों को यह काम करना पड़ता था, पर कैरोलिंजी राजाओं के शासनकाल में यह अभिजात वर्ग के सदस्यों तक ही सीमित हो गया। इमिक्सिटो मेनम और वोलो या स्वीकृति का इजहार जिसमें वसाल अपने को अधिपति के अधीन घोषित करता था और अधिपति इस आत्मसमर्पण को बोलकर स्वीकार करता था।

8वीं शताब्दी के मध्य में इन मातहतों की हैसियत बढ़ने लगी। कैरोलिन्जियों ने स्वामिभक्ति की शपथ का एक समारोह (मातहत द्वारा अपने अधिपति के प्रति स्वामिभक्ति की स्वीकारोक्ति) शामिल किया जिसमें इस बात पर बल दिया गया कि ये मातहत अभिजात वर्ग के सदस्य हैं और स्वतंत्र आदमी के तौर पर सेवा करेंगे। आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद वह मातहत शपथ लेता था और आजाद आदमी के रूप में अपने अधिपति के प्रति धर्मग्रंथ पर हाथ रखकर निष्ठावान रहने की शपथ लेता था। करार हो जाने पर आशीर्वाद और स्वामिभक्ति की शपथ दोनों पक्षों के जीवित रहते कायम रहती थी। इसे एकतरफा समाप्त नहीं किया जा सकता था। आशीर्वाद प्राप्त करने और स्वामिभक्ति की शपथ लेने के समारोह में खासतौर पर फ्रांस में आनुष्ठानिक चुम्बन (ओस्कुलम) अवश्य शामिल होता था जिसमें दो पक्षों के बीच हुए करार और उत्तरदायित्व को स्वीकार करने का भाव ही नहीं छिपा होता था, बल्कि मातहत के प्रति सम्मान का भाव भी अन्तर्निहित होता था।

खेती के लिये जमीन देने के समय आमतौर पर आशीर्वाद और स्वामिभक्ति की शपथ पूरी कर ली जाती थी। मातहत प्राप्त भू-सम्पत्ति पर कार्य करने और अपने मालिक के प्रति निष्ठावान रहने का दावा करता था। अधिपति अपने मातहतों के लिये प्रतीक चिह्न भेंट किया करता था। भूखण्ड पर अधिकार हो जाने के पश्चात् इसके बाद से इसमें किसी भी प्रकार के उल्लंघन के खिलाफ कानूनी तौर पर इसकी रक्षा भी की जाती थी। भू-स्वामित्व छोड़ने का अनुष्ठान भी किया जाता था, जिसमें मातहत औपचारिक तौर पर अपने को फीफ से अलग कर लेता था और अपने अधिपति और मालिक को वे वस्तुएँ लौटा देता था, जो अभिषेक के दौरान प्राप्त की थीं।

मातहत कोई ऐसा काम नहीं करता था, जिससे अधिपति के सम्मान को किसी प्रकार का नुकसान पहुँचे। मातहत का दायित्व अपने मालिक की सेवा करना था जिसे आमतौर पर सहायता और सलाह के रूप में वर्गीकृत किया गया था। सहायता में सैनिक सेवा भी शामिल थी। लॉर्ड अपने लिये वसालों की व्यवस्था करता था, ताकि उसके सैनिक उसको मिल सकें और यह संस्था का एक विशिष्ट सैन्य स्वरूप था। मातहतों से निजी सैनिक सेवा ही करायी जाती थी। एक खास संख्या में सैनिक इकट्ठा करने का भार भी सौंपा जाता था। 11वीं शताब्दी के बाद से यह संख्या मातहत द्वारा हासिल भू-सम्पत्ति के महत्त्व के साथ जुड़ गयी। अब मातहत अपने अधिपति पर शर्तें रखने लगे कि अवधि को निश्चित कर दिया गया और निश्चित अवधि के बाद सेवा करवाने पर वेतन देने की शर्तें लगा दी गयी। सैनिक भूमिका के साथ-साथ अधिपति के घरेलू कार्य भी देखने पड़ते थे। मातहत को अन्य सभी मातहतों के साथ अधिपति की सेवा में उपस्थित होना पड़ता था। दो-तीन सालों में एक बार अधिपति द्वारा दरबार लगाया जाता था जिसमें अधिपति आपसी टकरावों पर अपना फैसला देता था जिसमें मातहतों को भी मदद करनी पड़ती थी।

अधिपति अपने मातहतों की रक्षा और देखभाल करता था। मातहतों पर होने वाले मुकदमों पर मातहतों की ओर से मुकदमा

www.neerajbooks.com

लड़ता था। अधिपति अपने मातहतों को यह आश्वासन देता था कि यदि उसकी जमीन पर कोई कब्जा करने की कोशिश करेगा, तो वह उसकी रक्षा करेगा। अधिपति अपने मातहतों की रक्षा तथा देखभाल करता रहेगा, ताकि मातहत अपने अधिपति की सेवा कर सके और सैनिक सहायता प्रदान कर सके।

आशीर्वाद और स्वामिभक्ति के अनुदान और पारस्परिक उत्तरदायित्व की प्रवृत्ति व्यक्तिगत थी, इसलिये करार से सम्बद्ध दोनों पक्षों के अलावा यह किसी को प्रभावित नहीं करती थी। यदि अधिपति बिना किसी उत्तराधिकारी के मर जाता था, तो उसके मातहत उस समय तक अधिपति के मातहत माने जाते थे, जब तक कि मृतक व्यक्ति का उत्तराधिकारी वैधानिक रूप से तय नहीं कर दिया जाता था।

कोई भी पक्ष यदि अपने दायित्व पूरा नहीं करता था, तो उसको दण्ड देने का प्रावधान था। 12वीं और 13वीं शताब्दी तक यह व्यवस्था अप्रभावी हो गयी थी और अधिकांशतः दायित्व पूरा करने से जो टकराव उत्पन्न होता था उसका समाधान सशस्त्र संघर्ष से ही किया जाता था। स्वामित्व का करार तोड़ने पर जमीन जब्त कर ली जाती थी, क्योंकि जमीन एक करार के तहत दी जाती थी। जमीन पर मातहतों के बढ़ते प्रभाव के कारण कब्जा करना कठिन हो गया। 12वीं शताब्दी में फ्रांस में ज्यादा से ज्यादा अस्थायी जब्ती या कब्जा होने लगा।

सामन्ती व्यवस्था में अधिपति और मातहत के अधिकार और दायित्व निर्धारित थे। समय के साथ उनके दायित्व और अधिकार में परिवर्तन देखे गये।

**प्रश्न 2. फीफ की प्रकृति क्या थी? यह कैसे आनुवंशिक रूप से प्राप्त होता था? इसे कैसे बदला जाता था?**

**उत्तर**–लॉर्ड (अधिपति या मातहतों के प्रमुख) अपने घर में मातहतों को रख सकता था और उन्हें अपने खर्च पर रोटी, कपड़ा और मकान मुहैया करवाता था या फिर काम के बदले उसे एक सम्पदा या जमीन दे देता था, जिससे मिलने वाली आय से वह अपना जीवनयापन करता था। इसके बदले में मातहतों को उनकी सेवा करनी पड़ती थी। मातहतों को जो भू-सम्पत्ति दी जाती थी, उसे बेनेफिस (benefice) या फीफ कहा जाता था। बेनेफिस मातहतों की अपेक्षा घरेलू मातहत पुराने प्रकार के सम्बन्धों से बँधे थे। कैरोलिंजी शासनकाल में बेनेफिस मातहतों की सेवा में तेजी से वृद्धि हुई, क्योंकि अधिपति एक बड़ी संख्या में मातहतों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था नहीं करवा सकते थे। दूसरी ओर कई मातहत अलग से अपनी कमाई चाहते थे, क्योंकि इसके साथ एक राजनीतिक अधिकार जुड़ा हुआ था। मातहतों को अधिकांश समय इसी इलाके में गुजारना पड़ता था।

एक फीफ में भू-सम्पदा होती थी, जिसका आकार अलग-अलग हो सकता था। परन्तु एक फीफ भू-सम्पदा के अतिरिक्त सार्वजनिक अधिकार या दायित्व था। अधिकार जिसमें कर वसूलने और बाजार से शुल्क वसूलने का अधिकार, सिक्का ढालने और न्याय देने का अधिकार, वकील, मेयर, संरक्षण, ग्रहणकर्त्ता आदि जैसे कार्य करने का अधिकार हो सकता था। इस प्रकार की फीफ जिसमें भू-सम्पदा नहीं होती थी। उसे एक 'मुद्रा फीफ' (money fief) कहते थे, जिससे नियमित रूप से आमदनी होती रहती थी। फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड आदि में इसी प्रकार की फीफ व्यवस्था थी। नार्मेन और एजेंविन शासनकाल में ब्रिटिश राजतन्त्र में इस फीफ के उपयोग को व्यापक तथा विधिवत् बना दिया गया। मातहतों को चर्च से आमदनी का 10 प्रतिशत भाग मिलता था और कभी-कभी चर्च की होने वाली आमदनी में भी उनका हिस्सा होता था। 11वीं शताब्दी में धार्मिक आन्दोलन में सर्वप्रथम फीफ को समाप्त करने का प्रयास किया गया और इस प्रथा को रोकने और कम करने में इन्हें सफलता मिली। इस प्रकार अधिपति की ताकत में कमी आयी।

अब फीफ मातहतों की पैतृक सम्पत्ति मानी जाने लगी। मूलतः मातहत को अपना जीवनयापन करने के लिये फीफ दिया जाता था। सिद्धान्तः फीफ पर वंशानुगत अधिकार नहीं था। मातहत की मृत्यु के बाद फीफ पुनः अधिपति के पास चला जाता था, परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं था। मातहत के उत्तराधिकारी उस फीफ पर अधिकार कर लेते थे। यदि अधिपति द्वारा कार्यवाही की जाती, तो इसका गम्भीर प्रभाव अन्य मातहतों पर पड़ सकता था और संघर्ष की स्थिति अत्यन्त कठिन हो सकती थी। इंगलैण्ड में 12वीं शताब्दी में फीफ के वंशानुगत अधिकार की प्रथा की शुरुआत हुई। 12वीं शताब्दी के अन्त तक लगभग सभी जगह फीफ वंशानुगत चल पड़ी।

**फीफ का उत्तराधिकार**–जब तक फीफ वंशानुगत रूप से स्थापित नहीं हो गया तब तक अधिपति मातहत के उत्तराधिकारी को मातहतता प्रदान करने, आशीर्वाद देने और स्वामिभक्ति की शपथ लेने और अभिषेक करने के लिये शुल्क माँग सकता था। अधिपति द्वारा इस शुल्क की माँग को 'राहत' नाम से जाता था, जो फीफ के महत्त्व के अनुसार होता था। मसलन एक घोड़ा और घुड़सवार के लिये हथियार से लेकर फीफ का एक साल का कर तक हो सकता था। धार्मिक आधार पर दिये गये भूखण्डों के काश्तकार किसी भी प्रकार के कर से मुक्त थे और सम्पत्ति के हस्तांतरण में उनसे कुछ नहीं लिया जाता था। यदि किसी मातहत की मृत्यु हो जाती थी और उसका उत्तराधिकारी नाबालिग होता, तो उसका नजदीकी सम्बन्धी मातहत बनता था और फीफ को उस समय तक के लिये अपने हाथ में ले लेता था जब तक कि उत्तराधिकारी बालिग नहीं होता था। वह उसके उत्पादन का उपयोग करता था और उसके बदले में नाबालिग उत्तराधिकारी के जीवनयापन और शिक्षा का भार ग्रहण करता था। महिलाओं के सामन्ती उत्तराधिकार को भी कई मामलों में स्वीकार किया गया। दक्षिणी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



फ्रांस और निचले देशों में जर्मनी से काफी पहले यह रिवाज शुरू हो चुका था।

फीफ के अनुवंशीकरण और विरासतीकरण के कारण इस विचार का विरोध हुआ कि फीफ एक अविभाज्य अधिकार है और इस प्रकार फीफ का विभाजन शुरू हुआ और उपसामन्तीकरण शुरू हो गया। धीरे-धीरे मातहत को दिये गये फीफ अपने परिवार की अन्य वस्तुओं के समान इसे अपनी सम्पत्ति समझने लगा और यह सोच विकसित हुई कि इसका लाभ उसके सभी बच्चों को मिलना चाहिए। धीरे-धीरे फ्रांस और जर्मनी के अधिकांश हिस्सों में फीफ का बँटवारा होने लगा। इंग्लैण्ड में मुख्य ज्येष्ठाधिकार का प्रचलन था। अब सम्पत्ति अधिकारों से जुड़े कर्त्तव्य और दायित्व भी व्यक्तिगत होने लगे और यह एक ऐसी सम्पत्ति बन गयी जिसे ऊँची बोली लगाकर बेचा भी जा सकता था। 10वीं शताब्दी में फ्रांस में, 11वीं शताब्दी में जर्मनी में और इंग्लैण्ड में नौरमन कब्जे के बाद मातहतों में फीफ की बिक्री या उपहार के रूप में दिया जाना आम हो गया।

मातहत मजबूत होने लगे। फीफ से बेदखली का अधिकार मातहत की तुलना में अधिपति के मामले में काफी प्रतिबंधित रहा।

9वीं शताब्दी के अंत में बहुल मातहती प्रथा शुरू की गयी। अब एक मातहत कई अधिपतियों के प्रति निष्ठा रखता था। 11वीं शताब्दी के अंत में फ्रांस, इंग्लैण्ड, दक्षिणी इटली और जर्मनी में स्वामिभक्ति की प्रथा कई हिस्सों में व्याप्त हो गयी। इस व्यवस्था में मातहत में कई अधिपतियों में से एक अधिपति ऐसा भी होता था, जिसके प्रति उसे पूर्णतः निष्ठावान होना पड़ता था। इसे सामन्ती अधिपति कहते थे, जो आमतौर पर वसाल को सबसे बड़ा बेनेफिस या फीफ प्रदान करता था। धीरे-धीरे सामन्ती भूमि का विभाजन हो गया।

फीफ के अन्तर्गत कुछ ऐसी भी सेवाएँ शामिल थीं, जिनमें व्यक्ति, निष्ठा के साथ-साथ पेशेवर विशेषज्ञता भी शामिल थी। वीयंअ (Villein) कई प्रकार के बेगार और कई प्रकार के वस्तु कर देते थे। वीयंअ (Villein) कानूनी रूप से अधिपति द्वारा दी गई भूमि पर काम करता था, परन्तु व्यावहारिक तौर पर स्थानीय रीति-रिवाज के अनुसार काम होता था और अर्ध-अवैधानिक नियम के तहत कब्जा और अधिकार मिलता था। खेतिहर को एक कर अदा करना पड़ता था।

**प्रश्न 3. एक मैनोर में विभिन्न प्रकार के कृषकों की स्थितियों का विश्लेषण कीजिए।**

**उत्तर**–मैनोर सामन्ती व्यवस्था में आर्थिक उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक जीवन की भी आधारभूत इकाई थी। मैनोर में कई छोटे-छोटे आश्रित खेत शामिल होते थे, जिन पर अधिपति का सीधा अधिकार होता था। इस खेती पर कृषि दासों और इस जमीन से जुड़े किसानों से खेती करायी जाती थी।

मैनोर में सबसे अधिक जनसंख्या कृषि दासों की थी, जिन्हें 'सर्फ' कहा जाने लगा। वे काश्तकार थे, परन्तु कानूनी रूप से उन्हें खेत छोड़ने की आजादी नहीं थी। उन पर अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे। वे सम्पत्ति बेच-खरीद नहीं सकते थे। वे मजदूरी नहीं कर सकते थे। अपनी मर्जी से शादी नहीं कर सकते थे। वीयंअ और सर्फ में एक महीन अन्तर था। वीयंअ अपने अधिपति के सम्बन्धों की दृष्टि से आजाद नहीं था, परन्तु अन्य मामलों में उसे आजादी मिली हुई थी। सामन्ती कृषि का स्रोत निःसंदेह अन्धकार युग और प्राचीन काल की दास प्रथा है। जब रोम के भूपति अपने पूर्व लैटिफुंडिया से पिण्ड छुड़ाने लगे, क्योंकि अब वह उसके प्रत्यक्ष शोषण के लिये फायदेमन्द नहीं रह गया या तो उन्होंने अपने कई दासों को इस शर्त पर अविभाज्य काश्तकारी आबंटित कर दी थी कि वे अधिपति के खेतों में काम करेंगे। उपज का दसवाँ हिस्सा देंगे और विभिन्न प्रकार के नजराने भी दिया करेंगे। सामाजिक न्याय पर नियन्त्रण और संरक्षण देने के दावे ने भी आजाद किसान को दास बनाना शुरू कर दिया। दासता की प्रथा वंशानुगत हो गयी। उनसे बेगार ली जाती थी। खराब फसल या आक्रमणकारियों के चंगुल में फंसने से भी किसानों की आजादी छिन गयी।

अधिपति के खेतों में काम करने के लिये वीयंअ परिवार से एक व्यक्ति सप्ताह में तीन-चार दिन जाया करता था। वीयंअ को खेती से जुड़े सारे कार्य करने पड़ते थे। वीयंअ को अपनी बेटी की शादी पर मर्चेट (formariage) नामक दास शुल्क अदा करना पड़ता या और हेरिओट (mainmorte) या उत्तराधिकार शुल्क के रूप में उसका सबसे अच्छा जानवर ले लिया जाता था। कृषि दास के लिये अधिपति स्वयं शादी के लिये लड़की पसन्द करता था। कृषि दास को प्रत्येक वर्ष हेरिओट (उत्तराधिकार कर), ताइले (Taille) (सम्पत्ति पर धन कर) और व्यक्ति कर (जिन्दा रहने के लिये) देना पड़ता था। इसके अलावा और भी छोटे-छोटे कई कर देने पड़ते थे।

इसके अलावा मैनोर में आजाद खेतिहर और खेत होते थे। इन काश्तकारों का अधिपतियों के साथ एक निश्चित करार होता था। वे निश्चित दर पर कर देते और सेवाएँ प्रदान करते थे। वीयंअ की तुलना में उसकी स्थिति अच्छी थी। इन किसानों की खेती के पूर्ण स्वामित्व के बावजूद उन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये थे। उनको पूर्ण रूप से स्वतंत्रता नहीं मिली हुई थी। पूर्ण स्वामित्व वाले किसानों को बेगार देनी पड़ती थी और शुल्क देने पड़ते थे। गाँव के रीति-रिवाज और आर्थिक नियम उन पर साथ-साथ लागू होते थे।

मैनोर व्यवस्था में एक अलग कर्मचारी वर्ग का उदय हुआ। इनका जन्म वीयंअ और पूर्ण स्वामित्व वाले किसानों के बीच से ही हुआ था। ये मैनोर की अर्थव्यवस्था की देखभाल किया करते थे। इसमें स्टिवर्ड्स (Stewards), शेनशल्स (Seneschals) होते

www.neerajbooks.com

थे, जो मैनोर के सारे प्रबन्धन की देखरेख करते थे। इसके अलावा मैनोर की अदालत की अध्यक्षता करना, हिसाब-किताब करना, सभी अवसरों पर अधिपति का प्रतिनिधित्व करना इनका प्रमुख काम था। रीव्स (Reevs) मुख रूप से ग्रामीणों और अधिपतियों के बीच मध्यस्थ का काम करता था और ग्रामीण सेवाओं का संगठन करता था। बीडेल (Beadles) और रेडनाइट (Radknights) अथवा रैडमेन (Radman) का काम सम्मन देना और आदेशों का पालन करना था। इसके अलावा कई वार्डर भी थे, जिनमें से एक हेवार्ड (Hayward) था। यह मेढ़ों की देखभाल करता था। वुडवर्ड चरागाहों और पेड़ों की बुआई और कटाई की और अन्य जो नहरों और तालाबों और नालियों की देखभाल करते थे। चराने के लिये हलवाहे और चरवाहे रखे जाते थे। अधिपति की भलाई इसी में थी कि वे रीति-रिवाजों और परम्पराओं को मजबूत रखें, ताकि ताकतवर बिचौलिए अपने निरंकुश शासन और लूटपाट से किसानों को बर्बाद न कर दें। 12वीं शताब्दी से खेती और सेवाओं से जुड़े रीति-रिवाज लिखित रूप में दर्ज कर दिये गये। इससे काश्तकारी और अधिपति दोनों के हितों की रक्षा हो सकी। मैनोर में इन कर्मचारियों का उदय निश्चित रूप से कृषि वर्ग के भीतर उभर रहे विभेदीकरण का द्योतक था।

**प्रश्न 4. 'नाइट' कौन थे? सामन्ती व्यवस्था में उनके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–जॉर्ज दूबी के अनुसार नाइट्स 'सामन्ती शोषण का प्रमुख जरिया' थे। नाइट एक घुड़सवार सैनिक था, जो अपने पास एक लम्बा बरछा रखता था जो अपने हथियार से दुश्मनों को घायल करके निकल जाता था। अधिपतियों के लिये ये घुड़सवार सैनिक काफी महत्त्वपूर्ण थे, क्योंकि इस युग में राजवंशों और भू-सम्पदाओं या शहरी आक्रमण का खतरा हमेशा बना रहता था और घुड़सवार सैनिक इन अधिपतियों की रक्षा करते थे। घुड़सवारों की सामाजिक स्थिति अच्छी थी। अधिपति इन्हें किसानों से करों की वसूली में इस्तेमाल करता था।

नाइट बनने वाले बालक को सात वर्ष की उम्र में किसी बड़े सामन्त के यहाँ भेज दिया जाता था, जहाँ वह उच्च कुल के बालकों के साथ शिक्षा प्राप्त करता था। बालकों को ईश्वर और महिलाओं का सम्मान करना सिखाया जाता था। उन्हें नैतिक शिक्षा, संगीत, शिष्टाचार, लैटिन भाषा और सैनिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। उन्हें शारीरिक दृष्टि से मजबूत बनाया जाता था। 14 वर्ष की उम्र में उन्हें स्क्वायर का पद दिया जाता था। स्क्वायर का मुख्य कार्य अपने मालिक की रक्षा करना होता था।

10वीं शताब्दी के अन्त तक हिरण या जंगली सुअर के शिकार के साथ-साथ शौर्य प्रतियोगिता भी 'नाइटों' के मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया, जिसके द्वारा ये सैनिक युद्ध का अभ्यास भी करते थे। योग्यता सिद्ध करने के साथ-साथ कानूनी विवादों को सुलझाने के लिये इसका इस्तेमाल किया जाने लगा। विजयी दल या व्यक्ति के पक्ष में न्याय होता था। आमतौर पर दो नाइटों दलों के बीच प्रतिस्पर्द्धा आयोजित की जाती थी। विजयी दल पराजित के हथियार और घोड़े हासिल करने का अधिकार रखता था। चर्च को नुकसान पहुँचाने वाले, झूठी शपथ लेने वाले सदस्य, महिलाओं की इज्जत न करने वाले व्यापार करने वाले, कुलीन परिवार का सदस्य न हो, इस प्रतिस्पर्द्धा में भाग ले सकता था। कभी-कभी इस प्रतिस्पर्द्धा के पीछे राजनीतिक षड्यंत्र भी शामिल होता था। बड़े वीर योद्धा इस खेल में मारे जाते थे। चर्च ने इस खतरनाक खेल को बन्द करने का प्रयास किया था। 1192 में रिचर्ड-I ने इंग्लैण्ड में लाइसेन्सिंग व्यवस्था लागू की। इसके अलावा खतरनाक हथियारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 'जोस्ट' नामक प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा दिया गया, जिससे अस्त्र-शस्त्र से लैस दो घुड़सवार नाइट्स एक-दूसरे के सामने होते थे। जिसमें घुड़सवारी की प्रथा और हथियारों का उपयोग करने की योग्यता का परीक्षण होता था।

इन प्रतिस्पर्द्धाओं में धीरे-धीरे ही आदर्शीकृत आचार संहिता का उद्भव हुआ जिसे शिवैलयर यानी शौर्य के रूप में जाना जाता था। एक सच्चा नाइट युद्ध में छल नहीं करता था और निहत्थे पर आक्रमण नहीं करता था। यदि वह पराजित होता था या बंदी बना लिया जाता, तो उसे सम्मान से रखने की परम्परा थी, जब तक कि उसे मुआवजा देकर छुड़ा न लिया जाए। धीरे-धीरे जब चर्च भी धर्म युद्ध में शामिल होने लगे, तो ईश्वर के प्रति श्रद्धा और ईसाई सिद्धान्तों की रक्षा नाइट के कर्त्तव्यबोध और आचार संहिता में शामिल हो गये। 12वीं शताब्दी तक इस कर्त्तव्यबोध की सीमा का विस्तार हुआ और महिलाओं का सम्मान करना और निहत्थों की रक्षा करना भी इसमें शामिल हो गया। हालाँकि महिलाओं की यथाशक्ति रक्षा और सहायता करना, खासतौर पर जब वे अपने अधिकारों से वंचित की गयी हों या किसी प्रकार के कष्ट में हों, एक नाइट का परम कर्त्तव्य था। उनमें से किसी एक की ओर विशेष अनुराग दिखाना होता था। फिर उनकी महिमा या सम्मान बढ़ाने के लिये रोमांचकारी कार्य करके युद्ध और प्रतिस्पर्द्धाओं में विजय प्राप्त करनी होती थी। कर्त्तव्यबोध की यह आचार संहिता नाइट में आचरण के व्यवहार की एकमात्र निर्देशिका थी। यह जरूरी नहीं है कि वह नाइट इस आचरण का व्यवहार में पालन करना ही हो। 13वीं शताब्दी में आग्नेयास्त्रों का विकास होने से घुड़सवार और नाइटों द्वारा उपयोग किये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र का महत्त्व तेजी से बढ़ रहा था। बढ़ती वाणिज्यिक और शहरी संस्कृति के कारण नाइटहुड की क्षमता पर भी असर पड़ा और अब इन्हें बनाए रखना काफी खर्चीला साबित होने लगा। नाइटों के लिये बनाई गयी आचार संहिता मात्र समाज की आचार संहिता में परिणत हो गयी।

इस तरह हम देखते हैं कि नाइट ने सामंती व्यवहार में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

# सामंतवाद के चरण

22

## परिचय

मध्ययुगीन यूरोप की सामाजिक और आर्थिक जटिलताओं को समझने के लिये सामंतवाद की निरंतर परिवर्तित हो रही प्रक्रिया का अध्ययन करना होगा। *मार्क ब्लॉक* ने सामंतवादी व्यवस्था के दौरान निरंतर हो रहे परिवर्तन को दो चरणों में विभाजित किया है। प्रथम चरण में रोमन साम्राज्य का पतन और उत्तराधिकारी राज्य की स्थापना हुई, जो 11वीं शताब्दी के मध्य तक जारी रहा। इस काल में आधारभूत सामाजिक व्यवस्था बनी रही और संगठित ग्रामीण क्षेत्र उभरकर सामने आया, जहाँ व्यापार का महत्त्व नहीं था। सिक्कों का भी महत्त्व नहीं था। वेतनभोगी मजदूर वर्ग समाप्त हो चुका था।

इस युग में कृषि अर्थव्यवस्था में अधिशेष बहुत कम पैदा हो रहा था। बाजार के लिये उत्पादन न के बराबर होता था। लगान मजदूरी अथवा वस्तु के रूप में दिया जाता था। अधिशेष उत्पादन में मात्रा इतनी कम थी कि वह सिर्फ भूमिपति अभिजात वर्ग की सत्ता और हैसियत को बनाये रखने तक ही सीमित थी। विलासिता की वस्तुओं की माँग काफी कम हो गयी थी, क्योंकि उच्च वर्ग के पास नकद धन नहीं था। मुद्रा का प्रचलन काफी कम हो गया था। परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोपीय जीवन ग्रामीण और स्थानीय हो गया।

दूसरे चरण का काल 11वीं शताब्दी के मध्य से 14वीं शताब्दी का अंत है। इस चरण में जनसंख्या में वृद्धि, अधिक कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता, तकनीकी विकास, व्यापार की शुरुआत, मुद्रा अर्थव्यवस्था का प्रसार और उत्पादनकर्त्ता पर व्यापारियों की सामाजिक श्रेष्ठता इसके बदलाव का कारण था। यह समाज को वर्गों में बांधकर सीमित कर रहा था, जबकि अर्थव्यवस्था तेजी से विकसित हो रही थी। व्यापार-वाणिज्य का धीरे-धीरे विकास हो रहा था। कृषि दास मुक्त हो रहे थे। 1160 में कृषि अधिशेष में बढ़ोतरी हुई। शहरी और ग्रामीण परिवेशों में अन्तर आया। मुद्रा अर्थव्यवस्था का प्रसार हुआ।

प्रथम चरण (9वीं से 11वीं शताब्दी) में ग्राम की प्रधानता थी। सारे कार्य श्रम पर आधारित थे। उत्पादन बाजार के लिये नहीं, बल्कि निजी उपभोग के लिये किया जाता था।

कृषिगत तकनीकी विकास और औजार अपर्याप्त और कम असरदार होने के कारण उत्पादन केवल जीवन-निर्वाह तक सीमित हो गया था। कड़ी मिट्टी होने के कारण खेतों को तीन-चार बार जोतना जरूरी होता था जिसमें काफी ऊर्जा लगानी पड़ती थी। खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के औजारों का उपयोग किया जाता था। सीमित रूप में प्राकृतिक उर्वरकों का उपयोग होता था। किसानों के पास कीटनाशक दवाइयाँ नहीं होती थीं। वे कबूतर और पंडुक पालते थे, जो कीड़ों से फसलों की रक्षा करते थे और सीमित मात्रा में बेहतर उर्वरक उपलब्ध कराते थे। जमीन की उर्वरता को बनाये रखने के लिये भूमि परती छोड़ने की प्रथा थी, परन्तु परती छोड़ने से जमीन पर झाड़-झंखाड भी पैदा हो जाते थे। तकनीकी रूप पिछड़ेपन के साथ-साथ खेती में मौसम की मार सहनी पड़ती थी।

गहरी जुताई का कार्य नहीं हो पाता था, क्योंकि हलों में अधिकांश मात्रा में पकाई हुई लकड़ी का उपयोग हो रहा था। हालांकि हलों में लोहा लगाने की शुरुआत हो चुकी थी। विषम फाल लगे भारी हल और पहिएदार मोल्डबोर्ड (ढेले तोड़ने का पटेला) जिसे एक से ज्यादा जानवर खींचा करते थे, इस दिशा में प्रगति का सूचक है। छठी शताब्दी तक इटली की पो घाटी व 8वीं शताब्दी में राइनलैंड में इसका उपयोग होने लगा था। इससे बढ़िया जुताई हो जाती थी। लोहे के फाल के कारण हल से मिट्टी के अन्दर गहरी जुताई होती थी और मिट्टी में मौजूद खनिज पदार्थ का इस्तेमाल हो पाता था। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप की उपजाऊ, भारी और नम मिट्टी के लिये इसका उपयोग जरूरी था। वन क्षेत्र और दलदल क्षेत्रों में भी खेती किया जाना संभव हो सका। गहरी जुताई से मिट्टी काफी मात्रा में पानी सोखती थी और जोत के आकार के कारण मिट्टी का कटाव भी कम होता था और उत्तरी यूरोप में

खेती को भारी वर्षा से सुरक्षा भी प्राप्त होती थी। मोल्डबोर्ड युक्त हल को खींचने के लिये किसानों को एक से अधिक बैल पालने पड़ते थे।

1000 ई. के आस-पास कुछ तकनीकी विकास हुआ, जिसके कारण जानवरों का बेहतर उपयोग किया जाना संभव हो सका। अब बैल के स्थान पर घोड़ों का उपयोग किया जाने लगा। घोड़े के लिये नाल के आविष्कार ने घोड़े के खुर को रक्षा प्रदान की। पट्टों के उपयोग से अब घोड़ा बेहतर ढंग से बोझ खींच सकता था। एक-दूसरे से जुड़े पट्टे से गाड़ी में कई घोड़े जोते जा सकते थे। घोड़े से खेत जोतने का रिवाज न बहुत तेजी बढ़ा और न बहुत लोकप्रिय हुआ, क्योंकि घोड़ों की कीमत अधिक होती थी और इनका रखरखाव काफी महँगा होता था। 13वीं शताब्दी दक्षिणी फ्रांस और भू-मध्यसागरीय क्षेत्र के खेतों को निर्बाध रूप से बैल और खच्चर जोतते थे।

हल और बोझा खींचने वाले जानवरों की कीमत अधिक होने के कारण एक परिवार हल-बैल का सम्पूर्ण खर्च नहीं उठा सकता था अत: सारा गाँव खेत एक साथ जोतता था। एक-दूसरे की जमीन के बीच फर्क नहीं किया जाता था। गाँव में चारों ओर खुले खेत होते थे। फसल कट जाने के बाद उन खेतों में गाँव के जानवर चरते थे। जंगल से गाँव के लोग लकड़ी, फल, खरगोश, खरहा और अपने जानवरों के लिये चारा लाते थे। खेती कार्य गाँव के लोग सामूहिक रूप से करते थे। किसानों के बीच खेतों का समान वितरण नहीं था। खेत दो प्रकार के होते थे–एक खेत को बसंत के आरम्भ में जोता जाता था और फसल लगायी जाती थी। दूसरे खेत को जोता जाता था, परन्तु उसमें फसल नहीं लगायी जाती थी। इसकी उर्वरता पुन: प्राप्त करने के लिये इसे परती छोड़ दिया जाता था। इन परती खेतों में झाड़-झंखाड़ का उपयोग चारे के रूप में किया जाता था। कीड़े-मकोड़े खेत में घूमते थे जिससे खेत को खाद भी प्राप्त होती थी। पुन: जुताई से झाड़-झंखाड़ जमीन के नीचे दब जाते थे, जो भूमि की उर्वरता को बढ़ाने में सहायक होते थे।

9वीं और 10वीं शताब्दी में खेत के उपयोग में बढ़ोतरी की गयी। अब खेत को तीन भागों में बाँटकर तीन फसल ली जाने लगी। बीन्स, शीत ऋतु में उपजाए जाने वाले गेहूँ और ग्रीष्म ऋतु में उपजाए जाने वाले गेहूँ बोए जाने लगे और एक खेत परती छोड़ दिया जाता था। अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिये फसल चक्र प्रक्रिया को अपनाया गया। अब किसानों द्वारा बीन्स और अरहर की खेती करने से मिट्टी की उर्वरता को बनाये रखने में मदद मिली। इन फलियों से मिट्टी में नाइट्रोजन का तत्त्व बढ़ने लगा और बेलें झाड़-झंखाड को बढ़ने से रोकती थीं। इन फसलों से लोगों को प्रोटीन और जानवरों को जाड़े के दिनों में चारा मिलता था। लोहे के बढ़ते उपयोग और पवन चक्की के उपयोग से खेती के कार्य में तकनीकी विकास हुआ।

नये तरीके की अर्थव्यवस्था अर्थात् भरण-पोषण के इस्तेमाल के बावजूद अधिशेष बहुत थोड़ा ही बच पाता था। अभी भी कृषि उत्पादन, परिवहन व्यवस्था और वितरण की तकनीक का स्तर काफी निम्न था। जहाजों की भारवाहक क्षमता में वृद्धि हुई, परन्तु उनकी संख्या अभी कम थी। 1280 के बाद कम्पास, क्वाड्रैंट और समुद्री एस्ट्रोलेब ने समुद्री परिवहन को आसान बनाया। मनुष्य का शारीरिक श्रम ऊर्जा का प्रधान स्रोत था। पौष्टिक भोजन की कमी, चिकित्सा सुविधाओं की कमी, जीवन प्रत्याशा काफी कम थी। अभी भी जीवन-निर्वाह कृषि अर्थव्यवस्था थी।

दूसरे चरण अर्थात् 11वीं से 14वीं शताब्दी में कृषि उपज में तथा जनसंख्या में वृद्धि हुई। सामुदायिक उत्पादन के स्थान पर किसान निजी तौर पर खेती करने लगे और बाजार के लिये उत्पादन किया जाने लगा। गैर-कृषीय वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। सामाजिक ढाँचे में भी बदलाव आया।

जनसंख्या में वृद्धि 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य तक चली। 10वीं शताब्दी में कबीलाई आक्रमणों में तेजी से कमी आयी, जिससे क्षेत्र में शांति और सुरक्षा का वातावरण बना। सामाजिक संस्थानों ने भी क्षेत्र में शांति और सुरक्षा बहाल करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। किसान परिवारों पर लगे कानूनी प्रतिबंधों में ढील दी गयी, जिससे इस प्रक्रिया को बढ़ावा मिला।

तकनीकी विकास से कृषि उत्पादन के तरीके में धीरे-धीरे सुधार आया। अब अधिशेष में वृद्धि हुई। अब बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए अनाज उपलब्ध था। 1200 ई. के आस-पास जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। फ्रांस की जनसंख्या 120 लाख से बढ़कर 210 लाख, जर्मनी की जनसंख्या 80 लाख से बढ़कर 140 लाख और इंग्लैण्ड की जनसंख्या 22 लाख से बढ़कर 45 लाख हो गयी।

11वीं और 12वीं शताब्दी के बीच बड़े पैमाने पर जंगलों को साफ कर, उन्हें कृषि योग्य भूमि में तब्दील किया गया। *गौफ* के अनुसार उत्पादन में वृद्धि के लिये कृषि के साधनों में खास परिवर्तन नहीं हुआ था और खेती के औजार अभी भी पुराने थे। इस स्थिति में ज्यादा क्षेत्रों में कृषि करके ज्यादा उत्पादन किया जा सकता था।

स्पेन और दक्षिण फ्रांस में मरुस्थलीय क्षेत्र को सींचकर कृषि योग्य बनाया। वेल्स और पूर्वी जर्मनी में बड़े पैमाने पर जंगल काटे गये और फ्लैन्डर्स में समुद्र से प्राप्त जमीन को बड़े श्रमपूर्वक खेतों में तब्दील किया गया। जहाँ एक ओर किसान ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों में खेती करना चाह रहे थे, वहीं अधिपति अपने संसाधनों को बढ़ाने की जरूरत महसूस कर रहे थे। खेती करने के तरीकों में

www.neerajbooks.com



परिवर्तन आया। अब छोटे-छोटे खेतों में भी खेती की जाने लगी। पशुपालन को बेहतर ढंग से संगठित और सुनियोजित किया गया।

कृषि योग्य भूमि के विस्तार और बेहतर तकनीकी के इस्तेमाल ने खेती करने के तरीके में परिवर्तन किया। अब किसानों के लिये सामूहिक रूप से खेती करना अनिवार्य नहीं रह गया था और निजी तौर पर भी खोती का कार्य किया जाने लगा। इस तरह कृषि क्षेत्र में व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला। मुक्त क्षेत्रों और अभ्यारण्यों, जहाँ पर बसने वाले लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, 'बर्गसेज' का दर्जा दिया गया और रहने के लिये उन्हें कर राहत दी गयी। अधिपतियों को भी करों में कमी और अपनी माँगों में कमी लाने के लिये मजबूर किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को आजादी का अहसास होने लगा।

नये प्रकार की काश्तकारी व्यवस्थाएं, भूमि कर या लगान और बंटाई पर आधारित हो गयीं। सालाना लगान या तो निश्चित होता था या फिर उपज पर आधारित होता था। जनसंख्या में वृद्धि के साथ कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई।

12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिपतियों ने कुछ प्रचलित लोकाचार नियम बनाये। अपनी वित्तीय शक्तियों को नियमित किया और दासत्व के मजबूत गठबंधन को थोड़ा ढीला किया। इन रियायतों से किसान परिवारों की संख्या बढ़ी। ग्रामीणों के अधिकार बढ़ गए। ग्रामीण जनता के पास अधिक धन संगृहीत होने लगा।

जनसंख्या में वृद्धि ने खेतों का बँटवारा शुरू कर दिया। दूसरी ओर ग्रामीण लोगों के आवागमन में भी तेजी आयी। श्रमिकों की कमी से खेतों को कोई मूल्य नहीं था। मालिक वर्ग ने मजदूरों के आवागमन पर प्रतिबंध लगाना शुरू कर दिया। 12वीं और 13वीं शताब्दियों के बीच अधिक उत्पादकता वाले खेतों की संख्या में वृद्धि हुई और श्रमिकों की आपूर्ति में वृद्धि होने से दासता से मुक्ति की प्रक्रिया में तेजी आयी।

कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास और आविष्कारों से न केवल उत्पादन में वृद्धि हुई, बल्कि इसने किसानों की उत्पादकता को इस हद तक बढ़ा दिया कि अब कम लोग खेती में संलग्न रहकर ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर सकते थे और ज्यादा से ज्यादा लोग गैर-कृषि कार्यों में लग सकते थे।

शहरों में गैर-कृषि कार्यों में लगे लोग, व्यापारी, शिल्पी, महाजन, चिकित्सक, वकील आदि की सामाजिक स्थिति भी मजबूत हो गयी। कालान्तर में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर एक प्रभावशाली और शक्तिशाली शहरी समुदाय के रूप में उभरकर सामने आये और महाजनी करने लगे। कुलीन वर्ग तथा उच्च एवं पुजारियों की भी वित्तीय संकट के समय धन से मदद करते थे। यह कार्य यहूदियों द्वारा किया जाता था, क्योंकि इन पर ईसाई धर्म की तरह किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। अधिशेष की वृद्धि से लम्बी दूरी का व्यापार शुरू हुआ। इस दौरान मुख्य रूप से दास, कपड़ा और ऊन तथा चाँदी का निर्यात किया जाता था।

सामंती युग के दौरान उपभोग के लिये कर्ज लिये जाते थे। ईसाई धर्म के अनुसार उपभोग हेतु लिये जाने वाले कर्ज पर ब्याज नहीं लिया जा सकता था। ऐसा करने पर इसका विरोध किया जाता था। क्योंकि यह ईसाई धर्म के खिलाफ था। अभिजात वर्ग अपने अतिरिक्त लाभ को अपने शौर्य प्रदर्शन करने में, उपहारों, भीख तथा ईसाईयत के नाम पर दान कर देते थे। इस प्रकार, यह धन गैर-सृजनात्मक आर्थिक विकास कार्यों में लगता था। हालांकि यह धन विपरीत परिस्थितियों में काम आता था। परन्तु यह कोई निरन्तर और नियमित उत्पादक गतिविधि नहीं बन पाता था, इस प्रकार उच्चस्थ पादरी वर्ग चर्च बनाने, मरम्मत करने तथा विलासितापूर्ण जीवनयापन करने में धन खर्च करते थे, हालांकि चर्च की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा गरीबों के जीवनयापन के लिये होता था।

चर्च और कुलीन वर्ग विलासिता की वस्तुओं को खरीदने के लिये मुद्रा खर्च करते थे। किसानों के पास थोड़ा धन होता था, जिससे वे नमक जैसी आवश्यक वस्तुओं को खरीदते थे। वस्तु विनिमय तत्त्व बहुत कठिनाई से मिलता था। 13वीं शताब्दी में सोने के सिक्के फिर से बनाये जाने लगे। वेनिस, फ्लोरेंस फ्लैंडर्स, इंग्लैण्ड, फ्रांस और बोहेमिया में चाँदी के सिक्कों का प्रचलन शुरू हुआ। 12वीं शताब्दी मुद्रा का प्रचलन तेजी से शुरू हुआ। अदालतों में टकरावों को सुलझाने के लिये धन लिया जाता था। मजदूरी का नकद भुगतान होने लगा। चाम्पटर्स के स्थान पर नई लगान व्यवस्था शुरू हुई।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. सामंतवाद के दो प्रमुख चरणों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।**

**उत्तर**–सामंतवाद के प्रथम चरण में श्रम की प्रधानता थी। सारे कार्य श्रम पर आधारित थे। उत्पादन अधिशेष नहीं बचता था। उत्पादन बाजार के लिये नहीं, बल्कि निजी उपभोग के लिये किया जाता था। पहला चरण 9वीं से 11वीं शताब्दी तक माना जाता है।

कृषीय तकनीकी विकास और औजार अपर्याप्त और कम असरदार होने के कारण उत्पादन केवल जीवन-निर्वाह तक ही सीमित हो गया था। कड़ी मिट्टी होने के कारण खेतों को तीन-चार बार जोतना जरूरी हो गया था, जिसमें काफी ऊर्जा लगानी पड़ती थी। खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के औजारों का उपयोग किया जाता था। खुरपी, हंसुआ, फावड़े और मिट्टी के ढेलों को फोड़ने वाला पटेला और खेत को गहराई से जोतने और उसमें से खर-पतवार, कंकड़-पत्थर निकालने के लिये प्रमुख औजार थे। कृत्रिम रासायनिक खाद का प्रचलन नहीं

www.neerajbooks.com

था। सीमित रूप में प्राकृतिक उर्वरकों का उपयोग होता था। खेतों को काटने और जलाने या फिर जले हुए स्थानों पर खेती करने के अलावा मिट्टी की उर्वरता की समस्या लगातार बनी रहती थी। किसानों के पास कीटनाशक दवाइयाँ नहीं होती थीं। वे कबूतर और पंडुक पालते थे, जो कीड़ों से फसलों की रक्षा करते थे और सीमित मात्रा में बेहतर उर्वरक उपलब्ध कराते थे। जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये उसे परती छोड़ने की प्रथा थी, परन्तु जमीन परती छोड़ने से उसमें झाड़-झंखाड़ भी पैदा हो जाते थे।

फसल को मौसमी मार भी झेलनी पड़ती थी। बसन्त ऋतु में खेतों में यदि ज्यादा नमी रह जाती थी, तो जुताई के लिये कम समय मिलता था और नमी रहने की स्थिति में बीज सड़ जाता था। बेमौसम बरसात होने पर फसलों को काटने, सुखाने और इसमें अनाज निकालने में कठिनाई होती थी।

हलों में लोहे का इस्तेमाल शुरू हो गया था, परन्तु अधिकांश भाग में पकाई हुई लकड़ी का ही उपयोग होता था, जिससे गहरी जुताई करने में कठिनाई होती थी।

कृषि क्षेत्र में धीरे-धीरे तकनीकी विकास हो रहा था। अब विषम फाल लगे भारी हल और पहिएदार मोल्डबोर्ड (ढेले तोड़ने का पटेला) जिसे एक से ज्यादा जानवर मिलकर खींचा करते थे का प्रयोग होने लगा। निश्चित रूप से कृषि के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी प्रगति का सूचक है। लोहे के फाल के उपयोग ने गहरी जुताई को सम्भव बनाया। अब मिट्टी में मौजूद खनिजों का अधिक बेहतर इस्तेमाल हो पाता था। इसके उपयोग से जंगली या वन क्षेत्र और दलदली क्षेत्रों में भी खेती किया जाना सम्भव हो गया।

भारी हल और मोल्डबोर्ड युक्त हल को खींचने के लिये चार से आठ जानवर लगाने पड़ते थे। कुछ ही किसान इन भारी हलों को खींचने के लिये एक से ज्यादा संख्या में बैल रख सकते थे। इस काल में पशुपालन को बढ़ावा मिला।

1000 ई. के आसपास कृषि के क्षेत्र में तकनीकी विकास ने जानवरों का बेहतर उपयोग सम्भव बनाया। अब बैलों के स्थान पर घोड़ों का उपयोग किया जाने लगा। घोड़े तेजी से जुताई कर सकते थे। घोड़ों के लिये नाल का आविष्कार हुआ। नाल ने घोड़ों के खुरों को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। पट्टों के उपयोग से अब घोड़ा अपने कंधे के सहारे बोझा खींच सकता था। पट्टों के उपयोग से एक साथ कई घोड़ों को जोता जाने लगा। घोड़े से खेत जोतने की प्रथा तेजी से बढ़ी परन्तु घोड़े काफी कीमती होते थे और इनका रखरखाव काफी खर्चीला होता था। इसे जुए पर टिकाना मुश्किल होता था। दक्षिणी फ्रांस और भूमध्यसागर में निर्बाध रूप से बैल और खच्चर खेत ही जोतते रहे।

**कृषीय उत्पादन का संयोजन और संगठन**–इस चरण में सामूहिक कृषि का प्रचलन था। हल और खींचे जाने वाले जानवरों की कीमत अधिक होने के कारण एक परिवार हल-बैल का सम्पूर्ण खर्च नहीं जुटा सकता था अतः सारे गाँव के खेत एक साथ जोते जाते थे। एक-दूसरे की जमीन को किसी सीमा के द्वारा बांधा नहीं जाता था।

जंगलों का काफी महत्त्व था। जंगलों से गाँव के लोग लकड़ी, फल, खरगोश, खरहा और अपने जानवरों के लिये चारा लाते थे।

एक परिवार को दोनों प्रकार के खेतों में हिस्सा जरूर मिलता था। एक खेत को बसन्त के आरम्भ में जोता जाता था, परन्तु उसमें फसल नहीं लगायी जाती थी। इसकी उर्वरता पुनः प्राप्त करने के लिए परती छोड़ दिया जाता था। इस परती भूमि के झाड़-झंखाड़ का उपयोग चारे के रूप में किया जाता था। खेतों की जुताई में झाड़-झंखाड़ जमीन के नीचे दब जाते थे, जो भूमि की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होते थे।

अब खेत को तीन भागों में बाँटकर तीन फसल ली जाने लगी। बीन्स, शीत ऋतु में उपजाए जाने वाला गेहूँ और ग्रीष्म ऋतु में उपजाये जाने वाला गेहूँ बोया जाने लगा।

अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिये फसल-चक्र प्रक्रिया को अपनाया गया। बीन्स और मटर की खेती करने से मिट्टी की उर्वरता को बनाये रखने में मदद मिली। इन फलियों से मिट्टी में नाइट्रोजन का तत्त्व बढ़ने लगा। इन फसलों को प्रोटीन युक्त पौष्टिक स्वाद मिलने लगा। पनचक्की और लोहे के बढ़ते उपयोग से खेती के कार्य में तकनीकी विकास हुआ।

कृषि उत्पादन, परिवहन व्यवस्था और वितरण की तकनीक का स्तर काफी निम्न था। जहाजों की भार वहन क्षमता में वृद्धि हुई, परन्तु उनकी संख्या अभी भी कम थी। 1280 के बाद कम्पास, क्वाड्रैंट और समुद्री एस्ट्रोलोब ने समुद्री परिवहन को आसान बनाया।

अभी भी जीवन-निर्वाह कृषि अर्थव्यवस्था थी। पौष्टिक भोजन व चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के कारण जीवन प्रत्याशा अभी भी कम थी।

**दूसरा चरण, 11वीं एवं 14वीं शताब्दी**–दूसरे चरण में कृषि उपज तथा जनसंख्या में वृद्धि हुई। सामुदायिक कृषि कार्य के स्थान पर किसान निजी तौर पर खेती करने लगे और बाजार के लिये उत्पादन किया जाने लगा। गैर-कृषीय वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। सामाजिक ढांचे में बदलाव आया।

जनसंख्या वृद्धि 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य तक चली। 10वीं शताब्दी में कबीलाई आक्रमणों में तेजी से कमी आयी, जिससे क्षेत्र में शान्ति और सुरक्षा का वातावरण बना। सामाजिक संस्थाओं ने भी शान्ति और सुरक्षा बहाल करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। किसान परिवार में लगे कानून प्रतिबन्धों में ढील दी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



गयी, जिससे इस प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। फ्रांस की जनसंख्या 120 लाख से बढ़कर 210 लाख, जर्मनी की जनसंख्या 80 लाख से बढ़कर 140 लाख और इंग्लैण्ड की जनसंख्या 22 लाख से बढ़कर 45 लाख हो गयी।

11वीं और 12वीं शताब्दी के बीच बड़े पैमाने पर खेतों को साफ कर उसे कृषि योग्य भूमि में तब्दील किया गया। स्पेन और दक्षिण फ्रांस में मरुस्थलीय क्षेत्र को सींचकर सिंचाई योग्य बनाया। छोटे-छोटे खेतों में भी खेती की जाने लगी। पशुपालन को बेहतर ढंग से संगठित और सुनियोजित किया गया।

अब खेती निजी तौर पर भी की जाने लगी। इस तरह कृषि क्षेत्र में व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को आजादी का अहसास होने लगा। नये प्रकार की काश्तकारी व्यवस्थाएँ, भूमि कर या लगान और कटाई पर आधारित हो गयी। सालाना लगान या तो निश्चित होता था या फिर उपज पर आधारित होता था।

कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास और आविष्कारों किसानों की उत्पादकता बढ़ा दी। अब कम से कम लोग खेती में संलग्न रहकर ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर सकते थे और ज्यादा से ज्यादा लोग गैर-कृषि कार्यों में लग सकते थे।

शहर में गैर-कृषि कार्यों में लगे लोग व्यापारी, शिल्पी, महाजन, चिकित्सक, वकील आदि धनी थे और इनकी सामाजिक स्थिति भी मजबूत हो गयी। ये आर्थिक स्तर पर एक प्रभावशाली और शक्तिशाली शहरी समुदाय के रूप में उभरकर सामने आये। महाजनी करने वाले लोग कुलीन वर्ग तथा उच्चस्थ पुजारियों को भी वित्तीय संकट के समय धन से मदद करते थे। यह कार्य यहूदियों द्वारा किया जाता था, क्योंकि इस पर ईसाई धर्म की तरह किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। अधिशेष की वृद्धि ने लम्बी दूरी का व्यापार शुरू किया।

सामन्ती युग के दौरान उपभोग के लिये कर्ज लिये जाते थे। ईसाई धर्म के अनुसार उपभोग हेतु लिये जाने वाले कर्ज पर ब्याज नहीं लिया जा सकता था और आर्थिक लाभ कमाने के उद्देश्य से भी कर्ज नहीं लिया जा सकता था।

अभिजात वर्ग अपने अतिरिक्त लाभ को अपने शौर्य प्रदर्शन करने में उपहारों, भीखों और ईसाईयत के नाम पर दान कर देते थे। यह धन गैर-सृजनात्मक आर्थिक विकास कार्यों में लगता था। उच्चस्थ पादरी वर्ग चर्च बनाने, चर्च की मरम्मत करने तथा विलासितापूर्ण जीवनयापन करने के लिये धन खर्च करते थे। हालाँकि चर्च की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा गरीबों के जीवनयापन के लिये होता था।

चर्च और कुलीन वर्ग विलासिता की वस्तुओं को खरीदने के लिये मुद्रा खर्च करते थे। सिक्कों का प्रचलन सीमित मात्रा में होता था। वेनिस, फ्लोरेंस, फ्लैंडर्स, इंग्लैण्ड, फ्रांस और बोहेमिया में 12वीं शताब्दी में चाँदी के सिक्कों का प्रचलन शुरू हुआ।

अर्थव्यवस्था के विकास से कृषकों का स्तरीकरण हुआ और पूरे समाज में असमानता का विकास हुआ। नई कृषि योग्य भूमि बनाने वाले किसानों को रियायतें और स्वतंत्रता दी गयी। अब मजदूरों को अधिपतियों के यहाँ काम करना जरूरी नहीं था। नियमित शुल्क देकर काम से छुटकारा पाया जा सकता था। सेवाओं के बदले में नकदी दी जाने लगी। अब मजदूर खेती के अलावा अन्य कार्य भी कर सकते थे और अधिपति इन शुल्कों का उपयोग मजदूरों की मजदूरी भुगतान में प्रयोग था। छोटे किसानों की आर्थिक निर्भरता बढ़ी और उनकी आर्थिक स्थिति खराब हुई।

बड़े किसान के अलावा कई नागरिक शक्तिशाली अधिपतियों और बड़े शहरों के गिरजाघर, छोटे और मंझोले किसान आदि नाइट वर्ग के बल पर अमीर बने, जिन्होंने कर्ज में डूबकर अपनी जमीन बेच दी थी। अधिपतियों के स्तरीकरण और विभाजन इस काल की प्रमुख विशेषता थी। अभिजात वर्ग में नाइट और लॉर्ड या मिलिटेस और बेलाटौर्स का विभेदीकरण बढ़ा, जिनकी वे सेवा करते थे। साथ ही साधारण और छोटे अधिपतियों के बीच भी काफी भेद बढ़ गया। सामन्ती वर्ग विशेषाधिकारों पर ही आश्रित होता चला गया।

**प्रश्न 2. कृषि प्रौद्योगिकी में हुये परिवर्तनों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–मार्क ब्लॉक ने सामन्ती व्यवस्था के दौरान निरन्तर हो रहे परितर्वनों को दो चरणों में विभाजित किया है। प्रथम चरण में कृषीय तकनीकी विकास और औजार अपर्याप्त और कम असरदार होने के कारण उत्पादन केवल निर्वाह तक ही सीमित हो गया था।

खेत को उपजाऊ बनाने के लिये खुरपी, हंसुआ, फावड़े और मिट्टी के ढेलों को फोड़ने वाला पटेला और खेत को गहराई से जोतने और उसमें से खर-पतवार, कंकड़-पत्थर निकालने के लिये प्रमुख औजार थे। प्राकृतिक उर्वरकों का सीमित उपयोग होता था। खेतों को काटने और जलाने या फिर जले हुए स्थान पर खेती करने के कारण मिट्टी की उर्वरता की समस्या लगातार बनी रहती थी। कीटनाशक दवाइयाँ उपलब्ध नहीं थीं। वे कबूतर और पंडुक पाला करते थे, जो न केवल कीटों को खाते थे, बल्कि बागानों में उपयोग के लिए थोड़ी मात्रा में बेहतर उर्वरक उपयोग कराते थे। जमीन की उर्वरता को बरकरार रखने के लिये उसे परती छोड़ने की प्रथा थी।

1000 ई. के आसपास हलों में लोहा लगाने की शुरुआत सीमित मात्रा में हो चुकी थी। विषम फाल लगे भारी हल और पहिएदार मोल्डबोर्ड जिसे एक से ज्यादा जानवर खींचा करते थे, जुताई के क्षेत्र में प्रगति का सूचक था। इसमें लगे पहिए, हल के फाल और भूमि में बेहतर तालमेल बनाए रखते थे और बढ़िया

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

जुताई हो जाती थी। यह मिट्टी को पलटता था। लोहे के फाल के कारण हल से मिट्टी के अन्दर गहरी जुताई होती थी और इस प्रकार मिट्टी में मौजूद खनिजों का अधिक इस्तेमाल हो पाता था और इसके बाद परम्परागत आड़ी-तिरछी दुहरी जुताई की कोई आवश्यकता नहीं रही। इससे खेतों में निकल आये झाड़-झंखाड़ की जड़ें भी ऊपर आ जाती थीं और वे फिर धीरे-धीरे खत्म हो जाते थे। उत्तर-पश्चिमी यूरोप की उपजाऊ, भारी और नम मिट्टी के लिये इसका उपयोग जरूरी था। इसके उपयोग से जंगली या वन क्षेत्र और दलदली क्षेत्रों में भी खेती किया जाना सम्भव हो गया।

1000 ई. के आसपास हुए तकनीकी विकास ने जानवरों का बेहतर उपयोग सम्भव बनाया। अंत में बैलों के स्थान पर घोड़ों का उपयोग किया जाने लगा और उनसे ज्यादा काम लिया जा सका। घोड़े के लिये नाल का आविष्कार हुआ, जो घोड़े के खुर की रक्षा करता था। पट्टे को उपयोग से अब घोड़ा अपने कन्धों के सहारे बोझ खींच सकता था। एक-दूसरे से जुड़े हुए पट्टों की भी शुरुआत हुयी, जिसके कारण एक ही गाड़ी में कई घोड़े जोते जा सकते थे। घोड़ों से अधिक जोत लेने के बावजूद घोड़े से खेत जोतने की प्रथा न तो बहुत तेजी से बढ़ी और न बहुत लोकप्रिय हुई क्योंकि एक तो घोड़े की कीमत बहुत ज्यादा होती थी और दूसरे इसे जुए पर टिकाना मुश्किल होता था। 13वीं शताब्दी तक दक्षिणी फ्रांस और भू-मध्यसागरीय क्षेत्रों के खेतों को निर्बाध रूप से बैल और खच्चर ही जोतते रहे।

**प्रश्न 3. आबादी की वृद्धि और कृषि के विस्तार पर पड़ने वाले इसके प्रभाव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–आबादी में वृद्धि 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य तक चली। 10वीं शताब्दी में कबीलाई आक्रमणों में तेजी से कमी आयी, जिससे क्षेत्र में शान्ति और सुरक्षा का वातावरण बना। शान्ति और सुरक्षा प्रदान करने के लिये बनाए गये सामाजिक संस्थानों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। किसान परिवारों पर लगे कानूनी प्रतिबन्धों में ढील दिये जाने से भी इस प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। प्रौद्योगिक विकास से कृषीय उत्पादन के तरीकों में धीरे-धीरे सुधार आया, क्योंकि इसके बिना बढ़ती जनसंख्या का पेट भरना सम्भव नहीं था।

10वीं और 14वीं शताब्दी के मध्य पश्चिम की जनसंख्या दोगुनी हो गयी थी। 1200 ई. के आसपास जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। 1200 ई. और 1340 ई. के बीच फ्रांस की जनसंख्या 120 लाख से बढ़कर 210 लाख हो गयी थी। जर्मनी की जनसंख्या 80 लाख से बढ़कर 140 लाख और इंग्लैण्ड की जनसंख्या 22 लाख से बढ़कर 45 लाख हो गयी।

11वीं और 12वीं शताब्दी के बीच बड़े पैमाने पर जंगलों को साफ किया गया और उन्हें खेत में तब्दील किया गया। बड़ी संख्या में जनसंख्या के पलायन के बावजूद जमीन पर दबाव कम नहीं हो सका। गौफ के अनुसार, खेतों में उपज बढ़ाना जरूरी हो गया क्योंकि अभी उत्पादन बढ़ाने के लिये कृषि के साधनों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ था और खेती के औजार भी पुराने थे। इस स्थिति में ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों में खेती करके ही ज्यादा उत्पादन किया जा सकता था। स्पेन और दक्षिण फ्रांस के कई हिस्सों में मरुस्थली जमीनों को सींचा गया और उन्हें खेती योग्य बनाया गया। वेल्स और पूर्वी जर्मनी में बड़े पैमाने पर जंगल काटे गए और फलैंडर्स में समुद्र से प्राप्त जमीन को बड़े श्रमपर्वूक खेतों में तब्दील किया गया। बढ़ती आबादी के कारण जंगलों को साफ किया जाता था। किसान अधिक जमीन पर खेती करने को आतुर थे ताकि बढ़ती आबादी का पेट भरा जा सके, तो दूसरी ओर अधिपति भी अपने संसाधनों को बढ़ाने की जरूरत महसूस कर रहे थे। जमीन साफ करने की प्रक्रिया से खेती करने के तरीके में भी परिवर्तन आया और बड़े-बड़े खेतों में खेती करने के बजाए छोटे-छोटे खेतों में खेती की जाने लगी। पशुपालन को बेहतर ढंग से संगठित और सुनियोजित किया गया। 12वीं शताब्दी के अन्त में इनमें काफी कमी आयी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आबादी में वृद्धि ने कृषि विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

**प्रश्न 4. सामन्तवाद के दोनों चरणों में होने वाले कृषीय उत्पादन के संगठन और संयोजन की तुलना कीजिए।**

**उत्तर**–सामन्तवाद के प्रथम चरण में हल और खींचे जाने वाले जानवरों की कीमत अधिक होने के कारण एक ही परिवार हल-बैल का सम्पूर्ण खर्च नहीं उठा सकता था, अतः सारे गाँव के खेत एक साथ जोते जाते थे। एक-दूसरे के जमीन के बीच फर्क नहीं किया जाता था गाँव के चारों ओर खुले खेत में फसल कट जाने के बाद उन खेतों में जानवर चरते थे।

कृषि योग्य भूमि के विस्तार और बेहतर प्रौद्योगिकी के विकास ने खेती करने के तरीकों में परिवर्तन किया। अब किसानों के लिये सामूहिक रूप से खेती करना अनिवार्य नहीं रह गया और अब खेती निजी तौर पर भी की जाने लगी। इस प्रकार कृषि क्षेत्र में व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला। मुक्त क्षेत्रों और अभ्यारण्यों, वहाँ पर बसने वाले लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त था, उन्हें बर्गेसेज का दर्जा दिया गया और रहने के लिये उन्हें कर राहत दी गयी।

प्रथम चरण में लोग लकड़ी, फल, खरगोश, खरहा और अपने जानवरों के लिये चारा लाते थे। खेती का कार्य गाँव के लोग सामूहिक रूप से करते थे। किसानों के बीच खेतों का समान वितरण नहीं था। खेत दो प्रकार के होते थे। एक खेत को बसन्त के आरम्भ में जोता जाता था, परन्तु उसमें फसल नहीं लगायी जाती थी। इसकी उर्वरता पुनः प्राप्त करने के लिये इसे परती छोड़ दिया जाता था। परती भूमि के झाड़-झंखाड़ का उपयोग चारे के रूप में किया जाता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

द्वितीय चरण में ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को आजादी का आभास होने लगा। अधिपतियों की माँगों और करों में कमी लाने के लिये मजबूर किया गया। नये प्रकार की काश्तकारी व्यवस्थाएँ, भूमि कर लगान और बटाई पर आधारित हो गयी। सालाना लगान उपज पर आधारित होता था। जनसंख्या में कृषि के साथ-साथ कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई।

नवीं और दसवीं शताब्दी में खेत के उपयोग में बढ़ोतरी की गयी। अब खेत को तीन भागों में बाँटकर तीन फसल ली जाने लगी। बीन्स, शीत ऋतु में उपजाये जाने वाले गेहूँ और ग्रीष्म ऋतु में उपजाया जाने वाला गेहूँ बोया जाने लगा और एक खेत को परती छोड़ दिया जाता था। अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने के लिए फसल चक्र प्रक्रिया को अपनाया गया। अब किसानों द्वारा बीन्स और मटर की खेती करने से मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में मदद मिली। इन फलियों से मिट्टी में नाइट्रोजन का तत्त्व बढ़ने लगा और यह झाड़-झंखाड़ को बढ़ने से रोकता था। इन फसलों से लोगों को प्रोटीन और जानवरों को जाड़े के दिनों में चारा मिलता था। लोहे के बढ़ते उपयोग और पनचक्की के उपयोग से खेती के कार्य में तकनीकी विकास हुआ।

12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिपतियों ने कुछ प्रचलित लोकाचार नियम बनाये। अपनी वित्तीय शक्तियों को नियमित किया और दासत्व के मजबूत गठबन्धन को थोड़ा ढीला किया। इन रियायतों से किसान परिवारों की संख्या बढ़ी। ग्रामीणों के अधिकार बढ़े। ग्रामीण जनता के पास अधिक धन संगृहीत होने लगा। जनसंख्या में वृद्धि ने खेतों का बँटवारा शुरू कर दिया। दूसरी ओर ग्रामीण लोगों के आवागमन में भी वृद्धि आयी। श्रमिकों की कमी से खेती का कोई मूल्य नहीं था। मालिक वर्ग ने मजदूरों के आवागमन पर प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दिया। 12वीं शताब्दी और 13वीं शताब्दियों के बीच अधिक उत्पादकता वाले खेतों की संख्या में वृद्धि हुई और श्रमिकों की आपूर्ति में वृद्धि होने से दासता की मुक्ति प्रक्रिया में तेजी आई।

इस तरह, हम देखते हैं कि प्रथम चरण के कृषीय उत्पादन का संयोजन और संगठन द्वितीय चरण में अधिक विकसित अवस्था में था।

**प्रश्न 5. दूसरे चरण के दौरान अर्थव्यवस्था में होने वाले प्रमुख परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।**

**उत्तर**–दूसरे चरण की अर्थव्यवस्था में काफी विकास हुआ। अब अधिशेष उत्पादन होने लगा। अब ज्यादा से ज्यादा लोग गैर-कृषीय कार्य करने लगे। कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास और आविष्कारों से न केवल उत्पादन में वृद्धि हुई, बल्कि इसने किसानों की उत्पादकता को इस हद तक बढ़ा दिया कि अब कम लोग खेती में काम करके ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर सकते थे।

शहर में गैर-कृषीय कार्यों में लगे लोग व्यापारी, शिल्पी, महाजन, चिकित्सक, वकील आदि धनी हो गये और उनकी सामाजिक स्थिति भी मजबूत हो गयी। कालान्तर में वे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर एक प्रभावशाली और शक्तिशाली शहरी समुदाय के रूप में उभरकर सामने आये। इनमें से कई धन के लेन-देन का काम करते थे और जमीनों को गिरवी रखकर पैसा कमाते थे, जो कुलीन वर्ग के सदस्यों और उच्चस्थ पुजारियों को भी वित्तीय संकट में मदद करते थे और उनसे पैसा कमाते थे। यह काम खासतौर पर यहूदी लोग किया करते थे जिन पर ईसाई की तरह इस प्रकार के काम करने की मनाही नहीं थी। बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्य शुरू हुआ और लम्बी दूरी के व्यापारों का श्रीगणेश हुआ। इस दौरान मुख्य रूप से दास, कपड़ा और ऊन तथा चांदी का निर्यात प्रमुख था। जर्मन अपनी पूर्वी सीमा से दास पर्याप्त करते थे और इनका निर्यात करते थे। खासतौर पर कॉरदोब के खलीफा के यहाँ इनकी बड़ी माँग थी। लीले, बर्जेस और अरब शहरों में इंग्लैण्ड के बने ऊनी कपड़े निर्यात किये जाते थे और सैक्सोनी से चांदी का निर्यात होता था। इटली और रूस को नदियों के माध्यम से ये सामान पूरब के देशों को पहुंचाए जाते थे तथा वहाँ से रेशम और मसाला मँगवाया जाता था और इन्हें लाना भी अपेक्षाकृत आसान था।

सामन्ती युग के दौरान उपयोग के लिये कर्ज लिये जाते थे। ईसाई धर्म के अनुसार उपभोग हेतु लिये जाने वाले कर्ज पर ब्याज नहीं लिया जा सकता था। ऐसा करने पर इसका विरोध किया जाता था। आर्थिक लाभ के लिये कर्ज नहीं लिया जा सकता था, क्योंकि यह ईसाई धर्म के खिलाफ था। अभिजात वर्ग अपने अतिरिक्त लाभ को अपने शौर्य प्रदर्शन करने में, उपहारों में, भीखों व ईसाईयत के नाम पर दान कर देते थे। इस प्रकार यह धन गैर-सृजनात्मक आर्थिक विकास कार्यों में लगता था। हालांकि यह धन विपरीत परिस्थितियों में काम आता था। परन्तु यह निरन्तर और नियमित उत्पादन गतिविधि नहीं बन पाती थीं। हालाँकि चर्च की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा गरीबों के जीवनयापन के लिये होता था, जो सामन्ती शोषण के बिल्कुल निचले स्तर पर खड़े थे।

पश्चिम में मध्यकाल में मुद्रा पूरी तरह लुप्त नहीं हुई थी। चर्च और कुलीनों के अलावा भी लोग हमेशा विलासिता की वस्तुएँ खरीदने के लिये मुद्रा खर्च करते रहते थे। किसानों के पास भी थोड़ा-बहुत धन होता था, जिससे नमक जैसी जरूरी वस्तुएँ खरीदते थे, जो न तो वे उत्पादन कर सकते थे और न उन्हें यह कहीं से मिल सकता था। वस्तु-विनिमय के जरिए भी यह बहुत मुश्किल से मिल पाता था। परन्तु मुद्रा का प्रचलन कुल मिलाकर बहुत ही सीमित और कम था। बैल, गाय, कपड़ा और कालीमिर्च जैसी गैर-धातुगत मुद्राएँ अस्तित्व में थीं। प्रथम सामन्ती युग में

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



केवल अपने सैद्धान्तिक मूल्य के कारण ही मुद्रा का महत्त्व था, परन्तु इस दौरान उपलब्ध बहुमूल्य धातुओं के वास्तविक मूल्य के कारण इसका महत्त्व वेनिस, फ्लौरेंस, फ्लैंडर्स, इंग्लैण्ड, फ्रांस और बोहेमिया में चांदी के सिक्कों का प्रचलन शुरू हुआ। 11वीं शताब्दी और 12वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दामों में गिरावट आयी, जो अर्थव्यवस्था के एक स्वाभाविक चरण की ओर इशारा करती थी। 12वीं शताब्दी के मध्य मुद्रा अर्थव्यवस्था के चरण की फिर से शुरुआत हुई, जिसमें मुद्रा का तेजी से चलन हुआ और इससे प्रोत्साहित होकर अधिपतियों ने लगान से प्राप्त धन का उपयोग करना शुरू किया। निजी अदालतों में छोटे-छोटे विवादों को सुलझाने के लिये वे अपने काश्तकारों से धन लिया करते थे। चाम्पर्ट्स (Champarts) के स्थान पर नई लगान व्यवस्था लागू हुई और मजदूरी का नकद भुगतान होने लगा। इस प्रकार नकद धन जमा होने लगा। यह नकद धन वे विभिन्न जरिए से किसानों से प्राप्त करते थे। इसके बावजूद सामन्ती युग में मुद्रा का अंश काफी कम रहा।

**प्रश्न 6. सामाजिक स्तरीकरण से आप क्या समझते है?**

**उत्तर**–अर्थव्यवस्था के विकास से कृषकों का स्तरीकण हुआ और पूरे समाज में असमानता का विकास हुआ। नई कृषि योग्य भूमि बनाने वाले किसानों को रियायतें और स्वतंत्रता दी गयीं। सामंत किसानों से अब बेगार नहीं ले सकते थे। इसके बदले में अब नियमित शुल्क अदा करना पड़ता था। यह लिखित रूप से तय किया जाता था। अब सेवाओं के बदले नकदी दी जाने लगी। मजदूरों का अधिपति के यहाँ काम करना जरूरी नहीं था। अब वे नियमित शुल्क खेती के अलावा अन्य कार्य भी कर सकते थे और अधिपति इन शुल्कों का उपयोग मजदूरों की मजदूरी देने में करता था। किसानों को भी फायदा हुआ जिनके अधीन अकुशल खेतिहर मजदूर काम करते थे। छोटे किसानों की सामाजिक निर्भरता बढ़ी और उनकी आर्थिक स्थिति खराब हुई, जबकि बड़े किसानों के लिए संभावनाओं के द्वार खुल गये।

बड़े किसानों के अलावा कई नागरिकों, शक्तिशाली अधिपतियों और बड़े शहरों के गिरजाघर, छोटे और मंझोले किसान आदि नाइट वर्ग के बल पर अमीर बने, जिन्होंने कर्ज में डूबकर अपनी जमीन बेच दी थी। अधिपतियों में स्तरीकरण और विभाजन इस काल की प्रमुख विशेषता थी। अभिजात वर्ग में नाइट और लॉर्ड या मिलिटेस और बेलाटौर्स का विभेदीकरण बढ़ा, जिनकी वे सेवा करते थे। साथ ही साधारण और छोटे अधिपतियों के बीच भी काफी भेद बढ़ गया। साधारण अधिपति अपने जीवनयापन के लिये अपने सामंती विशेषाधिकारों पर ही आधारित होता चला गया, जबकि छोटे अधिपतियों ने बाजार की माँग के अनुसार अपने को ढाला और इसके लिये उत्पादन करना शुरू किया।

आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन से व्यापारियों और शिल्पी वर्ग को फायदा हुआ। किसान बेहतर परिवेश में काम करने लगे गैर-कृषि उत्पादन कार्य शुरू हुआ। यूरोप में युद्ध का दौर भी कम हुआ और धर्म युद्ध करने में पराक्रमी कुलीनों को अपनी ऊर्जा नहीं लगानी पड़ी।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# व्यापार और सामन्तवाद का ह्रास

23

## परिचय

इतिहासकार *हेनरी पिरेन* (बेल्जियम) ने अपनी पुस्तकों '*मेडिवल सिटीज : देयर ऑरिजिन एण्ड द रिवाइवल ऑफ ट्रेड*', '*इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ मेडिवल यूरोप*' तथा '*मोहम्मद एण्ड शार्लमान्य*' में सामन्तवाद के उत्थान और पतन में व्यापार को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है।

भूमध्यसागरीय क्षेत्र में होने वाले व्यापार ने यूरोपीय सभ्यता को शिखर पर पहुँचा दिया था, क्योंकि यह न केवल समाज की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया, बल्कि सभ्यता और संस्कृति का भी आदान-प्रदान हुआ। अरबों द्वारा भूमध्यसागरीय क्षेत्र में आक्रमण के कारण व्यापार-वाणिज्य बाधित हुआ। पूर्व (एलेक्जेंड्रिया)-पश्चिम (जिब्राल्टर) और मध्य स्थित सारडीनिया पर मुसलमानों ने कब्जा जमा लिया। यूरोपीय अर्थव्यवस्था अन्तर्मुखी हो गयी। व्यापार-वाणिज्य सीमित रूपों में होता था। लम्बे व्यापार के समाप्त होने से विचारों का आदान-प्रदान भी समाप्त हो गया। 11वीं शताब्दी में धर्मयुद्धों के द्वारा अरबों को उनके घर मध्य पूर्व तक धकेल दिया गया। पुनः लम्बी दूरी के व्यापार शुरू हुये, शहरी केन्द्र पुनः जी उठे। यह सामन्तवाद के अन्त का आरम्भ रहा। उन्होंने इस रूपान्तरण का महत्त्व दिखाने के लिये "शहरी जीवन व्यक्ति को स्वतंत्र बनाता है" जैसी कहावत को उद्धृत किया।

यूरोपीय सामंतवाद इतिहासकारों के बीच बहस और विचार-विमर्श का केन्द्र बना रहा यूरोप के बाहर भी इसका प्रभाव फैला और भारतीय सामन्तवाद की अवधारणा निर्मित करने में भी इसी सामन्तवाद/व्यापार विभाजन सम्बन्धी अवधारणा का उपयोग किया गया। ई. ऐश्टर (E. Ashtor) ने समीप पूर्व के लिये इस अवधारणा का उपयोग किया। इन दोनों ही स्थानों पर इस सिद्धान्त का उसी रूप में पालन किया गया।

1946 में मार्क्सवादी आर्थिक इतिहासकार कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के मौरिस डॉब ने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन द डेवेलप्मेंट ऑफ कैपिटलिज्म' में सामन्तवाद के पतन पर अपने विचार दिए। उन्होंने व्यापार को सामन्तवाद के पतन का कारण नहीं माना। उनके अनुसार व्यापार जैसी आर्थिक गतिविधियाँ ही दास प्रथा, सामन्तवाद और पूँजीवाद को कायम रख सकती थीं। उन्होंने 17वीं और 18वीं शताब्दी में पूर्वी यूरोप में व्यापार के पुनरुत्थान से सामन्तवादी सम्बन्धों के पतन का होना दूर की बात है। वहाँ 'दूसरी कृषि दास' व्यवस्था का जन्म हुआ। कृषि दास प्रथा सामन्तवाद का प्रमुख लक्षण है।

मार्क्सवादी विश्लेषण को आधार बताते हुए डॉब ने सामन्तवाद के पतन के लिये '*अन्दरूनी संकट*' को जिम्मेदार ठहराया। सामन्तवाद के पतन में धर्मयोद्धाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने अरबों को यूरोप से भगाकर उनके अपने क्षेत्रों में धकेल दिया। धर्मयोद्धा अब व्यापारी बन गये और विलासिता की वस्तुओं को यूरोप के अभिजात वर्ग को ऊँची कीमत पर बेचते थे। पश्चिम का सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश पूरी तरह बदल गया। अभिजात वर्ग के सदस्य विलासिता की वस्तुओं को खरीदने के लिये कोई भी कीमत देने के लिये तैयार थे। इस अभिजात वर्ग की आदमनी सीमित थी और विलासिता की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये अधिक खर्च करना पड़ता था। अब से अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए किसानों का शोषण करने लगे, क्योंकि इनकी आमदनी कृषि पर आधारित थी।

डॉब शहरी केन्द्र के पुनरुत्थान को भी सामन्तवाद के पतन का कारण मानते हैं। शहरों के उदय ने शोषित किसानों को रोजगार के लिये विकल्प उपलब्ध कराया। किसानों ने शोषण से मुक्त होने के लिये शहरों की ओर पलायन किया। यह भी एक वर्ग-संघर्ष था, जिसमें अधिपति और कृषि दासों और अधिपति और शहरी बुर्जुआ वर्ग एक-दूसरे के आमने-सामने थे। आर्थिक क्षेत्र में वर्चस्व बढ़ रहा था। गरीब किसानों का ग्रामीण क्षेत्र से शहर की ओर पलायन हो रहा था। अधिपति अपने आपको लाचार महसूस कर रहे थे और धीरे-धीरे सामन्तवाद ढह रहा था।

फ्रांसीसी इतिहासकार *गी बुआ* ने अपनी पुस्तक '*द ट्रांसफॉरमेशन ऑफ द इयर वन थाउजैंड : द विलेज ऑफ लूर्नाद फ्रॉम एन्टिक्विटी टू फ्यूडलिज्म*' में उन्होंने फ्रांस के एक गाँव (लूर्नाद) का लगभग संक्रमण के समय का परीक्षण किया और यह दिखाया कि व्यापार

www.neerajbooks.com



के विकास से अधिपतियों और किसानों का सामन्ती गठजोड़ कमजोर होने के बजाय और मजबूत हो गया।

पिरेन के अनुसार मध्यकालीन यूरोप में प्रौद्योगिकी का स्थान निम्न था। भूमि तथा श्रम की उत्पादकता काफी कम थी। सामन्तवाद के पतन में शहरी केन्द्रों के उदय और निम्न प्रौद्योगिकी दोनों बाह्य कारक थे।

किसी भी क्षेत्र या स्थान की प्रौद्योगिकी एक जगह की अपेक्षा दूसरी जगह या एक समय की अपेक्षा दूसरे समय में अविकसित या विकसित हो सकती है। यह भी हो सकता है कि एक समय में दो अलग-अलग क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी का विकास एक जैसा न हो।

मध्यकालीन यूरोप में कृषि और भूमि क्षेत्र में श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाने वाली उत्पादन तकनीकी में धीरे-धीरे विकास हो रहा था। लेकिन विकास की गति काफी धीमी थी। भूमि धन अर्जित करने का प्रमुख साधन था और श्रम इसका प्रमुख औजार था।

5वीं शताब्दी से 8वीं शताब्दी के बीच के समय को आरम्भिक मध्यकाल कहा जाता है। दक्षिण यूरोप और भूमध्यसागर के क्षेत्र में ज्यादा सूर्य की रोशनी पड़ती थी, अत: इन खेतों में कृषि ज्यादा होती थी। 10 किलो बीज बोने पर 25 किलो अनाज पैदा होता था। 10 किलो अनाज बीज के रूप में रख लिया जाता था। बाकी अनाज का उपयोग खाने में किया जाता था। इस समय खेतों की गहरी जुताई नहीं हो पाती थी। हल को एरेरे (Araire) या खुरचने वाला हल कहते थे। फसल बड़े-बड़े खेतों में लगानी पड़ती थी। भूमि की उर्वरता का सही उपयोग नहीं हो पाता था।

कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास हुआ। धीरे-धीरे कई तरह के परिवर्तन हुए। भारी हल का प्रयोग, दो खेत व्यवस्था की जगह तीन खेत व्यवस्था, फसल चक्रण विधि अपनाई गई, मटर और बीन्स को उपजाया गया जो न केवल प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ था बल्कि इनकी जड़ें जमीन को नाइट्रोजन उर्वरक प्रदान करती थीं। हलों को खींचने के लिये एक से अधिक बैलों का उपयोग और बाद में घोड़ों का उपयोग जैसे परिवर्तन होते रहे। 12वीं शताब्दी के दौरान श्रम और भूमि की उत्पादकता लगातार बढ़ती रही। अब बीज, फसल का अनुपात 1:4 हो गया। पवन चक्की और पनचक्की के आविष्कार ने मानव श्रम काफी कम कर दिया और उत्पादन के लिये अधिक मानव संसाधन प्राप्त हो सकते थे।

उच्च उत्पादकता तथा उच्च गुणवत्ता वाली खाद्य सामग्री प्राप्त होने से जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई। प्रति परिवार खेती की जाने वाली भूमि में कमी आयी। जनसंख्या की वृद्धि ने लोगों को परती और जंगलों को साफ कर कृषि योग्य भूमि बनाकर खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया।

प्रौद्योगिकी के विकास ने कृषि क्षेत्र में पूँजी निवेश को बढ़ावा दिया। धनी किसान वर्ग ही कृषि क्षेत्र में निवेश कर सकता था, भारी हल रख सकता था। छोटे किसान अपने को तथा अपने परिवार के सदस्यों को श्रमिक के रूप में निवेशित करने लगा। छोटा किसान अपने खेतों में सब्जी उपजाकर उसे बाजारों में बेचकर थोड़ा मुनाफा कमा लेता था। बाजार की माँग के अनुसार खेतों में किस प्रकार की फसल लगाई जाए, इसका निर्धारण किया जा रहा था। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप किसानों के बीच स्तरीकरण पनपा, जो सामन्तवाद के पतन में निर्णायक सिद्ध हुआ।

शहरी केन्द्रों के उदय के लिये अतिरिक्त अन्न का उत्पादन, ज्यादा और अच्छे भोजन की उपलब्धता, गाँवों से बाजार लाये जाने वाले अधिशेषों में वृद्धि, समाज के निचले तबकों की जनसंख्या में वृद्धि, व्यापारिक विनिमय केन्द्र और धातु मुद्रा का प्रचलन था। उच्च स्तरीय आबादी को जीवनयापन का आधार मिला।

13वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के बीच कुल आबादी के 10 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या शहरी केन्द्रों में नहीं रह सकते थे। अभी भी अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती थी। फ्लैन्डर्स (आधुनिक बेल्जियम, नीदरलैण्ड और लक्जेमबर्ग के कुछ भाग) जो 13वीं शताब्दी और 14वीं शताब्दी में औद्योगिक और आर्थिक रूप से सबसे विकसित थे, ने भी देहातों पर जरूरत से ज्यादा आर्थिक बोझ डाला हुआ था।

शहरों में मजदूरों को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गई। गाँव से शहर में आकर बसने वाले मजदूरों को यदि ज्यादा पैसा मिलता था, तो दूसरी ओर शहर में रहने के खर्च भी ज्यादा थे। इसलिये शहरों में जाकर नौकरी करना लाभदायक नहीं था। शहर हमेशा अपनी ओर खींचने वाले कारक के रूप में काम नहीं करता था। शहरी बुर्जुआ वर्ग भी गाँव के सस्ते मजदूरों का शोषण करते थे। 14वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में दूसरी जगहों के शहरी व्यापारियों ने गाँवों में औद्योगिक उत्पादन करना शुरू किया।

14वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप के किसानों ने व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। उनकी मुख्य मांग थी कि उन्हें कहीं भी आने-जाने का अधिकार प्रदान किया जाये। हालाँकि इटली के किसानों को आने-जाने की सुविधा मिली हुई थी।

ड्यूबी ने अपनी दो पुस्तकों '*रूरल इकोनॉमी एण्ड कन्ट्री लाइफ इन द मेडिवल वेस्ट*' और '*अर्ली ग्रोथ ऑफ यूरोपियन इकोनॉमी*' के माध्यम से सामन्तवाद के पतन की धारा बदल दी। ड्यूबी ने पश्चिमी यूरोप में मध्यकाल के दौरान श्रम और भूमि के क्षेत्र में हुए आन्तरिक विकास की ओर ध्यान दिलाया और इस युग में हो रहे परिवर्तनों पर प्रकाश डाला। श्रम की प्रक्रिया में धीरे-धीरे होने वाले बदलावों ने ग्रामीण परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया। परिवर्तन के कारण कृषक वर्ग के भीतर आपसी अन्तर बढ़ता जा रहा था। दूसरी ओर अधिपतियों के वर्ग में भी विभेद पैदा हो रहा था।

अधिपति अपनी भू-सम्पदाओं की खेती, अनाज के भंडारण और बिक्री के लिये पूरी तरह से कारिन्दों (bailiffs) और छोटे अधिकारियों (provosts) पर निर्भर थे, जो थोड़ी ऊँची हैसियत

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



वाले किसान थे। सामाजिक नैतिकताओं के कारण अधिपति वर्ग यह कार्य नहीं कर रहे थे। किसानों से वसूल किया गया सारा अनाज और इसे बेचकर प्राप्त हुआ सारा धन वे अधिपतियों को नहीं देते थे और बीच में हड़प जाते थे। ये किसान धीरे-धीरे धनी होते चले गये। धीरे-धीरे ये कारिन्दे एक लम्बे समय के लिए भू-सम्पदाओं का हिस्सा अधिपति से ठेके पर लेने लगे। वे खुद खेती करवाते थे और तब की उपज या धन अधिपति को दे दिया करते थे। ठेके का मुनाफा-नुकसान कारिन्दों को सहना पड़ता था। धीरे-धीरे वे कारिन्दे ठेकेदार बन गये। अधिपति से कर और भू-राजस्व वसूला करते थे। अधिपति अधिकार भी ठेके पर लिया जाने लगा।

कारिन्दे खेतों में मजदूरों की नियुक्ति करते थे और इसके लिये उन्हें मजदूरी दी जाती थी, क्योंकि उन्हें अधिपतियों के समान उनसे बेगार लेने की अनुमति नहीं थी। वे खेती सिर्फ मुनाफे के लिये करते थे। सामंती अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का प्रवेश होने लगा। अब गाँव पूँजीवादी कृषक या नव धनाढ्य वर्ग पैदा होने लगा, जो ठेठ सामंती संस्कृति से मेल नहीं खाता था। वह अपनी पूँजी लगाकर लाभ कमाना चाहता था तथा पूरी अर्थव्यवस्था पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था।

सामंती व्यवस्था में एलौड बिल्कुल अलग थे। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में बाजारों का प्रभाव एलौड के कृषि कार्य पर पड़ा। अब उनके फसलों के प्रकार का निर्धारण वे बाजार में करने लगे। अब वे उन फसलों को उपजाने लगे, जिससे ज्यादा मुनाफा होता था। इस तरह कुछ एलौड पूर्व पूँजीपति उत्पादक के रूप में उभरकर सामने आये।

उच्च स्तर के अधिपति को किसानों से मुफ्त सामान व सेवा लेने का अधिकार था, वहीं छोटे अधिपतियों को ये विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। उनकी जमीनों पर उनका अधिकार था, परन्तु किसानों से तरह-तरह की सेवाएँ लेने का उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं था। मजदूर बाहर जाने लगे। मजदूरी बढ़ने से छोटे अधिपति आर्थिक तंगी के शिकार हो गये। उस स्थिति में नये विकासों के दबाव में वे मजदूर रखकर बाजार के लिये खेती करवाने लगे।

अब श्रम को भुगतान में बदलने की छूट मिल गयी अर्थात् अब कोई श्रमिक अपने अधिपति को एकमुश्त राशि अदा कर मुक्त हो सकता था। अब कई किसान बेहतर स्थिति में थे और मेहनत के बल पर अपनी स्थिति में सुधार कर सकते थे। छोटे किसान अपना श्रम कहीं भी बेच सकते थे। श्रम बाजार का विस्तार हो रहा था।

सतत और प्रबल परिवर्तन ने सामान्य परिदृश्य को बदल दिया। धीमे विकास ने लगभग सभी लोगों को प्रभावित किया। कुछ दूसरों की अपेक्षा तेजी से ऊपर उठ गये। परिणामस्वरूप समाज में एक तीखा विभाजन हुआ और समाज के सभी वर्ग इससे प्रभावित हुए। इस पूरे परिदृश्य में एक नई अर्थव्यवस्था और एक नये वर्ग का उदय हुआ। सबसे ज्यादा नुकसान सामंतवाद को हुआ, क्योंकि सामंतवादी व्यवस्था की जड़ पर प्रहार किया गया था। सामंतवाद का पतन सामंती व्यवस्था की आंतरिक प्रक्रिया के कारण हुआ। शहरी केन्द्रों का उदय और व्यापार का उदय अपने आपमें स्वतंत्र परिकल्पना न होकर इसी आंतरिक विकास-क्रम और बदलाव का एक हिस्सा थी।

जॉर्ज ड्यूबी और अन्य इतिहासकारों में इतिहास लेखन का एक नया रूप सामने आया। सामाजिक भेद एक ऐसी प्रक्रिया है, जो एक दिन या एक साल या एक दशक में नहीं पैदा होती बल्कि इसमें शताब्दियाँ लग जाती हैं। परन्तु इसने निश्चित रूप से मध्ययुगीन पश्चिमी यूरोप के जीवन को भी पूरी तरह बदल दिया। ड्यूबी ने इसी धीमे, पर सतत परिवर्तन की प्रक्रिया को पकड़ने का प्रयास किया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. हेनरी पिरेन ने सामंतवाद के पतन में व्यापार के प्रसार और शहरी केन्द्रों के उदय को किस प्रकार जिम्मेदार माना था?**

**उत्तर**–1920 और 30 के दशक में बेल्जियन इतिहासकार हेनरी पिरेन ने अपनी पुस्तकों '*मेडिवल स्टिोज : देयर ऑरिजिन एण्ड द रिवाइवल ऑफ ट्रेड*', '*इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ मेडिवल यूरोप*' तथा '*मोमहम्मद एण्ड शार्लमान्य*' में सामंतवाद के उत्थान और पतन में व्यापार की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। पिरेन के अनुसार लम्बी दूरी का व्यापार, जिसे वे 'ग्रैंड ट्रेड' कहते थे, सभ्यताओं के फलने-फूलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है और किसी कारण से यदि इसमें बाधा पहुँचती है, तो सभ्यता की प्रगति रुक जाती है।

भूमध्यसागरीय क्षेत्र में होने वाले व्यापार ने यूरोपीय सभ्यता को शिखर पर पहुँचा दिया, क्योंकि यह न केवल समाज की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया, बल्कि सभ्यता और संस्कृति का आदान-प्रदान हुआ। अरबों द्वारा भूमध्यसागरीय क्षेत्र में आक्रमण के कारण व्यापार-वाणिज्य बाधित हुआ। पूर्व (एलेक्जेंड्रिया), पश्चिम (जिब्राल्टर) और मध्य स्थित सारडीनिया पर मुसलमानों ने कब्जा जमा लिया। यूरोपीय अर्थव्यवस्था अंतर्मुखी हो गयी। व्यापार-वाणिज्य सीमित रूपों में होता था। लम्बे व्यापार के समाप्त होने से विचारों का आदान-प्रदान भी समाप्त हो गया। 11वीं शताब्दी में धर्मयुद्धों के द्वारा अरबों को उनके घर मध्यपूर्व तक धकेल दिया गया। पुन: लम्बी दूरी के व्यापार शुरू हुये। शहरी केन्द्र पुन: जी उठे। यह सामंतवाद के अंत का आरम्भ था। उन्होंने इस रूपांतरण का महत्त्व दिखाने के लिये 'शहरी जीवन व्यक्ति को स्वतंत्र बनाता है' जैसी कहावत को उद्धृत किया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



इस प्रकार, पिरेन ने सामंतवाद और व्यापार के बीच आधारभूत विभाजन सम्बन्ध स्थापित किया है, जिसका चोली-दामन का साथ है। यूरोपीय सामंतवाद को समझाने और उसे एक अवधारणा के रूप में ढालने में इसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान है और काफी लम्बे समय तक यह इतिहासकारों के बीच बहस और विचार-विमर्श का केन्द्र बना रहा।

**प्रश्न 2. किसानों के बीच पैदा हो रहा विभेदीकरण किस प्रकार सामंतवाद के पतन के लिये जिम्मेदार था?**

**उत्तर**–प्रख्यात इतिहासकार जॉर्जेस ड्यूबी ने हेनरी पिरेन और अन्य इतिहासकारों द्वारा दी गयी दलीलों से अलग हटकर अपनी बात कही। ड्यूबी ने अपनी पुस्तकों '*रूरल इकोनॉमी एण्ड कन्ट्री लाइफ इन द मेडिवल वेस्ट*' और '*अर्ली ग्रोथ ऑफ यूरोपियन इकोनॉमी*' से बहस की धारा ही बदल दी। ड्यूबी ने पश्चिमी यूरोप में मध्यकाल के दौरान श्रम और भूमि के क्षेत्र में आंतरिक विकास की ओर ध्यान दिलाया और इस युग में हो रहे परिवर्तनों पर प्रकाश डाला। श्रम की प्रक्रिया में धीरे-धीरे होने वाले बदलावों ने ग्रामीण परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया। परिवर्तन के कारण कृषक वर्ग के भीतर आपसी अन्तर बढ़ता जा रहा था। दूसरी ओर अधिपतियों के वर्ग में भी विभेद पैदा हो रहा था।

अधिपति अपनी भू-सम्पदाओं की खेती, अनाज के भण्डारण और बिक्री के लिये पूरी तरह से कारिन्दों (bailiffs) और छोटे अधिकारियों (provosts) पर निर्भर थे, जो थोड़ी ऊँची हैसियत वाले किसान थे। सामाजिक नैतिकताओं के कारण अधिपति वर्ग यह कार्य नहीं कर रहे थे। किसानों से वसूल किया गया सारा अनाज बेचकर प्राप्त हुआ सारा धन अधिपतियों को नहीं देते थे और बीच में ही हड़प जाते थे। ये किसान धीरे-धीरे धनी होते चले गये। धीरे-धीरे ये कारिन्दे एक लम्बे समय के लिये भू-सम्पदाओं का हिस्सा अधिपति से ठेके पर लेने लगे। वे खुद खेती करवाते थे और तय की उपज या धन अधिपति को दे दिया करते थे। ठेके का मुनाफा-नुकसान कारिन्दों को सहना पड़ता था। धीरे-धीरे ये कारिन्दे ठेकेदार बन गये। अधिपति का कर और भू-राजस्व वसूल करने का अधिपति अधिकार भी ठेके पर लिया जाने लगा।

कारिन्दे खेतों में मजदूरों की नियुक्ति करते थे। इसके लिये उन्हें मजदूरी दी जाती थी, क्योंकि उन्हें अधिपतियों के समान उनसे बेगार लेने की अनुमति नहीं थी। वे खेती सिर्फ मुनाफे के लिये करते थे। सामंती अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का प्रवेश होने लगा। अब गाँव पूँजीवादी कृषक या नव धनाढ्य वर्ग पैदा होने लगा, जो ठेठ सामंती संस्कृति से मेल नहीं खाता था। वह अपनी पूँजी लगाकर लाभ कमाना चाहता था और पूरी अर्थव्यवस्था पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था।

सामंती व्यवस्था में एलौड बिल्कुल अलग थे। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के बाजारों का प्रभाव एलौड के कृषि कार्य पर पड़ा। उनकी फसलों के प्रकार का निर्धारण अब बाजार करने लगे। अब वे उन फसलों को उपजाने लगे, जिनसे ज्यादा मुनाफा होता था। इस तरह कुछ एलौड पूर्व पूँजीपति उत्पादक के रूप में उभरकर सामने आये।

उच्च स्तर के अधिपति को किसानों से मुफ्त सामान व सेवा लेने का अधिकार था, वहीं छोटे अधिपतियों को ये विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। उनकी जमीनों पर उनका अधिकार था, परन्तु उनसे तरह-तरह की सेवाएँ लेने का उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं था। मजदूर बाहर जाने लगे। मजदूरी बढ़ने से छोटे अधिपति आर्थिक तंगी के शिकार हो गये। ऐसी स्थिति में नये विकासों के दबाव में वे मजदूर रखकर बाजार के लिये खेती करने लगे।

अब श्रम को भुगतान में बदलने की छूट मिल गयी अर्थात् अब कोई श्रमिक अपने अधिपति को एकमुश्त राशि अदा कर मुक्त हो सकता था। अब कई किसान बेहतर स्थिति में थे और मेहनत के बल पर अपनी स्थिति में सुधार कर सकते थे। छोटे किसान अपना श्रम कहीं भी बेच सकते थे। श्रम बाजार का विस्तार हो रहा था।

सतत और प्रबल परिवर्तन ने सामान्य परिदृश्य को बदल दिया। धीमे विकास ने लगभग सभी लोगों को प्रभावित किया। कुछ दूसरों की अपेक्षा तेजी से उठ गये। परिणामस्वरूप समाज में एक तीखा विभाजन हुआ और समाज के सभी वर्ग इससे प्रभावित हुये। इस पूर्व परिदृश्य में एक नई अर्थव्यवस्था और एक नये वर्ग का उदय हुआ। सबसे ज्यादा नुकसान सामंतवाद को हुआ, क्योंकि सामंतवादी व्यवस्था की जड़ पर प्रहार किया गया था। सामंतवाद का पतन सामंती व्यवस्था की आंतरिक प्रक्रिया के कारण हुआ। आंतरिक विकासक्रम और बदलाव के एक अंग के रूप में शहरी केन्द्रों और व्यापार का उदय हुआ।

जॉर्ज ड्यूबी और अन्य इतिहासकारों के इतिहास लेखन का एक नया रूप सामने आया। सामाजिक भेद एक ऐसी प्रक्रिया है, जो एक दिन या एक साल या एक दशक में नहीं पैदा होती है, बल्कि इसमें सदियाँ लग जाती हैं। परन्तु इसने निश्चित रूप से मध्ययुगीन पश्चिमी यूरोप के जीवन को भी पूरी तरह बदल दिया।

**प्रश्न 3. मैरिस डॉब और जार्ज ड्यूबी ने सामंतवाद के पतन के लिये व्यापार की अपेक्षा इसकी आंतरिक उथल-पुथल पर ज्यादा बल दिया है। क्या उन दोनों के विचारों में कोई अन्तर है? क्या आप इस अन्तर का खुलासा कर सकते हैं?**

**उत्तर**–मार्क्सवादी विश्लेषण को आधार बनाते हुये डॉब ने सामंतवाद के पतन के लिये 'अन्दरूनी संकट' को जिम्मेदार ठहराया है। सामंतवाद के पतन में धर्मयोद्धाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने अरबों को यूरोप से भगाकर उनके अपने क्षेत्रों में धकेल दिया था। धर्मयोद्धा अब व्यापारी बन गये और विलासिता

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



की वस्तुओं को यूरोप के अभिजात वर्ग को ऊँची कीमत पर बेचते थे। पश्चिम का सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश पूरी तरह से बदल गया। अभिजात वर्ग के सदस्य विलासिता की वस्तुओं को खरीदने के लिये कोई भी कीमत देने के लिये तैयार थे। इस अभिजात वर्ग की आमदनी सीमित थी और विलासिता की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये अधिक धन खर्च करना पड़ता था। अब वे अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये किसानों का शोषण करने लगे, क्योंकि इनकी आमदनी कृषि पर आधारित थी।

डॉब शहरी केन्द्र के पुनरुत्थान को भी समांतवाद के पतन का कारण मानते हैं। शहरों के उदय ने शोषित किसानों को रोजगार के लिये विकल्प उपलब्ध कराया। किसानों ने शोषण से मुक्त होने के लिये शहरों की ओर पलायन किया। यह भी एक वर्ग-संघर्ष था, जिसमें अधिकारी और कृषि दास तथा अधिपति और शहरी बुर्जुआ-वर्ग एक-दूसरे के आमने-सामने थे। आर्थिक क्षेत्र में वर्चस्व बढ़ रहा था। गरीब किसानों का ग्रामीण क्षेत्र से शहर की ओर पलायन हो रहा था। अधिपति अपने आपको लाचार महसूस कर रहे थे और धीरे-धीरे सामंतवाद ढह रहा था।

ड्यूबी ने अपनी दो पुस्तकों '*रूरल इकोनॉमी एण्ड कन्ट्री लाइफ इन द मेडिवल वेस्ट*' और '*अर्ली ग्रोथ ऑफ यूरोपियन इकोनॉमी*' के माध्यम से सामंतवाद के पतन की बहस की धारा ही बदल दी। ड्यूबी ने पश्चिमी यूरोप में मध्यकाल के दौरान श्रम और भूमि के क्षेत्र में आंतरिक विकास की ओर ध्यान दिलाया और इस युग में हो रहे परिवर्तन पर प्रकाश डाला। श्रम की प्रक्रिया में धीरे-धीरे होने वाले बदलावों ने ग्रामीण परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया। परिवर्तन के कारण कृषक वर्ग के भीतर आपसी अन्तर बढ़ता जा रहा था। दूसरी ओर अधिपतियों के वर्ग में भी विभेद हो रहा था।

सतत और प्रबल परिवर्तन ने सामान्य परिदृश्य को बदल दिया। धीमे विकास ने लगभग सभी लोगों को प्रभावित किया। कुछ दूसरों की अपेक्षा तेजी से ऊपर उठ गये। परिणामस्वरूप समाज में एक तीखा विभाजन हुआ और समाज के सभी वर्ग इससे प्रभावित हुये। इसे पूरे परिदृश्य में एक नई अर्थव्यवस्था और एक वर्ग का उदय हुआ। सबसे ज्यादा नुकसान सामंतवाद को हुआ, क्योंकि इसने सामंतवादी व्यवस्था के जड़ पर प्रहार किया गया। सामंतवाद का पतन सामंती व्यवस्था की आन्तरिक प्रक्रिया के कारण हुआ। इसका पतन आन्तरिक विकासक्रम के कारण हुआ। शहरी केन्द्रों का उदय और व्यापार का उदय अपने आप स्वतंत्र परिघटना न होकर इसी आन्तरिक विकासक्रम और बदलाव का एक भाग थी।

जॉर्ज ड्यूबी के विचारों से इतिहास लेखन का एक नया रूप सामने आया। सामाजिक भेद एक ऐसी प्रक्रिया है, जो एक दिन या एक साल या एक दशक में नहीं पैदा होती, बल्कि इसमें सदियाँ लग जाती हैं। इसने निश्चित रूप से मध्ययुगीन पश्चिमी यूरोप के जीवन को भी पूरी तरह बदल दिया। ड्यूबी ने इसी धीमे लेकिन सतत परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने प्रयास किया है। डॉब ने शहरी केन्द्र के पुनरुत्थान को भी सामंतवाद के पतन के लिये उत्तरदायी माना है, जबकि ड्यूबी ने सिर्फ आन्तरिक उथल-पुथल पर ज्यादा बल दिया है।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

मध्ययुगीन संसार में व्यापार और वाणिज्य

# समुद्री व्यापार

24

## परिचय

मध्ययुग में इस्लाम के उदय ने समुद्री व्यापार-वाणिज्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। व्यापार-वाणिज्य के विकास में अरबों और मुसलमानों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इन लोगों की व्यापारिक गतिविधियाँ अफ्रीका और चीन के बीच हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्रों में होती थी। यह सिलसिला 7वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के मध्य चलती रहा।

10वीं शताब्दी के आरम्भ में और उसके बाद भी अरबी व्यापारी और जहाज हिन्द महासागर के तटों पर रुकते हुए चीन तक जाते थे। दक्षिण एशिया और चीन में मुसलमानों का आगमन 8वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। एशिया और पश्चिम देशों के बीच होने वाले व्यापार के दो रास्ते थे, जो लाल सागर और विभिन्न समुद्रों, नदियों और जमीनी रास्तों, फारस की खाड़ी, इराक और सीरियाई मरुस्थल से होकर गुजरते थे। इन दोनों रास्तों पर पहले खलीफाओं और बाद में अब्बासियों का राजनीतिक नियंत्रण था। भूमध्यसागर के उत्तर में ईसाई और दक्षिण में मुस्लिम प्रभुत्व था।

एशिया में मुख्य रूप से सिल्क, पोर्सेलिन, चन्दन की लकड़ी और काली मिर्च के बदले धूप, अच्छी नस्ल के घोड़े, हाथीदाँत, सूती कपड़े और धातु की बनी वस्तुओं का विनिमय करते थे। चीन की रुचि सिर्फ रेशमी वस्त्रों में थी। दक्षिण अरब, फारस की खाड़ी और दक्षिण-पूर्वी एशिया बहुमूल्य मोतियों, धूप, इत्र, चन्दन की लकड़ी और मसालों के प्रमुख स्रोत थे। इन्हीं विलासिता की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये व्यापारी जोखिमभरी यात्राएँ करते थे और मुनाफा कमाते थे। इन वस्तुओं का एक हजार वर्षों से भी अधिक समय तक महत्त्व बना रहा।

1280 ई. में चीन पर मंगोल विजय से समुद्री व्यापार मजबूत हुआ। मार्कोपोलो (1298) और इब्नबतूता (मृत्यु 1377) ने हाँगचाऊ (Hangchow) और जैतोन (Zaiton) बन्दरगाह की चर्चा समृद्ध नगर के रूप में की है।

10वीं शताब्दी के अन्त और 15वीं शताब्दी के बीच अब्बासी खलीफाओं के पतन और मिस्र में फातमियों के उदय ने व्यापार मार्ग को डैमस्कस और बगदाद से परिवर्तित कर एडेन और फुस्तात की ओर मोड़ दिया। 14वीं शताब्दी के आरम्भ में तुर्कों की गुजरात विजय से यहाँ के लोगों पर इस्लाम धर्म का प्रभाव पड़ा। इंडोनेशियाई द्वीपों के व्यापारिक बंदरगाहों और तटीय राज्यों ने भी इस्लाम धर्म स्वीकार किया। स्पेन से अरब शासकों के निष्कासन और वेनिस और जेनेवा में ईसाइयों के व्यापारिक वर्चस्व ने विश्व अर्थव्यवस्था की संरचना को नई दिशा प्रदान की। मिस्र में सत्ता के हस्तांतरण से विभिन्न महादेशों के बीच व्यापार-वाणिज्य की गतिविधियों के लिये एलेक्जेंड्रिया का आर्थिक महत्त्व काफी बढ़ गया। अय्यूबिद शासकों (1170-1260) और उसके बाद ममलूकों (1260-1517) के शासनकाल में लाल सागर में बन्दरगाहों का विकास हुआ और काहिरा आर्थिक रूप से काफी मजबूत हो गया।

चीन में मिंग राजवंश (1368-1644) के शासनकाल में नयी आर्थिक नीति के तहत तीसरे सम्राट् यूंग-लु (Yung-Lo) (1402-24) ने हिन्द महासागर के व्यापारिक राष्ट्रों से आर्थिक सम्बन्ध बढ़ाने के उद्देश्य से 1404 और 1433 के बीच समुद्री यात्राओं का आयोजन किया, परन्तु 1433 में यह योजना त्यागकर विदेशी व्यापारियों के लिये चीनी समुद्री तटों को बन्द कर दिया और चीनी व्यापारियों पर विदेशी व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रतिबन्ध के बावजूद फिलीपीन्स, टॉन्गकिंग और मलक्का से चोरी-छिपे व्यापार होता रहा।

भूमध्यसागर के क्षेत्र में इस्लाम के आगमन के साथ ही ईसाइयों के लिये समुद्र बन्द हो गये। इस बन्द के बावजूद इटली के दक्षिणी शहर नेपल्स और बारी के साथ-साथ वेनिस भी पूर्व में कॉन्सटैंटिनोपल से सम्बन्ध थे। वेनिस ने पहले से ही एक मजबूत और शक्तिशाली समुद्री शक्ति होने के कारण 1100 ई. तक पूर्वी तट पर एकाधिपत्य प्राप्त कर लिया। यूरोप में दो बड़े व्यापारिक आन्दोलन हुए। एक आन्दोलन पश्चिमी भूमध्यसागर और एड्रियाटिक और दूसरा बाल्टिक और उत्तरी सागर से आरम्भ हुआ। बाल्टिक और उत्तरी सागर पर स्कैनडिनेवियों का वर्चस्व था, जो केवल पश्चिम से ही व्यापार नहीं किया करते थे, बल्कि एक ओर जहाँ

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



डेन्स और नॉर्वेजियन्स ने कैरोलिनजियन साम्राज्य पर कब्जा किया वहीं इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड तथा उनके पड़ोसी स्वीडिश रूस की ओर मुड़े। धर्मयुद्ध के बाद भूमध्यसागर पर मुसलमानों का वर्चस्व समाप्त हो गया, अब इतालवी शहर और थोड़ा-थोड़ा प्रोवेन्स और कैटैलोनिया भी भूमध्यसागर पर छा गये।

छठी और 10वीं शताब्दियों के बीच उत्तरी यूरोप के व्यापार में बाइजेंटाइन शहर का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इसी शहर में सामानों का विनिमय होता था। बाद के कालों में इतालवी व्यापारी इंग्लैण्ड और फ्लैंडर्स के बन्दरगाहों की ओर जाने और अपने साथ लेवैन्टाइन और पूर्व के सामान भी लाने लगे। इतालवी व्यापारी और जर्मन फ्लेमिंग्स, अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी नियमित रूप से मध्य और उत्तरी यूरोप की हाटों में एक-दूसरे से मिलने लगे। 12वीं और 13वीं शताब्दी में शैम्पेन, 14वीं और आरम्भिक 15वीं शताब्दी में ब्रजेज (Bruges) और 15वीं शताब्दी में जेनेवा और एन्टवर्प शहरों का उदय हुआ।

उत्तरी यूरोप और दूसरे देशों के बीच होने वाले व्यापार में जीवनयापन से सम्बन्धित वस्तुओं का ज्यादा व्यापार होता था। भूमध्यसागर क्षेत्र में खाद्य पदार्थों, कच्चे माल, विलासिता की वस्तुओं और भारी वस्तुओं का व्यापार होता था।

इस व्यापार में वेनिस के अलावा पश्चिमी भूमध्यसागर के सभी बन्दरगाहों को समृद्धि मिली। अरब भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया से कारवाँ के जरिये सामान सीरिया तक पहुँचाया जाता था। यहाँ यूरोपीय जहाज सामान ले जाते थे। 13वीं शताब्दी के आरम्भ से यूरोप में प्रमुख रूप से चावल, सन्तरा, खूबानी, अंजीर, किशमिश, इत्र, औषधि और रंग के सामानों का आयात होता था। इटली से ऊनी वस्त्रों तथा फ्लैंडर्स और उत्तरी फ्रांस से वस्त्रों का निर्यात होने लगा।

इस तरह हम देखते हैं कि मध्ययुग में औद्योगिक उत्पादों की अपेक्षा कृषीय और खाद्य उत्पादों का ही व्यापार ज्यादा होता था।

मध्यकाल में दवाइयाँ, मसाले, मालाबार की टीक की लकड़ी, कीमती पत्थर और विलासिता की वस्तुएँ पश्चिमी देशों को निर्यात किए जाते थे और युद्ध में काम आने वाले जानवरों, खिलौनों, दुर्लभ वस्तुओं और आकर्षक कपड़ों का आयात किया जाता था। आरम्भिक शताब्दियों में भारतीयों तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव से दक्षिण-पूर्व एशिया के राज्यों का उदय हुआ। इन राज्यों की ओर व्यापारी आकर्षित हुए और कपड़ा व्यापार को बढ़ावा मिला। भारत और इंडोनेशिया के बीच व्यापार में मसाले और इंडोनेशिया के कच्चे मालों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इंडोनेशिया और मलय प्रायद्वीप का व्यापार गुजरात के मुसलमानों के हाथ में था, जो इंडोनेशिया क्षेत्रों में बसने लगे थे। बंगाल से कपड़ा इंडोनेशिया को निर्यात किया जाता था। इसके अलावा भारत का व्यापार ईरान, रूस, मध्य एशिया और पश्चिमी देशों के साथ होता था।

1498 में वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पुर्तगालियों द्वारा जलडमरूमध्य के जरिए एशिया का सीधा समुद्री मार्ग खोजे जाने से एशिया और यूरोप के बीच व्यापार के एक नये युग की शुरुआत हुई। पुर्तगालियों के दो उद्देश्य थे–

(1) यूरोप में भेजे जाने वाले मसालों के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करना।

(2) एशियाई व्यापार पर वर्चस्व स्थापित करना तथा व्यापार-वाणिज्य पर विभिन्न प्रकार के करों की वसूली करना।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये पुर्तगालियों द्वारा एशियाई जहाजरानी पर प्रभुत्व जमाना तथा व्यापार करने के लिये समुद्री तटों पर अपने सामरिक महत्त्व के अड्डे बनाना तथा अपने लोगों को व्यापार में संलग्न करना था।

अल्बुकर्क (Albuquerque) ने 1510 में बीजापुर के शासक से गोवा छीन लिया जो कालान्तर में भारत में पुर्तगाली व्यापारिक केन्द्रों की राजधानी बनायी गयी। 1511 में अल्बुकर्क ने दक्षिण-पूर्व एशिया की व्यापारिक मण्डी मलक्का और हौरमुज पर अधिकार कर लिया। पुर्तगालियों ने हिन्द महासागर के कई क्षेत्रों, पूर्वी अफ्रीका, मलक्का और भारत के कोंकण और मालाबार तटों पर कई किले बनाये। पुर्तगाली एशिया से मुख्य रूप से काली मिर्च का व्यापार करते थे। काली मिर्च भारत के मालाबार क्षेत्र से, लौंग तथा जायफल मलक्का से और दालचीनी को श्रीलंका से प्राप्त किया जाता था।

16वीं शताब्दी के दौरान पुर्तगालियों ने हिन्द महासागर से होने वाले व्यापार पर एकाधिपत्य प्राप्त कर लिया। यहाँ से गुजरने वाले जहाजों से कर की वसूली की जाने लगी। पुर्तगालियों ने कर्ताज और काफिला द्वारा भारतीय और अरबी जहाजों का कर्ताज या परमिट के बिना अरब सागर में प्रवेश वर्जित कर दिया।

पुर्तगालियों ने काफिला प्रणाली के अन्तर्गत छोटे स्थानीय व्यापारियों के जहाजों को समुद्री यात्रा के समय संरक्षण प्रदान किया। इसके लिए जहाजों को चुंगी देनी होती थी। अरबी और भारतीय जहाजों के लिये गोला-बारूद ले जाने की अनुमति नहीं थी।

एशियाई राज्यों में नौसैनिक शक्ति बहुत ही कमजोर होने के कारण पुर्तगालियों को इस्तादो दा इंडिया (Estado da India) (भारत का राज्य, पुर्तगाल सम्राट् के प्रतिनिधि के संरक्षण में कार्यरत) स्थापित करने में किसी प्रकार दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ा।

पुर्तगाली यूरोप में मुख्य रूप से काली मिर्च का निर्यात करते थे। 16वीं शताब्दी के आरम्भ में वे अन्य वस्तुएँ निर्यात करते थे। पुर्तगालियों ने अरब व्यापारियों को घोड़े के व्यापार में पीछे छोड़ते हुए घोड़े के व्यापार भी एकाधिकार स्थापित करने का प्रयास किया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



16वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय समुद्री व्यापार मुख्यत: गुजराती मुसलमानों के हाथों में था और कैम्बे तथा मलक्का के बीच समुद्री मार्ग पर उनका एकाधिकार था। भारतीय जहाज लाल सागर और फारस की खाड़ी के बन्दरगाहों पर रुकते थे, परन्तु अरब सागर में अरब जहाजों का बोलबाला था। चीन और मलय के बीच चीनी जहाज, इंडोनेशिया के जल में मलय और जावा के जहाज चला करते थे।

16वीं शताब्दी के दौरान हिन्द महासागर में एडेन से मलक्का सबसे लम्बा मार्ग था, जो गुजरात से होकर जाता था। सूती कपड़े, रेशम, मसाले, नील और औषधियों का निर्यात तथा यूरोप से ऊनी कपड़े, रेशम और सोना-चाँदी का आयात किया जाता था। कपड़ा व नील गुजरात से, काली मिर्च कोचीन से, दालचीनी श्रीलंका से मँगाई जाती थी। मलक्का में भारतीय कपड़ा तथा पूर्वी इंडोनेशिया से काली मिर्च, जावित्री, जायफल और लौंग मँगाए जाते थे।

पूर्वी अफ्रीका से दास, आबनूस की लकड़ी, हाथीदाँत और सोना लाया जाता था। इसके बदले में कपड़ा, मनका और खाद्यान्न दिया करते थे। बंगाल की खाड़ी में बंगाल से कपड़े और खाने का सामान प्राप्त होता था। कोरोमण्डल से कपड़ा और सूत निर्यात होता था। दक्षिण में श्रीलंका से बहुमूल्य पत्थर और दालचीनी तथा पेगू से कपड़े के बदले रत्न और धातु की आपूर्ति करता था। हद्रामावत और फारस की खाड़ी से हौरमुज के रास्ते एक दूसरा मार्ग भी था जहाँ से घोड़े, मोती, रेशम और कालीन मँगाए जाते थे। भारत प्रमुख रूप से सूती कपड़े, चावल, गेहूँ, दाल, तेल और घी जैसे खाने की चीजों का निर्यातक था।

16वीं शताब्दी के दौरान गुजरात के समुद्र पार व्यापार पर पुर्तगालियों का प्रभाव पड़ा। अब गुजरातियों के लिये लाल सागर व्यापार की दृष्टि से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया। दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ उनके व्यापार में कमी आयी। पुर्तगाली इन मार्गों, उत्पादों, उत्पादन तकनीकी के क्षेत्र में किसी प्रकार के बदलाव नहीं ला सके। व्यापार की वस्तुओं में बदलाव आया। भारतीय व्यापारियों से अतिरिक्त सीमा शुल्क वसूल किया जाने लगा। पुर्तगालियों का प्रभाव कोरोमण्डल तट से गुजरात में अधिक था। कोरोमण्डल पर प्रभाव कम होने से चेट्टियार व्यापारियों का प्रभाव कम देखने को मिला।

17वीं और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समुद्री व्यापार का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। भारतीय समुद्री पार व्यापार में लाल सागर का महत्त्व बढ़ा। चीन से होने वाले व्यापार पर बल दिये जाने के कारण इसमें बदलाव आया। पुर्तगालियों द्वारा मसाले का व्यापार और उनके द्वारा मुनाफा कमाने से प्रेरित होकर 1600 ई. में अंग्रेजों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी, 1602 में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गयी। 1664 में फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्थापित की गई। ओस्टेन्ड, स्वीडिश और डेनिश 18वीं शताब्दी में भारत में आये।

16वीं शताब्दी में अंग्रेजी और डच कालीमिर्च और अन्य मसाले इंडोनेशिया से खरीदकर निर्यात करते थे, क्योंकि मालाबार क्षेत्र में काली मिर्च पर पुर्तगालियों का बोलबाला था। परिणामस्वरूप यूरोपीय व्यापार का केन्द्र भारत की जगह इंडोनेशिया हो गया। 75 वर्षों के पश्चात् ये यूरोपीय कम्पनियाँ इंडोनेशिया से मसाला द्वीपों से काली मिर्च और अन्य मसाले खरीदकर मूल्य का भुगतान चाँदी के रूप में करती थीं। परन्तु इन द्वीपों पर भारतीय कपड़ों की अत्यधिक माँग थी। अब यूरोपीय व्यापारी मसाले खरीदकर मूल्य का भुगतान भारतीय सस्ते और मोटे कपड़ों से करने लगे। युद्धों, अकाल और राजनीतिक अस्थिरता से कोरोमण्डल व्यापार अनिश्चित और मध्यम हो गया।

डचों और अंग्रेजो ने 1650 के दशक के आरम्भ में बंगाल में अपने व्यापारिक कारखाने स्थापित किये। बंगाल में सूती कपड़ा, रेशम और शोरा उपलब्ध था, जिसकी माँग यूरोप के बाजार में काफी थी।

1680 के आरम्भ में बंगाल के कपड़े के निर्यात में बड़ा उछाल आया। यूरोपीय कम्पनियों ने एशियाई व्यापार की संरचना और दिशा एकदम से बदल दी। बंगाल यूरोपीय कम्पनियों के व्यापार का केन्द्र बन गया। अंग्रेजों और डचों ने बंगाल को व्यापार का केन्द्र बनाया।

1757 में प्लासी युद्ध के पश्चात् बंगाल की आर्थिक और राजनीतिक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गयी। अब अंग्रेजी कम्पनियाँ और उनके नौकरों द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वियों को इस क्षेत्र से हटाने की कोशिश में लग गये। धीरे-धीरे व्यापार में एक नई दिशा उभरी। एशियाई व्यापार में पुर्तगालियों का स्थान डचों ने ले लिया, परन्तु अंग्रेजों और डचों के बीच व्यापार-वाणिज्य में विस्तार करने की कोशिश में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गयी।

बंगाल सूती कपड़ा और कच्चे रेशम का प्रमुख आपूर्तिकर्त्ता था और इन्हीं दो वस्तुओं की माँग थी। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 18वीं शताब्दी के शुरुआती दो दशकों तक यूरोप को किये जाने वाले निर्यात में डच आगे थे, परन्तु 18वीं शताब्दी के अन्त तक अंग्रेज व्यापारियों ने डचों की बराबरी कर ली। कम्पनियाँ कपड़ा, कच्चा रेशम और शोरे का निर्यात किया करती थीं। डच बटाविया को अफीम बेचा करते थे। कुछ समय तक नील मुनाफे का व्यापार था, परन्तु बाद में इसका स्थान कच्चे रेशम और शोरे ने ले लिया। भारत से सर्वाधिक सूती कपड़ों का निर्यात होता था। 1680 के दशक के दौरान यूरोपीय समय के उपभोक्ताओं में भारतीय कपड़े सस्ते होने के बजाय फैशन लोकप्रियता का सबसे बड़ा आकर्षण था।

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



भारतीय निर्यात के बदले में ये कम्पनियाँ बहुमूल्य धातु विशेषकर चाँदी के द्वारा विनिमय करता था। 1765 में कम्पनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त कर ली और इस तरह राजस्व पर उसका नियन्त्रण स्थापित हो गया। कम्पनी के नौकरों ने भी बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष दोहन किया। अब ऐसी व्यवस्था हो गयी कि अब बंगाल के राजस्व से ही भारतीय माल खरीदकर उसका निर्यात किया जाने लगा।

17वीं शताब्दी के ठीक पहले पुर्तगालियों के समुद्री ताकत होने से भारतीय समुद्री पार व्यापार में तेजी आयी। फारस की खाड़ी तथा दक्षिण अरब में व्यापार की मात्रा बढ़ी। 1622 में हौरमुज पुर्तगालियों के कब्जे से निकलने से फारस की खाड़ी बाधा मुक्त हो गयी। इसका फायदा गुजरात के व्यापारियों ने उठाया। अब अंग्रेज तथा डच कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में व्यापार-वाणिज्य में सक्रियता दिखायी।

17वीं शताब्दी में पश्चिमी एशिया में होने वाले व्यापार में वृद्धि आयी, जबकि दक्षिण-पूर्व एशिया के व्यापार में कमी आयी। मसाले के व्यापार पर पुर्तगालियों का एकाधिपत्य समाप्त होते ही डचों ने इस पर एकाधिकार कर लिया तथा 17वीं शताब्दी के मध्य तक इसको कायम रखा। इसका प्रभाव गुजरात के व्यापारियों पर पड़ा। डचों ने 1641 में मलक्का पर और 1669 में मैकसर (Macasser) में सेलेबस (Celebes) पर अधिकार कर लिया। जिससे मलय प्रायद्वीप पर होने वाला भारतीय समुद्री व्यापार लड़खड़ा गया। अब भारतीय व्यापारियों ने डचों से बचने के लिये अपना रुख अचेह की ओर किया। यहाँ पर भारतीय कपड़े के साथ-साथ काली मिर्च और टिन प्राप्त करने का प्रमुख बाजार बन गया, क्योंकि अचेह के व्यापारी सुमात्रा और मलय द्वीपों के साथ व्यापार किया करते थे।

कोरोमण्डल के जहाज केदाह जाते थे, जहाँ से टिन प्राप्त होता था। इसके अलावा भारतीय जहाज तेनास्सेरिम (Tenasserim) पेगू, बनरगेरी और फुकेट जाया करते थे। 1682 में डचों द्वारा बेटेम पर अधिकार करने के पश्चात् भारतीय व्यापार को कोरोमण्डल के कपड़े, चीनी-जापानी वस्तुओं खासकर तांबे की प्राप्ति को भी नुकसान हुआ था। इस नुकसान की क्षतिपूर्ति भारतीय जहाज जोहोर, लामा और पैकोर बन्दरगाहों पर लंगर डालकर करने लगे।

भारतीय व्यापारियों ने डचों से प्रतिद्वन्द्विता रखने के बजाय अपने व्यापार की दिशा में परिवर्तन किया। इंडोनेशियाई द्वीपों से होने वाले व्यापार के बदले गुजरातियों ने लाल सागर और फारस की खाड़ी से होने वाले व्यापार पर ज्यादा ध्यान दिया। इस काल को कपड़ा व्यापार का स्वर्णयुग कहा जाता है, परन्तु 17वीं शताब्दी के अन्त और 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में निजी अंग्रेज व्यापारियों के प्रवेश ने भारतीय व्यापार को प्रभावित किया।

अंग्रेज व्यापारी दो तरह के थे। एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यरत नौकर तथा दूसरे भारत के आजाद व्यापारी। अंग्रेजों के निजी जहाजों ने गुजरात के व्यापार को काफी नुकसान पहुँचाया। भारत और फारस में एक साथ राजनीतिक विघटन होने और 18वीं शताब्दी के दूसरे दशक के यमन में गृहयुद्धों के फलस्वरूप भारतीय जहाजों को काफी हानि हुई।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. इस्लाम के उदय ने 10वीं शताब्दी तक समुद्री व्यापार को कैसे प्रभावित किया?**

**उत्तर**–मध्ययुग में समुद्री व्यापार ने इस्लाम के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। समुद्री व्यापार के विकास में अरब नागरिकों और मुसलमानों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। यूरोप के व्यापारियों के आगमन के पूर्व पूर्वी अफ्रीका और चीन के समुद्र के बीच हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से व्यापारिक गतिविधियाँ होती थीं, जिसमें मुसलमानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। 7वीं शताब्दी के मध्य से 15वीं शताब्दी के मध्य तक समुद्री व्यापार की दिशा और संरचना इसी प्रकार चलती रही।

8वीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्द महासागर को पार कर दक्षिण एशिया और चीन में मुसलमान व्यापारियों की उपस्थिति दर्ज की गयी। 10वीं शताब्दी के आरम्भ और उसके बाद भी अरबी जहाज और व्यापारी चीन तक जाते-आते थे और बीच में होने वाले व्यापार के दो रास्ते थे, जो लाल सागर और विभिन्न समुद्रों, नदियों और जमीनी रास्तों, फारस की खाड़ी, इराक और सीरियाई मरुस्थल से होकर गुजरते थे। इन दोनों ही रास्तों पर पहले उमय्यद खलीफाओं और बाद में अब्बासियों का पूर्ण राजनीतिक नियंत्रण था। यहाँ तक कि भूमध्यसागर भी ईसाई प्रभुत्व वाले उत्तर और मुसलमान प्रभुत्व के दक्षिण के रूप में विभाजित था। अंततः व्यापारियों की गतिविधियों के जरिए ही इनके बीच आर्थिक एकता कायम हुई।

मध्यकाल में एशिया में मुख्य रूप से पूर्वी सभ्यता के उत्पादों का व्यापार होता था। सिल्क, पोर्सलिन, चंदन की लकड़ी और कालीमिर्च के बदले धूप, अच्छी नस्ल के घोड़े, हाथीदाँत, सूती कपड़े और धातु की बनी वस्तुओं का विनिमय करते थे। चीन की मिर्च और रेशमी वस्त्रों में रुचि थी। फारस की खाड़ी के जहाज 7वीं शताब्दी के अन्त और 8वीं शताब्दी के आरम्भ में चीन के बन्दरगाह कैन्टोन पहुँच चुके थे। इन व्यापारियों की रुचि मुख्यतः चीन के रेशमी वस्त्रों में थी। चीनी लोग अरब क्षेत्र को बहुमूल्य वस्तुओं का विशाल भण्डार मानते थे। दक्षिण अरब, फारस की खाड़ी और दक्षिण-पूर्वी एशिया बहुमूल्य पत्थरों, मोतियों, धूप, इत्र, चंदन की लकड़ी और मसालों का प्रमुख स्रोत थे। आधुनिक पूर्व

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



व्यापार में ये एक हजार वर्षों से भी ज्यादा समय तक महत्त्वपूर्ण बने रहें। इन्हीं विलासिता की वस्तुओं के लिये लोग लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते थे, जोखिम उठाते थे और लाभ कमाते थे।

1280 ई. में चीन पर मंगोल विजय से समुद्री व्यापार मजबूत हुआ। मार्कोपोलो (1298), इब्नबतूता (1377) ने हांगचाऊ (Hangchow) और जैतोन (Zaiton) नगर बन्दरगाह की चर्चा समृद्ध नगर के रूप में की है। जैतोन बन्दरगाह पर बड़े-बड़े जहाज लंगर डालते थे, जो काली मिर्च से भरे रहते थे। इब्नबतूता 1343-44 में इस बन्दरगाह पर आया था और इसे संसार का सबसे बड़ा बन्दरगाह कहा। यहाँ एलेक्जेंड्रिया और क्यूलौन और मालाबार तट पर कालीकट से भी ज्यादा व्यापारिक गतिविधियाँ होती थीं।

10वीं शताब्दी के अन्त और 15वीं शताब्दी के मध्य में व्यापार की दिशा में परिवर्तन आया। अब्बासी खलीफाओं के पतन और मिस्र में फातमियों के उदय से लम्बी दूरी का व्यापार मार्ग बगदाद और डैमस्कस से खिसककर एडेन और फुस्तात की तरफ मुड़ गया। 1303-04 में तुर्की सुल्तान ने गुजरात पर अधिकार कर लिया। इससे समुद्र तटीय शहर इस्लामी सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव के घेरे में आ गये।

इंडोनेशियाई द्वीपों के व्यापारिक बन्दरगाहों और राज्यों के लोग इस्लाम धर्म स्वीकार करने लगे। यह प्रक्रिया लगभग तीन शताब्दियों तक चली। इसी समय भूमध्यसागर के ईसाई क्षेत्र में भी स्थितियाँ बदल गयीं। फातमियों के द्वारा प्राचीन काहिरा में सत्ता के हस्तांतरण से विभिन्न महादेशों में होने वाले व्यापार में एलेक्जेंड्रिया एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव हो गया। इस शहर का आर्थिक महत्त्व काफी बढ़ गया। अय्यूबिद शासकों (1170-1260) और उसके बाद ममलूकों (1260-1517) के शासनकाल में लाल सागर के बन्दरगाहों का विकास किया गया और काहिरा की आर्थिक स्थिति मजबूत होती चली गयी।

चीन में मिंग राजवंश (1365-1644) की आर्थिक नीतियों के कारण समुद्री व्यापार पर विरोधी प्रभाव पड़ा। यूंग-लू (Yung-Lo–1402-24) ने हिन्द महासागर में 1404-1433 के बीच समुद्री यात्राओं का आयोजन किया। बाद में इस योजना को त्याग दिया। अपने समुद्री बन्दरगाह विदेशी व्यापारियों के लिये बंद कर दिया। इसके बावजूद फिलीपीन्स, टॉन्गकिंग और मलक्का तक व्यापारी छिप-छिपकर तस्करी करते थे।

इस तरह हम देखते हैं कि 10वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के बीच व्यापार-वाणिज्य के विकास में इस्लाम के उदय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। समुद्री बन्दरगाहों का आर्थिक महत्त्व काफी बढ़ा। तटवर्ती क्षेत्रों के लोगों ने इस्लाम धर्म अपनाया। यह धर्मांतरण की प्रक्रिया इंडोनेशिया के तटवर्ती क्षेत्रों में तीन सौ वर्षों तक चलती रही। नये-नये व्यापारिक मार्गों की खोज हुई। व्यापार मुख्यतः विलासिता की वस्तुओं का होता था। व्यापारियों द्वारा वस्तुओं का व्यापार करके काफी मुनाफा कमाया जाता था।

**प्रश्न 2. 11वीं और 15वीं शताब्दी के बीच यूरोपीय व्यापार किस प्रकार होता था?**

**उत्तर**–यूरोप में दो बड़े वाणिज्यिक आन्दोलनों ने यूरोपीय व्यापार को काफी प्रभावित किया। एक आन्दोलन पश्चिमी भूमध्यसागर और एड्रियाटिक और दूसरा बाल्टिक और उत्तरी सागर में आरम्भ हुआ। बाल्टिक और उत्तरी सागर पर स्कैनडिनेवियों का बोलबाला था। डेन्स और नौर्वेजियन्स ने कैरोलिनजियन साम्राज्य पर कब्जा जमा लिया। इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड तथा उनके पड़ोसी स्वीदिश रूस की ओर मुड़े। धर्मयुद्ध के बाद भूमध्यसागर पर मुसलमानों का वर्चस्व समाप्त होना एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी। भूमध्यसागर पश्चिमी समुद्री व्यापार के लिये पूरी तरह से खुल चुका था। धर्मयुद्धों के परिणामस्वरूप काफी समय तक इतालवी शहर और थोड़ा बहुत प्रोवेन्स और कैटैलोनिया भी भूमध्यसागर पर छाए रहे।

उत्तरी यूरोप के व्यापार को पूर्वी और भूमध्यसागरीय वस्तुओं से बहुत-कुछ लेना-देना नहीं था। बाद में शताब्दियों तक इतालवी व्यापार, जर्मन, फ्लेमिंग्स, अंग्रेज और फ्रांसीसी नियमित रूप से उत्तरी यूरोप के क्षेत्र में आवागमन करने लगे और मध्य-उत्तरी यूरोप के हाटों में एक-दूसरे से मिलने लगे। 12वीं एवं 13वीं शताब्दी में शैम्पेन, 14वीं और आरम्भिक 15वीं शताब्दी में ब्रजेज और 15वीं शताब्दी में जेनेवा और एन्टवर्प नामक शहरों का उदय हुआ। पूरे यूरोप से आये व्यापारी इतालवियों द्वारा लाए गए सामानों का दूसरी वस्तुओं से आदान-प्रदान करते थे। उत्तरी यूरोप और दूसरे देशों के बीच होने वाले व्यापार में उत्तरी क्षेत्र के उत्पादों का बोलबाला था। इसमें जीवनयापन की आवश्यक वस्तुएं थीं। दक्षिण में खाद्य पदार्थों तथा कच्चे माल का व्यापार भूमध्यसागरीय क्षेत्र में शुरू हो गया। दक्षिणी व्यापार ने विलासिता की वस्तुओं के व्यापार की शुरुआत की। इसमें उत्तरी यूरोप का व्यापार जीवनयापन की वस्तुओं तक ही सीमित था।

व्यापार में मसाले का व्यापार महत्त्वपूर्ण आकर्षण था। व्यापार ने वेनिस तथा भूमध्यसागर के अन्य बन्दरगाहों को आर्थिक दृष्टिकोण से समृद्धि प्रदान की। अरब, भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया से कारवां के जरिए सीरिया तक सामान पहुँचाया जाता था। यूरोप के जहाज मुख्य रूप से सीरिया में लंगर डालते थे। 13वीं शताब्दी के आरम्भ से यूरोप में प्रमुख रूप से चावल, सन्तरा, खूबानी, अंजीर, किशमिश, इत्र, औषधि और रंग के सामानों का आयात होता था। 12वीं शताब्दी के अन्त में कच्चे सिल्क का आयात होने लगा। इतालवी लेवेन्ट के बन्दरगाह लकड़ी और हथियार और वेनिस से दासों की भी आपूर्ति करने लगे। ऊनी

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सामान का निर्यात होने लगा। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से फैलैंडर्स और उत्तरी फ्रांस से वस्त्रों का निर्यात होने लगा। परन्तु इंगलिश जहाज उनके इन उत्पादों को निर्यात करने में मदद नहीं किया करते थे। 13वीं शताब्दी तक आते-आते ट्यूटोनिक हूणों का इन पर एकाधिकार हो गया। विदेशी व्यापार के दस्तावेजों का अवलोकन करने पर पता चलता है कि औद्योगिक उत्पादों की अपेक्षा कृषीय और खाद्य पदार्थों का ज्यादातर व्यापार होता था। मसाले, शराब, मक्का, नमक, मछली और ऊन, फ्लोरेंस कपड़े का प्रमुख निर्यातक था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 11वीं से 15वीं शताब्दी के बीच विलासिता की वस्तुओं की जगह खाद्य और कृषीय पदार्थों का अधिक व्यापार होता था। व्यापार ने वेनिस तथा भूमध्यसागर के बहुत-से बन्दरगाहों को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाया। लोगों में परस्पर आकर्षण हुआ।

**प्रश्न 3. पुर्तगालियों द्वारा शुरू की गयी कर्ताज और काफिला व्यवस्था क्या थी?**

**उत्तर**–पुर्तगालियों ने हिन्द महासागर में होने वाले व्यापार पर एकाधिपत्य प्राप्त करने के उद्देश्य से यहाँ से गुजरने वाले अन्य जहाजों से कर की वसूली शुरू की। उन्होंने कर्ताज और काफिला जैसे व्यवस्थाएँ शुरू कीं।

पुर्तगालियों ने कर्ताज और काफिला व्यवस्था द्वारा भारतीय तथा अरबी जहाजों को कर्ताज या परमिट के बिना अरब सागर में प्रवेश वर्जित कर दिया। अरबी और भारतीय जहाजों के पास कर्ताज पत्र होता था, परन्तु उन्हें कालीमिर्च और गोला-बारूद ले जाने की अनुमति नहीं थी। पुर्तगाली हथियारबन्द नौसेना उन्हें अपनी सुरक्षा में समुद्र पार कराती थी। एशियाई राज्यों की नौसैनिक शक्ति काफी कमजोर थी। यात्रा में पुर्तगालियों को इस्तादो दा इण्डिया (भारत का राज्य) पुर्तगाल सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत) स्थापित करने में दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ा। इन जहाजों के लिये निर्धारित बन्दरगाह भी तय किये जाते थे। गंतव्य स्थान से निकलने से पहले उन्हें पुर्तगाली नियंत्रित बन्दरगाहों पर शुल्क अदा करना पड़ता था। कर्ताज पत्र न होने की स्थिति में जहाज को जब्त कर लिया जाता था और नाविकों को तुरन्त मौत के घाट उतार दिया जाता था। कर्ताज होने पर भी लिखित शर्तों का उल्लंघन करने वालों को दण्डित किया जाता था।

पुर्तगालियों ने काफिला प्रणाली के अन्तर्गत छोटे स्थानीय व्यापारियों के जहाजों को समुद्री यात्रा के समय संरक्षण प्रदान किया। इसके लिये जहाजों को चुंगी देनी होती थी। इस व्यवस्था में सभी जहाज एक साथ निकला करते थे और पुर्तगाली हथियारबन्द नौसैनिक इन जहाजों की रक्षा करते थे। परन्तु कई भारतीय व्यापारी इन काफिलों में शामिल नहीं होते थे और गोवा में सीमा शुल्क अदा न करके वे जबर्दस्ती व्यापार किया करते थे। पुर्तगाली जहाजी बेड़े दो कार्य करते थे–व्यापार करने वाले जहाजों को समुद्री डाकुओं से बचाना और यह देखना कि कोई पुर्तगाली व्यवस्था का उल्लंघन करके व्यापार न कर सके।

इन दोनों व्यवस्थाओं ने अरब सागर में व्यापार पर एकाधिपत्य प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। पुर्तगाली मालाबार और कोंकण तट से सर्वाधिक काली मिर्च का निर्यात करते थे। मालाबार तट से अदरख, दालचीनी, चंदन, हल्दी, नील आदि का निर्यात होता था। भारत से केवल काली मिर्च की खरीद के लिये पुर्तगाली प्रतिवर्ष 1,70,000 क्रूजेडा भारत लाते थे।

**प्रश्न 4. 15वीं शताब्दी में भारतीय समुद्रपार व्यापार का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–जेनेविव (Genevieve), बुशन (Bouchon) और डेनिस लॉम्बार्ड (Denys Lombard) के अनुसार पुर्तगालियों के आगमन से पूर्व 15वीं शताब्दी के दौरान हिन्द महासागर में प्रचुर मात्रा में व्यापार होता था। चीनी हिन्द महासागर से तीन सौ वर्षों से व्यापार करते आ रहे थे। 1430 के दशक में चीन ने पश्चिम का व्यापार करना छोड़ दिया, परन्तु भारतीयों तथा मलय व्यापारियों की मुलाकात चीनी व्यापारियों से मलक्का में हो जाती थी। इसी दौरान अरबों की पकड़ पश्चिम व्यापार से ढीली पड़ रही थी व चीनियों के टूटने से पूर्व में शून्य की सी स्थिति पैदा हो गई थी।

बहुत जल्द ही गुजराती व्यापारियों ने इस शून्य को भरने का प्रयास किया। भारतीय जहाजरानी मुख्यत: गुजराती मुसलमानों के हाथों में था। उनका व्यापार मुख्यत: हिन्द महासागर से ही होता था। कैम्बे तथा मलय के बीच समुद्री मार्ग पर उनका वर्चस्व था। पश्चिम की ओर भारतीय जहाज लाल सागर और फारस की खाड़ी के बंदरगाहों की ओर बराबर जाते रहते थे, परन्तु अरब सागर के अरब जहाज मालिकों का ही बोलाबाला था। इंडोनेशिया में जावा और मलय के जहाज चला करते थे।

हिन्दी महासागर में एडेन से मलक्का की ओर जाने के लिये प्रमुख रूप से गुजरात से मालाबार होकर जाया जाता था। यह लाल सागर का प्रवेश द्वार था। प्रमुख रूप से सूती कपड़े, नील, मसाले और औषधियों का व्यापार होता था। यूरोप में मुख्य रूप से ऊनी कपड़े, रेशम और सोना-चाँदी आयात किया जाता था। कपड़ा और नील मुख्य रूप से गुजरात से आता था। इसके बदले में प्रचुर मात्रा में सोना-चाँदी प्राप्त होता था। कोचीन के रास्ते मलाबार से काली मिर्च और श्रीलंका से दालचीनी मँगाई जाती थी। मलक्का को भारत से कपड़ा प्राप्त होता था और पूर्वी इंडोनेशिया से काली मिर्च, जीवित्री, जायफल और लौंग के बदले में लाल सागर से सोना-चाँदी प्राप्त होता था तथा चीन से रेशम और पोर्सलिन मँगाया जाता था। गुजरातियों का एक ओर समुद्र मार्ग पर वर्चस्व था, जिस

www.neerajbooks.com

रास्ते वे पूर्वी अफ्रीका से दास, आबनूस की लकड़ी, हाथीदाँत और सोना लाया करते थे और इसके बदले में कपड़ा, मनका और खाद्यान्न दिया करते थे। हद्रामावत और फारस खाड़ी से हौरमुज के रास्ते एक दूसरा मार्ग भी था जहाँ से घोड़े, मोती, फारसी रेशम और कालीन मँगाए जाते थे। बंगाल की खाड़ी में बंगाल से कपड़े और खाने-पीने का सामान प्राप्त होता था। कोरोमंडल से कपड़ा और सूत निर्यात किया जाता था।

15वीं शताब्दी के अंत में भारतीय व्यापारी ज्यादातर मलक्का जाया करते थे। सुमात्रा व ग्राइस से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था।

हिन्द महासागर से भारत इस दौर में कपड़े का निर्यातक बना रहा। अधिकांश कपड़े सस्ते और रोजमर्रा के उपयोग के लिये होते थे और समुद्र के रास्ते एशिया के हर देश में निर्यात किये जाते थे। भारत से चावल, गेहूँ, दाल, तेल, घी जैसी खाने-पीने की चीजों का भी भारत से निर्यात किया जाता था। बंगाल, उड़ीसा और कनारा के तटों पर अनाज का प्रचुर उत्पादन होता था। मालाबार और सूरत जैसे भारतीय बंदरगाहों पर ही इन वस्तुओं की आपूर्ति करके भी मलक्का, एडेन और हौरमुज जैसे शहरों में भी इन वस्तुओं की आपूर्ति किया करते थे।

भारत के लिये पश्चिमी एशियाई बाजार इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था कि वहाँ से निर्यात के बदले में सोना-चाँदी प्राप्त होता था। जहाँ तक निर्यात का सम्बन्ध है, विलासिता की वस्तुओं के साथ-साथ दैनिक जीवन के लिये उपयोगी वस्तुओं का भी व्यापार होता था। भारत से अधिकांशत: दैनिक जरूरत की वस्तुओं का ज्यादा मात्रा में निर्यात किया जाता था।

**प्रश्न 5. भारतीय समुद्रपार व्यापार पर पुर्तगालियों का क्या प्रभाव पड़ा?**

**उत्तर**–1498 में वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पुर्तगालियों द्वारा जलडमरूमध्य के जरिए एशिया का सीधा समुद्री मार्ग खोजे जाने से एशिया और यूरोप के बीच व्यापार के एक नये युग की शुरुआत हुई। गुजरात में भारतीय समुद्रपार व्यापार पर पुर्तगाली नियंत्रण का कुछ महत्त्वपूर्ण असर पड़ा। पुर्तगालियों के दो उद्देश्य थे–

1. यूरोप में भेजे जाने वाले मसालों पर एकाधिकार करना।
2. एशियाई व्यापार पर वर्चस्व स्थापित करना तथा व्यापार-वाणिज्य पर विभिन्न प्रकार के करों की वूसली करना।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये पुर्तगालियों ने एशियाई जहाजरानी को प्रमुख बनाना तथा व्यापार करने के लिये समुद्री तटों पर अपने सामरिक महत्त्व के अड्डे बनाना तथा अपने लोगों को व्यापार वाणिज्य का भार सौंपना जैसे कदम उठाए।

गुजराती समुद्रपार व्यापार दो दिशाओं में होता था–लाल सागर और मलक्का। परन्तु अगले सौ वर्षों में लाल सागर दक्षिण-पूर्व एशिया से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया। गुजरातियों का लाल सागर क्षेत्र में प्रभाव बढ़ने लगा और दक्षिण-पूर्व एशिया में धीरे-धीरे उनके व्यापार में गिरावट आयी।

पुर्तगालियों ने उत्पादन तकनीकों या उत्पादों में किसी तरह का कोई बदलाव नहीं किया। उन्होंने वस्तुओं के व्यापार को बदल दिया। व्यापार को काफिला प्रणाली तथा कर्ताज व्यवस्था से नियंत्रित किया। भारतीय जहाजों को कर्ताज व्यव्स्था के अन्तर्गत अनुमति पत्र प्राप्त करने के लिये पुर्तगाली नियंत्रित बंदरगाहों पर शुल्क भी अदा करना पड़ता था। अनुमति पत्र नहीं होने पर जहाजों को जब्त कर लिया जाता था और नाविकों को मार दिया जाता था। काफिला व्यवस्था के अन्तर्गत पुर्तगाली हथियारबन्द नौसैनिक जहाजों की रक्षा करते थे। इसके बदले में पुर्तगालियों को शुल्क देना पड़ता था। इन दोनों व्यवस्थाओं द्वारा पुर्तगालियों ने अरबसागर में एकाधिकार प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

पुर्तगालियों का सबसे ज्यादा प्रभाव गुजरात में ही था और भारत के अन्य हिस्सों में उनका प्रभाव अपेक्षाकृत कम था। इसलिये कोरोमण्डल तट के बलशाली चेट्टियार व्यापारियों पर कोई खास असर नहीं पड़ा। मालाबार तट पर पुर्तगालियों का वर्चस्व था। इन क्षेत्रों में पुर्तगालियों के घेरे तोड़ने का प्रयास भी किया जाता था।

*डब्ल्यू.एच. मोरलैंड* के अनुसार पुर्तगालियों के आगमन से इस क्षेत्र में नये युग की शुरुआत हुई। वहीं दूसरी ओर वैन ल्यूर ने चुनौती दी। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि 16वीं शताब्दी में भी एशियाई समुद्रपार व्यापार महत्त्वपूर्ण बना रहा। उन्होंने कहा कि यहाँ पुर्तगाली महत्त्वपूर्ण काली मिर्च और मसाले के व्यापार को पूरी तरह अपने मुट्ठी में करने में असफल रहा। लौंग के निर्यात में पुर्तगालियों की भूमिका बहुत सीमित थी। *अशिन गुप्ता* ने कहा है कि जब तक यूरोपवासियों ने देसी लोगों को पराजित नहीं कर दिया, तब तक भारतीय समुद्रपार व्यापार में उनकी भूमिका गौण रही। निश्चित रूप से उनकी मौजूदगी वहाँ थी। उनका अपना महत्त्व है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में उनका वर्चस्व था।

इस तरह हम देखते हैं कि पुर्तगाली मालाबार और कोंकण तट से काली मिर्च का निर्यात करते थे। लेकिन इसके व्यापार में इनका वर्चस्व नहीं था। मालाबार तट पर अदरक, दालचीनी, चंदन, हल्दी, नील आदि का निर्यात होता था।

**प्रश्न 6. डच और अंग्रेजी कम्पनियों ने हिन्द महासागर में व्यापारिक गतिविधियों को किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर**–17वीं और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समुद्रपार व्यापार का अभूतपूर्व विस्तार किया गया। भारतीय समुद्रपार व्यापार में लाल सागर व्यापार में महत्त्वपूर्ण बना रहा। चीन के साथ होने वाले व्यापार पर बल दिये जाने के कारण इसमें बदलाव आया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



भारत का समग्र विदेशी व्यापार डच, अंग्रेज और फ्रांसीसियों की त्रिकोणीय भागीदारी के परिणामस्वरूप तेजी से बढ़ा। इसमें भारतीय समुद्री व्यापारियों का भी योगदान था। 1600 में इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी और 1602 में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की गयी।

16वीं शताब्दी में अंग्रेजी और डच एशिया से काली मिर्च और अन्य दूसरे मसाले इंडोनेशिया से खरीदकर निर्यात करते थे, क्योंकि मालाबार क्षेत्र में काली मिर्च पर पुर्तगालियों का वर्चस्व था। अंग्रेज और डच व्यापारियों के लिये इंडोनेशिया व्यापार का प्रमुख केन्द्र हो गया। परन्तु केवल 75 वर्षों तक यह व्यापार का प्रमुख केन्द्र बना रहा। उसके बाद ही भारत पुनः यूरोपीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया। उन्हें काली मिर्च के बदले नई दुनिया से प्राप्त चाँदी द्वारा भुगतान करना पड़ता था। इंडोनेशियाई द्वीपों में भारतीय कपड़ों की अत्याधिक माँग थी। डच और अंग्रेज व्यापारी भारतीय कपड़ों के बदले इन द्वीपों से मसाले खरीदते थे। इन कम्पनियों ने कोरोमंडल समुद्री तट पर अपना लंगर लगाया। लुटेरों, अकालों और इस क्षेत्र में राजनीतिक अस्थिरता के कारण कोरोमंडल व्यापार अनिश्चित और मँहगा साबित होने लगा, तो इन कम्पनियों ने बंगाल की ओर रुख किया।

अंग्रेज और डच व्यापारियों को ऐसा महसूस हुआ कि बंगाल में व्यापार करने की अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ हैं, क्योंकि बंगाल में सूती कपड़े के अतिरिक्त रेशमी कपड़ा और शोरा व्यापार के लिए उपलब्ध थे। इस तरह बंगाल अंग्रेज और डच का व्यापारिक केन्द्र हो गया। 17वीं शताब्दी में बंगाल के हुगली बंदरगाह पर कारखाने बनाये गये। 1670 के आस-पास बंगाल में कच्चे रेशम के यूरोपीय निर्यात में अचानक विस्तार आया। 1680 के आस-पास बंगाल से कपड़े के निर्यात में बड़ा उछाल आया, जिसके परिणामस्वरूप इन यूरोपीय कम्पनियों के एशियाई व्यापार का ढाँचा बिल्कुल बदल गया। बंगाल एशिया से होने वाले यूरोपीय व्यापार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सेदार बन गया।

1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों के जीतने के पश्चात् बंगाल में राजनीतिक और आर्थिक सत्ता स्थापित होने के बाद इंगलिश कम्पनी और इसके नौकर अपने व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वियों को इस क्षेत्र से हटाने में जुट गये।

18वीं शताब्दी में डच कम्पनी द्वारा हॉलैण्ड भेजी जाने वाले एशियाई वस्तुओं का औसत वार्षिक मूल्य का 40 प्रतिशत सामान बंगाल से प्राप्त किया जाता था और सम्पूर्ण एशिया से डचों द्वारा नियंत्रित कपड़े के कुल मूल्य का 50 प्रतिशत से भी ज्यादा बंगाल से प्राप्त कपड़ों का था। इस प्रकार 18वीं शताब्दी में एशिया में बंगाल डच कम्पनी के लिये सर्वप्रमुख व्यापारिक कार्यक्षेत्र बन गया।

डचों और इंगलिश कम्पनियों के बीच धीरे-धीरे प्रतिद्वन्द्विता का उदय हुआ। 18वीं शताब्दी में डच मुख्य रूप से एशियाई व्यापार में लगे हुए थे। डच आरम्भ में कोरोमंडल और बाद में बंगाल से सस्ते कपड़े खरीदकर इंडोनेशिया के द्वीपों में भेजते थे और इसके बदले में वे काली मिर्च प्राप्त करते थे।

18वीं शताब्दी के आरम्भ में डच और इंगलिश व्यापारियों द्वारा एशिया से भेजे जाने वाले सामानों का हिस्सा बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 18वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में यूरोप से किये जाने वाले निर्यात में डच आगे थे, परन्तु शताब्दी का अन्त होते-होते उन्होंने अंग्रेजों से बराबरी कर ली। 1740 के दशक के मध्य तक यह बढ़त जारी रही और इसके बाद एक बार फिर डच व्यापार में तेजी आई और दोनों एक ही धरातल पर आ गये।

मुख्य रूप से ये कम्पनियाँ कपड़ा, कच्चा रेशम और शोरा निर्यात करती थीं। डच बटाविया को अफीम बेचा करते थे। भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं में नील मुनाफे की वस्तु थी, परन्तु बाद में इसका स्थान बंगाल के कच्चे रेशम और शोरे ने ले लिया। कपड़े से होने वाले निर्यात में परिवर्तन से पता चलता है कि यूरोपीय समाज के उपभोक्ताओं की पंसद में बदलाव आया। भारतीय कपड़ों के सस्ते होने के बजाय फैशन इस लोकप्रियता का सबसे बड़ा आकर्षण था।

**प्रश्न 7. क्या 17वीं शताब्दी में भारतीय व्यापारी यूरोपीय कम्पनियों के सामने टिकने की स्थिति में थे?**

**उत्तर**–17वीं शताब्दी के ठीक पहले पुर्तगालियों की समुद्री ताकत कम होने से भारतीय समुद्रपार व्यापार में तेजी आयी। फारस की खाड़ी तथा दक्षिण अरब में व्यापार की मात्रा बढ़ी। भारतीय जहाज फारस की खाड़ी में हौरमुज को छोड़ते हुए बसरा या बंदर अब्बास जैसे खाड़ी के बंदरगाहों तक पहुँच सकते थे। 1622 में पुर्तगालियों के हाथ से हौरमुज निकलने के बाद फारस की खाड़ी में यातायात बिल्कुल मुक्त हो गया और गुजरातियों ने इस आजादी का पूरा फायदा उठाया। अब इंग्लिश और डच कम्पनियों के लिये भी व्यापार के रास्ते खुल गये थे।

17वीं शताब्दी में भारतीय समुद्रपार व्यापार में इंग्लिश और डच व्यापारियों के आने से व्यापार में तेजी आयी और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार में कमी आयी। पूर्व में पुर्तगालियों का मसाले के व्यापार पर एकाधिकार समाप्त होते ही डचों ने उस पर एकाधिकार कर लिया और उन्होंने इस काम को ज्यादा कुशलता और निर्ममता से लागू किया। यह वर्चस्व 17वीं शताब्दी के मध्य तक कायम रहा। गुजराती व्यापारियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ व्यापार करना छोड़ दिया।

1641 में डचों ने मलक्का पर और 1669 में मैकसर (Macaser) में सेलेबस (Celebas) पर विजय प्राप्त करने से मलय प्रायद्वीप के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



साथ होने वाला भारतीय व्यापार लगभग समाप्त हो गया। लेकिन भारतीय व्यापारियों ने डच व्यापारियों के चंगुल से बचने के लिये अपना रुख अचेह की ओर कर दिया, जो भारतीय कपड़े के साथ-साथ टिन और काली मिर्च प्राप्त करने का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन गया, क्योंकि अचेह के व्यापारी सुमात्रा और मलय द्वीपों के साथ व्यापार किया करते थे।

1660 के आसपास भारतीय व्यापारियों को अचेह और मलक्का के साथ व्यापार करने की अनुमति प्रदान की गयी। कोरोमंडल के व्यापारी लगातार केदाह (Kedah) जाते थे, जहाँ टिन बहुत प्राप्त होता था। उत्तर की ओर भारतीय जहाज नियमित रूप से तेनास्सेरिम और पेगू के अलावा बनगेरी और फुकेट जाया करते थे। लेकिन 1682 में बैटम पर डचों की विजय के बाद और इसके परिणामस्वरूप इन बंदरगाहों से भारतीय जहाजों को निकाल बाहर करने से भारतीयों के लिए जावा व्यापार खासतौर पर कोरोमंडल के कपड़े के व्यापार को नुकसान हुआ और इस प्रक्रिया में बैटम से चीनी और जापानी वस्तुओं खासतौर पर तांबे की प्राप्ति को भी नुकसान हुआ। इस नुकसान की भरपाई भारतीय जहाजों ने जोहोर, लामा और पैंकोर बन्दरगाहों पर लंगर डालकर की। 17वीं शताब्दी में मलय द्वीप के साथ भारतीय व्यापार को निश्चित रूप से नुकसान हुआ था।

इंडोनेशियाई द्वीपों से पूरी तरह से व्यापार निकल जाने के पश्चात् गुजरात के व्यापारियों ने अपना रुख लाल सागर और फारस की खाड़ी की ओर किया। 17वीं शताब्दी में भारतीय समुद्र पार व्यापार के साथ-साथ भारतीय कपड़ों के व्यापार का स्वर्णयुग था। 17वीं शताब्दी के अन्त तथा 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय व्यापार को अंग्रेज व्यापारियों ने प्रभावित किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी और डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय व्यापार को काफी हद तक प्रभावित किया। भारतीय व्यापार दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीपों से एकदम समाप्त हो गया और लाल सागर और फारस की खाड़ी के क्षेत्र के व्यापार में धीरे-धीरे वृद्धि हुई। धीरे-धीरे यही ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में राजनीतिक और आर्थिक रूप वर्चस्व स्थापित करने में कामयाब हुई।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# व्यापारी समुदाय

25

## परिचय

प्राचीन काल से पूर्व आधुनिक युग के अन्त तक अरमेनियाई व्यापारी समूह ने यूरोप और एशिया के प्रमुख शहरों, बंदरगाहों और व्यापारिक केन्द्रों पर एकाधिकार स्थापित किया। इन लोगों ने लम्बी दूरी के व्यापार-वाणिज्य के लिए आधारभूत संरचना का विकास किया। उन्होंने अपना मुख्यालय न्यू जुल्फा में बनाया।

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में फारसी सम्राट् शाह अब्बास I ने अरमेनियाई व्यापारी और शिल्पियों को इस्फहान के इलाके में न्यू जुल्फा नामक नये शहर को व्यापारिक केन्द्र के रूप स्थापित करने के उदेश्य से अरमेनियाई लोगों को बसाया था। अरमेनियाइयों ने फारस के कच्चे रेशम के विदेशी व्यापार को विकसित किया। नये बाजारों, नये उत्पादों और व्यापारिक मार्गों की खोज की। 1722 में अफगानों द्वारा फारस पर आक्रमण किए जाने के कारण अरमेनियाई व्यापारियों का काफी नुकसान हुआ। इस कारण वे दूसरे क्षेत्रों में जाकर बस गए।

वे सोलहवीं शताब्दी के अंत और सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में बंगााल में व्यापार कर ही रहे थे। एक व्यापारिक समूह के रूप में वे भारत के सभी उत्पादन केन्द्रों, शहरों और बंदरगाहों में निवास करते थे। अरमेनियाई व्यापारियों की यह विशेषता थी कि वे मुनाफा कमाने के लिए नये-नये इलाकों में बसते थे और दूसरे व्यापारी समूह से अलग किसी भी वस्तु का व्यापार कर सकते थे।

अरमेनियाइयों के वाणिज्यिक उद्यम से प्रभावित होकर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1688 में ख्वाजा फानूस से लंदन में एक समझौता किया, जिसके अन्तर्गत अरमेनियाइयों को अपनी पूँजी और जोखिम पर बंगाल में निवेश किया। बंगाल से सामान को एकत्र करना, जुटाना तथा इसके एवज में लागत पर 30 प्रतिशत मुनाफा देने का वादा किया।

सैदाबाद (मुर्शिदाबाद का बाहरी हिस्सा), हुगली, कलकत्ता, कासिम बाजार, ढाका और पटना में अरमेनियाई व्यापारियों की अपनी बस्ती और गिरजाघर था। आगरा, दिल्ली, बनारस, सूरत, मद्रास, मसूलीपट्नम और भारत के अन्य शहरों और बंदरगाहों में वे बड़ी संख्या में रहते थे।

एक प्रमुख अरमेनियाई ख्वाजा वाजिद के नेतृत्व में 18वीं शताब्दी के चालीसवें और पचासवें दशक में बंगाल की अर्थव्यवस्था और राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

अरमेनियाई और वाजिद के व्यापक व्यापारिक तंत्र के कारण उन्होंने केवल शोरा, नमक और अफीम जैसे अन्तर्देशीय व्यापार पर एकाधिकार किया, बल्कि उनका बंगाल से लेकर सूरत तथा फारस की खाड़ी लाल से सागर तक के व्यापार पर एकाधिकार था।

उत्तरी अफ्रीका और मिस्र से लेकर फारस और खोरासान तथा भारत के मालाबार तक यहूदी प्राचीन काल से व्यापार करते आ रहे थे। इनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान था। आरम्भिक शताब्दियों में यहूदी गैर-इस्लामिक क्षेत्रों के साथ व्यापार करते थे। बगदाद के इस्लाम की राजधानी बनने के पश्चात् आठवीं और नवीं शताब्दी में व्यापार में उछाल आया। यहूदियों के इसमें सक्रिय हिस्सा लेने से भारतीय व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार बना। व्यापार ने आंतरिक व्यापार वाणिज्य में तीव्रता आयी और एकीकृत मुद्रा प्रणाली विकसित हुई।

बेबीलोनियाई यहूदियों की केन्द्रीय और मुख्य अवस्थिति के कारण उन्होंने न केवल भारत के साथ व्यापार की शुरुआत की और वित्तीय संगठनों की स्थापना की, बगदाद और इस्फहान में यहूदियों ने वित्तीय और बैंकिंग संस्थानों की स्थापाना की। यहूदी बैंकरों का शासकों पर काफी प्रभाव था, क्योंकि बैंकर सरकार को धन उपलब्ध कराते थे। राज्य की वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने में उनका योगदान होता था। राजकोषीय प्रणाली और कर-निर्धारण प्रक्रिया में भाग लेते थे। 10वीं शताब्दी के आरम्भ में यहूदी बैंकरों नें हुंडी (सुफ्ताज) और चेक (साक) जैसी परिष्कृत वित्तीय तकनीकी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बैंकर व्यापार करने के साथ-साथ यहूदी और मुसलमान व्यापारियों को वित्त भी प्रदान करते थे।

www.neerajbooks.com



ईराक और फारस में वित्त ऋण संस्थानों में यहूदी मुसलमानों से आगे बढ़ गए। मिस्र में यहूदी और ईसाइयों ने आर्थिक और प्रशासमिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। दसवीं शताब्दी तक फातिमिदों ने अपने प्रतिद्वंद्वी इराकियों से भारत के व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा अपने हाथ में ले लिया। पश्चिम पर सेलुजुक आक्रमण और धर्मयुद्धों (1096) के बाद बगदाद का पतन हो गया। इसका प्रभाव व्यापार भी पड़ा। भारतीय व्यापार पर मिस्र की स्थिति मजबूत हो गयी। मिस्र में 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान जब व्यापार में पुन: उछाल आया, तो एक बार फिर इस क्षेत्र में यहूदियों का बोलबाला हो गया।

भारत के पश्चिमी तट, इंडोनेशिया में यहूदियों के व्यापारिक पड़ाव थे, जिनका सम्पर्क मिस्र और लाल सागर से था। यहूदी 10वीं से 12वीं शताब्दी तक मुसलमान व्यापारियों के लिए धन जुटाने का काम करते थे। काहिरा भूमध्यसागर के बीच एक बिचौलिए केन्द्र के रूप में उभरा। 1050 में यहूदी बगदाद से निकलकर स्पेन में बसने लगे थे। 11वीं शताब्दी में इतालवी अतिक्रमण के बावजूद भूमध्यसागर का व्यापार इस्लामी हाथों में था और व्यापार करने वाले अरब भाषा बोलने वाले यहूदी थे।

1492 में स्पेन के यहूदियों के निष्कासन के समय में बड़ी संख्या में स्पेनी यहूदियों ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। 1492 में जिन यहूदियों ने स्पेन छोड़ा, वे ऑटोमन बंदरगाह या फिर पुर्तगाल में जाकर बस गए। इस प्रकार यहूदियों को मध्ययुगीन बंधन से छुटकारा मिला। यहूदियों को लम्बी दूरी का व्यापार करने में सहूलियत हुई। इसमें तुर्कों ने इनकी काफी मदद की। यहूदियों और प्रच्छन्न यहूदियों में सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्ध था। वे लम्बी-लम्बी व्यापारिक यात्राएँ करने और विपरीत परिस्थितियों में भी नहीं घबराते थे। 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों के समुद्रीय व्यापार में प्रच्छन्न यहूदियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। 16वीं शताब्दी में स्पेनभाषी यहूदी सालोनिका और इस्तनबुल से निकलकर चारों ओर फैल गए और यूनान तथा बालकन के आन्तरिक व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तुर्कों ने 1523 में रोड्स और 1571 में साइप्रस को पराजित किया, तो ऑटोमन प्राधिकारियों ने जान-बूझकर इतालवी और पश्चिमी ईसाई प्रभाव को कम करने के लिए उन द्वीपों पर ओटोमन यहूदियों को बसाने का आदेश जारी किया।

मिस्र के स्रोतों में लाल सागर में मसालों का व्यापार करने वाले करीमी व्यापारियों का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा दस्तावेजों में 'करीमी' शब्द का बार-बार उल्लेख किया गया। 1000-1300 ई. के बीच यूरोपीय एशियाई व्यापार में काफी तेजी आयी। समुद्र के रास्ते अकेले व्यापार करना खतरनाक था, क्योंकि समुद्री व्यापारी जहाजों को लूट लेते थे। इसका हल कारवां व्यवस्था ने किया। मध्य-पूर्व की सरकार ने डाकुओं से सुरक्षा प्रदान की। बदले में व्यापारियों ने सरकार को धन उपलब्ध कराया। वे यमन, दक्षिण अरब और भारत से बराबर व्यापार किया करते थे। काली मिर्च, मसाले, गेहूँ, चावल, चीनी, रेशम और कपड़े का व्यापार करते थे।

सोगाडियाई (Sogdians) ईरानी मूल के मध्य एशिया निवासियों का आरम्भिक मध्य युग का प्रमुख व्यापारी समुदाय था। शिल्पी, दोभाषिया, अश्वपालक और दस्तकार का कार्य करते थे। वे जरतुश्तवाद धर्म को मानते थे। मध्य एशिया के पश्चिमी क्षेत्र, चीन, श्रीलंका, भारत और चीन में समुद्री रास्तों में अनेक उपनिवेश थे।

रेशम मार्ग जो चीन से पूर्वी रोमन साम्राज्य से लेकर भूमध्य सागर तक फैला हुआ था, इसमें सोगडियाई व्यापारियों का बोलबाला था। सोगडियाई चीनी रेशम, मलमल, काली मिर्च, चाँदी और कस्तूरी का व्यापार करते थे।

10वीं शताब्दी के पश्चात् चीनी व्यापारी समुद्र पार व्यापार में संलग्न हुए। भूगोल, खगोलशास्त्र, कम्पास के आविष्कार और जहाज बनाने की तकनीक के ज्ञान ने उन्हें समुद्रपार व्यापार के क्षेत्र में आगे बढ़ा दिया। चीनी सरकार समुद्रपार व्यापार पर नियंत्रण रखती थी। सोग राजवंश (960–1279) ने व्यापार को बढ़ावा देने के लिए चम्पा, खमेर साम्राज्य, सुमात्रा और मलय प्रायद्वीप से सम्बन्ध रखे। मार्कोपोलो ने चीनी जहाजों की प्रशंसा की और इब्नबतूता ने जहाजों का विवरण दिया।

मिंग शासन काल (1336–1644) में चीनी व्यापारियों को प्रोत्साहन मिला। समुद्री अभियानों का आयोजन किया गया और सरकार द्वारा इन अभियानों में जहाजों से नजराना वसूल किया जाता था। चीनी व्यापारी रेशम और पोर्सलिन का निर्यात करते थे। हिन्द महासागर के बंदरगाहों पर जहाज रुकते थे और बदले में मसाले, हाथीदांत, दवाएं, लकड़ी और मोती का प्राप्त करते थे।

चेंग हो (1371–1433) ने 300 जहाजों से ज्यादा और 27800 नाविकों और सैनिकों के साथ समुद्री अभियान किए थे।

इन अभियानों से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सम्पर्क स्थापित हुए। चीनी शासकों का अभियानों का उद्देश्य निजी व्यापार को दूर रखना था।

समुद्री व्यापार में वेनेशियाई व्यापारियों का भी प्रमुख समूह था। वे 12वीं शताब्दी से मिस्र में व्यापार किया करते थे।

मध्यकालीन भारत में बंजारे (लम्बी दूरी तक सामान ढोने वाले) और बनिया (गाँव और शहर के व्यापारी) दो प्रमुख व्यापारिक समूह थे। बंजारे चरवाही के साथ-साथ व्यापार करते थे। वे बैल पालते थे। सुरक्षा की दृष्टि से वे समूह में निकलते थे। वे नाते-रिश्तेदारों के बंधन में बंधे होते थे और अपने सरदार की बात मानते थे।

मुगल सम्राट् जहाँगीर ने अपने संस्मरण में बंजारों को एक खास तरह के वर्ग के रूप में चर्चा की है। पीटर मंडी ने बंजारों के दल को 'टांडा' के नाम से सम्बोधित किया।

गुरुग्रंथ साहब ने बंजारों को साहूकार कहा है क्योंकि वे ऋण दिया करते थे। *टैवरनियर* ने बंजारों की चर्चा करते हुए कहा है कि

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



वे हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते थे और सामाजिक रीति-रिवाजों से बंधे हुए थे। अनाज, चावल, दाल और नमक ढोने वाले चार अलग-अलग कबीले थे। उत्तर भारत में बंजारों का एक प्रमुख हिस्सा मुसलमान था। लबाना नमक का, मुलतानी अनाज का और मुकेरी लकड़ी का व्यापार करते थे। बंजारों को मूल बिल्कुल अलग-अलग था और वे विभिन्न जातियों में विभक्त थे। परम्पराएँ, रिवाज, मान्यताएँ और अनुष्ठान भी अलग-अलग थे।

भारत में व्यापार करने वाले समुदायों को बनिया कहा जाता है। अन्तर्देशीय व्यापार में बंजारों का खास महत्त्व था। एक बड़ा वाणिज्यिक वर्ग था और इसमें कई जातियां और समुदाय शामिल थे, जो भारतीय समाज की एक खास विशिष्टता थी। इन जातियों में उपजातियां भी थीं, जिनमें सबसे प्रमुख बनिए थे।

पूरे उत्तर भारत में और दक्कन के अधिकांश क्षेत्रों में बनिया समूह फैले हुए थे। पंजाब में उनकी प्रतिद्वन्द्वी जाति खत्री थी। खत्री पंजाब के साथ-साथ अफगानिस्तान आदि में भी व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न थे।

दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश में कोमती और तमिल देश में चेट्टी/चेटिट्यार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यापारी समुदाय थे। मोपला अरब और स्थानीय मुस्लिमों की संकर मुस्लिम जाति थी, जो वहाँ के व्यापार में और खास तौर पर देशी व्यापार में संलग्न थी। सीरियाई ईसाई भी थोड़ा-बहुत व्यापार करते थे। कोचीन के यहूदी भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समूह थे।

अग्रवाल व्यापारी अपने को हरियाणा में अग्रोहा को अपना मूल स्थान मानते हैं। ओसवाल मारवाड़ में ओसी से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। 13वीं और 14वीं शताब्दियों में मुलतानी (पंजाब में मुलतान से) सबसे धनी व्यापारी थे। हिन्दू व्यापारियों में लोहना श्रॉफ समूह मुम्बई का प्रमुख व्यापारी समूह था, जिसका सम्बन्ध पश्चिमी पंजाब से माना जाता है। मारवाड़ी का सम्बन्ध राजस्थान में मारवाड़ क्षेत्र से था।

बनिया समुदाय जातियों एवं उपजाातियों में बँटा हुआ था। इन जातियों में आपसी गठबन्धन और सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। बनिया समुदाय में आपसी बंधुत्व की भावना थी, जिसके कारण वे समुदाय या उपजाति का भेदभाव भूलकर एक साथ व्यापार करते थे। आपात्कालीन स्थिति से निपटने के लिए उन्होंने कुछ नियम बनाये हुए थे। वे एक साथ मिलकर सामूहिक कार्यवाही किया करते थे। पश्चिम भारत के बनियों ने अपने आपको सामूहिक कार्यवाही के लिए अपने को महाजन के रूप में संगठित किया। बनियों की सफलता का प्रमुख कारण था कि उन्हें बचपन से ही गणित की शिक्षा और व्यापार के नुस्खों का प्रशिक्षण दिया जाता था और हमेशा अपने साथियों से उन्हें सहयोग मिलता था।

सर्राफ हिन्दू बनिया हुआ करते थे। सर्राफ हुंडी का लेन-देन, बैंकर और बीमाकर्त्ता के रूप में कार्य करते थे। ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों के अभाव के बावजूद बड़े बनिया से सस्थान विकसित हुए। ये व्यक्तिगत पारिवारिक यसांझा आधारित होते थे। सस्थान में प्रधान के कई प्रतिनिधि हुआ करते थे। इनके गोदाम को कोठी कहा जाता था।

व्यापारियों के सहायक दूर-दूर तक फैले हुए थे। ये भारतीय एजेन्टों की सहायता से व्यापार सम्बन्धी जानकारी और खबरें प्राप्त करते थे। आगरा, सूरत, लाहौर, अहमदाबाद, सिरोन्ज, बुरहानपुर, गोलकुण्डा, बीजापुर और अन्य शहरों में हुंडियाँ भुनाई जा सकती थीं। सर्राफ के बाशिंदे इन कामों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। बनिया दलाल के रूप में भी कार्य करता था। यह दलाल खरीदने के लिए धन की व्यवस्था करने तथा अन्य प्रकार की मदद करते थे।

वाणिज्य वित्त व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। एक निश्चित दर पर ब्याज लिया जाता था। लघु अवधि ऋण और धन का हस्तान्तरण हुंडी द्वारा होता था। हुंडी बेची और खरीदी जाती थी।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. अरमेनियाई व्यापारियों की व्यावसायिक व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

**उत्तर**–17वीं शताब्दी के आरम्भ में फारसी सम्राट् शाह अब्बास I ने इस्फहान के इलाके में न्यू जुल्फा नामक नये शहर को व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से अरमेनियाई व्यापारियों और शिल्पियों को इस नगर में बसाया। अरमेनियाइयों ने फारस के कच्चे रेशम के विदेशी व्यापार को विकसित किया। नये बाजारों, नये उत्पादों और नये व्यापारिक मार्गों की खोज की। 1722 में अफगानों द्वारा फारस पर आक्रमण किए जाने के कारण अरमेनियाई व्यापारियों को काफी नुकसान हुआ। इस कारण वे अन्यत्र जाकर बस गए।

भारत के व्यापार-वाणिज्य और आर्थिक जीवन में अरमेनियाइयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, क्योंकि 16वीं शताब्दी के अंत और 17वीं शताब्दी के आरंभ में बंगाल में व व्यापार के कारण वे एक व्यापारिक समूह के रूप में प्रमुख शहरों, व्यापारिक केन्द्रों, बंदरगाहों तथा उत्पादन केन्द्रों में भी मौजूद थे।

अरमेनियाइयों के वाणिज्यिक उद्यम से प्रभावित होकर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1688 में ख्वाजा फानूस से लंदन में एक समझौता किया, जिसके अंतर्गत अरमेनियाइयों को अपनी पूँजी और जोखिम पर बंगाल में कम्पनी के निवेश के लिए बंगाल का सामान जुटाना था। इसके एवज में लागत पर 30 प्रतिशत मुनाफा देने का वादा किया गया।

सैदाबाद (मुर्शिदाबाद का एक बाहरी हिस्सा), हुगली, कलकत्ता, कासिमबाजार, ढाका औोर पटना अरमेनियाई व्याापारियों की अपनी बस्ती और गिरजाघर थी। इसमें आगरा, दिल्ली, बनारस, मद्रास, सूरत, मसुलीपटनम और भारत के अन्य शहरों और बंदरगाहों में भी वे बड़ी संख्या में रहते थे। एक अरमेनियाई प्रमुख ख्वाजा वाजिद

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



ने बंगाल की वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था और राजनीति के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी जाती थी। अरमेनियाइयों का बंगाल और न्यू जुल्फा से सीधा सम्बन्ध था, जहाँ थोड़ा-सा भी मुनाफा हो सकता था, अरमेनियाई वहाँ पहुँच जाते थे।

18वीं शताब्दी के पहले तीन दशकों में ख्वाजा वाजिद में व्यापक प्रभाव और अरमेनियाई प्रभाव के परिणामस्वरूप वह केवल शोरा, नमक और अफ्रीका जैसे अन्तर्देशीय व्यापार में ही शामिल नहीं था, बल्कि बंगाल से लेकर सूरत तक और फारस की खाड़ी से लाल सागर तक के व्यापार में फैला हुआ था। वह हुगली से अपने विस्तृत व्यापारिक साम्राज्य का संचालन करता था जो उस समय बंगाल की राजधानी थी। तत्कालीन बंगाल के कई अरमेनियाइयों की तरह संभवत: न्यू जुल्फा के साथ उसका सम्पर्क भी स्थापित था। वाजिद ने मुर्शिदाबाद के नवाब के दरबार से सम्बन्ध बढ़ाकर और अपना प्रभाव जमाकर अपनी स्थिति मजबूत की। कूटनीति के द्वारा और बंगाल में अलीवर्दी खां को वित्तीय सहायता देकर दरबार में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। उसका बिहार की अर्थव्ययवस्था पर पूरा नियंत्रण था। वह केवल अरमेनियाई व्यापारियों का नायक नहीं था, बल्कि हुगली में व्यापारियों के पूरे समुदाय का नेता था। ख्वाजा वाजिद अपने बल पर अन्तर्देशीय व्यापार में सक्रिय था और यूरोपीय कम्पनियों को माल की आपूर्ति करता था। फ्रांसीसियों और डचों के साथ उसका खूब लेन-देन चलता था। उसके अंदर वाणिज्यिक वर्चस्व स्थापित करने का एक जुनून था और इसके लिए वह कोई भी कीमत अदा कर सकता था। उसे जिधर भी व्यापार में लाभ दिखायी देता था, वह उसी ओर झुक जाता था। ख्वाजा वाजिद का मुख्य कार्य क्षेत्र बंगाल का अन्तर्देशीय व्यापार और शोरा तथा नमक के व्यापार पर एकाधिकार था।

अरमेनियाई सौदागर सम्राट् हुगली को अपना मुख्यालय बनाकर एशिया के विभिन्न देशों और समुद्रतटीय व्यापार में भी संलग्न था। 18वीं शताब्दी में पूर्वार्द्ध में अरमेनियाई व्यापारी भारत के विभिन्न भागों तथा पश्चिम एशिया की ओर बंगाल की बहुमूल्य वस्तुओं से लदा जहाज भेजा करते थे और वहाँ से सोना-चाँदी और माल लेकर लौटते थे।

अरमेनियाई व्यापारी समूह का व्यापक व्यापारिक तंत्र फैला हुआ था। वे न केवल प्रमुख व्यापारिक हाटों में उपस्थित रहते थे, बल्कि विभिन्न उत्पादन केन्द्रों में भी उन्होंने अपने लिए जगह बना ली थी। बंगाल के रेशम और कपड़ा व्यापार में निश्चय ही उनकी प्रमुख भूमिका थी।

बंगाल में रेशम और कपड़ा उद्योग के साथ-साथ अरमेनियाई व्यापारियों और उनके व्यापक व्यापारिक तंत्र के बीच बढ़िया तालमेल स्थापित हुआ, जिसके कारण वे बंगाल के व्यापारी समुदाय के रूप में उभरे और अक्सर शक्तिशाली स्थानीय व्यापारी समूहों को वे जोरदार प्रतियोगिता दिया करते थे।

अरमेनियाई व्यापारी घूम-घूमकर इन कपड़ों को इकट्ठा करते थे और बंगाल में फैले उनके व्यापक व्यापारतंत्र से उन्हें फायदा होता था। घर-घर से कपड़ा उठाने और उसे निर्यात करने के क्षेत्र में स्थानीय भारतीय व्यापारियों के साथ-साथ यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों में कड़े प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरे। 1747 में ढाका में हुए कपड़े का निर्यात का 23 प्रतिशत हिस्सा एशियाई व्यापारियों में अरमेनियाइयों का था।

**प्रश्न 2. मध्यकाल के दौरान यहूदी समुदाय ने किस प्रकार व्यावसायिक गतिविधियों में अपना वर्चस्व स्थापित किया था?**

**उत्तर**–उत्तरी अफ्रीका और मिस्र से लेकर फारस और खोरासान तथा भारत के मालाबार तक यहूदी प्राचीन काल से ही व्यापार करते आ रहे थे। इनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान हो। आरम्भिक शताब्दियों में यहूदी गैर-इस्लामी क्षेत्रों के साथ व्यापार करते थे। बगदाद में इस्लाम की राजधानी बनने के पश्चात् आठवीं और नवीं शताब्दी में उछाल आया। यहूदियों ने इसमें हिस्सा लिया। 9वीं शताब्दी में भारतीय व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार था। इसके फलस्वरूप आन्तरिक वाणिज्य में अभूतपूर्व तीव्रता आई और इसके फलस्वरूप एक एकीकृत मुद्रा प्रणाली विकसित हुई, जिसने पूर्वी और पश्चिमी खिलाफत को अपने दायरे में ले लिया।

बेबीलोनियाई यहूदियों की केन्द्रीय और मुख्य अवस्थिति के कारण उन्होंने केवल भारत के साथ लम्बे व्यापार की शुरुआत की और वित्तीय संगठनों की स्थापना और राज्य वित्तीय व्यवस्था की शुरुआत की। बगदाद और इस्फहान में यहूदियों ने वित्तीय और बैंकिंग स्थानों की स्थापना की। यहूदी बैंकरों का शासकों पर काफी प्रभाव था, क्योंकि ये बैंकर को सरकार को धन उपलब्ध कराते थे। राज्य की वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने में योगदान, राजकोषीय प्रणाली और कर निर्धारण की प्रक्रिया में भाग लेते थे। 10वीं शताब्दी के आरम्भ में यहूदी बैंकरों ने हुंडी और चैक (साख) जैसी परिष्कृत वित्तीय तकनीकी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बैंकर व्यापार करने के साथ-साथ यहूदी तथा मुसलमान व्यापारियों को वित्त प्रदान करते थे। दास व्यापार में धन उपलब्ध कराने मध्य एशिया और चीन भेजे जाने वाले कारवां को तैयार करते थे। ईराक और फारस में वित्त और ऋण संस्थानों में यहूदी मुसलमानों ने आगे बढ़कर मिस्र में यहूदी और ईसाइयों के आर्थिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यहूदी समुदाय के उत्तरी अफ्रीका से सम्बद्ध दस्तावेज मिले हैं। उन्होंने दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में पूर्वी भूमध्यसागर में खूब व्यापार किया था। वे व्यापार के लिए लम्बी यात्राएँ करते थे और दुनिया के हर हिस्से में जाते थे। यहूदी लोग ट्यूनिशिया में क्वायरान, मिस्र में एलेक्जेंड्रिया और फुस्तात और लाल सागर के मुहाने पर स्थित ऐडेन-सब जगह मौजूद थे। इससे दोस्तों और

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



दूर-दराज बैठे मालिक की तरफ से सम्बद्ध निवासी सामान बेचने में मदद किया करते थे। यहूदी व्यापारी आपस में दोस्ती और नाते-रिश्तेदारी, आपसी विश्वास और वित्तीय हितों के कारण जुड़े हुए थे। यह समुदाय इतना सुगठित था कि यदि नियम का उल्लंघन करने वाले सदस्य के खिलाफ यह समुदाय निर्देश जारी करता था, तो उसकी साख और सम्मान धराशायी हो जाते थे। एक बार जिस व्यक्ति पर अविश्वास कर लिया जाता था, वह जल्द ही अपनी साख खो बैठता था।

वास्तविक परिस्थितियों में यह समुदाय उत्तरी अफ्रीका से लेकर भारत तक भूमध्यसागरीय क्षेत्र में अपना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक जीवन बिताता था। यहूदी व्यापारी ट्यूनिशिया, अन्दलूसिया (स्पेन) और यहाँ तक कि पार समुद्री व्यापार में सिसली तक पहुँचे हुए थे। इनमें से कई लोग पश्चिमी भारत के साथ सम्बद्ध थे और अक्सर मालाबार बन्दरगाह, अदन और फुस्तात जाया करते थे।

भारत के पश्चिमी तट से लेकर भरूच के दक्षिण तक और फिर इन्डोनेशिया तक लगभग बीस ऐसे स्थान बताये जा सकते हैं, जो यहूदियों के व्यापारिक पड़ाव थे और जिनका सम्पर्क मिस्र और लाल सागर से था। परन्तु पहले की तरह वह अब बहुत प्रख्यात नहीं रह गया था। 10वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक के भारतीय व्यापार को काफी हद तक भूमध्यसागर में रहने वाले मुसलमानों द्वारा सम्पन्न किया जाता था और वह ही इसके लिए धन भी जुटाते थे। 1050 के बाद यह यहूदी बड़ी संख्या में बगदाद से निकलकर बसने लगे। 11वीं शताब्दी में इतालवी अधिक्रमण के बावजूद भूमध्यसागर अभी भी अधिकांशत: इस्लामी हाथों और भूमध्य सागर में व्याापार करने वाले अरब भाषी यहूदियों के कब्जे में था।

1492 में स्पेन से यहूदियों के निष्कासन के समय काफी बड़ी संख्या में स्पेनी यहूदियों ने कम से कम नाममात्र के लिए ईसाई धर्म अपना लिया। 1492 में जिन यहूदियों ने स्पेन छोड़ दिया, वे ऑटोमन बंदरगाह पर या फिर पुर्तगाल चले गए। जिन यहूदियों ने धर्मान्तरण कर लिया था, उन्हें आजादी भी मिल गई थी। 16वीं शताब्दी के आरम्भ में यहूदी और प्रच्छन्न यहूदी तीन प्रमुख पार समुद्रीय और वाणिज्य क्षेत्रों में कार्यरत थे। आजादी मिलने के कारण वे लम्बी दूरी का व्यापार करने लगे थे। यहूदियों और प्रच्छन्न यहूदियों की पृष्ठभूमि, भाषाओं और संस्कृति आइबेरियाई थी और वे आपस में सामाजिक और पारिवारिक रिश्ते और नातेदारियों से बंधे हुए थे। अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि और पारिवारिक सम्बन्ध की मदद से वे लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते थे और विपरीत परिस्थितियों में घबराते नहीं थे। 16वीं शताब्दी में पुर्तगाल के प्रच्छन्न यहूदियों की समुद्री व्यापार में प्रमुख हिस्सेदारी थी। स्पेनभाषी यहूदी सालोनिका और इस्तनबुल से निकलकर चारों ओर फैल गए थे और यूनान तथा बालकन के आन्तरिक व्यापार में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया और चारों ओर उनका बोलबाला हो गया। तुर्कों ने 1523 में रोड्स और 1571 में साइप्रस को पराजित करके इन क्षेत्रों में ईसाई प्रभाव को कम करने के लिए इन क्षेत्रों में यहूदियों को बसाने का आदेश जारी किया। सुल्तान ने इतालवी जहाजों को काला सागर क्षेत्र छोड़ने के लिए मजबूर किया और पश्चिमवासियों को बालकन क्षेत्र में तथा अनातोलिया वाणिज्यिक केन्द्रों में अपनी प्रजा की अपेक्षा अधिक चुंगी और सीमा शुल्क देने के लिए बाध्य किया।

**प्रश्न 3. भारत में व्यावसायिक समुदाय के रूप में बंजारों की क्या विशिष्टता थी?**

**उत्तर–**बंजारे (लम्बी दूरी तक सामान ढोने वाले) और बनिया (गांव और शहर के व्यापारी) मध्यकालीन भारत में दो प्रमुख व्यापारिक समुदाय थे। बंजारे चरवाही के साथ-साथ व्यापार भी किया करते थे। भारतीय कृषिगत वस्तुओं के व्यापार में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वे जमीन के रास्ते दूर-दूर तक सामान ढोते थे और इन सामानों को ढोने के लिए ऊँट, बैल और बैलगाड़ी से सामान ढोया जाता था।

बैल तेज चलता था, लेकिन बैलगाड़ी के मुकाबले यह ज्यादा महंगा पड़ता था। बैलगाड़ी धीरे-धीरे चला करती थी, परन्तु उनके रखरखाव में सुविधा होती थी। इससे पशुपालन को बढ़ावा मिलता था। पशुपालकों में बैल लम्बी दूरी की यात्रायें करते थे और बैल जब थक जाते थे, तो उन्हें खुले मैदान में छोड़ दिया जाता था, जहाँ ये बैल हरी-हरी घास खाकर अपना पेट भरते थे। सुरक्षा के दृष्टिकोण से लोग एक साथ समूह में निकलते थे। वे नाते-रिश्तेदारियों के बंधन में बंधे होते थे और अपने सरदार की बात मानते थे।

मुगल सम्राट् जहाँगीर (1605–27) ने अपने संस्मरण में बंजारों की चर्चा की है। इन बंजारों के पास हजारों की संख्या में बैल होते थे। वे गांव से शहरों में अनाज लाते थे और वे सेना के साथ चलते थे। सेना के साथ भी हजारों बैल चलते थे।

एक अंग्रेज यात्री पीटर मंडी (Peter Mundy) ने 1632 में घूमते हुए इन बंजारों के दल को "टांडा" के नाम से सम्बोधित किया। बंजारे अपने घर का पूरा सामान, अपने बच्चों और अपनी पत्नी को साथ लेकर चलते थे। एक टांडा में कई परिवार शामिल होते थे। इन बंजारों को जहाँ अनाज सस्ता मिलता, वहाँ से अनाज खरीद लेते और जहाँ महँगा बिकता था, वहाँ अनाज को बेच देते थे। आमतौर पर वे स्वयं व्यापार करते थे, परन्तु कभी-कभी दूसरे व्यापारी भी पैसे देकर काम करवाते थे। परन्तु ज्यादातर वे खुद ही व्यापारी होते थे। वे अनाज के अलावा चीनी, नमक और मक्खन आदि चीजें सस्ते दामों में खरीदकर अन्य स्थानों में जाकर महंगे दामों पर बेच देते थे।

गुरुग्रंथ साहब में कई स्थानों पर इन बंजारों को साहूकार कहकर सम्बोधित किया गया है। ये बंजारे ऋण भी दिया करते थे। टैरेवरनियर ने इन बंजारों के रीति-रिवाजों के बारे में कहा है कि वे हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते थे। चार अलग-अलग कबीले अलग-अलग सामानों का व्यापार करते थे। उनकी स्त्रियां

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कमर से ऊपर गोदना गुदवाती थीं। उनके अपने पुरोहित होते थे और सर्पाकार मूर्ति एक विशेष बैल पर रखी होती थी।

कुछ बंजारे परम्परागत रूप से कुछ खास सामानों का ही व्यापार करते थे; जैसे–लबाना नमक का, मुल्तानी अनाज का और मुकेरी लकड़ी का व्यापार करते थे। वे मुनाफा कमाने वाली वस्तुओं को अपने साथ लेकर चलते थे। बंजारों का मूल बिल्कुल अलग-अलग था और वे विभिन्न प्रकार की जातियों में विभक्त थे। उनकी परम्पराएं, रीति-रिवाज, मान्यतायें और अनुष्ठान अलग-अलग थे। बंजारों में कई अन्धविश्वास व्याप्त थे।

बंजारे सामूहिक तौर पर व्यापार करते थे। एक समूह में कई परिवार शामिल होते थे। सभी लोगों में एकता होती थी। माल ढोने में जानवरों का उपयोग किया जाता था, जिससे पशुपालन को बढ़ावा मिलता था। वे बंजारे गाँवों से सस्ती दरों पर अनाज खरीद कर शहरों में बेचते थे, जिससे इनकी अच्छी कमाई होती थी। वे अपने रीति-रिवाजों, परम्पराओं को बनाये रखने में विश्वास करते थे तथा इन रीति-रिवाजों का पालन भी करते थे। बंजारों की कुछ खास जातियां कुछ सामानों का व्यापार करती थीं। ये जातियां उन सामानों के व्यापार के नाम से प्रसिद्ध थीं। इन बंजारों में काफी एकता देखने को मिलती थी और ये कठिनाइयों का सामना मिलकर करते थे। इससे इन लोगों में एकता की भावना का विकास हुआ।

इस तरह हम देखते हैं कि बंजारा जाति ने भारतीय व्यापार-वाणिज्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

**प्रश्न 4. भारत में बनियों के अलग-अलग व्यावसायिक समूहों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–भारत के बड़े हिस्से में व्यापार करने वाले समुदायों को बनिया कहा जाता है। वे अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग जातियों और उपजातियों में विभाजित होते हैं। बनिया के अन्तर्गत सभी देशी व्यापारी समुदाय विचार कर रहे हैं।

अन्तर्देशीय व्यापार में बंजारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। परन्तु व्यापक पैमाने पर वे व्यापार नहीं करते थे। भारत में एक बड़ा वर्ग वाणिज्यिक वर्ग था और इसमें कई जातियाँ और समुदाय शामिल थे, जो भारतीय समाज की एक खास विशिष्टता थी। इन जातियों में कई उपजातियां थीं। अबुल फजल ने बनिया जाति की 84 उपजातियों की चर्चा की है। ये जातियाँ किसी खास धर्म को मानती थीं, जैसे–गुजरात और राजस्थान के बनिए जैन धर्म को मानते थे।

पूरे उत्तरी भारत और दक्कन में अधिकांश क्षेत्रों में बनियों का वर्चस्व था, परन्तु पंजाब में खत्री जाति के व्यापारी उनके प्रतिद्वन्द्वी थे। ये खत्री यशस्वी हिन्दू शहरी समुदाय थे, जो पंजाब के अलावा अफगानिस्तान आदि में भी व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न थे।

गोलकुंडा राज्य में कोमतियों को बनिया कहा जाता था। तमिल में चेटट्टी/चेट्टियार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यापारी समुदाय थे। केरल के तटीय क्षेत्रों में हिन्दू जाति के लोग व्यापार नहीं करते थे। इन क्षेत्रों में मोपला अरब और स्थानीय निवासियों के संकर मुस्लिम जाति थी। ये केरल के तटीय क्षेत्रों में होने वाले व्यापार में संलग्न थे। चीन क्षेत्र में यहूदी व्यापार में संलग्न थे।

मिरात-ए-अहमदी (1761) के अनुसार बनिया की उपजातियाँ मुख्यत: स्थानों, गाँवों और बस्तियों के नाम पर आधारित थीं। अग्रवाल हरियाणा के अग्रोहा को अपना मूल स्थान मानते हैं। ओसवाल मारवाड़ में ओसी से अपना मूल सम्बन्ध जोड़ते थे। बनारसी दास (16वीं शताब्दी के अंत और 17वीं शताब्दी के आरम्भ में) जो श्रीमल उपजाति के थे और जिनका गोत्र बिहोलिया था। अपना सम्बन्ध बिहोली (रोहतक के समीप) से जोड़ते थे। उनका जन्म जौनपुर में हुआ था और खैराबाद में बसे श्रीमलों के परिवार में उनकी शादी हुयी थी।

13वीं और 14वीं शताब्दियों में मुलतानी दिल्ली के सबसे अमीर व्यापारी और बैंकर थे। हिन्दू व्यापारियों में लोहना, श्रॉफ (सर्राफ बैंकर) प्रसिद्ध थे। इन लोगों का व्यापार बम्बई में था। लोहना का सम्बद्ध पश्चिमी पंजाब से माना जाता है। परंतु धीरे-धीरे वे सिंध से होते हुए पश्चिम दक्षिण और कच्छ से होते हुए सौराष्ट्र और बंबई तक पहुँच गए। मारवाड़ी अपना सम्बन्ध राजस्थान में मारवाड़ क्षेत्रों से मानते थे। ओसवाल देश के विभिन्न भागों में फैले हुए थे। बनारसीदास आगरा के साथ इलाहाबाद में पश्चिम में फतेहपुर के छोटे शहर का भी जिक्र करते हैं। अहमदाबाद के प्रसिद्ध व्यापारी शांतिदास साहु जो बादशाह शाहजहाँ का जौहरी था, भी ओसवाल समुदाय से था।

गुजरात में बनिया, बोहरा, पारसी; राजस्थान में हिन्दू और जैन मारवाड़ी; उत्तर भारत और पंजाब में खत्री; पूर्वी क्षेत्र में चेट्टी और कोमती और बंगाल और दक्कन में विदेशी मूल के कुछ मुसलमान व्यापारी प्रमुख व्यापारी समूह थे।

इस तरह हम देखते हैं भारत में बनिया बहुत बड़ा समुदाय था, जो कई जातियों और उपजातियों में विभाजित थे। कुछ क्षेत्रों में विदेशी व्यापारी भी व्यापार करते थे। बनिया भी जातियों, उपजातियों, गाँवों, स्थानों से जुड़े हुए थे। इन जातियों उपजातियों उत्पत्ति-स्थान गाँव था।

**प्रश्न 5. व्यापारिक समुदाय के रूप में अरमेनियाइयों की सफलता की विवेचना कीजिए।**

**उत्तर**–अरमेनियाई व्यापारी एक समूह के रूप में कार्य करते थे। उनके अपने व्यापारिक तंत्र को बढ़ाने और फैलाने में उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। अरमेनियाइयों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बस्तियाँ बसाईं और गिरजाघरों की स्थापना की। इसमें अरमेनियाई उद्यमियों और उद्यमों में निहित दृढ़ जातीय और सांस्कृतिक झलक मिलती है।

अरमेनियाइयों की सफलता का मुख्य कारण उनका संगठनात्मक रूप से कार्य करना था। अरमेनियाई का व्यापार पारिवारिक रिश्ते, नातेदारी और देशवासियों के बीच परस्पर विश्वास और भरोसे पर कायम था, जिससे संगठनात्मक स्तर पर खर्च में बचत होती थी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



और संगठन के स्तर पर नये-नये तरीके ईजाद होते थे। वे समय और माहौल के अनुरूप अपना रूप बदल लेते थे। व्यापार में मुनाफा कमाने के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। अरमेनियाइयों ने विश्वास और भरोसे का वातावरण स्थापित किया, जो उनकी सफलता का महत्त्वपूर्ण राज था। आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान तथा एक-दूसरे को समर्थन ने उनकी जातीय तथा धार्मिक पहचान को सुरक्षित रखा। भारत में मारवाड़ी, गुजराती और फारसी भी अरमेनियाई ढर्रे पर व्यापार किया करते थे। ये सभी अपने-अपने क्षेत्रों में सफल हुए।

अरमेनियाई व्यापारी जहाँ भी व्यापार करते थे, उन्हें वहाँ की भाषा और रीति-रिवाजों की जानकारी होती थी और वे स्थानीय लोगों से घुल-मिल जाते थे और उनके माहौल में अपने को ढाल लेते थे। अरमेनियाई लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का व्यापक ज्ञान था। वे स्थानीय लोगों से सम्पर्क स्थापित करने और क्षेत्रीय बाजार तक पहुँचने की कला में प्रवीण थे।

अरमेनियाई व्यापारी बड़े ही कुशल और व्यावहारिक सौदागर थे। वे व्यापार करने में बड़े से बड़ा जोखिम उठा सकते थे और इन जोखिमों को पहचानने की भी दृष्टि उनके पास थी। उन्हें जहाँ भी मुनाफे की थोड़ी-बहुत गुंजाइश नजर आती थी, वहाँ पहुंचने में उन्हें संकोच नहीं होता था। वे हमेशा किसी भी प्रकार का व्यापारिक रूप ले लेने के लिए तैयार रहते थे और इसमें अरमेनियाइयों को विशेषज्ञता हासिल थी, जिस कारण भारत और यूरोप के कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में उनकी पदचाप सुनाई पड़ने लगी और यही उनकी अभूतपूर्व सफलता का राज था। वे किसी भी क्षेत्र से वस्तु का व्यापार कर सकते थे। वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उत्पादन केन्द्रों में पहुँच जाते थे। जहाँ व्यापार करने जाते थे, वहीं की भाषा और संस्कृति में रंग जाते थे, लेकिन अपनी पहचान बनाये रखते थे।

17वीं और 18वीं शताब्दी में अन्तर्क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उनकी अभूतपूर्व सफलता के यही कुछ महत्त्वपूर्ण कारक थे।

अरमेनियाइयों की व्यापारिक सफलता का मुख्य कारण था कि वे जहाँ भी रहते थे, उस क्षेत्र की भाषा और सस्कृति को अपना लेते थे। हालाँकि वे अपने अस्तित्व को बनाये रखते थे। वे मुनाफा कमाने के लिए किसी भी प्रकार का जोखिम उठा सकते थे। वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उत्पादन केन्द्र तक पहुँच जाते थे और सबसे बढ़कर यह कि अरमेनियाई काफी मेहनती होते थे। उनकी सफलता का यही राज है।

■■

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



# वाणिज्यिक प्रथाएँ

26

## परिचय

स्थानीय और अन्तरक्षेत्रीय व्यापार की प्रकृति और मात्रा सब जगह एक समान नहीं थी। भारत से मसाले और सूती कपड़े का निर्यात किया जाता था। अफ्रीका और अमेरिका से सोना-चाँदी और दासों का निर्यात किया जाता था। अरब व्यापारी घोड़ों, ईरानी रेशम और भूमध्यसागरीय उत्पाद कपड़ा, शराब और अनाज एशिया और पूर्वी अफ्रीका में निर्यात करते थे। बाइजेन्टाइन से विलासिता की वस्तुओं व इत्र और रेशम के वस्त्रों का निर्यात स्लाविक देशों को किया जाता था।

पश्चिमी यूरोप के सीमांत पर अन्तरक्षेत्रीय वाणिज्यिक गतिविधियों में फ्रिसियन्स (Frisians) सबसे पहले मध्यस्थ थे। व्यापार राइन नदी पर होता था। वे अनाज और शराब के बदले कपड़ा और मछली का विनिमय करते थे।

9वीं और 10वीं शताब्दी में स्कैनडिनेवियाई बाल्टिक से काला सागर और वहाँ से बाइजेन्टाइन जाने के लिए रूस के जलमार्ग से गुजरते थे। ये व्यापारी शहद, रोएंदार खाल और दासों का निर्यात करते थे। वे मसाले, शराब, कपड़े और धातु की वस्तुओं का आयात किया करते थे। इस प्रकार कपड़ा, तेल और मसालों जैसी पूर्वी विलासिता की वस्तुएँ पश्चिम को प्राप्त होती थीं और वहाँ से लकड़ी, लोहा व दासों का निर्यात होता था।

10वीं शताब्दी में इतालवी सौदागरों ने व्यापार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पूर्व में इतालवी रेशम, वेलवेट, दमसक, रूसी फर, पूर्वी मसालों और रंगाई का सामान लाते थे। इन सामानों को पश्चिम यूरोप और मध्य यूरोप में बेचा जाता था। बदले में वहाँ से लकड़ी, हथियार, ऊन का सामान और दास पूर्व की ओर लाते थे। इतालवी व्यापारी मुख्य रूप से पुनर्निर्यात का काम करते थे।

उत्तरी यूरोप में केवल अनाज, मछली और लकड़ी की वस्तुओं का व्यापार होता था। सोम्मे और सेने घाटी अनाज के लिए प्रसिद्ध थी। पोलैंड यूरोप का प्रमुख अनाज भंडार था, बाल्टिक में, स्वीडन के दक्षिणी तट पर स्थित स्कानिया से मछली पश्चिमी यूरोप को भेजी जाती थी। बोरडेक्स पोलैंड के मैदानी क्षेत्र और नीदरलैंड में लकड़ी और नमक बोर्नेफ की खाड़ी से आपूर्ति की जाती थी।

दक्षिण यूरोप में व्यापार होने से मुस्लिम क्षेत्रों व पश्चिमी व्यापारियों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध कायम था। मुस्लिम देश फ्रैंकिश और स्कैन्डिनेवियन तलवारें, यूरोप की लकड़ी, लोहा, टिन और तांबा खरीदते थे और पश्चिमी देश कपड़े तथा मसाले बेचते थे।

नवीं और दसवीं शताब्दियों में पूर्वी यूरोप में व्यापार में तेजी आयी। अरब व्यापारी नियमित रूप से स्लाव भूमि तक पहुँचने लगे। मोराविया, बोहेमिया, पोलैंड और रूस के स्लावोनिक राज्य दास, फर, शहद और मोम का व्यापार करने लगे। रूस स्लावोनिक और बाल्टिक देशों के बीच लेन-देन का प्रमुख केन्द्र बन गया। 12वीं शताब्दी में नोवगोरोड (Novgorod) बाल्टिक क्षेत्र बोहेमिया, कोलोन, ओशेन, मेन्च और अन्य शहरों से कपड़ों का आयात करने लगे। हंगरी से ऊपरी जर्मनी, इटली और वियना को खनन उत्पाद और पशु निर्यात किए जाते थे। 13वीं शताब्दी से पोलैंड से ब्रजेज से धातु और विलासिता की वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं।

फ्लैंडर्स सबसे पहले कपड़ा निर्माता बना। 13वीं शताब्दी में ब्राबंत (Brabant) से कड़ी प्रतियोगिता झेलनी पड़ी। भूमध्य-सागरीय क्षेत्र में इंग्लैंड और स्पेन से ऊन का आयात किया जाता था।

यूरोप से पहले अमरीका में व्यापार का जाल बिछा था। लॉरेन्स घाटी में 'फर' व्यापार में ह्यूरोन्स (Hurons) का महत्त्वपूर्ण योगदान था। टेनीशटिटलैन मैक्सिको और अमरीका के प्रमुख वाणिज्यिक केन्द्र थे। न्यू मैक्सिको से फिरोजा तथा चाँदी आती थी। एजटेक्स से दुनियाभर में जुटाई गई वस्तुओं का व्यापार होता था।

माया क्षेत्र में चमड़े से बनी वस्तुओं और खालों का व्यापार होता था। 14वीं और 15वीं शताब्दी में इस क्षेत्र की स्थापना होने से व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन आया।

यूरोप की जनता ज्यादातर स्थानीय उत्पादों पर निर्भर थी। मध्य काल में ज्यादातर व्यापार जलमार्ग से होता था।

मध्यकाल में जल और स्थल मार्ग से व्यापार होता था। मध्य एशिया से होने वाला अधिकांश व्यापार स्थल मार्ग से होता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



भूमध्यसागरीय क्षेत्र इन भागों से भारत, ईरान और चीन से जुड़े थे। विंध्य और गुजरात के मुसलमान व्यापारियों का व्यापारिक केन्द्र था।

भारत से आने वाले व्यापारी लाल सागर में जोर और जिद्दा बंदरगाहों तथा फारस की खाड़ी में उबुल्लाह का उपयोग करते थे। सिराफ यमन और लाल सागर के बीच मिलन स्थल था, पर एक प्रमुख बंदरगाह था। मस्कत और ओमान महत्त्वपूर्ण तटीय क्षेत्र थे।

चीनी शासकों द्वारा विदेशी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने के पश्चात् मल्का का उपयोग विदेशी व्यापार केन्द्र के रूप में किया जाता था। तांग युग के उत्तरार्द्ध में कैंटन प्रमुख बंदरगाह था। दक्षिण शुंग के शासन काल में चाय और पोर्सलिन के लिए फूकिन महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह था।

*पिएर काउनू* (Pierre Counou) ने चार व्यापार मार्गों का उल्लेख किया है। प्रथम मार्ग चीन से काला सागर तक तथा साइबेरिया के दक्षिणी क्षेत्र तक जाता था। दूसरा मार्ग तुर्किस्तान मरुभूमि से गुजरता हुआ ईरान को जोड़ता था और फारस की खाड़ी के मुहाने से जुड़ता था। ईरान से यह थल मार्ग फारस की खाड़ी के मुहाने से जुड़ता था। तीसरा समुद्री मार्ग भारत से मलक्का और ईस्ट इंडीज होकर गुजरता था और फारस की खाड़ी से जार्डन, सीरिया तथा फिलीस्तीन के बंदरगाहों तक पहुँचने के लिए समुद्री मार्ग का उपयोग करने वाले यात्रियों को मरुभूमि से होकर गुजरना पड़ता था। 11वीं शताब्दी से दक्षिण की ओर व्यापार करने वाले इतालवी और अन्य व्यापारी इंग्लैंड और फ्रांस से होकर कई रास्तों का इस्तेमाल करते थे।

12वीं शताब्दी के दौरान स्लैवोनिक पूर्व तक पहुँचने के लिए वेस्टफेलिया के डॉर्टमंड से होते हुए जर्मनी के बीचोंबीच हैलवेग प्रमुख सम्पर्क मार्ग था, परन्तु आने वाली शताब्दियों में इंग्लैंड में दक्षिणी-पूर्वी हिस्से में बाल्टिक और नार्वे से लकड़ी का आयात करने के लिए जलमार्ग सस्ता पड़ता था। पूर्व से पश्चिम तक डच नदियों और नहरों का उपयोग करने से हॉलैण्ड अन्दरूनी तटीय व्यवस्था का प्रमुख केन्द्र बन गया। यूरोप की नदियाँ–राइन, बेसर और एलबे जर्मनी में, फ्रांस में ल्वायर, रोनेक्स और बेरोन के बीच भारी-भरकम और लम्बी दूरी के परिवहन चला करते थे। इंग्लेंड की टेम्स, स्टूर, एवन और ट्रेन्ट के अलावा और भी कई नदियों का इस्तेमाल आंतरिक व्यापार के लिए होता था।

पूर्वी यूरोप में वोल्गा का व्यापक उपयोग होता था। रूस और बाइजेन्टाइन के बीच होने वाला व्यापार द्विना और रिगा की खाड़ी के होते हुए बाल्टिक से हुआ करता था। सामान डनिएपर (Dnieper) और काला सागर तक ले जाया जाता था।

नवीं शताब्दी में फ्रिसियन, डोरस्टाड, डेनिश हाइथाबु और स्वीडिश बिरका बाल्टिक व्यापार के प्रमुख केंद्र थे। बाल्टिक देशों और उत्तरी-पूर्वी रूस के बीच कई जलमार्ग उपलब्ध थे। बाल्टिक से नेवा और लाडोगा झील तक नोवगार्ड तक फैला हुआ था।

समुद्र मार्ग का उपयोग जहाजरानी उद्योग पर निर्भर था। चीन ने जहाज-निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

मध्यकाल में वाणिज्यिक गतिविधियों के कारण बाजारों और शहरों का तेजी से विकास हुआ था। यूरोप के–लंदन, पेरिस, मास्को, बार्सिलोना, बेनिस, मैड्रिड, लिस्बन, बावेरिया, कोलोन, लियोन्स आदि बड़े शहर थे, जहाँ एक से अधिक बाजार थे। धीरे-धीरे ये बाजार बढ़ते चले गये। बड़े शहरों में वस्तुओं के बाजार अलग-अलग होते थे। भारत में 16वीं शताब्दी के अन्त में लगभग 3200 शहर थे। इन सभी शहरों में बड़े-बड़े बाजार थे। सूरत, आगरा, लाहौर, मुल्तान, पटना, ढाका, दिल्ली, बीजापुर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। अरब क्षेत्र में जद्दा, अदन, इस्तानबुल, हौरमुज, बगदाद, मक्का, बसरा में प्रमुख बाजार था। चीन के सभी शहरों में बड़े-बड़े बाजार थे। मध्य एशिया, अफ्रीका और भारत में व्यापारी आया करते थे। यूरोपीय उपनिवेशवादी मैक्सिको, ब्राजील, अर्जेन्टीना पहुँचे, तो लैटिन अमरिका में अनेक बाजार थे।

मध्यकाल में व्यापार की प्रकृति क्षेत्रीय और अन्तर्देशीय थी। गाँव, छोटे शहरों और बड़े शहरों में लगातार सामानों की उपलब्धता बनी रहती थी। फेरी वाले, छोटे व्यापारी और बड़े व्यापारी अलग-अलग वस्तुओं का व्यापार करते थे। भारत में 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में बाजार को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है।

(1) लम्बी दूरी के अन्तर्देशीय समुद्रपार व्यापार केन्द्र।

(2) छोटे बाजार जो आस-पास के लोगों की आवश्यकता की वस्तुओं की आपूर्ति तथा बिक्री करते थे। यह बाजार स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।

(3) किसी खास अवसर पर मेले लगते थे। यहाँ खास वस्तुओं का व्यापार करने वाले व्यापारी मिलते थे और अपना सामान बेचते थे। इन मेलों में ग्राहक भी मौजूद होते थे।

(4) ग्रामीण बाजार जहाँ आस-पास उत्पादित या बनायी गयी वस्तुओं का लेन-देन उत्पादक और उपभोक्ता परस्पर करते थे।

धार्मिक और आनुष्ठानिक उत्सवों एवं समारोहों से मेलों की शुरुआत हुई। व्यापारिक गतिविधियों में तेजी आने से मेले वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र बन गए। मेलों के आकार निश्चित नहीं होते थे। यहाँ देश के विभिन्न भागों से और विदेशों से भी लोग आते थे। मेलों को आयोजित करने का कोई निश्चित तरीका नहीं था। मेले किसी खास मौसम में लगा करते थे या किन्हीं खास उत्सवों और समारोहों में लगा करते थे। मेलों में कुछ खास वस्तुएँ बिक्री के लिए आती थीं। ऐसे मेलों में सभी प्रकार की वस्तुएँ बिक्री के लिए आती थीं, जैसे–दाल, जानवर, अनाज, हथियार, शिल्पगत वस्तुएँ इत्यादि।

व्यापार-वाणिज्य के विकास के साथ-साथ यह व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ता चला गया। मेले धार्मिक उत्सवों से

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



शुरू होकर व्यापार का केन्द्र बन गए। शोम्पेन के मेले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र बन गए।

भारत के अधिकांश मेले धार्मिक होते थे। इन मेलों में वस्तुओं की खरीद-बिक्री होती थी। कुम्भ का मेला विभिन्न शहरों में 6 और 12 वर्षों के अंतराल में एक बार लगा करता था। मक्का की तीर्थ यात्रा में विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ अपने साथ लाते थे। अलेक्जेंड्रिया में दो महीने व्यापारिक गतिविधियाँ काफी तीव्र होती थीं, क्योंकि यहाँ का मौसम जहाजों के पहुँचने के लिए अनुकूल होता था। चीन में भी मेले धार्मिक उत्सवों से जुड़े थे। इन बाजारों तथा मेलों पर सरकार का नियंत्रण रहता था।

इन मेलों में समाज के सभी स्तर के लोगों की भागीदारी होती थी। बड़े व्यापारी, छोटे व्यापारी, दलाल, फेरी वाले, रेहड़ी लगाने वाले और सामान्य लोग भी इन मेलों में भाग लेते थे। इन मेलों में बिक्री थोक और खुदरा दोनों प्रकार की होती थी। मेले के महत्त्व को देखते हुए दूर-दराज के लोगों से लेकर आस-पास के लोगों की भी इसमें भागीदारी होती थी। एण्टवर्प में वर्ष में दो मेले लगते थे। एक मेले में डेनमार्क का प्रसिद्ध घोड़ा बिक्री के लिए आता था। इन बाजारों में व्यापक रूप से उधार लेन-देन और मुद्रा विनिमय का कार्य होता था। व्यापारी हुंडियां साथ लाते थे। इन हुंडियों को भुनाया जा सकता था। बड़े व्यापारी अलग-अलग मुद्राओं के लिए विनिमय दर तय करते थे। 18वीं शताब्दी में यूरोप में वाणिज्यिक गतिविधियों के बड़े केन्द्र ने इन मेलों का पतन कर दिया। हालांकि मेले लगते रहे, परन्तु उनके स्वास्थ्य में परिवर्तन आया। अब मेले सिर्फ मौज-मस्ती के स्थल बनकर रह गए।

उधार और ऋण व्यवस्था व्यापार-वाणिज्य का एक हिस्सा था। क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर थोक और खुदरा विक्रेता ऋण और उधार लेने-देने का कार्य करते थे। उधार नहीं लौटाये जाने की स्थिति में उधारकर्त्ता की आर्थिक स्थिति खराब हो सकती थी। व्यापक स्तर पर होने वाले वाणिज्यिक लेन-देन की स्थिति में धन बड़े व्यापारियों द्वारा उपलब्ध करवाया जाता था, परन्तु आगे चलकर यह कार्य विशेष व्यापारी, महाजन द्वारा किया जाने लगा।

भारत में बड़े अधिकारियों द्वारा व्यापारियों को ऋण उपलब्ध करवाया जाता था, परन्तु ऋण सिर्फ स्थापित और बड़े व्यापारियों को उपलब्ध करवाया जाता था। यूरोप में जहाज मालिकों और व्यापारियों को व्यापार करने के लिए ऋण उपलब्ध करवाया जाता था। समुद्रपारीय ऋण मुनाफे का सौदा था, क्योंकि ऋण के साथ-साथ धन का बीमा भी हो जाता था, परन्तु इसमें ब्याज दर उच्च थी।

पिएर काउनू (Pierre Counou) ने इतालवी व्यापारियों द्वारा धन उगाहने के एक तरीके 'कमेंडा' का उल्लेख किया गया है। जिसमें धन प्रदान करने वाले और व्यापारी के बीच एक समझौता होता था। इसके अलावा साझेदारी पर आधारित एक और व्यवस्था थी, जिसे कोलेगांजा कहा जाता था। इसके अन्तर्गत व्यापारी केवल पूँजी उपलब्ध करवाता था, जबकि दूसरा व्यापारी पूँजी जुटाने के साथ-साथ व्यापार किया करता था। कैम्पेगनिया एक पारिवारिक साझेदारी थी। कौंप्रिडी कैम्पेगनिया व्यवस्था के तहत इसमें व्यापार में भाग लेने का कोई भी इच्छुक व्यापारी पूँजी निवेश कर सकता था।

व्यापारी सामान खरीदने के लिए अपने पास नकद नहीं रखते थे। उधार लेकर काम चलाते थे और व्यापारियों द्वारा मेलों के आखिरी दिन ऋण की अदायगी होती थी। ऋण लेन-देन का लिखित दस्तावेज तैयार किया जाता था। कर्ज लेने वालों के दस्तखत होते थे और निश्चित समय पर ऋण लौटाने का वादा किया जाता था।

नीदरलैण्ड में विनिमय के अन्य तरीके 'मेले का पत्र' की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में नगर निगम को मजिस्ट्रेट के सामने ऋण का दस्तावेज तैयार किया जाता था, और उसका निश्चित समय पर भुगतान करना पड़ता था।

यूरोप में चर्च ने सूदखोरी को धर्म-विरुद्ध कहते हुए पाबंदी लगा दी। 13वीं शताब्दी में यहूदी मुख्य रूप से महाजनी का कार्य करते थे। परन्तु सूदखोरी का कार्य पूर्ण रूप से प्रतिबंधित नहीं किया जा सका। ईसाई विभिन्न तरीकों की आड़ लेकर ऋण उपलब्ध करवाते थे। यदि कोई व्यापार के लिए धन कमाने के उद्देश्य से ऋण लेते थे, तो उसमें सूद लेना धर्म के विरुद्ध नहीं माना जाता था।

मुद्रा का उपयोग व्यापारिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण आधार था। विश्व के देशों द्वारा मुद्रा का प्रचलन और उपयोग की कई विधियां अपनायी गयी थीं। चीन के तांग और सुंग शासनकाल में सिक्कों के साथ-साथ कागजी मुद्रा और ऋण पत्रों को प्रचलित किया। सुंग काल में कई प्रकार के ड्राफ्ट जारी किए गये। निजी बैंकों द्वारा एक अलग प्रकार की कागजी मुद्रा बनायी गयी, जिसे 3 प्रतिशत सेवा-शुल्क देकर भुनाया जा सकता था। 1204 में चीन में सर्वप्रथम कागजी मुद्रा प्रचलन शुरू हुआ। भारत में व्यापारी मुद्रा के साथ-साथ कागजी प्रमाणपत्रों को स्वीकार करते थे। धन का भुगतान करने से पहले इसमें मानक मूलक का निर्धारण करना होता था और बड़े लेन-देन का भुगतान अक्सर वजन के आधार पर किया जाता था। मुद्रा विनिमय में माहिर व्यक्ति सबसे पहले मुद्रा के मोल का आकलन करता था और मुद्रा में धातु का अंश कितना है, जाँच करता था।

नवीं शताब्दी में पश्चिम यूरोप में मुद्रा के लेन-देन का चलन था। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जेनोआ में धन विनिमय करने वाले सक्रिय थे। मुद्रा विनिमयकर्त्ता सिक्कों का आदान-प्रदान और अपने ग्राहकों का पैसा जमा करते थे।

12वीं शताब्दी के अंत में हुंडी का भी प्रयोग होने लगा था। चर्च की सूदखोरी से बचने के लिए हुंडी का प्रचलन हो चुका था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



13वीं शताब्दी के आस-पास बैंकिंग संस्थानों का विकास हुआ। बैंकिंग प्रतिष्ठानों का विकास जेनोआ, लुक्का, फ्लोरेंस, टस्कनी, रोम और वेनिस जैसे शहर बैंकिंग गतिविधियों से दूर थे। फ्लोरेंस में कई व्यापारिक बैंक स्थापित किए गए। फ्लोरेंस के बार्डी (Bordy) और पेरूजी (Peruzzi) घरानों ने इंग्लैंड में बैंक खोले। इटली का मेडिसाई (Medici) बैंक 15वीं शताब्दी का एक शक्तिशाली बैंक था। इसका मुख्यालय फ्लोरेंस तथा इसकी शाखाएँ यूरोप के विभिन्न देशों में फैली हुई थीं। उन्होंने राजाओं को कर्ज दिए और यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा दिया।

मध्यकाल के आखिरी दौर में स्टॉक एक्सचेंज नाम का एक महत्त्वपूर्ण संस्थान बना, जो सभी व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र था। 14वीं शताब्दी तक यूरोप के लगभग सभी देशों में एक्सचेंज व्यापारी, दलाल, व्यवसायियों, मुद्रा विनिमयकर्त्ताओं और बैंकरों के मिलन स्थल के रूप में कार्य करता था।

व्यावसायिक गतिविधियाँ बढ़ने से इससे जुड़े लोग अस्तित्व में आये। ऋणदाता, वित्तदाता, मुद्रा विनिमय, दलाल, बैंकर, वाणिज्य, प्रतिनिधि, बड़े व्यापारी, छोटे व्यापारी और अर्थव्यवस्था में विशेषज्ञता हासिल लोग अस्तित्व में आये।

स्थानीय स्तर पर विनिमय का कार्य सीधे उत्पादनकर्त्ता करते थे। लेकिन धीरे-धीरे व्यापार में वृद्धि के साथ-साथ परिवर्तन भी आया। व्यापारियों ने उत्पादन प्रक्रियाओं को नियमित और नियंत्रित भी किया। उसके पास राजनीतिक शक्ति थी और उन्होंने अपनी व्यापारिक गतिविधियां चलाने के लिए श्रेणियाँ बनाईं। विदेशों में व्यापारी अपने निजी जीवन और व्यापार को इस तरह नियमित करते थे, ताकि दोनों के बीच विरोध का सामना न करना पड़े। भारत में अरब व्यापारी काफी सक्रिय थे। 9वीं शताब्दी के दौरान फ्रिसियन व्यापारी इंग्लैंड में लंदन, फ्रांस में अमीयन, जर्मनी में कोलोन और मेज और स्कैनडिनेविया के कई शहरों में आते-जाते रहते थे। इतालवी व्यापारियों का सम्पर्क काफी मजबूत और व्यापक था। कई स्थानों पर इन व्यापारियों को विशेषाधिकार मिले हुए थे। व्यापारी जहाँ भी पहुँचते, अपनी छोटी-सी बस्ती बसा लेते थे। व्यापार के विस्तार के साथ-साथ विदेशों में रहने वाले व्यापारियों की संख्या में वृद्धि होने लगी।

व्यापारिक गतिविधियां मुख्यत: व्यक्तिगत या पारिवारिक उद्यम पर आधारित होती थीं। व्यापार फैलते ही साझेदार भी बढ़ने लगे। पारिवारिक सदस्यों के अलावा बाहरी व्यक्तियों को भी साझेदार और हिस्सेदार बनाया गया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. यूरोप में होने वाले व्यापार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

**उत्तर**–यूरोप में होने वाले व्यापार की प्रकृति एकसमान नहीं थी। यूरोपीय स्थानीय और अन्तरक्षेत्रीय व्यापार होता था। व्यापार की वस्तुओं में कृषिगत तथा खाद्य-पदार्थों के व्यापार की अधिकता थी। इसके अलावा विलासिता की वस्तुओं, बहुमूल्य पत्थर, घोड़ा, हथियार, दास व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ थीं। भूमध्यसागरीय उत्पाद कपड़ा, शराब और अनाज को एशिया और पूर्वी अफ्रीका में बेचते थे। भूमध्यसागरीय देशों से दासों को भी बेचा जाता था।

9वीं शताब्दी के दौरान बाइजेन्टाइन साम्राज्य का सम्बन्ध स्लाविक जाति के लोगों से हुआ। अब यूरोपीय व्यापारी रूस के बाजारों में पहुँच गए। बाइजेन्टाइन विलासिता की वस्तुओं का निर्माण केन्द्र था। इत्र और रेशम के वस्त्रों जैसे उत्पादों का व्यापार कौन्सटैंटिनोपल से होता था।

पश्चिमी यूरोप की सीमा पर अन्तरक्षेत्रीय वाणिज्यिक गतिविधियाँ हो रही थीं। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के बीच में फ्रिसियन्स (Frisians) मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे। व्यापार राइन के जरिए होता था। कई प्रकार की वस्तुओं का व्यापार होता था। वे अपने कपड़ा और मछली की आपूर्ति करते थे। इसके बदले में अनाज और शराब लेते थे। 9वीं तथा 10वीं शताब्दी में स्कैन्डिनेवियाई बाल्टिक से काला सागर और वहाँ से बाइजेन्टाइन जाने के लिए नियमित रूप से मध्य रूस के जलमार्ग से गुजरते थे। ये व्यापारी निकट पूर्व में मुख्य रूप से शहद, रोयेंदार खाल व दासों का निर्यात करते थे। वे मसाले, शराब, कपड़े और धातु की वस्तुओं का आयात करते थे। इस प्रकार कपड़ा, तेल, मसाले जैसी पूर्वी विलसिता की वस्तुएँ पश्चिम को प्राप्त होती थीं और वहाँ से लकड़ी, लोहा और दासों का निर्यात पश्चिम की ओर किया जाता था।

10वीं शताब्दी में इटली के सौदागरों ने व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। पूर्व से इतालवी रेशम, वेलवेट, दमस्क (एक प्रकार का रेशमी कपड़ा), रूसी फर, पूर्वी मसाला और रंगाई का सामान आयात करते थे। इन सामानों को पूर्व, पश्चिम और मध्य यूरोप में बेचा जाता था। बदले में वे वहाँ से लकड़ी, हथियार, ऊन का सामान और दास पूर्व की ओर लाते थे। इतालवी व्यापारी मुख्य रूप से पुन: निर्यात का भी काम करते थे। वे पूर्व से सामान खरीदते थे और इसे सीधा पश्चिम यूरोप में जाकर बेच दिया करते थे। धीरे-धीरे इटली के नगरों में उत्पादक इकाइयों की स्थापना की गयी।

उत्तरी यूरोप में सिर्फ जीवनयापन की वस्तुओं; जैसे–अनाज, मछली और लकड़ी जैसी जरूरी वस्तुओं का व्यापार होता था। सोम्मे और सेने घाटी से अनाज आता था। प्रशा और पोलैण्ड को जर्मनी ने प्रमुख अनाज भण्डार के रूप में स्थापित किया था। बाल्टिक में, स्वीडन के दक्षिणी तट पर स्थित स्कानिया के मछली भण्डार से पश्चिम यूरोप को मछली भेजी जाती थी। बॉरडेक्स (Bordeaux) वाइन के लिए प्रसिद्ध था। बाल्टिक के आस-पास के जंगलों से फ्लैंडर्स मैदानी क्षेत्रों और नीदरलैण्ड में लकड़ी की आपूर्ति होती थी। नमक बोर्नेफ (Bourgneuf) की खाड़ी से आता

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



था और उत्तर जर्मनी के शहर नमक की आपूर्ति में मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे।

दक्षिण यूरोप के मुस्लिमों के पश्चिमी यूरोपीय व्यापारियों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए। मुस्लिमों द्वारा फ्रेंकिश और स्कैन्डिनेवीयन तलवारें, यूरोप की लकड़ी, लोहा, टिन और तांबा खरीदते थे और पश्चिमी देश को कपड़े और मसाले देते थे।

पूर्वी यूरोप में व्यापार में तेजी आयी। अरबी व्यापारियों ने रूस के बाजारों में कदम रखा। मोराविया, बोहेमिया, पोलैण्ड और रूस के स्लावोनिक राज्य दास, फर, शहद और मोम का व्यापार करने लगे। रूस प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में उभरा। स्लावोनिक और बाल्टिक देशों के लिए यह लेन-देन का प्रमुख केन्द्र बन गया। 12वीं शताब्दी में बाल्टिक देशों में नोवगोरोड (Novgorod) व्यापारिक लेन-देन का प्रमुख केन्द्र था। प्रमुख रूप से शहद, मोम, फर और चाँदी का व्यापार होता था।

अगली शताब्दी में बोहेमिया, कोलोन, आशेन्स, मेंज अन्य शहरों से कपड़ों का आयात किया जाने लगा। पोलैण्ड और हंगरी से व्यापारिक सम्बन्ध था। हंगरी, जर्मनी, इटली और विएना को खनन उत्पाद और पशु निर्यात किए जाते थे। 13वीं शताब्दी के दौरान पोलैण्ड से ब्रजेस को धातु और विलासिता की वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं।

13वीं शताब्दी में फ्लैंडर्स सबसे पहले कपड़ा निर्माता बना, परन्तु 13वीं शताब्दी में ब्राबंत (Brabant) से कड़ी प्रतियोगिता झेलनी पड़ी।

14वीं शताब्दी के दौरान भूमध्यसागर, उत्तरी और बाल्टिक सागर के किनारे-किनारे पूर्व से पश्चिम की ओर वाणिज्य की धारा बढ़ती गयी।

यूरोप में अधिकांश जनता अभी स्थानीय उत्पादों पर निर्भर थी। मध्यकाल में सामान की आवाजाही ज्यादातर जल यातायात के जरिए होती थी। 1273 में इंग्लैंड से 35,000 बोरे ऊन का निर्यात किया गया था। स्वीडन के शहरों को प्रतिवर्ष 1,00,000 टन हिलसा मछली का निर्यात किया जाता था।

इस तरह हम देखते हैं कि यूरोप में कृषिगत और खाद्य पदार्थों की व्यापार की अधिकता थी। व्यापार ने बहुत-से नगरों और बंदरगाहों को समृद्ध बनाया। धीरे-धीरे विलासिता की वस्तुओं का भी व्यापार होने लगा। यूरोप के व्यापार में स्थानीय वस्तुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। व्यापार अन्तरक्षेत्रीय और स्थानीय स्तर का होता था। व्यापार ने लोगों को एक-दूसरे से अन्तराकर्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

**प्रश्न 2. मध्यकाल में बाजारों के विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।**

**उत्तर**–मध्यकाल में वाणिज्यिक गतिविधियों में वृद्धि के कारण बाजारों और शहरों का तेजी से विकास हुआ। यूरोप के बड़े शहरों–लंदन, पेरिस, मास्को, बार्सिलोना, वेनिस, मैड्रिड, लिस्बन, बावेरिया, कोलोन, लियोन्स आदि बड़े शहरों का विकास हुआ, जहाँ एक से अधिक बाजार थे। धीरे-धीरे ये बाजार बढ़ते चले गये। बड़े-बड़े शहरों में अनाज, मांस, कपड़ा, पशु, शराब, पनीर, मक्खन, फल, सब्जी और अन्य जरूरी वस्तुओं के अलग-अलग बाजार थे।

16वीं शताब्दी के अंत में भारत में 3200 शहर थे और इन सभी शहरों में बड़े-बड़े बाजार मौजूद थे। 1600 ई. के आसपास बनारसी दास नामक एक व्यापारी ने कहा था कि जौनपुर में 52 परगनों में से प्रत्येक में बाजार और मंडियाँ थीं। सूरत, आगरा, लाहौर, मुल्तान, पटना, ढाका, दिल्ली, बीजापुर के बाजार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। शिल्पी अपना सामान बेचने के लिए शहर आते थे। 14वीं शताब्दी में दिल्ली व्यापार के लिए सुरक्षित केन्द्र था। मुल्तान के बाजार में खुरासान से घोड़े आते थे। अनाज अमरोहा से, कोल (अलीगढ़) और मेरठ से शराब, मालवा में धार से पान के पत्ते, अवध से साधारण कपड़े, देवगिरी का मलमल, बंगाल से धारीदार कपड़ों की आपूर्ति बाजारों को होती थी।

अरब क्षेत्र में अदन, जद्दा, इस्तनबुल, हौरमुज, बगदाद, मक्का, बसरा में प्रमुख बाजार थे। चीन के सभी शहरों में बड़े-बड़े बाजार थे। मध्य एशिया, अफ्रीका और भारत के व्यापारी आया करते थे। यूरोपीय उपनिवेशवादी मैक्सिको, अर्जेंटीना और ब्राजील पहुँचे, तो वहाँ पहले से ही बाजार थे।

मध्यकाल में व्यापार की प्रकृति क्षेत्रीय और अन्तर्देशीय थी। गाँव, छोटे शहर और बड़े शहरों में लगातार सामानों की उपलब्धता बनी रहती थी। फेरी वाले, छोटे व्यापारी और बड़े व्यापारी अलग-अलग वस्तुओं का व्यापार करते थे और अलग-अलग जगहों से जरूरत की वस्तुएँ लेकर आते थे।

भारत में 16वीं-17वीं शताब्दी में बाजार को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया गया था–

(1) लम्बी दूरी के अन्तर्देशीय, बहिर्देशीय या समुद्रपार व्यापार केन्द्र।

(2) छोटे पैमाने के बाजार, यहाँ आस-पास के इलाकों से लोगों की जरूरत के सामान की आपूर्ति और बिक्री की जाती थी। इससे स्थानीय जरूरतों की पूर्ति होती थी। यह एक प्रकार की मंडी भी होती थी, जहाँ थोक भाव का सामान बेचा जाता था।

(3) किसी खास अवसर पर मेले लगते थे, जहाँ किसी खास वस्तुओं के व्यापार करने वाले व्यापारी मिलते थे और अपना सामान बेचने के लिए आते थे। इस मेले में ग्राहक भी मौजूद होते थे।

(4) ग्रामीण बाजार जहाँ आस-पास के आयातित या बनी बनायी वस्तुओं या लेन-देन उत्पादक और उपभोक्ता आपस में किया करते थे।

**प्रश्न 3. विवेच्यकाल में होने वाले व्यापार में मेलों का क्या महत्त्व था?**

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**उत्तर**–धार्मिक और आनुष्ठानिक उत्सवों तथा समारोहों में मेले की शुरुआत हुई। व्यापारिक गतिविधियों में तेजी आने से मेले व्यापार-वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र बन गए। ये अलग-अलग आकारों में हुआ करते थे, जहाँ किसी खास क्षेत्र, विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न देशों के लोग आया करते थे। मेले आयोजित करने का कोई एक निर्धारित तरीका नहीं था। महीने में एक बार, कई महीनों में एक बार या साल में एक या दो बार अलग-अलग और तरह-तरह के मेले लगते थे। कई मेले तो किसी खास मौसम या खास समय में ही लगते थे। इन मेलों में कुछ खास-खास चीजें ही मिला करती थीं। मेले में दास, सभी प्रकार के जानवर, अनाज, हथियार, शिल्पगत वस्तु उत्पाद से लेकर मूल्यवान तथा विलासिता की वस्तुएँ भी मिला करती थीं।

व्यापार-वाणिज्य के विकास के साथ-साथ यह व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ता चला गया। मेलों की शुरुआत ने धार्मिक उत्सवों और समारोहों से शुरू होकर व्यापारिक केन्द्र का रूप ले लिया। शैम्पेन के मेले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केन्द्र बन गये। 11वीं शताब्दी में सेंट डेनिस ने जून में आयोजित लेंडिट मेला एक धार्मिक मेला था। 11वीं शताब्दी में तोरहोत (Torhout) का फ्लैंडर्स मेला वाणिज्यिक और औद्योगिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

शैम्पेन के मेले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र बन गये। 1114 के बाद से इन मेलों की जानकारी मिलती है। 13वीं शताब्दी में आकर इन्होंने अपना पूर्ण स्वरूप ग्रहण किया और उत्कर्ष पर पहुँचे। फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी, स्विट्जरलैंड और सैवोय के व्यापारी कपड़े, ऊन, चमड़ा, फर, मलमल, मसाले, मोम, चीनी, अनाज, शराब और घोड़े इन मेलों में बेचने के लिए लाते थे। 1250 के बाद जेनोआ (Genoa) व्यापार का प्रमुख केन्द्र बना। यूरोप में सभी बड़े शहरों में मेले लगते थे। पूरे शहर के लिए यह मौज-मस्ती का एक जरिया होता था। 16वीं शताब्दी में चार प्रमुख मेले लगा करते थे। इनमें से कई आपस में जुड़े रहते थे और व्यापारी मेले में घूम-घूमकर अपना सामान बेचते थे।

भारत में अधिकांश मेले धार्मिक मेले होते थे। इन मेलों में वस्तुओं की खरीद-बिक्री होती थी। कुम्भ का मेला विभिन्न शहरों में 6 और 12 वर्षों के अन्तराल में एक बार लगता था। मक्का की तीर्थयात्रा में विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारी अपने साथ विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ अपने साथ लाते थे। अलेक्जेंड्रिया में दो महीने में व्यापारिक गतिविधियां काफी तीव्र होती थीं, क्योंकि यह जहाजों के पहुँचने के लिए अनुकूल होता था। चीन में मेले धार्मिक उत्सवों से जुड़े थे। इन बाजारों तथा व्यापार पर सरकारी नियंत्रण होता था।

इन मेलों में समाज के सभी स्तरों के लोगों की भागीदारी होती थी। बड़े व्यापारी, छोटे व्यापारी, दलाल, फेरी वाले, रेहड़ी वाले और सामान्य आदमी इन मेलों में भाग लेते थे। इन मेलों में बिक्री थोक और खुदरा दोनों प्रकार की होती थी। मेले के महत्त्व को देखते हुए दूर-दराज के लोगों से लेकर आसपास के लोगों की भी इसमें भागीदारी थी। एण्टवर्प में वर्ष में दो मेले लगते थे। इन मेलों में डेनमार्क का प्रसिद्ध घोड़ा यहाँ आता था। इन बाजारों में व्यापक रूप से उधार, लेन-देन, हुंडियों के साथ आते थे। इन हुंडियों को भुनाया जा सकता था। बड़े व्यापारी अलग-अलग मुद्राओं के लिए दर तय करते थे। 8वीं शताब्दी के यूरोप में वाणिज्यिक गतिविधियों में बड़े केन्द्र थे। इन मेलों का पतन होने लगा। हालाँकि मेले लगते थे, परन्तु वाणिज्यिक गतिविधियों के रूप में इनका महत्त्व कम हो गया। मेले अब सिर्फ मौज-मस्ती का केन्द्र बन गए।

व्यापार में मेलों का काफी महत्त्व था। मेलों में व्यापार-वाणिज्यिक गतिविधियों के साथ-साथ बैंकिंग कार्य भी होता था। मेलों में थोक और खुदरा दोनों प्रकार की वस्तुओं की खरीद की जाती थी। मेलों में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के लोग तथा सामानों का भी आगमन होता था, जिससे लोगों में आकर्षण होता था। मेला मौज-मस्ती का भी साधन था।

**प्रश्न 4. व्यापारिक गतिविधियों के लिए व्यापारी किस प्रकार धन जुटाते थे?**

**उत्तर**–मुद्रा का उपयोग व्यापारिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण आधार था। विश्व के देशों द्वारा मुद्रा का प्रचलन और उपयोग की कई विधियां अपनायी गयी थी। चीन में तांग और सुंग शासन काल में सिक्कों के साथ-साथ कागजी मुद्रा का और ऋणपत्रों का भी प्रचलन था। 811 ई. से ही तांग ने दूर-दराज के इलाकों से सामान मंगाने के लिए "उड़न नकद" जारी किया था। इन धन ड्राफ्टों को राजधानी में भुनाया जा सकता था। सुंग काल में ड्राफ्ट जारी किए जाते थे। उधार का लेन-देन करने वाले व्यापारी इस सरकारी धन का आपस में लेन-देन किया करते थे। निजी बैंकरों ने एक अलग तरह की कागजी मुद्रा बनायी थी। वे धन जमा करने का प्रमाणपत्र जारी करते थे, जिसे तीन प्रतिशत सेवा-शुल्क देकर भुनाया जा सकता था। ये प्रमाणपत्र वास्तविक मूल्य पर जारी किए जाते थे। शेषवान (Szechwan) में चेंगतु के बैंकरों द्वारा जारी किए गए ऐसे प्रमाणपत्र काफी प्रसिद्ध थे। 1204 में जब सरकार ने उन्हें अपने नियंत्रण में लिया, तो यह पहली बार दुनिया की पहली वैध कागजी मुद्रा बनी। तोकुगावा जापान में निजी दैमयो चावल और चाँदी प्रमाणपत्र को अपने क्षेत्र में कागजी मुद्रा के रूप में इस्तेमाल करते थे।

भारत के व्यापारी मुद्रा के साथ-साथ हुंडी जैसे कागज के प्रमाणपत्रों से भी लेन-देन दिया करते थे। मध्यकाल में व्यापारिक लेन-देन के लिए मुद्रा के उपयोग में आधार के महत्त्व को जानना जरूरी है। धन का भुगतान करने से पहले इसमें मानक मूल्य का निर्धारण करना होता था और बड़े लेन-देन का भुगतान अक्सर वजन के आधार पर किया जाता था। मुद्रा विनिमय में माहिर व्यक्ति सबसे पहले मुद्रा का मोल आंकता था और मुद्रा में धातु का अंश कितना है, इसकी जाँच करता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

9वीं शताब्दी में पश्चिम यूरोप में भी मुद्रा में लेन-देन का प्रचलन था। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जेनोआ में भी धन विनिमय करने वाला सक्रिय मुद्रा विनिमयकर्त्ता सिक्कों का आदान-प्रदान और पैसा जमा करते थे। इस जमा किए गये धन का उपयोग दूर- दराज के इलाकों में उधार का भुगतान करने के लिए होता था। 12वीं शताब्दी में हुंडी का उपयोग होने लगा था। मुद्रा विनिमयकर्त्ता इन बिलों को लिखा करते थे और विदेशी में भी इसके आधार पर व्यापारियों को विदेशी मुद्रा मिल जाया करती थी। उसे उतनी ही राशि के बराबर का भुगतान में वापस मिलता था, जो उसने जमा की थी।

सूदखोरी से बचने के लिए हुंडी का प्रचलन शुरू हो चुका था। एक स्थान से जारी की गयी हुंडी दूसरे स्थान पर अलग मूल्य वाली दूसरी मुद्रा में भुनाई जा सकती थी। विभिन्न मूल्यों वाली मुद्राओं के बीच विनिमय पर ब्याज भी अप्रत्यक्ष रूप से शामिल रहता था।

13वीं शताब्दी के आस-पास बैंकिंग संस्थाओं का विकास हुआ। बैंकिंग प्रतिष्ठानों का विकास हो जाने से जेनोआ, फ्लोरेंस, लुक्का, टस्कनी, रोम और वेनिस जैसे शहर बैंकिंग गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र बन गए। फ्लोरेंस के कई व्यावसायिक घरानों में बैंक स्थापित किए। फ्लोरेंस के बार्डी (Bordy) और पेरूजी (Peruzgi) घरानों ने इंग्लैंड में भी बैंक खोले। पेरूजी की शाखाएं एविगोन ब्रजेस, साइप्रस, लंदन, नेपल्स, पेरिस, पीसा, रोहड्स, सिसली, ट्यूनिस और वेनिस में भी थी।

मध्यकाल के आखिरी दौर में स्टॉक एक्सचेंज नाम की एक महत्त्वपूर्ण संस्था खोली गयी, जो सभी व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र था। 16वीं शताब्दी तक यूरोप के लगभग सभी शहरों में एक्सचेंज खुले। एक्सचेंज में कई दलाल-व्यापारी आपस में मिलते थे। यहाँ वस्तुओं, मुद्रा विनिमय, शेयर होल्डिंग समुदाय आदि सब तरह के कार्य होते थे।

इस तरह हम देखते हैं कि व्यापारियों ने व्यापारिक गतिविधियों के लिए विभिन्न तरह से धन जुटाया।

**प्रश्न 5. निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिए-**

**(1) व्यापार मार्ग**

**(2) व्यापार में संलग्न लोग**

**उत्तर-(1) व्यापार मार्ग**-मध्यकाल में जल और स्थल मार्गों से व्यापार होता था। मध्य एशिया से होने वाला अधिकतर व्यापार स्थल मार्ग से होता था। भूमध्यसागरीय क्षेत्र इन मार्गों से भारत, ईरान और चीन से जुड़े थे। विन्ध्य और गुजरात में मुसलमान व्यापारियों का व्यापारिक अड्डा था।

भारत से आने वाले व्यापारी लाल सागर से जोर और जिद्दा तथा फारस की खाड़ी के उबुल्लाह का उपयोग करते थे। सिराफ, चमन और लाल सागर के बीच मिलन स्थल पर एक प्रमुख बंदरगाह था मस्कट और ओमान महत्त्वपूर्ण तटीय स्थल थे।

चीनी शासकों द्वारा विदेशी व्यापार पर प्रतिबंध लगाने के पश्चात् मलक्का का उपयोग विदेशी व्यापार क्षेत्र के रूप में किया जाता था। तांग युग के उत्तरार्द्ध में कैंटन प्रमुख बंदरगाह था। दक्षिण सुंग के शासन काल में चाय और पोर्सलिन के लिए महत्त्वपूर्ण बंदरगाह फूकिन बंदरगाह था।

पिएर काउनू (Pierre Counou) ने चार व्यापार मार्गों का उल्लेख किया है। प्रथम मार्ग चीन के काला सागर तक तथा साइबेरिया के दक्षिण क्षेत्र तक जाता था। दूसरा मार्ग तुर्किस्तान मरुभूमि से गुजरता हुआ ईरान को जोड़ता था। ईरान से यह जल मार्ग फारस की खाड़ी के मुहाने से जुड़ता था। तीसरा समुद्री मार्ग भारत से मलाया और ईस्ट इंडीज होकर गुजरता था और फारस की खाड़ी से जोड़ता हुआ सीरिया तथा फिलिस्तीन के बंदरगाहों तक पहुँचने के लिए समुद्री मार्ग का उपयोग करने वाले यात्रियों को मरुभूमि से होकर गुजरता पड़ता था।

11वीं शताब्दी से दक्षिण की ओर व्यापार करने वाले इतालवी और अन्य व्यापारी इंग्लैंड और फ्रांस से होकर कई रास्तों का इस्तेमाल करते थे।

12वीं शताब्दी के दौरान स्लैवोनिक पूर्व तक पहुँचने के लिए वेस्टफेलिया के डार्टमंड से होते हुए जर्मनी के बीचोंबीच हैलवेग प्रमुख सम्पर्क मार्ग था, परन्तु आने वाली शताब्दियों में इंग्लैंड में दक्षिणी-पूर्वी हिस्से के बाल्टिक और नार्वे से लकड़ी का आयात करने के लिए जलमार्ग सस्ता पड़ता था। पूर्व से पश्चिम तक इन नदियों और नहरों का उपयोग करने से हॉलैण्ड अन्दरूनी तटीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया। यूरोप की नदियाँ-राइन, बेसर और एलबे जर्मनी में, फ्रांस में ल्वायर, रोनेक्स और गैरोन के बीच भारी-भरकम और लम्बी दूरी के परिवहन चला करते थे। इंग्लैंड में टेम्स, स्टूर, एवन और ट्रेन्ट के अलावा और भी कई नदियों का इस्तेमाल आंतरिक व्यापार के लिए होता था।

पूर्वी यूरोप के वोल्गा का व्यापक उपयोग होता था। रूस और बाइजेन्टाइन के बीच होने वाले व्यापार दिया और रिगा की खाड़ी के होते हुए, बाल्टिक से हुआ करता था। सामान डनिएपर (Dnieper) और काले सागर तक ले जाया जाता था।

9वीं शताब्दी में फ्रिसियन डोरस्टाड, डेनिश हाइथाबु और स्वीडिश बिरका बाल्टिक व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे और उत्तरी-पूर्वी रूस के बीच कई जलमार्ग उपलब्ध थे। बाल्टिक सागर से नेवा और लाडोगा झील तक और वालखोव से नोवगौर्ड तक फैला हुआ था।

समुद्र मार्गों का उपयोग जहाजरानी उद्योग पर निर्भर था। चीन का जहाज निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

**(2) व्यापार में संलग्न लोग**-सामान खरीदने और बेचने के अलावा वे ऋणदाता, वित्तदाता, मुद्रा विनिमयक, दलाल, बैंकर, वाणिज्यिक प्रतिनिधि आदि की भूमिका भी निभाते थे। कुछ व्यापारी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कुछ खास क्षेत्र मे व्यापार करते थे। मध्य काल के अंतिम दौर में ही इस प्रकार की विशेषज्ञता बढ़ने लगी थी।

स्थानीय स्तर पर लेन-देन का कार्य सीधे उत्पादनकर्त्ता करते थे। मठवास, मछुआरे, किसान और भूमिपति अंशकालीन व्यापारियों के रूप में कार्य करते थे। व्यापारियों ने उत्पादन प्रक्रिया को नियमित और यहाँ तक कि नियंत्रित भी किया। उन्होंने अपनी व्यापारिक गतिविधियां चलाने के लिए श्रेणियां निर्मित की थीं। बढ़ते व्यापार में यहूदियों, अरबों, इतालवियों, फ्लैंडरों, अंग्रेजों, जर्मनी और स्कैंडिनेवियाइयों ने कई प्रकार की भूमिका निभाई।

9वीं शताब्दी के दौरान बाहर से आने वाले व्यापारी बंदरगाह नगरों के एक खास हिस्से में रहा करते थे। भारत में अरब व्यापारी सक्रिय थे। इतालवी व्यापारी का काफी महत्त्व था। फ्रिसियन व्यापारी इंग्लैंड में लंदन, फ्रांस में रूस और अमीयन, जर्मनी में कोलोन और मेंज और स्कैन्डीनेविया के कई शहरों में आते-जाते रहते थे। आरम्भ में वे जहाँ भी पहुँचते थे, वहाँ अपनी छोटी व्यापारी बस्ती बसा लिया करते थे। फौन्डको (Fondaco) नामक बड़ी इमारतों में व्यापारी रहा करते थे। फौन्डको का प्रशासन तो इतालवी व्यापारियों के प्रशासकों के हाथों में होता था। वेनिस में भी जर्मन व्यापारियों को इस प्रकार के स्थान प्राप्त थे। इतालवी व्यापारियों का पूरे भूमध्यसागर के मालवाहक और यात्री परिवहन पर एकाधिकार था। वे सैनिक, नाविक, पोत निर्माता, जहाजों के कप्तान और बेड़ों के एडमिरल कपड़ा उत्पादक, खनन उद्यमी, सिक्का ढालने वाले तथा पोप और फ्रांस और इग्लैण्ड में राजाओं के बैंकर और कर संग्रहनकर्त्ता के रूप में काम किया करते थे। जेनोआ से फेडरिको कार्नर, बेनेडेटो, जेकैरियो तथा फ्लोरेन्स से फ्रैंसिसको डैटिनी जैसे कई व्यापारियों ने ढेर सारा मुनाफा कमाया। व्यापारिक गतिविधियां मुख्यतः व्यक्तिगत या पारिवारिक उद्यम पर आधारित होती थीं। लेकिन जैसे-जैसे दूसरे देशों में व्यापार फैलने लगा, वैसे-वैसे साझेदारी भी बढ़ने लगी। पारिवारिक सदस्यों के अलावा बाहरी व्यक्तियों को भी साझेदार और हिस्सेदार बनाया गया। यूरोप के हिस्सों में स्थायी व्यापारिक संगठनों के उदय से व्यापारियों के वाणिज्य लेन-देन में एजेण्टों और साझेदारों की भूमिका में बढ़ोतरी हुई।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# शिल्प उत्पादन

27

## परिचय

मध्ययुग में भारत का सूती कपड़ा उद्योग सबसे प्राचीन शिल्प रहा था। यहाँ विभिन्न किस्म के कपड़ों का उत्पादन होता था, जिसका निर्यात एशिया और यूरोप के विभिन्न हिस्सों में होता था। कपड़ों को रंगीन बनाने के लिए दो विधियाँ–इंडोनेशियाई बाटिक विधि और पटोला विधि का प्रयोग किया जाता था। बाटिक विधि में कपड़ों को रंग में डुबोने से पहले डिजाइन को मोम से ढक दिया जाता था और पटोला विधि में कपड़ा बुनने से पहले धागों को रंग दिया जाता था।

अरबों द्वारा धनुषाकार धुनकी से रुई धुनी जाती थी और उसे बुना जाता था और बुनाई के लिए करघे का इस्तेमाल किया जाता था। मध्य एशिया और इस्लामी देशों में कालीन निर्माण एक प्रमुख उद्योग था। इसमें करघे को खड़ा करके रखा जाता था।

मिस्र और न्यूबिया में भी लंबे समय से बुनाई उद्योग मौजूद था। सेनेगल के बाढ़ वाले मैदान में कपड़े का उपयोग के पुरातात्त्विक प्रमाण मिले हैं। कपड़ों को बुनने के लिए पतले सींकचों का इस्तेमाल होता था। इथोपिया में बड़े पैमाने पर कपड़ा बनाया जाता था।

चीन में महिलाएँ घरों में कताई और बुनाई का काम करती थीं। रेशम उत्पादन का काम शिल्पी किया करते थे। ईरान के सम्पर्क में आने के पश्चात् बुनाई के तरीकों में परिवर्तन आया। सासनिद पद्धति के मोतियों के काम में चित्र भी बनाये जाने लगे। रेशम पर सोने से जरी का काम किया जाता था। चीनी लाख के रोगन की पुरानी तकनीक अपनाते थे।

मध्यकाल में यूरोप में ऊन, फ्लेक्स एक प्रकार के पौधे के रेशे, सन, रेशम और सूत से कपड़े बनाये जाते थे। इटली, इंग्लैंड और बेल्जिका में ऊनी वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। दक्षिणी इटली के ऊनी उद्योग में कुशल और अकुशल मजदूर काम पर लगाये जाते थे। इन इलाकों में भेड़ पालन किया जाता था तथा तटवर्ती क्षेत्र का प्रयोग कच्ची ऊन को धुनने, सुखाने और कपड़े बनाने के लिए किया जाता था।

उत्तरी इटली में ऊन का विकास हुआ। पैटेवियम में गैन्सेपे नाम से विख्यात मजबूत चित्रवल्ली बनायी जाती थी। वेरोना अच्छे किस्म के कम्बलों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था।

8वीं शताब्दी के अंत तक इंग्लैंड की विभिन्न राजशाहियों और कैरोलिंजी साम्राज के उत्तर-पूर्वी हिस्से में ऊनी उद्योग विकसित हुआ। उत्तम कोटि की पोशाकें ऊन के प्रकारों और रंगों की वजह से काफी मूल्यवान थीं।

दक्षिणी फ्रांस में आरटोइस (Artois) में सेंट ओमीर (Saint-Omer), दोउई लिल्ली (Douai Lillie) और तौरनाई (Tournai) प्रमुख कपड़ा उत्पादक क्षेत्र थे। शिल्पी कपड़ों का उत्पादन विशेषज्ञता और कौशल से युक्त लोग करते थे। कपड़ों की रंगाई किसी चरण में भी की जा सकती थी।

ऊन निकालने से लेकर तैयार माल बनाने के लिए ऊन बुनने की प्रकिया को कई चरणों से गुजरना पड़ता था। महिलाएँ ऊन में तेल लगाकर कताई करती थीं। 13वीं शताब्दी में चरखे के आविष्कार ने कताई की प्रकिया में काफी सुधार किया। बाद में धागा बनाकर बुनकरों के पास भेजा जाता था। अब दो बुनकर एक साथ बैठकर काम करने लगे और चौड़े-चौड़े कपड़ों का उत्पादन करने लगे। कपड़ों को धोने का काम बड़े-बड़े कड़ाहों में किया जाता था।

13वीं शताब्दी के दौरान कपड़ा निर्माण की लघु एवं कुटीर इकाइयाँ खोली गयी। इतालवी व्यापारी दूसरे क्षेत्रों से ऊन और तैयार कपड़ों का आयात करके उनको रंगकर दूसरे क्षेत्रों में निर्यात कर देते थे। जेनोआ में स्पीयरमैन द्वारा कपड़ों को अंतिम रूप दिया जाता था। पाइरस में कपड़ों की रंगाई कर उन्हें अंतिम रूप दिया जाता था। अब कई धुलाई मिलों की स्थापना की गयी, जहाँ पर जल का इस्तेमाल किया जाता था।

13वीं शताब्दी के दौरान नॉरफोल्क उच्च कोटि के हल्के कपड़े बनाने के लिए प्रसिद्ध था। इसमें लम्बी ऊन का इस्तेमाल किया जाता था। ऊन की केवल कंघी की जाती थी और घिसाई की जरूरत कम पड़ती थी।

कपड़ों को लाल रंग से रंगने के लिए कर्म्स का उपयोग किया जाता था, जो एशिया माइनर, स्पेन और पुर्तगाल से तथा नीले रंग के लिए नील भारत से यूरोप में आयात किया जाता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सर्वप्रथम चीन ने पोर्सेलिन और सेरामिक के बर्तनों का उत्पादन शुरू किया। पोर्सेलिन एक प्रकार की एक मिट्टी होती थी, जो एक निश्चित तापमान पर गर्म करने पर वह अर्धपारदर्शी और चमकीला रूप ले लेती है। जो पेट्यून्टस (Petuntse) नाम के खनिज से प्राप्त किया जाता है। इन दोनों के सम्मिश्रण से बर्तन कठोर और मजबूत बनता है।

एशिया में मिट्टी के बर्तनों का काफी उपयोग होता था। कुम्हार चाक को घुमाकर मिट्टी के बर्तनों को विभिन्न रूप देते थे। कच्चे बर्तनों को आग पर पकाया जाता था।

रंगीन शीशा अल्यूमिना मिले लौहमय रेत से बनाया जाता था। इन्हें रंगीन बनाने के लिए धात्विक ऑक्साइड का उपयोग होता था। धौकनी की प्रक्रिया से असमतल प्लेटों का निर्माण होता था। शीशे के टुकड़ों को जरूरत के मुताबिक जोड़ा जाता था। ग्रिसाइल नामक भूरे पेस्ट से रंग दिया जाता था।

13वीं शताब्दी में खिड़की के लिए बड़े आकार के शीशों की माँग बढ़ी। चार्टर्स और पेरिस में बड़े पैमाने पर इन शीशों का उत्पादन होने लगा। खिड़की के शीशे बनाने तथा रंगने की प्रक्रिया आसान हो गयी। वेनिस तथा यूरोप के अन्य हिस्सों में शीशे के बर्तन बनाये जाने लगे। बेल्जियम और बोहेमिया में बने शीशे के बर्तन काफी प्रसिद्ध थे।

खनिजों की खनन तकनीक में सुधार होने से धातुओं के उत्पादन में वृद्धि हुई। हथियारों और औजारों की बढ़ती माँग ने लोहे की मांग बढ़ा दी। बर्तन बनाने में ताँबा और मिस्र धातुओं का इस्तेमाल किया जाता था। आभूषण, विलासिता की वस्तुएँ और सिक्के बनाने के लिए चाँदी और सोने की माँग में वृद्धि हुई।

नुब्रा, पश्चिम अफ्रीका, जिम्बाब्वे सोने का प्रमुख उत्पादन केन्द्र थे। मध्यकाल में लोहे का खनन तथा परिष्करण पूरी दुनिया में प्रचलित था। चीन में लोहे के परिष्करण के लिए काष्ठ-कोयले का उपयोग होता था। चीन और भारत में अच्छी किस्म के लौह-इस्पात का निर्माण किया जाता था। लोहे के परिष्करण में रसायन का उपयोग तथा लम्बी प्रक्रिया अपनायी जाती थी। 13वीं शताब्दी के दौरान चाँदी के खनन के लिए कूपक (शैफ्ट) खनन का तरीका अपनाया गया।

खनिज पदार्थों को तैयार करने और गलाने तथा धातुओं को परिष्कृत करने के लिए कई विधियाँ अपनाई जाती थीं। धातु गलाने वाले शिल्पियों के द्वारा अलग-अलग प्रकार की धातुओं को परिष्कृत किया जाता था।

अरब देशों में सभी शिल्पियों पर खलीफा की निगरानी और नियंत्रण होता था। ग्रामीण शिल्पी गृहस्थ होते थे। इनकी एक सूची तैयार की जाती थी और आवश्यकतानुसार उन्हें देश के विभिन्न हिस्सों में भेजा जाता था। चीन में तांग शासन काल में निगम द्वारा शिल्पियों पर नियंत्रण रखा जाता था। इन्हें शाही कारखानों, शस्त्रागार, लोहे और नमक की खानों में काम पर लगाया जाता था। ये निगम शहरों में स्थापित होते थे और स्वायत्त होते थे। जापान के शिल्पी कुलों में संगठित थे। प्राधिकार द्वारा इन्हें रोजगार उपलब्ध कराया जाता था शिल्पियों को 'जा' कहा जाता था और वे मंदिरों में काम करते थे। 12वीं शताब्दी में 'जा' ने एकाधिकार की माँग की।

भारत में शासकों और सामंतों ने शाही कारखानों की स्थापना की थी और इन कारखानों में शिल्पियों तथा कारीगरों को नियुक्त किया जाता था और इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बाजार में बेचा जाता था तथा शाही घराने के लोगों द्वारा इस्तेमाल किया जाता था। मुद्रा ढालने का कार्य सरकारी नियंत्रण में होता था। फ्रांस और इंग्लैंड में एक स्थान पर लाइसेंसधारी कारखानों की निगरानी में मुद्रा ढाली जाती थी। भारत में मुद्रा के टकसालों पर सरकारी नियंत्रण था। कोई भी व्यक्ति सिक्का ढलवा सकता था, चाँदी के बदले में कोई भी इसे सिक्के में परिवर्तित करवा सकता था। टकसाल अधिकारी धातु की गुणवत्ता और मात्रा की जाँच करता था और टकसाल अलग से शुल्क लिया करती थी।

मध्यकालीन यूरोप में श्रेणियाँ विभिन्न उद्योगों को संगठनात्मक आधार प्रदान करती थीं। श्रेणियाँ मुख्यत: दो भागों में विभक्त थीं। इन्हें मुख्य रूप से व्यापारिक और शिल्पियों के संगठन में विभाजित किया गया था।

व्यापारी श्रेणी का उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना था। इस उद्देश्य के लिए श्रेणी अपनी जरूरत के अनुसार कानून बना लेते थे। ये मजदूरों पर कड़ी पाबंदियाँ लगाते थे।

बारहवीं शताब्दी में औद्योगिक गतिविधियों को नियमित करने के लिए गिल्ड व्यवस्था की शुरुआत हुई। गिल्ड का संरक्षक संत हुआ करता था। गिल्ड व्यवस्था ने औद्योगिक उत्पादन प्रक्रिया को नियमित किया था।

गिल्ड में मजदूरों के कई स्तर होते थे। इसमें मास्टर, एपरेंटिस और जर्नीमैन हुआ करते थे। मजदूरों के पास कच्चा माल और औजार होते थे। जर्नीमैन अपना प्रशिक्षण प्राप्त करके मास्टर बन सकता था। लेकिन मास्टर के पद को प्राप्त करना काफी कठिन था, क्योंकि मास्टर बनने के लिए पूँजी और उच्च सामाजिक हैसियत की आवश्यकता होती थी।

उत्पादन के स्वरूप की भी इसमें अहम् भूमिका होती थी। छोटे कारीगर मुख्य रूप से घरों में स्थानीय जरूरतों के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करते थे। परिवार आधारित व्यवस्था तथा चर्च और गिरजाघर दोनों में ही विशेषज्ञ कारीगर होते थे। ग्रामीण शिल्पी भी होते थे। धातुकर्मियों की अपनी जमीन होती थी। घोड़ों के नाल, हलों की फालों की मरम्मत खाली वक्त में किया करते थे।

13वीं शताब्दी से पहले शहरी समुदायों में औद्योगिक शिल्पी मौजूद थे। एकाधिकार पूर्ण गिल्डों का भी उद्भव हुआ। कारीगरों और व्यापारियों के बीच का सम्बन्ध जटिल था। कारीगरों के पास उत्पादन करने के लिए जरूरी संसाधन मौजूद थे। बड़े व्यापारी अन्तरक्षेत्रीय व्यापार की बड़ी मांग को पूरा करते थे।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



उत्पादन को बढ़ाने के लिए 'पुटिंग आउट व्यवस्था' की शुरुआत की गई। पुटिंग आउट व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारी कारीगरों को कच्चा माल उपलब्ध कराते थे और कारीगर तैयार माल दिया करते थे। अब कारीगरों के पास कच्चे माल की कमी नहीं रहती थी। अब धन और कच्चे माल की कमी के कारण उत्पादन कार्य बंद नहीं होता था। अब व्यापारियों को निर्धारित कीमत पर तैयार माल मिलता था। अब औजार पर से कारीगरों का नियंत्रण समाप्त हो गया। वस्तुओं की गुणवत्ता में वृद्धि हुई। कारीगरों को किसी खास जगह पर आकर काम करने के लिए कहा जाता था। 'पुटिंग आउट' व्यवस्था को नियंत्रित करने वाले मध्यस्थ व्यापारी या मास्टर शिल्पी को काफी मुनाफा भी होता था।

मध्यकाल में कई प्रकार के उत्पादन संगठन थे। पहले स्तर पर वे मजदूर होते थे, जो घरों और दुकानों पर काम करते थे और वे घर-घर जाकर घूम-घूमकर रोजमर्रा का सामान बेचा करते थे। किसान और महिलाएँ भी खाली समय में उत्पादन कार्य करते थे। महिलाएँ घर में बैठकर सूत कातने तथा खनिज उत्पादन का कार्य किया करती थीं। शिल्पी अपने छोटे कारखानों में मजदूरों, प्रशिक्षुओं और जर्नीमैन से काम करवाते थे। खनिज, खनन और धातु कार्य, जहाज निर्माण और इमारत निर्माण के क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लोग कार्यरत थे। कारीगरों द्वारा राज्य और राजशाही के लिए हथियार और विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता था। इन सामानों का उपयोग राज्य द्वारा किया जाता था। इन सामानों को बाजार में नहीं बेचा जाता था।

कारीगरों को बेहतर कार्य का माहौल प्रदान करने के लिए श्रेणियों/गिल्डों की भूमिका सीमित थी। कारीगरों की कार्यकुशलता के आधार पर वेतन का निर्धारण होता था। गिल्डों के पास न तो संसाधन ही होते थे और न ही राजनीतिक शक्ति होती थी।

17वीं शताब्दी में कारीगरों को अग्रिम राशि देने का चलन था और उनसे सूती, रेशमी कपड़ा तथा शोरा प्राप्त किया जाता था।

मजदूरी में भिन्नता थी। जिन मजदूरों के पास अपने औजार होते थे, उन्हें अधिक मजदूरी मिलती थी। कपड़ा पीटने वाले और धोने वाले मजदूरों को कम मजदूरी दी जाती थी। इमारत निर्माण-कार्य और पत्थर काटने के कार्य करने वाले मजदूरों को काफी कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। यदि इमारत निर्माण राजशाही, सामंत या चर्च के द्वारा करवाया जा रहा हो, तो मजदूरों और शिल्पियों पर जोर-जबरदस्ती और अत्याचार भी किया जाता था।

13वीं शताब्दी में अधिक मजदूरी की माँग को लेकर मजदूरों ने हड़तालें भी कीं। विशेषाधिकार प्राप्त कुलीनतंत्र ने इसके खिलाफ विरोध किया। कारीगरों ने अपनी सुनवाई के लिए अदालत की शरण ली। रोजगार देने वालों ने फ्रांस के राजा की शरण ली। स्थानीय आर्थिक मुद्दे और राजनीतिक मुद्दे आपस में घुल-मिल गये।

यूरोप के अन्य हिस्सों में भी शिल्पियों में असंतोष समय-समय पर उभरता था। राजनीति में उनका वर्चस्व होने के कारण उन्होंने व्यापारी श्रेणियों/गिल्डों की ताकत को नष्ट कर दिया था। इंग्लैंड में कई प्रकार के प्रतिबंध लगे हुए थे। विद्रोहों को निर्ममतापूर्वक कुचल दिया जाता था। अकुशल और असंगठित मजदूरों की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। उनकी शिकायतों को सुनने वाला कोई नहीं था। उन पर उच्च वर्गों का नियंत्रण था और वे अपनी मनमानी किया करते थे।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. ऊनी कपड़े के उत्पादन में कौन-कौन सी प्रक्रिया अपनायी जाती है? संक्षेप में उत्तर दीजिए।**

**उत्तर**–ऊन निकालने से लेकर तैयार माल बनाने तक ऊन बुनने की प्रक्रिया को कई चरणों से गुजरना पड़ता था। भेड़ से बाल उतारने के बाद ऊन को पीटा जाता था और ऊन की अच्छी तरह से धुलाई करके साफ किया जाता था। इन कार्यों के लिए किसी प्रकार के उच्च कौशल की आवश्यकता नहीं थी अतः यह कार्य अकुशल मजदूर भी कर लेते थे। ऊन की अच्छी तरह सफाई करने के पश्चात् उसकी कताई भी की जाती थी। छोटे और लम्बे आकार के ऊन के लिए क्रमशः धनुषाकार धुनकी और कंघे का उपयोग किया जाता था। छोटे रेशों के लिए धातु की छोटी अंकुसी का इस्तेमाल किया जाता था। जिसका हत्था लकड़ी का बना होता था। लम्बे रेशों के लिए बड़े धातुदाँत का इस्तेमाल किया जाता था, इसका हत्था भी लकड़ी का बना होता था।

ऊन में तेल लगाकर कताई की जाती थी। कताई के लिए लकड़ी का उपयोग किया जाता था। ज्यादातर महिलायें ही इस कार्य में लगी हुई थीं। 13वीं शताब्दी में चरखे का इस्तेमाल होने से कताई का कार्य भी आसान हो गया था। अब धागा बनकर बुनकरों के यहाँ पहुँचता था। बुनकर ताने की धागे की लम्बाई के अनुसार जितनी जरूरत होती थी, उतने धागे इस्तेमाल कर लेते थे। चरखी ऊन के धागे को बोबिन (चरखी सिलिन्डर के आकार का उपकरण जिससे धागा खुलता चला जाता है) पर चढ़ा देते हैं और यहाँ से यह धागा फिरकी में चला जाता है। दो बुनकर एक साथ मिलकर, जो ज्यादातर पुरुष ही हुआ करते थे, चौड़े कपड़े की बुनाई करते थे। वे चौड़े दोहरे करघे के दोनों ओर बैठ जाते थे। कम चौड़े कपड़े की बुनाई के लिये एक करघे का ही इस्तेमाल किया जाता था।

यूरोप में मध्यकाल में ऊन से कपड़े बनाये जाते थे। ऊनी कपड़े महादेश देश के सभी हिस्सों में बनाये जाते थे और सभी तबके के लोगों इसका इस्तेमाल किया करते थे। इटली, इंग्लैंड और बेल्जिका (सोम्मे और मुसेल्ले के बीच का स्थल) में बड़े पैमाने पर ऊनी वस्तुओं का निर्माण किया जाता था।

दक्षिणी इटली में ऊनी उद्योग में कुशल और अकुशल मजदूर काम पर लगाये जाते थे। इस क्षेत्र में भेड़-पालन व्यापक स्तर पर होता था। तटवर्ती इलाकों में कच्चे ऊन को धुना, सुखाया और

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कपड़े बनाने के लिए तैयार किया जाता था। इससे बने कपड़े ऊँचे दामों पर बिकते थे। उत्तरी इटली की पो घाटी में ऊनी उद्योग खूब पनपा। पैटैवियम में गैन्सेपे नाम से विख्यात मजबूत चित्रवल्लरी बनायी जाती थी। वेरोना अपने कम्बलों के लिए प्रसिद्ध था।

8वीं शताब्दी के अंत तक इंग्लैंड की विभिन्न राजशाहियों और कैरोलिंजी साम्राज्य के उत्तरी-पूर्वी हिस्से में ऊनी उद्योग विकसित हुआ। उनकी उत्तम कोटि की पोशाकें ऊन के प्रकार और रंगों की वजह से काफी मूल्यवान समझी जाती थीं। घरेलू उद्योग में किसान पुराने जमाने के ताने-बाने और करघों से ऊन तैयार किया करते थे। उत्तर सागर क्षेत्र के वाइकिंग लोगों ने इस उद्योग को बढ़ावा दिया। व्यापार को फैलाकर उन्होंने ऊनी वस्त्रों की अधिक माँग पैदा की।

13वीं शताब्दी के दौरान स्थानीय क्षेत्रों में ऊनी वस्त्र निर्माण की छोटी-छोटी इकाइयाँ थीं। इंग्लैंड में कई शहरों और गाँवों में ऊन उद्योग स्थापित किये गये। इतालवी व्यापारी भी दूसरे क्षेत्रों से ऊन और तैयार कपड़े आयात कर रहे थे। 13वीं शताब्दी के दौरान नॉरफोल्क उच्च कोटि के हल्के कपड़े बनाने के लिए प्रसिद्ध था। इसके लिए लम्बे ऊन का इस्तेमाल किया जाता था। ऊन की केवल कंघी की जाती थी और इसकी घिसाई की जरूरत कम पड़ती थी।

इस तरह हम देखते हैं कि ऊनी कपड़े बनाने की प्रक्रिया को कितने चरणों से होकर गुजरना पड़ता था।

**प्रश्न 2. यूरोप में धातुकर्म की संक्षेप में चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–यूरोप में उपलब्ध खनिज पदार्थ, जंगल और तेजी से बहते जलप्रपातों ने धातु विज्ञान के विकास को प्रभावित किया। धातुकर्म खनिज वाली भूमि के स्वामित्व से जुड़ा था। इस दृष्टि से खनन और धातु विज्ञान दूसरे शिल्पों से अलग था। शासकीय परिवार अपने इलाकों से प्राप्त खनिज पदार्थों की हिस्सेदारी में अपना दावा करते थे। जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में शासकों ने खनन की अनुमति प्रदान की थी। 12वीं शताब्दी के दौरान खनन को व्यवस्थापित करने के लिए संहिताएं बनाई गईं। उदाहरण के लिए, 1185 में ट्रेंट के बिशप ने दक्षिणी टाइरोल के लिए ऐसी की कुछ संहिताएं बनाई थीं। बोहेमिया के राजा ने 13वीं शताब्दी के दौरान इगलान के खनिकों के लिए इसी प्रकार के नियम बनाये थे।

कोयला और धातु निकालने के परम्परागत तरीकों का इस्तेमाल किया जाता था। 13वीं शताब्दी में चाँदी प्राप्त करने के लिए की जाने वाली खुदाई में कूपक (शैफ्ट) खनन का तरीका अपनाया जाता था। चाँदी मिले खनिज पदार्थ को गड्ढे में डालकर तोड़ा जाता था।

खनिज पदार्थों को तैयार करने और गलाने तथा धातु को परिष्कृत करने के लिए कई विधियाँ अपनाई जाती थीं। धोने-तोड़ने और चूरा बनाने का काम हाथ से किया जाता था। धातु गलाने वाले शिल्पियों ने अलग-अलग प्रकार की धातुओं को परिष्कृत करने के लिए कई प्रकार के चूल्हे, गड्ढे, बर्तन, ओवन और भट्ठियां तैयार की। कभी-कभी पहाड़ियों के किनारे खुली भट्ठियों में धातु गलाई जाती थी। लोहे के खनिज को संशोधित करने और लोहा निकालने के लिए धौंकनी वाली छोटी-छोटी भट्ठियों का इस्तेमाल किया जाता था। चाँदी के खनन में सुरंग से चाँदी निकाली जाती थी। इसे धोकर, तोड़कर, चूरा करके और फिर गलाकर चाँदी निकाली जाती थी। इस प्रक्रिया में रजतमय सीसा निकलता था, जिसे खप्पर चूल्हे में ऑक्सीडाइज्ड किया जाता था। इससे सीसा निकाल लिया जाता था। बची हुई चाँदी को अलग धौंकनी में परिष्कृत किया जाता था।

12वीं शताब्दी में खनिज को तोड़ने और चूरा करने के लिए हथौड़े और ठप्पे का इस्तेमाल किया जाता था। गर्म करने के लिए धौंकनी का इस्तेमाल होता था। ये सारे काम मजदूरों द्वारा किए जाते थे। 13वीं शताब्दी के आरम्भ में ट्रेंट की चाँदी की खादानों में पानी से चलने वाले पहिए लगाए गये थे। मध्य टाइरोल में भी इसका इस्तेमाल होने लगा था। चौदहवीं शताब्दी के दौरान पुरानी फुंकनी चूल्हों के स्थान पर भट्ठियों का इस्तेमाल होने लगा।

इस तरह, हम देखते है कि यूरोप में धातुकर्म तथा खनन कार्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। विभिन्न धातुओं का उपयोग उनकी उपलब्धता पर निर्भर था। खनन और धातु निकालने की तकनीक में सुधार होने से कई प्रकार की धातुओं के उत्पादन में बढ़ोतरी हुई हथियारों तथा कृषि औजारों की माँग के साथ लोहे की माँग भी बढ़ी। लोहे का उत्पादन यूरोप में होता था।

**प्रश्न 3. मध्यकाल के दौरान उत्पादन को किस तरह संगठित किया जाता था?**

**उत्तर**–मध्यकाल के दौरान उत्पादन का संगठनात्मक आधार सभी जगह समान नहीं होता था। अरब देश में शिल्पी गृहस्थ होते थे। उमय्यद खलीफा सभी शिल्पियों पर निगरानी रखते थे और उनको नियंत्रित करते थे। बढ़ई, कशीदाकार और राजमिस्त्री काम की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते थे। चीन में शस्त्रागार, शाही कारखानों, लोहे और नमक की खानों में शिल्पियों को काम में लगाया जाता था। तांग शासन के काल में निगम की स्थापना की गयी। ये निगम शहरों में स्थापित और स्वायत्त थे। इन निगमों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी।

जापान में शिल्पी कुलों में संगठित थे। प्राधिकारी उन्हें रोजगार देते थे। वे मंदिरों में भी काम करते थे। इस प्रकार के शिल्पियों को 'जा' नाम से जाना जाता था। 12वीं शताब्दी के अंत में 'जा' ने एकाधिकार की माँग की।

भारत में शासकों तथा सामंतों ने बड़ी संख्या में शिल्पियों को शाही कारखानों में नियुक्त किया था। शाही कारखानों में निर्मित वस्तुएँ बाजारों में बेची नहीं जाती थीं, बल्कि शाही घराने के लोग, कुलीन राजकीय अधिकारी उनका निजी उपयोग करते थे। मुद्रा निर्माण का कार्य सरकार के नियंत्रण में होता था। फ्रांस तथा इंग्लैंड में मुद्रा निर्माण लाइसेंस प्राप्त मुद्रा निर्माता की निगरानी में होता था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



और मध्य युग में यही ढाँचा मौजूद था। आरम्भ में क्षेत्रीय राजकुमार या स्थानीय समुदाय इस प्रकार के कामों पर निगरानी रखते थे। परन्तु 13वीं शताब्दी में मुद्रा का ढलाई का कार्य सरकार द्वारा किए जाने लगा। भारत में मुद्रा की टकसालों पर राज्य का नियंत्रण था। कोई भी सिक्का ढलवा सकता था। चाँदी लेकर उसे सिक्कों में तब्दील करवा सकता था। टकसाल के अधिकारी धातु की गुणवत्ता और मात्रा की सख्ती से जाँच-परख करते थे। मुद्रा ढालने के लिए टकसाल अलग से शुल्क लिया करती थी।

मध्यकालीन यूरोपीय श्रेणियों का उद्भव पुरातन जर्मनी के धार्मिक संगठनों पर आधारित था। 9वीं शताब्दी में कैरोलिन साम्राज्य में श्रेणियाँ मौजूद थीं। 11वीं शताब्दी में शहरों में श्रेणियाँ बनायी गयीं। व्यापारिक संगठन और शिल्पियों के संगठन के अलग-अलग उद्देश्य थे।

व्यापारी श्रेणी का उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा कमाना था अत: वे मजदूरों पर काम करने की कड़ी से कड़ी पाबंदियां लगाते थे और इन्हें कम से कम मजदूरी दिया करते थे। इन श्रेणियों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे और ये अपने हितों पूर्ति के लिए कानून बना लिया करते थे और उनका सहारा लेते थे। इन श्रेणियों द्वारा व्यापारिक गतिविधियों को नियमित किया जाता था। जर्मनी में ये श्रेणियां गिल्ड या हेन्स (Hanes) तथा रोमन देशों में कारिटस (Caritas) के नाम से जाने जाते थे।

12वीं शताब्दी में इंग्लैंड में, नॉरमंडी, हॉलैंड और उत्तरी जर्मनी के कुछ हिस्सों में गिल्ड की स्थापना हुई। गिल्ड से किसी खास पेशे से जुड़े शिल्पी इसके सदस्य होते थे। इनका एक संरक्षक संत हुआ करता था और इस प्रक्रिया में इसमें सदस्यों में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए मजबूत भावना उभरकर सामने आयी। इन गिल्डों ने उत्पादन प्रक्रिया को नियमित किया। इन्हें एकाधिकार प्राप्त था और प्रतियोगिता समाप्त करने के लिए उन्होंने कई तरीके अपनाए।

प्रत्येक गिल्ड या श्रेणी में मजदूरों के कई स्तर थे। इसमें मास्टर, एपरेन्टिस और जर्मीमैन हुआ करते थे। इन मजदूरों के पास कच्चा माल और अपने औजार हुआ करते थे और इन्हें छोटे उद्यमी के रूप में परिभाषित किया जा सकता था। अपना प्रशिक्षण पूरा करने के बाद कई जर्नीमैन मास्टर की हैसियत प्राप्त कर लेते थे, परन्तु कई मास्टर के पद तक नहीं पहुँच पाते थे। इस अवधि में मास्टरों की संख्या कम थी। मास्टर बनने के लिए पूंजी और उच्च सामाजिक हैसियत का होना जरूरी था।

यूरोप में उत्पादन मुख्य रूप से घरों में होता था। छोटे कारीगरों के पास कच्चा माल होता था और वे स्थानीय जरूरतों के अनुसार सामान बनाते थे। परिवार आधारित उत्पादक व्यवस्था तथा चर्च और गिरजों की सम्पदाओं दोनों में ही विशेषज्ञ कारीगर होते थे। ग्रामीण शिल्पी भी हुआ करते थे। धातुकर्मियों के पास जमीन हुआ करती थी। खाली समय में वे घोड़ों की नाल बनाया करते थे और हलों की फालों की मरम्मत किया करते थे।

13वीं शताब्दी से भी पहले शहरी समुदायों में औद्योगिक शिल्पी मौजूद थे। एकाधिकारपूर्ण गिल्डों या श्रेणियों का भी उद्भव हुआ। कारीगरों और व्यापारियों के बीच का संबंध जटिल था। सभी कारीगरों के पास अपने बलबूते पर उत्पादन करने के लिए जरूरी संसाधन मौजूद नहीं थे। बड़े व्यापारी अन्तरक्षेत्रीय व्यापार की बढ़ती माँग को पूरा किया करते थे। उत्पादन बढ़ाने के लिए 'पुटिंग आउट' व्यवस्था की शुरुआत हुई।

मध्यकाल में कई प्रकार के उत्पादन संगठन थे। सबसे पहले स्तर पर वे कारीगर थे जो अपने घरों और दुकानों में अपने बलबूते पर काम किया करते थे। कई बार वे घर-घर और बाहर जाकर घूम-घूमकर रोजमर्रा के सामान बेचा करते थे। कहीं-कहीं किसान भी अपने खाली समय में उत्पादन कार्य किया करते थे। खाली समय में महिलाएं घर पर बैठकर सूत काता करती थीं या फिर खनिज उत्पादन में सहयोग देती थीं। इसके अलावा शिल्पी अपने छोटे कारखानों में मजदूरों, प्रशिक्षुओं और 'जर्मीमैन' से काम करवाया करते थे। इस प्रकार के कामगारों की संख्या काफी कम होती थी। उत्पादन के कुछ क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लोग लगाए जाते थे और इसमें कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के लोग शामिल होते थे। खनिज, खनन और धातु कार्य (खनिज से धातु निकालने का काम), जहाज निर्माण और इमारत निर्माण जैसे क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लोग काम पर लगाए जाते थे। राज्य और राजशाही के लिए हथियार और ऐशो-आराम की वस्तुओं के उत्पादन में भी बड़ी संख्या में कारीगरों को एक साथ काम पर लगाया जाता था। परन्तु यहाँ बनने वाले सामान बाजार में नहीं बेचे जाते थे, बल्कि राजा और उसका परिवार या फिर शासक वर्ग इसका निजी उपयोग किया करते थे।

व्यक्तिगत तौर पर कारीगरों द्वारा उत्पादन किये जाने के मामले में विशेषज्ञता उभरकर सामने आयी। कपड़े के उत्पादन में कई तरह के कार्य किये जाते थे और हरेक चरण में अलग-अलग पद्धतियां अपनाई जाती थीं और प्रत्येक के विशिष्ट कारीगर होते थे। कताई, बुनाई, धुलाई और रंगाई—ये सारे काम अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग कारीगरों द्वारा किये जाते थे।

**प्रश्न 4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—**

**(1) पुटिंग आउट व्यवस्था**

**(2) शिल्पियों के कार्य करने की परिस्थितियां।**

**उत्तर—(1) पुटिंग आउट व्यवस्था**—पुटिंग आउट व्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया में मध्यस्थों का प्रवेश हुआ। व्यापारी कारीगरों को कच्चा माल उपलब्ध कराया करते थे और कारीगर उन्हें तैयार माल दिया करते थे। धन के अभाव के कारण कारीगरों को कच्चे माल की कमी रहती थी। परन्तु अब कारीगरों के पास कच्चे माल की कमी नहीं थी और उन्हें यह लगातार उपलब्ध होता रहता था और तैयार सामान की आपूर्ति के समय उन्हें हर सामान की निर्धारित कीमत दी जाती थी। ये कारीगर हालाँकि मजदूर तो नहीं बने, परंतु बाजार पर से उनका नियंत्रण छूट गया। इसके अलावा

www.neerajbooks.com

व्यापारियों को भी लगातार माल मिलने लगा और उत्पाद की गुणवत्ता भी बहाल की जा सकी। पुटिंग आउट व्यवस्था को नियंत्रित करने वाले मध्यस्थ या तो व्यापारी हुआ करते थे या मास्टर शिल्पी। उन्हें इसमें खूब मुनाफा भी होता था। इस व्यवस्था से उत्पादन बढ़ाने में मदद मिली। पुटिंग आउट व्यवस्था में कारीगर अधिकतर अपने ही घर पर अपने औजारों से काम किया करते थे। कच्चे माल के महंगे, बहुमूल्य और नाजुक होने की स्थिति में कभी-कभी कारीगरों को एक खास जगह पर आकर काम करने को भी कहा जाता था।

पुटिंग आउट व्यवस्था ने उत्पादन प्रक्रिया को नियमित करने में सहयोग दिया।

**( 2 ) शिल्पियों के कार्य करने की परिस्थितियाँ**–शिल्पियों के काम करने की बेहतर परिस्थितियां दिलाने में श्रेणियों/गिल्डों की भूमिका सीमित थी। क्योंकि उनके पास न तो संसाधन ही होते थे, और न ही राजनीतिक शक्ति थी। इससे उनके मुनाफे पर भी असर पड़ता था। कुशल कारीगरों (मास्टर) को धन की कमी के कारण कच्चा माल जुटाने में असुविधा हुई और उसमें वे कामयाब नहीं हुए, तो उन्होंने पूँजीपति व्यापारियों की अधीनता स्वीकार कर ली। ये व्यापारी कामगारों को कच्चा माल दिया करते थे और उनका बनाया हुआ माल बाजार में बेचते थे। फ्लोरेंस में कई कामगार धुलाई और धुनाई के काम में लगे हुए थे। इनके पास अपने व्यक्तिगत औजार नहीं होते थे। अधिकांशत: ये उद्यमी की दुकान में काम करते थे और कई फोरमेन उन पर नजर रखते थे। भारत में 17वीं शताब्दी में कारीगारों को अग्रिम राशि देने का चलन था और उनसे तैयार सूती, रेशमी कपड़े तथा शोरा प्राप्त किया जाता था।

कामगारों के काम करने की स्थिति भी बेहतर नहीं थी। फ्लैंडर्स और इंग्लैंड में कामगारों को दिनभर काम करना पड़ता था। दोपहर के भोजन के समय एक से डेढ़ घंटे आराम का वक्त मिलता था। गर्मियों में एक सप्ताह में उन्हें ज्यादा 60 घंटे और सर्दियों में 44 घंटे काम करना पड़ता था।

मजदूरी में भी भिन्नता थी। जिन मजदूरों के पास अपने औजार होते थे, उन्हें ज्यादा मजदूरी मिलती थी। कपड़ा पीटने और धोने वाले को कम मजदूरी मिलती थी। इमारत निर्माण करने वाले, राज मिस्त्री या पत्थर काटने वाले मजदूरों को काफी मुश्किल स्थिति में काम करना पड़ता था। यदि इमारत निर्माण का कार्य राज्य या कोई सामंत या चर्च करे तो फिर एक हद तक मजदूरों और शिल्पियों पर जोर-जबरदस्ती और अत्याचार भी किया जाता था।

13वीं शताब्दी के दौरान अधिक मजदूरों की मांग को लेकर मजदूरों ने हड़तालें भी की। फ्लैंडर्स में लगातार कई हड़तालें हुईं। 1280 में मजदूरों का यह असंतोष ब्रजेस, आइरस, शेनाई और तोरनई तक फैल गया। सामुदयिक कुलीनतंत्रों के विशेषाधिकारों के खिलाफ विरोध हुआ। कारीगरों, छोटे व्यापारियों और बजाजों के बीच गहरी साठ-गांठ थी। अपनी शिकायतों की सुनवाई के लिए इन कारीगरों ने अदालत की शरण ली। स्थानीय आर्थिक मुद्दे और राजनीतिक विषय एक-दूसरे में घुल-मिल गये।

यूरोप के दूसरे हिस्सों में भी शिल्पियों का असंतोष समय-समय पर उभरता था। 1302 में ब्रुसेल्स, लोएन और एन्टवर्प के बुनकरों और धोबियों ने बगावत कर दी। उन्होंने व्यापरियों, श्रेणियों/गिल्डों की ताकतों को नष्ट कर दिया। स्थानीय राजनीति में उनका बोलबाला हो गया। परंतु उनका यह प्रभुत्व बहुत दिनों तक कायम नहीं रहा।

इंग्लैंड में कई प्रकार के प्रतिबंध लगे हुए थे। उन उद्योगों में असंगठित मजदूरों द्वारा विद्रोह किया गया। 1378 का कियोम्पी विद्रोह फ्लोरेंस में राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का एक प्रयास था। यह सैनिकों, बनियों, पोशाक, दवा बनाने वालों, लोहार, फर बनाने वालों और हौजरी बनाने वालों का संयुक्त संघर्ष था। परन्तु स्थापित श्रेणियों के सदस्यों ने उनकी मदद नहीं की। यह विद्रोह निर्ममतापूर्वक कुचल दिया गया। इस तरह व्यापारी और वित्तीय कुलीन तंत्र के हाथ में सत्ता सीमित रही। इन बातों से कामगारों की अलग-अलग स्थिति और प्रस्थिति का पता चला है। अकुशलता और असंगठित मजदूरों की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। उनकी शिकायतों की सुनवायी और उस पर कार्यवाही करने का सम्बन्ध तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था से था। इस व्यवस्था पर उच्च वर्गों का नियंत्रण था और वे अपनी मनमानी किया करते थे।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



मध्ययुगीन विश्व में संक्रमण

# विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा ज्ञान का विस्तार 28

## परिचय

इस अध्याय में मुख्यत: विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा ज्ञान के प्रसार पर चर्चा की गई है। साथ-ही-साथ खगोल विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र और मानव प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र में हुए वैज्ञानिक विकास का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। आरंभिक सभ्यता के लोगों ने अपनी जीविका चलाने और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए कामकाजी औजारों का विकास किया। इसके बाद वे अपनी सभ्यता के प्रबंधन और संचालन के लिए नवीन प्रौद्योगिकी और एक व्यवस्था का विकास करने लगे। इस तरह क्रमिक विकास के द्वारा सोलहवीं शताब्दी में आकर आधुनिक विश्व का निर्माण हुआ। इस काल में मनुष्य में बौद्धिक जागृति आयी और वह प्रकृति और समाज के विषय में नये ढंग से सोचने लगा। इस प्रकार वैज्ञानिक खोज, भौगोलिक ज्ञान और प्रौद्योगिकी में नये-नये आविष्कार किये गये।

इन नवीन खोजों के द्वारा आधुनिक विश्व का जन्म हुआ, जिसके निर्माण में पुनर्जागरण और धर्म सुधार जैसे तत्त्वों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पुनर्जागरण और धर्म-सुधार ने मध्ययुगीन विचारधारा को बदल दिया। मध्ययुग में अंधविश्वास और अतार्किक सोच का बोलबाला था। वैज्ञानिक क्रांति ने प्रयोग, तर्क, पर्यवेक्षण के द्वारा मध्ययुगीन विचारों को विखंडित कर दिया। इस काल ने बुर्जुआ वर्ग का विकास हुआ, जो सभी चीजों को मापने और जांचने के लिए तर्क का सहारा लेने लगे। इस तरह एक वैज्ञानिक सोच का विकास हुआ, जो सभी चीजों को जांच-परख कर स्वीकार करती थी। इस नयी सोच से वैज्ञानिक क्रांति का आगमन हो गया, जिसने इस युग की सभी संस्थाओं का स्वरूप ही बदल दिया।

तेरहवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में कई स्थायी विद्यालय और विश्वालयों की स्थापना की गई। इन विश्वविद्यालयों में कानून, तर्क, चिकित्सा आदि की शिक्षा दी जाती थी। चूंकि पश्चिमी यूरोप में चर्च का वर्चस्व था, इसलिए अभी तक यही पढ़ाया जाता था कि पृथ्वी स्थिर है तथा ब्रह्मांड के बीच में स्थित है और दस पृथक्, पारदर्शी, रवेदार गोले इसके चारों ओर घूमते रहते हैं।

प्राचीन काल से ही यह मान्यता चली आ रही थी कि ब्रह्मांड के ग्रह मानव जीवन को प्रभावित करते हैं इसलिए आकाश में नक्षत्रों और तारों की स्थिति पर अधिक काम किया गया। कोपरनिकस, टाइको और केपलर ने अपनी खोजों के द्वारा समकालीन समाज के दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया।

कोपरनिकस पोलैंड का पादरी और खगोलशास्त्री था। इसने कई यूरोपीय विश्वविद्यालयों में खगोलशास्त्र और चर्च संबंधी कानून का अध्ययन किया था। उसने टॉलेमी के ब्रह्मांड संबंधी सिद्धांत में कई खामियां निकाली। टॉलेमी ने कहा था कि प्रत्येक नक्षत्र एक छोटे-से वृत्त में एक अदृश्य केन्द्र के चारों ओर घूमता है। पुन: ये वृत्त पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। अर्थात् यह सूर्य केन्द्रित सिद्धांत था, जिसके अनुसार पृथ्वी स्थिर है और सूर्य तथा सभी ग्रह इसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। लेकिन कोपरनिकस ने इस सिद्धांत का खण्डन किया, उसके अनुसार पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक चक्कर लगाती है और सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण ही सूर्य घूमता हुआ नजर आता है। कोपरनिकस ने प्राचीन काल से चली आ रही वैज्ञानिक और धार्मिक मान्यता को ही रद्द कर दिया कि पृथ्वी के चारों ओर तारे घूमते हैं।

टाइको ब्राहे दूरबीन का आविष्कार होने से पूर्व सबसे बड़ा खगोलशास्त्री माना जाता था। इसने डेनमार्क के राजा से अनुदान प्राप्त कर सर्वाधिक परिष्कृत वेधशाला का निर्माण करवाया था। इसने बिना किसी उपकरण की सहायता से तारों और नक्षत्रों का बहुत सूक्ष्मता से अवलोकन किया और बहुत सारे आंकड़े इकट्ठे किए। इन आंकड़ों का केपलर ने अपने शोध में उपयोग किया। केपलर ने पाया कि तारे जब सूर्य के नजदीक आते हैं, तो उनकी गति तेज हो जाती है, इसलिए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि तारों का परिक्रमा पथ वृत्ताकार नहीं है, बल्कि दीर्घ वृत्ताकार होता है। इस प्रकार इन तीनों विद्वानों के कार्यों से ही आधुनिक खगोलशास्त्र की शुरुआत मानी जाती है।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



शुरुआत में कुछ लोग अपनी रुचि के लिए विज्ञान में शोध करने लगे। हालांकि वे पेशेवर वैज्ञानिक नहीं थे, फिर भी उन्होंने शोध करते समय पर्यवेक्षण, प्रयोग, तर्क जैसे आधुनिक मापदंडों का प्रयोग किया। गैलिलियो ने नई प्रविधियों अर्थात् पर्यवेक्षण और प्रयोगों की नियमित रूप से शुरुआत की, किन्तु इसके पूर्व भी कई लोग इसका उपयोग करते आ रहे थे। जैसे विलियम गिलबर्ट ने चुम्बकत्व के अध्ययन में प्रयोगों और पर्यवेक्षणों द्वारा ही किया। एक अन्य विद्वान फ्रांसिस बेकन (1561-1626) ने (एरिस्टोटे लियाई) और सामान्य सिद्धांतों के निर्माण के लिए अनुमान आधारित परिधि के स्थान पर अनुभवकारी प्रयोगात्मक अनुसंधान पर बल दिया। इसने अनुभवी प्रविधि को एक सामान्य तर्क पद्धति का रूप दिया जिसे अनुभववाद के नाम से जाना जाता है। विभिन्न वैज्ञानिकों के योगदान के कारण सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक विज्ञान संस्थाकृत होता गया। वैज्ञानिकों ने 1645 के बाद लंदन में रॉयल सोसायटी की स्थापना की। दरअसल इसका गठन वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार के लिए किया गया था। यद्यपि शुरुआत में इस सोसायटी ने समकालीन वाणिज्यिक और निर्माण संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए बेहतर उपकरण तथा प्रौद्योगिकी के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया। इस प्रकार क्रमशः वैज्ञानिक विकास पर बल दिया जाने लगा।

कोपरनिकस, टाइको और केपलर जैसे वैज्ञानिकों की शुरुआती खोजों ने वैज्ञानिक खोजों के लिए आम जनता में जागरूकता पैदा की। गैलिलियो, न्यूटन, वेसिलिए, पैरासेलसस और विलियम हार्वे जैसे अन्य वैज्ञानिकों ने इनके कार्यों को आगे बढ़ाया। गैलिलियो ने प्राकृतिक घटनाओं के बीच संबंधों के कारण और प्रभावों को जानने के लिए पर्यवेक्षण माप और गणितीय विश्लेषणों को एक साथ जोड़ा। उन्होंने त्वरण का सिद्धांत दिया, जिसके अनुसार एक समान बल लगाने पर एकसमान त्वरण उत्पन्न होता है। इसके साथ ही जड़त्व का सिद्धांत भी दिया जिसमें बताया गया कि स्थिरता किसी वस्तु का प्राकृतिक गुण नहीं होता है, क्योंकि कोई भी वस्तु हमेशा गतिशील रहती है, जब तक कि उसे किसी बाह्य बल के द्वारा रोक न दिया जाए। एक अन्य विद्वान न्यूटन ने बेकन, गैलिलियो और गिलबर्ट के प्रयोगात्मक और आगमनात्मक दृष्टिकोण को परिणामात्मक दृष्टिकोण से मिला दिया। इन्होंने प्रयोगात्मक परिणामों तक पहुँचाने और उसका निर्धारण करने के लिए गणितीय साधनों का इस्तेमाल किया। न्यूटन ने अपनी पुस्तक '*प्रिंसिपिया*' में गति के तीन सिद्धांतों के साथ-साथ ब्रह्मांड गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत भी दिया। उन्होंने गति के तीनों नियमों के आधार पर चाँद और पृथ्वी के बीच गुरुत्वाकर्षण बल को नापने का भी प्रयास किया था।

विज्ञान के इतिहासकारों और अन्य विद्वानों के बीच वैज्ञानिक क्रांति के जन्म को लेकर काफी विवाद होता रहा है। कुछ विद्वानों का मत यह रहा है कि विज्ञान का विकास कुछ लोगों की व्यक्तिगत प्रतिभा और मेधावी व्यक्तित्व के कारण हुआ। कुछ विद्वान मध्य वर्ग के सामाजिक और आर्थिक जीवन में हो रहे परिवर्तन को वैज्ञानिक विकास का कारण मानते हैं। इनका मानना है कि जनसंख्या में वृद्धि होते ही लोगों की आवश्यकता में वृद्धि हुई, जिसके कारण नई तकनीक की खोज हुई, जिससे उत्पादकता बढ़ी और वाणिज्य व्यापार का प्रसार हुआ। साथ ही साथ सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में हो रहे बदलाव को भी वैज्ञानिक विकास का कारक मानते हैं। चूँकि प्रारम्भ में वैज्ञानिकों को धार्मिक मठाधीशों का विरोध सहना पड़ा, क्योंकि वैज्ञानिकों के विचारों से धार्मिक विचार बिल्कुल विपरीत था। कुछ विद्वानों का यह भी मानना था कि प्रयोगात्मक विकास प्रोटेस्टेंट नैतिक मूल्य के ही अनुकूल था और विज्ञान और वैज्ञानिक समाज के विकासों में कैल्विनवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान मानते हैं। इतिहासकार क्रिस्टोफल हिल का कहना है कि व्यापारी कारीगर वर्गों के प्युरिटन सामाजिक बोध से प्रयोगात्मक विज्ञान का विकास हुआ अर्थात् बुजुर्आ वर्ग ने विज्ञान को बढ़ावा दिया और सामाजिक प्रगति के लिए एक नवीन दृष्टिकोण विकसित किया। हालांकि प्युरिटन व्यापारियों और वैज्ञानिक गतिविधियों के बीच कोई सहयोग अपवाद ही है। सत्यता यह है कि व्यावहारिक तकनीकी समस्याओं को सुलझाने के लिए टेलिस्कोप, बैरोमीटर, थर्मामीटर, घड़ी, माइक्रोस्कोप और हवा पम्प जैसे उपकरणों का आविष्कार किया गया। जैसा कि हम जानते हैं कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में कई वैज्ञानिकों ने विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण और प्रवीणता प्राप्त की, जहाँ इन्हें अवधारणात्मक स्तर पर सोचने की शिक्षा दी गई थी। इसलिए इन वैज्ञानिकों ने आविष्कार अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया। फिर भी हर समय यह बहस का मुद्दा रहा है कि क्या वैज्ञानिक विकास और प्रौद्योगिकी परिवर्तन में किसी प्रकार का संबंध था, किन्तु ऐसा अनुमान है कि इस युग में हुआ प्रौद्योगिकी विकास शिल्पियों की योग्यता का प्रमाण है, जबकि वैज्ञानिक क्रांति मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग के प्रयासों का प्रतिफल है। दोनों में संबंध था, क्योंकि प्रौद्योगिकी और इसके औजारों तथा उपकरणों ने वैज्ञानिक क्रांति को लाने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

कोपरनिकस के समकालीन बेल्जियम के शरीरज्ञ एन्ड्रेस वेसेलिए (1514-64) ई. ने '*ऑन द फेब्रिक ऑफ द ह्यूमन बॉडी*' नामक विचार प्रकाशित किया। यह विचार नया और परंपरागत विचार से हटकर था। इसमें शव के विच्छेदन अर्थात् चीर-फाड़ का विस्तृत और स्टीक विवरण प्रस्तुत किया गया है। वेसेलिए के पूर्व यूनानी चिकित्सक गैलेन की पुस्तक '*ऑन एनाटोमिकल प्रिपरेशन्स*' को मानक पुस्तक माना जाता था, जिसे यूरोपीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता था, जिसमें वेसेलिए ने कई कमियां देखीं और अपने

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



शरीर विज्ञान संबंधी कार्यों से इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया। इसके साथ ही वैज्ञानिक क्रांति दूसरे क्षेत्रों ने भी फैली। आधुनिक शरीर क्रियाविज्ञान की शुरुआत 1600 ई. के प्रारम्भ में अंग्रेजी चिकित्सक विलियम हार्वे के कार्य से हुई। हार्वे ने रक्त प्रवाह संबंधी सिद्धांत दिया। हार्वे ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि मानव के शरीर में रक्त प्रवाहित होता है।

माइक्रोस्कोप का निर्माण डच वैज्ञानिक जकारियस जैनसेन ने किया था। उन्होंने पहली बार दो लैंसों को मिलाकर प्रयोग किया और पाया कि इससे माइक्रोस्कोप की देखने की शक्ति बढ़ेगी। मार्सेलो मैलपिघी ने चमगादड़ के पंखों की झिल्ली का सूक्ष्म अध्ययन किया और पाया कि झिल्ली में छोटी-छोटी रक्त वाहिकाएं हैं। इसे जैनसेन कोशिका का नाम दिया गया। ये कोशिका धमनियों और नसों को जोड़ती हैं। लीउवैनहॉक ने पहली बार प्रोटोजोआ और जीवाणु जैसे सूक्ष्म जीवाणुओं की खोज की।

रॉबर्ट बॉयल ने किसी वस्तु की रासायनिक बनावट का पता लगाने के लिए नई विधियों का विकास किया, किन्तु आधुनिक रसायनशास्त्र का विकास 1700 ई. के करीब ही हो सका। प्रारम्भ के वैज्ञानिकों ने गैस को अलग करने और उसका अध्ययन करने की तकनीक विकसित की। कार्ल शीले ने ऑक्सीजन की खोज की। फ्रांस के एन्टोनेओने लोवोसिए ने बताया कि जलते हुए पदार्थ में ऑक्सीजन के मिलने से दहन की तीव्रता बढ़ जाती है। उन्होंने पदार्थ के संरक्षण का नियम भी दिया। इस नियम के अनुसार पदार्थ का निर्माण या विनाश नहीं किया जा सकता, बल्कि केवल इसका रूप बदला जा सकता है।

इस अध्याय में हम वैज्ञानिक क्रांति के संबंध में विभिन्न विद्वानों के मतों की चर्चा करने जा रहे हैं।

मध्ययुग में ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों की खोज की गई। यूरोप में पशु ऊर्जा के साथ-साथ पनचक्की का भी उपयोग होता था। इसका उपयोग अनाज कूटने, लकड़ी काटने, तेल निकालने और ऊन उद्योग में व्यापक पैमाने पर किया जाता था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में ऊर्जा के स्रोत रूप में लकड़ी और काष्ठ कोयला की जगह खनिज कोयला प्रयोग होने लगा। खनिज कोयला की जरूरत साबुन और कपड़ा उद्योग की भट्ठियों में पड़ती थी।

व्यापार-वाणिज्य की आवश्यकता और लोगों के आवागमन की सहूलियत के लिए भू-परिवहन के क्षेत्र में शोध किये गये। सड़क बनाने की विधि और तकनीक में सुधार किया गया। नदियों पर पुल निर्माण और नहरों के निर्माण में प्रयोग किया जाने लगा जैसे भूमध्यसागर और बिस्के की खाड़ी के बीच 241 किलोमीटर लम्बी नहर का निर्माण किया गया। किन्तु नौकायन के क्षेत्र में अधिक प्रगति हुई। अब वायु ऊर्जा से चलने वाले जहाजों का निर्माण किया जाने लगा। जहाजों में पुराने चौकोर पाल के साथ-साथ अब त्रिकोणीय लैन्टीन पाल भी लगाया जाने लगा जिससे जहाजों को खेने में आसानी होती थी। जहाजों की दिशा बदलने के लिए अलग से पहिया लगाया गया, ताकि जहाजों को घुमाने में परेशानी न हो, चुम्बकीय कम्पास का जहाज में प्रयोग किया गया, जिससे किसी भी मौसम में समुद्री रास्ते की जानकारी मिल सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव ऊर्जा के स्थान पर पवन ऊर्जा का उपयोग और जहाजों पर तोपों के इस्तेमाल से यूरोप के लोग दुनिया के शिखर पर पहुँच गये।

लगभग 1400 ई. के आसपास जर्मनी के जोहान्स ग्यूटेनबर्ग ने मुद्रण कला का आविष्कार किया। इस मशीन में स्याही, चलन्त टाइप, कागज और छापाखाना आदि तकनीकों का एक साथ प्रयोग किया गया था। इस मशीन के आगमन से छपाई में कम खर्च आने लगा और अब सूचना और ज्ञान की पहुँच आम जनता तक होने लगी। सबसे पहला छापाखाना मेंज में स्थापित किया गया था, जल्द ही इसका प्रसार इटली और फ्रांस जैसे देशों में भी हो गया। आगे पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत में विलियम कैस्टॉन ने इंग्लैण्ड में प्रौद्योगिकी की शुरुआत की। इस तरह यह प्रौद्योगिकी क्रमशः वाणिज्यिक, रासायनिक, धार्मिक और वैज्ञानिक प्रसार का लोकप्रिय माध्यम बन गई।

इन प्रौद्योगिकियों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रौद्योगिकियों का आविष्कार चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में किया गया। जैसे स्प्रिंग से चलने वाली घड़ी का निर्माण हुआ। अब ऐसी घड़ियाँ भी बनने लगीं जिन्हें हाथ में लेकर चला जा सकता था। साबुन का आविष्कार मध्यकाल में ही हुआ। इसके निर्माण में पशु या वनस्पति वसा का प्रयोग किया जाता था। और इस वसा को अलकली के साथ उबालकर सड़ाया जाता था।

आधुनिक विज्ञान और खोज की चेतना के उदय ने समाज के सभी पहलुओं पर अपना प्रभाव डाला। वैज्ञानिकों ने आम जनता के हित के लिए कई आविष्कार किए, जिससे संभवतः आम जनता का जीवनस्तर ऊँचा उठा। वैज्ञानिक क्रांति ने आधुनिक वैज्ञानिक प्रविधि का विकास किया, जो प्रयोग और पर्यवेक्षण पर आधारित थी। इस बौद्धिक क्रांति में प्रकृति से लेकर सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को समझने के लिए तर्क पद्धति का सहारा लिया गया।

हमने इस अध्याय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए विकास का संक्षिप्त अवलोकन किया है। सबसे पहले खगोलशास्त्र के क्षेत्र में कोपरनिकस, टाइको ब्राहे और केपलर ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने उस समय समाज में फैले अंधविश्वासों और परम्परागत विचारों को चुनौती दी। खगोलशास्त्र के पहल के बाद भौतिक विज्ञान, यांत्रिकी, रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान के क्षेत्र में अनेक खोजें की गईं, जहाँ गैलिलियो ने नक्षत्रों की पहचान की, वहीं न्यूटन ने गति का नियम दिया। इस प्रकार हम पाते हैं कि

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



वैज्ञानिक क्रांति ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक तथा संस्कृति के सभी पहलुओं को प्रभावित किया। इस वैज्ञानिक क्रांति के लाभ से यूरोप आधुनिकता का अग्रदूत बनकर सामने गया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. खगोल विज्ञान के क्षेत्र में कोपरनिकस की भूमिका पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–मध्ययुग में प्रौद्योगिकी का विकास, वैज्ञानिक अनुसंधान और ज्ञान के विस्तार के कारण लोगों में जागृति आयी और समाज आधुनिकता और आधुनिक विश्व की ओर अग्रसर हुआ। सर्वप्रथम खगोलशास्त्र के क्षेत्र में हुए आविष्कारों ने ही वैज्ञानिक क्रांति का आधार तैयार किया। कोपरनिकस, टाइको और केपलर जैसे खगोलशास्त्रियों ने समकालीन समाज के दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने खगोलशास्त्र पर काम करते हुए एक नई खोज विकसित की, जिसके कारण आधुनिक खगोलशास्त्र का जन्म हुआ।

निकोलस कोपरनिकस पोलैंड का पादरी और खगोलशास्त्री था। उसने यूरोप के विभिन्न विश्वविद्यालयों में खगोलशास्त्र का अध्ययन किया था। इसने दूसरी शताब्दी में एलेक्जेंड्रिया के खगोलशास्त्री टॉलेमी के पृथ्वी के केन्द्रीय सिद्धांत में कई त्रुटियाँ देखी। टॉलेमी के नक्षत्रों और तारों संबंधी विचार कोपरनिकस के विचार से अलग थे। साथ-ही-साथ ग्रहों और अधिचक्र संबंधी अवधारणा भी जटिल और अव्यावहारिक थी। टॉलेमी ने बताया था कि प्रत्येक नक्षत्र एक छोटे-से वृत्त में एक अदृश्य केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाता है और फिर यह पूरा वृत्त पृथ्वी के चारों ओर बड़े वृत्त में चक्कर लगाता है। दरअसल में यह सिद्धांत अरस्तू के सिद्धांत की ही अनुकृति था।

कोपरनिकस ने इन प्राचीन सिद्धांतों का खण्डन किया और कहा कि पृथ्वी नहीं सूर्य ब्रह्मांड के केन्द्र में स्थित है। पृथ्वी प्रत्येक 24 घंटे में अपनी धुरी पर घूमती है, जिसके कारण आकाश ऊपर नजर आता है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण ही सूर्य घूमता हुआ प्रतीत होता है केवल चन्द्रमा ही पृथ्वी के चारों ओर छोटी दूरी में घूमता है, साथ ही साथ मंगल, बृहस्पति भी सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर छोटी कक्षा में घूमती है, जबकि नक्षत्र बड़ी कक्षाओं में घूमते हैं। यह भी बताया कि तारों की दूरी सूर्य की दूरी से बहुत अधिक होती है। कोपरनिकस ने सूर्य केन्द्रित ब्रह्मांड सिद्धांत पर 1506 ई. से लेकर 1530 ई. तक कार्य किया था। इसके परिणाम जानने के लिए गणितीय विधि का प्रयोग हुआ। पहली बार उसने अपनी पुस्तक 'ऑन द रेवॉल्यूशन्स ऑफ द हेवेनली स्फेयर्स' में अपने सिद्धांतों को प्रकाशित किया।

कोपरनिकस के सिद्धांतों को टाइको ब्राहे और केलपर जैसे विद्वानों ने आगे बढ़ाया। टाइको ब्राहे ने दूरबीन का आविष्कार होने के पूर्व ही अपने समय की सर्वाधिक परिष्कृत वेधशाला का निर्माण करवाया और बगैर किसी उपकरण की सहायता से तारों और नक्षत्रों का अवलोकन करके बहुत सारे आंकड़े इकट्ठे किए। परन्तु ब्राहे की मुख्य कमी यह थी कि वे इस विचार से ही बंधे रहे कि सभी ग्रह और सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं। आगे टाइको के शिष्य और सहयोगी केपलर ने उनके आंकड़ों का प्रतिभापूर्ण उपयोग किया। केपलर ने पाया कि तारों की गति भिन्न जगहों पर अलग-अलग होती है और सूर्य के नजदीक उनकी गति तेज तथा सूर्य से दूरी बढ़ने पर उनकी गति धीमी हो जाती है। इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि नक्षत्र परिक्रमा-पथ वृत्ताकार पथ पर घूमते हैं, जो एक अंडाकार पथ होता है।

अत: ऊपर के विवरणों से पता चलता है कि कोपरनिकस के प्रारूप में सहायता, नियमितता और निरंतरता थी, जिसके कारण ही इसने सटीक खगोलीय पूर्वानुमान किये। चूँकि प्राचीन काल से ही यह मान्यता चली आ रही थी कि ब्रह्मांड में नक्षत्रों तथा तारों पर अधिक कार्य किया गया। कोपरनिकस के सिद्धांत ने वैज्ञानिक और धार्मिक उथल-पुथल फैला दी। उसने चर्च की प्राचीन अवधारणा को ही ध्वस्त कर दिया कि पृथ्वी के चारों ओर तारे घूमते हैं। उसने अनन्त ब्रह्मांड की भी जानकारी दी, जो चर्च के सिद्धान्त से मेल नहीं खाते थे। इसलिए ईसाई पादरियों और यहाँ तक कि मार्टिन लूथर ने भी कोपरनिकस को गलत ठहराने का प्रयास किया। लेकिन कोपरनिकस के सिद्धान्त सत्य थे, जिन्हें आगे ब्राहे और केपलर ने आगे बढ़ाया।

**प्रश्न 2. विज्ञान में प्रयोगात्मक प्रविधि के विकास में गैलिलियो का क्या योगदान था?**

**उत्तर**–विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ ही प्रकृति के नियम की व्याख्या करने के लिए प्रयोगात्मक विधियों का उपयोग किया जाने लगा, जिससे वैज्ञानिक क्रांति का आगमन हुआ। सब चीजों को तर्क, आलोचना तथा सोचने की वैज्ञानिक पद्धति की तराजू पर तोला जाने लगा।

आरंभ में कुछ लोगों का आकर्षण विज्ञान की तरफ हुआ, किन्तु ये लोग आधुनिक वैज्ञानिक नहीं थे फिर भी इन्होंने समस्याओं का हल करने के लिए पर्यवेक्षण, प्रयोग जैसे आधुनिक वैज्ञानिक मापदंडों का प्रयोग किया। इनमें गैलिलियो का नाम सर्वोपरि था। ये अपने प्रयोगों का सावधानी से और चरणबद्ध तरीके से निष्कर्ष निकालते थे। इन्होंने बार-बार प्रयोग किया, पहले के प्रयोगों का परीक्षण करने के लिए पुन: प्रयोग किया ताकि पूर्व के प्रयोग की खामी की जाँच की जा सके और अंतिम परिणाम में अंशत: या पूर्णत: बदलाव किया सके।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



गैलिलियो ने सावधानीपूर्वक नियंत्रित प्रयोगों की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने प्राकृतिक घटनाओं के बीच संबंधों के कारणों और प्रभावों को जानने के लिए पर्यवेक्षण, माप और गणितीय विश्लेषण एक साथ मिलकर किया। गैलिलियो का मानना था कि विज्ञान केवल पर्यवेक्षण प्रयोग और परिणामों की प्रस्तुत मात्र नहीं है। इसके लिए कुछ सिद्धांत बनाए। इस प्रकार गैलिलियो ने पर्यवेक्षण और प्रयोगों से इसे क्रियान्वित किया। गैलिलियो के अतिरिक्त कुछ और लोगों ने इस प्रविधि को अपनाया, जैसे भौतिकशास्त्री गिलबर्ट ने भी प्रयोगों और सर्वेक्षण के द्वारा चुम्बकत्व का अध्ययन किया और फ्रांसिस बेकन ने अनुभवकारी प्रयोगात्मक अनुसंधान सिद्धांत का विकास किया।

गेलिलियो ने प्रयोगात्मक प्रविधि के आधार पर भौतिक विज्ञान के अनेक आधारभूत सिद्धातों की खोज की। उन्होंने त्वरण का सिद्धांत दिया। इसमें सिद्ध किया गया कि एक समान बल लगाने पर एक समान त्वरण उत्पन्न होता है।

गैलिलियो ने जड़त्व का भी सिद्धांत दिया। इस सिद्धांत के अनुसार स्थिरता किसी वस्तु की प्राकृतिक स्थिति नहीं है, बल्कि कोई भी वस्तु हमेशा गतिशील होती है, जब तक कि उसे किसी बाहरी बल से रोक न दिया जाए। दूरबीन का आविष्कार होने के बाद गैलिलियो ने केपलर के सिद्धांत को प्रमाणित किया। केपलर ने बताया था कि नक्षत्र सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। गैलिलियो ने अपनी दूरबीन से देखा कि बृहस्पति के चार चाँद उसी सिद्धांत से नक्षत्रों के चारों ओर घूम रहे हैं। गैलिलियो ने यह भी पता लगाया कि आकाश गंगा असंख्य तारों का एक बड़ा समूह होता है और चांद का ऊपरी हिस्सा ऊबड़-खाबड़ है।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

आगे न्यूटन ने गैलिलियो, बेकन और गिलबर्ट के प्रयोगात्मक और आगमनात्मक दृष्टिकोणों को परिणामात्मक दृष्टिकोण से मिला दिया। इन्होंने प्रयोगात्मक परिणामों को प्राप्त करने के लिए गणितीय विधि का प्रयोग किया। न्यूटन ने गति के तीन सिद्धांतों के साथ-साथ ब्रह्मांड गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत भी दिया। दरअसल गति का पहला सिद्धांत गैलिलियो के जड़त्व सिद्धांत का सार था। कोई वस्तु स्थिर है, तो वह स्थिर रहना चाहती है, और कोई वस्तु गतिमान है, तो वह गति में रहने की प्रवृत्ति रखती है।

इस तरह गैलिलियो ने जिस प्रयोगात्मक विधि की शुरुआत की, उसे अन्य विद्वानों ने आगे बढ़ाया। किन्तु गैलिलियो को अपने काम के कारण कुछ धर्मशास्त्रियों का कोपभाजक भी बनना पड़ा। इन्होंने अपनी पुस्तक '*डॉयलॉग ऑन द टू चीफ सिस्टम्स ऑफ द वर्ल्ड*' में अरस्तु के दृष्टिकोणों और टॉलेमी के खगोलशास्त्र की आलोचना की और कोपरनिकस का पक्ष-पोषण किया। इसी वजह से धर्मशास्त्रियों ने गैलिलियो पर विधर्मी होने का मुकदमा चलाया और कैद की सजा सुनाई। अत: गैलिलियो ने सार्वजनिक रूप से अपना सिद्धांत वापस ले लिया।

अत: ऊपर के विश्लेषण से पता चलता है कि पहली बार गैलिलियो ने प्रकृति के नियम को जानने के लिए प्रयोगात्मक प्रविधियों का उपयोग किया। इस प्रकार परम्परा का स्थान तर्क ने ले लिया। आगे इस वैज्ञानिक विधि को प्राप्त करने के लिए न्यूटन ने प्राणिशास्त्री विधि का प्रयोग किया। इसलिए कहा जा सकता है कि विज्ञान के विकास में गैलिलियो ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

**प्रश्न 3. विज्ञान के संस्थानीकरण से क्या समझते हैं?**

**उत्तर**–विज्ञान के द्वारा परंरागत मान्यता का तर्कपूर्ण खण्डन किया जाने लगा, इसलिए अंधविश्वासी और रूढ़िवादी लोग विज्ञान और वैज्ञानिकों पर हमला करने लगे जिससे पश्चिमी यूरोप के वकील, चिकित्सक जैसे शिक्षित वर्ग और कुलीन वर्ग के सदस्य तथा पादरियों ने वैज्ञानिक खोज का विरोध किया। मध्यकाल में सर्वेक्षण, धातुकर्म, सैन्य, इंजीनियरिंग, घड़ी बनाना, औद्योगिक रसायन और भिन्न-भिन्न उपकरण सभी पूर्वाग्रहों से बंधे हुए थे। ये लोगों को प्राचीन और परंपरागत और रूढ़िवादी बंधनों से बाहर नहीं निकलना चाहते थे, इसलिए इन्होंने विरोध किया।

इनसे बचने के लिये 1645 ई. के बाद वैज्ञानिकों ने रॉयल सोसायटी नामक संगठन की स्थापना की। इस संगठन की स्थापना वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार-प्रचार के लिए की गई। आरंभ में रॉयल सोसायटी ने समकालीन वाणिज्यिक और निर्माण संबंधी समस्याओं के लिए अच्छे उपकरण और प्रौद्योगिकी के विकास पर अधिक ध्यान दिया। क्योंकि ये उपकरण बढ़ती हुई जनसंख्या और वाणिज्य-व्यापार की प्रगति के लिए जरूरी थे। इसलिए इस संगठन ने उपयोगितावादी और व्यावहारिक वैज्ञानिक खोजों पर प्रत्यक्षत: अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस संगठन की यूरोप के अन्य देशों में शाखा खोली गयी।

फ्रांस के एक व्यापारी कौलबर्ट ने फ्रेंच रॉयल एकेडमी की स्थापना की। बाद में यह संगठन पूरे यूरोप में फैलने लगा और इससे जुड़े अन्य संगठनों के लिए यह आदर्श बन गया। खगोलशास्त्र वैज्ञानिकों का लोकप्रिय विषय था, क्योंकि यह आम लोगों की दैनिक जीवन-शैली को प्रभावित करता था। इसके अतिरिक्त इंजीनियरिंग, नौविज्ञान, चिकित्सा, रसायनशास्त्र, प्रकाश विज्ञान, शरीर विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भी वैज्ञानिक रुचि लेने लगे, जिससे इन विषयों का भी महत्त्व बढ़ने लगा।

बेकन ने '*द न्यू एटलांटिक*' में एक ऐसे शोध संस्थान के निर्माण की बात की, जहाँ आधुनिक विज्ञान से संबंधित सभी उपकरण, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय और छापखाने होने चाहिए। उनके विचार ने वैज्ञानिकों को पेशेवर रुझानों की ओर मोड़ दिया। इस संगठन से जुड़े अन्य विद्वान फ्रांसीसी लेखक बर्नाड ले बोवियर ने अपने लेखों के द्वारा आम जनता के बीच विज्ञान को लोकप्रिय बनाया।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विज्ञान के संस्थानीकरण से विज्ञान के विकास में गति आयी। अब आम लोगों और व्यापारी समुदाय की जरूरतों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। इनकी आवश्यकता के लिए विभिन्न उपकरणों का विकास किया गया, जिससे आर्थिक प्रगति में तेजी आयी। साथ-ही-साथ इस संस्था ने आम जनता के बीच विज्ञान को लोकप्रिय बनाया और विज्ञान के सभी क्षेत्रों में खोज की जाने लगी। इस संगठन ने भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों को एक संयुक्त मंच प्रदान किया।

**प्रश्न 4. क्या वैज्ञानिक क्रांति कुशाग्र वैज्ञानिकों की उपज थी या सामाजिक ताकतों का प्रतिफलन? अपना मत प्रस्तुत कीजिए।**

**उत्तर**–इतिहासकारों में वैज्ञानिक क्रांति के उदय को लेकर विवाद रहा है। कुछ विद्वानों का मानना है कि विज्ञान का विकास कुछ लोगों की व्यक्तिगत प्रतिभा और मेधावी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के कारण ही हो सका है, तो कुछ विद्वानों का मानना है कि मध्य वर्ग के सामाजिक और आर्थिक आवश्यकता में हो रहे परिवर्तन के कारण ही वैज्ञानिक विकास हो सका। किन्तु उस काल में पुनर्जागरण, व्यापारिक क्रांति, नये प्रदेशों की खोज, धार्मिक सुधार आंदोलन आदि के द्वारा एक ऐसे युग का आगमन हुआ, जिसने पुरानी मान्यताओं और विश्वासों के विरुद्ध एक प्रकार की क्रांति उत्पन्न कर दी। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में तर्क, निरीक्षण और परीक्षण पद्धति को बढ़ावा दिया जाने लगा, जिससे नये वैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित हो सके। नयी प्रवृत्तियों का विकास हुआ। परम्परागत तरीकों का स्थान आधुनिकता ने ले लिया। सभी प्राकृतिक तथ्यों की समीक्षा के लिए परिकल्पना और प्रयोग का तरीका अपनाया जाने लगा और चिंतन की शैली अधिक तर्कसंगत और युक्तिमूलक होने लगी। आविष्कारों एवं खोजों के फलस्वरूप इस युग में इतने अधिक परिवर्तन हो गये कि यह घटना वैज्ञानिक क्रांति कहलाती है।

इस काल में जनसंख्या में वृद्धि हो रही थी। वाणिज्य-व्यापार का प्रसार हो रहा था। सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन हो रहे थे। इसलिए सामाजिक और आर्थिक आवश्यकता ने वैज्ञानिकों को भिन्न-भिन्न आविष्कार के लिए प्रेरणास्रोत का काम किया। अत: पुनर्जागरण, धर्म-सुधार, भौगोलिक खोजों एवं व्यापार में वृद्धि के पश्चात् सामाजिक और आर्थिक आवश्यकता बढ़ गयी। अब उसे ऐसे आविष्कार की जरूरत थी, जिससे उपाय अधिक हो, कपड़े अधिक तेजी से बने, तेजी से चलने वाले यातायात का विकास हो, विश्व में जगह-जगह जाने वाले लोगों को हो सकने वाले रोगों से सुरक्षा आदि प्राप्त हो आदि। 16वीं एवं 19वीं शताब्दियों के दौरान वैज्ञानिक क्रांति का विकास इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आगे बढ़ा।

कोपरनिकस ने परम्परागत सामाजिक विचारों से अलग सूर्य को ग्रहमण्डल माना और पृथ्वी का अपनी धुरी पर चक्कर लगाने के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। केपलर ने इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया। गैलिलियो द्वारा दूरबीन के आविष्कार ने तो अंतरिक्ष अध्ययन विज्ञान में एक क्रांति ही ला दी। इससे लोगों को नक्षत्रों की दिशा समझने में आसानी हुई। विलियम हार्वे ने शरीर के रुधिर के संचरण की युक्तिसंगत व्याख्या की। वॉयल ने बताया कि गैसों का आयतन दबाव पर निर्भर करता है। अंग्रेज वैज्ञानिक फ्रांसिस बेकन तथा फ्रांसीसी वैज्ञानिक डेकार्वे ने वैज्ञानिक खोजों को लोकप्रिय बनाने में काफी मदद की। 1662 में रॉयल सोसायटी ऑफ लन्दन एवं 1666 में फ्रेंच रॉयल अकादमी की स्थापना के बाद वैज्ञानिक विकास के क्षेत्र में और भी तेजी आयी। न्यूटन ने गणितीय आधार पर सिद्ध किया कि प्रकृति का एक नियम 'सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण' है, जो आकाशीय पिण्डों की गति और पदार्थों के ऊपर जाने की बजाय नीचे की ओर गिरने की व्याख्या करता है। न्यूटन ने गति के नियम को प्रतिपादित किया।

न्यूटन के आविष्कारों का काफी प्रभाव पड़ा। अब यह स्पष्ट होने लगा कि यह विश्व कोई दैवयोग या आकस्मिक घटना नहीं है जैसा कि बहुत-से लोग सोचते थे। अपितु यह एक ऐसी वस्तु है, जो प्रकृति के सुव्यवस्थित नियमों के क्रमानुसार चल रही है। अरस्तु और टॉलेमी के सिद्धांत पूर्णत: ध्वस्त हो गये। न्यूटन ने यह प्रतिपादित किया कि विश्व का संचालन एक जटिल प्राकृतिक नियम क्रमानुसार होता है। न्यूटन की विश्व प्रणाली में ईश्वर का वही स्थान था, जो एक संवैधानिक राजा का होता है।

प्रयोग और प्रेक्षण की नयी प्रणाली ने न केवल विज्ञान को प्रभावित किया, बल्कि विश्व के बारे में शिक्षित वर्ग के सोचने के दृष्टिकोण पर भी प्रभाव डाला। प्रारंभ में व्यक्ति की आवश्यकता के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों की शुरुआत हुई थी। अब विश्व में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और आर्थिक संस्थाओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के जन्म की शुरुआत हुई। परंपरागत चिंतन शैली का अंत होने लगा और आधुनिक वैज्ञानिक सोच का जन्म हुआ। अत: वैज्ञानिक क्रांति ने मानव की हर आवश्यकता की पूर्ति के लिए नए-नए आविष्कारों का रास्ता प्रशस्त किया।

**प्रश्न 5. जहाजरानी या नौ-परिवहन के क्षेत्र में नयी प्रौद्योगिकी ने किस प्रकार परिवर्तन किये?**

**उत्तर**–वैज्ञानिक विकास के क्रम में नौ-परिवहन के क्षेत्र में अनेक खोजें की गईं। जहाजों के निर्माण में नवीन प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जाने लगा। मानवीय ऊर्जा की जगह वायु ऊर्जा से चलाए जाने वाले जहाजों का निर्माण किया जाने लगा। हवा के रुख के अनुसार जहाजों का निर्माण किया जाने लगा। हवा के रुख के अनुसार जहाजों को चलाने के लिए चौकोर पाल के साथ-साथ

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



त्रिकोणीय लैन्टीन पाल को भी जहाजों में जोड़ा गया। जहाजों में आसानी से दिशा-परिवर्तन के लिए पहिया लगाया गया। खुले समुद्र में रास्ता निर्धारण करने के लिए चुम्बकीय कम्पास का सहयोग लिया गया। साथ-ही-साथ नौकायन चार्ट, नक्शों और नियमावलियों से समुद्री आवागमन आसान हो गया। जहाजों में इस नवीन आविष्कार को सम्मिलित करने से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में दूरगामी प्रभाव पड़े। इन जहाजों ने भौगोलिक खोजों की शुरुआत की, जिसने यूरोप के स्वरूप को ही बदल दिया। दरअसल यूरोपीय सभ्यता शुरू से ही विस्तारवादी रही थी, किन्तु इन जहाजों के कारण उपनिवेशवाद का निर्माण किया जाने लगा। पुनर्जागरण, धर्मसुधार आंदोलन, व्यापार का प्रसार, पूरब की ओर जाने के लिए मार्गों की आवश्यकता आदि के कारण भौगोलिक खोजों की शुरुआत हुई। 1498 ई. में वास्कोडिगामा उत्तर में आशा अन्तरीप का चक्कर लगाता हुआ भारत के बंदरगाह कालीकट पहुंचा। जेनेवा के नाविक कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया।

इन भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्र में एक प्रकार की क्रांति आ गई। पहले यूरोप का व्यापार मुख्य रूप से भूमध्यसागर तक ही सीमित था, लेकिन नए-नए देशों एवं जलमार्गों की खोज के कारण यूरोप का भारत व अमेरिका तथा अफ्रीका से व्यापारिक संबंध स्थापित हुआ। जहां कहीं भी अन्वेषक नाविक गए, वहां उनके पीछे-पीछे उनके राष्ट्र का झण्डा एवं ईसाई पादरी भी पहुंच गए। इस प्रकार साम्राज्य-विस्तार के युग का प्रारंम्भ हुआ। साम्राज्यवाद के विकास के क्रम में यूरोपीय राष्ट्रों के बीच प्रतिस्पर्धा भी चलती रही। अफ्रीका एवं अमेरिका और एशिया एवं आस्ट्रेलिया तथा अन्य द्वीपों में यूरोपीय उपनिवेश एवं बस्तियां बसाई गईं।

सामुद्रिक व्यापार में वृद्धि के कारण यूरोप में बहुमूल्य धातुओं का आयात बड़े पैमाने पर होने लगा। वाणिज्यवादी सिद्धांत के अनुसार सभी यूरोपीय देश अपने देश के लिए सोना-चांदी की मात्रा को बढ़ाने का प्रयास करने लगे। बहुमूल्य धातुओं के आगमन के पश्चात् यूरोप के अधिकतर देश पूंजीवादी राष्ट्र में बदलने लगे। चूंकि यूरोपीय अर्थव्यवस्था चांदी पर निर्भर थी, भारी मात्रा में चांदी के प्रचलन के कारण मुद्रास्फिति पैदा हुई। मध्यम वर्ग जिसके हाथों वाणिज्य-व्यापार और चांदी का संग्रह था, अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। दूसरी तरफ जमीन से जुड़े सामंत वर्ग का महत्त्व घटने लगा। सरकार के प्रशासन और सेना के संचालन के लिए अधिक मुद्रा की आवश्यकता थी। अत: राजाओं ने मध्यवर्ग का पक्ष लेना शुरू कर दिया। दोनों को एक-दूसरे की जरूरत थी, इस प्रकार दोनों के सहयोग के कारण सामंतवाद का पतन होने लगा।

आगे चलकर यूरोप में व्यापारिक क्रांति का आगमन हो गया। इसी काल में आधुनिक पूंजीवादी उपकरण बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ। लॉटरी एवं जीवन बीमा, सट्टा बाजार का प्रचलन शुरू हुआ। जहाजों एवं माल का बीमा किया जाने लगा। बैंकिंग प्रणाली के विकास के साथ वित्तीय लेन-देन की पद्धति में कई सुधार हुए। व्यापार में लेन-देन का काम सिक्कों या कागजी मुद्रा द्वारा नहीं, बल्कि बैंकों की साख द्वारा होने लगा। व्यापारिक क्रांति ने औद्योगिक उत्पादन प्रणाली में भी बुनियादी परिवर्तन ला दिया। बड़ी-बड़ी औद्योगिक मिलों की स्थापना की गई एवं इनसे निर्मित वस्तुओं को उपनिवेशों में बेचा गया। इस प्रकार उपनिवेशों को कच्चे माल का आपूर्तिकर्त्ता और तैयार माल के बाजार के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

वाणिज्य-व्यापार की प्रगति का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला था कि मध्यम वर्ग की संख्या एवं शक्ति में वृद्धि हुई। 17वीं सदी में अन्त होते-होते मध्यम वर्ग यूरोप के लगभग हर देश में एक प्रभावशाली एवं शक्तिशाली समुदाय बन गया था। यूरोपीय रहन-सहन, सभ्यता एवं संस्कृति का दूसरे महादेशों में भी प्रचार-प्रसार किया जाने लगा। व्यापारी पादरी उपनिवेशों में जाकर बसने लगे। इनके क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप उत्तर एवं दक्षिणी अमेरिका तेजी से यूरोपीय सांचे में ढलने लगा। इसका एक अन्य प्रभाव भी पड़ा। अलग प्रकार की संस्कृति के सम्पर्क में आने से यूरोपीय लोगों का मानसिक क्षितिज भी काफी विस्तृत हुआ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जहाजों में नवीन प्रौद्योगिकी के आगमन के बाद व्यापार-वाणिज्य का तीव्र विकास हुआ। आगे भौगोलिक खोजों की शुरुआत हुई, जिसके कारण दुनिया का यूरोपीयकरण हुआ और पूंजीवाद, मध्यम वर्ग एवं निरंकुश राज्यतंत्र का विकास हुआ, जिसने सामंतवाद को ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाजों ने यूरोप को आधुनिक युग की दहलीज पर लाकर खड़ा कर दिया।

**प्रश्न 6. छापखाने ने समाज को किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर**–वैज्ञानिक आविष्कारों की दिशा में छपाई मशीन का आविष्कार एक उल्लेखनीय कदम था। 15वीं शताब्दी के मध्य में जर्मनी में ग्यूटेनबर्ग नामक व्यक्ति ने एक ऐसी टाइप मशीन का आविष्कार किया, जिसने छपाई के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। अब पुस्तकें सस्ती और सुलभ हो गईं, ज्ञान पर से विशिष्ट लोगों का एकाधिकार समाप्त हो गया। अब सामान्य लोग भी जरूरत पड़ने पर यह पढ़ सकते थे कि सही तथ्य क्या है। पुस्तकों के प्रसार ने लोगों में आत्मविश्वास भरा और क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हुआ। अंधविश्वास और रूढ़ियां कमजोर पड़ने लगीं। छापेखाने ने पुनर्जागरण और धर्मसुधार आंदोलन को आगे बढ़ाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

शिक्षा और साहित्य पर पुनर्जारण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। पहले शिक्षा की पद्धति पर चर्च का प्रभाव था। अब शिक्षा को इस वातावरण से मुक्ति मिली। छापेखाने के कारण लैटिन भाषा में जनसाधारण की भाषा की पुस्तकें अधिक छपने लगीं। इससे लैटिन भाषा लोकप्रिय हुई। यूनानी और रोमन की बहुमूल्य पुस्तकों को नया जीवन मिला। इसे जन-सुलभ बनाया गया। इससे आधुनिकता के विकास में सहायता मिली। सभी प्राचीन तथा नवीन विश्वविद्यालयों में यूनानी और लैटिन भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन शुरू हुआ।

लोकभाषा के विकास में पुनर्जागरण से भी सहायता मिली। यूनानी और रोमन साहित्य के अध्ययन से यूरोपीय बुद्धिजीवियों का सम्पर्क समृद्ध भाषाओं से हुआ। इससे प्रेरणा ग्रहण करके नवीन साहित्य रचना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और स्पेन की जन-भाषाओं पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ ही समय में ये भाषाएँ विश्व की समृद्ध भाषाएँ बनकर उभरीं। अब जनसाधारण की भाषा में पुस्तकें छपने लगीं। इसने प्रान्तीयता की भावना समाप्त करने में बड़ा सहयोग दिया। मध्य युग में पोप की सत्ता सर्वोच्च और उसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय था, किन्तु अब उसके विरुद्ध भी आवाज उठने लगी। इस वातावरण में सार्वभौम राष्ट्रवाद का उदय होने लगा।

पुनर्जागरण के कारण चर्च और पोप के खिलाफ विद्रोह की भावना और बलवती हो उठी। इरेस्मस और अन्य मानवतावदियों ने चर्च और उसके अंधविश्वास का मजाक उड़ाया। लोगों के मस्तिष्क में चर्च के महत्त्व को कम किया। चर्च नवीन विचारधारा का विरोधी था। वह नहीं चाहता था कि पुराने विश्वासों और रूढ़ियों को खत्म करके नये सिद्धांतों और आदर्शों की स्थापना की जाए। चर्च नवीन बौद्धिक प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा था। मुद्रण कला के विकास के कारण धार्मिक मूल ग्रंथों की सस्ती प्रतियां लोगों को उपलब्ध होने लगीं। इन पुस्तकों को पढ़कर एवं विचारकों के विचार जानकर उन्हें पता चला कि ईसाई धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है। जनसामान्य की बौद्धिक चेतना का विकास करके लूथर ने धर्म-सुधार आंदोलन की शुरुआत की।

उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि छापखाने के विकास के बगैर पुनर्जागरण और धर्म-सुधार आंदोलन को आगे बढ़ाना असंभव था। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। लेखन कला के आविष्कार को इतिहास का सबसे बड़ा आविष्कार माना जाता है। जैसे लोहे के आविष्कार से दस्तकारी के साधन सस्ते हो गये और जनसाधारण की पहुँच में आ गए, उसी तरह छापेखाने के आविष्कार से विकास के साधन सस्ते और सुगम हो गए और जनसाधारण के हाथ में आने लगे। अब तक पुस्तकों पर थोड़े-से सम्पन्न लोगों का एकाधिकार था। अब जनसाधारण के पढ़ने और समझने योग्य पुस्तकें बोलचाल की भाषा में लिखी जाने लगीं। सामान्य लोग भी अपने हक के लिए जागरूक होने लगे। जागरूकता ने उन्हें आधुनिक युग में प्रवेश कराया।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. विज्ञान के क्षेत्र में हुए आधुनिक विकासों का विश्लेषण करें।**

**उत्तर**–पुनर्जागरण के साथ ही आधुनिक विज्ञान का प्रारंभ माना जाता है। मध्ययुगीन यूरोप के बौद्धिक जीवन पर चर्च का अधिकार था। किसी भी विचार को तब तक सत्य नहीं माना नहीं जाता था, जब तक चर्च द्वारा स्वीकृत प्राचीन दार्शनिकों के विचारों से समर्थित न हो। पुनर्जागरण काल के विचारकों ने ऐसे अंधविश्वासों पर विश्वास करने से इंकार कर दिया। बेकन ने कहा कि अवलोकन और परीक्षण के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। बेकन ने ज्ञान के तीन आधार-अनुभव, तर्क एवं प्रमाण बताए और इन तीनों में उसने प्रमाण को सबसे प्रमुख माना। यह नवीन दर्शन पूर्व के रूढ़िवादी दर्शन से अलग था, जिसने सभी चीजों को तर्कपूर्ण एवं संदेहपूर्ण दृष्टि से देखने की दृष्टिकोण दिया।

आरंभिक वैज्ञानिक खोज खगोलविज्ञान के क्षेत्र में हुई। कोपरनिकस ने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है और सूर्य की परिक्रमा करती है। यह पुराने परंपरागत विचार से बिल्कुल भिन्न था। प्राचीन काल से यह मान्यता चली आ रही थी कि पृथ्वी विश्व के केन्द्र में स्थित है। इसलिए इस विचार को धर्म-विरोधी करार दिया गया। कोपरनिकस के सिद्धांत की पुष्टि बाद में गेलिलियो ने की। गैलिलियो का जन्म कोपरनिकस की मृत्यु के ग्यारह साल बाद हुआ था। गैलिलियो ने अपनी दूरबीन से कोपरनिकस के सिद्धांत की पुष्टि की। बुढ़ापे में गैलिलियो पर मुकदमा चलाया गया। उसे धर्मविरोधी घोषित किया गया और उसे अपने विचार वापस लेने के लिए विवश किया गया।

जर्मनी के वैज्ञानिक केपलर ने गणित की सहायता से स्पष्ट किया कि ग्रह किस प्रकार सूर्य की परिक्रमा करते हैं। उसने ग्रहों की गतियों और कक्षाओं के बारे में नियम प्रस्तुत किया। न्यूटन ने केपलर के कार्य को आगे बढ़ाया। गणित की ही सहायता से न्यूटन ने सिद्ध किया कि सभी खगोलीय पिंड गुरुत्वाकर्षण के अन्तर्गत यात्रा करते हैं। साथ ही न्यूटन ने गति के तीन सिद्धांत भी प्रतिपादित किये। इन वैज्ञानिकों के साथ विज्ञान के जिस आधुनिक युग का आरंभ हुआ, उसने न केवल मानव के ज्ञान में वृद्धि की, बल्कि अन्वेषण की एक ऐसी विधि भी प्रस्तुत की, जिसका दूसरे विषयों के अध्ययन में उपयोग किया जा सकता था।

www.neerajbooks.com



मानव शरीर और रक्त संचार के विषय में कई महत्त्वपूर्ण आविष्कार किए गए और इन आविष्कारों ने अंधविश्वासों को दूर भगाने में मदद की। 1543 ई. में बेल्जियमवासी वैज्ञानिक वेसेलिए ने अपना सचित्र ग्रंथ 'द ह्यूमनी कार्पोरिस फॉब्रिका' प्रकाशित किया। यह ग्रंथ मानव शरीर के उसके विच्छेदन-कार्यों पर आधारित था। इस ग्रंथ में पहली बार मानव शरीर की रचना क्रिया के बारे पूर्ण जानकारी प्रस्तुत की गई थी। ट्रिनिटी में चर्च के विश्वास को चुनौती देने के अपराध में उसे मौत की सजा दी गई। इंग्लैंडवासी वैज्ञानिक हार्वे ने रक्त-परिसंचरण की सतत क्रिया अर्थात् रक्त का हृदय से शरीर के सभी अंगों में पहुंचना और फिर हृदय में वापस लौटने का विवरण प्रस्तुत किया। इस ज्ञान से अतीत की अनेक गलतियों को सही करना संभव हुआ। स्वास्थ्य तथा रोगों की समस्याओं के अध्ययन का एक नया रास्ता खुला।

नये आविष्कारों से जो नया ज्ञान प्राप्त हुआ, उसका तत्काल व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हुआ। हालांकि मुद्रण की व्यवस्था ने नए प्रचारों को फैलाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। किन्तु आविष्कारों के प्रचार में और आम जीवन में शामिल करने में लंबा समय लगा। जैसाकि हम जानते हैं कि अरबों के द्वारा भारतीय अंक यूरोप में 13वीं सदी में पहुंचा। शून्य सहित दस गणनाओं के लिए बहुत ही सुविधाजनक थे, फिर भी रोमन अंकों का प्रचलन जारी रहा। मानवीय अंक पद्धति ने यूरोप के गणित के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उपर्युक्त चर्चा से पता चलता है कि पुनर्जागरण का सर्वाधिक प्रभाव विज्ञान पर पड़ा। मध्ययुग में चर्च के प्रति आस्था में कमी से लोग संकीर्ण विचारों को त्यागकर आधुनिक विचारों के संपर्क में आए, जिससे विज्ञान का विकास हुआ। केपलर, कोपरनिकस, न्यूटन, हार्वे आदि ने विज्ञान की विभिन्न विधाओं में एक नया आयाम प्रदान किया। उस काल में वैज्ञानिकों ने न सिर्फ नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, बल्कि पूर्व ज्ञान को अपने में समेटकर नवीन कल्पनाओं का सृजन किया।

■■

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# धार्मिक संस्थाएँ

29

## परिचय

इस अध्याय में धार्मिक संस्थाओं की चर्चा की गई है। इस अध्याय में यूरोप के चर्च ही मुख्य रूप से विषयवस्तु हैं। मध्यकाल में चर्च के समकक्ष कोई भी व्यक्ति नहीं था। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में चर्च में बहुत-से परिवर्तन आए, जिन्होंने मध्यकालीन विश्व के संक्रमण की प्रक्रिया को बहुत ही प्रभावित किया। चर्च में सुधार की माँग के कारण ही प्रोटेस्टेंटवाद का जन्म हुआ। मार्टिन लूथर ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया। प्रोटेस्टेंट विचारों के उदय के साथ ही यूरोपीय कैथोलिक चर्च का विभाजन हो गया। कैथोलिकों ने भी प्रोटेस्टेंट आन्दोलन के उफान को कम करने के लिए अपने अंदर अनेक सुधार किए। इससे कैथोलिक धर्म में प्रति सुधार आंदोलन की शुरुआत हुई। इस तरह चर्च के धार्मिक सुधारों के परिणामस्वरूप सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी परिवर्तनों का शुभारंभ हुआ। प्रोटेस्टेंट सुधारकों और राष्ट्र-राज्यों के बीच निकट सम्बन्ध था, इसके कारण राष्ट्रीय चर्च का विकास हुआ। चर्च की संपत्ति पर कब्जा कर लिया गया और राज्य को चर्च की दखलअंदाजी से मुक्त किया गया।

प्रारंभ में चर्च शब्द ईसा मसीह के सभी अनुयायियों के सभा स्थल के लिए प्रयोग किया जाता था। चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म के पूरे अधिकारियों के लिए चर्च शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। आगे चलकर रोम के बिशप को पोप कहा जाने लगा और वह ईसाई धर्म की एकता का स्रोत बन गया। इस तरह चर्च का संस्थागत आधार मजबूत हुआ। सम्राटों को सामाजिक सौहार्द और कानून-व्यवस्था स्थापित करने के लिए चर्च के धार्मिक संगठनों से समर्थन लेना पड़ता था। चर्च की अपनी अदालत होती थी और इसके अपने कानून थे। धर्म सम्बन्धी मामलों में इन्हीं के कानून से निर्णय दिया जाता था। धीरे-धीरे चर्च इतना शक्तिशाली हो गया कि उन्होंने साम्राट् के निर्णय को भी मानने से इंकार कर दिया। बिशप एम्ब्रोज ने इस बात पर जोर दिया कि चर्च राज्य के नियंत्रण से बाहर है।

मध्यकाल में लगातार होने वाले धार्मिक सुधार में मिशनरी की गतिविधियाँ बढ़ीं और मठों का विकास हुआ। इसके कारण चर्च की शक्ति और भी बढ़ गयी।

मध्यकाल में शासकीय वर्ग द्वारा ईसाई मत और चर्च का उपयोग सामाजिक सौहार्द स्थापित करने के लिए किया जाता था, लेकिन चर्च के पास अत्यधिक शक्ति आ जाने से चर्च ने इसका दुरुपयोग करना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे चर्च के अन्दर अनेक बुराइयाँ आ गयीं। इसलिए अनेक विद्वानों ने चर्च में सुधार की माँग की। पुनर्जागरण ने अनेक शिक्षित धर्मशस्त्रियों को तैयार किया। इन्होंने स्थानीय पादरी वर्ग के अन्तर्गत अंधविश्वासों और जरूरत से ज्यादा अनुष्ठानों की आलोचना की। सोलहवीं शताब्दी में हर जगह धर्माधिकारियों की अनैतिकता, अज्ञान, एक साथ कई पदों का उपयोग आदि की आलोचना की जाने लगी। चूँकि पादरी बनने के लिए ब्रह्मचर्य में रहना एक अनिवार्य शर्त थी, किन्तु पादरी लोग यौन सम्बन्धों के अलावा कई तरह के अनैतिक कामों से लिप्त रहते थे। यहाँ तक कि कई बड़े पादरियों के पास बेनेफिसि अर्थात् राजस्व भूमि होती थी। वह स्थानीय पुजारियों के माध्यम से राजस्व वसूल करवाते थे। इन सभी बुराइयों ने कैथोलिकों की धार्मिक एकता को कमजोर कर दिया। प्रोटेस्टेंट आंदोलन के उदय में मार्टिन लूथर की भूमिका और इसके प्रभाव की चर्चा की जा रही है।

लूथर स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद 1505 ई. एरफर्ट के अगस्तिनियन मठ का पादरी बना और फिर उसने धर्मशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की। लूथर ने ही प्रोटेस्टेंट आंदोलन की शुरुआत की जिससे प्रोटेस्टेंट धर्म का आगमन हुआ। 1477 ई. में पोप ने माफीनामा बेचने की आज्ञा की थी। यह माफीनामा खरीदने के बाद किसी पाप या दोषयुक्त व्यक्ति को पाप से मुक्ति मिल जाती थी। यह माफीनामा ही प्रोटेंस्टेट आंदोलन का तात्कालिक कारण बना। जर्मनी में माफीनामा बेचने की आज्ञा पोप लियो X ने दी थी। चूँकि पोप लियो X चर्च में विशाल कक्ष का निर्माण करना चाहते थे, इसके लिए इनके पास पर्याप्त धन नहीं था, इसलिए इन्होंने फुग्गर ऑग्सबर्ग नामक एक धनी बैंकर से धन उधार लिया

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

और ऑग्सबर्ग को इस धन के बदले जर्मनी में माफीनामा बेचने की अनुमति दे दी। विटेनबर्ग में मार्टिन लूथर धर्मशास्त्र का प्रोफेसर था। यह सैक्सनी के फ्रेड्रिक के राजनीतिक नियंत्रण में आता था। फ्रेड्रिक ने अपने राज्य क्षेत्र में माफीनामा बेचने की अनुमति नहीं दी, इसलिए सैक्सनी के कई लोग दूसरे राज्यों में जाकर माफीनामा खरीदने लगे। इस परिस्थिति में मार्टिन लूथर ने अखिल संत दिवस पर 31 अक्टूबर, 1517 ई. में विटेनबर्ग के महल के चर्च के दरवाजे पर अपने पंचानवें अभिधारणाओं की सूची लगा दी। इस सूची में अनेक मुद्दे उठाये गए थे, जैसे–माफीनामा क्या है और लूथर ने इसका विरोध क्यों किया? कैथोलिक धर्मशास्त्र के अनुसार ईसाई धर्म में पाप करने वाला ईश्वर की कृपा से वंचित हो जाता है। ईश्वर की कृपा पुन: प्राप्त करने के लिए पापी को पादरी के समक्ष अपना पाप कबूल करना पड़ता है और पादरी द्वारा दी गई पश्चाताप की तपस्या करनी होती है। ऐसा विश्वास किया जाता था कि ईसा मसीह और अन्य संत इस तपस्या के बाद पापी व्यक्ति को क्षमा कर देते हैं। माफीनामा की बिक्री से मध्ययुग में सर्वसाधारण की यह धारणा बन गई कि माफीनामा से पृथ्वी के जीवन और मृत्यु के बाद के जीवन दोनों के लिए माफी मिल जाएगी। इस प्रकार यह माफीनामा धार्मिक बीमा बन गया, जो व्यक्ति को नरक से भी बचाता है।

लूथर ने अपने पंचानवे अभिधारणाओं में पोप के माफीनामा देने के अधिकार को चुनौती दी। लूथर ने कहा कि केवल ईसा और उनके शिष्यों के सिद्धांत और बाइबिल में उल्लिखित सिद्धांत ईसाई धर्म के आध्यात्मिक आधार हैं। सिर्फ ईश्वर की कृपा से ही मुक्ति मिल सकती है। लूथर ने इस बात को सिद्ध किया कि धर्मशास्त्रों में माफीनामा का कोई उल्लेख नहीं है। इस तरह लूथर ने धर्म की सर्वोच्च सत्ता पोप पर ही प्रश्न उठा दिया, इसलिए पोप और कैथोलिक पादरियों ने लूथर पर आक्रमण किया और 1513 ई. में धर्म से बहिष्कृत कर दिया।

लूथर ने चर्चो में सुधार के लिए 1520 ई. और 1530 ई. के बीच के काल में एक आधारभूत धर्मशास्त्रीय सिद्धांत बनाया। कैथोलिक चर्च के निर्णय के विरोध में 1529 ई. में स्पेयर की एक सभा में जर्मनी के राजकुमारों के एक समूह ने प्रोटेस्ट अर्थात् विरोध दर्ज कराया। यही से प्रोटेस्टेंस्ट शब्द का उद्भव हुआ। प्रारम्भ में लूथर के चर्चो को प्रोस्टेस्टेंट कहा गया, किन्तु बाद में यूरोप में ईसाइयों के गैर-कैथोलिक चर्चों को इस नाम से पुकारा जाने लगा। लूथर ने घोषणा की कि किसी प्रकार के व्यवसायों या कार्यों का बराबर महत्त्व है, चाहे वे धर्म से जुड़े हों या न हों। यह प्रत्येक के लिए व्यक्तिगत निष्ठा की बात है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार ईश्वर की सेवा करनी चाहिए। कैथोलिक चर्च के संस्कारों को सीमित करके तीन संस्कारों तक कर दिया। ये हैं–बपतिस्मा, शादी और सहभागिता।

दरअसल लूथर की पृष्ठभूमि और रुचि मूलत: धार्मिक थी, किन्तु उनके विचारों से लोग अलग-अलग कारणों से प्रभावित हुए। लूथर के विचारों ने शिक्षित मध्यम वर्ग और व्यवसायियों के साथ-साथ स्टूटगार्ट, जेना और विटेनबर्ग जैसे शहरों के शिक्षक उपदेशकों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। कारखानों का विकास होने के पश्चात् कोई भी चीज जल्दी छपने लगी। इससे उसके विचारों का तेजी से फैलाव अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा। लूथर की भाषा-कौशल और अभिव्यक्ति शैली सशक्त और साधारण थी, जिसे आम जनता भी समझ सकती थी। मुख्यत: लूथर आस्था पर आधारित एक साधारण और व्यक्तिगत धर्म की बात करता था और उसने व्यक्तिगत उपासना पद्धति और धर्मग्रंथों को केन्द्र में ही रखा। उसने लम्बे-चौड़े अनुष्ठानों और संस्कारों तथा धार्मिक पदानुक्रम को खत्म कर दिया। इससे ईसाई धर्म के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी।

प्रोटेस्टेंटवाद यूरोप में चल रहे राजनीति संघर्ष का एक हथियार बनकर उभरा। यद्यपि सम्राटों और पोप के बीच मतभेद पहले से ही चला रहा था। राजा के नीचे अर्द्ध सम्प्रभु सामंती अधिपति कभी राजा का समर्थन करते, तो कभी पोप का, क्योंकि वे अधिक-से-अधिक आजादी चाहते थे। इसलिए आजादी प्राप्त करने के लिए इनमें से बहुतों ने प्रोटेस्टेंटवाद को स्वीकार कर लिया। ये लोग धर्मनिरपेक्ष सरकार और राज्य की सर्वोच्चता की मांग करने लगे। क्योंकि प्रोटेस्टेंट विचार इस प्रकार के राजनीतिक विचारों के अनुकूल था। 1521 ई. डायट आफ वर्क्स में चार्ल्स V ने लूथर के सिद्धांतों को खारिज कर दिया और साम्राज्य में उस पर पाबंदी लगा दी गई। चार्ल्स ने लूथर के समर्थक राज्यों को कुचलने का प्रयास किया, किन्तु वह असफल रहा।

1555 ई. में ऑग्सबर्ग की शांति संधि हुई। इसके तहत सभी राजाओं को अपने क्षेत्र में धर्म निर्धारित करने का छूट प्राप्त हुई। इस तरह अधिकतर उत्तरी मध्य जर्मनी के राज्यों ने प्रोटेस्टेंट धर्म को अपनाया, जबकि दक्षिण राज्य रोमन कैथोलिक ही बने रहे। जर्मनी में प्रोटेस्टेंटवाद की लोकप्रियता के कारण अनेक मठों के कई भिक्षुओं को बाहर निकाल दिया गया। प्रारम्भ से ही लूथर ब्रह्मचर्य की आलोचना करता आ रहा था, इसलिए उसने व्यावहारिक जीवन भी अपनाया। साथ ही पादरी और मठवासियों को भी विवाह करने की छूट मिल गई।

लूथर के विचारों ने अप्रत्यक्ष रूप से जर्मनी के ग्रामीण इलाकों को भी प्रभावित किया, जिसके कारण किसान क्रांति प्रारम्भ हो गयी। दरअसल किसान वर्ग लूथर के विचारों से इसलिए आकर्षित हुए कि उन्हें आर्थिक संघर्ष में धार्मिक समर्थन प्राप्त हो जाएगा। 1523 ई. और 1524 ई. में फसल खराब हो जाने से ग्रामीणों की स्थिति बहुत ही खराब हो गई थी। किसान कृषि दास

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



व्यवस्था और अल्प सामंती प्रतिबंध को खत्म करने की माँग करने लगे। इन्होंने कुलीनों द्वारा सार्वजनिक जमीनों के अवैध कब्जों का भी विरोध किया। किसानों ने घोषणा की कि उनकी मांगें धर्मशास्त्र के अनुकूल हैं तथा विद्रोही किसानों ने ईश्वर के संदेश और ईश्वर की न्यायप्रियता का आह्वान किया, लेकिन किसानों का विद्रोह बहुत ही बिखरा हुआ और असंगठित था। वे कभी-कभी महलों और मठों पर आक्रमण करते थे। लूथर ने इस आंदोलन के विरोध में चेतावनी देते हुए कहा था कि कानूनी तौर पर स्थापित संस्थानों के विरोध में सशस्त्र संघर्ष गैर-कानूनी है। लेकिन अपने विद्रोह को वैध करार देने के लिए कृषकों ने धार्मिक विचाराधारा का सहारा लिया, परन्तु लूथर ने किसान विद्रोह से अपने को अलग कर लिया। अब प्रोटेस्टेंटवाद के विकास पर चर्चा की जा रही है।

छापेखाने के आविष्कार के बाद लूथर के विचार तेजी से फैले, लेकिन भिन्न-भिन्न समुदायों के लोग प्रोटेस्टेंटवाद से जुड़ने लगे। प्रोटेस्टेंटवाद में भिन्न मतों का विकास हुआ। यूरोप के चर्च में सुधार करने वाले विचारक दो धाराओं में विभक्त हो गये। एक मत का मानना था कि चर्च में आमूल-चूल सुधार होना चाहिए और दूसरे स्विट्जरलैण्ड के हल्ड्रिख ज्वींगली, स्ट्रैसबर्ग में मार्टिन बुसर और फ्रांस के जॉन कैलविन आदि का मत मध्यममार्गी था। मध्यम मार्गियों ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए धर्मनिरपेक्ष राज्य के अधिकारी की मदद ली। इन्हें मैजिस्टीरियल सुधारक कहा जाता था, क्योंकि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मजिस्ट्रेट की शरण में जाते थे। यद्यपि प्रारम्भ में सुधार मुख्यत: धार्मिक क्षेत्र तक सीमित था, किन्तु बाद में वे राज्य की धर्मनिरपेक्ष जरूरतों की ओर भी ध्यान देने लगे।

प्रोटेस्टेंट धर्म की स्थापना में लूथर के बाद कैल्विन का ही स्थान आता है। जॉन कैल्विन का जन्म 1509 ई. में फ्रांस में हुआ था। कैल्विन को 1541 ई. में जेनेवा शहर में सुधार के लिए बुलाया गया। इसने नगर मैजिस्ट्रेट और सुधार मन्त्रियों की मदद से चर्च और ईसाई समुदाय में सुधार करना प्रारम्भ कर दिया। कैल्विन भाग्यवाद में विश्वास करता था। यह मनुष्य के भाग्य के पूर्व-निर्धारण में ईश्वर की शक्ति में विश्वास रखता था। इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर पहले यह निर्धारित कर देता है कि किस व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त होगी और किस व्यक्ति को नहीं। मनुष्य स्वयं के प्रयत्न से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। साथ में उन्होंने इसके साथ यह बात भी जोड़ दी कि प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन सही तरीके से बिताना चाहिए और उसे यह आशा करनी चाहिए कि मुक्ति उसकी नियति में लिखी है।

कैल्विन को धर्मग्रंथों में महारत हासिल थी। उसके उपदेशों में लोगों को आकर्षित करने की अद्भुत शक्ति थी। इस प्रकार प्रोटेस्टेंटवाद में कैल्विनवाद एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा, क्योंकि कैल्विनवादियों ने नैतिकता को केन्द्र में रखकर अपने सभी मापदण्डों का निर्धारण किया। इसने प्रोटेस्टेंटवाद को एक सुनियोजित धर्मशास्त्र और व्यक्तिगत प्रशासनिक तंत्र में बदल दिया। कैल्विनवाद धर्मनिरपेक्ष राजतंत्र को पवित्र मानते थे और उसे ईश्वर की इच्छा बतलाते थे। कैल्विनवादियों ने सामाजिक स्तर पर उच्च नैतिक मापदण्डों को प्रोत्साहन दिया।

इंग्लैण्ड में धर्म-सुधार आन्दोलन के कई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारण थे। चौदहवीं शताब्दी में लोलार्डियों ने चर्च में सुधार की माँग की, किन्तु इन्हें दबा दिया गया। पुन: मानवतावादियों ने भी सुधार की मांग की। वस्तुत: इंग्लैण्ड में सुधार राज्य द्वारा प्रेरित था। चूँकि हैनरी VIII अपनी पत्नी आरगॉन की कैथरीन से तलाक लेना चाहता था क्योंकि उसे एन्ने बोलीन से विवाह करना था लेकिन पोप ने तलाक की अनुमति नहीं दी। अत: हैनरी VIII ने स्वयं को इंग्लिश चर्च का प्रमुख घोषित कर दिया और मठों की संपत्ति जब्त कर ली गई। अब चर्च की सारी गतिविधियां लैटिन भाषा के स्थान पर अंग्रेजी भाषा में की जाने लगी। किन्तु इंग्लैण्ड में धर्म-सुधार खण्डित हुआ था, क्योंकि यहाँ की बहुसंख्य जनता कैथोलिक मत से ही जुड़ी रही। इस धर्म-सुधार आंदोलन से सम्राट् और संसद की स्थिति मजबूत हुई तथा चर्च की सम्पत्ति की बिक्री से उच्चवर्गीय भूमिपति की भी स्थिति मजबूत हुई। पहले राज्य की सत्ता में पादरियों का एकाधिकार था। विश्वविद्यालय में प्रशिक्षित प्रशासकों की नियुक्ति की जाने लगी।

एनाबैप्टिस्ट प्रगतिशील सुधारक थे। इनका मानना था कि व्यक्ति को वयस्क होने के बाद ही ईसाई समुदाय में प्रवेश करना चाहिए। क्योंकि वयस्क होने पर व्यक्ति में धर्म को चुनने की योग्यता आ जाती है और शिष्यों का बपतिस्मा करने का उल्लेख मिलता है। इन्होंने धार्मिक पदानुक्रम का विरोध किया और अब एक ऐसा स्वयंसेवी संगठन बनाने का प्रयास किया, जिसमें सभी भक्तों को आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो। वे चर्च और राज्य को अलग करना चाहते थे, इन्होंने धार्मिक सहिष्णुता और स्वतंत्रता का प्रचार-प्रसार किया।

रोमन कैथोलिक चर्च में ईसाई जगत के आधे हिस्से को खो चुका था और बाकी आपने हिस्से को खोने का खतरा महसूस कर रहे थे। इस खतरे ने रोमन कैथोलिक चर्च के अन्दर सुधार आन्दोलन की शुरुआत करवाई। इसी रोमन कैथोलिकवाद की पुनर्स्थापना को प्रतिसुधार आन्दोलन कहा जाता है। इस आन्दोलन में विधर्मियों और कैथोलिक से अलग हुए व्यक्तियों को उसी चर्च में लाने का प्रयास किया। चर्च के मानवतावादी स्वरूप को सामने लाया गया एवं मध्ययुगीन रूढ़िवादी और प्रशासनिक संस्थाओं में सुधार किया गया। पोप पॉल III ने एक परिषद बुलायी, जिसकी बैठकें ट्रेन्ट में हुईं। इस परिषद ने पादरियों के नैतिक अनुशासन पर

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जोर दिया और माफीनामे की बिक्री पर रोक लगा दी गई। इस परिषद ने जनसाधारण को उपदेश और निर्देश देने के लिए शिक्षित पादरी की नियुक्ति को आवश्यक बना दिया। पादरी और जनसाधारण के नैतिक और शैक्षिक स्तर उठाने के लिए नई धर्म व्याख्या की स्थापना की गई। एन्जेला मेरिसी द्वारा स्थापित ननों की उरसुल्यिन संस्था में महिलाओं को शिक्षा प्रदान करने का कार्य किया। इस प्रकार उरसुल्यिन संस्था भावी पत्नियों को शिक्षित करके पूरे समाज को फिर से ईसाई धर्म में लाने का प्रयास कर रही थी। इगनेशिनियस लोयोला द्वारा स्थापित द सोसायटी ऑफ जीसस ने प्रोटेस्टेंटवाद के प्रसार को रोकने का कार्य किया। इसने एशिया और लैटिन अमेरिका के लोगों को ईसाई धर्म में लाने का प्रयास किया।

प्रोटेस्टेंटवाद के विषय में यह माना जाता है कि इसने पूँजीवाद के विकास में सहयोग दिया। मध्यकालीन समाज में सूदखोरी पर धार्मिक प्रतिबंध लगा हुआ था। लेकिन प्रोटेस्टेंटवाद ने नियम बनाया कि ऋण के जरिये धन कमाया जा सकता है। इसलिए पूँजीपतियों के उदय में कैल्विनवाद और प्रोटेस्टेंटवाद की भूमिका माना जाता है। जर्मनी के समाजशास्त्री मैक्स वेबर का मानना है कि प्रोटेस्टेंटवाद ने खास तरह की सोच और नैतिक बोध विकसित की जिसने पूँजीवाद के विकास में सहयोग किया। सुधार आन्दोलन के समय और पूँजीवादी रुझान से जुड़े नैतिक बौध का विकास हुआ और मुनाफा कमाने की मानसिकता का उदय हुआ।

इस तरह ऊपर के विश्लेषण से पता चलता है कि प्रोटेस्टेंटवाद एक धार्मिक प्रक्रिया थी, जिसने चर्च की बुराइयों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। मार्टिन लूथर ने इस आन्दोलन की शुरुआत की जिनका मानना था कि मनुष्य ईसा मसीह के प्रति व्यक्तिगत श्रद्धा के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य व पादरी के मध्यस्थ के बगैर ही ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। लूथर के बाद कैल्विन जैसे सुधारकों ने प्रोटेस्टेंटवाद को आगे बढ़ाया। प्रोटेस्टेंटवाद से खतरा महसूस करके कैथोलिकों ने अपने अन्दर प्रतिसुधार आन्दोलन की शुरुआत की। इस सुधार आन्दोलन ने यूरोप के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वरूप को ही बदल दिया। सभी क्षेत्रों में उदारवादी, उग्रवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ। इस प्रकार, यूरोप आधुनिक विश्व की ओर बढ़ने लगा।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत और सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चर्च से जुड़ी उन बुराइयों की चर्चा कीजिए जिसके विरोध में प्रोटेस्टेंटवाद का जन्म हुआ।**

**उत्तर**–मध्यकाल के अंतिम दिनों में रोमन केथोलिक चर्च के अन्दर ही मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध अंसतोष बढ़ रहा था। चर्च ईसा के शिष्यों एवं प्रारभिक धर्मगुरुओं के उपदेश, उनकी भावना से दूर हट चुका था। इसलिए चर्च को ईसाई धर्म के ईश्वर के नियुक्त अभिभावक के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने चर्च को इस ढंग से परिभाषित करना आरंभ किया कि चर्च का अर्थ कोई विशिष्ट संस्था नहीं, बल्कि ईसा मसीह में आस्था रखने वाले समग्र लोग हैं। प्रोटेस्टेंटवाद के जन्म का प्रमुख कारण चर्च के अन्तर्गत व्याप्त बुराइयाँ जो पन्द्रहवी और सोलहवीं शताब्दी में पैदा हो गयी थी।

पादरियों की अज्ञानता और विलासिता चर्च के पदों एवं सेवाओं की बिक्री, संबंधियों के बीच लाभकारी चर्च पदों का बँटवारा, एक पादरी द्वारा एक से अधिक पद रखना–सभी बढ़ते असंतोष और शिकायत के कारण थे। कई पोप नैतिक रूप से भी भ्रष्ट थे जैसे छठा पोप अलेक्जेंडर (1462-1503), दसवाँ पोप लियो (1517-1521)। बुरे या भले, सब तरह के उपायों से पादरी धन इकट्ठा करने में लगे रहते थे। पादरी क्षमा प्रदान द्वारा लोगों के पाप का प्रायश्चित करने लगे। पैसा देकर सभा पत्र (इनहलजेन्स) प्राप्त करना सुगम हो गया। पापी से पापी व्यक्ति भी चर्च को पैसा देकर अपने पापों से मुक्ति प्राप्त कर सकता था। चूँकि धर्मात्मा और श्रद्धालु लोगों को ये बातें बुरी लगती थीं। वे यह नहीं समझ पाते थे कि जो पाप करते हैं उन्हें ईश्वर पैसा लेकर कैसे माफ कर सकता है।

उस समय कई पश्चिमी यूरोप के देश में राष्ट्रीय राज्य का निर्माण हो चुका था। राजाओं को सेना और एवं प्रशासन का खर्च चलाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। किन्तु पादरियों द्वारा वसूल किया गया धन रोम चला जाता था। पादरी धनी होने के बावजूद कर देने से मुक्त थे। राजा चाहते थे कि राज्य शासन का खर्च चलाने के लिए चर्च पर टैक्स लगाया जाए। चर्च ने यह घोषणा कर दी कि कर लेना और देना पाप है। वाणिज्य-व्यापार के कारण जब मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था का उदय हुआ, तब कर्ज की प्रथा प्रचलित हो गयी, सूद सम्बन्धी चर्च के सिद्धांत व्यापार की प्रगति में बाधक थे।

राष्ट्रीय राज्यों का हित चर्च के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप से मेल नहीं खाता था। राजा चाहते थे कि राष्ट्र के अन्दर रहने वाले सभी व्यक्ति और सारी संस्था की श्रद्धा और भक्ति राष्ट्र को मिले। लेकिन, रोम का पोप सभी देशों के चर्च संगठनों का प्रधान था। राजा अब पोप द्वारा पादरियों की नियुक्ति के अधिकार को चुनौती देने लगे। बहुत से मुकदमों का फैसला चर्च की अदालतों में होता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि चर्च के फैसले राजा की कचहरी के फैसले के विपरीत होते थे। फिर राजा और पोप के बीच झगड़ा इसलिए भी था कि पोप का दावा था कि वह प्रत्येक देश के आंतरिक मामलों में दखल दे सकता है। इसलिए चर्च राजा का राजनितिक प्रतिद्वन्द्वी भी था। इन कारणों से राजा चर्च के प्रभुत्व और उसके प्रधान पोप का विरोधी था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

चर्च द्वारा शोषित किसानों ने प्रोटेस्टेंवाद के जन्म में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। किसान चर्च के टैक्स से घिरते जा रहे थे। पादरी सामंत प्रथा और शोषणकारी प्रथाओं का समर्पण करते थे। इसलिए जाग्रत किसान उनसे बिगड़े हुए थे और कभी-कभी विद्रोह भी कर देते थे। चर्च एक तरफ अपनी पाठशालाओं में रूढ़िवादी धार्मिक शिक्षा देते थे, वहीं दूसरी ओर प्रगतिशील शिक्षा देने वाले किसी भी संस्था को अवैध घोषित कर देते थे।

उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि चर्च व्यवस्था अनेक बुराइयों का मुख्य स्रोत बन चुका था। रोम का पोप न सिर्फ अब धार्मिक एवं आध्यात्मिक संरक्षक रहा था, वरन् अब वह राज्य प्रशासन, दण्ड-विधान, कर वसूली आदि के सम्बन्ध में भी अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था। अनेक अंधविश्वासों को बढ़कर संपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को पंगु बना दिया था। किन्तु 15वीं सदी के बाद से स्थिति मे परिवर्तन आने लगा। सामंतवाद का पतन तथा पुनर्जागरण दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थीं, जिसने संपूर्ण यूरोप में बौद्धिक चेतना एवं मानवतावादी दर्शन की एक नई लहर पैदा कर दी। इसी का यह परिणाम हुआ कि विभिन्न सुधारकों ने चर्च तथा पोप को चुनौती दी तथा ईसाई धर्म में ही एक अलग सुधारवादी शाखा प्रोटेस्टेंटवाद का उदय हुआ।

**प्रश्न 2. लूथरकालीन सामाजिक-बौद्धिक परिवेश की चर्चा कीजिए। लूथर की पंचानवे अभिधारणाओं की आधारभूत विषय-वस्तु क्या थी?**

**उत्तर**–चर्च की शोषणकारी प्रवृत्ति, सामंतवाद का पतन, व्यापार में विकास तथा अन्य कारणों ने मिलकर यूरोप में पुनर्जागरण की लहर पैदा कर दी। इस पुनर्जागरण की लहर का प्रभाव सामाजिक और बौद्धिक क्षेत्र में भी पड़ा। साथ ही साथ धार्मिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रह सका। पुनर्जागरण ने अनेक विधियों से धर्म-सुधार आंदोलन को प्रेरित किया। अब तर्क पर आधारित ज्ञान को महत्त्व दिया जाने लगा। इस दर्शन के प्रसार से लोगों के मन में चर्च के प्रति अंधविश्वास कम हुआ तथा लोगों ने चर्च की बुराइयों का खुलकर विरोध करना शुरू कर दिया।

इस काल में व्यापार को सुदूर पूर्व तक विकसित होने का मौका मिला। इससे जहाँ एक ओर पूर्वी ज्ञान का दौर आया, वहीं व्यापारिक नगरों का उदय हुआ। ये नगर सामंतवाद एवं पोप के प्रभाव से मुक्त थे। यहीं पर एक बौद्धिक चेतना का विकास हुआ, जिसने पोप की निरंकुशता के खिलाफ आवाज उठाई और कैथोलिक धर्म में एक अलग सम्प्रदाय की नींव पड़ी। कागज और मुद्रण कला के विकास के कारण अब क्षेत्रीय भाषाओं में बाइबिल के प्रकाशन से लोगों में चर्च के प्रति आस्था घटी। अब वे चर्च द्वारा की गई बाइबिल की गलत व्याख्या से परिचित हो गए। सोहलवीं शताब्दी में लोग का असंतोष अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। विद्रोह के लिए सिर्फ एक सक्रिय नेता की और विस्फोट के लिए एक घटना की आवश्यकता थी, जो लूथर के आगमन के बाद पूरी हो गई।

मार्टिन लूथर (1483-1546) का जन्म जर्मनी के एक किसान परिवार में हुआ था। उसके पिता उसे वकील बनाना चाहते थे, लेकिन विश्वविद्यालय में उसने कानून की जगह धर्मशास्त्र का अध्ययन शुरू कर दिया। उसका मन उद्वेलित रहने लगा। आत्मा की शान्ति के लिए वह अगस्तीनियन भिक्षुओं में शामिल हो गया। संत पॉल के पत्रों को पढ़कर उसे मालूम हुआ कि मुक्ति का मार्ग अच्छा संस्कार और कर्मकांड नहीं, बल्कि ईसा में सच्ची आस्था है।

इसी बीच वह विटेनबर्ग विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त हुआ। लूथर का विश्वास बढ़ता जा रहा था कि केवल आस्था और विश्वास से मुक्ति मिल सकती है। उसने अनुभव किया कि पूजा, प्रायश्चित और क्षमा प्रदान पत्रों की खरीद से पाप की मुक्ति नहीं मिल सकती। इसी बीच 1517 ई. में क्षमा प्रदान पत्रों (इण्डलजेन्स) की बिक्री करता हुआ पोप का एक प्रतिनिधि विटेनबर्ग पहुँचा। लूथर ने इस कार्य की निंदा की। इसके विरोध में उसने विटेनबर्ग विश्वविद्यालय की दीवारों पर अपनी पंचानवे बातें (95 थीसिसे) चिपका दी।

इस थीसिसों के द्वारा उसने क्षमा प्रदान पत्रों की बिक्री के औचित्य को चुनौती दी। उसने दलील दी कि क्षमा पत्र के द्वारा मनुष्य चर्च के लगाए गए दण्ड से मुक्त हो सकता है, किन्तु मृत्यु के पश्चात् वह ईश्वर के लगाए गए दण्ड से छुटकारा नहीं पा सकता और न ही पाप के फल से बच सकता है। उसके विचारों ने तहलका मचा दिया। उसके समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी। उसने कई लेख लिखकर चर्च की कमजोरियों पर प्रहार किया, पोप के अधिकारों को चुनौती दी, चर्च की सम्पत्ति जब्त करने और चर्च का नियंत्रण लगाने का राजाओं से आह्वान किया।

लूथर के विचारों से पोप ने घबराकर उसे धर्मच्युत कर दिया। पोप की आज्ञा को लूथर ने सबके सामने जलाकर विद्रोह का झंडा ऊँचा किया। 1523 ई. में सम्राट् ने उसे जर्मन डायट के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया। सैक्सनी के राजा फ्रेडरिक ने उसे जाने नहीं दिया, क्योंकि वहाँ जाने पर चर्चविरोधियों के समान उसे जीवित जला दिया जाता। लूथर के विचार धीरे-धीरे जनता के बीच लोकप्रिय हो रहे थे।

लूथर के विचार बहुत सुगम थे। उसने ईसा और बाइबिल की सत्ता स्वीकार की, लेकिन पोप और चर्च की दिव्यता और निरंकुशता को नकार दिया। चर्च द्वारा निर्धारित कर्मों के स्थान पर उसने आस्था को मुक्ति का साधन बताया। संस्कारों में केवल तीन संस्कार-नामकरण, प्रायश्चित और प्रसार को ही माना। चर्च में चमत्कार, ईसा को समर्पित रोटी और शराब का मांस और स्कून में

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



परिवर्तित हो जाना आदि विश्वासों को उसने नहीं माना। उसने बताया कि चर्च का अर्थ रोमन कैथेलिक या कोई अन्य विशिष्ट संगठन नहीं, बल्कि ईसा में विश्वास करने वाले लोगों का समुदाय है। उसने पोप, कार्डिनल और बिशप के पदानुक्रम को समाप्त करने की मांग की और सभी आस्थावानों की पुरोहिताई की घोषणा की। उसने राजाओं को चर्च का प्रधान माना। इस तरह कैथोलिक धर्म का अंततः विभाजन हो गया। लूथर के समर्थक प्रोटेस्टेंट कहलाए और विरोधी कैथोलिक।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है 16वीं शताब्दी में यूरोप में लूथर द्वारा एक व्यापक सुधार आंदोलन प्रारंभ हुआ। धर्म में व्याप्त कुरीतियों तथा भ्रष्ट पादरियों और चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार पादरियों के चारित्रिक दोषों के कारण धर्म-सुधार आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस धर्म-सुधार आंदोलन ने कैथेलिक चर्च की बुराइयों को उजागर करते हुए नये संप्रदाय प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय को जन्म दिया।

**प्रश्न 3. जर्मनी में किसान युद्ध के क्या कारण थे और उनके प्रति लूथर का नजरिया कैसा था?**

**उत्तर**–1523 और 1524 में फसल खराब होने के कारण जर्मनी के किसानों की स्थिति दयनीय हो गयी थी। शासक वर्ग और चर्च की अत्यधिक करों की माँग ने उनकी स्थिति और भी खराब कर दी थी। अपनी बिगड़ती स्थिति को देखकर किसान विद्रोह करने लगे। किसानों ने अपनी माँग को शासक वर्ग के सामने रखा। किसान लूथर के विचारों का समर्थन करने लगे। उन्हें लगा कि लूथर का समर्थन करने से उनके आर्थिक संघर्ष को धार्मिक समर्थन प्राप्त हो जाएगा।

1525 ई. में स्वाबियाई किसानों के प्रतिनिधियों की बारह माँगें थीं, जिनमें से दो प्रमुख माँगें थीं–

– परम्परागत कानूनों के स्थान पर ईश्वर का कानून लागू होना चाहिए।
– ग्रामीण समुदाय को स्वायत्तता मिलनी चाहिए।

किसानों ने पादरी और सामंतों का विरोध किया। साथ ही कृषि दास व्यवस्था और सामंती प्रतिबंधों को खत्म करने और कुलीन व्यक्तियों द्वारा सार्वजनिक जमीनों पर अधिकार किये जाने का विरोध किया। किसानों ने शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त कुलीन वर्ग और पादरियों का धार्मिक तरीके से ही विरोध किया। इनका मानना था कि उनकी माँगें धर्मग्रंथों के अनुकूल हैं। प्रारंभ में लूथर के विचारों ने किसानों में असंतोष बढ़ाने का काम किया। किसानों ने 'ईश्वर' के संदेश और ईश्वर की न्यायप्रियता में विश्वास करते हुए विद्रोह कर दिया। किन्तु किसानों का विद्रोह असंगठित और विखंडित था। वे कभी-कभी महलों और मठों पर हमला करते थे।

इस किसान विद्रोह का नेतृत्व थॉमस मुनजर ने किया। लूथर ने किसानों का साथ नहीं दिया। लूथर का कहना था कि कानूनी आधार पर स्थापित संस्थाओं के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष धार्मिक रूप से अनुकूल नहीं है। दरअसल ईसाई लोगों की मुक्ति का अर्थ रोमन चर्च के अधिकारियों से मुक्त होना है न कि आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था से मुक्त होना है। लूथर ने कुलीनों की सामाजिक व्यवस्था और सामंत वर्ग के शोषक शक्तियों को एक प्रकार से समर्थन ही दिया।

यह कृषक असंतोष सामंती शासन व्यवस्था के कारण उत्तरोत्तर बढ़ती चली गयी। किसानों ने अपने विद्रोह को सही ठहराने के लिए धार्मिक विचारधारा का भी समर्थन लेने का प्रयास किया। किन्तु प्रोटेस्टेंट कुलीन वर्ग ने भी निर्ममता से इस विद्रोह को कुचल दिया। इस विद्रोह में हजारों किसान मार दिए गए।

चूँकि शुरू में किसानों ने लूथर के उपदेशों से प्रेरणा पाकर विद्रोह किया था। प्रारंभ में लूथर की भी इस आंदोलन से सहानुभूति थी, लेकिन वह बाद में आंदोलन के जनवादी और हिंसक चरित्र से घबरा गया। उसने शासकों से आग्रह किया कि इस विद्रोह का दमन कर दें। बड़ी निर्ममता के साथ किसान विद्रोह को दबा दिया गया। इस प्रकार लूथर ने अपने विचारों के प्रसार के लिए जनविरोधी फैसला लिया। इस फैसले के कारण लूथर को जर्मनी के छोटे-छोटे राजाओं से सहायता मिली।

**प्रश्न 4. कैल्विनवाद और ऐनाबैप्टिस्टों की तुलना करें।**

**उत्तर**–प्रोटेस्टेंट धर्म की स्थापना में लूथर के बाद कैल्विन का स्थान आता है। कैल्विन का जन्म फ्रांस में 1509 ई. में हुआ था। लूथर के विचारों को पढ़कर वह 24 साल की उम्र में ही प्रोटेस्टेंट धर्म का अनुयायी बन गया था। इसका मानना था कि ईसाई धर्म को समझने के लिए ईसा के विचारों को समझना आवश्यक है। चूँकि यह विचार प्राचीन धर्मग्रंथों में प्रकट किए गए हैं, इसलिए इन्हें जनप्रिय बनाना जरूरी है।

कैल्विन को 1541 ई. में जेनेवा शहर के सुधार करने के लिए आमंत्रित किया गया। इसने मजिस्ट्रेट और सुधार मंत्रियों के साथ चर्च और ईसाई समुदाय में सुधार लाने का कार्य प्रारंभ किया। कैल्विन ने अपने विचारों का वर्णन '*द इन्सटिट्यूट ऑफ क्रिश्चियन रिलिजन*' नामक पुस्तक में किया है। मूलतः इस पुस्तक में ईश्वर की सर्वसत्ता और सर्वव्यापकता और मनुष्य की कमजोरियों का उल्लेख किया गया है। कैल्विन के सिद्धांतों का आधार ईश्वर की सर्वोच्चता है। ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी होना संभव नहीं है। इसलिए मनुष्य की मुक्ति न कर्म से हो सकती है न आस्था से। वह तो बस ईश्वर के अनुग्रह से ही हो सकती है। मनुष्य के पैदा होते ही तय हो जाता है कि उसका उद्धार होगा या नहीं। इसे ही पूर्व-नियति का सिद्धांत कहते हैं। वैसे इस सिद्धांत से घोर भाग्यवादिता बढ़नी चाहिए थी। किन्तु कैल्विन ने अपने अनुयायियों में एक नवीन उत्साह तथा दैवी प्रेरणा का संचार कर दिया। विशेषकर

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



व्यापारियों में एक नया आत्मविश्वास जाग गया। वे अपने को ईश्वर का प्रिय पात्र समझने लगे।

कैल्विन वैध धर्मनिरपेक्ष सत्ता को पवित्र और ईश्वर की इच्छा मानते थे। उन्होंने निरंकुश और दमनात्मक शासन के विरुद्ध होने वाले दमनों का कुछ हद तक समर्थन भी किया। इस तरह कैल्विनवादियों ने कैथोलिक और अभिजाततंत्रीय अल्पसंख्यकों की शक्ति को तोड़ने में कुछ हद तक योगदान दिया। सामाजिक स्तर पर कैल्विनवादियों ने उच्च नैतिक मूल्यों को बढ़ाया और यौन सम्बन्धों की कठोरता से निभाने का संदेश दिया।

ऐनाबैप्टिस्ट यूनानी शब्द से निकला है, जिसका अर्थ फिर से बैप्टाइज करना अर्थात् फिर से धार्मिक संस्कार करना है। ऐनाबैप्टिस्टों को प्रगतिशील सुधारक माना जाता है। इनका मानना था कि वयस्क होने के बाद ही ईसाई समुदाय में शामिल होना चाहिए। चूँकि वयस्क होने के बाद किसी धर्म को चुनने की व्यक्ति में सूझ-बूझ विकसित हो जाती है। इसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने कहा कि धर्मग्रंथों में कहीं भी बच्चों और शिष्यों को बपतिस्मा में शामिल करने का उल्लेख नहीं मिलता। इन्होंने धार्मिक पदानुक्रम का विरोध किया। इन लोगों ने चर्च में भक्तों का एक स्वयंसेवी संगठन बनाने का कार्य किया, जिनमें सभी भक्तों ने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया हो, ये राज्य और चर्च को अलग करना चाहते थे। प्रारम्भ में प्रोटेस्टेंटवाद राजकुमारों और मजिस्ट्रेटों की मदद से आगे बढ़ा, किन्तु सोलहवीं शताब्दी में ऐनाबैप्टिस्टों ने कोई सरकारी पद, सैनिक पद ग्रहण नहीं किया, बल्कि इन्होंने शपथ लेने से भी इन्कार कर दिया। उनके अनुसार सभी भक्त एक समान होते हैं। अतः उच्च वर्ग के भक्त और निम्न वर्ग के भक्त के बीच भेदभाव नहीं करनी चाहिए। अतः उन्होंने कहा कि चर्च के लोकतांत्रिक, सामुदायिक और सामन्तवादी स्वरूप के निम्न वर्ग के लोगों, किसानों, मजदूरों आदि को सहारा और सहयोग देना चाहिए। ऐनाबैप्टिस्ट ने मुनस्टर (1534-35) में विद्रोह को समर्थन दिया और राज्य के धर्मनिरपेक्ष आदेश को अपनाने की बात कही। जर्मनी के राजाओं ने इस आंदोलन और ऐनाबैप्टिस्टों का दमन करने का प्रयास किया, किन्तु इसके बाद भी इनके विचार जीवित रहे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जहाँ कैल्विन ने मजिस्ट्रेटों की मदद से सुधार का प्रयास किया, वहीं ऐनाबैप्टिस्टों ने किसी पद के बगैर ही सामान्य जनता से जुड़कर सुधार लाने का प्रयास किया। जहाँ ऐनाबैप्टिस्टों को निम्न वर्ग या सामान्य जनता का सहयोग अधिक मिला, जबकि कैल्विनों को राजाओं और पूँजीपतियों का अधिक सहयोग प्राप्त हुआ।

**प्रश्न 5. मैक्स वेबर की उन अभिधारणाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए जिसमें प्रोटेस्टेंटवाद को पूँजीवाद के उदय से जोड़कर देखा गया है।**

**उत्तर**–कुछ विद्वानों का यह मानना है कि प्रोटेस्टेंटवाद ने जीवन के एक नए दृष्टिकोण का विकास किया, जिसके कारण पूँजीवाद का विकास हुआ। इसने चर्च और राज्य के सम्बन्धों को भी प्रभावित किया। साथ ही आम जनता एवं पादरियों के बीच सम्बन्धों को एक नया आयाम प्रदान किया। प्रोटेस्टेंटवाद ने पूँजीवाद को बढ़ावा दिया, जिसके कारण मध्ययुगीन धर्म सिद्धांत की प्रगति रुक गई। चौथी शताब्दी में सेन्ट जेरोम ने घोषणा की थी कि "धनी व्यक्ति या तो चोर होता है या चोर का बेटा होता है।" लेकिन इस घोषणा के बाद भी चर्च ने बहुत सारी संपत्ति और भू-संपदा जमा की। चर्च ने सूदखोरी पर प्रतिबंध लगा दिया था। लेकिन नवीन प्रोटेस्टेंटवाद ने पोप, बिशपों और मठों की जनता से अवैध करों की वसूली और विलासितापूर्ण जीवन पर प्रतिबंध लगाया। साथ ही साथ अच्छा जीवन गुजारने के लिए कोई भी काम करने की स्वतंत्रता दी। अतः नये प्रोटेस्टेंट नियमों के अनुसार अब उत्पादन, ऋण और सूद के द्वारा भी धन कमाने की स्वतंत्रता दी गई। इससे यूरोप में वाणिज्य-व्यापार में वृद्धि हुई, जिससे एक मध्यम वर्ग का विकास हुआ। चूँकि अभी तो विद्वानों के बीच पूँजीवाद के उदय ने प्रोटेस्टेंटवाद और कैल्विनवाद की भूमिका लेकर विवाद चल रहा है।

## अन्य महत्त्वपूर्ण-प्रश्न

**प्रश्न 1. इंग्लैण्ड में धर्म-सुधार आंदोलन किस प्रकार हुआ? इसका कैथोलिक धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा?**

**उत्तर**–इंग्लैण्ड में प्रोटेस्टेंट चर्च की स्थापना पूर्णतः भिन्न परिस्थिति में हुई थी। सभी धर्मसुधार आंदोलनों का नेतृत्व किसी सुधारक ने किया था, किन्तु यहाँ राजा ने सुधार का काम किया। इंग्लैण्ड में धर्मसुधार आंदोलन की शुरुआत सम्राट् हैनरी अष्टम के पुत्र प्राप्ति की इच्छा से शुरू हुई। अपनी पत्नी कैथरीन द्वारा 18 वर्षों के वैवाहिक जीवन में सिर्फ एक पुत्री के जन्म लेने के चलते जब उसे विश्वास हो गया कि कैथरीन दूसरा बच्चा पैदा नहीं कर सकती, तब उसने पोप से आग्रह किया कि कैथरीन के साथ उसके विवाह को अमान्य घोषित कर दें। किन्तु पोप ने हैनरी के आग्रह को नहीं माना। आगे हैनरी ने अपने आज्ञाकारी संसद को एक्ट ऑफ सुपरमैसी पास करने के लिए राजी करा लिया।

इस एक्ट के अनुसार इंग्लैण्ड के शासन को इंग्लैण्ड के चर्च का सर्वोच्च अधिकारी घोषित किया गया। इस तरह अब चर्च का प्रधान पोप नहीं रहा। फिर उसने क्रैमर को कैंटरबरी का बिशप बनाया, जिसने कैथरीन के साथ उसके विवाह को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। इसके बाद हैनरी ने दूसरी शादी कर ली।

हैनरी रोम से अलग इंग्लैण्ड का स्वतंत्र कैथोलिक चर्च बनाना चाहता था, लेकिन उस समय आंग्ल चर्च न तो पूरी तरह कैथोलिक

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



रह सका और न ही प्रोटेस्टेंट। हैनरी के उत्तराधिकारी एडवर्ड चतुर्थ के शासनकाल में आंग्ल चर्च प्रोटेस्टेंट बन गया। क्रैमर ने बुक ऑफ कामन प्रेशर नाम पुस्तक प्रकाशित करवाई। इसमें प्रोटेस्टेंट तथा कुछ हद तक कैल्विनवादी विचारों को स्थापित किया था। एडवर्ड चतुर्थ की मृत्यु के बाद प्रोटेस्टेंट हितों को बड़ा धक्का पहुँचा था। अब कैथरीन की पुत्री मैरी शासन की उत्तराधिकारी बन गई, जो अपनी माँ की तरह ही कट्टर कैथोलिक थी। उसने अपने दो पूर्ववर्ती शासकों के कार्य को पूर्णत: रदद् कर दिया तथा पुन: रोम से सम्बन्ध स्थापित किया। संसद को अपने द्वारा पास किए गए कानून बदलने पड़े। क्रैमर को जिन्दा जला दिया गया तथा सभी विरोधियों का दमन कर दिया गया। मैरी की मृत्यु के बाद एलिजाबेथ ने गद्दी संभाली। एलिजाबेथ एक सुयोग्य शासिका थी। उसे धर्म की उतनी ही चिंता थी, जितनी राजनीतिक हितों की। इसलिए वह धर्म का इस्तेमाल राजनीतिक हितों के लिए करना चाहती थी। इसी के शासनकाल में आंग्ल चर्च की स्वतंत्रता पुन: स्थापित हो सकी। क्रैमर की पुस्तक को पुन: संशोधित करके प्रकाशित किया गया। आंग्ल चर्च को वैधानिक सत्ता प्रदान करने के लिए सर्वोच्चता एवं एकरूपता का कानून पारित किया गया।

दरअसल एलिजाबेथ ने बीच का रास्ता चुनते हुए इंग्लैण्ड को न तो उग्र प्रोटेस्टेंट बनाया और न ही कैथोलिकों का सफाया करवाया। प्रोटेस्टेंटवाद को क्रमिक रूप से इंग्लैण्ड के लोगों ने स्वीकार कर लिया। 16वीं शताब्दी के अंत तक वहाँ एक ऐसे राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की गई, जो कर्मकाण्ड में कैथोलिक तथा धर्मशास्त्रीय सदर्भ में कैल्विनवादी था। आंग्ल चर्च का यही मिश्रित स्वरूप उसके स्थायित्व का आधार भी बन गया।

**प्रश्न 2. प्रतिधर्म-सुधार आंदोलन क्या था? इसने कैसे कैथोलिक चर्च को स्थायित्व प्रदान किया?**

**उत्तर**–मध्यकाल तक रोमन कैथोलिक चर्च पश्चिमी ईसाई क्षेत्र के आधे हिस्से को खो चुका था और शेष आधे हिस्से को खोने का खतरा महसूस कर रहा था। इस खतरे ने रोमन कैथोलिक चर्च के अन्दर सुधार आंदोलन की आवश्यकता दिखाई दी। 16वीं शताब्दी के मध्य तक रोमन कैथोलिक सुधार आंदोलन काफी प्रसिद्ध हो चुका था। चर्च में नया उत्साह पैदा किया गया तथा प्रोटेस्टेंटों के विरुद्ध प्रत्याक्रमण शुरू किया गया। इस रणनीति में उनमें से न केवल आधे ईसाई जगत को रोमन कैथोलिकों के लिए सुरक्षित रखा गया, बल्कि प्रोटेस्टेंटवाद को काफी पीछे की ओर धकेल भी दिया।

बहुत पहले से ही कुछ निष्ठावान रोमन कैथोलिकों द्वारा सुधार की मांग की जा रही थी। स्पेन में 16वीं शताब्दी की अंत में विधर्मियों के विरुद्ध संघर्ष करके एक प्रत्याशी प्रोटेस्टेंट विद्रोह को होने से रोका गया। जब पाल चतुर्थ पोप बना, तो उसके अपने समर्थकों की इच्छानुसार उत्तरी इटली की ट्रेंट नामक जगह पर चर्च कौंसिल की बैठक बुलायी गयी। 1545 से लेकर 1563 तक चली ट्रेंट कौंसिल की बैठक में चर्च के सिद्धांतों को नये सिरों से परिभाषित किया गया। इसमें दो तरह के निर्णय लिये गये–सिद्धांत एवं सुधार सम्बन्धी। चर्च के मूल सिद्धांतों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। यह माना गया कि बाइबिल की व्याख्या करने का एकमात्र अधिकार चर्च को है। सातों संस्कार अपरिवर्तनीय माने गये। मुक्ति का आधार चर्च के माध्यम से संपन्न कार्य बताये गये तथा चमत्कारों में आस्था प्रकट की गयी। अत: सिद्धांत रूप में परम्परागत दृष्टिकोण को ही दोहराया गया।

सुधार सम्बन्धी उपायों के तहत चर्च के पदों की बिक्री समाप्त कर दी गई। पादरियों की उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की गई तथा अधिकारियों को सुविधाभोगी बनने से रोका गया। धर्म की भाषा लैटिन ही रही। किन्तु लोकभाषाओं का प्रयोग करने की भी आज्ञा प्राप्त हो गई। क्षमा-पत्रों की बिक्री बंद हो गई। सरकार सम्बन्धी कार्यों के लिए पादरियों के आर्थिक लाभ पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इन कार्यों से चर्च का आत्मविश्वास जागा तथा उनकी पुरानी गतिशीलता लौट आयी। यही कारण है कि ट्रेंट की कौंसिल चर्च के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

कैथोलिक चर्च को जीवन प्रदान करने वालों में इगनेशियस लोयोला (1491-1556) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने चर्च को संगठित करने के लिए सोसायटी ऑफ जीसस की स्थापना की, जिसके सदस्य जेसुइट कहलाए। चूँकि लोयोला एक सैनिक थे, इसलिए सोसायटी ऑफ जीसस को पूरी तरह संगठन सैनिक आधार पर निर्मित किया गया। हर सदस्य के लिए कठोर अनुशासन जरूरी था। वही व्यक्ति संस्था का सदस्य बन सकता था, जिसने सभी मौलिक नाते-रिश्ते तोड़ लिए हों तथा ऐसे ही अभ्यर्थियों को इस संस्था में दाखिला मिलता था, जो उच्च प्रतिभा, अच्छे स्वास्थ्य तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले होते थे। उन्हें दो वर्षों का कठिन प्रशिक्षण दिया जाता था और प्रशिक्षण देने के बाद विभिन्न कार्य सौंपे जाते थे। दीनता, पवित्रता, आज्ञापालन तथा पोप के प्रति समर्थन की शपथ हर सदस्य को लेनी पड़ती थी। प्रारंभ में ही जेसुइट लोगों ने शिक्षा को आधार मानकर शिक्षक के रूप में जो सद्भावना का संदेश दिया, वह आज भी कायम है। अधिकांश रोमन कैथोलिक देशों में उन्होंने शिक्षा पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। बाद में वे कूटनीतिक सेवाओं में भी कार्य करने लगे।

जेसुइटों का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विदेशों में हुआ। वे बहुत अच्छे मिशनरी थे। दूर-दूराज के क्षेत्रों में कैथोलिक चर्च का विस्तार किया गया। अपने अनुयायियों की संख्या में वृद्धि की। सुदूर पूर्व में फ्रांसिस जेवियर ने हजारों लोगों को जेसुइट विचारधारा में परिणत किया। उन्होंने चर्च के प्रभाव बढ़ाने के लिए राजनीतिक, कृषि, साहित्य सेवा आदि हर तरीके को अपनाया।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



इस प्रकार प्रतिधर्म-सुधार आंदोलन ने अमरीका, इटली, पोलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, सभी जगह कैथोलिक लोगों में विश्वास पैदा किया। धर्म-परिवर्तन करने वाले लोगों को रोका और पूर्व परिवर्तित लोगों को पुन: कैथोलिक धर्म में शामिल करवाया।

जर्मनी के विद्वान मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक '*दा प्रोटेस्टेंट इथिक एण्ड द स्पीरिट ऑफ कैथोलिज्म*' में इस अवधारणा का प्रारम्भ किया। इनका मानना है कि प्रोटेस्टेंटवाद ने एक अलग प्रकार की सोच और नैतिक बोध का विकास किया है। मुख्यत: 16वीं और 17वीं शताब्दी में कैल्विनवाद के आगमन के बाद पूँजीवाद के उदय में सहयोग प्रदान किया। वेबर के अनुसार सुधार आंदोलन के समय मुनाफा कमाने और पूँजीवादी प्रवृत्ति से जुड़ा नैतिक बोध विकसित हुआ। मुनाफा कमाने की मानसिकता का विकास हुआ। इसके कारण धार्मिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आने लगा।

चूँकि कैल्विन तत्कालीन पूँजीवादी विकास के प्रबल समर्थक थे। जिस प्रकार लूथर ने अपने धर्म को जर्मन के राजकुमारों तथा किसानों की सहायता से प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था, उसी प्रकार कैल्विन ने व्यापारियों और मध्यमवर्ग के लोगों के समर्थन से अपने धर्म को मजबूती प्रदान की। कैल्विन ने बताया कि सूद लेना निषिद्ध नहीं है, परन्तु इसकी एक निश्चितता, सरकारी सीमा तय होनी चाहिए। इस बात पर जोर दिया गया कि पूँजी के लिए सूद लेना उतना ही उचित है, जितना कि जमीन के लिए मालगुजारी लेना। कारोबार में मुनाफे को वह उचित मानते थे। निश्चित ही कैल्विन के इस विचार से पूँजीवाद का विकास हुआ।

मार्क्सवादी विद्वान वेबर से अलग मत रखते हैं, उनका मानना है कि पुनर्जागरण काल में ही कुलीन वर्ग और व्यापारियों के बीच लेखा-जोखा जैसी कुछ नई व्यावसायिक तकनीकों का विकास हो गया था। इन्होंने कहा कि जनसंख्या वृद्धि, पारिवारिक संरचना में बदलाव क्रमश: मूल्य वृद्धि, निर्यात बाजार के लिए विभिन्न प्रकार के समुद्री वाणिज्य-व्यापार में वृद्धि जैसे आर्थिक कारकों के कारण सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया, जिसके परिणामस्वरूप यूरोप में पूँजीवाद का विकास हुआ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पूँजीवाद के विकास में केवल एक कारक प्रोटेस्टेंटवाद ही नहीं था, बल्कि इसके विकास में विभिन्न कारकों का योगदान था। वैबर ने केवल प्रोटेस्टेंटवाद के एक ही पहलू को उजागर करने का प्रयास किया है। धर्म-सुधार आंदोलन के अनेक तत्त्वों का जुड़ाव यूरोप से हो गया; जैसे—बौद्धिक प्रगति, राष्ट्रीय राजाओं की शक्ति में वृद्धि और राज्य की संवैधानिक प्रगति आदि।

■■

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# आधुनिक विश्व की ओर संक्रमण

30

## परिचय

इतिहासकारों का मानना है कि 1500 ई. के आसपास से मध्ययुग का अन्त हुआ और आधुनिक जीवन की शुरुआत हुई। सामान्यत: यह माना जाता है कि इस प्रकार का परिवर्तन केवल यूरोपीय समाज तक ही सीमित रहा, क्योंकि इस काल में जो भी घटना घटी उसका प्रभाव केवल यूरोप पर ही पड़ा। किन्तु आधुनिक विश्व की ओर कदम बढ़ाने में केवल यूरोप का ही योगदान नहीं था। यूरोप में अरब और चीन के द्वारा अनेक वैज्ञानिक जानकारियां प्राप्त हुईं। विश्व के अन्य क्षेत्रों में भी आधुनिक व्यवस्था का आगमन हुआ, लेकिन इसकी गति धीमी थी। इसलिए इसका आगमन देर से हुआ। यूरोप में सामंतवाद के पतन के बाद कृषीय संरचना में भी बदलाव आया, और यह बाजारोन्मुख हो गई। व्यापार और वाणिज्य, विज्ञान की गतिविधियाँ और युद्ध-कला की नई विधियाँ, साम्राज्य-विस्तार प्रमुख औजार बन गये और पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। राजनीतिक ढाँचे में परिवर्तन करके केन्द्रीकृत ढाँचे का निर्माण किया गया। यूरोप में राष्ट्र-राज्यों के उदय के बाद वे अपने देश की सीमाओं को सुपरिभाषित करने लगे, जिसके कारण छोटे-छोटे राज्य बड़े सम्राज्य में समाहित होने लगे। इस प्रकार की प्रवृत्ति केवल यूरोप में ही नहीं, बल्कि चीन और अरब देशों में भी देखने को मिलती है। ये यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य व्यापार और वाणिज्य को संरक्षण प्रदान करने लगे जिससे पूंजीवाद का आगमन हुआ और देश की समृद्धि में वृद्धि हुई। इस तरह पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से यूरोप हर क्षेत्र में दुनिया से सर्वश्रेष्ठ हो गया। इस अध्याय में मुख्य रूप से मध्ययुग से आधुनिक युग में परिवर्तन की प्रक्रिया की चर्चा की गई है। इसमें आधुनिक विश्व के अर्थ के साथ-साथ आधुनिक युग लाने में सहायक कारणों, जैसे–राजनीतिक ढाँचे में रूपांतरण, व्यापारिक गतिविधियाँ और सांस्कृतिक रूपान्तरण आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। यहां मुख्य रूप से यूरोप, पूर्व एशिया में चीन और अरब देशों की चर्चा की गई है।

आधुनिकीकरण का अर्थ है वर्तमान परिस्थिति का सामना करने के लिए राजनीतिक-आर्थिक ढाँचों में उपयुक्त सुधार और परिवर्तन करना। साथ ही साथ तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सामाजिक सोच का निर्माण करना। इस तरह कहा जा सकता है कि प्रशासन, कानून व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और समाज, धर्म और चिंतन जैसे अनेक क्षेत्रों में होने वाले निरन्तर सुधार के द्वारा आधुनिकीकरण का आगमन होता है। मध्ययुग के अन्त के बाद यूरोप, चीन, भारत और अरब समाजों में अलग-अलग तरीके से जीवन को बदलने का प्रयास किया गया। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया दुनिया के सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं थी। जब यूरोपीय देश सामंतवाद से निकलने का प्रयास कर रहे थे, उस समय चीन और अरब देशों में सामंतवाद अपनी पकड़ मजबूत कर रहा था। इसलिए यूरोपीय देशों की तुलना में एशियाई और अरब देशों में आधुनिकीकरण की रफ्तार धीमी थी।

सामंतवाद का पतन एक धीमी प्रक्रिया थी। इसका पतन होने में लगभग तीन शताब्दियों का समय लग गया। सामंतवाद का पतन उस सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं बौद्धिक वातावरण में हुआ, जिसका उदय बड़ी तेजी से 13वीं शताब्दी में होने लगा था। वाणिज्यिक क्रांति, पूंजीवाद का उदय, राष्ट्रीय राज्य का उदय, धर्मयुद्ध आदि ने घटनाओं ने मिल-जुलकर सामंतवाद के पतन में अपना योगदान दिया। इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, उत्तर-पश्चिम यूरोप और फ्रांस में सामंतवाद का पतन सबसे पहले हुआ। सामंतवाद के पतन से सामाजिक संरचना और सामाजिक संतुलन में भी बदलाव आया। निम्नवर्गीय लोग अधिक स्वतंत्र और सुरक्षित महसूस करने लगे। जनसंख्या में वृद्धि और शहरीकरण के तीव्र विकास से कृषि उत्पादों की मूल्य वृद्धि हुई। इससे अब कृषि का व्यवसायीकरण होने लगा। नये उद्यमी भूमिपतियों को नया अवसर मिला। वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के विकास से बुर्जुआ वर्ग में वृद्धि होने लगी। बढ़ती जनसंख्या से कृषि उत्पादों की मांग बढ़ने लगी, इसलिए अधिक-से-अधिक भूमि पर कृषि की जाने लगी। अब फसल बदल-बदलकर रोपने, मेड़ बनाने, अधिक गोड़ाई करने आदि

www.neerajbooks.com



प्रविधियों का प्रयोग किया जाने लगा। इससे यूरोपीय कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी। कृषि में हुई क्रांतिकारी वृद्धि ने व्यापार को भी बढ़ावा दिया। अत: बाल्टिक क्षेत्र कृषि उत्पादन से भर गया और यहां से अन्य क्षेत्रों में अनाजों को भेजा जाने लगा। नीदरलैण्ड में पशुपालन, स्पेन, इंग्लैण्ड और अल्पाइन में भेड़ पालन को प्रोत्साहन दिया जाने लगा।

यूरोप की कई जगहों पर भूमि पुनर्वितरण आंदोलन चलाया गया तथा कई स्थानों पर बाड़ें लगायी गयीं और जल-निकास और बाँध निर्माण का वृहत कार्यक्रम चलाया गया। इस समय तक यूरोप में सभी जगहों पर छापेखाने की स्थापना हो चुकी थी। इस छापखाने की मदद से कृषि पद्धतियाँ, नई तकनीक, उपकरण अपनाने के लिए लोगों को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। कृषि से सम्बन्धित जागरूकता सभी जगह फैलने लगी। कृषि से अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए कृषक और भूमिपति वर्ग अनाज की बिक्री और निर्यात के लिए विशेष प्रयत्न करने लगे। इस तरह क्रमिक रूप से आधुनिक कृषि का विकास हुआ।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था में सामंत व्यवस्था का बहुत प्रभाव था। सामंती अर्थव्यवस्था का संकट, सामंतों के आंतरिक युद्ध ने राज्य निर्माण की प्रक्रिया को बल प्रदान किया। सबसे पहले केन्द्रीकृत राजतंत्र की स्थापना फ्रांस, स्पेन, इंग्लैण्ड आदि देशों में हुई। पश्चिमी यूरोप में निरंकुश राज्यतंत्र के निर्माण के पश्चात् इन्होंने छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर आंशिक रूप से आधुनिक राष्ट्र-राज्यों का निर्माण किया। सबसे पहले निरंकुश राजतंत्र ने क्षेत्रीय सुदृढ़ीकरण, प्रशासनिक केन्द्रीकरण प्रणाली के द्वारा अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान की गई। इन्होंने पेशेवर नौकरशाही और न्यायपालिका की सहायता से प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण किया। स्थायी सेना का निर्माण किया गया, जो राज्य के प्रति वफादार हो। इस तरह निरंकुश राज्यों के युग में आधुनिक प्रशासनिक, न्यायिक और वित्तीय ढाँचा खड़ा किया गया। व्यापारिक हितों को ध्यान में रखकर आन्तरिक प्रतिबन्धों को हटाया गया, स्थानीय उद्योगों के संरक्षण के लिए बाह्य करों को नियमित किया गया। औपनिवेशिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया गया। नई व्यापारिक कम्पनियों का निर्माण किया गया। इसके फलस्वरूप यूरोप में पूँजीवाद का आगमन हुआ। अब ये निरंकुश राज्य आधुनिक राष्ट्र के पथ पर अग्रसर होने लगे। इंग्लैण्ड के गृहयुद्ध (1642-49) में सामंत संरचना का पतन कर दिया गया और महान क्रांति ने संवैधानिक व्यवस्था की शुरुआत की, जो वर्तमान में भी थोड़े-बहुत बदलाव के साथ चल रही थी। इसी तरह 1785 ई. की फ्रांसीसी क्रांति ने सामंती ढाँचे को उतार फेंका और फ्रांस को आधुनिक राष्ट्र के रूप में बदल दिया। धर्म सुधार आंदोलन ने भी राज्य निर्माण में अहम् भूमिका निभायी और सभी राज्यों में राष्ट्रीय चर्च का निर्माण हुआ। राजनीतिक अधिकार और मानवतावाद जैसे नए विचारों का जन्म हुआ। राज्यों ने अपने को धर्मनिरपेक्ष घोषित किया। इस प्रकार यूरोप मध्ययुग से निकलकर आधुनिक युग की ओर बढ़ने लगा।

यहाँ पूर्वी और दक्षिण एशिया के राजनीतिक रूपांतरण की चर्चा की जा रही है। प्रारंभ में चीन बाहरी दुनिया से कटा रहा, केवल आसपास के पड़ोसी देशों से इसका संपर्क था। भौगोलिक खोज के बाद परिस्थितियाँ बदल गयीं। सोलहवीं शताब्दी में समुद्री मार्ग से पुर्तगाली और स्पेनी व्यापारी दक्षिण चीन आने लगे। सत्रहवीं शताब्दी में रूस की सेना मंचूरिया की सीमा तक पहुँच गई। इस तरह इन देशों ने चीन के अलगाव की नीति को खत्म कर दिया और परिवर्तन का एक नया दौर शुरू हुआ। अत्यधिक व्यापारिक सुविधा प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन ने चीन पर हमला कर दिया, जिसे अफीम युद्ध के नाम से जाना जाता है। इस अफीम युद्ध (1839-42) के बाद चीन में विदेशी साम्राज्यवाद की शुरुआत हुई। इसके बाद चीन ने विदेशी खतरे को देखते हुए आधुनिकीकरण की दिशा में कई सुधार किए। पश्चिमी देशों के हस्तक्षेप ने परम्परागत चीन को आधुनिक चीन में बदलने के लिए उत्प्रेरक का काम किया। फिर भी चीन ने कभी भी पूंजीवाद पर आधारित पश्चिमी मॉडल को नहीं अपनाया। इस तरह लगान सुधार के बाद आधुनिक चीनी राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

जब पुर्तगालियों का आगमन भारत में हुआ, उस समय भारत का विश्व व्यापार में प्रमुख स्थान था। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते केन्द्रीकृत राज्य संरचना ध्वस्त होने लगी और क्षेत्रीय राज्य स्वतंत्र होने लगे। केन्द्रीकृत राज्य के अभाव में अंग्रेजों ने भारत को अपना उपनिवेश बना लिया। उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिकीकरण की शुरुआत हुई। इसकी दो धाराएँ थीं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार आधुनिकीकरण के लिए पश्चिमी मॉडल पर आधारित विज्ञान, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक चिंतन और उदारवाद जैसे ज्ञान को आधार बनाया, जबकि दूसरे के अनुसार प्राचीन संस्कृति को श्रेष्ठ दिखाने और अतीत का गुणगान करने की प्रवृत्ति को अपनाया। आगे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसार और ब्रिटिश सरकार के अधीन राजनीतिक सुधार के द्वारा भारत आधुनिकीकरण की ओर बढ़ा।

अरबों के राजनीतिक पतन के समय इस पर ऑटोमन और अंग्रेजों का अधिकार हो गया। ऑटोमन साम्राज्य का मध्यकाल से ही अरब पर अधिकार था। पन्द्रहवीं शताब्दी में ऑटोमन तुर्की में भी अपना विस्तार करने लगे और इसके बाद भूमध्यसागर और पूर्वी यूरोप में भी फैलने लगे। सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में अंग्रेजों ने अरब से वाणिज्यिक सम्बन्ध स्थापित किया। अंग्रेजों ने एडेन (अदन) में कारखाना स्थापित किया। यह अरब प्रायद्वीप के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



दक्षिण-पश्चिम तट पर स्थित था और यह सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ एशिया और अफ्रीकी व्यापार मार्ग पर पड़ता था। ऑटोमनों ने इस बंदरगाह पर अधिकार कर लिया, तो स्थिति खराब हो गई। 1763 ई. में सप्तवर्षीय युद्ध के पश्चात् लाल सागर पर अंग्रेजों ने वर्चस्व स्थापित कर लिया। 1798 ई. में मिस्र पर नेपोलियन ने कब्जा कर लिया था। यह एक युगान्तकारी घटना मानी जाती है। अभी तक अरबी लोग आत्मनिर्भर और परम्परागत जीवन बिता रहे थे, लेकिन पश्चिम से सम्पर्क के बाद वहाँ बौद्धिक जागरण फैलने लगा था। मिस्र अब अरब पुनर्जागरण का केन्द्र बन गया था। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और आत्मनिर्भरता के सिद्धांत की लहर अरब देशों में फैलने लगी। सीरिया पर मिस्र ने कब्जा कर लिया। पश्चिम से आए विचारों को ग्रहण करके सीरियाइयों ने बौद्धिक आंदोलन की शुरुआत की। आगे अंग्रेजों ने फिलीस्तीन और इराक पर, जबकि फ्रांसीसियों ने सीरिया और लेबनॉन पर कब्जा कर लिया। बाद में स्थानीय हितों और प्रतिक्रियाओं के कारण अरब देश छोटे-छोटे राज्यों में बँट गए। इसलिए यहाँ आधुनिक राज्यों की रूपांतरण प्रक्रिया अलग ढंग से हुई।

पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप के पूर्वी भाग पर ऑटोमन सम्राज्य का अधिकार हो गया। इसके कारण यूरोप का एशिया से जमीनी रास्ते से व्यापार बंद हो गया। अब पुर्तगालियों और स्पेनवासियों ने नए समुद्री मार्गों की खोज करने लगे। इसी क्रम में कोलम्बस ने 1492 ई. में अमेरिका की खोज की, जबकि 1498 ई. में वास्कोडिगामा ने भारत की खोज की। इसके बाद ही एशिया और अफ्रीका में यूरोपीय सम्राज्यवाद प्रारम्भ हो गया। नये क्षेत्रों की खोज ने व्यापार का स्वरूप ही बदल दिया। औपनिवेशिक व्यापार के द्वारा नए कृषि उत्पाद आयातित किया जाने लगे और फिर यहाँ से उन्हें अन्य देशों में निर्यात किया जाता था। यूरोपीय व्यापार में वृद्धि होने से वहाँ वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला। इस व्यापारिक लाभ से यूरोप विश्व अर्थव्यवस्था का केन्द्र बनकर उभरा। एक महादेश से दूसरे महादेश तक सामान ले जाने में समुद्री व्यापार सस्ता और आसान साधन बन गया। इससे न केवल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आकार में वृद्धि हुई, बल्कि व्यापार में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं में भी काफी वृद्धि हुई। इस प्रकार आर्थिक लाभ के लिए की जाने वाली ये समुद्री यात्राएं मानव इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुईं। सोलहवीं शताब्दी में व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों में वृद्धि हुई और उत्पादन के तरीकों में अनेक बदलाव किये गये, जिन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

मार्को पोलो ने अपने वर्णन में एशियाई दौलत का विस्तृत उल्लेख किया था, इसलिए कोलम्बस सहित कई व्यापारी और समुद्री यात्री एशिया की ओर आकर्षित हुए। यूरोपीय और मध्य-पूर्व के बाजारों में चीनी वस्तुएँ काफी महँगी बिकती थीं। सत्रहवीं शताब्दी में डचों ने चीन से विलासिता की वस्तुओं का आयात प्रारंभ किया। इसके बदले चीन को चाँदी में भुगतान करना पड़ता था, क्योंकि चीन किसी वस्तु को नहीं खरीदता था। चूंकि व्यापार पर चीनी सरकार का कड़ा नियंत्रण था, लेकिन चीनी सरकार ने चांदी के खनन को प्रोत्साहन देने के लिए व्यापार में कुछ ढील दे दी। चीन और जापान के बीच व्यापार होने से चीन में चाँदी का आगमन तेजी से बढ़ा। पुर्तगालियों के चीनी व्यापार में शामिल होने के बाद इसमें और भी वृद्धि हुई। बाद में अंग्रेज, डच और फ्रांसीसियों के लिए चीनी दरवाजा खुल गया। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों के आगमन से चीन का व्यापार संतुलन बिगड़ गया, क्योंकि अंग्रेज चाँदी की जगह अफीम का व्यापार करने लगे। जब पश्चिमी देश चीन के साथ आक्रामक व्यापार करने लगे, यहीं से चीन में पश्चिमी साम्राज्यवाद की शुरुआत मानी जाती है।

मध्य काल में अरबों द्वारा हिन्द महासागर और भूमध्य सागर को जोड़ देने के बाद इन दोनों महासागरों के बीच अधिकांश व्यापार लाल सागर के मार्ग से होने लगा। कभी-कभी राजनीतिक अशांति के समय व्यापार फारस की खाड़ी के मार्ग से किया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी में स्वेज के बनने तक विश्व-व्यापार में अरब देशों का योगदान बहुत कम था, लेकिन तेल के स्रोत मिलने के बाद अचानक इसका महत्त्व बढ़ गया। इस तेल से ही अरब देशों की आधुनिक व्यापार व्यवस्था की शुरुआत मानी जाती है।

सोलहवीं शताब्दी में नए व्यापारिक मार्गों की खोज और व्यापार में वृद्धि के कारण आधुनिक विश्व अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई। इससे यूरोपीय समाज में आधारभूत परिवर्तन आया। पूंजीवाद का आगमन हुआ, व्यापार एवं उत्पादन के तरीकों में बदलाव आया, जनसंख्या में वृद्धि होने से शहरीकरण को बढ़ावा मिला और इससे औद्योगिक उत्पादों की मांग बढ़ने लगी। इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए आर्थिक ढाँचे और व्यापार में भी आधारभूत परिवर्तन किया गया। इससे वित्तीय गतिविधियों में भी वृद्धि हुई। इन सभी कारकों ने मिलकर यूरोप को आधुनिक युग में ले जाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

पन्द्रहवीं शताब्दी में व्यापार और वाणिज्य के प्रसार के कारण व्यापारिक संगठनों के स्वरूप में बदलाव आने लगा। आगे चलकर ज्वाएंट स्टॉक कम्पनियों का निर्माण किया जाने लगा। ये स्थानीय कम्पनियाँ होती थीं। इन कम्पनियों में जनता का पैसा भी लगा रहता था। यूरोप के विभिन्न देशों में सत्रहवीं शताब्दी में कई कम्पनियों की स्थापना की गई। जैसे—डच, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, द इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी, फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी आदि। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय अर्थव्यवस्था में भी अनेक बदलाव आए। वित्तीय लेन-देन के लिए भिन्न तरीकों को अपनाया जाने लगा; जैसे—ऋणपत्रों

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



की बिक्री की जाने लगी। लम्बी समुद्री व्यापारिक यात्राओं के कारण जोखिम बढ़ी, इससे बीमा की अवधारणा भी लोकप्रिय होने लगी।

यूरोप के कई क्षेत्रों में व्यापार और उत्पादन के क्षेत्र में निवेश करने के लिए पूँजी की जरूरत पड़ती थी, इसी को ध्यान में रखकर स्टॉक एक्सचेंजों का निर्माण किया गया। इस प्रकार यूरोप की समृद्धि बढ़ती गयी और वहाँ औद्योगिक क्रांति का आगमन हुआ, जिसने न केवल यूरोपीय अर्थव्यवस्था, बल्कि उपनिवेशों, साम्राज्यवादी प्रवृत्ति और बाजारी शक्ति के साथ-साथ समस्त संसार को प्रभावित किया।

इस भाग में चीन, अरब संसार और यूरोप में हुए सांस्कृतिक रूपांतरण का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। चीन के अनेक आविष्कार अरब के रास्ते यूरोप पहुँचे। इसने पश्चिमी यूरोप को तो पूरी तरह बदल दिया, लेकिन चीन पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ा। चीन के आविष्कार मुद्रण यंत्र ने जहाँ यूरोप में पुनर्जागरण और धर्मसुधार के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया, वहीं चीन में इससे परम्परागत विचारों का प्रचार-प्रसार किया गया। यूरोप में बारूद पहुँचने के बाद इसने मध्यकालीन किलों को ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार फ्रांस पश्चिमी यूरोप को सामंती, सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व से मुक्त करने में सहायक सिद्ध हुआ।

अरब में 900 से 1100 ई. के बीच शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हुआ। उच्च शिक्षा के लिए बड़ी संख्या में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। बगदाद में प्राचीन पांडुलिपियों के संरक्षण के लिए पुस्तकालयों का निर्माण करवाया गया। ऐसी मान्यता है कि अरब गणित से ही अंकगणित का विकास हुआ, किन्तु अरबों ने अंकगणित का ज्ञान भारत से सीखा और अरब देश से यह यूरोप पहुँचा। चूँकि यह अरब देश से यूरोप पहुँचा था, इसलिए इसे आज भी अरब अंक कहा जाता है। यद्यपि विज्ञान, प्रौद्योगिकी और संस्कृति के क्षेत्र में अरबों का ज्ञान किसी यूरोपीय देश से कम नहीं था। स्पेन का अरब देश पर अधिकार होने के बाद अरबी ज्ञान यूरोप के रास्ते यूरोप पहुँचने लगा। दरअसल में अरब के लोगों को नौकायन विज्ञान, जहाजरानी, मानचित्र के ज्ञान अन्य देशों से आगे थे। सुदूर पूर्व और यूरोप के बीच स्थित होने के कारण उन्होंने व्यापार में खूब लाभ कमाया।

अरब के लोग हेलेनेस्टिक संस्कृति के थे। इस संस्कृति का फैलाव उत्तर-पूर्व फारसी साम्राज्य और मिस्र तक था। इनका सम्बन्ध भारतीय संस्कृति के साथ भी था। चूँकि भारत के साथ उनका व्यापारिक जुड़ाव था, इससे उनके व्यापार और संस्कृति में समृद्धि आती गई। किन्तु सोलहवीं शताब्दी के बाद पश्चिमी देशों से युद्ध और आंतरिक विघटन के कारण उनकी प्रगति धीमी पड़ने लगी और इन्हीं कारणों से यहाँ आधुनिकीकरण देर से पहुँचा।

यूरोप में पुनर्जागरण और धर्मसुधार आंदोलन, बौद्धिक क्रांति, राष्ट्रीय-राज्यों के उदय तथा पूँजीवाद और मध्यम वर्ग के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। पुनर्जागरण आन्दोलन ने मध्ययुगीय सामाजिक मूल्यों की जगह आधुनिक सामाजिक मूल्यों का निर्माण किया। अब जीवन तथा जगत का महत्त्व बढ़ने लगा इसलिए कहा जाता है कि पुनर्जागरण की सबसे बड़ी देन मानव का आविष्कार है। अब मनुष्य का भौतिक जीवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गया। प्रकृति पर विजय, वैज्ञानिक आविष्कार तथा भौगोलिक खोज मनुष्य का प्रमुख लक्ष्य बन गया। इस तरह आधुनिक विज्ञान और कला की नींव पड़ी। पुनर्जागरण काल में लैटिन भाषा लोकप्रिय होने लगी, यूनानी और रोमन साहित्य की अमूल्य निधियों को नया जीवन मिला। ये सभी लोगों के लिए सुलभ होने लगी, इससे आधुनिकता के विकास में सहायता मिली। इस बौद्धिक आंदोलन का तात्कालिक प्रभाव लोगों के धार्मिक जीवन पर भी पड़ा। नवीन तार्किक और बौद्धिक दृष्टिकोण के उदय से जनता का ध्यान कैथोलिक धर्म में पनपी स्वेच्छाचारिता पर पड़ा, परन्तु देशी भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद होने के कारण अब इसकी पहुँच सर्वसाधारण तक हो गयी। इससे सामान्य लोग भी धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने लगे। धर्म के प्रति लोगों का अंधविश्वास दूर होने लगा। लूथर ने धर्म सुधार आंदोलन की शुरुआत की। इससे ईसाइयों में प्रोटेस्टेंट धर्म का उदय हुआ। प्रोटेस्टेंट सुधार आंदोलन ने लोगों को लेन-देन, उत्पादन या व्यवसाय के लिए कर्ज लेना आदि को धार्मिक अनुमति प्रदान की, इस प्रकार पूँजीवाद का विकास हुआ, जिसने यूरोप में औद्योगिक क्रांति लाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

यूरोप में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। पुरुष अपनी पत्नी को तलाक दे सकता था; गलत आचरण के आरोप में और चोर या डायन का आरोप लगाकर, हत्या करके। पुरुष फिर से दूसरा विवाह कर लेता था। जिन महिलाओं की शादी नहीं होती थी, उन्हें चर्च को दे दिया जाता था। चर्च में भी उनके साथ भेदभाव किया जाता था। इन महिलाओं की ऊँचे पदों पर नियुक्ति नहीं की जाती थी। धर्म सुधार आन्दोलन ने महिलाओं को शिक्षा देने की बात तो की, लेकिन सिर्फ इसलिए कि महिलाओं में बाइबिल पढ़ाना, अच्छी पत्नी और माँ के गुण विकसित हो सकें। औद्योगीकरण के बाद उद्योगों में महिला मजदूरों के नियुक्ति के बाद इनकी स्थिति और भी खराब हो गयी। आधुनिक युग के आगमन के पश्चात् महिलाएँ भी समानता के हक के लिए संघर्ष करने लगीं, लेकिन उनको यह समानता बहुत बाद जाकर मिली।

यूरोप में आधुनिक ज्ञान, विज्ञान, नयी खोज, आविष्कार, पुनर्जागरण, धर्मसुधार आदि के आगमन के पश्चात् वहाँ के सामाजिक मापदण्ड में भी परिवर्तन आया। अब दुनिया की सारी वस्तुस्थिति को नये मापदण्ड या नये दृष्टिकोण से देखा जाने लगा।

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

सारी चीजों को तर्क, पर्यवेक्षण, प्रयोग आदि के तराजू पर तौला जाने लगा। इससे यूरोप में वैज्ञानिक क्रांति का आगमन हुआ। वैज्ञानिक क्रांति को लाने में कोपरनिकस, केपलर, न्यूटन, गैलिलियो आदि वैज्ञानिकों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और इन वैज्ञानिकों और इनकी वैज्ञानिक खोजों ने यूरोप में आधुनिकता की आधार-शिला रखी।

मध्यकाल में युद्ध-कौशल, प्रौद्योगिक ज्ञान, सैन्य उपकरण से ज्यादा युद्ध व्यक्तिगत बहादुरी पर अधिक निर्भर करता था। सामंतों ने अपनी सुरक्षा के लिए किलानुमा महलों का निर्माण किया। बारूद, तोपों के आविष्कार के बाद इन सामंती किलों को गिराया जाने लगा। बन्दूक का आविष्कार होने से सामंतों के सैनिकों की व्यक्तिगत बहादुरी असफल होने लगी और वे सभी जगह पराजित होने लगे। इस नई युद्ध कला की प्रौद्योगिकी और विधि ने सामंतवाद के पतन और निरंकुश राज्यतंत्र और राष्ट्रीय शासकों के उदय, स्थानीय सैन्य बल के निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रारम्भिक सैन्य उपकरण में अनेक प्रकार का सुधार किया जाने लगा, हल्की तोपों का निर्माण किया गया, बंदूक-राइफल आदि में नई-नई प्रौद्योगिकी, युद्ध-नीति को शामिल किया गया। इन हथियारों को अब नौसेना में भी शामिल किया जाने लगा। नवीन सैन्य उपकरणों से युक्त नौसेना ने यूरोप के लिए नये-नये उपनिवेशों का निर्माण किया। इस तरह वाणिज्य-व्यापार में अभूतपूर्व प्रगति होने लगी। अतः यूरोप में औद्योगिक क्रांति का आगमन हुआ।

यूरोपीय इतिहासकार यूरोप को विश्व के शीर्ष में स्थापित करने में प्रौद्योगिकी को प्रमुख मानते हैं। इतिहासकार ब्राडल ने पन्द्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के बीच होने वाली प्रौद्योगिकीय क्रांतियों ने बारूद, तोपखाना, छापाखाना और नौकायन को प्रमुख माना है। ज्यामिति और अंकगणित में ज्ञान वृद्धि के कारण मानचित्र और सर्वेक्षण अधिक वैज्ञानिक होने लगे। बड़े और अच्छे जहाजों का निर्माण किया जाने लगा। छापाखाने के आविष्कार के बाद पुस्तकें सस्ते दामों पर मिलने लगी। इसकी पहुँच आम जनता तक हो गयी। इससे सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। आगे पुनर्जागरण और धर्म-सुधार आंदोलन की सफलता में छापखाने ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने यूरोप के परम्परागत समाज को आधुनिक समाज में परिवर्तित कर दिया।

उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि विभिन्न आविष्कारों से नई-नई प्रौद्योगिकी का आगमन हुआ, जिससे क्रमशः सामंतवाद का पतन होने लगा। सामंतवाद के पतन के परिणामस्वरूप निरंकुश राजतंत्र के अधीन केंद्रीकृत राज्यों का उदय होने लगा। निरंकुश राजतंत्र ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए व्यापारियों को अनेक सुविधाएँ प्रदान कीं, इससे पूँजीवाद का विकास हुआ।

साथ ही संवैधानिक परिवर्तनों और जन-आंदोलन के कारण राज्य के उदारवादी लोकतांत्रिक स्वरूप का विकास हुआ। किन्तु विश्व के सभी देशों में यह विकास एक साथ नहीं हुआ। कहीं पहले तो कहीं बाद में आधुनिकता का आगमन हुआ। व्यापार के क्षेत्र में नए समुद्री मार्गों की खोज के क्रम में ही अमेरिका की खोज हुई। इस प्रकार यूरोप और एशिया के बीच आवागमन और व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि होने लगी। बड़े पैमाने पर व्यापारिक गतिविधियों ने भी आधुनिक विश्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही विज्ञान, धर्म और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में हुए परिवर्तन ने इस गति को और तेज कर दिया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. 'आधुनिक विश्व' से आप क्या समझते हैं?**

**उत्तर**—मध्ययुग में कई परिवर्तनों के फलस्वरूप आधुनिक विश्व का उदय हुआ। आधुनिक विश्व के निर्माण में वाणिज्य, व्यापार के साथ-साथ प्रौद्योगिकी का विकास, वैज्ञानिक आविष्कार, साहित्यिक गतिविधियाँ, शिक्षा के लिए अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना, धर्मसुधार आंदोलन ने अपनी-अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन सारी नवीन तकनीकों ने तत्कालीन चुनौतियों का सामना करने के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन किये, जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक विश्व का आगमन हुआ। प्रारंभ में यह कहा जाता था कि औद्योगीकरण के कारण ही आधुनिक विश्व का निर्माण हुआ, किन्तु यह विचारधारा अब खंडित हो चुकी है।

विश्व में अनेक देश ऐसे हैं, जिनका आधुनिक विकास उद्योग की जगह कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था के कारण हुआ; जैसे–डेनमार्क। मध्यकाल में ही इटली की सर्वाधिक विकसित देश के रूप गिनती होती थी। किन्तु इससे आधुनिक देश बनने में शताब्दियाँ लग गईं। चूँकि प्रत्येक समाज ने अपना अलग मापदण्ड निर्धारित किया, इसलिए प्रत्येक देश में आधुनिकता का आगमन भिन्न-भिन्न कालों में हुआ। सामान्यतः यह माना जाता है कि प्रशासन, कानून-व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और समाज, धर्म और चिंतन जैसे अनेक कारकों में क्रमिक सुधार के ही कारण आधुनिकता का आगमन होता है।

*मार्शल हॉजसन* ने अपनी पुस्तक 'द वेन्चर ऑफ इस्लाम : कॉन्शिएंस एंड हिस्ट्री इन द वर्ल्ड सिविलाइजेशन' में इस्लामी सभ्यता का विश्व इतिहास के साथ जोड़कर अध्ययन किया है। हॉजसन का मानना है कि परवर्ती अब्बासी खिलाफत से लेकर सोलहवीं शताब्दी के बाद साम्राज्य के उदय तक पतन का युग नहीं है, बल्कि इसी काल में इस्लामी सभ्यता का विकास हुआ। इसकी संस्कृति का प्रसार चीन, भारत, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम के साथ-साथ बालकन और भूमध्यसागरीय देशों में हुआ। साथ ही साथ उनका यह भी मानना है कि पुनर्जागरण के कारण आधुनिक युग का प्रारंभ नहीं हुआ, बल्कि पुनर्जागरण के कारण यूरोप अन्य प्रमुख सभ्यताओं की संस्कृतियों के बराबर आ गया। हॉजसन के

www.neerajbooks.com



अनुसार यूरोप ने एशियाई सभ्यताओं के गुणों को ग्रहण करके आधुनिकता का दर्जा प्राप्त किया।

विश्व के सभी देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एक साथ शुरू नहीं हुई। भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग समय पर आधुनिकता की शुरुआत हुई। मध्यकाल में कई एशियाई देश यूरोप से आगे थे। जिस समय यूरोप सामंतवादी व्यवस्था से बाहर निकलने का प्रयास कर रहा था, उस समय अरब और चीन जैसे देश कई दृष्टिकोण से उससे आगे थे, किन्तु इस समय यूरोप की प्रगति की रफ्तार बहुत तेज थी, जबकि गैर-यूरोपीय देशों में यह रफ्तार बहुत धीमी थी। इन्हीं कारणों से पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद यूरोप ने विश्व में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। अपनी वैज्ञानिक खोजों, व्यापार और साम्राज्यवाद के बल पर वह विश्व का शासक बन बैठा। इसके बाद कई सभ्यताएं एक-दूसरे के करीब आईं तथा उन्होंने एक-दूसरे से सम्पर्क स्थापित किया। औद्योगीकरण, साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया। अब सभी देश साम्राज्यवाद से बचने के लिए अपने समाज को आधुनिक बनाने के लिए प्रतिबद्ध हो गये।

उपर्युक्त चर्चा से पता चलता है कि आधुनिक युग के आगमन में व्यापार, वाणिज्य, नवीन प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक आविष्कार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक विश्व को लाने में उद्योगों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया, लेकिन कुछ ऐसे भी देश थे जहाँ आधुनिकता का आगमन कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था के कारण हुआ। विश्व के सभी देशों में आधुनिकता का आगमन एक साथ नहीं हुआ। जैसे पश्चिमी देशों में आधुनिकता का प्रवेश पहले हुआ, तो एशियाई और अरब देशों में बाद में हुआ। आगे चलकर यूरोप ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण अरब और एशियाई देशों में आधुनिकता की गति तीव्र की।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

**प्रश्न 2. यूरोप में आए कृषीय बदलावों की तुलना चीन और अरबों से कीजिए।**

**उत्तर**–मध्यकालीन यूरोपीय समाज में सामंतवाद का बोलबाला था। सोलहवीं शताब्दी में नए व्यापारिक मार्गों से होने वाले व्यापार के कारण यूरोप का महत्त्व बढ़ने लगा, किन्तु इसके पूर्व ही सामंतवाद का पतन होने लगा था। सामंतवादी काल में यूरोप कृषि क्षेत्र के संकट से गुजर रहा था, क्योंकि कृषि पर जनसाधारण का बोझ बढ़ गया था। साथ ही सामंती अधिपतियों द्वारा कृषकों का शोषण भी बढ़ गया था। इस काल में करों की अधिक मांग, युद्ध के कारण बढ़ता खर्च और मूल्य वृद्धि और जनसंख्या के दबाव ने कृषि का विकास धीमा कर दिया था। वाणिज्य-व्यापार के उदय के परिणामस्वरूप सामंतवाद का पतन होने लगा। जहाँ-जहाँ बाजार की ये शक्तियाँ क्रियाशील हुईं, वहाँ कृषि व्यवस्था में भी बदलाव आने लगा। इससे सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया और सामाजिक संतुलन भी बदला। मुख्य रूप से निम्न वर्ग को अधिक आजादी एवं सुरक्षा मिली।

सामंतवाद के पतन और शहरी क्षेत्रों में कृषि उत्पाद की बढ़ती माँगों से कृषि उत्पादों के दाम बढ़ने लगे, जिसके कारण कृषि का व्यवसायीकरण होने लगा। इसने कृषि से जुड़े भूमिपतियों को विकास के नये अवसर प्रदान किए। इस प्रकार कृषि उत्पादन की बढ़ती माँगों को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक जमीन पर खेती की जाने लगी। कृषि में नई तकनीकों को अपनाकर प्रति इकाई उपज को भी बढ़ाया गया।

मुख्यत: सोलहवीं शताब्दी में कृषि के लिए अनेक प्रौद्योगिकी एवं तकनीकों का विकास किया जा चुका था। लोग अधिक से अधिक खेतों का उपयोग कृषि में करने लगे थे और खेतों की उपयोगिता को देखते हुए निचले देशों के कई हिस्सों में खेत परती छोड़ने की प्रथा को छोड़ दिया गया। परती खेतों में मटर, फली, शलजम और हरी सब्जियाँ तथा चारा उपजाया जाने लगा। फसल बदल-बदलकर रोपना, मेड़ बनाना, अधिक गोड़ाई करना आदि विधियों के कारण कृषि उपज में अभूतपूर्व वृद्धि हो गई। धीरे-धीरे विभिन्न तकनीकों के कृषि में उपयोग से यूरोप में कृषि क्रांति का आगमन हो गया।

*रॉबर्ट टेम्पल* नामक विद्वान का मानना है कि फसल चक्र, मेड़ बनाने, अधिक गोड़ाई करना आदि प्रविधि का विकास मूलत: चीन में हुआ था और यहाँ से इन विधियों का प्रसार अन्य देशों में हुआ। इन्हीं तकनीकों को अपनाकर यूरोप में कृषि क्रांति का आगमन हुआ।

अरब देशों में कृषि लोकप्रिय होने लगी और इस क्षेत्र में कई प्रयोग किए गए। उमय्यद और आरम्भिक अब्बासी खलीफाओं के शासन काल में टिगरिस और यूफ्रेटस नदियों पर सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण किया गया, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में कृषि उपज में वृद्धि हुई। अरब लोगों के माध्यम से चावल, गन्ना, कपास के पौधे, केसर, पालक और कई प्रकार के फल स्पेन पहुँचे और यहाँ से इन पौधों का प्रसार यूरोप के अन्य क्षेत्रों में हुआ। चीन और अरब राज्यों की सरकारों ने बाढ़ नियंत्रण, कृत्रिम सिंचाई और कृषि उत्पादों को बाजार तक पहुँचाने के लिए सड़क निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। चीन में अनेक कृषीय तकनीकों का विकास किया गया; जैसे–चौड़ा चेन पम्प, गोड़ाई के लिए बत्तख की गर्दन के आकार की कुदाल, ओसाने के लिए पंखा और एक सीध में मेढ़ पर बीज बोने के लिए बहुनलिकाएँ आदि। फसलों में सुधार के लिए मिट्टी का सर्वेक्षण और संरक्षण और नहरों को जोड़ने के सम्बन्ध में विभिन्न कार्य किया गया। यह परिवर्तन क्रांतिकारी रूप से नहीं हुआ। किन्तु यूरोप में कृषि सम्बन्धी परिवर्तन उत्पाद की

www.neerajbooks.com

जरूरतों के लिए किया जाने लगा। इससे कृषि क्षेत्र में समृद्धि आयी और इसका प्रभाव सामाजिक संरचना पर भी पड़ा। इससे परम्परागत कृषि अर्थव्यवस्था का रूपांतरण बाजारी अर्थव्यवस्था के रूप में हो गया।

अरब और चीन में कृषि उत्पादन मुख्यत: क्षेत्रीय और प्रांतीय आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाता था। वहीं यूरोपीय कृषि उत्पाद का राष्ट्रीय सीमा से बाहर व्यापार के लिए उत्पादन किया जाने लगा। इस प्रकार यूरोप का बाल्टिक क्षेत्र अनाज से भर गया और यहाँ से समुद्री मार्गों के द्वारा अनाजों को अन्य देशों में भेजा जाने लगा। कुछ अन्य यूरोपीय देशों में कृषि से जुड़े अन्य व्यवसायों को प्रोत्साहन दिया गया, जैसे–पशुपालन आदि। कृषि के विकास के लिए जल-निकास, बाँध निर्माण और कई क्षेत्रों में भूमि पुनर्वितरण कार्यक्रम चलाया गया। खेतों में बाड़ लगाई गई। परती भूमि छोड़ने की जगह उस भूमि पर चरागाह की कृषि की जाने लगी। अब सघन कृषि की जाने लगी। इस तरह यूरोप में अनाजों के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में भी विस्तार हुआ।

अत: उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि प्रारम्भ में कृषि क्षेत्र में अरब और चीन ने अनेक तकनीकों का विकास किया, किन्तु इन तकनीकों का विकास मुख्यत: कृषि उत्पाद की क्षेत्रीय आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया गया। इसके साथ ही अरब और चीन में कृषि क्षेत्र में विकास तो हुआ, लेकिन यह विकास बहुत ही धीमा था, जबकि यूरोप में कृषि क्षेत्र ने विकास की गति बहुत ही तेज थी। यहाँ के कृषक कृषि से अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए अनाज की बिक्री और निर्यात पर विशेष बल देने लगे। बाजार की आवश्यकता के अनुसार कृषि करने से कृषि उत्पादों के मूल्य में वृद्धि हुई, जिससे किसानों में समृद्धि आयी। इससे पूंजीवादी कृषि का विकास हुआ, जबकि चीन और यूरोप में कृषि परम्परागत ही बनी रही।

**प्रश्न 3. चीन में आधुनिक युग का आरंभ कब हुआ?**

**उत्तर–**उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक चीन पृथकता की नीति को अपनाता आ रहा था। वह संसार के किसी देश के साथ किसी स्तर पर सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता था, किन्तु चीन की समृद्धि पश्चिमी देशों के लिए आकर्षण का मुख्य केन्द्र थी। यूरोप के विभिन्न राज्य किसी तरह चीन का दरवाजा खोलकर उसके भीतर घुसकर व्यापार करना चाहते थे। सत्रहवीं शताब्दी के अंत से ही उनका आना-जाना शुरू हो गया था, किन्तु चीन की सरकार द्वारा उनके प्रवेश पर कई तरह से रुकावटें डाली जाती थीं।

बहुत प्रयास के बाद यूरोपीय व्यापारियों को कैंटन शहर से बाहर रहकर छोटे पैमाने पर व्यापार करने की आज्ञा मिल गयी। आरम्भ में यूरोपीय व्यापारी चीन से केवल माल ही खरीदते थे। बेचने के लिए उनके पास कोई वस्तु नहीं थी। चीनी, रेशम, चाय और चीनी मिट्टी के बर्तन की माँग यूरोप में बहुत थी। यूरोपीय व्यापारी इन्हीं वस्तुओं को खरीदकर यूरोप में बेचते थे और चीन को इसका मूल्य सोना-चाँदी में चुकाते थे। यूरोप की राष्ट्रवादी सरकारों द्वारा इस व्यापार पर आपत्ति प्रकट की गई, क्योंकि इस व्यापार के कारण सोना-चाँदी देश से बाहर जा रहा था। इसलिए यूरोपीय देशों ने व्यापारिक लाभ प्राप्त करने के लिए चीन पर कब्जा कर लिया। उन्नीसवीं शताब्दी में चीनी सरकार द्वारा पश्चिमी साम्राज्यवाद का सामना करने के लिए चीन व्यापक रूप से राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक सुधार किया गया।

दरअसल सोलहवीं शताब्दी से ही दक्षिणी चीन में पुर्तगाली और स्पेनी व्यापारी समुद्री मार्ग से आने लगे थे। इन व्यापारियों के साथ ईसाई मिशनरी भी चीन आए। इसके बाद सत्रहवीं शताब्दी में रूस की सेना लाइबेरिया पार कर मंचूरिया की सीमा पहुँच गयी और इस तरह रूस ने चीन की पृथक्कता की नीति को खंडित कर दिया। सोलहवीं शताब्दी के बाद मंचू राजवंश का पतन होने लगा और इसके स्थान पर चिंग राजवंश की स्थापना हुई। इस राजवंश ने यूरोपीय साम्राज्यवाद से सामना करने के लिए अनेक सुधार कार्य किये।

इसलिए इतिहासकारों में इस बात को लेकर मतभेद है कि आधुनिक चीन का प्रारंभ सोलहवीं शताब्दी से माना जाए या उन्नीसवीं शताब्दी से। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि अफीम युद्ध (1839-42) के बाद ही चीन में विदेशी साम्राज्यवाद शुरू हुआ। इसके पश्चात् ही चीन ने विदेशी खतरे को देखते हुए आधुनिकीकरण की दिशा में अनेक सुधार कार्य प्रारम्भ किए। चीन के पड़ोसी देश जापान में भी सुधार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप जापान एक आधुनिक राष्ट्र बन गया। इस मत से भिन्न मत रखने वाले कुछ इतिहासकार जिसमें अधिकतर चीनी विद्वान हैं, का मानना है कि मिंग राजवंश (1368-1643) से चिंग राजवंश (1644-1911) के काल में भौगोलिक खोजियों, व्यापारियों और मिशनरियों का आगमन चीन में हुआ। इसी युग में पहली बार पश्चिमी शिक्षा से चीन का परिचय हुआ और इसने परिवर्तन की प्रक्रिया तेज कर दी। साथ ही चीन में पश्चिमी देशों के हस्तक्षेप ने उत्प्रेरक का काम किया, जिसके फलस्वरूप परम्परागत चीन, आधुनिक चीन में बदलने लगा।

चीन ने अपने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में पूँजीवाद पर आधारित आधुनिकीकरण के पश्चिमी प्रारूप को कभी भी पूर्णत: ग्रहण नहीं किया। क्योंकि चीन ने 1911 की क्रांति तक अपनी राजनीतिक संरचना को कभी भी पूर्णत: बदला और अपनी परम्परागत विरासत को बचाए रखा। चीनी राजवंश का शासन 1911 ई. तक रहा और इसने पश्चिमी प्रभाव का मुकाबला करने के लिए समय-समय पर नए प्रशासनिक सुधार किये। जैसे–1638 ई. में

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



तिब्बत, मंगोलिया तथा पश्चिमी क्षेत्रों से जुड़े मामलों की देखरेख के लिए लि फान युआन नामक विभाग, केन्द्रीकृत निर्णय लेने के लिए 1729 ई. में महापरिषद, 1861 ई. में प्रत्यक्ष विदेशी सम्बन्धों को देखने के लिए त्संगली यमेन आदि विभागों की स्थापना की गई। इस तरह चीन में क्रमश: सुधार कार्य होते रहने के कारण आधुनिक चीन का निर्माण हुआ।

ऊपर के विश्लेषण से पता चलता है कि मध्यकाल के प्रारम्भ में चीन पृथक्तावादी नीति का पालन कर रहा था, किन्तु धीरे-धीरे यूरोपीय देशों ने व्यापारिक लाभ प्राप्त करने के लिए चीन की सम्प्रभुता को खत्म कर दिया। बाद में चीन ने पश्चिमी देशों से प्रेरित होकर अपना सुधार कार्य शुरू किया और धीरे-धीरे एक आधुनिक देश में परिवर्तित हो गया। चीन ने पश्चिमी देशों से प्रेरणा तो प्राप्त की, किन्तु उनके पूँजीवादी मॉडल को अपने आधुनिकीकरण के लिए इस्तेमाल नहीं किया।

**प्रश्न 4. अरब राज्यों के आधुनिक बदलाव में फ्रांस की भूमिका की चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–प्रारम्भ में अब्बासी राजवंश के काल में ही अरब राज्यों के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूपातंरण की शुरुआत हुई। 1258 ई. के बाद अब्बासी खिलाफत का विभाजन हो गया और ये कई राजनीतिक और क्षेत्रीय शक्तियों में बँट गए। खिलाफत मुख्यत: तीन क्षेत्रों में बँटे और फिर छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित हो गए। पहले में इराक और ईरान दूसरे में मुख्य क्षेत्र मिस्र था, जिसका सीरिया और फिलिस्तीन पर नियंत्रण था और तीसरे उत्तरी अफ्रीका और भूमध्यसागर का क्षेत्र था। जिसका विस्तार स्पेन तक था, धीरे-धीरे अरब देशों का राजनीतिक पतन होने लगा। इसके बाद अरब क्षेत्रों पर ऑटोमन साम्राज्य और ब्रिटेन का अधिकार हो गया। इस तरह मध्य युग में अरबों का इतिहास पूर्णत: ऑटोमन साम्राज्य से जुड़ गया। अब ऑटोमन साम्राज्य ने अपना साम्राज्य विस्तार शुरू किया। पन्द्रहवीं शताब्दी में ऑटोमन साम्राज्य तुर्की पर अधिकार करके भूमध्यसागर और पूर्वी यूरोप में साम्राज्य विस्तार करने लगे। ऑटोमन तुर्की ने दक्षिण की ओर बढ़ते हुए 1517 ई. में हिजान पर अधिकार कर लिया। हिजाज पर ममलुकों का कब्जा था, जो मिस्र से शासन करते थे। सीरिया और मिस्र ने 1516-17 ई. में पराजित होकर आत्मसमर्पण कर दिया और 1535 तक बगदाद पर भी कब्जा कर लिया गया।

अरब राज्यों से अंग्रेजों ने अपना व्यापारिक सम्बन्ध 17वीं शताब्दी से शुरू किया। उस समय एडेन (अदन) एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था, जो अरब प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित था। चूँकि यह बंदरगाह एशिया और अफ्रीका व्यापार के मार्ग में स्थित होने के साथ सामारिक रूप से भी महत्त्वपूर्ण था, इसलिए अंग्रेजों ने यहां पर कारखाना स्थापित किया, किन्तु ऑटोमन द्वारा इस बंदरगाह पर कब्जा कर लेने के बाद उन्होंने मुख (मोखा) में कारखाना स्थापित किया। 1763 ई. में सप्तवर्षीय युद्ध के बाद लाल सागर पर अंग्रेजों ने वर्चस्व स्थापित कर लिया।

नेपोलियन ने 1798 ई. में मिस्र पर अधिकार कर लिया। इस घटना को इतिहास में एक युगान्तकारी घटना माना जाता है। यहीं से अरब देशों का अतीत से सम्बन्ध विच्छेद होने की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। नेपोलियन ने काहिरा में एक अरबी छापखाना स्थापित किया और इस छापखाने से सरकारी प्रचार किया जाने लगा। उसने एक एकेडमी लिटरेरी की भी स्थापना की। इस प्रकार पश्चिम से नया सम्बन्ध स्थापित हुआ, जिससे बौद्धिक मानसिकता का विकास हुआ, क्योंकि इसके पहले अरब लोग परम्परागत जीवन ही जीते आ रहे थे। मिस्र पर नेपोलियन के कब्जे के बाद यहाँ स्वायत्त पश्चिमोन्मुख राजवंश की स्थापना की गई। इससे प्रेरित होकर कई सीरियाई और लेबनानी लेखक यहाँ स्वतंत्रता का माहौल देखकर आने लगे। इस तरह मिस्र अब पुनर्जागरण का केन्द्र बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी में अन्नादाह अल-अदाबिया नामक साहित्यिक आंदोलन चलाया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ऑटोमन साम्राज्य के पतन के बाद यह आंदोलन दूसरे देशों में भी चलाया गया।

हम अरबों की प्रतिक्रिया में अन्तर्विरोध पाते हैं, क्योंकि एक ओर तो वे पश्चिम के साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे, तो दूसरी ओर यूरोपीय विचारों, राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और आत्मनिर्भरता और आधुनिक तकनीक को ग्रहण कर रहे थे।

अगले चरण में मिस्र ने सीरिया पर कब्जा (1831-40) में कर लिया। यह राष्ट्रवाद की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है। क्योंकि अरब क्षेत्र की पूरी आबादी को एक राष्ट्र के रूप में देखा जाने लगा। सीरिया में पश्चिमी विचारों को ग्रहण कर एक बौद्धिक आन्दोलन की शुरुआत की गई। आगे चलकर अरब स्थानीय हितों और प्रतिक्रियाओं के कारण छोटे-छोटे राज्यों में विखण्डित हो गया। सबसे पहले 1927 ई. में यह प्रक्रिया सऊदी अरेबिया से शुरू हुई। 1960 और 70 के दशक में अंग्रेजों के यहाँ से जाने के बाद भी प्रतिक्रिया चलती रही। इस प्रकार अरब का आधुनिकीकरण पश्चिमी देशों से भिन्न तरीके से हुआ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में अरब देश विभिन्न खंडों में विभाजित थे और परम्परागत रूप से ही जीवन जी रहे थे। लेकिन फ्रांस द्वारा मिस्र पर कब्जा होने के बाद ही यहाँ आधुनिक विचारों और तकनीकों का आगमन हुआ। इससे यहाँ के लोगों के बौद्धिक स्तर का विकास होने लगा। अब यहाँ के लोग पूरे अरब को एक राष्ट्र के रूप में देखने लगे। इसलिए कहा जा सकता है कि फ्रांस के आगमन के बाद ही अरब आधुनिक बदलाव के मार्ग पर चलने लगा।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**प्रश्न 5. यूरोपीय समाज में हुए परिवर्तन में पारसमुद्रीय व्यापार की भूमिका पर प्रकाश डालिए।**

**उत्तर**–1453 ई. में ऑटोमन साम्राज्य द्वारा कस्तुनतुनिया पर कब्जा कर लेने के बाद यूरोपीय देशों को एशिया से व्यापार करना कठिन हो गया। इसके पूर्व यूरोपीयन देश स्थल मार्ग द्वारा एशिया से व्यापार करते थे। आगे मुसलमानों और ईसाइयों के बीच धर्मयुद्ध शुरू हो गया। इसके बाद ही पुर्तगालियों और स्पेनवासियों ने एशिया जाने के लिए नए समुद्री मार्ग की खोज करनी शुरू की। कोलम्बस ने 1492 में अमेरिका की खोज की और 1498 ई. में वास्कोडिगामा ने भारत जाने वाले समुद्री रास्ते का पता लगाया। इसी के साथ ही एशिया और अफ्रीका में यूरोपीय साम्राज्यवाद की शुरुआत हुई। इन समुद्री मार्गों की खोज होने के पश्चात् दुनिया के विभिन्न देश एक-दूसरे से जुड़ने लगे। चूँकि यूरोप की अर्थव्यवस्था का इस काल में तीव्र विकास हुआ था, इसलिए यह विश्व अर्थव्यवस्था का केन्द्र बन गया। इस तरह यूरोप में भी कई परिवर्तन हुए। कुछ परिवर्तन तेजी से और कुछ अचानक हुए इस प्रकार यूरोप में एक नई जीवन शैली का विकास हुआ।

*फर्नांड ब्राडल, इमैन्युएल वालर्सटाइन, एरिक आर. वोल्फ* आदि इतिहासकारों ने समुद्री खोजों के बाद यूरोपीय जनसंख्या के देशांतरण पर प्रकाश डाला है। इनका मानना है कि अफ्रीका और एशिया की जनसंख्या पहले से सघन थी, इसलिए यहाँ देशांतरण नहीं के बराबर ही हुआ। किन्तु अमेरिका और वेस्ट इंडीज में देशांतरण के लिए अवसर थे, इसलिए इन देशों पर कब्जा जमाया गया। बहुत संख्या में पुर्तगाली, ब्राजील, स्पेनवासी मध्य और दक्षिण अमेरिका तथा वेस्ट इंडीज गए। इसके बाद डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी और जर्मन बड़ी संख्या में उत्तरी अमेरिका और कनाडा जाने लगे। इन लोगों के देशांतरण का मुख्य उद्देश्य अपनी सामाजिक हैसियत बढ़ाना, शोषण, व्यापार, नई भूमि पर कब्जा, निरंकुश शासन और शोषणात्मक धर्म से मुक्ति पाना था। साथ ही साथ बहुत सारे मिशनरियों का भी देशांतरण हुआ, क्योंकि ये अपने धर्म का प्रचार इन क्षेत्रों में करना चाहते थे।

इन नए क्षेत्रों की खोज के बाद व्यापार का स्वरूप भी बदल गया। यूरोपीय देशों द्वारा इन औपनिवेशिक देशों से व्यापार के द्वारा नए कृषि उत्पाद आयातित किए गए। ये नये उत्पाद भोजन के दृष्टिकोण से पौष्टिक थे। इनमें प्रमुख थे–आलू, तम्बाकू, टमाटर, कोको, मक्का, मूंगफली, वनीला, रबर और लोबिया। ये उत्पाद धीरे-धीरे यूरोपीय भोजन में शामिल हो गये और बाद में पूरी दुनिया में इनका प्रसार हो गया। मक्का और आलू दो ऐसी फसलें थीं जिन्होंने काफी हद तक यूरोप की बढ़ती जनसंख्या की भूख मिटाने की समस्या का समाधान कर दिया। नई फसलों के आगमन, ग्रहण और इन्हें दूसरे जलवायु प्रदेशों में उपजाने से लोगों के पोषण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। जहाँ आलू यूरोप के कुछ हिस्सों में प्रमुख भोजन हो गया, वहीं जई और ज्वार का स्थान धीरे-धीरे मक्का ने ले लिया। अमेरिकी सब्जी टमाटर ने पूरी दुनिया के लोगों के भोजन में एक नई खाद्य वस्तु जोड़ दी। अब दैनिक उपयोग की वस्तुओं का प्रतिदिन आदान-प्रदान होने लगा। जैसे–एशियाई चावल, अदरक, काली मिर्च, चाय और कॉफी विश्व के सभी देशों में पहुँचने लगा।

जनसंख्या के देशांतरण से एक दूसरी हानि भी उठानी पड़ी, क्योंकि इसके कारण दोनों दिशाओं में बीमारियों का भी आदान-प्रदान हुआ। जैसे पीला ज्वर और सिफलिस ने यूरोप की जनसंख्या को प्रभावित किया। साथ ही चेचक, खसरा, चिकेन पॉक्स और ब्यूबोनिक प्लेग जैसी बीमारियों का यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में प्रसार हुआ। जब 1518 ई. में एशिया, अफ्रीका, अमेरिका में चेचक के प्रकोप से लोगों की मृत्यु हो गई, यूरोपीय देशों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के कारण इनका अमानवीय चेहरा भी प्रकट होने लगा; जैसे दास व्यापार। दास व्यापार के द्वारा हजारों अफ्रीकियों और एशियाइयों को यूरोप या अन्य देशों से लाया जाता था। इनसे जबरन या अमानवीय तरीके से काम करवाया जाता था। इन शोषणकारी कार्यों से अश्वेतों और रेड इण्डियन लोगों की जनसंख्या घटने लगी। एक अनुमान के अनुसार 1500 ई. और 1800 ई. के करीब ग्यारह मिलियन दासों का आयात किया गया।

यूरोपीय देशों द्वारा व्यापारिक मार्गों की खोज के बाद व्यापार में भरपूर वृद्धि हुई। व्यापार में वृद्धि के परिणामस्वरूप विनिमय पर आधारित वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलने लगा। इससे यूरोपीय लोगों में समृद्धि आयी। इस तरह एक नवीन बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ। इस बुर्जुआ वर्ग ने सामंतवाद के पतन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह सोलहवीं शताब्दी में व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों में तेजी आयी और उत्पादन का तरीका भी बदला, जिसके सम्मिलित प्रभाव से यूरोप में पूँजीवादी व्यवस्था का आगमन हो गया।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि नए व्यापार सम्पर्कों और समुद्री मार्गों के द्वारा दुनिया के विभिन्न भागों के जुड़ने के परिणामस्वरूप यूरोप अब उभरती विश्व अर्थव्यवस्था का केन्द्र बन गया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आकार में वृद्धि के साथ व्यापार की जाने वाली वस्तुओं में भी परिवर्तन होने लगा। इस आर्थिक लाभ ने यूरोपीय समाज को भी प्रभावित किया। इसे व्यापारिक लाभ के कारण यूरोपीय समाज में एक नवीन बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ। यह वर्ग सामंतवाद के पतन के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक सिद्ध हुआ। साथ ही साथ कृषि के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। कृषक वर्ग ने अनेक नवीन फसलों को यूरोपीय कृषि में शामिल किया, और अब कृषि का व्यवसायीकरण होने लगा अर्थात् उनकी फसलों को प्राथमिकता दी जाने लगी, जिससे अधिक-से-अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त हो। इससे कृषक वर्ग में समृद्धि आयी।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**प्रश्न 6. चीनी विदेश नीति की प्रकृति का परीक्षण कीजिए। चीन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?**

**उत्तर**–चीन शुरू से ही पृथकता की नीति का पालन करता आ रहा था। वह बहुत हद तक आत्मनिर्भर देश था, लेकिन बढ़ती जनसंख्या सम्बन्धी समस्या, मुद्रा सम्बन्धी समस्याएँ तथा विनिमय के माध्यम के रूप में चाँदी पर निर्भर था। चाँदी की घरेलू उत्पादन में आयी कमी के कारण उसे अपनी विदेश नीति में परिवर्तन करना पड़ा। अपने बाजार को विदेशी व्यापारियों के लिए खोलना पड़ा, जिससे चाँदी का आयात हो सके।

चूँकि मिंग राजवंश में राजनीतिक स्थिरता आयी और आर्थिक संकट कम होने लगा। इसी समय यूरोपीय लोग एशिया और अमेरिका पहुँचने के लिए नए व्यापारिक मार्ग खोज रहे थे। यूरोप और मध्य-पूर्व के बाजारों में चीनी माल महँगा बिकता था। हिन्द महासागर में पुर्तगाली व्यापारियों के आगमन के बाद चीनी माल का बाजार तक पहुँचना आसान हो गया। अब चीनी पोर्सलिन काफी मात्रा में लिस्बन और एन्टवर्प तक पहुँचने लगा। सत्रहवीं शताब्दी में डचों ने काफी मात्रा में चीन से विलासिता की वस्तुओं का आयात करना शुरू किया। चीनी व्यापारी अपने सामानों के बदले यूरोप से कुछ नहीं खरीदते थे, क्योंकि उन्हें सिर्फ इसके बदले चाँदी (बुलियन) की जरूरत होती थी। इसलिए यह व्यापार चीन के पक्ष में था।

चीनी सम्राज्य ने चाँदी की आवश्यकता के कारण ही व्यापार नीति में कुछ ढील दी थी, फिर चीनी सरकार का व्यापार पर कड़ा नियंत्रण था। किन्तु इससे चाँदी के उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई। 1460 ई. और 1530 ई. के बीच मध्य यूरोप की चाँदी की खानों के उत्पादन में करीब 500 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इससे पश्चिम यूरेशिया की आर्थिक गतिविधियों में उछाल आ गया। यहाँ के व्यापारी मुख्य रूप से चीन से विलासिता की वस्तुएं खरीदते थे। इस तरह यूरोप से चाँदी चीन पहुँच जाती थी। आगे चलकर मध्य और दक्षिण अमेरिका में चाँदी की खानें मिली। इसके बाद धातु के रूप में चाँदी का अन्तर्राष्ट्रीय प्रचलन बहुत बढ़ गया। इस तरह चाँदी एशिया में तीन मार्गों से आने लगी–

1. मैक्सिको के पश्चिमी तट पर स्थित अकापुलो से फिलिपीन्स में मनीला तक।
2. अमेरिका में स्पेनी उपनिवेशों से पुर्तगाल तक और पुर्तगाली व्यापारियों के द्वारा एशिया पहुँचता था।
3. डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी भी एशियाई सामान खरीदने के लिए भारी मात्रा में चाँदी ले जाते थे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जापान में हिडियोशी और तोकुगावा ईयासू के शासनकाल में जापान का राजनीतिक एकीकरण हुआ। जापान में चाँदी का उत्पादन तेजी से बढ़ने लगा। चीन से जापान के व्यापार द्वारा चीन में चाँदी के आगमन तेजी से होने लगा और पुर्तगालियों के इस व्यापार में सम्मिलित हो जाने से इसमें और भी वृद्धि हुई। चीन के मकानों में पुर्तगालियों के आने से अंग्रेजों, डचों और फ्रांसीसियों के लिए भी वहाँ का दरवाजा खुल गया। स्पेन और मनीला से व्यापार में तेजी आने से चीन को फायदा हुआ, क्योंकि इन देशों में चीनी रेशम का आयात तेजी से बढ़ा। किन्तु इस विदेशी व्यापार और चाँदी के आयात ने चीन को अनेक समस्याओं से ग्रस्त कर दिया। चूँकि चीन में चाँदी का खनन की प्रौद्योगिकी का विकास नहीं हो सका, इसलिए इस धातु के संकट को कभी भी दूर नहीं किया जा सका। चाँदी के अत्यधिक आयात होने से शहरीकरण की प्रक्रिया बढ़ गयी और मुद्रा सम्बन्धी उतार-चढ़ाव और व्यावसायिक सट्टेबाजी में वृद्धि हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी में चीनी व्यापार में अंग्रेजों के शामिल होने के बाद चीन का व्यापार-संतुलन बिगड़ गया, क्योंकि अंग्रेज अब चाँदी की जगह चीन में अफीम बेचने लगे। इसके बाद पश्चिमी ताकतों ने आक्रामक व्यापार का जो रवैया अपनाया, वह चीनी सरकार के लिए मुसीबत बन गया। चीन सरकार द्वारा अफीम पर प्रतिबन्ध लगाने के पश्चात् चीन और ब्रिटेन के बीच अफीम युद्ध शुरू हो गया। इस युद्ध में चीन की पराजय हुई। इसके साथ ही चीन में पश्चिमी साम्राज्यवाद की शुरुआत हुई। आगे चलकर चीन ने पश्चिमी ज्ञान, प्रौद्योगिकी को अपनाकर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू की।

अतः उपर्युक्त बातों से पता चलता है कि चीन ने चाँदी की कमी के कारण ही अपने विदेश नीति में परिवर्तन किया। प्रारम्भ में यूरोपीय देशों के व्यापार से चाँदी का आगमन तेजी से हुआ, किन्तु बाद में ये देश चाँदी के बदले अन्य वस्तुएं बेचने लगे, जिस पर चीन सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया। अन्ततोगत्वा यूरोपीय देशों ने चीन पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। आगे चलकर चीन ने पश्चिमी शक्तियों से प्रेरित होकर अपना आधुनिकीकरण किया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार चीन में परिवर्तन की प्रेरक शक्ति बना।

**प्रश्न 7. यूरोपीय वाणिज्यिक रूपांतरण की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ बताइये।**

**उत्तर**–पन्द्रहवीं शताब्दी में व्यापारिक मार्गों की खोजों के बाद व्यापार का प्रसार होने लगा। वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था के प्रसार के कारण व्यापारिक संगठनों के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ। इटली में कॉमेन्डास या सोसिएटास जैसे व्यापारिक संगठन कुछ समय या विशेष व्यापार यात्रा के लिए अस्थायी रूप से बनाए जाने लगे। व्यापार की बढ़ती मात्रा के कारण व्यापार प्रबन्धन में भी बदलाव लाया जाने लगा। इंग्लैण्ड में मर्चेन्ट 'एडवेन्चरर्स ऑफ इंग्लैण्ड' जैसी नियमित कम्पनियाँ बनायी गयीं। इस्टलैण्ड कम्पनी, लेवेंट

www.neerajbooks.com

कम्पनी, मुस्कोवी कम्पनी आदि कम्पनियों को किसी खास क्षेत्र में व्यापार का एकाधिकार दिया गया। इसके बाद ज्वाइंट स्टॉक जैसी स्थायी कम्पनियों का निर्माण किया गया। इन कम्पनियों में जनता ने भी पैसा लगाया। ये कम्पनियाँ मुख्यत: कॉरपोरेट के रूप में कार्य करती थीं। सत्रहवीं शताब्दी में विशेष क्षेत्र से व्यापार करने के लिए डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी, फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी आदि की स्थापना की गई।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय अर्थव्यवस्था में बदलाव से बाजारों की संरचना में भी परिवर्तन आया। जहाँ मध्यकाल में बाजारों या मेलों के माध्यम से व्यापार होता था, वहीं आधुनिक विनिमय अर्थव्यवस्था के आगमन के बाद स्थायी बाजारों की स्थापना की गई। विशिष्ट व्यापारी और व्यावसायिक वर्ग पैदा होने लगे, जिसमें से कुछ खुदरा माल बेचते थे, तो कुछ भंडारण करते थे, तो कुछ दलाली का काम करते थे। ये व्यापारी चूँकि शहरों में रहते थे, इसलिए शहर में डाक व्यवस्था, अखबार और व्यापार सूचना व्यवस्था का निर्माण किया गया। इससे प्रत्येक शहर आपस में जुड़ गया। बैंक संचालन की पद्धति में भी परिवर्तन आया। जहाँ मध्यकाल में पारिवारिक बैंकों का बोलबाला था, वहीं इस समय सार्वजनिक बैंकों की स्थापना की गई। वेनिस, मिलान, एमस्टरडम, हैमबर्ग और न्यूरेमबर्ग में अनेक सार्वजनिक बैंकों की स्थापना की गई। इन बैंकों में वित्तीय लेन-देन के विभिन्न नवीन तरीकों का प्रयोग किया जाने लगा।

इतालवियों ने ऋण देने की तकनीक विकसित कर ली थी। जैस–शपथ पत्र (प्रोमिसरी नोट), ऋणपत्र, हुण्डी आदि। इसी काल में बीमा व्यवस्था की भी शुरुआत की गई। चूँकि लम्बी दूरी के समुद्री व्यापार से जोखिम बढ़ा और व्यापार में वृद्धि के साथ-साथ बीमा की अवधारणा भी प्रचलित होने लगी। व्यापार और उत्पादन के क्षेत्र की आवश्यकता बढ़ने लगी थी। अत: इस क्षेत्र में निवेश को ध्यान में रखकर स्टॉक एक्सचेंजों की स्थापना की गई। फर्नांड ब्राडल नामक विद्वान के अनुसार स्टॉक एक्सचेंज दलालों, व्यापारियों, सौदागरों, मुद्रा विनिमयकों आदि का मिलन-स्थल बन गया। इसके फलस्वरूप यूरोप में वाणिज्यिक क्रांति की शुरुआत हुई।

कृषि व्यापार और उद्योग की आर्थिक गतिविधियों के बीच सह-सम्बन्ध और संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया। परंपरागत शिल्प को प्रोत्साहन दिया गया। साथ ही साथ शीशा निर्माण, पीतल, कागज, ताँबा, सभी प्रकार के कपड़ा बनाने वाले नये उद्योगों की स्थापना की गई। यूरोप में काली मौत (प्लेग) और आर्थिक मंदी के परिणामस्वरूप परम्परागत शिल्प श्रेणियों का पतन होने लगा। इसके साथ ही इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी में ग्रामीण शिल्प उद्योगों की स्थापना की गई। इन ग्रामीण उद्योगों ने कम मजदूरी और सस्ती जल-शक्ति के द्वारा आम आदमी के लिए सस्ता और टिकाऊ कपड़ा बनाया। धीरे-धीरे श्रेणियों के स्थान पर 'पुटिंग आउट सिस्टम' की शुरुआत की गई। उद्योग में इस क्रमिक विकास ने आधुनिक उद्योग का मार्ग प्रशस्त किया। आगे चलकर यूरोप में कोयला खान में तेजी और लोहे के उद्योग में प्रौद्योगिकी के विकास के पश्चात् औद्योगिक क्रांति का आगमन हुआ।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सोलहवीं शताब्दी में नए व्यापार-मार्गों की खोज और व्यापार की मात्रा में हुई वृद्धि के कारण आधुनिक अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। विभिन्न देशों से बुलियन (चाँदी) के आगमन से यूरोपीय समाज में आधारभूत परिवर्तन आया। पूँजीवाद का विकास हुआ। व्यापार और वस्तु उत्पादन में उद्यमता की चेतना का विकास हुआ। जनसंख्या बढ़ने से शहरीकरण बढ़ा और इससे औद्योगिक उत्पादन की माँग में वृद्धि हुई। इस बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए आर्थिक ढाँचे और व्यापार में भी मौलिक परिवर्तन किया गया। इन सभी कारकों ने मिलकर यूरोप को आधुनिक युग की ओर ले जाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

**प्रश्न 8. विज्ञान के क्षेत्र में अरब और चीन की प्रकृति का मूल्यांकन कीजिए। उनके अपने-अपने समाजों का इससे रूपांतरण क्यों नहीं हो सका?**

**उत्तर**–इतिहासकारों का मानना है कि करीब 1500 ई. में समाज मध्यकाल से आधुनिक जीवन की ओर बढ़ने लगा। प्रारम्भ में यह माना जाता था कि इस प्रकार का परिवर्तन सिर्फ यूरोपीय समाज में ही हुआ, किन्तु आधुनिक विश्व की ओर बढ़ने में केवल यूरोप का ही योगदान नहीं था। यूरोप ने अरब और चीन से बहुत सारा ज्ञान और विचारों को ग्रहण किया, जिसने यूरोप में परंपरागत व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। लेकिन इन वैज्ञानिक ज्ञान और विचारों ने अरब और चीन के समाजों में कहाँ तक परिवर्तन किया, इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

अरब देशों में 900 ई. से 1100 ई. के बीच में उच्च शिक्षा के लिए अनेक विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई, जिससे विज्ञान के क्षेत्र में तेजी से विकास होने लगा।

बगदाद में मूल्यवान पांडुलिपियों के संरक्षण के लिए एक पुस्तकालय बनाया गया।। अल ख्वारिजमी जैसे गणितज्ञों के सहयोग से गणित के क्षेत्र में प्रगति हुई। व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि होने के कारण अरबों ने खगोलशास्त्र और वाणिज्य के अध्ययन के लिए गणितीय विधि का प्रयोग किया। अनेक वेधशालाओं का निर्माण किया, जिससे सटीक निष्कर्ष निकाला जाने लगा। चिकित्सा और रसायनशास्त्र में भी कई वैज्ञानिक खोजें की गईं। चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। अल-राजी अरब के महान चिकित्सक थे,

जिन्होंने चेचक और खसरा जैसी बीमारियों के सन्दर्भ में खोज की। अरबी लोगों ने नौकायन विज्ञान, जहाजरानी और मानचित्रकारी में अनेक शोध किए, जिससे इस क्षेत्र में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त हो गयी। चूँकि अरब देशों की अवस्थिति सुदूर पूर्व और यूरोप के बीचोंबीच में थी, इसलिए इन खोजों के परिणामस्वरूप उन्हें अत्यधिक व्यापारिक लाभ प्राप्त हुआ। इन्होंने कुछ ऐसे समुद्री उपकरणों की खोज की, जिनकी जानकारी यूरोप को भी नहीं थी। अरब में बहुत-से क्षेत्र विशिष्ट उद्योगों के लिए भी प्रसिद्ध हुए; जैसे मिस्र और डैमस्कस में रेशम और सूती कपड़ा, यमन और मसूल में ऐशो-आराम के कपड़े, खुरासान और अरमेनिया में कालीन और सीरिया में रंगीन शीशा आदि।

विज्ञान के कई क्षेत्रों में अरब यूरोप से भी आगे था। यहाँ से बहुत सारे वैज्ञानिक ज्ञानों का प्रसार यूरोप में हुआ, जैसे–खगोलशास्त्र, गणित, अल्जबरा आदि।

अरब देशों ने अपनी भौगोलिक अवस्थिति के कारण व्यापार में बहुत लाभ कमाया। अरब के लोग हेलेनेस्टिक संस्कृति के मानने वाले लोग थे। यह संस्कृति का फैलाव उत्तर-पूर्व में फारसी सम्राज्य और मिस्र तक था। इसका सम्पर्क भारतीय समाज से भी था, जिससे इनकी संस्कृति समृद्ध हुई। लेकिन अरब देशों का समाज इन वैज्ञानिक खोजों से लाभ नहीं उठा सका। वह परंपरागत ही बना रहा। आगे नेपोलियन द्वारा 1798 ई. में मिस्र पर कब्जा करने के बाद ही समाज में परिवर्तन आ सका। इसके बाद अरब में पश्चिमी विचारों और पुनर्जागरण का प्रभाव पड़ने लगा और धीरे-धीरे यहाँ के समाज में आधुनिकता का आगमन हुआ।

चीन ने अपनी सामाजिक आवश्यकता के अनुसार विज्ञान प्रौद्योगिकी का विकास किया। चीन के महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार थे–माचिस, फोल्डिंग, छाता, एकपहिया ठेला, कम्पास, नौकायन सम्बन्धी ज्ञान, मुद्रण (लकड़ी के छापे की मदद से होने वाली छपाई), कागज बनाने की कला, बारूद आदि। नक्षत्रीय पर्यवेक्षण भी किया करते थे। वे 1006 ई. से ही नियमित रूप से नवतारे और महानवतारे देखा करते थे। उन्होंने पहली बार विधिवत ढंग से तारों की सूची बनाई। चीन में पहली बार अक्षांश, देशान्तर पर आधारित सटीक नक्शा बनाया गया। इन वैज्ञानिक आविष्कारों से कुछ हद तक चीन के समाज को लाभ हुआ; जैसे मुद्रण से कन्फ्यूशियाई अध्ययन का पुनर्जन्म हुआ। प्रशासनिक परीक्षाओं में अब विद्यार्थियों को महँगी पुस्तकें भी उपलब्ध होने लगीं। इन वैज्ञानिक खोजों का प्रभाव समाज पर पड़ा, लेकिन प्रभाव अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न भी थी। किन्तु चीनी समाज परंपरागत ही बना रहा। यूरोपीय देशों द्वारा चीन पर कब्जा कर लिए जाने के बाद ही यहाँ के समाज ने आधुनिक विचारों को ग्रहण किया। लेकिन फिर इन्होंने पश्चिमी ज्ञान को अपनाने के बाद भी अपनी संस्कृति को बचाए रखा।

अतः कहा जा सकता है कि अरब और चीन ने अपनी सामाजिक आवश्यकता के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास किया, किन्तु यहाँ का समाज परंपरागत ही बना रहा। यूरोप द्वारा यहाँ अधिकार करने के बाद यहाँ आधुनिक समाज का निर्माण हो सका। किन्तु अरब और चीन के आविष्कारों को यूरोप ने अपनाकर, अपने को पूरी तरह बदल लिया। वहाँ पुनर्जागरण और धर्म-सुधार आंदोलन के प्रचार-प्रसार में छपाई ने प्रमुख योगदान दिया, जबकि चीन में इसके द्वारा परंपरागत विचारों का प्रचार-प्रसार किया गया। बारूद का आविष्कार यूरोप पहुँचने पर इसने मध्यकालीन सामंती महल और किलाबंदी को ध्वस्त कर दिया। इस तरह पश्चिमी यूरोप को सामंती, सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व से आजाद कराने में मदद पहुँचाई।

**प्रश्न 9. सांस्कृतिक रूपांतरण की उन मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए जिन्होंने यूरोप को मध्ययुगीन यूरोप से निकालकर आधुनिक युग में पहुँचा दिया।**

**उत्तर**–यूरोप सांस्कृतिक रूपांतरण के फलस्वरूप आधुनिक युग में प्रवेश कर गया। यूरोप की विकेन्द्रीकृत राजनीतिक संरचना केन्द्रीकृत राज्यों में बदलने लगी। व्यापार के क्षेत्र में नए समुद्री मार्गों का पता लगने से अमेरिका, भारत और अफ्रीका जैसे देशों की खोज हुई। इससे यूरोप-एशिया आवागमन और संचार की गति तेज हो गई। व्यापारिक गतिविधियों के बढ़ने से नई वाणिज्यिक प्रथाओं का निर्माण हुआ। विभिन्न महादेशों के बीच बड़े पैमाने पर व्यापार होने से आधुनिक यूरोप का निर्माण हुआ। इन विकासों के कारण यूरोप का सांस्कृतिक रूपांतरण तेजी से हुआ।

यूरोप में पुनर्जागरण और धर्मसुधार आंदोलन के फलस्वरूप सांस्कृतिक रूपांतरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। पुनर्जागरण मध्ययुग की ईश्वर केन्द्रीय सभ्यता से आधुनिक युग के मानव केन्द्रित सभ्यता की ओर एक परिवर्तन था। पुनर्जागरण में कुछ ऐसी बातें भी थीं, जो बिल्कुल मौलिक और नूतन थीं।

पुनर्जागरण के लौकिक दृष्टिकोण का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण आधार मानवतावाद था। मानवतावाद से स्पष्ट होता है कि इसमें ईश्वर को नहीं, बल्कि मनुष्य को सामान्य दिलचस्पी का केन्द्र बनाया गया। इसमें मनुष्य का आत्मविश्वास, स्वाभिमान, भौतिकवाद और व्यक्तिवाद जैसे तत्त्व जुड़े हुए थे। इस काल में सुन्दर कला और साहित्य का विकास हुआ। इसने भविष्य में होने वाली वैज्ञानिक क्रांति की आधारशिला रखी। इस तरह पुनर्जागरण ने वैज्ञानिक क्रांति, बौद्धिक क्रांति, राष्ट्रीय राज्यों के उदय तथा पूँजीवाद और मध्यमवर्ग के उदय का भी मार्ग प्रशस्त किया।

धर्म-सुधार आन्दोलन ने तात्कालिक समाज की रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को खत्म करने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था पर भी गहरा प्रभाव डाला। कैल्विनवाद ने व्यापार और वाणिज्य का

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



समर्थन किया। जहाँ पहले कैथोलिक पादरी धन प्राप्ति के मार्ग को नरक का मार्ग बताते थे, वहाँ अब प्रोटेस्टेंट संप्रदाय धन-प्राप्ति को धर्मानुकूल बताने लगा। 16वीं शताब्दी में सूद और मुनाफे के सम्बन्ध में धार्मिक विचार बदलने लगे। अब सूद लेना और मुनाफा कमाना उचित बताया गया। बाद के अनुयायियों ने व्यापारी जीवन की स्पष्ट रूप से प्रशंसा की और व्यापार को ईश्वर की सेवा, आत्मा का शिक्षण-शिविर बताया। अतएव वाणिज्य-व्यापार पर से धार्मिक प्रतिबन्ध के हट जाने से इनका तेजी से विकास हुआ।

आधुनिक समाज में अभी भी महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। पुरुष अपनी पत्नी को तलाक दे सकता था, गलत आचरण के आरोप में उसकी हत्या भी कर सकता था। यहाँ तक कि किसी स्त्री पर चोरी का आरोप लगाकर उसकी हत्या की जा सकती थी। पुरुष दुबारा विवाह कर सकता था। लेकिन महिलाओं को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। जब किसी साधारण महिला का विवाह नहीं होने पर उसे चर्च में दाखिल कर दिया जाता था। यहाँ भी उसके साथ भेदभाव किया जाता था। वे पुरुष सहकर्मियों की तरह ऊँचे पद पर आसीन नहीं हो सकती थीं। पुनर्जागरण काल और धर्म-सुधार आंदोलन में महिलाओं की प्राथमिक शिक्षा की बात की गई, किन्तु इसका उद्देश्य महिलाओं की बौद्धिक क्षमता का विकास करना नहीं था। इसका उद्देश्य केवल बाइबिल पढ़ाना और अच्छी पत्नी और माँ का गुण विकसित करना था। बाजार अर्थव्यवस्था के आगमन के कारण कारीगरों के बीच प्रतियोगिता बढ़ी और इससे महिलाओं की स्थिति और भी खराब हो गयी।

सत्रहवीं शताब्दी से आधुनिक युग के प्रारंभ तक महिलाओं और खासकर विधवा और अविवाहितों को अक्सर डायन के रूप में देखा जाता था। ऐसी मान्यता प्रचलित थी कि महिलाएं अन्दर से कमजोर होती हैं, इसलिए दुरात्माएं आसानी से इन्हें पकड़ लेती हैं। इस प्रथा को वैज्ञानिक चिन्तन का प्रसार-प्रचार होने के बाद ही खत्म किया जा सका। धीरे-धीरे महिलाओं की स्थिति में सुधार होने लगा, किन्तु महिलाएँ पूरी बीसवीं सदी तक अपने राजनीतिक अधिकारों और समानता के अधिकार के लिए संघर्ष करती रहीं। इस प्रकार महिलाओं में आधुनिक युग की शुरुआत काफी देर से हुई।

भौगोलिक खोजों और आविष्कारों कीशृंखला ने यूरोप के पूरे सामाजिक परिवेश को ही बदल दिया। तर्क और संदेश के दृष्टिकोण से आधुनिक नजरिए का विकास हुआ। यूरोप ने अरबों और चीनी के ज्ञान को भी अपनाया, लेकिन यूरोप में इस ज्ञान को पर्यवेक्षण, प्रयोग और वैज्ञानिक नियमों के आधार पर फिर से पुनर्निर्माण किया गया। विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप यूरोप में वैज्ञानिक क्रांति का आगमन हुआ। इसके आगमन में अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जिन्होंने वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए सामाजिक माहौल का निर्माण किया। जनता के बीच वैज्ञानिक और तर्कयुक्त चेतना फैलाने में रेने डेस्कार्ट्स और फ्रांसिस बेकन का योगदान उल्लेखनीय है। कोपरनिकस, केषलर और न्यूटन ने अपने आविष्कारों द्वारा यूरोपीय मस्तिष्क से परम्परागत विचारों को हटाकर आधुनिक विचारों को स्थापित किया। इस प्रकार विज्ञान ने अपने आविष्कारों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए आधुनिक विश्व की आधार-शिला रखी।

अतः उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि पुनर्जागरण और धर्मसुधार आंदोलन ने यूरोप के सांस्कृतिक रूपांतरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और रूढ़ियों को खत्म किया। बाद में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति होने से यूरोपीय समाज काफी प्रभावित हुआ। महिलाओं की स्थिति में सुधार होने लगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ। इस प्रकार, विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में हुई प्रगति से एक नया सामाजिक दृष्टिकोण विकसित हुआ, जिससे मनुष्य के मस्तिष्क से परम्परागत विचार हटने लगे और धीरे-धीरे यूरोप आधुनिक युग में प्रवेश कर गया।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



## पूर्व आधुनिक संसार : विहंगावलोकन

# जनसंख्या की प्रवृत्तियां और संक्रमण

31

### परिचय

मध्य युग की जनसंख्या के बारे में चर्चा करने के लिए हमारे पास स्रोत कम मात्रा में उपलब्ध हैं। परन्तु जो भी स्रोत हमारे पास उपलब्ध हैं, उनके आधार पर हम इस युग की जनसंख्या की प्रवृत्तियों और संक्रमण के सम्बन्ध में एक अनुमान तो निश्चित रूप से लगा सकते हैं। जनसंख्या की भूमिका और उसमें समय-समय पर जो बदलाव होते हैं, वे मानव-जीवन में हुए परिवर्तनों से भी सम्बन्धित होते हैं।

इन उपलब्ध स्रोतों के आधार पर 600 ई. के लगभग विश्व की जनसंख्या का अनुमान प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ ही साथ यूरोप की विभिन्न जगहों का भी विस्तृत विवरण दिया जा रहा है। चूँकि जनगणना ही किसी भी देश जनसंख्या के बारे में अनुमान लगाने का प्राथमिक स्रोत होता है, परन्तु उस समय जनसांख्यिकी मापदंडों के अनुसार आँकड़े इकट्ठे नहीं किये गये। शुरुआती दिनों की जनगणना में उन्हीं व्यक्तियों को शामिल किया गया, जो युद्ध में भाग लेते हों या नियमित रूप से कर अदा करते हों।

इन सीमित स्रोतों के आधार पर विभिन्न इतिहासकारों ने जनसंख्या की प्रवृत्ति, उम्र, वैवाहिक स्थिति, स्त्री-पुरुष अनुपात आदि के आंकड़े प्राप्त करने का प्रयास किया। इस विषय में अनुमान के लिए पारिवारिक खेत मैनोर तथा वित्तीय अनुमान ही आकलन के आधारभूत कारक थे। इसी तरह चर्च के दस्तावेजों बपतिस्मा, विवाह और दफन सम्बन्धी दस्तावेजों के आधार पर जनसंख्या की प्रवृत्तियों को जानने की कोशिश की गई है।

विश्व की जनसंख्या ईसवी वर्ष के प्रारम्भ में लगभग 170-185 मिलियन थी। सातवीं शताब्दी में बढ़कर जनसंख्या लगभग 195-220 मिलियन हो गई। इन कालों में यूरोप एवं एशिया की जनसंख्या का बसाव मुख्यतः भूमध्यसागरीय बेसिन, भारत और चीन में रहा। अलग-अलग क्षेत्र के लिए अलग-अलग विधियों का प्रयोग किया गया। इसका मुख्य कारण यह था कि अनुमान के लिए आँकड़े कम मात्रा में उपलब्ध थे। विद्वानों ने यूरोप की जनसंख्या के अनुमान पर अधिक कार्य किया है। इसलिए यूरोप की जनसंख्या के विषय में बेहतर जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

पश्चिमी यूरोप की जनसंख्या में 500 ई. में धीरे-धीरे वृद्धि प्रारम्भ हुई, किन्तु छठी शताब्दी के अंत में महामारी फैलने से यह वृद्धि रुक गई। पुनः जनसंख्या में वृद्धि 650 ई. से 700 ई. में शुरू हुई। डूमस्डे बुक के आधार पर 1085 के लगभग इंग्लैण्ड की जनसंख्या 1.3 मिलियन थी। बेहतर जीवनशैली, कृषि भूमि का विस्तार, उच्च प्रौद्योगिकी के प्रसार के कारण 1050 ई. से 1250 ई. के बीच जनसंख्या में वृद्धि तीव्र गति से हुई। युद्ध एवं महामारी की वजह से जनसंख्या वृद्धि में कमी तो आयी, किन्तु इसका प्रभाव कुछ सीमित क्षेत्रों में था। इसलिए औसत जनसंख्या पर इसका असर नहीं पड़ा।

जनसंख्या वृद्धि और कमी में समानता कम ही मिलती है, क्योंकि कुछ क्षेत्रों में वृद्धि होती है, तो कुछ क्षेत्रों में कमी। 1290 और 1340 के मध्य पिकार्डी और विनचेस्टर ने प्रति प्रजनन परिवार में बच्चों की संख्या में गिरावट दिखाई है, जो प्लेग फैलने के कारण हुआ। इसी तरह इटली में प्लेग फैलने से जनसंख्या में कमी आनी शुरू हुई। 600 ई. से 1500 ई. तक विश्व की जनसंख्या में लगातार वृद्धि हुई और यह 195 मिलियन से बढ़कर 440 मिलियन तक पहुँच गई। यह वृद्धि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग रही। यहाँ तक कि एक क्षेत्र में भी अलग-अलग रहीं। यूरोप की जनसंख्या 500 ई. से 1450 के बीच 27.5 मिलियन से बढ़कर 73.5 मिलियन थी, जो 1450 ई. में में घटकर 50 मिलियन रह गयी।

यूरोप की जनसंख्या वृद्धि का मूल कारण उत्पादन के तरीकों में नवीन विकास था। जैसे कृषि पद्धति में सुधार किया गया, कृषि में लोहे के बने औजारों का प्रयोग किया जाने लगा। इससे उत्पादन में वृद्धि हुई और व्यापार का प्रसार हुआ तथा वन क्षेत्रों में जनसंख्या की सघनता में वृद्धि हुई। अनेक तत्त्वों ने जनसंख्या के वितरण एवं पुनर्वितरण में परिवर्तन किया, जिसके कारण शहरों की आबादी बढ़ती चली गयी। शहरों की जनसंख्या में तेजी तब और आई जब ग्रामीण क्षेत्रों से लोग यहाँ आकर बसने लगे। स्रोत कम

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



उपलब्ध होने के बावजूद शहरों के आकार के आधार पर इसकी जनसंख्या का आकलन किया जा सकता है। जैसे पेरिस में 2 लाख लोग रहते थे, नेपल्स में वाणिज्यिक गतिविधियों के बढ़ने के कारण वहाँ की जनसंख्या एक लाख तक पहुँच गयी। इसी तरह काली मौत (प्लेग) जैसी महामारी और युद्ध आदि के कारण जनसंख्या में कमी आयी।

एक ओर जहाँ संसाधनों की सुलभता अधिक होने के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई, तो वहीं संसाधनों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक हो जाने से भी आबादी में कमी आ सकती है। एम.एम. पोस्टन के अनुसार चौदहवीं शताब्दी की शुरुआत में कुपोषण और महामारियों की वजह से 'जीवनयापन का संकट' उत्पन्न हो गया। चूँकि शहरी केन्द्रों में जनसंख्या का दबाव बढ़ गया था। लोग गंदे माहौल में रहने को मजबूर थे और साथ ही साथ इन शहरी केन्द्रों में चिकित्सा सुविधा पर्याप्त नहीं थी। इसलिए भी महामारी तेजी से फैली। एक अन्य कारण यह भी था कि यूरोप के कई क्षेत्रों में गर्मी में वर्षा अधिक होने के कारण तथा जाड़ों में अत्यधिक ठंड पड़ने से कृषि उपज कम हुई। इस कारण से जानवरों में महामारी फैली और लगातार युद्धों के कारण मृत्यु दर तीव्र हो गई।

एक महामारी जो प्लेग के नाम से जानी जाती है, इसके कारण मनुष्य की ग्रंथियाँ खराब हो जाती हैं। यह महामारी लगभग चौदहवीं शताब्दी में फैली एवं इसने पूरे विश्व को हिलाकर रख दिया। चूँकि यह एक संक्रामक रोग था, इसलिए यह व्यापारिक मार्गों के द्वारा तेजी से विश्व की सभी जगहों पर फैल गया। दरअसल यह संक्रमण 1331-32 में मंगोलिया में पैदा हुआ था। इसका फैलाव 1339 तक मध्य एशिया से क्रीमिया तक पहुँच गया एवं वहाँ से व्यापारिक जहाजों द्वारा 1347 ई. में यह इटली तक जा पहुँचा। एक अन्य रोग टायफाइड और कुकुरखांसी जिसका आगमन 1408 ई. में हुआ। इसके कारण लोगों की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है और साथ में प्लेग की मार ने इसे और भी भयानक बना दिया। अलग-अलग इतिहासकारों ने प्लेग से मरने वालों का आकलन किया है, जिसके अनुसार यूरोप में लगभग पाँचवें भाग से लेकर आधी जनसंख्या काल के गाल में चली गई। इंग्लैण्ड के आँकड़े तो उपलब्ध हैं जिसके अनुसार महामारी के पूर्व वहाँ की जनसंख्या 3,125,000 थी, जो 1358 में घटकर 2,75,0000 रह गयी। प्रादेशिक आधार पर फ्रांस के एकत्र किये गये आँकड़ों के अनुसार वहाँ 1347 और 1350 के बीच काली मौत के कारण बहुत-से लोगों की मृत्यु हुई।

शहरों में लोगों की बढ़ती भीड़ एवं बदलती जलवायु के कारण ज्यादा लोगों की मौत हुई। इंग्लैण्ड के एसेक्स की मेनोरियल सूची से यह पता चलता है कि तेरहवीं शताब्दी की अपेक्षा वयस्क पुरुषों की संख्या आधी रह गई थी। इससे वस्तुओं के मूल्यों और मजदूरी की दर में अभूतपूर्व वृद्धि हो गई जिसके कारण मजदूर, मालिक और किसानों के बीच सम्बन्धों में खटास आ गई। इस स्थिति को देखते हुए इंग्लैण्ड के मालिकों ने अपनी स्थिति सुरक्षित रखने के लिए कई अधिनियम बनाकर मजदूरी को स्थिर रखने का प्रयास किया। चूँकि वस्तुओं की भी मूल्य वृद्धि हो गई थी, इसलिए मजदूरों को अधिक वेतन न मिलने के कारण उनकी स्थिति निरन्तर खराब होती गई, जिसके फलस्वरूप यह असंतोष विद्रोहों के सिलसिले के रूप में सामने आया। इन अध्यादेशों के कारण 1381 ई. में इंग्लैण्ड में किसान विद्रोह, 1358 में फ्रांस में असंतोष, 1382 में फ्रांसीसी विद्रोह, 1378 में फ्लोरेंस का विद्रोह हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्य आते-आते प्लेग का तो प्रकोप खत्म हो गया, किन्तु टायफाइड और यक्ष्मा जैसी बीमारियाँ सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक जनसंख्या को घटाती रही। खाद्यान्नों में कमी होने से फ्रांस और निचले देशों में 1481 और 1492 में तथा 1522 और 1525 में पश्चिमी जर्मनी में अकाल से लोग त्रस्त होते रहे। इस प्रकोप से बचने के लिए कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाई जा रही थी। इसके फलस्वरूप उत्तरोत्तर जीवन स्तर ऊँचा उठा और मृत्यु दर में कमी आयी। सम्पन्न एवं खाते-पीते घरों में बच्चों की औसत संख्या में पुनः वृद्धि होने लगी। प्लेग का प्रकोप फैलने से पहले लायोनिस में प्रति महिला बच्चों की जन्म दर थी, 3.9 जो बाद में गिरकर 1.8 हो गई थी और 1780 में बढ़कर 4.5 हो गई। साथ ही यह वृद्धि खाद्यान्न आपूर्ति में हुए सुधार और कम उम्र में लड़कियों का विवाह करने से भी हुई।

जनसंख्या में हुई इस वृद्धि का आकलन करना कठिन है, किन्तु यह वृद्धि धीमी नहीं थी, वरन् इसमें काफी भिन्नता थी। जनसांख्यिकी का यह उतार-चढ़ाव काफी धीमा था। जनसंख्या में होने वाली वृद्धि के विभिन्न चरणों को समझने के लिए इनसे जुड़े सभी घटकों को भी परखना और जानना आवश्यक होता है।

मध्यकाल के अंत तक इंग्लैण्ड में सभी उम्र के पुरुषों के शव परीक्षण से यूरोप के लोगों की उम्र के बारे में पता चलता है। वहाँ प्लेग के प्रकोप के समय और प्लेग के प्रकोप के बाद औसत उम्र 35 वर्ष थी। किन्तु महिलाओं एवं बच्चों के बारे में सूचनाएँ कम होने के कारण अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वहीं इस्सेल के अनुसार 1100 ई. और 1275 ई. के बीच लोगों की औसत आयु 22 वर्ष से बढ़कर 25 वर्ष हो गई थी। मध्यकालीन महिलाओं की आयु अधिक नहीं होती थी, क्योंकि बार-बार बच्चा पैदा करने और खेतों में काम करने से वे अस्वस्थ हो जाती थीं, जिसके कारण उन्हें बीमारी तुरन्त पकड़ लेती थी।

मृत्यु के आंकड़ों से पता चलता है कि चौदहवीं शताब्दी में लोगों की आयु कम हो गई थी। जो शिशु मृत्यु से बच भी जाते थे, वे बहुत दिनों तक जिन्दा नहीं रहते थे। भिन्न-भिन्न उम्र के लोगों का अलग-अलग उम्र का ढाँचा था। एक अनुमान के अनुसार 1422 में रेन्स में, सेंट पीटर के पैरिश में पूरी जनसंख्या में जहाँ 15 वर्ष के व्यक्तियों की संख्या कुल जनसंख्या की एक-चौथाई थी,

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



वहीं 60 वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों की संख्या मात्र 7 प्रतिशत ही थी।

पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या के आंकड़े कम मात्रा में उपलब्ध हैं। साथ ही जन्म दर और विवाह सम्बन्धी आँकड़े भी उपलब्ध नहीं होने के कारण कुल जनसंख्या सम्बन्धी अनुमान लगाना काफी कठिन हो जाता है। जो नाम जन्म पंजिका में दर्ज है, वह समाज के ऊपर तबकों की महिलाएं हैं, लेकिन इसमें भी भेदभाव बरता गया है। स्लिशर वैन बाथ, डब्ल्यू. एबेल, एल. जेनिकॉट, आर. फोस्सियर आदि विद्वानों ने घर के हिसाब से बच्चों की संख्या का आकलन करने का प्रयास किया है। इनके अनुसार ये आँकड़े निम्न विकास दर के द्योतक हैं।

विवाह के आँकड़ों द्वारा भी जनसंख्या का एक अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अनुसार महामारी के साथ विवाहों में बाधा पड़ी थी, किन्तु इसके बाद इसमें वृद्धि हुई, जो आगे भी जारी रही।

गिवरी नामक जगह के अध्ययन से पता चलता है कि वहाँ प्लेग आने के पूर्व प्रति वर्ष औसत दस से बारह विवाह हुआ करते थे। वहीं 1348 ई. में वहाँ कोई विवाह नहीं हुआ, लेकिन उसके अगले वर्ष 86 शादियाँ हुईं। ऐसा भी हो सकता है कि विवाह में कमी आने का कारण लोगों ने देर से शादी की या दुल्हन की औसत आयु में वृद्धि हुई। उदाहरण के तौर पर 1430 ई. के लगभग शैम्पेन में दुल्हनों की उम्र 18 वर्ष से बढ़कर 22 वर्ष और 24 वर्ष तक पहुँच गई। इसी तरह महामारी खत्म होने के बाद विधवाओं और विधुरों का भी पुनर्विवाह हुआ। यहाँ तक कि लोग उत्तराधिकार, ज़मीन मिलने या व्यवसाय स्थापित होने पर जल्द ही घर-गृहस्थी शुरू करने के उद्देश्य से विवाह करते थे। इसीलिए प्लेग खत्म होने के उपरांत इन नवदम्पत्तियों की उच्च प्रजनन दर के कारण जन्म दर में तेजी से वृद्धि हुई। हैजनल के अनुसार यूरोप में विवाह की खास प्रवृत्ति देखने को मिलती है। वहाँ देर से शादियाँ करने या अविवाहित रहने का प्रचलन बढ़ रहा था। वहीं भूमध्यसागरीय देशों में कम उम्र में ही शादी करने का प्रचलन था और साथ ही पति-पत्नी की उम्र में काफी अन्दर भी होता था। टस्कनी से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी के आँकड़ों से यह पता चलता है कि महिलाओं की शादी 20 वर्ष की उम्र से पहले और पुरुषों की शादी 22 साल से अधिक उम्र में होती थी। वहीं शहरों में रहने वाले और अमीर पुरुषों की शादी लगभग 30 वर्ष की आयु में होती थी।

घर, परिवार और विवाह तथा अन्य सामाजिक बन्धन और सम्बन्ध की मदद से जनसंख्या को समझा जा सकता है। मध्यकाल में परिवारिक ढाँचे को समझने के लिए घर सम्बन्धी आँकड़े ही एकमात्र उपलब्ध स्रोत हैं।

टस्कनी से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि परिवार टूटे, उनमें विभाजन हुआ और घरों की संख्या में भी तीव्र गति से कमी हुई। यह गिरावट 1350 और 1427 के मध्य लगभग 33 प्रतिशत शहरों में और 15 प्रतिशत गाँवों में थी। पुनः आर्थिक रूप से समृद्ध होने के पश्चात् पश्चिमी दम्पत्तियों की अवधारणा सामने आने लगी, जहाँ छोटे परिवार को अधिक प्राथमिकता दी जाने लगी। जीने की प्राथमिक सुविधाओं के अभाव और प्लेग जैसे महामारी के प्रकोप के परिणामस्वरूप मृत्युदर में वृद्धि से पारिवारिक ढाँचे में कई आधारभूत परिवर्तन देखने को मिलने लगे। लोग अच्छे जीवन की तलाश में शहर की ओर गये और अपना खेत छोड़ दिया। इससे निश्चित तौर पर पारिवारिक बन्धन टूटा और नया परिवारिक ढाँचा बना। महामारियों के कारण कई घर टूटे, कई लोग मरे, किसी के माँ-बाप नहीं रहे, तो कोई विधवा और विधुर हो गया। इसके बाद चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विधवाओं का विवाह एक प्रमुख विशिष्टता थी। हाल के शोधों से यह पाया गया कि यदि किसी दम्पत्ति का पुनर्विवाह हुआ, तो उसकी प्रजनन दर बढ़ जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि जनसंख्या को परिवार के कारकों, यथा-सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक ने प्रभावित किया।

अतः ऊपर के विश्लेषणों से यह पता चलता है कि परिवार, विवाह की प्रकृति, जन्म और मृत्यु दर, शहरीकरण आदि से जनसंख्या से कई रूपों में परिवर्तन हुए और जिसके परिणामस्वरूप नई सामाजिक-आर्थिक पद्धतियों की शुरुआत हुई। जनसंख्या में परिवर्तन के कारण ये बदलाव हो रहे हैं।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. मध्ययुग की जनसंख्या जानने के क्या स्रोत थे? उन्हें कितना विश्वसनीय माना जा सकता है?**

**उत्तर**–मध्यकाल की जनसंख्या को जानने के सीमित स्रोत उपलब्ध हैं, इसलिए जनसंख्या का अध्ययन, वृद्धि और इसके आवागमन के विषय में एक निश्चित अनुमान लगाने में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। किन्तु मानवशास्त्रियों द्वारा एकत्रित किये गये नृजातीय आँकड़े और पुरातात्त्विक सदस्यों के समन्वय द्वारा जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों को अच्छी तरह से समझा जा सकता है। इन कमियों के बावजूद विभिन्न इतिहासकारों ने आकलनों के आधार पर जनसंख्या के ढाँचे, इसकी उम्र, वैवाहिक स्थिति, स्त्री-पुरुष अनुपात आदि की स्थिति जानने का प्रयास किया गया है। साथ ही साथ उन्होंने वंशावली, इतिवृत्तों, सूचनाओं, कब्रिस्तानों की पुरातात्त्विक खोजों और नए स्थलों की जानकारी और खेती योग्य भूमि का विस्तार आदि अनुपूरक सूचनाओं के आधार पर भी जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों को प्राप्त किया है।

*एब्बॉट इरमिनोन* ने सेंट जर्मेन डेस प्रेस (पेरिस) के मठों की जमीन का सर्वेक्षण करवाया, जिसमें उन्होंने जनगणना जैसी ही विधि को अपनाया। इसमें पारिवारिक खेतों, मैनोर और वित्तीय आकलन जैसे आधारभूत कारकों को ही शामिल किया। अन्य विद्वानों ने भी जैसे हेबिट, हेरलिथि और रेम्स के सेंट रेमी आदि ने

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

इसी स्रोत का प्रयोग अपने अध्ययन में किया। घर के आधार की इरमिनोन ने गणना की जिसमें प्रत्येक घर में रहने वालों की संख्या 3.6 मानी गई है। इंग्लैण्ड की ग्रामीण जनसंख्या को जानने के लिए इतिहासकारों ने विभिन्न विधियों को अपनाया। उन्होंने कृषकों का विवाह कर, मृत्यु कर, यौन दुराचार के लिए दंड आदि अदालती दस्तावेजों में तालमेल बिठाकर जनसंख्या का पता लगाया। एक अन्य स्रोत डूम्सडे बुक अर्थात् गाँव-गाँव से प्राप्त सूचना के आधार पर, (1086 ई.) इंग्लैण्ड की जनसंख्या 1.3 मिलियन बताई गई थी। चर्च के दस्तावेजों, बपतिस्मा, विवाह, 'पैरिस रजिस्टर' और दफन सम्बन्धी दस्तावेजों के आधार पर जनसंख्या की प्रवृत्तियों को जानने की कोशिश की गई। किन्तु ये दस्तावेज अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं थे, पर जो भी उपलब्ध थे, उसके आधार पर कुछ परिवर्तनों का पता लगाया गया।

कैम्ब्रिज ग्रुप के *रिंगले* और *शेफिल्ड* ने जनसंख्या के इतिहास और सामाजिक संरचना पर महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया। इन्होंने अपनी पुस्तक '*पॉपुलेशन हिस्ट्री ऑफ इंग्लैण्ड*' में समकालीन एवं अतीत के आँकड़ों का समन्वय करके आकलन प्रस्तुत किया। इसमें अतीत की जनसंख्या के तौर पर वर्तमान तक पहुँचने का प्रयास किया गया। साथ ही साथ 'पेरिस रजिस्टरों' के आधार पर कुल जनसंख्या, जन्म दर, मृत्यु दर, आयु और विवाह दर का भी अनुमान लगाया। फ्रांसीसी जनसांख्यिकी विद्वान लुई हेनरी ने जनसंख्या का अनुमान लगाने के लिए 'पेरिस रजिस्टरों' को आधार बनाया एवं परिवार के इतिहास को मापदंड बनाकर जनसंख्या का आकलन किया। इस अनुमान के लिए उन्होंने परिवार के इतिहास और इसमें बपतिस्मा और दफन किये जाने वाले आँकड़ों में तालमेल बैठाया। जैसे कि उन्होंने महिला विवाह के दस्तावेज को उसके बपतिस्मा से मिलाकर विवाह की उम्र तथा बच्चों के बपतिस्मा से जोड़कर उसके बच्चों की उम्र का पता लगाया। इस तरह विभिन्न परिवारों की सूचना इकट्ठी करके जनसंख्या का पता लगाया।

वर्तमान समय में कम्प्यूटर की मदद से जनसंख्या का सही अनुमान लगाना अधिक संभव हो सका है। अब इसकी मदद से बड़े-बड़े आँकड़ों एवं अदालती दस्तावेजों की गणना में तीव्रता आयी है। चूँकि जनसंख्या आकलन करने के रूप में परिवर्तन आया है, अब सामाजिक संस्था, जैसे-परिवार, उत्पादन तथा प्रजनन जैसे कारकों के साथ-साथ आर्थिक और रीति-रिवाजों का भी उपयोग किया जाने लगा है।

फिर भी मध्यकाल को पूर्णत: विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। चूँकि जनसंख्या आकलन के लिए जिन स्रोतों का उपयोग किया गया था, वे जनसांख्यिकी मापदण्डों के अनुसार इकट्ठे नहीं किये गये। दरअसल जनगणना ही किसी भी देश की जनसंख्या के बारे में अनुमान लगाने का प्राथमिक स्रोत होता है। किन्तु शुरुआत के दिनों में जनगणना में उन्हीं व्यक्तियों को शामिल किया गया, जो युद्ध में भाग लेते हों तथा नियमित रूप से कर का भुगतान करते हों। जनगणना में सारी आबादी की गणना नहीं की गयी, जबकि वर्तमान समय में सभी व्यक्तियों की गिनती की जाती है। अत: इन सभी कमियों के बावजूद जो भी उपलब्ध आँकड़े हैं, उनके आधार पर ही मध्यकाल की जनसंख्या की एक सामान्य जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

**प्रश्न 2. आरम्भ से लेकर परवर्ती मध्ययुग में एशिया और यूरोप की जनसंख्या में क्या उतार-चढ़ाव हुआ? संक्षेप में चर्चा करें।**

**उत्तर**–एशिया और यूरोप की जनसंख्या के सीमित मात्रा में आँकड़े उपलब्ध होने के कारण जनसंख्या में ठीक-ठीक उतार-चढ़ाव का पता लगाना मुश्किल है। फिर भी जो उपलब्ध आँकड़े हैं, उनके आधार पर एक मोटी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। दरअसल इसके आकलन के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए अलग-अलग विधियों का प्रयोग किया गया है। चूँकि विद्वानों ने यूरोप की जनसंख्या के आकलन में अधिक कार्य किया है, इसलिए यूरोप की जनसंख्या के उतार-चढ़ाव को अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है। एशिया के विषय में काम कम होने के कारण इसकी सही तस्वीर नहीं प्राप्त की जा सकती, किन्तु एक सामान्य जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मध्य यूरोप की तुलना चीन में प्रौद्योगिकी; जैसे-मुद्रण कला, नौकायन, कम्पास और बारूद का विकास पहले हुआ था। इसलिए चीन की जनसंख्या 600 ई. के आसपास 50-60 मिलियन थी, जो 1500 ई. में बढ़कर 110-120 मिलियन हो गई। किन्तु चीन की जनसंख्या के वितरण में प्रादेशिक भिन्नता देखने को मिलती है। जैसे-यांग्त्जे घाटी के दक्षिण में कृषि क्षेत्र के प्रसार के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई, जबकि उत्तरी क्षेत्र बारहवीं शताब्दी में घुमंतू लोगों के आक्रमण और फिर तेरहवीं शताब्दी में मंगोल आक्रमण के कारण जनसंख्या में तीव्रता से कमी आई। भारत में 600 ई. में जनसंख्या लगभग 50-55 मिलियन थी, जो 1500 ई. में बढ़कर 100-110 मिलियन हो गई। यहाँ भी हम जनसंख्या में प्रादेशिक भिन्नता देखते हैं। चूँकि गंगा नदी क्षेत्र में उपजाऊ कृषि भूमि अधिक मात्रा में उपलब्ध होने के कारण मुख्य आबादी गंगा नदी के आसपास ही बसी हुई थी। *मोरलैण्ड* जिन्होंने भारत की जनसंख्या का पहली बार अनुमान लगाया था। इनके अनुसार 1600 ई. में भारत की जनसंख्या 100 मिलियन थी। बाद में *शीरिम मूसवी* ने कृषि भूमि के क्षेत्रफल और भू-राजस्व के आँकड़ों के आधार पर इसमें सुधार किया और बताया कि 1600 ई. में भारत की जनसंख्या लगभग 145 मिलियन के बराबर थी।

विद्वानों द्वारा यूरोप की जनसंख्या पर अधिक कार्य करने के कारण यहाँ की जनसंख्या के उतार-चढ़ाव का अनुमान लगाना आसान है। निम्न तालिका की मदद से छठी शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक जनसंख्या में होने वाले विकास को समझा जा सकता है।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**यूरोप की 500 ई. से 1450 ई. तक की जनसंख्या का अनुमान (मिलियन में)**

| क्षेत्र | 500 ई. | 650 ई. | 1000 ई. | 1340 ई. | 1450ई. |
|---|---|---|---|---|---|
| इटली | 4 | 2.5 | 5 | 10 | 7.5 |
| फ्रांस (निचले देश) | 5 | 3 | 6 | 19 | 12 |
| ब्रिटिश आइल्स | 0.5 | 0.5 | 2 | 5 | 3 |
| कुल-दक्षिण | 13 | 9 | 17 | 25 | 19 |
| जर्मन-स्कैनडिनेविया | 3.5 | 2 | 4 | 11.5 | 7.5 |

**यूरोप की 1500 ई. से 1700 ई. के बीच जनसंख्या का अनुमान (मिलियन में)**

| क्षेत्र | 1500 ई. | 1600 ई. | 1700 ई. |
|---|---|---|---|
| इटली | 10.5 | 13.3 | 13.3 |
| फ्रांस (लॉरेन और सैवोय सहित) | 16.4 | 18.5 | 20.0 |
| ब्रिटिश आइल्स | 4.4 | 6.8 | 9.3 |
| जर्मनी | 12.0 | 15.0 | 15.0 |
| रूस | 9.0 | 15.5 | 17.5 |

ऊपर दिए गए आँकड़ों से पता चलता है कि 500 ई. से पश्चिमी यूरोप की जनसंख्या में धीरे-धीरे वृद्धि शुरू होती है, किन्तु छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महामारी फैलने से जनसंख्या में कमी आने लगती है। खासतौर पर इटली की जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि होती है। यहाँ तक कि 650 और 1000 के बीच यह दुगनी हुई और पुन: फिर 1000 से 1340 के बीच भी दोगुनी हो जाती है। तेरहवीं शताब्दी के अंतिम 25 वर्षों में इस वृद्धि दर में कमी आने लगती है। चूँकि चौदहवीं शताब्दी के मध्य में प्लेग के प्रकोप के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से कमी आने लगती है और आगे 1450 आते-आते यूरोप की जनसंख्या घटकर लगभग 50 मिलियन रह जाती है, जो 1000 ई. में 73.5 मिलियन थी। पुन: एक बार फिर 1500 ई. के लगभग वृद्धि शुरू होती है। आगे 1700 ई. के आसपास जनसंख्या 115 मिलियन तक हो जाती है।

विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या अनुमान का आधार अलग-अलग है। जैसे डूम्सडे बुक के आधार पर 1085 ई. के लगभग इंग्लैण्ड की जनसंख्या 1.3 मिलियन मानी गई, जबकि फ्रांस और इटली में राजकोषीय सर्वेक्षणों के आधार पर फ्रांस में 12 से 16 मिलियन और इटली में 8 से 10 मिलियन मानी गई है। ऐसा अनुमान व्यक्त किया जाता है कि 1050 से 1250 ई. के बीच कृषि भूमि का विस्तार, उत्पादकता में वृद्धि, प्रौद्योगिकी के प्रसार और शहरों के उदय से अच्छी जीवन-शैली और अच्छे भोजन और जन्म दर में वृद्धि के कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती है, जो पहले अकाल के कारण कम हो गई थी। पुन: बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में अकाल की बर्बरता एवं तीव्रता में वृद्धि होने लगती है, किन्तु इसका प्रभाव सीमित क्षेत्रों में रहने के कारण औसत जनसंख्या पर प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी तरह, तेरहवीं शताब्दी में शिशु मृत्यु, गर्भपात और युद्धों में कमी आने से जनसंख्या पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

यूरोप की जनसंख्या वृद्धि चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उच्चतम बिन्दु पर थी। जैसे मध्य इटली में औसतन प्रति वर्ग कि.मी. 13 से 14 घर-परिवार और कहीं-कहीं प्रति वर्ग कि.मी. में 30 परिवार तक बसे हुए थे। आँकड़ों से पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि और ह्रास में कोई समानता नहीं है। जहाँ कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो दूसरे क्षेत्र में कमी होती है। साथ ही साथ जहाँ महामारी के प्रकोप के कारण जनसंख्या में कमी आती है, वहीं अकाल और महामारी खत्म होने पर एवं यूरोप में तीव्र गति से विकास के कारण जनसंख्या में वृद्धि होती है।

इस तरह हम उपर्युक्त विश्लेषणों से यूरोप की जनसंख्या में उतार-चढ़ाव और इसके उत्तरदायी कारकों को समझ सकते हैं।

**प्रश्न 3. मध्ययुगीन यूरोप में प्लेग और अन्य बीमारियों का जनसंख्या पर क्या असर पड़ा?**

**उत्तर**–जैसा कि हम जानते हैं कि मध्ययुगीन यूरोप की जनसंख्या लगभग 440 मिलियन हो गई थी। यह वृद्धि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न थी। 800 ई. से मध्य काल तक कृषि, प्रौद्योगिकी और अर्थव्यवस्था में शहरी विकास और व्यापार के प्रसार ने जनसंख्या वृद्धि मुख्य रूप से योगदान दिया किन्तु प्लेग और अन्य बीमारियों से जनसंख्या को बहुत क्षति पहुँची। यहाँ तक कि जनसंख्या में एक ठहराव-सा आ गया। प्लेग जैसी बीमारियों के निम्न कारण थे।

अर्थव्यवस्था के विकास के कारण शहरी क्षेत्रों का विकास हुआ। इन शहरी केन्द्रों में जनसंख्या के अधिक दबाव के कारण लोग गंदे माहौल या गंदी बस्तियों में रहने के लिए अभिशप्त थे, साथ ही वहाँ पर्याप्त चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध नहीं थी। इसलिए जब भी प्लेग जैसी बीमारियों का आगमन हुआ, तो इसका फैलाव वृहत् क्षेत्रों में हो गया। इसके साथ ही व्यापारिक मार्गों से इसका प्रसार अन्य क्षेत्रों में हो गया। धीरे-धीरे इन बीमारियों ने पूरे यूरोप को अपनी चपेट में ले लिया। चौदहवीं शताब्दी में प्लेग नामक महामारी का आगमन हुआ, जिसने लगभग सम्पूर्ण विश्व को हिला कर रख दिया। यह बीमारी चूहों के द्वारा फैलती है। यह एक अति संक्रामक रोग था, जिससे मनुष्य की ग्रंथियाँ बेकार हो जाती थीं। प्लेग के होने से शरीर पर गहरे नीले और काले चकते निकल आते थे, इसलिए इसे काली मौत भी कहा जाता था। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति की मौत तीन दिन में हो जाती थी। जैसा कि

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



माना जाता है कि इस रोग का आगमन सबसे पहले 1331-32 में मंगोलिया में हुआ था। वहाँ से व्यापारिक मार्गों से होते हुए 1339 ई. में क्रीमिया, 1347 में इटली, 1348 में पेरिस और दिसम्बर तक चैनल, निचले देशों और दक्षिण इंग्लैण्ड तक पहुँच गया। इस बीमारी से लगभग सभी यूरोपीय देश प्रभावित हुए, यहाँ तक कि इन देशों को तबाह कर दिया। दूसरी बार प्लेग का आगमन 1360 ई. में हुआ किन्तु अब प्लेग के साथ-साथ एक और बीमारी एन्फ्यूएंजा होने के कारण स्थिति पहले से भी खराब हो गई। प्लेग 1510 ई. तक कुछ वर्षों के अन्तराल पर आता रहा और इसके प्रकोप से लोग मरते रहे, किन्तु 1410 ई. में ही इसके आतंक एवं तीव्रता में कमी आने लगी थी।

प्लेग से मरने वालों की संख्या को लेकर इतिहासकारों में एकमत नहीं रहा है। फिर भी इतना तो जरूर है कि इससे यूरोप की पाँचवें हिस्से से लेकर आधी जनसंख्या समाप्त हो गई थी। इंग्लैण्ड के टैक्स रिकॉर्ड के अनुसार 1338 ई. और 1415 ई. में वहाँ की जनसंख्या महामारी के पूर्व 3,125,000 थी, जबकि 1358 ई. में यह 2,750,000 हो गई। एक आकलन के अनुसार यूरोप में तेरहवीं शताब्दी की तुलना में वयस्क पुरुषों की संख्या आधी रह गई थी। चूँकि प्लेग के प्रकोप की सही-सही संख्या का पता नहीं लगाया जा सकता, परन्तु बदलती जलवायु और बढ़ती शहरी भीड़ के कारण निश्चित रूप से अधिक लोगों की मृत्यु हुई होगी। कामकाजी पुरुष जनसंख्या में कमी आने से मूल्य, मजदूरी, कृषि, मजदूर और मालिक सम्बन्ध प्रभावित हुए। कारखानों के मालिकों ने अपनी स्थिति सुरक्षित रखने के लिए कई मजदूर अधिनियम बनाए, जिससे मजदूरी स्थिर रहे। दरअसल वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो गई थी, इसलिए मजदूरों ने अधिक वेतन की माँग की, जिसके न मिलने के कारण धीरे-धीरे विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

चौदहवीं शताब्दी में यूरोप के कई देशों में वर्षा अधिक होने और शीत ऋतु में ठंड ज्यादा पड़ने से खाद्यान्न का उत्पादन अच्छा नहीं हो सका। ऐसा माना जाता है कि जलवायु में इस परिवर्तन के कारण लोगों की संक्रामक रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो गई। साथ ही साथ मध्ययुगीन जीवन-शैली, खान-पान इत्यादि ने भी रोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। इन्हीं कारणों से शहरों और गाँवों में टायफाइड, मधुमेह, टी.बी., मलेरिया, चेचक, इन्फ्लूएंजा जैसी बीमारियों से मनुष्य ग्रसित होने लगे।

अत: ऊपर के अध्ययन से पता चलता है कि इन मध्यकालीन बीमारियों ने यूरोप को विविध प्रकार से प्रभावित किया। जैसा कि हम जानते हैं कि बीमारियों ने जहाँ एक ओर जनसंख्या को कम किया, वहीं दूसरी ओर सामाजिक-आर्थिक असमानता को भी बढ़ाया। जनसंख्या कम होने के कारण उत्पादन में कमी आयी। फिर भी इन रुकावटों के बावजूद यूरोप अपने वाणिज्य और व्यापार के बल पर आगे बढ़ता रहा।

**प्रश्न 4. जन्म दर, मृत्यु दर, परिवार और विवाह जैसे कारक जनसंख्या के उतार-चढ़ाव को किस प्रकार प्रतिबिंबित करते हैं?**

**उत्तर**–उत्पादन में नवीन खोजों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि होती है, जिसका सीधा प्रभाव जनसंख्या वृद्धि पर पड़ता है। कृषि में लोहे से बने औजारों के प्रयोग से अतिरिक्त उत्पादन होने लगा, जिससे शहरों का विकास हुआ तथा यहाँ की जनसंख्या में समानता आने लगी। इस जनसंख्या को जन्म दर, मृत्यु दर और परिवार जैसे कारकों ने अपने-अपने ढंग से प्रभावित किया। इस तरह परिवार, विवाह की प्रकृति, जन्म और मृत्यु दर आदि ने जनसंख्या में कई प्रकार के परिवर्तन किए और इसके परिणामस्वरूप नई सामाजिक-आर्थिक पद्धतियाँ शुरू हुई, जिनका विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या के आँकड़े कम मात्रा में उपलब्ध हैं। साथ ही जन्म दर और विवाह सम्बन्धी आँकड़े भी कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण कुल जनसंख्या का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है, फिर भी आकलन तो किया जा सकता है। कुछ विद्वानों जैसे स्लिशर वैन बाथ, डब्ल्यू. एबेल, एल. जेनिकॉट आदि ने घर के हिसाब से बच्चों की संख्या का आकलन करने का प्रयास किया, जिसमें उन्होंने पाया कि 1050 से 1250 के बीच जन्म दर में वृद्धि हो रही है। इसी तरह 1424 ई. में प्लेग के खत्म होने के बाद जन्म दर में उछाल आया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में प्रत्येक महामारी में बपतिस्मा में सामान्य दिनों की तुलना 12 से 30 प्रतिशत की कमी आई और फिर प्लेग खत्म होने के दो-तीन वर्षों के बाद इसमें तेजी से वृद्धि हुई। ऐसा माना जाता है कि इसका कारण संभवत: लोग शहर छोड़कर भाग गये होंगे या प्लेग के बाद महिलाओं के प्रजनन में कमी आयी होगी।

मध्यकाल के प्रारम्भ में मृत्यु दर में कमी आने के कारण 1100 और 1275 ई. के बीच में लोगों की औसत आयु 22 से बढ़कर 25 वर्ष हो गई। इसी तरह 1200 ई. से मध्यकाल के अन्त तक इंग्लैण्ड में प्लेग के समय या प्लेग के बाद भी औसत आयु 35 वर्ष और उससे अधिक थी। किन्तु महिलाओं और बच्चों के बारे में आँकड़े कम मात्रा में उपलब्ध हैं। फिर भी उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार मध्यकाल में महिलाओं द्वारा बार-बार बच्चे पैदा करना, खेतों में काम करना आदि से वे अस्वस्थ हो जाती थीं, जिसके कारण उनकी आयु बहुत ज्यादा नहीं हुआ करती थी। चूँकि उस समय के आँकड़े मृत्यु के समय व्यक्ति की उम्र पर आधारित हैं, जिससे पता चलता है कि चौदहवीं शताब्दी के अंत में लोगों की आयु कम हो गई थी। साथ ही अलग-अलग पीढ़ियों में उम्र का ढाँचा अलग-अलग था। उस समय जहाँ 15 वर्ष के व्यक्तियों की संख्या कुल जनसंख्या की एक चौथाई थी, तो 50 वर्ष से ऊपर के व्यक्ति केवल 7 प्रतिशत थे। इस तरह मृत्यु दर भी उम्र के अनुसार अलग-अलग थी। फिर भी सही-सही मृत्यु दर का पता लगाना

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कठिन है।

मध्यकाल के पारिवारिक ढाँचे को जानने का एकमात्र उपलब्ध स्रोत घर सम्बन्धी आँकड़े हैं। घर सम्बन्धी ढाँचे को देखने से परिवार में टूट और विभाजन को समझा जा सकता है। जैसे कि 1350 और 1427 ई. में परिवार में टूटन, विभाजन और घरों की संख्या में तेजी से गिरावट आई। यह गिरावट शहरों में लगभग 33 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्रों में 15 प्रतिशत थी। यह भी माना जाता है कि आर्थिक रूप से समृद्ध होने के पश्चात् दम्पत्तियों द्वारा एकल परिवार या छोटे परिवार को प्राथमिकता दी जाने लगी। इसके साथ ही प्लेग जैसे महामारी के प्रकोप के समय बढ़ती मृत्यु दर के कारण पारिवारिक ढाँचे में कई तरह के परिवर्तन हुए। इसके कारण लोगों ने शहर की ओर पलायन किया और इससे कई पारिवारिक बन्धन टूटे तथा कई नये पारिवारिक बन्धन बने। चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विधवाओं का विवाह एक प्रमुख विशिष्टता थी। इस समय एक से अधिक विवाह और विवाह की उम्र कम होने से प्रजनन दर में वृद्धि हुई। साथ ही मृत्यु दर में वृद्धि से युवा वर्ग को फायदा हुआ। उनकी भूमि अधिकार की बढ़ोतरी हुई। इस तरह जनसंख्या को परिवर्तन के कारकों, यथा–सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों ने बहुत हद तक प्रभावित किया।

टस्कनी से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में विवाह की उम्र पुरुष की 22 तथा महिला की 20 थी। किन्तु शहरों के अमीर वर्ग के लड़के आमतौर से 30 वर्ष की उम्र में विवाह करते थे। विवाह के आँकड़ों द्वारा भी जनसंख्या का एक अनुमान लगाया जा सकता है। इन आँकड़ों के अनुसार महामारी के समय विवाह में बाधा पड़ी और महामारी के बाद इसमें वृद्धि हुई, जो आगे भी जारी रही। गिवरी नामक जगह के अध्ययन से पता चलता है कि वहाँ प्लेग आने के पूर्व प्रतिवर्ष औसतन दस से बारह विवाह हुआ करते थे। 1348 ई. में वहाँ कोई विवाह नहीं हुआ, लेकिन उसके अगले वर्ष 86 शादियाँ हुईं। ऐसा भी हो सकता है कि लोग देर से विवाह करने लगे हों, इसलिए विवाह में कमी आयी हो। जैसा कि शैम्पेन के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि वहाँ दुल्हन बनने की उम्र 18 वर्ष से बढ़कर 22 और 24 हो गई। दूसरी ओर महामारी खत्म होने के बाद विधवाओं और विदुरों का पुनर्विवाह हुआ इसलिए प्लेग खत्म होने के उपरांत इन नवदम्पत्तियों की उच्च प्रजनन दर के कारण जन्म दर में तेजी से वृद्धि हुई।

इस तरह हम जन्म दर, मृत्यु दर, परिवार और विवाह जैसे कारकों से जनसंख्या के उतार-चढ़ाव का एक स्पष्ट अनुमान लगा सकते हैं।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न–मध्यकाल में जनसांख्यिकी में परिवर्तन के विभिन्न कारकों की चर्चा करें।**

**उत्तर**–उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन आने से उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ा। अब नए क्षेत्रों में खेती की जाने लगी और लोहे के बने औजारों का प्रयोग कृषि में किया जाने लगा, जिससे खाद्यान्न के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हो गई। इससे शहरों की अर्थव्यवस्था का विकास और व्यापार का प्रसार और जनसंख्या की सघनता में वृद्धि हुई। अतः जनसांख्यिकी परिवर्तन के मुख्य कारक देशांतरण और शहरीकरण को माना जाता है। जर्मनी के कबीले के पूरब की तरफ देशांतरण के कारण छठी से दसवीं शताब्दियों के बीच युद्ध शुरू हो गया। दूसरी ओर स्लावोनियाई कबीले दक्षिण की ओर बालकन क्षेत्र तक और पूरब की ओर वोल्गा क्षेत्र तक दबाव डालने लगे। सातवीं शताब्दी में अरब कबीले ने उत्तरी अफ्रीका व स्पेन पर कब्जा कर लिया। मंगोल सेना ने लगभग 1237 से 41 ई. के बीच स्लावियाई राजवंश को कुचल दिया, जिसके फलस्वरूप एक-तिहाई स्लावियाई जनसंख्या खत्म हो गई। इसी तरह पन्द्रहवीं शताब्दी में ऑटोमन तुर्क एशिया माइनर क्षेत्र में गये और बालकन प्रायद्वीप में घुसने लगे जिसके कारण स्लाव जनसंख्या को भारी नुकसान उठाना पड़ा। इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच चलने वाले सौ वर्षीय युद्ध के कारण भी जनसंख्या में कमी आयी। शहरीकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का स्थानांतरण शहरी केन्द्रों की तरफ हुआ। किन्तु फिर भी मध्यकाल के आरम्भ तक कुछ ही शहर ऐसे थे, जिनकी जनसंख्या 10000 से अधिक थी। फिर दसवीं शताब्दी के बाद जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई। चूँकि शहरी जनसंख्या का आकलन करना एक कठिन कार्य है। फिर भी एक अनुमान लगाया जा सकता है। सातवीं शताब्दी में स्थापित भूमध्यसागरीय शहरों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 7 से 8 प्रतिशत ही थी। लेकिन चौदहवीं शताब्दी में आकर जनसंख्या बहुत बढ़ गयी। चूँकि यह जनसंख्या वृद्धि व्यापार में वृद्धि के कारण हुई थी। जैसे पैलेरमो और नेपल्स की जनसंख्या एक लाख और पेरिस की जनसंख्या दो लाख हो गयी।

दरअसल यह जनसंख्या वृद्धि काली मौत के बाद शहरी अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान के कारण बढ़ी। आगे चलकर पन्द्रहवीं शताब्दी में पेरिस की जनसंख्या 274,000 ब्रजेस की 125,000, मिलान की 1,25,000 हो गई।

अतः उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि देशांतरण और शहरीकरण ने जनसंख्या वृद्धि और कमी में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जहाँ युद्ध के कारण जनसंख्या में कमी आयी। वहीं दूसरी तरफ कृषि में प्रौद्योगिकी के विकास के परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई। शहरी अर्थव्यवस्था के विकास के कारण लोगों में समृद्धि आयी जिससे पेरिस, ब्रजेस, मिलान जैसे शहरों की जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# शहरीकरण

32

## परिचय

इस अध्याय में शहरीकरण, नगरों तथा शहरों के उद्‌भव और विकास का विश्लेषण किया गया है। प्रत्येक समाज में शहरों के विकास के दौरान जो शहरीकरण हुआ वह आधुनिक काल तक लगातार जारी रहा। प्राचीन काल में आर्थिक समृद्धि आने के पश्चात् कई लोग कृषि-कार्य से प्रत्यक्ष रूप से न जुड़कर अन्य व्यवसाय, जैसे-वाणिज्य, व्यापार, शिल्पकर्म आदि करने लगे। आगे चलकर इन्हीं लोगों के योगदान के कारण शहरी केन्द्रों का विकास हुआ, जो सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गए। मध्य काल में लगभग विश्व के सभी देशों में तेजी से शहरीकरण हुआ। ये शहर ग्रामीण क्षेत्रों से पूर्णतः भिन्न थे। इन शहरों में लोगों को पूर्णतः स्वतंत्रता मिली। यहाँ पर लोगों को कृषि दासता और सामंती दमन से आजादी मिल गई, जिसके कारण भिन्न-भिन्न कौशल एवं निपुणता से युक्त लोगों ने अपने कौशल को एक नई दिशा दी। शहरों के आर्थिक और सामाजिक समृद्धि एवं पर्याप्त स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए यह कहावत प्रसिद्ध हो गई कि 'शहर की आबोहवा व्यक्ति में आजादी का एहसास भर देती है।' फिर भी इन शहरों में प्रगति का आधार ग्रामीण क्षेत्र ही रहे।

1960 के दशक के पश्चात् शहरीकरण के विषय में जानने के लिए अनेक शोध हुए। इन शोधों से फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और भारत की शहरीकरण की प्रक्रिया को जानने में मदद मिलती है। जहाँ तक शहरों की परिभाषा का प्रश्न है, तो हम कह सकते हैं कि ये शहर आमतौर पर गाँवों से बड़े होते थे। यहाँ के लोग व्यापार, शिल्प और प्रशासनिक गतिविधियों में लगे हुए होते थे। इन शहरों को अलग-अलग आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों के कारण भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित किया गया है। जिस कार्य का संकेन्द्रण उस शहर में अधिक है उसके व्यापार पर शहरी क्षेत्रों को प्रशासनिक, धार्मिक, सैनिक, वाणिज्यिक और सांस्कृतिक केन्द्रों में विभाजित किया जा सकता था। इस प्रकार के विभाजन का मुख्य उद्देश्य नगरों के उद्‌भव को जानना है, लेकिन किसी नगर में एक से अधिक कार्य भी हो सकते हैं। शहरों की अपनी अलग विशेषता होती है। शहर में बाजार होता है और इस बाजार से शहर में रहने वाले लोगों की आवश्यकता की पूर्ति होती है। दूसरे अर्थों में हम यह भी कह सकते हैं कि शहर एक बाजार ही है। इसके अलावा समाज और अर्थव्यवस्था को विभाजित करने वाली एक विभाजक रेखा भी होती है। एक विद्वान *एफ. ब्राडल* के अनुसार, "जहाँ शहर होता है, वहाँ सत्ता होती है, यह सत्ता प्रतिरक्षात्मक भी हो सकती है या संरक्षणात्मक और दमनात्मक भी।" सत्ता किस सामाजिक समूह के पास है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, बल्कि जरूरी यह है कि उस सत्ता को किस माहौल में इस्तेमाल किया जा रहा है। अंततः हम कह सकते हैं कि शहरों के बिना अंतर्राष्ट्रीय और अन्य देशों से सम्पर्क स्थापित नहीं हो सकता। प्रत्येक काल की शहरों की अपनी अलग विशेषताएँ समान ही रही होंगी। शहर के लोगों का आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से प्रतिदिन सम्पर्क रहता था, क्योंकि वहाँ से उनकी दैनिक जरूरतों की पूर्ति होती थी। गाँव के लोग जरूरी खरीदारी करने के साथ-साथ यहां काम करने भी आया करते थे, जिससे ये शहर एक प्रकार के छोटे-बड़े सूचनाओं के केन्द्र भी हुआ करते थे। मुख्य शहरों के आसपास उपनगरों का भी विकास हो गया। धीरे-धीरे उपनगरों का एक पदानुक्रम विकसित हो गया।

यूनान में शहरों का उदय अभी हाल में ही हुआ है। इन शहरों का विकास ग्रामीण पृष्ठभूमि पर हुआ था। रोमन सभ्यता के पैट्रिशियन इटली के बड़े-बड़े शहरों में रहते थे। चूँकि अब बड़े-बड़े भूमिपति भी ग्रामीण इलाकों को छोड़कर इन शहरों में रहने लगे। इसके 'साथ ही उनका धन भी इन शहरों में आने लगा। रोमन व्यापार मुख्यतः भूमध्यसागर के द्वारा होता था एवं सभी प्रमुख शहर समुद्रतटीय क्षेत्र में स्थित थे। धीरे-धीरे रोमन व्यापार में तेजी आने लगी। इसके साथ-साथ अनेक बंदरगाहों का विकास हुआ। इस तरह एलेक्जेंड्रिया रोमन सभ्यता का सबसे बड़ा बंदरगाह बन गया।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा, दक्षिण एशिया की सबसे प्राचीन शहरी सभ्यता थी। इन शहरों को सुनियोजित ढंग से बसाया गया था। इनका नियोजन मध्यकालीन नगरों से भी उत्कृष्ट था। इनके

www.neerajbooks.com



पतन के पश्चात् छठी शताब्दी के करीब दक्षिण एशिया में एक बार फिर नगरों का उद्‌भव हुआ। लगभग छठी शताब्दी में पुन: भारत में शहरों का विकास हुआ। ये शहर अपनी प्रमुख विशिष्टता, जैसे–व्यापारिक, प्रशासनिक, धार्मिक, राज्यों की राजधानिया आदि के प्रसिद्ध केन्द्र रहे। इन शहरों के उत्खनन से पता चलता है कि इनकी स्थापना प्रथम सहस्राब्दी ई.पू. में हुई थी। इन शहरों की किलेबंदी की जाती थी एवं इनके चारों तरफ खाई बनायी जाती थी। इन खाइयों से बाढ़ एवं आक्रमणों से शहरों की रक्षा होती थी। यहाँ के घर के निर्माण में मुख्यत: कच्ची ईंटों का तथा कभी-कभी पक्की ईंटों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ नालियाँ, कुओं आदि के भी प्रमाण मिले हैं। तक्षशिला के उत्खनन से प्राप्त घर के भीतर चारों ओर कमरे हैं और बीच में आंगन था। यही नियोजन लगभग भारत के सभी नगरो में था। लगभग 600 ई.पू. में जिस व्यापारिक केन्द्र और शहरों का उत्तरोत्तर विकास हुआ था, उसे गुप्त काल की सामंतवादी व्यवस्था ने पतन के कगार पर ला दिया। आगे रोमन साम्राज्य पर हूणों के आक्रमण के कारण रोमन व्यापार में बाधा आ गई, जिसके परिणामस्वरूप उत्तर भारत के शहरी केन्द्रों का पतन प्रारंभ हो गया।

एक बार पुन: मध्यकाल में सभी क्षेत्रों में शहरों का उदय हुआ। इस काल में शहरी आबादी में वृद्धि, शहरी क्षेत्र का विकास, शहरों की संस्थाओं, शिल्प उत्पादन, वाणिज्यिक और औद्योगिक गतिविधियों में वृद्धि हुई। पश्चिमी यूरोप के शहरों के उदय के विरोध में यह माना जाता है कि व्यापार और बाजार ने ऐसी ताकतों को आगे बढ़ाने के लिए आधार निर्मित किया, जिसने सामंतवाद को खत्म करके इन शहरी केन्द्रों को संरक्षण दिया। अन्य विद्वानों का यह मानना है कि इन शहरों का विकास गाँवों के आधार पर हुआ। इनके अनुसार सामंती समाज के ढाँचे के अन्तर्गत शहरों का विकास हुआ। *हेनरी पिरेन* के अनुसार मध्यकालीन शहरों का जन्म व्यापारी कारवां की बस्तियों से हुआ। शुरुआत में व्यापारी एक मेले से दूसरे मेले और एक सामंती क्षेत्र से दूसरे सामंती क्षेत्र तक पैदल घूम-घूमकर अपना सामान बेचते थे। उन्होंने अपने रहने के लिए पुराने रोमन शहरों को चुना, क्योंकि ये क्षेत्र व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। धीरे-धीरे ये क्षेत्र शहर के रूप में परिणत हो गए। इंग्लैण्ड के अनेक शहरों का उदय नदी के मुहाने पर हुआ है। मैनचेस्टर और कैम्ब्रिज पहले गाँव ही थे। नदी के मुहाने पर स्थित होने के कारण इनका तेजी से विकास हुआ।

मध्यकालीन शहरों की जनसंख्या का अनुमान लगाना कठिन है। किन्तु यूरोप के कई शहरों का उल्लेख मिलता है, जिनकी जनसंख्या सौ से लेकर हजारों तक थी। फ्रांस में 2000 जनसंख्या वाले स्थान को शहर कहा गया है। वहीं इंग्लैण्ड में 5000 की जनसंख्या वाले स्थानों के शहर माना गया है। 5000 जनसंख्या वाले स्थानों के अनुसार इंग्लैण्ड में 1700 ई. 13 प्रतिशत, 1750 ई. 16 प्रतिशत और 1801 में 25 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे। भारत में 1593 ई. के लगभग 120 बड़े नगर और 3200 छोटे शहरों की जानकारी मिलती है। *इरफान हबीब* के अनुसार मुगलकालीन भारत में कुल जनसंख्या के लगभग 15 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे। इस काल में यूरोप के शहरों में तीव्र गति से वृद्धि हुई। 16वीं और 17वीं शताब्दियों में 50 से अधिक ऐसे शहर थे जिनकी जनसंख्या 40000 से अधिक थी। 17वीं सदी में 12 ऐसे शहर थे, जिनकी जनसंख्या एक लाख से अधिक थी। लंदन की जनसंख्या 16वीं सदी के प्रारम्भ में 60,000 से कम थी, जो 17वीं सदी के प्रारम्भ में करीब 2 लाख हो गई। इस काल में भारतीय शहर लाहौर, आगरा और दिल्ली की जनसंख्या 5 लाख से अधिक थी, जो कि तत्कालीन यूरोपीय नगरों के अनुपात में बहुत अधिक थी।

शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक भिन्नताएं होती हैं। दोनों की अपनी अलग-अलग आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान होती है। इसी तरह यूरोपीय एवं एशियाई शहरों की अपनी बनावट और सामाजिक-आर्थिक संरचना में स्पष्ट रूप से भिन्नता देखने को मिलती है। अत: हम यहाँ दोनों की अलग-अलग व्याख्या करेंगे।

पश्चिमी यूरोपीय शहरों का निर्माण पूँजीवादी संरचना के अनुरूप हुआ। धीरे-धीरे इसने सामंती सामाजिक सम्बन्धों को अपने अन्दर आत्मसात कर लिया। इस काल के यूरोपीय शहर अपने खुलेपन के कारण एक स्वायत्त संसार के रूप में विकसित हुए। पिरेन के अनुसार 11वीं शताब्दी से दूरस्थ व्यापार की शुरुआत होने और इस्लाम के विरुद्ध इसाई धर्म के प्रति आक्रमण के परिणामस्वरूप पुन: शहर और बाजारों का उदय हुआ और बंद अर्थव्यवस्था की दीवारें टूट गईं। इस काल में शहर और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच श्रम विभाजन ने ग्रामीण इलाकों के स्वरूप को बदल दिया। गाँव में रहने वाले लोगों की इच्छाओं में वृद्धि हुई। साथ-साथ उनकी जरूरतें भी बढ़ने लगी। उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठ गया। भिन्न-भिन्न शहरों के पास अलग-अलग सीमा तक आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता थी। सामंती व्यवस्था के ह्रासोन्मुख काल में भूमिपतियों द्वारा ग्रामीणों से बलपूर्वक धन वसूलने के कारण गाँव के लोग अपने खेतों को छोड़कर शहर में जाकर बसने लगे। शहरों के खुलेपन के कारण इन ग्रामीणों ने पर्याप्त आजादी महसूस की तथा इन्होंने शहरी अर्थव्यवस्था को गति देने में अपना अमूल्य योगदान दिया। पर इस काल में कई शहर ऐसे भी थे, जो आज के बड़े गाँव की तुलना में कुछ ही बड़े थे। शहरों की जनसंख्या 20000 से अधिक होना अपवाद ही था। 14वीं शताब्दी में केवल इटली और फ्लैंडर्स में ही 40,000 से 50,000 की जनसंख्या वाले शहर पाये जाते हैं।

दूसरी तरफ मध्यकाल के एशियाई शहर कुछ मामलों में यूरोपीय शहरों से भिन्न थे। जहाँ यूरोपीय शहरों का स्वरूप स्वायत्त था, जबकि इस्लामी दुनिया के शहरों में बहुत अल्प मात्रा में स्वायत्तता थी। जैसा कि हम पाते हैं कि बगदाद और कैरो जैसे बड़े

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



शहरों में खलीफा का शासन होता था। इन शहरों में राजनीतिक स्वतंत्रता की कमी थी, किन्तु हम इस्लामी शहरों में भी शहरी जीवन के सभी आवश्यक तत्त्व पाते हैं; जैसे–व्यापारी, वणिक और बुद्धिजीवियों के वर्ग, निर्धन जनता, कारीगर और दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूर। शहर शिक्षा के भी केन्द्र हुआ करते थे। ये शिक्षा के केन्द्र मुख्यत: मस्जिदों से जुड़े होते थे। शहरों की सीमा के बाहर रहने वाले बहुत ही पिछड़े कृषक वर्ग भी इन शहरों के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते थे। कुछ मामलों में पश्चिमी शहरों एवं मुस्लिम शहरों में समानता भी देखने को मिलती है। इस्लामी सभ्यता के गढ़ जो एक शहर ही होते थे यहाँ के सड़क, जहाज, कारवां और तीर्थ स्थल एक-दूसरे के समान ही थे।

दूसरी तरफ मध्यकाल के भारतीय शहर में कई प्रकार कार्य थे। कुछ शहर उत्पादन और विपणन, बैंकिंग और उद्यमी गतिविधियों से जुड़े हुए थे, तो कई शहर तीर्थ और धार्मिक गतिविधियों के केन्द्र थे। मुगलकाल में कई यूरोपीय यात्रियों ने भारत की यात्रा की और यहाँ के शहरों की गतिविधियों एवं सम्पन्नता का विस्तृत विवरण दिया है। उनके अनुसार मुगलकाल के शहर अपनी वाणिज्यिक और व्यापारिक गतिविधियों के साथ-साथ राजनीतिक और प्रशासनिक गतिविधियों के कारण बहुत ही समृद्ध होते थे। जहाँ दिल्ली और आगरा मुगल साम्राज्य की राजधानियाँ थीं वहीं पटना, बुरहानपुर, ढाका, खानदेश, लाहौर आदि महत्त्वपूर्ण शहर थे। ये शहर प्रांतों की राजधानी भी होते थे। लेकिन भारतीय शहरों एवं पश्चिम देशों में एक प्रमुख भिन्नता यह थी कि जहाँ भारतीय शहर की जाति-व्यवस्था ने यहाँ के समुदाय को विभाजित एवं विखण्डित कर दिया था, वहीं यूरोपीय लोगों ने इन सभी प्राचीन बन्धनों को तोड़कर सभी व्यक्तियों ने मिल-जुलकर इन शहरों के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया।

मध्यकाल में एशिया और यूरोप के शहरों की बाहरी बनावट और सामाजिक और आर्थिक संरचना में भी पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। मध्यकाल में यूरोप और एशिया के शहर दीवारों और परकोटों से घिरे हुए होते थे, जिससे शहरों को खतरों से सुरक्षित रखा जा सके। पश्चिमी शहरों और इस्लामी शहरों के स्वरूप में भी कई प्रकार की भिन्नता देखने को मिलती है। आरम्भिक यूरोपीय शहर मुख्यत: रिहायशी, बाजार, सरकारी दफ्तर और अदालत आदि में विभाजित होते थे। फिर भी यहाँ के शहरों के निर्माण में किसी योजना का परिचय नहीं मिलता। जैसे-जैसे इन शहरों की जनसंख्या बढ़ती गई, इनका प्रसार भी उसी के अनुसार अनियोजित ढंग से होता गया। शहरों में जनसंख्या की वृद्धि के कारण सड़कें तंग होने लगीं। घर छोटे-छोटे बनने लगे और शहरों की सीमाएं बढ़ने लगीं।

जहाँ तक इस्लामी शहरों का प्रश्न है, उनमें बहुत-सी समानताएँ देखने को मिलती हैं। यहाँ के शहरों की गलियाँ संकरी होती थीं तथा इन गलियों का निर्माण ढलवां किया जाता था, ताकि वर्षा होने पर ये धुल जाएँ। काहिरा, मक्का और जद्दा जैसे शहरों की इमारतें बहुमंजिला होती थीं। इन शहरों में प्रशासन राजा द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा चलाया जाता था। साथ ही साथ इन शहरों के प्रमुख क्षेत्रों का योजनाबद्ध तरीके से निर्माण किया जाता था। जैसे साप्ताहिक नमाज पढ़ने के लिए शहर के बिल्कुल बीच में एक विशाल मस्जिद होती थी और इस मस्जिद के बगल में बाजार स्थित होता था। मस्जिद से सटे हुए ही कारीगरों की दुकानें एक क्रम में होती थी। यह क्रम सामान्यत: इस प्रकार होता था; जैसे–इत्र बनाने और बेचने वाले, कपड़ा बेचने वाले, जौहरी और खाने-पीने की दुकान और इसके पश्चात् छोटे व्यापारी, मोची, लोहार, कुम्हार, रंगरेज आदि की दुकानों का क्रम हुआ करता था।

यहाँ हम शहर एवं गाँवों के बीच स्थित अंत:सम्बन्ध की चर्चा करेंगे, क्योंकि दोनों को एक-दूसरे की आधारभूत आवश्यकता थी। शहरों को अपनी खाद्यान्न की आवश्यकता के लिए ग्रामीण क्षेत्रों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। दूसरी तरफ ग्रामीण क्षेत्रों को कृषि कर्म के लिए निर्धारित वस्तुओं और विलासिता की वस्तुओं, रोजगार आदि के लिए शहरी इलाकों पर निर्भर रहना पड़ता था। दरअसल शहर का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों से आए लोगों के द्वारा हुआ था। इसलिए फसल की कटाई के समय यहाँ रहने वाले कारीगर और मजदूर अपने घरों को छोड़कर गांवों में कटाई करने चले जाते थे। यही स्थिति लगभग 1722 ई. तक बनी रही। पश्चिमी देशों के विपरीत भारत में गाँव कुछ हद तक आत्मनिर्भर थे, किन्तु अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ये भी शहरों पर निर्भर थे। गाँव के लोग पैसा कमाने के लिए अपना समान शहर में बेचते थे और वहाँ से औजार, नमक और मसाले आदि खरीदते थे साथ ही साथ कई कारीगर रोजगार की तलाश में शहर में भी जाते थे।

यहाँ हम शहरों के विकास से होने वाले प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों की चर्चा करेंगे। सामंतवाद से मुक्ति पाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी शहर आए, इससे शहरों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी। फिर भी इन लोगों को शहर में नागरिक अधिकार नहीं मिला। शहर का वातावरण स्वतंत्र होने के बावजूद केवल अमीर लोगों को ही नागरिकता प्राप्त थी। मुख्यत: मध्यकाल में शहरों का विकास व्यापारिक वर्ग द्वारा किया गया था, फिर भी यहाँ कई अभिजात वर्ग, जो मुख्यत: सामंती समाज से जुड़े हुए भी रहते थे। इनकी जमीन अभी भी शहरों एवं आसपास के गाँवों में हुआ करती थी। जैसे इटली के कई शहरों में सामंती परिवार न केवल शहरों पर अपना नियंत्रण बनाए हुए थे, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी इनका दबदबा था।

शहरों में सामंतवादी प्रवृत्ति होने के बावजूद यूरोप के शिल्पियों और व्यापारियों ने अपनी श्रेणियों के संगठन को मजबूत किया। साथ ही साथ उन्होंने अपनी पकड़ अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन में क्रमश: मजबूत की। इन लोगों ने व्यापार के लिए, उद्योग और

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



शासन करने के लिए बड़े पैमाने पर निर्माण कार्य शुरू किया जिससे शहरों की रूपरेखा ही बदल गई। शासन के स्वरूप में कई परिवर्तन किये गये। सामाजिक गतिशीलता के लिए और व्यापारिक लेन-देन और लोगों के जीवन को नियंत्रित और नियमित करने के लिए अनेक प्रकार के कायदे एवं कानूनों को बनाया गया।

कई प्रकार के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अन्त:आकर्षण के पश्चात् शहरों का विकास हुआ था। क्योंकि बाहर से आने वाले लोग कई प्रकार की अपनी लोक परंपरा, रीति-रिवाज और त्योहार लेकर शहर में आए। लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग राष्ट्र से अपनी राष्ट्रीयता को लेकर शहर में आए। इन लोगों ने शहर में आकर एक नया सामाजिक जीवन प्रारम्भ किया, जिससे एक नया सामाजिक सम्बन्ध विकसित हुआ। इन लोगों ने अपनी धार्मिक मान्यता के अनुसार अलग-अलग पूजा-अर्चना के केन्द्रों का भी निर्माण किया। अब शहरों में बड़ी संख्या में विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्थापित किए जाने लगे। यद्यपि प्रारम्भ में तो किताबें महँगी होती थीं, किन्तु 15वीं शताब्दी में मुद्रण प्रौद्योगिकी के विकास के पश्चात् पुस्तकों की पहुँच आम जनता तक हो गई। इससे नये बुद्धिजीवी और अभिजात वर्ग का जन्म हुआ। यह नया शिक्षित वर्ग विज्ञान, कला, साहित्य और नए विचारों से परिपूर्ण था, जिसने शहर के नये स्वतंत्र माहौल को जन्म देने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार मध्यमवर्ग ने राजनीतिक और सामाजिक माहौल में परिवर्तन करके, अर्थव्यवस्था पर भी अपना क्रांतिकारी प्रभाव डाला। यूरोपीय देशों के विपरीत इस्लामी देश, भारत और चीन में इस मध्यमवर्ग का उदय नहीं हो पाया, जिसके कारण मध्यकाल के एशिया के शहर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से स्वायत्त नहीं बन सके। इसलिए इन देशों के शहरों में सामंती प्रवृत्तियाँ बनी रहीं जिसके कारण ये शहर आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलावों को अपना नहीं सकें।

अत: शहरीकरण ने मध्यकाल में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनके शहरों में अलग-अलग समाज एवं संस्कृति के लोग रहते थे, जिन्होंने शहर के माहौल को स्वतंत्र बना दिया, जिसके कारण अनेक प्रकार की प्रशासनिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं का जन्म हुआ। ये शहर विकास एवं समृद्धि के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरे, जिसके कारण क्रमश: आधुनिक विश्व का निर्माण हुआ।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. लगभग 150 शब्दों में शहरों को परिभाषित कीजिए।**

**उत्तर**–प्राचीनकाल और मध्यकाल में लगभग दुनिया के सभी क्षेत्रों में शहरों का विकास हुआ। इन शहरों की अपनी खास विशिष्टता थी और ये शहर ग्रामीण क्षेत्रों से बिल्कुल अलग होते थे। यहाँ विभिन्न धर्म के लोग तथा साहित्यकार, बुद्धिजीवी, शिल्पकार, व्यापारी और विभिन्न प्रजाति और संस्कृति के लोग रहते थे। इन सब शहरी विशिष्टताओं को देखते हुए 1950 के दशक के बाद शहरीकरण के इतिहास को जानने के लिए विभिन्न शोध किये गये तथा शहरों को परिभाषित करने का भी प्रयास किया गया।

क्षेत्रीय विस्तार और किसी एक खास कार्य के आधार पर शहरों को परिभाषित करना कठिन कार्य था, क्योंकि आकार, जनसंख्या और यहाँ कार्य करने वाले लोगों की कार्य प्रकृति में पर्याप्त भिन्नता मिलती है। सामान्यत: हम यह कह सकते हैं कि शहर का आकार और जनसंख्या गाँवों से अधिक होती है। शहरों में विकसित शिल्प, बाजार, व्यापारिक केन्द्र और अपना प्रशासनिक ढाँचा होता है जो ग्रामीण बस्तियों से भिन्न होता है। यहाँ रहने वाले अधिकतर लोग गैर-कृषि कार्यों से जुड़े होते हैं तथा इन लोगों को खाद्यान्नों की आपूर्ति आसपास के गाँव करते हैं। शहर विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, फिर भी ये किसी खास सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

कार्य की प्रकृति के आधार पर शहरी क्षेत्रों को प्रशासनिक, धार्मिक, सैनिक, वाणिज्यिक और सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में विभाजित किया गया है। किन्तु एक शहर में कोई एक कार्य या एक से अधिक कार्य भी हो सकता है। इस विभाजन से शहरों के उद्गम और विकास को जाना जा सकता है। श्रम-विभाजन शहरों की प्रमुख विशेषता होती है। प्रत्येक शहर में एक बाजार होता है। उस बाजार से ही शहर में रहने वाले लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ और खाने-पीने का सामान खरीदते हैं। अत: हम स्पष्ट तौर पर कह सकते हैं कि शहर एक बाजार ही होता है।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि शहर एक प्रकार का बाजार ही है। यहाँ के रहने वाले लोग गैर-कृषि कार्यों से जुड़े होते हैं। ये शहर आसपास के गाँवों से जुड़े होते हैं, जिससे उन्हें आम जरूरत की वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं।

**प्रश्न 2. शहरीकरण का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कीजिए।**

**उत्तर**–सामान्यत: शहर उसे कहते हैं जो आकार में गाँवों से बड़ा होता है। यहाँ का शिल्प, बाजार और प्रशासनिक ढाँचा विकसित एवं अत्याधुनिक होता है और यहाँ के अधिकतर व्यक्ति गैर-कृषि पेशे से जुड़े होते हैं। 1960 के दशक के पश्चात् शहरों के इतिहास के विषय पर अनेक शोध हुए हैं। भिन्न-भिन्न शहरों को अलग-अलग सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए विकसित किया गया है। अत: कार्य के आधार पर शहरों को प्रशासनिक, आर्थिक, सैनिक, वाणिज्यिक और सांस्कृतिक केन्द्रों में विभाजित किया जाता है, लेकिन एक शहर में एक से अधिक कार्य भी किए जा सकते हैं।

दक्षिण एशिया में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसी प्राचीन शहरी सभ्यताओं का उद्भव हुआ। इन शहरों को नियोजित रूप से

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



विकसित किया गया था। इन प्राचीन सभ्यताओं के पतन के पश्चात् पुनः छठी शताब्दी में बड़ी संख्या में शहरों का उद्भव हुआ। इन नवीन शहरों की अपनी अलग-अलग विशेषता थी। मगध में राजगीर, कौशल में श्रावस्ती, वत्स में कौशाम्बी, अंग में चम्पा आदि शहरों का विकास राज्य की राजधानियों के रूप में हुआ जबकि उज्जैन, वैशाली और काशी जैसे नगरों का विकास व्यापारिक मार्गों पर हुआ। वैशाली, उज्जैन, श्रावस्ती, राजघाट और राजगीर आदि शहरों के उत्खनन से पता चलता है कि इन शहरों की स्थापना प्रथम सहस्राब्दी ई.पू. के प्रारम्भ में हुई थी।

भारतीय साहित्यों में शहरीकरण के उद्भव की जानकारी मिलती है। प्रारम्भ में गाँवों में लोहार, कुम्हार, बुनकर, टोकरी आदि बनाने वाले रहते थे। ये गाँव सामान्यतः कच्चे माल एवं व्यापारिक मार्ग और बाजार के निकट होते थे। धीरे-धीरे अधिक उत्पादन की आवश्यकता हेतु अनेक क्षेत्रों में विशेषज्ञतापूर्ण शिल्पी आकर कार्य करने लगे। आगे चलकर ये स्थल नवीन शहर के रूप में उभरे और इन शहरों का विकास वाणिज्यिक केन्द्रों के रूप में हुआ। वैशाली, श्रावस्ती, चम्पा, कौशाम्बी आदि शहर इसी प्रकार के थे।

यूनानी और रोमन सभ्यता में भी शहरों का विकास हुआ। इन शहरों से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग जुड़े हुए थे। जैसे एथेन्स में यूपेट्रिड अश्वपालक और वाइन उपजाने के लिए किसान शहरों में रहा करते थे और ये किसान शहरों की जनसभाओं में भी भाग लेते थे। इससे पता चलता है कि यूनानी नगर वस्तुतः शहर और देहातों का एक समुच्चय था, क्योंकि इन शहरों का निर्माण अभी-अभी ग्रामीण पृष्ठभूमि पर हुआ था।

यूनानी सभ्यता के विपरीत रोमन सभ्यता में बड़े भूपति गाँवों के बदले शहरों में रहते थे। वे अपने साथ यहां अपना धन भी लाये, जिसे उन्होंने व्यापार में लगाया, जिसके परिणामस्वरूप रोमन शहरों का विकास तीव्र गति से हुआ। यहाँ के लगभग सभी प्रमुख शहर समुद्री तट पर स्थित थे इसलिए साम्राज्य के एकीकरण के फलस्वरूप भूमध्यसागर से होने वाले व्यापार में तीव्रता आयी। इस तरह ओस्टिया भूमध्यसागर के द्वारा होने वाले व्यापार के कारण प्रमुख बन्दरगाह क्षेत्र में स्थित थे। पेरिस, ट्रायर और मेंज आदि शहर सीमांत क्षेत्र में स्थित थे। इनका विकास सैनिक शहर के रूप में हुआ, क्योंकि इनका इन शहरों पर आसपास के क्षेत्रों से आक्रमण का खतरा बना रहता था। एक अन्य शहर एलेक्जेंड्रिया भी था, जिसे रोमन सभ्यता का सबसे बड़ा बंदरगाह माना जाता था। अपनी आर्थिक गतिविधियों के कारण यह ओस्टिया से भी आगे निकल गया था।

इन दक्षिण एशिया, यूनानी और रोमन सभ्यता के शहरों की अपनी अलग बनावट थी, जो ग्रामीण क्षेत्रों की बाहरी बनावट से बिल्कुल भिन्न थी। इस काल के शहरों के चारों ओर खाई थी। परकोटा बनाया जाता था। बाद में इनकी किलाबंदी भी की जाने लगी। चूँकि अधिकतर शहर नदी के किनारे बसे हुए थे अतः परकोटा के द्वारा इन्हें सुरक्षित रखा जाता था। प्रारंभ में घर मिट्टी के बने होते थे, किन्तु बाद में ये ईंटों से बनने लगे। यहाँ की नालियाँ, कुएं, सड़कें हड़प्पा काल से अच्छे बने हुए थे। प्रत्येक घर के चारों ओर कमरे होते थे और कमरों के बीच में आँगन होता था। लगभग सभी शहरों की यही संरचना होती थी।

इस्लामी दुनिया में भी शहरों का विकास हुआ। मक्का उस काल में संसार का सबसे समृद्ध शहर था, क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद इसी शहर में रहते थे और यहीं से अपना उपदेश देते थे। यह शहर अन्य क्षेत्रों के व्यापारिक स्थल से जुड़ा हुआ था। यहाँ विदेशी शहरों से कारवां आया करते थे, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर व्यापार होने से यह व्यापार का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया।

धीरे-धीरे इन शहरों का पतन होने लगा। जैसे यूनानी और रोमन सम्राज्य के पतन के बाद इन शहरों का भी पतन हो गया। सिर्फ वे ही शहर अपना अस्तित्व बनाने में कामयाब हो सके जो या तो तीर्थ स्थल थे या फिर सैन्य प्रशासन के केन्द्र थे। इसी तरह गुप्त काल के उत्तरवर्ती चरण में सामंती व्यवस्था के उदय के परिणामस्वरूप प्राचीन भारत में शहरी केन्द्रों का पतन प्रारम्भ हो गया। आगे चलकर इसके कारण वाणिज्य-व्यापार को भी धक्का लगा जिसके कारण अंततः अनेक शहरों का पतन हो गया।

लेकिन मध्यकाल आते-आते एक बार पुनः सभी क्षेत्रों में शहरों का विकास होने लगा। इस काल में बस्तियों की संख्या में वृद्धि हुई, और इन शहरों में रहने वाले लोगों की जनसंख्या वृद्धि, शहरी क्षेत्रों का विकास, शहरों की संस्था, शिल्प उत्पाद और वाणिज्यिक एवं व्यापारिक गतिविधियों में तीव्र गति से वृद्धि हुई। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि इन मध्यकालीन शहरों ने विश्व को आधुनिक दुनिया में पहुँचाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

**प्रश्न 3. मध्यकाल के दौरान यूरोप में शहरों के विकास पर टिप्पणी लिखिए।**

**उत्तर**–प्राचीन काल में शहरों के पतन के पश्चात् एक बार फिर मध्यकाल में यूरोप के शहरों का विकास हुआ। ये मध्यकालीन शहर प्राचीनकाल की बस्तियों से बड़े थे। यहाँ जनसंख्या अधिक थी। इसका मुख्य कारण यह था कि इस काल में शिल्प उत्पाद, वाणिज्य-व्यापार आदि का तीव्र गति से विकास हुआ। मध्यकाल की सामाजिक गतिशीलता की वजह से आधुनिक विश्व का निर्माण हुआ। यूरोप के ये शहर औद्योगिक क्रांति का केन्द्र थे, जिसकी पहुँच संसार के लगभग सभी क्षेत्रों में थी। मध्यकाल के दौरान यूरोप में शहरों के विकास की चर्चा की गई है।

विभिन्न विद्वानों का मध्यकालीन यूरोपीय शहरों के उदय के संदर्भ में अलग-अलग मत है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि मध्यकालीन नगर प्राचीन शहरों के ही अवशेष थे। लेकिन इस संदर्भ में लोकप्रिय मत यह है कि पश्चिमी यूरोप में व्यापार और बाजार की समृद्धि ने राष्ट्रीय राज्यों और अन्य विभिन्न संस्थाओं आदि के निर्माण का आधार निर्मित किया। इन नवीन संस्थाओं के

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



कारण सामंतवाद का पतन हो गया, जो शहरों के विकास में मुख्य रुकावट था। इसका प्रमाण यह है कि सामंतवाद का पतन और शहर का उदय काल एक ही है। इस मत से अलग कुछ विद्वानों का यह मानना है कि शहरों का विकास ग्रामीण क्षेत्रों के आधार पर हुआ। इनके अनुसार शहरों का विकास सामंती ढाँचे पर ही हुआ। यहाँ के रहने वाले लोग सामंती पद्धति के अनुसार अपने मालिक पर आश्रित थे और उनका सम्बन्ध सामंतों से बना हुआ था। दरअसल शहरी लोगों का मुख्य पेशा व्यापार था, किन्तु वे लोग कृषि कर्म से भी जुड़े हुए थे।

एक अन्य विद्वान पिरेन के अनुसार व्यापारी कारवां की बस्तियों से शहरों का उदय हुआ। इनका मत है कि प्रारम्भ में व्यापारी वर्ग एक मेले से दूसरे में ओर एक सामंत क्षेत्र दूसरे सामंत क्षेत्र तक पैदल घूम-घूमकर अपना सामान बेचते थे तथा अपनी सुरक्षा के लिए एक साथ कारवां में रहते थे। इन्होंने रहने के लिए उसी पुराने रोमन शहर को चुना, क्योंकि ये शहर व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। धीरे-धीरे इन प्राचीन शहरों का व्यापार के कारण तीव्र गति से विकास हुआ। पिरेन महोदय ने आठवीं और दसवीं शताब्दी के बीच शहरों के ह्रास के बावजूद इसके बचे रहने का एक और कारण बताया है। जैसे भूमध्यसागर में एक बार फिर समुद्रपारीय वाणिज्य-व्यापार की शुरुआत हुई, जिसके कारण विभिन्न देशों से व्यापारी यहाँ आने लगे, इससे स्थानीय व्यापार में वृद्धि हुई। साथ ही साथ धर्म युद्ध ने भी वाणिज्य-व्यापार की समृद्धि में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अत: विभिन्न कारणों ने वाणिज्य-व्यापार की समृद्धि में अपना योगदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप 11वीं और 12वीं शताब्दी के शहरों में समृद्धि आयी।

इंग्लैण्ड के प्रमुख शहरों का विकास मुख्यत: नदियों के मुहाने पर हुआ था। धीरे-धीरे ये शहर व्यापार के प्रमुख केन्द्र बन गये। इन शहरों का विकास यातायात की सुविधा एवं सुरक्षा के लिए नदियों के मुहाने पर हुआ था। शहर में परिवर्तन होने के पूर्व ये शहर गाँव ही थे। जैसा कि हम जानते हैं कि मैनचेस्टर प्रारम्भ में एक गाँव ही था। शहर का दर्जा प्राप्त करने के बाद भी यहाँ खेती की जाती थी, क्योंकि इस काल में व्यापार का पूर्णत: विकास नहीं हो पाया था। इसी तरह कैम्ब्रिज भी संभवत: कई गाँवों को मिलाकर बना था। नदी के किनारे स्थित होने के कारण इसका तेजी से विकास हुआ। एक अन्य शहर ऑक्सफोर्ड की भी लगभग यही स्थिति थी।

यहाँ यूरोप के शहरों की जनसंख्या की चर्चा की गई है। मध्यकालीन कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का अनुपात निकालना एक कठिन कार्य है, क्योंकि इस काल के शहरों के आकार के विषय पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। फिर भी एक आकलन के अनुसार यूरोप के अनेक शहरों की जानकारी मिलती है, जहाँ की जनसंख्या कुछ सौ से लेकर कुछ हजार तक थी। जहाँ फ्रांस में आधिकारिक रूप से 2000 जनसंख्या वाले क्षेत्रों को शहर कहा गया है, इंग्लैण्ड में 5000 जनसंख्या वाले क्षेत्रों को शहर का दर्जा दिया गया है। ब्राडले नामक विद्वान के अनुसार यदि शहरों की न्यूनतम आबादी 5000 मानी जाए, तो इंग्लैण्ड में 1700 ई. में 13 प्रतिशत, 1750 ई. में 16 प्रतिशत और 1801 ई. में 25 प्रतिशत व्यक्ति शहरों में रहते थे। इसी प्रकार 1500 ई. में जर्मनी में 10 प्रतिशत, अमेरिका में 1700 ई. में 10 प्रतिशत, जापान में 1750 में करीब 22 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती थी।

16वीं और 17वीं शताब्दी आते-आते यूरोप के शहरों का तेजी से विकास हुआ। इन कालों में हम 50 से अधिक ऐसे शहर देखते हैं जिनकी जनसंख्या 4000 से भी अधिक थी। 17वीं शताब्दी के अंत में इनमें से 12 शहरों की जनसंख्या एक लाख से अधिक तथा 3 शहरों की जनसंख्या 4 लाख से भी अधिक हो गई थी। जहाँ लन्दन की जनसंख्या 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 60,000 से भी कम थी, वहीं 17वीं शताब्दी के अंत में 4 लाख से भी अधिक हो गई।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि यूरोप के सभी शहरों का उदय ग्रामीण पृष्ठभूमि पर हुआ था। धीरे-धीरे सामंतवाद के पतन के पश्चात् वाणिज्य-व्यापार का तीव्र गति से विकास हुआ। इस व्यापार में शहरों की अवस्थिति जैसे समुद्री या नदी के मुहाने पर होने के कारण आवागमन में सुविधा हुई। इन सभी कारणों से शहरों में समृद्धि आई जिसके फलस्वरूप बड़े-बड़े शहरों का विकास हुआ। इन शहरों के प्रारम्भ में जहाँ जनसंख्या कुछ सौ या कुछ हजारों थी, वह आगे चलकर लाखों में हो गई।

**प्रश्न 4. एशिया और यूरोप के शहरों की तुलना कीजिए।**

**उत्तर–**मध्यकाल में एशिया और यूरोप के शहरों की अपनी अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक संरचना और बनावट थी। इनमें भिन्नता होने के बावजूद कई क्षेत्रों में समानता भी थी। यूरोप में ग्यारहवीं शताब्दी में शहरों के पुनरुत्थान के बाद इस महादेश का तेजी से विकास हुआ। इस विकास के कारण ही इटली में पुनर्जागरण का आगमन हुआ, जिसने यूरोप के स्वरूप को बदल दिया।

पश्चिमी यूरोपीय शहरों का विकास मुख्यत: पूँजीवादी व्यक्तियों के द्वारा किया गया। पूँजीवादी व्यवस्था में अनेक प्रकार के सामूहिक और सामुदायिक संगठनों का विकास हुआ। इन संगठनों ने अन्तत: सामंतवादी व्यवस्था को अपने अन्दर आत्मसात कर लिया। इसलिए पूँजीवादी और शहर एक-दूसरे के पर्याय ही माने जा सकते हैं। फिर भी यूरोपीय शहरों में अपने स्वतंत्र माहौल और खुलेपन के कारण यहाँ स्वतंत्र वातावरण एवं स्वायत्तता थी। पिरेन महोदय के अनुसार 7वीं से 9वीं शताब्दियों में भूमध्यसागरीय व्यापारिक मार्गों के बंद होने के पश्चात् शहरों का क्रमश: पतन होने लगा। फिर 11वीं शताब्दी से लम्बे व्यापार की शुरुआत और धर्मयुद्ध के बाद पुन: शहरों एवं बाजारों का उद्भव हुआ।

शहर और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच अनेक प्रकार का अन्तर्सबध था। वे एक-दूसरे की जरूरतों को पूरा करते थे। साथ-साथ दोनों

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



के बीच श्रम का विभाजन भी हो गया। जहाँ ग्रामीण क्षेत्र शहरों को खाद्यान्नों की आपूर्ति करते थे, वहीं ग्रामीण क्षेत्र शहरों से विभिन्न प्रकार की निर्मित वस्तुओं को प्राप्त करते थे। धीरे-धीरे गाँव के लोगों की जरूरतों का विस्तार हो रहा था। इस तरह यहाँ के लोगों का जीवन-स्तर उत्तरोत्तर उठता गया। नकद पूँजी का महत्त्व बढ़ने के कारण कृषि उत्पाद का आधुनिकीकरण किया जाने लगा और इसे शहर के बाजारों में बेचा गया।

यूरोपीय शहरों में आर्थिक और राजनीतिक आजादी तो थी, किन्तु यह आजादी कहीं अधिक तो कहीं कम थी। जैसे कि स्वतंत्रता की अवधारणा अभी भी कुछ विशेषाधिकार वर्ग तक ही सीमित थी, लेकिन मध्यमवर्ग अपनी आजादी के लिए सक्रिय हो गये थे और अंततः उत्तरोत्तर यूरोप के सभी वर्गों को समान अधिकार प्राप्त हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सभी वर्गों ने शहरों के विकास में अपना योगदान दिया।

एशिया के शहर यूरोप के शहरों से भिन्न थे। यूरोप के शहर जहाँ स्वायत्त थे, वहीं इस्लामी शहरों का स्वरूप ऐसा नहीं था। कुछ शहरों को थोड़ी-बहुत स्वायत्तता प्राप्त हो गई थी, लेकिन धीरे-धीरे ये शहर भी पूर्णतः स्वायत्त होने लगे। यहाँ के बड़े शहरों जैसे बगदाद और कैरो आदि पर खलीफा का शासन होता था। इन शहरों को पश्चिमी देशों की तरह राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी, फिर भी शहरी जीवन के सभी प्रमुख तत्त्व, जैसे-व्यापारी, शिल्पी, बुद्धिजीवी, निर्धन जनता, कारीगर और दैनिक मजदूरी पर कार्य करने वाले मजदूर आदि यहाँ मिलते हैं। ये शहर शिक्षा के भी केन्द्र थे। यहाँ मदरसों में शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। इन शहरों के आकर्षण के कारण ही ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत-से लोग रोजगार प्राप्त करने के उद्देश्य से शहरों में आते थे।

मध्यकालीन भारत के शहर कई प्रकार की भूमिका निभाते थे। कुछ शहर उत्पादन और विपणन, बैंकिंग और उद्यमी गतिविधियों के केन्द्र थे, तो कुछ समुद्र और स्थल मार्गों से भूमध्यसागरीय और यूरोप से जुड़े हुए थे। स्थानीय व्यापार और वाणिज्य तथा स्थानीय लोगों की माँगों की पूर्ति के लिए छोटे शहर एवं कस्बों का भी विकास हुआ था। मुगलकाल के अनेक शहर वाणिज्य और व्यापार केन्द्र होने के साथ-साथ राजनीतिक और प्रशासनिक गतिविधियों के भी केन्द्र थे। इन विविध कार्यों को करने के कारण ये शहर बहुत ही समृद्ध हो गए थे।

किन्तु भारत और चीन तथा एशिया के अनेक देशों में ऐसे सामाजिक वर्ग का बोलबाला था, जो शहर की मुक्त गतिविधियों में बाधा उत्पन्न करते थे। जैसे यूरोप में सामंतवाद का पतन हो गया था। कुछ सामंतवादी वर्ग वहाँ शहरों के स्वतंत्र विकास में अपना अमूल्य योगदान दे रहे थे, जबकि एशिया के सामंतवादी वर्ग सामाजिक गतिशीलता में रुकावट डालकर, शहरों के विकास में बाधा डाल रहे थे। जहाँ तक शहरों की बनावट का प्रश्न है, तो एशिया एवं यूरोप के शहरों की बाहरी बनावट लगभग एकसमान ही थी।

फिर भी दोनों में कुछ असमान तत्त्व भी पाये जाते हैं। यूरोपीय शहरों का विभाजन रिहायशी क्षेत्र, बाजार, सरकारी दफ्तर और अदालत, सामान्य या निर्धन लोगों के इलाके आदि में था। अधिकांश आरंभिक यूरोपीय शहरों में स्पष्ट नियोजन का अभाव मिलता है तथा शहरों में भीड़ बढ़ती गयी, बाहर से आने वाले लोग बढ़ते गये, और रिहायशी लोग और व्यापार बढ़ता गया, वैसे-वैसे शहरों का दायरा भी बढ़ता गया। इसके कारण सड़कें तंग होने लगीं, मकान छोटे बनने लगे और शहरी सीमाएँ विस्तृत होने लगीं।

जबकि इस्लामी देशों में शहरों को योजनाबद्ध तरीके से बनाया गया। यहाँ साप्ताहिक नमाज पढ़ने के लिए शहर के बीच में मजिस्द बनायी जाती थी। इस मस्जिद के बगल में बाजार होता था। इस बाजार में व्यापारी भी रहते थे और साथ में उनकी दुकानें होती थीं। राजा का महत्त्व सामान्यतः शहर के बाहर होता था। इससे बगावत करने वाले लोग महल तक पहुँच नहीं पाते थे। साथ ही बड़े-बड़े क्रबिस्तान भी शहरों से बाहर ही होते थे। जहां तक भारत का प्रश्न है, यहाँ भी शहरों का कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यूरोप और एशिया के शहरों में कुछ समानता है, तो कुछ असमानता भी है। किन्तु असमानता के तत्त्व अधिक पाये जाते हैं। मूलभूत अंतर यह था कि यूरोपीय शहर जातिवाद, सामंतवाद आदि पुराने बन्धनों को तोड़ चुका था तथा यहाँ विभिन्न समूहों के बीच सम्मिश्रण पाया जाता है। यूरोप में स्वतंत्र वातावरण होने के कारण व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई, उन्हें समानता का अधिकार मिला। जबकि भारत में जाति व्यवस्था ने प्रत्येक समुदाय को विभाजित और खण्डित कर दिया था। चीन में संभ्रांत वर्ग एक-दूसरे से टकराते रहते थे। इसलिए एशिया का स्वतंत्र विकास नहीं हो सका।

**प्रश्न 5. यूरोप में मध्यकालीन शहरों के समाज, अर्थव्यवस्था और प्रशासन की प्रमुख विशिष्टताएँ बताइए।**

**उत्तर**–मध्यकाल में तीव्र गति से शहरीकरण होने से प्रशासन, अर्थव्यवस्था और समाज पर अनेक प्रभाव पड़े। पहले गाँव में रहने वाले किसान और कृषि दास, सभी सामंती बंधनों को तोड़कर शहर आए थे और यहाँ वे आजादी से जीवनयापन कर सकते थे। उन्हें यहाँ आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए विभिन्न अवसर प्राप्त हुए। इस तरह शहरों पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ा।

शहरों का विकास आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से गुजरकर हुआ था। यहाँ आकर बसने वाले अलग-अलग क्षेत्रों के तथा अलग-अलग राष्ट्रीयता के विभिन्न परम्परा, रीति-रिवाज और त्योहारों के मानने वाले लोग थे। शहर में आने पर इन्हें नया सामाजिक जीवन मिला और नये सामाजिक सम्बन्ध विकसित हुए। शहर में विभिन्न धर्मों के मानने वाले लोग रहते थे। इसलिए शहरों के वातावरण में स्वतंत्रता आयी, जहाँ सामंतवाद की छाया पहुँच

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



नहीं पायी। शहरों की समृद्धि बढ़ने से विभिन्न पूँजीपतियों ने शिक्षा, कला इत्यादि के विकास में अपना योगदान दिया। बड़ी संख्या में विद्यालय और विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाने लगी। अब शिक्षा वाचिक परम्परा से निकलकर लिखित परम्परा की ओर बढ़ने लगी। प्रारम्भ में पुस्तकें महंगी थीं, किन्तु 15वीं शताब्दी में मुद्रण प्रौद्योगिकी का आविष्कार होने से पुस्तकें आम जनता तक पहुँचने लगीं, जिससे एक नए बुद्धिजीवी और अभिजात वर्ग का जन्म हुआ। यह वर्ग विश्वविद्यालयों में शिक्षित स्नातक विद्यार्थी थे। यह नया वर्ग वैज्ञानिक विकास, कला, साहित्य और नए विचारों से परिपूर्ण था, जिसने शहर के स्वतंत्र माहौल को संभव बना दिया। यहाँ तक कि इसने जन्म या रक्त आधारित कुलीन वर्ग को भी अपदस्थ कर दिया। धीरे-धीरे इस वर्ग ने शहर के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन को पूर्णतः अपने नियंत्रण में कर लिया।

मध्यकाल में यूरोप के शहरों का वातावरण अधिक स्वतंत्र था, किन्तु शहर के अमीर लोगों के पास ही नागरिकता का अधिकार होता था। जैसे वेनिस में नागरिकों के दो वर्ग होते थे–पूर्ण नागरिक और साधारण नागरिक। चूँकि वेनिस अतिवादी शहर था, इसलिए नागरिकों को सीमित अधिकार ही दिये गये थे। धीरे-धीरे शहरों के सभी नागरिकों को पूर्ण अधिकार मिलने लगे।

मध्यकाल में शहरों में व्यापारी वर्ग का वर्चस्व हुआ। उन्होंने शहरों के प्रशासन एवं व्यापार पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया था। इसमें व्यापारी वर्ग के कई पुराने अभिजात वर्ग के परिवार के भी थे, जिनकी जमीनें शहर के आसपास होती थी वे मूलतः सामंती समाज के प्रतिनिधि होते थे, जो शहर में भीं रहते थे। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में शिल्प उत्पाद और व्यापार के दृष्टिकोण में अनेक परिवर्तन हुए। इंग्लैण्ड के कुछ बड़े कारीगरों ने उत्पादन करना छोड़ दिया। उन्होंने अपना एक व्यापार संगठन बनाया। इन संगठनों ने सरकार में अपनी पैठ बना ली। अब वे अपनी राजनीतिक सत्ता का उपयोग विशेषाधिकार प्राप्त करने और अपने नीचे के शिल्पियों को खाने में करने लगे। इस प्रकार यूरोप में संगठन के रूप में शिल्पियों और व्यापारियों की श्रेणियाँ मजबूत होती गईं। धीरे-धीरे वे अर्थव्यवस्था और प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत करते चले गये। इस काल में बड़े व्यापारियों ने अपने व्यापार के द्वारा औद्योगिक क्रांति को संभव बना दिया। इस तरह व्यापार ने यूरोप का स्वरूप ही बदल दिया।

अब शहर अत्यधिक समृद्ध हो गए। अनेक पूँजीपति अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के लिए आम जनता, मजदूर, गरीब आदि का शोषण करने लगे। इसके परिणामस्वरूप शासक वर्ग के कार्य करने का तरीका भी बदलने लगा। सामाजिक और व्यापारिक लेनदेन और लोगों के जीवन को नियमित और नियंत्रित करने के लिए कानून बनाए गए। माप-तौल नियंत्रित करने के लिए कानून बनाए गए। माप-तौल का मानवीकरण किया गया और इसे कठोरता से सभी शहरों में लागू किया गया। हर शहर की अपनी विशिष्टता के अनुसार उसकी माप को निर्धारित किया गया। कोई भी व्यवसाय करने, शिल्प और कारीगरी को शुरू करने के लिए सरकार से अनुमति लेनी आवश्यक कर दी गई। शहरी प्रशासन द्वारा बाजार और व्यापार करने की शहरी सारणी बनायी गयी तथा मजदूरों के काम करने के घंटों का निर्धारण किया गया।

अतः ऊपर के विश्लेषणों से पता चलता है कि शहरों में समृद्धि आने से इसका प्रभाव सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों पर पड़ा। जहाँ एक ओर शहरी मध्यम वर्ग का विकास हुआ, जिसने शहर के वातावरण को स्वतंत्र बना दिया। दूसरी तरफ ऐसे पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ जिसने कला, साहित्य, शिक्षा एवं विज्ञान को अपना संरक्षण प्रदान किया।

## अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न

**प्रश्न 1. शहर एवं गाँवों के अन्तर्संबंध की चर्चा करें।**

**उत्तर**–शहर एवं गाँव एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। वे एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते थे। इसलिए गाँव एवं शहर को पूर्णतः विभाजित नहीं किया जा सकता, फिर भी गाँव एवं शहर में मूलभूत अंतर पाया जाता है। चूँकि गाँव के लोग मुख्यतः प्राथमिक कार्य अर्थात् कृषि कार्य के द्वारा अपनी जीविका चलाते थे, वहीं शहर के लोग मुख्यतः द्वितीयक कार्य अर्थात् व्यापार, वाणिज्य, शिल्प आदि कार्यों से जुड़े हुए होते थे। इनके खाद्यान्नों की आपूर्ति आसपास के गाँव करते थे।

कुछ शहर ऐसे भी थे, जहाँ ग्रामीण कार्य भी साथ-साथ चलते रहते थे। अठारहवीं शताब्दी में पेरिस में गडेरिया, खेल-तमाशा दिखाने वाले, कृषि-मजदूर और वाइन उत्पादन करने वाले रहते थे। मध्यकाल में लगभग प्रत्येक शहर के चारों ओर बागान, खेत और बगीचा रहता था। शहर में रहने वाले कृषि-मजदूर और कारीगर कटाई के समय अपना घर छोड़कर गाँव चले जाते थे। औद्योगिक क्रांति से पहले तक इंग्लैण्ड की भी यही स्थिति थी। सोलहवीं शताब्दी तक फ्लोरेंस में भी यही स्थिति थी। जर्मनी में भी छोटे शहरों और रजवाड़ों में किसानों की जगह कारीगर खेती का काम करते थे।

उत्तर भारत के कस्बे और यूरोप के छोटे शहर बड़े गाँव जैसे ही थे। इन छोटे शहरों एवं कस्बों में गाँवों जैसी विशेषता ही पायी जाती थी। इसलिए इन्हें 'ग्रामीण शहर' कहा जाता था।

यद्यपि भारतीय गाँव बहुत हद तक आत्मनिर्भर थे, किन्तु ग्रामीण समुदाय का सम्बन्ध शहरों से भी रहता था। गाँव के लोगों को लोहे के औजार, नमक और मसाले की आवश्यकता रहती थी, इसलिए वे अपने सामान को शहर में बेचते थे और इससे जो पैसा प्राप्त होता था, उससे इन सामानों को खरीदते थे। कई कारीगर रोजगार की तलाश में गाँव से शहर आते रहते थे। चीन के गाँव में रहने वाले शिल्पी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार करते थे। इसलिए वे शहर के शिल्पियों को कड़ी प्रतियोगिता भी देते थे।

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



अत: हम कह सकते हैं कि शहर एवं गाँवों के बीच परस्पर सम्बन्ध बना रहता था। शहरों का आसपास के गाँवों से प्रतिदिन सम्पर्क बना रहता था। दूसरी तरफ शहर भी गाँव के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराते थे। साथ-साथ शहर छोटी-बड़ी सूचनाओं के केन्द्र भी थे।

**प्रश्न 2. शहरों की बनावट का विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिए**

**उत्तर**–मध्यकाल के शहरों की बनावट के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। मध्ययुग के लगभग सभी शहरी को दीवारों से घेरा जाता था। सुरक्षा को ध्यान में रखकर इन दीवारों की ऊँचाई घटाई या बढ़ाई जाती थी। इन दीवारों का निर्माण मूलत: बाहरी आक्रमणों से बचाव और अनधिकृत प्रवेश को रोकने के लिए किया गया था। शहर में कई जगह प्रवेश द्वार होता था। हर प्रवेश द्वार पर सुरक्षाकर्मी रहते थे, जो शहर में आने-जाने वालों पर नजर रखते थे।

पश्चिमी देशों में तीन प्रकार के शहरों का विकास हुआ। प्रथम वे शहर थे, जो गाँव से जुड़े हुए थे। दूसरे वे गाँव थे, जिनकी सीमा को चारों ओर से दीवार से घेरा जाता था। तीसरे वे शहर थे जहाँ राजा रहते थे और इन्हीं के नियंत्रण में यह शहर रहता था। यूरोपीय शहर मुख्यत: रिहायशी बाजार, सरकारी दफ्तर और अदालत जैसे खण्डों में बंटे हुए थे। फिर भी अधिकांश यूरोपीय शहरों में स्पष्ट योजना का अभाव मिलता है। शहर का प्रसार अनियोजित होता था। आवश्यकता के अनुसार अनियोजित रूप से इनकी सीमा बढ़ती गई। जैसे-जैसे शहर की जनसंख्या बढ़ती गई, सड़कें छोटी होती गईं। घर छोटे-छोटे बनने लगे और शहर की सीमा बढ़ने लगी।

इस्लामी शहरों में बहुत हद तक समानता मिलती है। यहाँ की गलियां संकरी एवं ढलवां होती थीं। शहर प्रशासन राजा द्वारा नियुक्त प्रशासकों द्वारा चलाया जाता था। शहर के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को योजनाबद्ध तरीके से बनाया गया था। शहर के ठीक बीच में मस्जिद होती थी। इसकी बगल में बाजार होता था, जहाँ व्यापारी रहते थे और साथ में उनकी दुकान भी होती थी। मस्जिद से सटी कारीगरों की दुकान भी रहती थी। इन दुकानों का विकास एक क्रम में हुआ था। राजा का महल शहर के बाहर होता था। शहर की सीमा को बड़ी-बड़ी दीवारों से घेरा जाता था और इन दीवारों में भव्य प्रवेश द्वार बनाए जाते थे।

भारत के सभी शहरों का कोई स्पष्ट विभाजन नहीं मिलता, फिर भी लगभग सभी शहरों के चारों ओर दीवारें और प्रवेश द्वार होते थे। भिन्न चीजों के लिए अलग-अलग बाजार होता था। मुख्य सड़क के दोनों ओर दुकान बनायी जाती थी। प्रत्येक जाति के लिए अलग मुहल्ला होता था। इन मुहल्लों का नाम इन जातियों के नाम पर रखा जाता था।

ऊपर किए गए शहरों की बनावट के वर्णन से पता चलता है कि लगभग सभी शहरों की संरचना का विकास एक जैसा ही हुआ है, लेकिन इनके नियोजन में काफी असमानता पाई जाती है। जहाँ यूरोप एवं भारत में किसी नियोजन का विकास नहीं हुआ, वहीं इस्लामी देशों में शहरों का विकास नियोजित ढंग से हुआ। ■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# युद्ध कौशल और संचार की प्रौद्योगिकी

# 33

## परिचय

इस अध्याय में पूर्व-आधुनिक यूरोप में युद्ध कला और संचार की प्रौद्योगिकी में क्या-क्या परिवर्तन आए तथा इन परिवर्तनों से युद्ध कौशल और रणनीति तथा युद्ध पद्धति पर क्या प्रभाव पड़ा, इसकी चर्चा की गई है। विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी के विकास के परिणामस्वरूप शासकों ने सामंतों से सैनिक सहायता लेनी बंद कर दी। इसके स्थान पर शासक वर्ग ने सीधे अपने नियंत्रण में स्थायी सेना का निर्माण किया। युद्ध की पद्धति एवं नवीन प्रौद्योगिकी का विकास क्रमिक रूप से हुआ। प्रारम्भ में इन नई प्रौद्योगिकियों का प्रयोग बहुत कम होता था, किन्तु मध्यकाल में सामंतवाद के पतन के बाद युद्ध की तकनीक में बदलाव प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे सुनियोजित ढंग से नवीन प्रौद्योगिकी का प्रयोग युद्ध में शुरू हुआ, जिसके परिणामस्परूप यूरोप ने अंततः सम्पूर्ण विश्व को अपने कब्जे में कर लिया।

अत: प्रौद्योगिकी और सेना में हुए इन परिवर्तनों ने समाज और संस्था को किस तरह प्रभावित किया। यहाँ पैदल सेना का उदय और इसके प्रभाव की चर्चा की गई है।

मध्यकाल में सामंतों और कुलीनों की शक्ति का आधार घुड़सवार सेना थी। घुड़सवार सेना में सामान्य कृषक शामिल नहीं होते थे, क्योंकि घोड़े महँगे होते थे, जिन्हें रखने की क्षमता उनमें नहीं थी। इसलिए किसान वर्ग प्रशिक्षण और अनुशासन सीखने के बाद पैदल सेना में शामिल हुए। इस प्रकार सैन्य शक्ति साधारण किसानों के हाथों में आ गई, जिसके परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न क्षेत्र इससे प्रभावित हुए। अब पैदल सेना का महत्त्व बढ़ने लगा, जिसके कारण युद्ध प्रौद्योगिकी में बहुत सारे बदलाव लाए गए। एक हथियार का विकास किया गया जिसमें एक कमानी लगी होती थी, जिसमें एक भारी-सा तीरनुमा अस्त्र लगा दिया जाता था। इस अस्त्र में एक लिबलिबी होती थी, जिसे दबाने पर कमान से अस्त्र निकलता था तथा इस अस्त्र की मारक क्षमता अधिक होती थी। आगे इस कमान वाले अस्त्र के स्थान पर छोटे आग्नेय अस्त्रों और बंदूकों का प्रयोग किया जाने लगा और धीरे-धीरे पैदल सेना का महत्त्व कम होने लगा। 15वीं और 16वीं शताब्दी में निरंकुश शासकों ने अपनी शक्ति में वृद्धि करने के लिए पैदल सैनिकों को फिर से संगठित किया, जिससे पैदल सैनिकों का वैभव पुनः एक बार स्थापित हो गया। बारूद और आग्नेयास्त्रों के युद्ध में प्रयोग होने से युद्ध की तकनीक और रणनीति में अनेक प्रकार के बदलाव आए, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

चीन ने बारूद का आविष्कार किया था। यहाँ तेरहवीं शताब्दी से बारूद का प्रयोग किया जाता था। चीन से बारूद बनाने की कला मंगोलों ने सीखी। इसके पश्चात् मंगोलों के द्वारा यह आविष्कार यूरोप में पहुँचा। यूरोप में पहली बार चौदहवीं शताब्दी में लम्बी कमान वाली बंदूक का प्रयोग किया जाने लगा। 1320 के दशक के प्रारम्भ से तोप बनायी जाने लगी। इसके बाद यूरोप आग्नेयास्त्र के निर्माण में विश्व में सबसे आगे ही रहा। इसके बाद धातु विज्ञान और बारूद की तकनीक में विकास करके तोपों की मारक क्षमता एवं लक्ष्य भेदन की क्षमता में वृद्धि की गई। पन्द्रहवीं शताब्दी तक तोपों को बहुत अधिक परिष्कृत कर दिया गया था। अब तीर की जगह तोप के गोलों का प्रयोग किया जाने लगा। इन तोपों के कारण अब किलों को तोड़ना आसान हो गया, इसलिए किलाबंदी में अनेक बदलाव किये गये। किलों को नये ढंग से बनाया जाने लगा एवं उनके निर्माण में नई तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा। किले के हर कोने पर बुर्ज का निर्माण किया गया और इस बुर्ज पर तोप और आग्नेयास्त्र रखे जाते थे, ताकि दुश्मनों की सेना पर हमला किया जा सके। इस प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत में दुश्मनों के आक्रमणों के सामने जो किले सुरक्षा की दृष्टि से कमजोर हो गये थे, वे पुनः इस नई तकनीक के द्वारा मजबूत बना दिए गए।

पन्द्रहवीं शताब्दी में हथगोला सेना का प्रमुख अस्त्र बनकर उभरा। इस हथगोले को फेंकने के लिए एक विशेष दस्ते को प्रशिक्षित किया गया। इसी समय हाथ से चलाने वाली बंदूक का भी आविष्कार हुआ। आरम्भ में बंदूक बहुत भारी एवं बेढंगी थी। सोलहवीं शताब्दी तक इसमें अनेक सुधार किये गये, जिसके परिणामस्वरूप बंदूक ने फ्रांसीसी-स्पेन युद्ध में अपना महत्त्वपूर्ण

योगदान दिया। अब सेना में बंदूकों को चलाने के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित बंदूकचियों को रखा जाने लगा। धीरे-धीरे बंदूक में मैच लॉक के स्थान पर 'व्हील लॉक' तकनीक का विकास किया गया। यह तकनीक अधिक उपयोगी और कारगर थी। इस काल बंदूक में एक खामी यह थी कि एक बार गोली चलाने व दोबारा गोली भरने में लगभग दो मिनट का समय लगता था। इसलिए बंदूकचियों की मारक क्षमता बढ़ाने के लिए रणनीति में परिवर्तन किया गया। बंदूकचियों की कई कतारें बनायी गयी। गोली छोड़ने के बाद पहली कतार के बंदूकची पीछे और पीछे की कतार के बंदूकची आगे आ जाते थे। इस तरह जब तक पीछे वाला बंदूकची गोली भरता था, तब तक आगे वाला गोली दागता था। यह क्रम लगातार चलता रहता था और दुश्मनों पर लगातार हमला होता रहता था। इस तकनीक को 'वॉली' कहा गया। इस प्रकार बंदूक की उपयोगिता के कारण पैदल सेना पेशेवर सैनिक निकाय में बदल गई। युद्ध क्षेत्र में नई-नई रणनीति का आगमन होने से सैनिकों को प्रशिक्षित और अनुशासित किया जाने लगा।

इस काल में व्यापार एवं वाणिज्य में अभूतपूर्व प्रगति हो रही थी। व्यापार मुख्य रूप से समुद्री मार्गों के द्वारा होता था। इसलिए जहाजों की सुरक्षा की व्यवस्था जरूरी हो गई थी। प्रारम्भ में छोटे-छोटे जहाज होते थे, इन जहाजों पर कोई खास हथियार नहीं होता था। मध्यकाल में जहाजों के प्रवेश करने और सामान लादने-उतारने को लेकर झगड़ा होता रहता था। अक्सर आक्रमणकारी जहाज में घुसकर कब्जा कर लेते थे। इसलिए अब साधारण नावों की जगह युद्धपोत में एक सेनानायक होता था, जो अपने शत्रु को पंगु बना देता था और उसे चारों ओर से घेर लेता था ताकि वह अपनी पतवार न चला सके। कभी-कभी शत्रु के जहाज के तली में छेद भी कर दिया जाता था। युद्धपोत में नियुक्त सशस्त्र सैनिक ऊँचे स्थान पर तीर लिए खड़े रहते थे और वहीं से शत्रु पर हमला करते थे। चौदहवीं शताब्दी में सबसे पहले वेनिशियाइयों ने जहाजों में तोपखाना रखने का प्रचलन शुरू किया। आगे पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य से सभी यूरोपीय जहाजों में तोप रखी जाने लगी। यह तोप छोटे आकार की होती थी। सोलहवीं शताब्दी आते-आते अत्यधिक प्रचलन में आयी बंदूकों ने नौसेना युद्ध और नौसेना के युद्धपोतों के आकार तथा युद्ध रणनीति में अनेक परिवर्तन किए। जहाजों को इस प्रकार से बनाया जाने लगा कि उसमें अधिक संख्या में बंदूकें रखी जा सके। जहाजों में अनेक जगहों पर छेद बनाए गए, जहाँ से बंदूक चलायी जा सके।

थल सेना और नौसेना में सैनिकों की संख्या बढ़ गयी थी। लगातार युद्ध होते रहने की वजह से उन्हें युद्ध क्षेत्र या अपने देश से बाहर भी रहना पड़ता था। लम्बे समय तक अपने घरों से दूर रहने के कारण इनकी आवश्यकता की पूर्ति अर्थात् खाने और रहने का सामान, परिवहन, हथियार आदि के लिए अलग-अलग विभागों की स्थापना की गई। पन्द्रहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में अर्द्ध-स्थायी सेना का आकार भी बहुत बढ़ गया। एक अनुमान के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय संख्या 10-12 मिलियन तक हो गई थी। यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था को ही सैनिकों की नियुक्ति और उसकी देखभाल करनी होती थी। इसमें अनेक समस्याएं थी, जैसे- सैनिकों की सूची बनाना, नियुक्ति करना तथा उन्हें युद्ध के लिए उपलब्ध कराना। सेना में बहुत सारे भाड़े के सैनिक भी थे, जो अपनी इच्छा से सेना में शामिल हुए थे। इन सैनिकों को वर्तमान खाद्यान्न मूल्य के आधार पर भुगतान किया जाता था। ये सैनिक मुख्यत: अपनी रोटी की समस्या के कारण ही सेना में भर्ती हुए थे। इन सैनिकों के साथ समस्या यह थी कि प्रलोभन मिलने पर क्षणभर में ये अपना पाला बदल लेते थे इसलिए उनकी निष्ठा को संदिग्ध माना जाता था। इन सभी दोषों के कारण संप्रभु राज्य अपनी प्रजा में से ही सैनिकों की नियुक्ति को प्राथमिकता देते थे। फिनलैंड और स्वीडन ने पहली बार सत्रहवीं शताब्दी में अनिवार्य सैन्य सेवा की शुरुआत की।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में कई यूरोपीय देशों ने कठिनाइयों से बचने के लिए सेना को एकत्रित करने की जिम्मेवारी ठेकेदारों और उद्यमियों को दे दी थी। इस तरह कई राज्य सोलहवीं शताब्दी के अंत तक ठेकेदारों के द्वारा सैनिकों को नियुक्त करने लगे। इनमें वे सैनिक अधिक होते थे, जिन्हें विदेशों में लड़ने के लिए भेजा जाता था। यह सेना जिस इलाके से गुजरती थी, वहाँ से खाने का सामान और अन्य जरूरत की वस्तुएं वसूलती चलती थी। दरअसल यह लूट की व्यवस्था थी, इससे बचने के लिए इस व्यवस्था को 'संरक्षण धन' कहा गया। ठेकेदारी व्यवस्था में सेना को खाना, कपड़ा और हथियार आदि मिल जाते थे, किन्तु इस व्यवस्था में अनेक खामियां थीं, जो राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अनुकूल नहीं थी।

वाणिज्य-व्यापार युद्ध और दैनिक आवश्यकता के लिए परिवहन के विभिन्न साधनों की आवश्कता होती थी। उस काल में सड़क मार्ग, समुद्री मार्ग परिवहन के प्रमुख अंग थे। प्राचीन रोमन साम्राज्य ने जिस सड़क का निर्माण किया था, उसका प्रयोग उत्तर मध्यकालीन लोग भी कर रहे थे। साथ में कुछ स्थानीय सड़कों को भी आने-जाने लायक बनाया गया था। इन नई और पुरानी सड़कों की मरम्मत एवं देखभाल करने के लिए अलग-अलग प्राधिकरण बनाए गए थे। इन सड़कों का प्रयोग न सिर्फ सैनिक उद्देश्यों के लिए किया जाता था, बल्कि बंदरगाहों और बाजारों तक पहुँचने के लिए भी किया जाता था। सभी प्रमुख सड़कें, जो महत्त्वपूर्ण शहरों एवं बाजारों को जोड़ती थीं, वे पत्थर बिछाकर पक्की बनायी जाती थीं। इन सड़कों के पक्कीकरण के लिए विशेष कर लगाया जाता था। कभी सड़कों की देखभाल एवं पक्कीकरण हेतु बेगार भी ली जाती थी।

16वीं शताब्दी आते-आते सड़क निर्माण एक प्रतियोगी व्यवसाय के रूप में उभरा। अब पहिए की गाड़ियों का अधिक प्रयोग किया

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जाने लगा। ऐसे स्थान जहाँ पहिए की गाड़ियाँ नहीं चढ़ सकती थीं, वहाँ सामानों को ढोने के लिए पशु और कुलियों की सेवा ली जाने लगी। अधिक दूर एवं भारी सामान ढोने के लिए दो पहिए या चार पहिए की गाड़ियों का उपयोग किया जाने लगा। यहाँ तक कि वाणिज्यिक केन्द्रों में गाड़ी वाले दलाल भी होते थे, जो गाड़ी वाले को व्यापारियों से मिलवाते थे। फिर भी सड़क की अच्छी व्यवस्था अभी भी नहीं थी, क्योंकि इसके निर्माण में काफी लागत आती थी। जब निरंकुश राजतंत्रों का विकास और प्रशासन का केन्द्रीकरण हुआ, तब निरंकुश राजतंत्र ने परिवहन और सम्प्रेषण के लिए प्रभावशाली कदम उठाए। फ्रांस के सम्राट् लुई XI ने प्रमुख राजमार्गों की मरम्मत करवायी और 1464 ई. में डाकिए की व्यवस्था को फिर से व्यवस्थित किया। इंग्लैण्ड के राजाओं ने अनेक सड़कों का निर्माण करवाया। 1555 ई. में क्वीन मेरी ने सड़क निरीक्षकों की नियुक्ति की। 1663 ई. में इंग्लैण्ड में टर्नपाइक अधिनियम के द्वारा मार्ग शुल्क लेने की अनुमति दी गई। इस प्रकार राजमार्ग में सुधार के साथ-साथ नदियों पर पुल बनाने पर भी ध्यान दिया गया।

आमतौर पर भू-परिवहन की अपेक्षा जल-परिवहन सस्ता होता है। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में यूरोप के प्रत्येक बंदरगाह पर अलग-अलग परिवहन मार्ग का प्रयोग किया जाता था। पूर्वी यूरोप में नौ-परिवहन अधिक विकसित था, क्योंकि पश्चिमी यूरोप की तुलना में यहाँ की नदियों की धार कम होती थी और ये नदियाँ लम्बी भी होती थीं। सत्रहवीं शताब्दी में दो प्रकार के जहाजों का विकास किया गया था–पाल वाले और पतवार वाले। वेनेशियाइयों और जेनेआइयों के लोगों ने ऐसे जहाजों का निर्माण किया, जिसमें पतवार और पाल दोनों लगे होते थे। इन दोनों के जहाज में लगने से जहाज को समुद्र में चलना अपेक्षाकृत आसान हो गया। वास्कोडिगामा और कोलम्बस ने ऐसे ही जहाजों का अपनी यात्रा में उपयोग किया था।

अब नौ-परिवहन में अच्छे उपकरण से युक्त और अच्छे जहाजों का निर्माण किया जाने लगा। इसलिए अब नए बाजारों तक पहुँचना आसान हो गया। नए-नए सामानों और दूर-दूर तक व्यापार की शुरुआत हुई। पुरानी वस्तुओं की खपत में बढ़ोतरी हुई। इस समय कई नए देशों की खोज हुई और वहाँ से बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करके व्यापार को बढ़ाया गया। इस तरह इन सभी नई खोजों एवं परिवर्तनों ने वाणिज्यिक क्रान्ति लाने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

ऊपर दिये गये वर्णन से पता चलता है कि यूरोप में युद्ध की तकनीक और प्रौद्योगिकी में क्रमशः परिवर्तन होता गया, जिसके कारण सैनिकों की रणनीति और युद्ध तकनीक में अनेक परिवर्तन हुए। बारूद का उपयोग, हाथ से चलने वाली बंदूकों और राइफल तथा तोपों का प्रयोग शुरू हुआ। जहाजों की सुरक्षा के लिए इन्हें जहाजों में रखा जाने लगा। सेना में गतिशीलता लाने के लिए कई संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तन किये गये। इस काल में व्यापार के आदान-प्रदान और लेन-देन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अब नए-नए बाजारों की आवश्यकता के लिए भू-परिवहन और संरचना में अनेक सुधार किया गया। आगे समुद्र परिवहन का तेजी से विकास हुआ, जिसके कारण यूरोप विकास के नए चरण में प्रवेश किया और वह विश्व के शीर्ष पर पहुँच गया।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. आरम्भिक आधुनिक यूरोप के सैन्य संगठन में पैदल सेना का क्या महत्त्व था?**

**उत्तर**–मध्यकाल में निरंकुश राजतंत्र का विकास नहीं हो पाया था। राजा को मुख्यतः सामंतों एवं कुलीनों की सेना पर निर्भर रहना पड़ता था। इनकी सेना में घुड़सवारों का बोलबाला था। इनकी सेना में आम प्रजा शामिल नहीं होती थी, क्योंकि वे घोड़ा रखने में समर्थ नहीं थे। युद्ध की प्रौद्योगिकी में परिवर्तन होने के कारण सेना में पैदल सैनिकों की आवश्यकता पड़ने लगी। अब एक किसान भी प्रशिक्षण और अनुशासन सीखने के पश्चात् पैदल सेना में शामिल हो सकता था। सेना में इस परिवर्तन ने विभिन्न स्तरों पर क्रांतिकारी प्रभाव डाला।

प्रारम्भिक मध्यकाल में पश्चिमी यूरोप की सेना आड़ी कमान वाले हथियारों से लड़ती थी। इस हथियार का प्रयोग सौ-वर्षीय युद्ध से पूर्व बड़े पैमाने पर होता था। यद्यपि यह हथियार जानलेवा होता था। इसलिए इस पर धार्मिक प्रतिबंध लगा दिया गया था। इस हथियार में एक कमानी लगी होती थी। इस कमानी में तीरनुमा अस्त्र लगाया जाता था। हथियार में एक लिबलिबी लगी होती थी, जिसे खींचने पर तीर छूटता था। चौदहवीं शताब्दी में इस हथियार का बहुत प्रयोग होता था, क्योंकि यह दूर तक मार करता था। साथ ही साथ मध्यम दूरी और कम दूरी के हथियारों को नाकाम भी कर देता था। आगे इसी आड़ी कमान के द्वारा बारूद से चलाए जाने वाले हथियार को जन्म दिया। सौ-वर्षीय युद्ध में अंग्रेजी सेना ने लम्बी कमान वाले हथियार का प्रयोग किया, जिसने उसकी विजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अगली शताब्दी में युद्ध की तकनीक में अधिक परिवर्तन हुआ। अब लम्बी कमान की जगह छोटे-छोटे आग्नेय अस्त्रों और बंदूकों का प्रयोग किया जाने लगा।

सौ-वर्षीय युद्ध में अंग्रेजी सेना की विजय के बाद पैदल सेना का महत्त्व बढ़ने लगा। इस युद्ध में पैदल सेना ने घुड़सवार सेना को कई बार पराजित किया। इनसे बचने के लिए घुड़सवार सेना को बाध्य होकर लोहे का कवच पहनना पड़ा, किन्तु इस कवच में भी खामियाँ थीं। दरअसल ये कवच काफी भारी होते थे और इनका भार घोड़े सह नहीं पाते थे। इसलिए घुड़सवारों को पैदल सेना से लड़ना एक तरह से असंभव हो गया। इस प्रकार घुड़सवार सेना की जगह पैदल सेना का महत्त्व बढ़ने लगा। चूँकि पैदल सेना की नियुक्ति आम जनता में से होती थी, ये लड़ाकू जाति के नहीं थे। इसलिए इन्हें प्रशिक्षित एवं अनुशासित किया गया। उनकी पहचान

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

के लिए अलग वर्दी दी गई, कई कमानों में बाँटा गया तथा उन्हें अलग प्रकार का झंडा दिया गया।

निरंकुश राज्यतंत्र के उदय के पश्चात् पैदल सेना की वैभव में भी वृद्धि हुई। अब पैदल सेना निरंकुश शासक की प्रमुख शक्ति के रूप में उभरी। इस सेना का प्रयोग करके शासक वर्ग सामंती अभिजात वर्ग को कमजोर बनाने में सफल हुए। शासक वर्ग ने पैदल सेना को अपनी शक्ति का आधार बनाया। इसलिए शासक वर्ग को युद्ध के समय सामंतों की सेना की आवश्यकता खत्म हो गई। धीरे-धीरे निरंकुश शासकों ने अपनी जनता से ही एक राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया। इस प्रकार सैन्य बल की संख्या में वृद्धि होती गई। 1630 ई. के लगभग सभी यूरोपीय देशों के पास अपनी लगभग 1,5,000 सेना हो गई। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी सेना में करीब 4,00,000 सैनिक थे। अब जिस शासक के लिए जितना अधिक धन होता था, वह उतनी बड़ी सेना रखता था।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि युद्ध की तकनीक में परिवर्तन के कारण पैदल सेना का महत्त्व बढ़ता गया। पैदल सेना का महत्त्व बढ़ने से घुड़सवार सेना का महत्त्व घटने लगा। चूँकि घुड़सवार सेना सामंत अभिजात वर्ग के सैन्य बल का आधार था, आगे चलकर निरंकुश राजतंत्र की स्थापना के पश्चात् इन्होंने पैदल सेना को अपने सैन्य बल का आधार बनाया, जिसने सामंत वर्ग के पतन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**प्रश्न 2. बारूद क्रांति ने किलों के निर्माण को किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर**–आरम्भिक यूरोप में युद्ध तकनीक और प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आने से सैनिक रणनीति और युद्ध कला में अनेक परिवर्तन हुए। बारूद के आविष्कार के बाद तोप दस्ते का निर्माण किया गया। प्रारम्भ में शीशा, सल्फर और काष्ठ-कोयला मिलाकर चीन ने बारूद का निर्माण किया। चीन के लोग तेरहवीं शताब्दी से ही बारूद का इस्तेमाल करते आ रहे थे। चीन से मंगोलों ने इस तकनीक को सीखा और यहाँ से यह जानकारी यूरोप पहुँची। चौदहवीं शताब्दी में यूरोप में बन्दूक का प्रयोग होने लगा। तत्पश्चात् पहली बार 1320 के दशक में तोप बनाई गई। विभिन्न प्रकार की तोपें बनाने में पश्चिमी यूरोप और तुर्की के बीच हमेशा प्रतियोगिता रहती थी, किन्तु आग्नेयास्त्र बनाने में यूरोप हमेशा ही आगे रहा। तोपों की भेदन क्षमता और मारक क्षमता बढ़ाने के लिए बारूद की किस्मों में बहुत सारे परिवर्तन किये गये। पन्द्रहवीं शताब्दी तक तोपें काफी परिष्कृत हो चुकी थीं। अब तीर की जगह तोप के गोलों का प्रयोग किया जाने लगा। किन्तु अभी भी तोपों का इस्तेमाल अन्तिम हमले के लिए ही किया जाता था। 1453 ई. में तुर्की ने तोपों की मदद से कॉन्सटैंटिनोपाल के किले को ध्वस्त कर विजय प्राप्त की। इन तोपों के कारण किलों को तोड़ना आसान हो गया। अत: किलेबंदी में अनेक प्रकार के सुधार किए।

मध्यकाल में किले की दीवार की ऊँचाई और चौड़ाई ही उसकी सुरक्षा के आधारस्तम्भ होते थे। क्योंकि लड़ाई के समय किले पर चढ़ना और उसे तोड़ना काफी मुश्किल कार्य था। किले के चारों ओर खाई बनायी जाती थी और उसमें पानी भर दिया जाता था, ताकि कोई भी दुश्मन सुरंग खोदकर अंदर न जा सके। लेकिन तोपों के आविष्कार के पश्चात् किले की इस मजबूती पर प्रश्नचिह्न लगने लगा।

चूँकि अब दुश्मन देश हल्के और चलन्त तोपों को किले के दीवार के निकट खड़ा कर देते थे और दीवार पर सीधा हमला किया जाता था। इससे दीवार कमजोर हो जाती थी। ऐसा माना जाता था कि दीवार जितनी ऊँची होती थी, उसे ध्वस्त करना उतना ही आसान होता था। दीवार गिरने से किले के चारों ओर बनी खाई भर जाती थी और सेना किले के अन्दर प्रवेश कर जाती थी। इसलिए अब किले की दीवार बनाने के लिए नई तकनीक अपनायी जाने लगी, जिससे दीवार तोपों के हमले का सामना कर सके।

प्रारम्भ में अभियंताओं ने किले की दीवार की ऊँचाई कम करने के बारे में सोचा, लेकिन इससे खतरा यह था कि दुश्मन दीवार लाँघकर अन्दर जा सकता था। इस समस्या के समाधान के लिए किले के हर कोने पर बुर्ज बनाया गया और वहाँ पर आग्नेयास्त्र और तोप रखने की व्यवस्था की गई, ताकि जरूरत पड़ने पर दुश्मन की सेना पर हमला किया जा सके। दुश्मनों की गोलाबारी को सहन करने के लिए बुर्ज को मजबूत भी बनाया गया। दूर से ही दुश्मन को देखने के लिए बुर्ज में चार कोने बनाए गए। इससे किलों के चारों तरफ निगरानी भी रखी जा सकती थी। यद्यपि इस बुर्जयुक्त किले को बनाने में काफी श्रम और पैसा लगा, किन्तु इंतजामों से किलों को मजबूत बना लिया गया। अब यह किला दुश्मनों का सामना करने में सक्षम हो गया था।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि बारूद क्रांति ने युद्ध की तकनीक और किलाबंदी के तरीके में अभूतपूर्व परिवर्तन किये। तोप के आविष्कार ने दुश्मनों को निहत्था बना दिया। इसका प्रयोग अन्तिम हमले के रूप में अधिक किया जाता था। तोपों ने किले की दीवारों को ध्वस्त कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप किलेबंदी की नई तकनीक अपनायी गयी।

**प्रश्न 3. समुद्र में होने वाली झड़पों को तोपों से लैस जहाजों ने किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर**–प्रारम्भ में खोजी और व्यापारी छोटे-छोटे जहाजों में यात्रा करते थे। कोलम्बस, वास्कोडिगामा, डायस और कबोट जैसे यूरोपीय यात्रियों और खोजियों ने छोटे जहाजों में ही यात्रा की थी। वे मुख्यत: तटीय इलाकों से ही व्यापार करते थे। इसलिए उनके पास कुछ व्यक्तिगत हथियार के अलावा कुछ नहीं रहता था। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में जहाजों के प्रवेश करने और सामान लादने के विषय में अक्सर झगड़ा हो जाता था। इस झगड़े में आक्रमणकारी

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



जहाजों पर कब्जा कर लेते थे, जिसके कारण व्यापारी वर्ग को काफी हानि उठानी पड़ती थी।

इन्हीं कारणों से युद्धपोत का निर्माण किया जाने लगा। युद्धपोत में बहुत सारे सैनिक होते थे, जो लड़ाई के समय दुश्मन को चारों तरफ से घेर लेते थे। युद्धपोत में सशस्त्र सैनिक ऊँचे स्थान पर तीर लिए खड़े रहते थे और दुश्मन पर हमला कर देते थे। कभी-कभी वे दुश्मन के जहाजों की तली में छेद भी कर देते थे। कभी-कभी साधारण जहाज के साथ युद्धपोत भी चलते थे, जो उन्हें नौसेना युद्ध में उनकी मदद करते थे।

चौदहवीं शताब्दी में सबसे पहले वेनिशियाइयों ने जहाज पर तोपखाना रखने का प्रचलन शुरू किया। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य से सभी यूरोपीय जहाजों में तोप रखी जाने लगी। इस तोपखाने में समुद्री युद्धों में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। चूँकि बड़ी बन्दूकों और तोपों को स्थल-मार्ग में इधर-उधर ले जाना मुश्किल था, किन्तु जल-मार्ग से इसे कहीं भी ले जाया जा सकता था। जहाजों में तोप एवं गोला-बारूद रखने की निश्चित जगह बनायी गयी थी। तोपों को चलाने में एक समस्या थी कि तोप को गलत जगह रखकर चलाने पर जहाज को नुकसान होने की संभावना रहती थी। इसलिए पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में युद्धपोतों पर छोटे-छोटे आकार की तोप में रखी जाने लगी।

युद्धपोतों में तोपों के साथ-साथ बन्दूकें भी रहती थी। बन्दूकें चलाने के लिए जहाज में अनेक सुराख बनाये जाते थे। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक युद्धपोतों में 50 तोपें तक रखी जाती थी। इस समय में तोपों से युक्त 70 युद्धपोत समुद्र में चल रहे थे। यह नौसैनिक बेड़ा तोपखाने के महत्त्व को प्रमाणित करता है। युद्धपोत में दो तरह के लोग होते थे जिन्हें 'सीमेन' या 'सेलर' कहा जाता था। ये अपने अधिकारियों के आदेश पर काम करते थे। पहले का काम जहाज चलाना और दूसरे का काम युद्ध करना होता था। युद्धपोत का कप्तान सामान्य सैनिक होता था। किन्तु असैनिक व्यक्ति भी कप्तान बन सकता था। जहाज पर बड़ी संख्या में सैनिक रहते थे। कभी-कभी नाविक और सैनिकों के बीच मतभेद भी हो जाता था, तब खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इसलिए नाविकों को अपनी कार्य-कुशलता के साथ-साथ सैनिक कार्य-कुशलता भी अर्जित करनी पड़ती थी। ताकि वे कठिन परिस्थितियों में तोप और बन्दूक चला सके।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि प्रारम्भ में साधारण जहाज की तुलना में युद्धपोत अधिक उपयोगी सिद्ध हुए। साधारण जहाजों के कारण व्यापारियों को काफी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। इसी कारण युद्धपोत का निर्माण किया गया। आगे चलकर युद्धपोतों में तोपें रखी जाने लगी, जिसके कारण नौसना युद्ध की रणनीति ही बदल गयी। युद्धपोतों में बड़ी मात्रा में गोला-बारूद, तोप, बन्दूकें होती थी इस कारण सैनिकों को नियन्त्रित और अनुशासित किया जाने लगा।

**प्रश्न 4. सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के दौरान भू-परिवहन और समुद्री परिवहन की तुलना कीजिए।**

**उत्तर**–भू-परिवर्तन एवं समुद्री परिवहन का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा था। किन्तु मध्यकाल में आकर वाणिज्य-व्यापार का तेजी से विकास हुआ। बाजारों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए परिवहन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। नई-नई सड़कें बनायी जाने लगी। नई और पुरानी सड़कों की देखभाल के लिए अलग-अलग प्राधिकरणों का निर्माण किया गया। इन सड़कों को मुख्यत: सैनिक उद्देश्यों के लिए और बाजार एवं बन्दरगाह तक पहुँचने के लिए प्रयोग किया जाता था। इंग्लैण्ड में सड़कों की देखभाल की जिम्मेदारी स्थानीय निकाय की होती थी, किन्तु इस निकाय के पास संसाधनों की कमी रहती थी।

कुछ कमजोरियों के बावजूद पश्चिमी यूरोप की परिवहन व्यवस्था सुसंगठित थी। सोलहवीं शताब्दी में आकर यह एक प्रतियोगी व्यवसाय बन गया। अब पहिए की गाड़ियों का प्रयोग किया जाने लगा। जहाँ ये गाड़ियाँ नहीं जा सकती थीं, उसके लिए पशु और कुलियों की व्यवस्था की गई। अधिक दूरी तक भारी सामान ले जाने के लिए दो पहिए की गाड़ियों का इस्तेमाल किया जाने लगा। निरंकुश राजतंत्र की स्थापना के पश्चात् सड़क निर्माण में अभूतपूर्व तेजी आयी। जैसे फ्रांस के सम्राट् लुई XI ने प्रमुख राजमार्गों की मरम्मत करवायी, इंग्लैण्ड के ट्यूडर राजाओं ने भी सड़क बनवाने पर विशेष ध्यान दिया तथा 1555 ई. में क्वीन मेरी ने सड़क निरीक्षकों को नियुक्त किया। 1663 ई. में इंग्लैण्ड में टर्नपाइक अधिनियम बनाया गया, जिसके तहत मार्ग शुल्क लेने की अनुमति मिल गयी। इंग्लैण्ड में सड़क बनाने का काम सरकारी देखरेख में निजी टर्नपाइक कम्पनियों को दे दिया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी तक यूरोप में घोड़ा भू-परिवहन का सबसे तेज साधन था। किन्तु बैल, खच्चर, गधा और रेंडियर का भी परिवहन एवं सामान ढोने में प्रयोग किया जाता था। इन प्रयासों और सुधारों के बावजूद भू-परिवहन धीमा और कठिन ही रहा। व्यापार और वाणिज्य के विकास में इसकी भूमिका कम ही रही।

आधुनिक काल में भू-परिवहन अपेक्षाकृत सस्ता एवं गतिशील साधन था। प्रारम्भ में इंग्लैण्ड के लोग स्कैनडिनेवियाई क्षेत्र से लकड़ी लाने में जल-मार्ग का ही प्रयोग करते थे क्योंकि, यह जमीन के रास्ते लकड़ी लाने में सस्ता पड़ता था। पूर्वी यूरोप में तो परिवहन का अधिक प्रयोग किया जाता था। चूँकि पश्चिमी यूरोप की तुलना में यहाँ की नदियों में घाट कम होते थे। साथ ही साथ पूर्वी यूरोप की नदियाँ लम्बी भी होती थीं। चूँकि नौ-परिवहन सस्ता एवं सुरक्षित होता था, इसलिए जहाजों के निर्माण एवं तकनीक में अनेक संशोधन किए गए।

वेनेशियाई और जेनेवा के लोगों ने ऐसे जहाजों का निर्माण किया, जिनमें पतवार और पाल दोनों लगे होते थे। पतवार और पाल लगने से जहाज को समुद्र में चलाना आसान हो गया। पुर्तगालियों

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



और स्पेनवासियों ने एक छोटा, चौड़ा और 45° पर मस्तूल लगा हुआ जहाज बनाया। इसी जहाज का उपयोग वास्कोडिगामा और कोलम्बस ने किया था। मस्तूल और पाल में सुधार आने से हवाओं के रुख और समुद्र की उछाल को अच्छी तरीके से समझा जा सकता था। आगे चलकर जहाजों में दूरबीन का प्रयोग किया जाने लगा। जहाजरानी और वाणिज्य के क्षेत्र में प्रगति से जहाज उद्योग भी संगठित होने लगा। धीरे-धीरे यूरोप सबसे बड़ा जहाज निर्माता बन गया। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में डचों ने फ्ल्यूटशिप का निर्माण किया। इस जहाज का निर्माण मुख्यत: भारी सामान जैसे शराब, नमक, अनाज और लकड़ी ढोने के लिए किया गया था। इस जहाज का वजन हल्का व गति तेज होती थी। साथ ही साथ इसे बनाने में कम लागत आती थी। समुद्री मार्गों के अधिक उपयोग के कारण बन्दरगाह की देखभाल और लाइट की अच्छी व्यवस्था की जाती थी।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि सड़क मार्ग से मुख्य रूप से स्थानीय व्यापार ही होता था। चूँकि सड़क मार्ग धीमा और अधिक खर्चीला होता था इसलिए इसका विकास कम ही हुआ। जबकि समुद्री मार्ग अधिक सस्ता होता था, और बेहतर जहाजों के निर्माण से अब नये बाजार तक पहुँचना आसान हो गया। इससे वाणिज्य-व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस तरह सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में इस परिवर्तन ने वाणिज्यिक क्रांति लाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अत: हम कह सकते हैं कि समुद्र परिवहन में होने वाले विकास ने यूरोप को दुनिया के शीर्ष पर बैठा दिया।

**प्रश्न 5. आरंभिक आधुनिक युग की सैनिक क्रांति ने सैनिक साजो-सामान की आवश्यकता को किस प्रकार प्रभावित किया?**

**उत्तर–**मध्यकाल में हथियारों के उपयोग और युद्ध की तकनीक में अनेक बदलाव किये गये। बारूद के बड़े पैमाने पर प्रयोग ने आक्रमण और प्रतिरक्षा के तरीके को पूर्णत: बदल दिया।

अब बड़ी-बड़ी तोपें बनने लगी इन्हें जहाजों में भी रखा जाने लगा। जमीनी युद्ध में पैदल सेना का महत्त्व बढ़ने से सामंतों का सम्मान और प्रतिष्ठा खत्म हो गई। क्योंकि तोपखाने ने इनके महलों और किलों को ध्वस्त कर दिया था। अब युद्ध में ज्यादा सैनिकों की मृत्यु होने लगी। इससे युद्ध प्रणाली का पूरा दृष्टिकोण ही बदल गया। इस तरह आरम्भिक आधुनिक काल में सेना में अनेक संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तन किये गये।

पन्द्रहवीं और सत्रहवीं शताब्दी तक सेना की संख्या में बहुत वृद्धि हो गयी थी। एक अनुमान के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय सैनिकों की संख्या 10 से 12 मिलियन थी। यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था को ही सैनिकों नियुक्ति और उनकी देखभाल करनी होती थी। दरअसल सैनिकों की सूचियाँ बनाना और उन्हें नियुक्त करना और युद्ध के लिए उपलब्ध कराना एक बड़ी समस्या थी। इन सैनिकों में कुछ भाड़े के भी सैनिक होते थे, जो अपनी इच्छा से शामिल होते थे। स्वयं अपनी इच्छा से जो सैनिक भर्ती होते थे उन्हें वर्तमान खाद्यान्न मूल्य के आधार पर पैसा दिया जाता था। ये भाड़े के सैनिक मुख्यत: रोटी की आवश्यकता के लिए सेना में भर्ती हुए थे।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में कई यूरोपीय राज्यों ने सेना इकट्ठा करने की जिम्मेवारी ठेकेदारों और उद्यमियों को दे दी। क्योंकि वे स्वयं इसकी व्यवस्था करने में समर्थ थे। इस प्रकार ठेकेदारों द्वारा सैनिकों की नियुक्ति की जाने लगी। लेकिन इन ठेकेदारों द्वारा नियुक्त सैनिकों को मुख्यत: विदेश में लड़ने के लिए भेजा जाता था। तीस वर्षीय युद्ध के काल में यह व्यवस्था काफी प्रचलित हो गई थी। ठेकेदारों द्वारा नियुक्ति में अपना साजो-सामान अर्थात् खाने-पीने का सामान जुटाने का अलग ही तरीका था। वे जिस इलाके से गुजरती थी वहाँ से खाने के सामान और अन्य जरूरत की वस्तुएँ वसूलती थी। चूँकि यह एक लूट की प्रथा थी, लेकिन इसे व्यवस्थित और नियंत्रित करने के लिए 'संरक्षण धन' का नाम दिया गया।

थल-सेना और नौ-सेना का आकार धीरे-धीरे बढ़ने लगा। इन सैनिकों को लम्बे समय तक युद्धक्षेत्र में रहना पड़ता था। अधिक दिनों तक अपने घर से दूर रहने के कारण सैनिकों के साजो-सामान अर्थात् हथियार, खाने और रहने के सामान परिवहन आदि के लिए अलग-अलग विभागों की स्थापना की गई थी। नौसैनिक अड्डे न सिर्फ सैनिकों का निवास-स्थल था वरन् कुमुक भेजने का केन्द्र भी था। इस तरह सेना एक जगह रहकर लम्बे समय तक युद्ध कर सकती थी।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि युद्ध-कौशल की तकनीक और प्रौद्योगिकी के विकास के परिणामस्परूप तोप और हाथ से चलाई जाने वाली बंदूकों और राइफलों का विकास होने लगा। इस तकनीकी विकास से घुड़सवारों की आवश्यकता खत्म होने लगी। इनकी जगह पर पैदल सैनिकों की जरूरत अधिक हो गई। निरंकुश राजतंत्र की स्थापना के पश्चात् पैदल सैनिकों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हो गई। ये सैनिक मुख्यत: किसान वर्ग से आए थे। युद्ध के काल में इन सैनिकों को लम्बे समय तक अपने घर से दूर या युद्ध क्षेत्र में रहना पड़ता था। इसलिए सैनिकों के साजो-सामान अर्थात् खाने-पीने के सामान, हथियार और रहने की व्यवस्था की जरूरत थी। अत: साजो-सामान के लिए अलग-अलग शाखा का निर्माण किया गया।

**प्रश्न 6. बंदूकों के उपयोग के लिए परम्परागत योद्धा वर्ग की क्या प्रतिक्रिया थी?**

**उत्तर–**प्रारम्भ में घुड़सवार सेना ही युद्धक्षेत्र के नायक हुआ करते थे। ये सैनिक सामंतों और कुलीनों की शक्ति का मुख्य आधार होते थे। मध्यकाल में सामान्य प्रजा घुड़सवार युद्ध में शामिल नहीं होती थी, क्योंकि धनी सामंत वर्ग ही घोड़ा और इससे सम्बन्धित हथियार रखने में समर्थ होते थे। नवीन प्रौद्योगिकी के

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



विकास के पश्चात् पैदल सैनिकों का महत्त्व और भी बढ़ गया। धीरे-धीरे पैदल सैनिकों ने घुड़सवार सेना को महत्त्वहीन कर दिया। सेना में होने वाले इस परिवर्तन ने रूढ़िवादी सामंती सेना पर क्रांतिकारी प्रभाव डाला।

पन्द्रहवीं शताब्दी में हाथ से पकड़कर चलायी जाने वाली बंदूक का आविष्कार हुआ। चूँकि आरम्भ में बंदूक बहुत ही बेढंगी थी और उपयोगी नहीं थी, किन्तु 16वीं शताब्दी में इसमें अनेक सुधार किये गये। इस तरह यह फ्रांसीसी-स्पेन युद्ध में प्रमुख हथियार के रूप में उभरकर सामने आयी। 16वीं शताब्दी में ही दूर तक मार करने वाली बंदूक का आविष्कार किया गया। प्रारम्भ में इसे चलाने के लिए दो आदमियों की आवश्यकता पड़ती थी, क्योंकि यह भारी होती थी, किन्तु धीरे-धीरे इसके आकार को घटाया गया एवं साथ में इसकी मारक क्षमता भी बढ़ाई गई। इस बंदूक से 500 गज की वस्तु को मारा जा सकता था, जबकि लम्बी कमान वाली बंदूक की मारक क्षमता सिर्फ 200 गज थी। लेकिन इसकी सबसे बड़ी खामी यह थी कि इसको चलाने में लगभग कई मिनट लगते थे, जबकि एक तीरंदाज एक मिनट में 10 तीर चला सकता था।

चूँकि बंदूकों से गोली दागने की प्रक्रिया लम्बी होती थी। दरअसल एक बार गोली दागने और फिर बंदूक में गोली भरने में लगभग दो मिनट का समय लगता था। इसलिए इसकी कमी को दूर करने के लिए नई रणनीति बनाई गई, जिसके तहत गोली दागने से पहली कतार के बंदूकधारी पीछे और पीछे की कतार वाले बंदूकधारी आगे आ जाते थे। जब तक पीछे वाला बंदूकची गोली भरता, तब तक आगे वाला बंदूकची गोली दागता था। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती थी। इस तरह दुश्मनों पर लगातार हमला किया जाता था। इस तकनीक को 'वॉली' कहा जाता था। इस प्रकार इस तकनीक से पैदल सेना की कमजोरी को खत्म कर दिया गया। धीरे-धीरे पैदल सेना यूरोप के पेशेवर सैनिकों में बदल गई। अब पैदल सैनिकों ने घुड़सवार सेना की उपयोगिता ही खत्म कर दी। अत: इस तकनीकी आविष्कार पर सामंतों की घुड़सवार सेना ने भिन्न प्रतिक्रिया दी।

मध्यकालीन यूरोप में केवल घुड़सवार सेना को ही योद्धा का दर्जा दिया जाता था। उस समय पैदल सेना का काम सिर्फ उनकी मदद करना और साथ-साथ नुकीले अस्त्रों से लड़ाई लड़ना होता था। बारूदों के आविष्कार के बाद युद्ध की रणनीति ही बदल गयी, लेकिन ये परम्परागत योद्धा वर्ग बारूद के प्रयोग से युद्ध की तकनीक में किसी प्रकार का परिवर्तन करने को तैयार नहीं था। योद्धा वर्ग का मानना था कि युद्ध दो योद्धाओं के बीच की आमने-सामने की नैतिक लड़ाई होती है। इसलिए युद्ध केवल घोड़े पर ही चढ़कर लड़ा जा सकता है। वे बंदूकों की मदद से दूर से लड़ने की बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। चूँकि बंदूक द्वारा दूर से ही हमला किया जाता था, इसमें किसी व्यक्तिगत साहस का कोई महत्त्व नहीं होता था।

दरअसल घुड़सवार सैनिक चाहते थे कि पैदल सैनिक उनका सामना सामने से परम्परागत भाले से करें। अब युद्ध में बंदूक का इस्तेमाल होता था, जिसके कारण पैदल सैनिकों को परकोटे के पीछे रखा जाता था, जहाँ दूसरे आग्नेयास्त्र रखे जाते थे। ये रूढ़िवादी घुड़सवार सैनिक न तो घोड़े से उतरना चाहते थे और न ही बंदूक का प्रयोग सीखना चाहते थे। इसलिए अब कोई भी बंदूकची आसानी से किसी घुड़सवार को मार सकता था। उनकी स्थिति भाला चलाने वाले सामान्य पैदल सैनिक जैसी हो गयी थी। अब दूर से चलाई जाने वाली बंदूक से जितना खतरा भाला चलाने वाले सैनिक को होता था, उतना ही खतरा घुड़सवार सैनिक को होता था। अत: कुलीन वर्ग के इन योद्धाओं को यह सब कायरतापूर्ण और षड्यंत्रकारी लगता था।

इस तरह इस नई प्रौद्योगिकी के कारण नाइटों का युद्ध कौशल, उनकी सामर्थ्य और सम्मान युद्ध के मैदान में धूमिल हो जाता था। निरंकुश राजतंत्र की स्थापना के बाद इस प्रौद्योगिकी का और अधिक प्रयोग होने लगा जिसके कारण पैदल सैनिकों की मांग और भी बढ़ गयी। फ्रांसीसी और जर्मन अभिजात वर्ग ने इस परिवर्तन का विरोध भी किया किन्तु सैनिक तकनीक, रणकौशल और रणनीति में हुए बदलावों ने उनके प्रयासों को व्यर्थ कर दिया।

अत: ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि परम्परागत योद्धा वर्ग के विरोध और प्रतिरोध के बावजूद आग्नेयास्त्रों का प्रयोग बढ़ने लगा। सोलहवीं शताब्दी के अंत तक घुड़सवार सेना का महत्त्व लगभग खत्म हो गया। इससे सामंती योद्धा वर्ग की प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी, क्योंकि अब केन्द्रीय सरकार सेना पर होने वाले खर्च का बेहतर इस्तेमाल करना चाहती थी।

तत्पश्चात् बाध्य होकर इंग्लैण्ड, इटली और स्पेन के परम्परागत योद्धा वर्ग ने नए अस्त्रों, तकनीक और बारूद प्रौद्योगिकी को सीखना शुरू कर दिया।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

# नातेदारी और परिवार का ढाँचा

34

## परिचय

समाज का इतिहास सम्भवतः उतना ही पुराना है जितना कि मानव का इतिहास। आदिकाल से जैसे ही मानव ने व्यवस्थित जीवन-शैली को अपनाया, समाज ने उसके काल से अपना स्वरूप ग्रहण करना करना शुरू कर दिया। हालाँकि समाज के निर्माण में कई संस्थाओं का योगदान होता है। परिवार भी ऐसी ही एक इकाई है, जो सामाजिक संस्थाओं में सबसे छोटी इकाई के रूप में जाना जाता है। जब इकाई परिवार आपस में एक होती है, तब वह समाज का निर्माण करते हैं। किसी भी समाज की मूलभूत आवश्यकताएँ, जैसे-स्नेह, यौन संतुष्टि, प्रजनन आदि परिवार के माध्यम से ही सम्पन्न होती है। हालाँकि ऐसा नहीं है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार स्वछंद होकर करता है, बल्कि इसके अन्तर्गत भी सामाजिक बन्धन होता है। मानवशास्त्री परिवार को समाज की वैधानिक इकाई भी मानते हैं, क्योंकि परिवार के कारण ही माता-पिता और बच्चों के बीच के सम्बन्ध को सामाजिक मान्यता मिलती है। परिवार का केवल यही कार्य नहीं है कि वह प्रजनन एवं बच्चों का पालन-पोषण करता है, बल्कि यह एक ऐसी संस्था है, जो बच्चों के संस्कृतीकरण के लिए भी उत्तरदायी है। परिवार में पीढ़ियों के द्वारा ज्ञान एवं भौतिक संसाधनों का आदान-प्रदान भी होता है, जिसका परिणाम होता है कि सामाजिक संरचना में निरंतरता बनी रहती है। प्रत्येक समाज का आधार उसकी जनसंख्या, अर्थव्यवस्था एवं सांस्कृतिक-धार्मिक मान्यताएँ होती हैं, जो मूलतः परिवार से जुड़ी होती हैं।

मध्यकाल के पूर्व समाज में कुल जैसी संस्था थी, जो उसके बाद परिवार के रूप में सामने आयी। हालाँकि मध्यकाल के बाद समय के साथ परिवार एवं नातेदारी के स्वरूप में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। इन संस्थाओं में क्षेत्रीयता एवं सामुदायिकता के आधार में भी विविधता देखने को मिलती है। विवाह जैसी संस्था में समय के साथ परिवर्तन हो गया। चर्च में विवाह हेतु नियम बनाए गए तथा इसका उद्देश्य केवल संतानोत्पत्ति माना। जबकि प्रोटेस्टेंट रतिक्रिया को भी वैध मानते हैं। परन्तु गर्भपात एवं गर्भनिरोधक को प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक दोनों ने ही अवैध बताया है। बच्चों के पालन-पोषण के लिए माता-पिता दोनों को उत्तरदायी माना गया है। कई ऐसे भी अवसर देखने को मिलते हैं, जब अदालत एवं चर्च में विवाह के नियम, तलाक आदि को लेकर गतिरोध उत्पन्न हुए।

हालाँकि उत्तर मध्यकाल में यूरोप में युद्ध और हिंसा ने राजतंत्र को व्यापक रूप से प्रभावित किया। राजतंत्र की अस्थिरता का प्रभाव यहाँ की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। इसी बीच 1347-48 में महामारी के कारण मौत का तांडव भी हुआ जिसने सामाजिक स्थायित्व को गहराई से प्रभावित किया। इन सबका परिणाम था कि इस काल में यूरोप का व्यापार और वाणिज्य इस कदर प्रभावित हुआ कि पश्चिम के आर्थिक भागों का परिदृश्य ही बदल गया। इस संकट की व्यवस्था में परिवार जैसी संस्था ने संतुलन कायम करने का प्रयास किया तथा इसके पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इतिहास भी इससे सहमत है कि पुनः रक्त सम्बन्धों के आधार पर परिवार और नातेदारी को सुदृढ़ बनाया गया। युद्ध, हिंसा एवं महामारी के कारण जनसंख्या में तेजी से कमी आयी, जिसका परिणाम हुआ कि जनसांख्यिकी संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी। परिणामतः विस्तारित परिवार की अवधारणा को बल मिला जो विस्तारित परिवार एवं इलाकों में प्रसार कर सकता था। अपने राजनीतिक सम्पर्कों एवं सम्बन्धों को इस्तेमाल करके पुनः संगठित हो सकता था, हालाँकि वंश परम्परा अभी भी मौजूद थी, जिसका स्वरूप रक्त, धन एवं सम्मान से जुड़ा हुआ था। रक्त सम्बन्ध एवं विवाह के कारण अभिजात वर्ग एवं पैट्रिथिमेट के बीच एक बन्धन बनाना प्रारंभ हो गया।

जहाँ मध्यकाल में या इससे पूर्व व्यक्ति को कानूनी आजादी न के बराबर थी, वहीं उत्तर मध्यकाल में लोगों को कुछ हद तक कानूनी आजादी भी प्राप्त हो चुकी थी। हालाँकि पारिवारिक संगठन तथा नातेदारी सभी समुदायों में एक जैसी नहीं थी, बल्कि समुदायों के आधार पर उनके तौर-तरीके में भी अंतर पाया जाता था। परन्तु ईसाई धर्म में काफी हद तक इनमें सहमति, सहयोग, व्यक्तिगत चेतना आदि का एकीकरण हुआ। हालाँकि चर्च द्वारा एकीकरण के

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



प्रयास किये जाने के बाद भी विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीयता एवं सामुदायिकता के मूल तत्त्व कम या अधिक मात्रा में इन सामाजिक संगठनों में मौजूद अवश्य रहे।

रोमन चर्च ने विवाह का नियमित तथा नातेदारी का एक समान प्रारूप अपनाया। विवाह का संस्थाकरण ग्रिगेरियन का मुख्य लक्ष्य था। यह चर्च से नीचे की संस्था थी, जिसका उद्‌गम दैवी माना जाता था। हालाँकि विवाह एक करार और संस्कार था, जिसमें दोनों पक्षों की सहमति आवश्यक थी। इसमें जीवन साथी के चुनाव की पूर्ण आजादी थी जबकि उत्तराधिकार, पारिवारिक वंशावली आदि में इस प्रकार की आजादी नहीं थी। सामाजिक तौर पर विवाह सम्पन्न होना सम्मान का सूचक था, जबकि छुपकर या गंधर्व विवाह से परिवार बचना चाहता था। चर्च ने विवाह हेतु व्यक्तिगत सहमति को तो स्वीकार किया, पर अवैध विवाह पर रोक हेतु पादरी एवं लोगों की उपस्थिति को अनिवार्य बताया। हालाँकि कुछ सामाजिक सम्बन्धों को विवाह की अनुमति नहीं थी; जैसे–भाई-बहनों, गुरु-पिता, गुरु-माता आदि। हालाँकि सम्बन्धों की स्पष्टता के लिए पारिवारिक वंशावली को याद रखना आवश्यक था। इस प्रकार वैवाहिक अदालतों को व्यापक शक्ति मिल गई, जो समरक्तता के नियमों को पालन किया करती थी। हालाँकि इस प्रकार वैवाहिक सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध एवं वंश परम्परा सम्बन्धी नातोदारी लैटिन जगत की मुख्य विशेषता थी। उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों ने इस पारस्परिक व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान की। इस काल की एक प्रमुख विशेषता यह भी थी कि पादरियों के ब्रह्मचर्य को अनिवार्य बना दिया गया अर्थात् इनका विवाह प्रतिबन्धित हो गया। हालाँकि व्यावहारिकता में पादरियों को यह स्वीकार नहीं था, जिस कारण वे दासियाँ रखा करते थे। साथ ही सभी चर्चों ने ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया।

उत्तर मध्यकालीन यूरोप में पारिवारिक ढाँचा एवं माहौल में परिवर्तन आया। यौन सम्बन्ध केवल पत्नी तक ही सीमित नहीं रहा। हालाँकि विवाह की उम्र में वृद्धि एवं लोगों द्वारा ब्रह्मचर्य पालन करने के बाद भी बड़ी संख्या में दासियां एवं वेश्याएँ थीं। लोगों के सम्बन्ध द्वारा व्यापक पैमाने पर अवैध यौन सम्बन्ध भी कायम किये जाते थे। इस अवैध यौन सम्बन्ध के कारण बड़े पैमाने पर ऐसे बच्चों का भी जन्म हुआ जिनको कानूनी एवं सामाजिक वैधता प्राप्त नहीं थी। कुछ मामलों में ऐसी संतानों को पारिवारिक सदस्यता तो मिलती थी पर उन्हें उत्तराधिकर का अधिकार नहीं था। हालाँकि इस काल में लोगों का मानना था कि इस प्रकार की औरतों के कारण समाज को कुछ लाभ भी था जैसे आवारा एवं कामुक पुरुषों से समाज बच जाता था, साथ ही समलैंगिक यौन शोषण से बचाव होता था। यह भी देखने को मिलता है कि कभी-कभी अभिजात पुरुष एवं युवतियों के विवाह पूर्व भी यौन सम्बन्ध होते थे, बल्कि महिलाएँ भी पर-पुरुषों के साथ यौन सम्बन्ध बनाती थी। इन सम्बन्धों के कारण हत्या जैसे अपराध में वृद्धि हुई। साथ ही अवैध सन्तानों के कारण भ्रूण हत्या के मामलों में वृद्धि होने लगी।

ऐसा नहीं था कि केवल चर्च ही विवाह का उद्देश्य संतानोत्पत्ति मानता था, बल्कि आम लोगों का भी यही विचार था। इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि सन्तान न प्राप्त होने की स्थिति में 'कोयटस इन्टरपट्स' जैसी विधि का भी सहारा लिया जाता था। हालाँकि व्यापक पैमाने पर अवैध सम्बन्ध के कारण वेश्याओं एवं अविवाहित युवतियों द्वारा गर्भनिरोधक दवाइयाँ भी प्रयोग में लाई जाती थीं। गर्भपात का भी प्रमाण मिलता है। बड़ी उम्र में शादी होने के बाद बच्चे कम अन्तराल भी पैदा हो जाते थे, क्योंकि लोगों को यह पता था कि प्रजनन का समय सीमित है। हालाँकि धनवान घरों में जन्म एवं सन्तानोत्पत्ति की दर काफी ऊँची होती थी, इसके भी प्रमाण मिले हैं।

गरीब माँ अमीर घरों में जाकर उनके बच्चों को दूध भी पिलाया करती थी। इस कारण भी गरीब घरों में बच्चे कम होते थे। साथ ही उनकी सन्तानों के बीच फासला भी अधिक होता था। गरीब घरों में बच्चों की मृत्यु दर भी अधिक होती थी, जबकि अमीर घरों में उनकी मृत्यु दर कम होती थी। समाज में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की चाह अधिक होती थी। इससे स्पष्ट होता है कि परिवार में बेटा एवं बेटी के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर था। हालाँकि इसका कारण यह होता था कि लड़के को परिवार का उत्तराधिकारी माना जाता था। छिपकर शिशुओं की हत्या जैसी कुछ प्रथाएँ भी परिवार में थीं, जिस कारण भी शिशु मृत्यु दर ऊँची थी। गर्भावस्था में महिलाओं का काफी ख्याल रखा जाता था। साथ ही उनके लिए टोने-टोटकों का भी सहारा लिया जाता था। बच्चों को माँ आमतौर पर दो या तीन वर्ष तक दूध पिलाया करती थी, हालाँकि अमीर घरों में इसके लिए धाय माँ रख ली जाती थी।

ये बच्चे ही अमीर एवं गरीब दोनों परिवारों की शक्ति होते थे। आमतौर पर युद्ध एवं व्यापार में सक्रिय रूप से भाग लिया करते थे। वैसे शादियाँ परिवार द्वारा ही तय की जाती थीं, पर कभी-कभी इसमें मध्यस्थ की भी भूमिका होती थी। हालाँकि मध्ययुग में पति और पत्नी के बीच उम्र का अन्तर ज्यादा होता था, जबकि भीषण महामारी के बाद पुरुषों के विवाह की उम्र कम हुई, परन्तु जैसे ही 1400 ई. में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होनी शुरू हुई, अभिजात और पैट्रिशियन दोनों के विवाहों में भव्यता होती थी। साथ ही बड़ी संख्या में मेहमान शामिल होते थे। पर इसके बावजूद भी संस्कारों एवं मर्यादा का पूरा ध्यान रखा जाता था। पत्नी से अपेक्षा होती थी कि वह दयावान एवं पवित्र हो। उसका मुख्य कार्य घर एवं बच्चों की देखभाल करना था। यहाँ तक कि कृषक परिवार में महिलाएँ कृषि से सम्बन्धित कार्य भी किया करती थीं। हालाँकि इस काल में बच्चों की संख्या इतनी होती थी कि महिलाएँ पूरी तरह उनके पालन-पोषण में ही परेशान रहा करती थीं। बच्चों की संख्या अधिक होने के कारण बचपन का महत्त्व होता था, जबकि कुछ कहानियों से उसके प्रमाण मिले हैं कि माँ-बाप बच्चों की सलामती

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



के लिए धार्मिक एवं पवित्र स्थलों का भ्रमण करके मान्यताएँ एवं दुआएँ माँगा करते थे।

चौदहवीं शताब्दी से कुँआरी लड़कियों और शिशुओं के चित्र भी बनाए जाने लगे थे, जिससे यह प्रमाणित होता है कि इस काल में भी बचपन का महत्त्व था तथा लोग उनसे भावनात्मक रूप से जुड़े भी थे। हालाँकि अमीर घरों के बच्चों को माँ-बाप एवं धाय माँ द्वारा पर्याप्त लाड-प्यार मिलता था, जबकि गरीबों के बच्चे कम उम्र में ही कारखानों में काम करना प्रारम्भ कर देते थे या फिर अमीर घरों में नौकर बन जाते थे। वैवाहिक दम्पत्ति में अन्तर के कारण शिशु एवं पिता में एक दूरी रहती थी तथा बच्चे आमतौर पर माँ के ज्यादा करीब होते थे। बच्चों के आरम्भिक चारित्रिक विकास में माँ-बाप के साथ अन्य नाते-रिश्तेदारों का भी योगदान होता था। यौवनावस्था में आते ही लड़कों एवं लड़कियों को अलग-अलग रहने का निर्देश दिया जाता था। लड़कियाँ आमतौर से माँ से घरेलू कार्य सीखा करती थीं।

परिवार में उत्तराधिकार की व्यवस्था थी। हालाँकि यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लिए सम्पत्ति के हस्तांतरण से ही जुड़ी व्यवस्था नहीं थी, बल्कि इसके साथ पारिवारिक सम्बन्ध भी मजबूत होता था। इसका लाभ रिश्तेदारों को भी मिलता था तथा इनका आपसी सम्बन्ध भी इससे प्रभावित होता था। यह व्यवस्था विविध सम्बन्धों से सम्बन्धित थी। जैसे-माता-पिता, पत्नी-पति, भाई-बहन आदि की तरफ से उत्तराधिकार मिला करता था। इस कारण पारिवारिक ढाँचा और सामाजिक व्यवस्थाएँ भी प्रभावित होती थीं। सम्पत्ति के हस्तांतरण का समय भी काफी निर्णायक एवं महत्त्वपूर्ण होता था। हालाँकि किसान के खेतों और अभिजात वर्गों में जमीन का बंटवारा कम होता था। खेत पर उत्तराधिकारी का अधिकार तो अवश्य होता था, पर इसके लिए उसे अपने भाई-बहनों की देखभाल भी करनी होती थी। सामान्यत: ज्येष्ठ पुत्र का ही उत्तराधिकार होता था। पर कभी-कभी छोटे बेटे-बेटियों को भी खेत मिल जाया करता था। इस उत्तराधिकारी व्यवस्था का प्रमाण जनसंख्या पर भी पड़ा था। पूर्व आधुनिक युग में सम्पत्ति कोई अलग-अलग नहीं थी, परंतु भौतिक वस्तुओं पर किसी विशेष समूह के अधिकार ने बदलते समय और प्रौद्योगिकी के कारण अपने स्वरूप एवं हैसियत को अवश्य बदल लिया था और आगे चलकर यही सामाजिक व्यवस्था को अपनी मुट्ठी में रखने लगे।

वैसे सामान्यत: यूरोप में उत्तराधिकारी के रूप में जमीन पर मुख्यत: पुरुष का ही अधिकार होता था, पर पुरुष उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में महिला को भी अधिकार का हक था। चूँकि वैसे परिवारों की संख्या काफी थी, जिसमें लड़के नहीं थे, बल्कि सिर्फ लड़कियाँ ही थीं जो उत्तराधिकारी बनती थीं। ऐसी स्थिति में उनके लिए शादी का प्रस्ताव भी ज्यादा आया करता था। जमीन उत्पादन का मुख्य साधन होता था। आमतौर से इस पर पति और पत्नी दोनों का अधिकार होता था। वैसे लड़कियों का घर में उतना सम्मान नहीं था, पर पत्नी के रूप में महिलाओं को काफी सम्मान दिया जाता था। विधवा या विधुर की स्थिति में भी उन्हें जमीन पर कुछ न कुछ अधिकार होता था। विधवा या तलाकशुदा औरत यदि कम उम्र की हो, तो उसके विवाह की सम्भावना बढ़ जाती थी, क्योंकि उनके पास पहले से सम्पत्ति होती थीं। स्त्रियों के पुनर्विवाह में पूर्व पति से हुई संतान की नियति विकट होती थी, परन्तु इस प्रकार के विवाहों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। महिलाएँ अपने पिता के पद पर भी आसीन होती थी। हालाँकि स्थानीय परम्पराओं में क्षेत्र के अनुसार भिन्नता के कारण उत्तराधिकार का स्वरूप भी अलग-अलग होता था। ज्येष्ठाधिकार या कनिष्ठाधिकार, विभाज्यता और अदृश्यता, समानता और प्राथमिकता दहेज और उत्तराधिकार को लेकर भी ये सारे मतभेद थे। आमतौर पर एक कुटुम्ब में ही सम्पत्ति का बंटवारा होता था। लेखन कला के ज्ञान से पूर्व यह सब स्थानीय रीति-रिवाजों से होता था और सब कुछ बंधा-बंधाया ही नहीं होता था। वसीयत लिखने का चलन नहीं था। ऐसा अपवादस्वरूप ही होता था। हालाँकि पारिवारिक सम्पत्ति के बंटवारे से परिवार के टूटने के भी प्रमाण मिलते हैं। बेटा-बेटी के विवाह के बाद भी परिवार अलग होता था। उन्हें सम्पत्ति एवं जमीन में हिस्सा मिलता था तथा ये सामान्यत: अलग घर में रहा करते थे। समतावादी व्यवस्था में माता-पिता की मृत्यु के बाद उनके बच्चों को बराबर-बराबर हिस्सा मिलता था। अन्य व्यवस्थाओं में सम्पत्ति को टुकड़ों में बंटने से बचने के लिए बच्चों को पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखा जाता था। एकल उत्तराधिकार को अधिक तरजीह दी जाती थी, क्योंकि इससे सम्पत्ति का विभाजन नहीं होता था। पर ऐसा भी नहीं था कि दूसरे बच्चों को हिस्सा नहीं मिलता था। दूसरे बच्चों को जमीन के मूल्य के बराबर अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ दे दी जाती थीं। कुछ स्थानों पर उत्तराधिकार पर सबका समान अधिकार था जबकि कुछ क्षेत्रों में एक उत्तराधिकारी को अधिकांश सम्पत्ति दे दी जाती थी, बाकी को छोड़ दिया जाता था। दक्षिण फ्रांस, जर्मनी और लैटिन यूरोप में एकल उत्तराधिकार का प्रचलन था और अन्य बच्चों को केवल गुजर-बसर करने लायक हिस्सा दे दिया जाता था।

परिवार जैसे संगठन पर धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य द्वारा कुछ नियंत्रण भी स्थापित था। मार्टिन लूथर और कैल्विन जैसे प्रोटेस्टेंटवादी सुधारकों ने ईसाई धर्म की मध्यकालीन वैवाहिक अवधारणा को चुनौती दी। उन्होंने रोमन चर्च के उस अंतर्विरोध की ओर इशारा किया जिसमें एक ओर तो विवाह को अभेद्य और चिरस्थायी संस्कार बताया गया था और दूसरी ओर कुँवारेपन के आदर्श को बढ़ावा दिया गया था। प्रोटेस्टेंट विचारकों का मानना था कि विवाह एक दिव्य संस्था थी, न कि संस्कार। यह आपसी सहमति पर आधारित एक करार था। नाबालिगों के मामले में माता-पिता की

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



सहमति आवश्यक मानी जाती थी, परन्तु इसमें भी जोर-जबर्दस्ती करना मान्य नहीं था। प्रोटेस्टेंट ने तलाक को सिद्धांततः मंजूरी दे रखी थी।

विवाह के बाद यदि कोई पुरुष पर-स्त्री से या कोई स्त्री पर-पुरुष से सम्बन्ध रखे और उसे स्वीकार भी कर ले या फिर पति-पत्नी एक दूसरे से काफी दिन से अलग रहें तो तलाक दिया जा सकता था, परन्तु व्यवहार में यह संभव नहीं होता था। जबकि ट्रेंट परिषद ने विवाह को एक संस्कार के रूप में परिभाषित किया था तथा इसका उद्देश्य वैध तरीके से बच्चे प्राप्त करना और उनमें ईश्वर का भय पैदा करना था, ताकि वे अपने बच्चों का पालन-पोषण सही ढंग से कर सकें। कैथोलिकों के लिए विवाह का मूल उद्देश्य संतानोत्पत्ति था, जबकि प्रोटेस्टेंट रतिक्रिया को ईश्वर का उपहार मानते थे, जिससे सुख और आनन्द प्राप्त होता है तथा यह कोई पाप नहीं है।

हालाँकि 16वीं एवं 17वीं शताब्दियों में चर्च ने बच्चों की जिम्मेवारी पर बल दिया। इस बात को प्रचलित किया गया कि परिवार को अपने बच्चों को कोई हुनर सिखाना चाहिए, ताकि बड़ा होकर वह कोई व्यसाय कर सके। चर्च ने धार्मिक प्रशिक्षण पर भी बल दिया। आज भी चर्च के द्वारा धार्मिक प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रोटेस्टेंट देशों में परिवार के पिता के अधिकार को मजबूत बनाया गया तथा उसे परिवार की ओर से आराधना करने का अधिकार दिया गया, जिसमें बाइबिल का पाठ करना तथा सामूहिक प्रार्थना शामिल था। हालाँकि इससे परिवार की भूमिका प्रभावित हुई। प्रोटेस्टेंट में पढ़ने को भी एक अनिवार्य प्राथमिकता के रूप में स्थापित किया गया।

परिवार में राज्य की भूमिका भी काफी महत्त्वपूर्ण थी। दीवानी करार या फिर पारिवारिक मामलों में राज्य की गहरी दिलचस्पी होती थी। हालाँकि जब 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में चर्च द्वारा गुप्त विवाहों को मान्यता दी जाने लगी, तो इससे राज्य काफी चिन्तित हो गया। फ्रांस के शाही कानून में धीरे-धीरे विवाह के सम्बन्ध में कैथोलिक ट्रेंट परिषद की घोषणाओं को शामिल किया गया, पर विवाह के कैल्विन सिद्धांत को भी मलहम के रूप में स्वीकार किया गया। परन्तु नाबालिगों को भी विवाह, चर्च के पुरोहितों की भूमिका और चर्च की क्षमता पर मतभेद था। पुरुषों के मामले में 30 वर्ष के और लड़कियों के मामले में 25 वर्ष से कम उम्र होने पर उन्हें नाबालिग माना जाता था। जब ऐसे नाबालिग पुरुष एवं युवती वैवाहिक बन्धन में बंधते थे, तो उन्हें उत्तराधिकार से वंचित कर दिया जाता था। साथ ही उसके लिए आपराधिक दंड का भी प्रावधान था। स्थानीय चर्च के पुरोहित की उपस्थिति मात्र एक गवाह के रूप में देखी जाती थी। परन्तु 1639 में राजाज्ञा में स्थानीय चर्च के पुरोहित को सक्रिय भूमिका प्रदान की गई और यहाँ तक कि उसे वैवाहिक संस्कार सम्पन्न कराने का भी अधिकार प्रदान किया गया। हालाँकि वैवाहिक मामले में चर्च एवं राज्य के बीच अधिकारों को लेकर टकराहट भी होती थी। टकराव का कारण ज्यादातर मामलों में पति-पत्नी का शारीरिक अलगाव एवं सम्पत्तिगत बँटवारा होता था। हालाँकि राज्य का सरोकार विवाह सम्बन्धी कानूनों तक सीमित था, परन्तु कुछ पारिवारिक विधान उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण थे। हेनरी ने 1556 ई. के शिलालेख में गर्भपात रोकने के सम्बन्ध में किए गए उपायों का जिक्र किया है। परन्तु इस तरह का प्रावधान केवल अवैध बच्चों पर ही लागू होता था। फ्रांस में माता-पिता द्वारा परित्यक्त बच्चों की मदद करने की दिशा में एक नायाब कदम उठाया। यहाँ ऐसे बच्चों की देखरेख का उत्तदायित्व न्याय अधिकारी का होता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 16वीं से 18वीं सदी तक यूरोप में बच्चों पर चर्च और सरकार का मजबूत नियंत्रण था। प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक दोनों ने ही परिवार को व्यक्तिगत ईसाई मत की प्रक्रिया के प्राथमिक अधिकारों को स्वीकार किया। हालाँकि राज्य के अधिकार में वृद्धि से परिवार जैसी संस्था को भी संरक्षण मिला। उदाहरण के रूप में प्रोटेस्टेंट देशों में तलाक पर पाबंदी लगा दी गई, जिससे परिवार को काफी हद तक स्थायित्व मिला।

हालाँकि धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य ने परिवार पर अपने तरीके से नियंत्रण अवश्य स्थापित किया, परन्तु समय के साथ जैसे-जैसे समाज विकास की दौड़ में आगे बढ़ता गया, परिवार की आंतरिक संरचना एवं माहौल में भी परिवर्तन होता गया। यूरोप में जब औद्योगिक युग प्रारम्भ हुआ तो इसका सीधा प्रभाव परिवार पर देखने को मिला। इसके कारण व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला। मजदूर गरीब हुए, लोग नवोदित औद्योगिक एवं वाणिज्यिक केन्द्रों की ओर जाने लगे और गाँव के नैतिक और सामाजिक बन्धनों से मुक्त हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि दाम्पत्य जीवन में नई भावनाओं और सम्बन्धों को संभालने का नया आधार निर्मित हुआ। प्रोटेस्टेंटों और प्युरिटनों ने पादरियों के ब्रह्मचर्य और इसकी श्रेष्ठता को नकारा तथा प्रसन्न दम्पत्ति की अवधारणा विकसित की। कैथोलिक ने पवित्र परिवार का एक आदर्श निर्मित किया और इसके जरिए निजी जीवन में ईसाई मत को स्थान दिलाया। *लॉरेंस स्टोन* महोदय का यह मानना है कि 16वीं शताब्दी के अंत में दाम्पत्य जीवन, इससे जुड़ी नैतिकता और पवित्रता, व्यक्तिवादिता और परिवार के मुखिया के उत्तरदायित्व और अधिकारों का उदय हुआ। *नोर्ब्बर्ट एलियास* भी मानते हैं कि राज्य और समाज में हुए बदलावों के परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवन में परिवर्तन आया। राजतंत्र में बढ़ते केन्द्रीकरण के फलस्वरूप न केवल सेना, राजकोष और न्यायाधिकरण पर राजा का एकाधिकार हो गया, बल्कि सामाजिक स्थिरता भी आई, जिससे व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों में परिवर्तन आया। सामाजिक जीवन में बल और दमन की जगह भावनाओं पर काबू रखने और इसे परिष्कृत करने जैसी भावना ने जन्म ले लिया। सामाजिक सम्बन्धों में शारीरिक सम्पर्क से परहेज, सार्वजनिक तौर पर शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं से परहेज, पुरुष-

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

स्त्री से और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में विनम्रता और संकोच भाव का समावेश हुआ। इन सबसे आवेशयुक्त व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि सभी तीन प्रकार के कारक–आर्थिक, जनसांख्यिकी प्रवृत्तियाँ, धार्मिक और नैतिक परिवेश ने परिवर्तन और राज्य के ढाँचे में हो रहे रूपांतरणों ने एक साथ मिलकर परिवार के आंतरिक सम्बन्धों को प्रभावित किया। सोलहवीं शताब्दी में जनसांख्यिकी वृद्धि और सामाजिक सम्बन्धों में मौजूद अनिश्चितता के कारण युवा पीढ़ी को यौन सम्बन्ध स्थपित करने में और पति-पत्नी चुनने में काफी छूट मिली। हालाँकि 17वीं शताब्दी में जब धार्मिक विचारधारा का नियंत्रण कमजोर हुआ तो ज्ञानोदय से प्रभावित विचारधारा ने व्यक्ति की स्वायत्तता का पक्ष लिया और लोगों की भावनाओं और खुशी को सांसारिक प्रसन्नता और उपलब्धियों से जोड़कर देखा गया। जब 16वीं शताब्दी में शहरों की जनसंख्या में कमी आई, गाँव खाली होने लगे तथा लोगों में असुरक्षा की भावना बढ़ने लगी, तो धार्मिक संस्थाओं ने भी इस बात पर जोर देना शुरू कर दिया कि विवाह कोई बुरी वस्तु नहीं है और न ही यह केवल प्रजनन का जरिया है, बल्कि यह एक सामाजिक अनिवार्यता है। कहा गया है कि विवाह परस्पर सौहार्द और मैत्री का रूप है, जो दो व्यक्तियों के बीच एक बन्धन बनाता है। ऐसा भी कहा गया है कि जरूरत पड़ने पर योग्य युवा चर्च, माता-पिता आदि के विचारों में संतुलन बनाए हुए मनचाहा साथी ढूँढ़ सकते हैं, जिसके साथ ही यौन सम्बन्धों में भी खुलापन आया। जिसका परिणाम हुआ कि अवैध सम्बन्ध स्थापित होने प्रारम्भ हो गए। अवैध संतानों को भी लगभग सभी जगह मान्यता मिलने लगी। वेश्यावृत्ति को न केवल अनुमति मिली, बल्कि कभी-कभी शहरी प्राधिकरण इसे धनाढ्य और स्वीकृत कार्यकलाप के रूप में मान्यता भी देने लगे। हालाँकि ऐसा नहीं था कि पुरुष और महिलाओं दोनों को समान रूप से उन्मुक्तता प्रदान की गई। जहाँ एक ओर पुरुष को यौन प्रवृत्तियों में स्वच्छन्दता दी गई, वहीं दूसरी ओर महिलाओं की यौन इच्छाओं को दबाया भी गया। हालाँकि इसके बाद भी बलात्कार की घटनाएँ होती रहीं। दीवानी एवं धार्मिक अदालतों में सामूहिक बलात्कार के कई मुकद्दमे दर्ज थे और इस प्रकार के अपराध के लिए कठोर दंड का भी प्रावधान नहीं था। साथ ही अपराधी की हैसियत से भी दंड प्रभावित होता था। हालाँकि 16वीं शताब्दी एवं 17वीं शताब्दी के परिवेश में परिवर्तन अवश्य हुआ, जबकि 18वीं शताब्दी में राज्य एवं धार्मिक संस्थाओं द्वारा काफी नियंत्रण स्थापित किया गया, पर सभी क्षेत्रों में इसका प्रभाव एकसमान नहीं रहा।

## अभ्यास-प्रश्न

**प्रश्न 1. विवाह सम्बन्धी धार्मिक कानून की चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–उत्तर मध्यकालीन यूरोप में विवाह जैसी संस्था पर धार्मिक संस्थाओं और राज्य दोनों के द्वारा कानून बनाया गया, पर इस संस्था पर धार्मिक संरचनाओं का प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता है। चर्च ने विवाह का उद्देश्य एवं उसकी परिभाषा को भी स्पष्ट किया, हालाँकि चर्च के साथ-साथ आम लोगों की भी यही धारणा थी कि विवाह का उद्देश्य प्रजनन है। दरअसल रोमन चर्च ने परिवार से बाहर विवाह की अवधारणा को परिभाषित किया और नातेदारी का सामान्य प्रारूप अपनाया। विवाह को एक संस्था के रूप में स्थापित करना ग्रिगेरियन सुधारों का मुख्य लक्ष्य था, जबकि आध्यात्मिक दृष्टि से चर्च से इसका स्थान नीचा था, परन्तु इसका उद्गम दैवी माना जाता था।

हालाँकि विवाह एक करार और संस्कार था, जो दोनों पक्षों की परस्पर सहमति से ही कायम हो सकता था। ऐसा भी माना जाता था कि विवाह के बन्धन में बंध जाने के बाद यह स्थायी और कभी न टूटने वाला बन्धन बन जाता था, जबकि विवाह में अपने जीवन-साथी के चुनाव की पूर्ण आजादी होती थी। परन्तु उत्तराधिकारी, पारिवारिक वंशावली और उत्पादन की जरूरतों के मामले में इन सिद्धांतों को नजरअंदाज किया गया। चर्च का ऐसा मानना था कि विवाह में व्यक्तिगत सहमति आवश्यक है। परन्तु साथ ही इसमें इस पक्ष पर बल दिया गया कि विवाह कार्य सार्वजनिक तौर पर सम्पन्न किये जाएँ तथा इसमें नातेदारों की उपस्थिति अनिवार्य हो, ताकि अवैध विवाहों को रोका जा सके। हालाँकि धार्मिक नियमों के आधार पर कई प्रकार के विवाह प्रतिबन्ध थे, जैसे–चचेरे भाई-बहनों और उनके बच्चों की शादी नहीं हो सकती थी। इसके अलावा आध्यात्मिक सम्बन्धों के बीच भी शादी नहीं हो सकती थी। जैसे गुरु-पिता, गुरु-माता और उनके द्वारा शिक्षित बच्चों और उनके सम्बन्धियों के बीच भी शादी नहीं हो सकती थी। इस प्रकार इन प्रतिबन्धों को ध्यान में रखने के लिए पारिवारिक वंशावली याद रखना अनिवार्य हो गया था। इन प्रतिबन्धों के कारण वैवाहिक अदालतों को व्यापक शक्ति मिल गई थी। यह वैवाहिक अदालत ही समरक्तता के नियमों का पालन करवाती थी। इस प्रकार लुक-छुप कर शादी करना अवैध था। साथ ही माता-पिता की सहमति न मिलने पर भी विवाह को कानूनी मान्यता नहीं मिल पाती थी। इस तरह के मामले अक्सर वैवाहिक अदालतों में जाया करते थे।

हालाँकि वैवाहिक सम्बन्धों में प्रतिबन्ध और वंश परम्परा सम्बन्धी नातेदारी मुख्यत: लैटिन यूरोप के देशों में अधिक प्रचलित थी। यहाँ इनका काफी ख्याल रखा जाता था, जबकि इस प्रकार के सम्बन्धों का फैलाव सिर्फ पिता की तरफ से नहीं, बल्कि माता की तरफ से भी होता था। इन सम्बन्धों के विस्तार के कारण नातेदारों का एक बड़ा समूह बन जाया करता था और इन समूहों में वैवाहिक सम्बन्ध कायम करना धार्मिक कानूनों के अनुसार प्रतिबंधित था। हालाँकि उत्तराधिकार से जुड़े कानूनी रीति-रिवाजों ने भी इस पारस्परिक व्यवस्था को मंजूरी प्रदान की तथा इसके आधार को दृढ़ता प्रदान की। अवैध सम्बन्धों के मामलों में उत्तराधिकार की

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



व्यवस्था नहीं थी और वैध विवाह होने पर एक वंश परम्परा का निर्माण होता था। यही वंशक्रम तथा रिश्तेदार आगे चलकर उनके सत्ता के अधिकारी होते थे। इस प्रकार की वंश परम्परा या उत्तराधिकार की व्यवस्था केवल पिता की वंशावली से ही जुड़ी नहीं थी, बल्कि कई मामले ऐसे भी देखने को मिलते हैं जिनमें माता से भी बच्चों को उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त हुआ है।

लैटिन यूरोप में एक व्यवस्था यह भी देखने को मिलती है कि धार्मिक संस्थाओं ने पादरियों के लिए ब्रह्मचर्य को अनिवार्य बना दिया था। अर्थात् पुरोहित और पुजारी के विवाह पर प्रतिबन्ध था। पादरियों से यह अपेक्षा भी की जाती थी कि ब्रह्मचर्य का पालन करें। हालाँकि व्यावहारिक जिन्दगी में पादरी इसे स्वीकार नहीं करना चाह रहे थे। यही कारण है कि वे दासियाँ रखा करते थे, जबकि इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि सभी चर्चों ने ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। सेल्टिक आयरलैंड में चौदहवीं शताब्दी तक पादरी विवाह करते रहे और पिता के बाद पुत्र के पादरी बनने की परम्परा भी रखते रहे।

इस प्रकार हम पाते हैं कि विशेषकर लैटिन यूरोप में उत्तर-मध्यकाल में धार्मिक संस्थाओं का विवाह पर काफी नियंत्रण था। विवाह की मान्यता से लेकर इसकी प्रकृति भी चर्च ही निर्धारित करता था। यहाँ तक कि चर्च ने विवाह की परिभाषा एवं उद्देश्य को भी स्पष्ट किया। इन धार्मिक कानूनों का मानना लोगों के लिए अनिवार्य था। विवाह के सन्दर्भ में चर्च ने आध्यात्मिकता एवं रक्त सम्बन्धों के आधार पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाये। इन प्रतिबन्धों के कारण वैवाहिक अदालतों को व्यापक शक्ति भी मिली, क्योंकि इन समरक्तता जैसे प्रतिबन्धों का पालन करवाने का काम वैवाहिक अदालतें ही किया करती थीं।

**प्रश्न 2. 16वीं और 17वीं शताब्दी में वैवाहिक जीवन के आंतरिक ढाँचे के सम्बन्ध में अभिव्यक्त विभिन्न विचारों की चर्चा कीजिए।**

**उत्तर**–16वीं शताब्दी के आरम्भ के साथ ही यूरोपीय समाज में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। समाज में परिवार जैसी संस्था अपने पहले की अवस्था में नहीं रही। औद्योगिक विकास ने परिवार के प्रकार एवं कार्य दोनों को प्रभावित किया। इन सभी परिवर्तनों से विवाह जैसी संस्था भी प्रभावित हुई। यौन सम्बन्धों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। यौन सम्बन्ध केवल एक पत्नी तक ही सीमित नहीं रहा। हालाँकि विवाह की उम्र अधिक थी तथा साथ ही काफी संख्या में लोगों द्वारा ब्रह्मचर्य पालन भी किया जाता था, तब भी समाज में वेश्याएँ एवं दासियाँ विद्यमान थीं।

जहाँ मध्ययुग के पूर्व विवाह एक स्थायी संस्था के रूप में जानी जाती थी, वहीं उत्तर-मध्ययुग में तलाक जैसी घटनाओं की संख्या में वृद्धि हुई तथा इससे वैवाहिक जीवन तथा इसकी आन्तरिक संरचना व्यापक तौर पर प्रभावित हुई। तथाकथित रूढ़िवादी परिवार में एक साथ या एक के बाद एक कई स्त्रियों के साथ पुरुषों के सम्बन्ध होते थे। इसके कारण बड़ी संख्या में नाजायज बच्चे भी पैदा हुए। हालाँकि ऐसी औरतों को घर का दुश्मन माना जाता था, पर उनके कार्यों को सकारात्मक रूप में भी देखा जाता था। जैसे इनके कारण आवारा, लम्पट और कामुक पुरुषों को यौन संतुष्टि मिलती थी, जिससे समाज की अन्य महिलाओं की रक्षा हो जाती थी। साथ ही पुरुषों के द्वारा समलैंगिक यौन शोषण की संभावना भी कम हो जाती थी। उत्तर-मध्यकाल में कभी-कभी यह भी देखने को मिलता था कि पुरुष एवं महिला का विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध काफी प्रगाढ़ हो जाते थे। इसका प्रभाव कुलीन वर्ग में ज्यादा था। कुलीन वर्ग में धीरे-धीरे ऐसे सम्बन्धों की भावना दृढ़ होती चली गई, जिस कारण विवाह जैसी संस्था के महत्त्व में कमी आयी। हालाँकि जब किसी विवाहित पत्नी द्वारा किसी पर-पुरुष के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित होता था एवं इसकी जानकारी उसके पति को होने पर हत्या जैसी घटनाएँ भी होती थीं। अवैध सम्बन्ध के कारण अवैध बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई। साथ ही सामाजिक दबाव के कारण भ्रूण हत्या जैसी घटनाओं का सिलसिला भी बढ़ा।

चर्च का मानना था कि विवाह का उद्देश्य संतानोत्पत्ति है। हालाँकि प्रेम, रति और प्रजनन ये सारे एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। उत्तर-मध्यकाल में यूरोप में लोगों के अन्दर बच्चों की चाह भी अधिक देखने को मिलती है। बच्चों के लिए कोमटस इन्टरपट्स जैसी विधि के प्रयोग का भी प्रमाण मिलता है। हालाँकि वेश्याएँ एवं अविवाहित लड़कियाँ अवैध यौन सम्बन्ध के लिए गर्भ-निरोधक दवाओं का भी प्रयोग करती थीं। वैवाहिक जीवन का स्वरूप इस प्रकार था कि चूँकि पुरुषों की ज्यादा उम्र में शादियाँ होती थीं, इस कारण वैवाहिक जीवन में उम्र का अंतराल भी अधिक होता था। साथ ही संतानोत्पत्ति का समय सीमित होने के कारण बच्चों का जन्म भी तेजी से होता था। इससे लगातार एकाएक बच्चों की संख्या में अचानक वृद्धि हो जाती थी।

बच्चों के मामले में लड़कों की संख्या लड़कियों से अधिक होती थी। इसका कारण यह था कि लोगों में लड़कों की चाह अधिक होती थी, क्योंकि इनसे वंश-परम्परा जुड़ी होती थी। ऐसी परिस्थिति में पुरुषों की संख्या अधिक हो गई तथा इससे अविवाहित पुरुषों की संख्या बढ़ गई क्योंकि उनके लिए लड़कियों की संख्या कम पड़ गई थी। लड़कियों के रूप में तो स्त्रियों का विशेष सम्मान एवं महत्त्व नहीं था, परन्तु जब वह पत्नी या माँ के रूप में होती थी, इनका सम्मान बढ़ जाता था। माँ बनने वाली महिलाओं का विशेष ख्याल रखा जाता था उन्हें टोने-टोटकों से भी सुरक्षित रखा जाता था। हालाँकि विवाहित दम्पत्ति के जीवन में गर्भधारण का विशेष समय होता था। बच्चों को आमतौर से दो या तीन वर्ष तक दूध पिलाया जाता था। अमीर घरों में इसके लिए धाय माँ रखी जाती थी। बच्चों के पालन-पोषण में माँ-बाप के साथ-साथ रिश्तेदारों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता था। पर बच्चे अवैध होते

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



थे। उनकी परवरिश वैध बच्चों की तरह नहीं हो पाती थी। पिता एवं बच्चे की उम्र में ज्यादा अंतर होने के कारण उनके बीच दूरियाँ रहा करती थी, हालाँकि बच्चे माँ के ज्यादा करीब होते थे।

इस प्रकार, हम पाते हैं कि 16वीं एवं 17वीं शताब्दी अर्थात् उत्तर-मध्यकालीन यूरोप में पारिवारिक संरचना में व्यापक परिवर्तन आया। परिवार में वैवाहिक जीवन का ढाँचा भी बदला। जहाँ पहले अवैध यौन सम्बन्ध कम स्थापित होते थे, वहीं इस काल में इनकी संख्या में वृद्धि हुई। इन अवैध सम्बन्धों के कारण वैवाहिक जीवन काफी प्रभावित हुआ। साथ ही इसके कारण उत्पन्न अवैध बच्चों से भी समाज प्रभावित हुआ, क्योंकि इन बच्चों को वैसा लालन-पालन तथा उत्तराधिकार का अधिकार नहीं प्राप्त था, जो वैध संतानों को प्राप्त था।

**प्रश्न 3. विवाह सम्बन्धी धार्मिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में प्रोटेस्टेंटों और कैथोलिकों के बीच क्या मतभेद था?**

**उत्तर**–हालाँकि यूरोप में चर्च जैसी संस्थाओं ने वहाँ के समाज को काफी प्रभावित कर रखा था। धार्मिक संस्थाओं ने परिवार एवं विवाह के लिए कुछ कानून भी बना रखे थे। पर धार्मिक संस्थाओं का स्वरूप भी एक जैसा नहीं था। उत्तर-मध्यकाल में यूरोप में धार्मिक संस्थाएँ मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित थीं–प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक। प्रोटेस्टेंट जहाँ कुछ उदारवादी दृष्टिकोण रखता था, वहीं कैथोलिक की मान्यता रूढ़िवादी थी।

हालाँकि 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मार्टिन लूथर और कैल्विन जैसे प्रोटेस्टेंट सुधारकों ने भी ईसाई धर्म में निहित वैवाहिक अवधारणा को चुनौती दी। इन्होंने चर्च के इस अंतर्विरोध की ओर इशारा किया, जिसने एक ओर तो विवाह को अभेद्य और चिरस्थायी संस्कार बताया गया था, वहीं दूसरी ओर ब्रह्मचर्य की अनिवार्यता, गुप्त विवाहों की वैधता और परस्त्री गमन के बावजूद वैवाहिक बन्धन तोड़ने पर प्रतिबन्ध लगाने की आलोचना की। प्रोटेस्टेंट विचार के अनुसार विवाह एक दिव्य संस्था थी न कि एक संस्कार। यह आपसी सहमति पर आधारित एक करार था। हालाँकि प्रोटेस्टेंट धर्मावलम्बियों का यह भी मानना था कि नाबालिगों के मामले में माता-पिता की अनुमति विवाह हेतु आवश्यक था। पर इन्होंने जोर-जबर्दस्ती करने को मान्यता नहीं दी। प्रोटेस्टेंट ने तलाक को भी सिद्धांत मंजूरी दे दी थी। विवाह के बाद यदि कोई पर-स्त्री से या स्त्री पर-पुरुष से सम्बन्ध रखे और इसे स्वीकार भी कर ले या फिर पति-पत्नी एक-दूसरे से काफी दिनों तक अलग रहे तो तलाक दिया जा सकता था, परन्तु व्यवहार में यह सम्भव नहीं हो पाता था। हालाँकि ट्रेंट परिषद ने प्रोटेस्टेंटों के इस नजरिए की आलोचना की और वैवाहिक मामलों में धार्मिक कानून को पुनर्परिभाषित और समायोजित करने का भी प्रयास किया। विवाह को समाप्त करने के सम्बन्ध में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिकों में भी थोड़ा मतभेद था। कैथोलिकों के लिए विवाह का मूल उद्देश्य संतानोत्पत्ति था, जबकि प्रोटेस्टेंट रतिक्रिया को ईश्वर का उपहार मानते थे, जिससे सुख और आनन्द की प्राप्ति होती थी तथा यह कोई पाप नहीं है। प्रोटेस्टेंटों का मानना था कि विवाह का मूल उद्देश्य आनन्द एवं सुख की प्राप्ति थी। पर हाँ, इसके इस क्रम में इसके परिणाम के रूप में संतान की प्राप्ति होती है। हालाँकि गर्भनिरोधात्मक उपाय एवं गर्भपात को लेकर दोनों का मत समान था। दोनों ने ही उसकी निन्दा की है तथा इसका विरोध भी किया है। हालाँकि विवाह के संदर्भ में कैथोलिक इसे एक संस्कार मानता था।

कैथोलिक ने विवाह जैसी संस्था के स्थापना का उद्देश्य वैध तरीके से बच्चे प्राप्त करना और उनमें ईश्वर का भाव पैदा करना था, ताकि वे अपने बच्चों का पालन-पोषण सही ढंग से कर सकें, जबकि प्रोटेस्टेंटों और प्युरिटनों ने पादरियों के ब्रह्मचर्य और इसकी श्रेष्ठता को नकारा तथा प्रसन्न दम्पत्ति की अवधारणा विकसित की। वहीं कैथोलिकों ने पवित्र परिवार का एक आदर्श निर्मित किया और इसके लिए निजी जीवन में ईसाई मत को स्थान दिलाया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ प्रोटेस्टेंट अचानक हुए सामाजिक-आर्थिक और जनसंख्या सम्बन्धी संक्रमण की बात करता है, वहीं कैथोलिक धीमे और पुराने विकास क्रम को दर्शाता है, जो धार्मिक और नैतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील था।

विवाह जैसी संस्था के संदर्भ में राज्य की भी भूमिका रही, पर वह भी धार्मिक संस्थाओं को नजरअंदाज नहीं कर सकता था। फ्रांस के शाही कानून में धीरे-धीरे विवाह के सम्बन्ध में कैथोलिक ट्रेंट परिषद की घोषणा को शामिल किया गया। उसने विवाह के लिए गेलिकन सिद्धांत को भी औषधि के रूप में स्वीकार किया। परन्तु नाबालिगों के विवाह, चर्च के पुरोहितों की भूमिका और चर्च की क्षमता पर मतभेद अवश्य था। जिन क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक प्रगति अधिक हुई, वहाँ के लोगों ने प्रोटेस्टेंट सिद्धांतों को ज्यादा महत्त्व दिया तथा विवाह का उद्देश्य मूलत: सुख एवं आनन्द ही माना। हालाँकि प्रोटेस्टेंट देशों के परिवार में पिता के प्राधिकार को मजबूत बताया गया और उसे परिवार की ओर से आराधना करने का अधिकार भी दिया गया। साथ ही इसमें वैवाहिक सम्बन्ध से उत्पन्न बच्चों की व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल दिया, ताकि आगे चलकर बच्चे अपना जीवन निर्वाह शुरू करने योग्य बन सकें।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विवाह जैसी संस्था के निर्माण में प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक दोनों चर्चों का अपना अलग-अलग दृष्टिकोण रहा है। जहाँ एक ओर कैथोलिक उसे संस्कार की संज्ञा देते हैं तथा इसका उद्देश्य संतानोपत्ति बताते हैं, वहीं प्रोटेस्टेंट इसे सुख और आनन्द प्राप्ति का साधन मानते हैं। हालाँकि उसके परिणाम के रूप में संतानोपत्ति को प्रोटेस्टेंट ने भी स्वीकार किया है। पर अंतत: यह कहा जा सकता है कि प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक दोनों धर्मों ने वैवाहिक जीवन के ढाँचे को प्रभावित किया था।

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



**प्रश्न 4. 16वीं और 17वीं शताब्दी में धार्मिक प्राधिकरणों और राज्य ने परिवार पर किस प्रकार के नियंत्रण स्थापित किए?**

**उत्तर**–सामान्य तौर पर जैसे ही समाज बनता है, उसके साथ ही कुछ ऐसी मान्यताएँ एवं रीति-रिवाजों का भी निर्माण होता है, ताकि समाज के विकास में कोई व्यापक गतिरोध उत्पन्न न हो। समाज में व्याप्त संस्थाओं द्वारा भी नियम एवं कानून का निर्माण होता है, ताकि समाज में उत्पन्न विसंगतियों से निपटा जा सके या फिर उन्हें उत्पन्न होने से रोका जा सके। इन कानूनों या मान्यताओं के अभाव में समाज को स्वरूप नियंत्रित न होकर स्वच्छंद हो जाता है और फिर इस स्थिति में समाज के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। 16वीं और 17वीं शताब्दी अर्थात् मध्यकाल में यूरोप में भी धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य द्वारा कुछ ऐसे ही नियंत्रणकारी कानून एवं मान्यताओं का निर्माण किया गया, जो बदलती सामाजिक व्यवस्था पर नियंत्रण के लिए अपरिहार्य था। चूँकि समाज की मूलभूत इकाई परिवार होती है अत: परिवार पर नियंत्रण का तात्पर्य समाज पर नियंत्रण है।

परिवार के निर्माण का मुख्य आधार विवाह है। अर्थात् विवाह जैसी संस्था हेतु कानून का निर्माण आवश्यक था, क्योंकि अगर इस संस्था में स्थायित्व नहीं रहेगा, तो स्वाभाविक रूप से परिवार का मूल नष्ट हो जाएगा। धार्मिक संस्थाओं में चर्च ने विवाह को परिभाषित किया तथा साथ ही इसके उद्देश्य को भी स्पष्ट किया पर आर्थिक-सामाजिक विकास के कारण धार्मिक मतावलम्ब अलग-अलग समूहों में बँट गए। रूढ़िवादी विचार रखने वालों ने कैथोलिक सम्प्रदाय को अपनाया, जबकि विकासवादी विचार रखने वालों ने प्रोटेस्टेंटों को अपनी धार्मिक आस्था दी। हालाँकि रोमन चर्च ने एक ओर तो विवाह को अभेद्य और चिरस्थायी संस्कार बताया, वहीं दूसरी ओर ब्रह्मचर्य के आदर्श को भी बढ़ावा दिया। विकासवादी प्रोटेस्टेंटों का विचार था कि विवाह एक दिव्य संस्था थी न कि सरकारी। इसे इन लोगों ने आपसी सहमति के आधार पर एक करार बताया। हालाँकि नाबालिगों के सन्दर्भ में विवाह हेतु माता-पिता की अनुमति अवश्य मानी। इन्होंने तलाक को सिद्धांतत: मंजूरी दे दी। विवाह के बाद यदि कोई पुरुष या स्त्री पर-स्त्री या पर-पुरुष से सम्बन्ध रखता है या इन दोनों में विवाह के बाद लम्बे समय तक अलगाव हो, तो वे तलाक ले सकते हैं, परन्तु व्यवहार में यह सम्भव नहीं हो पाता था।

जहाँ तक सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दियों में बच्चों की जिम्मेवारी की बात है, तो चर्च ने इसके लिए माता-पिता पर बल दिया। लोगों को चर्च ने यह बात कही कि वही अपने बच्चों को कोई हुनर सिखाएं, ताकि बड़ा होकर वह कोई व्यवसाय कर सके। चर्च ने धार्मिक प्रशिक्षण के माध्यम से भी बच्चों को शिक्षा दी, ताकि उनके अन्दर धर्म एवं उनसे जुड़ी मान्यताओं को ग्रहण किया जा सके। इन माध्यमों से परिवार को स्थायित्व मिला तथा इस प्रकार परिवार पर धार्मिक संस्थाओं का नियंत्रण बना रहा।

राज्य ने भी परिवार पर कई प्रकार से नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। खासकर दीवानी या पारिवारिक मामलों में राज्य की गहरी दिलचस्पी थी। 16वीं और 17वीं शताब्दियों में वैवाहिक मामलों में चर्च न्यायाधिकरणों और गुप्त विवाहों की वैधता राज्य के लिए चिन्ता का विषय था। 1556 में फ्रांस की एक राजाज्ञा में माता-पिता की आज्ञा के बिना नाबालिगों के विवाह को अमान्य घोषित किया गया और इसका उल्लंघन करने वालों को उत्तराधिकार से वंचित किया गया। फ्रांस के शाही कानून में धीरे-धीरे विवाह के सम्बन्ध में कैथोलिक ट्रेंट परिषद की घोषणाओं को शामिल किया गया, पर विवाह के गेलिकन सिद्धान्त को भी निदान के रूप में स्वीकार कर लिया गया। हालाँकि वैवाहिक मामलों में चर्च को विशेषाधिकार प्रदान किए जाने के कारण धर्माधिकारियों और राज्य के धर्मनिरपेक्ष प्राधिकरण के बीच टकराव हो गया। हालाँकि राज्य का सरोकार विवाह सम्बन्धी कानूनों तक सीमित था, परन्तु कुछ पारिवारिक विधान उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण थे। हेनरी ने 1556 ई. के शिलालेख में गर्भपात रोकने के सम्बन्ध में किए गए उपायों का जिक्र किया है। उसका लक्ष्य शिशु हत्या को रोकना था। इंग्लैण्ड में भी 1625 में इसी प्रकार का कानून बनाया गया, परन्तु वहाँ यह केवल अवैध बच्चों पर ही लागू होता था। फ्रांस में अनाथ बच्चों का पालन-पोषण और देखरेख की जिम्मेवारी न्यायाधिकारी की थी।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 16वीं एवं 17वीं शताब्दी में यूरोप में बच्चों पर चर्च और सरकार का मजबूत नियंत्रण था। बच्चों पर नियंत्रण का अर्थ था परिवार पर नियंत्रण। इसी प्रकार प्रोटेस्टेंट एवं कैथोलिक धर्म-सुधारकों ने भी परिवार के आन्तरिक ढाँचे के साथ-साथ सभी प्रकार के सामूहिक ढाँचे को भी प्रभावित किया। दोनों ने ही परिवार को व्यक्तिगत ईसाई मत की प्रक्रिया की प्राथमिक इकाई के रूप में स्वीकार किया। हालाँकि राज्य के अधिकार में वृद्धि के साथ ही परिवार जैसी संस्था को भी विशेष संरक्षण प्राप्त हुआ। समय-समय पर बदलते शासकों द्वारा भी पारिवारिक मामलों पर कुछ न कुछ कानून बनाने का प्रयास किया गया। प्रोटेस्टेंट देशों में पारिवारिक स्थायित्व हेतु तलाक पर पाबंदी भी लगाई गई।

**प्रश्न 5. मध्यकालीन यूरोप में उत्तराधिकार व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

**उत्तर**–आदिकाल से ही समाज और उसकी परम्पराएँ किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। समाज का क्रमिक विकास परिवार के विकास से सम्बन्धित अवधारणा है और परिवार के स्थायित्व एवं उसके क्रमिक विकास हेतु उत्तराधिकार जैसी व्यवस्था अनिवार्य है। उत्तराधिकार व्यवस्था के कारण ही एक परिवार का वंशक्रम बनता है, जिसका महत्त्व विवाह एवं अन्य सामाजिक एवं

www.neerajbooks.com

आर्थिक गतिविधियों में भी देखने को मिलता है। सामान्यत: उत्तराधिकार का यह अर्थ नहीं है कि केवल सम्पत्ति का हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हो, बल्कि उसके जरिए संस्कारों एवं परम्पराओं का भी हस्तांतरण होता है। साथ ही पारस्परिक सम्बन्ध भी मजबूत होते हैं।

मध्यकालीन यूरोपीय समाज में उत्तराधिकार की एक स्पष्ट व्यवस्था थी, जिसने यूरोपीय समाज में पारिवारिक स्थायित्व को कायम रखा। आमतौर पर उत्तराधिकार का लाभ निकट के सगे-सम्बन्धियों को मिलता है। यह लोगों के आपसी सम्बन्धों को भी प्रभावित करता है। इसी प्रकार की व्यवस्था मध्यकालीन यूरोपीय समाज में भी थी। इस काल में यूरोप में उत्तराधिकार के कई रास्ते थे। अर्थात् यह पिता की तरफ से भी मिलता था, तो कभी माता की तरफ से मिलता था, तो कभी पत्नी की तरफ से, कभी अन्य सम्बन्धियों की तरफ से। उत्तराधिकार को लेकर परिवार में कभी-कभी लड़के-लड़कियों में भेद भी किया जाता था। हालाँकि सम्पत्ति के हस्तांतरण का समय भी निर्णायक होता था। उत्तराधिकार में खेतों में विभाजन न हो, इसका पूरा प्रयास किया जाता था। हालाँकि खेत पर उत्तराधिकारी का अधिकार होता था, पर उसे अपने भाई-बहनों आदि का भी ख्याल रखना पड़ता था। उत्तराधिकारी के सन्दर्भ में आमतौर पर ज्येष्ठ पुत्र का ही भूमि पर अधिकार होता था, परन्तु कभी-कभी, छोटे बेटे-बेटियों को भी खेत मिल जाया करता था। उत्तराधिकार की व्यवस्था पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चे, भाई-बहिनों और सम्बन्धियों के आपसी रिश्तों को भी तय करती थी।

यूरोप में उत्तराधिकार व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि जमीन पर मुख्यत: पुरुष का ही अधिकार होता था, परन्तु उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में दूर-दराज के पुरुष सम्बन्धियों की अपेक्षा उस कुल या परिवार की महिला का हक अधिक बनता था। चूँकि यूरोप में 20 प्रतिशत से अधिक अधिकारी परिवारों में केवल लड़कियाँ ही थीं। अत: ऐसी स्थिति में लड़कियाँ उत्तराधिकारी बनती थीं। लड़कियों के उत्तराधिकारी बनने के बाद उनकी शादियों के लिए प्रस्ताव अधिक आया करते थे। हालाँकि पति की मृत्यु के बाद भी महिलाओं के पास सम्पत्ति का अधिकार आ जाता था। सामान्यत: लड़कियों को तो उतना महत्त्व नहीं दिया जाता था, परन्तु शादी होने के बाद जब वह पत्नी बनती थी, तो उसका महत्त्व बढ़ जाता था क्योंकि शादी के बाद पति एवं पत्नी की मिल्कियत इकट्ठी हो जाती थी। इसी प्रकार यदि विधवा या तलाकशुदा महिलाएँ कम उम्र की होती थीं, तो अन्य लड़कियों की अपेक्षा उनका विवाह पहले होता था, क्योंकि विधवा या तलाकशुदा होने के बाद वह सम्पत्ति की अधिकारी होती थी। हालाँकि स्त्रियों के पुनर्विवाह में पूर्व पति से हुई सन्तानों की स्थिति काफी कमजोर होती थी, क्योंकि बाद में महिला का विवाह जिस पुरुष से होता था, उसके द्वारा पैदा हुए बच्चों को ही उत्तराधिकार मिलता था।

मध्यकालीन यूरोप में उत्तराधिकार की यह व्यवस्था ऐसी नहीं थी कि सभी जगह एक समान थी। अलग-अलग क्षेत्रों में स्थानीय परम्परा अलग-अलग होने के कारण उत्तराधिकार व्यवस्था में भी भिन्नता होती थी। हालाँकि आमतौर से हर जगह उत्तराधिकार का सम्बन्ध एक कुटुम्ब के अन्तर्गत ही होता था। लेखन कला से पूर्व के समाजों में यह जब स्थानीय रीति-रिवाजों से तय होता था और सब-कुछ बंधा-बंधाया ही नहीं होता था। वसीयत लिखने का चलन नहीं था, ऐसा अपवाद स्वरूप ही होता था। कभी-कभी पत्नी की जगह रखैल या चर्च जैसी संस्थाओं को भी उत्तराधिकार मिल जाया करता था। हालाँकि पारिवारिक सम्पत्ति के बंटवारे से परिवार टूटता भी था। साथ ही साथ ऐसी स्थिति में बेटा या बेटी अपना पैतृक निवास छोड़कर अलग रहने लगते थे। उन्हें सम्पत्ति एवं जमीन दोनों में हिस्सा मिलता था, जिस कारण सामाजिक कृषीय सम्बन्ध भी बदल जाते थे। हालाँकि सम्पत्ति को टुकड़ों में बंटने से बचाने के लिए एकल अधिकार या उत्तराधिकार को वरीयता दी जाती थी। ऐसी स्थिति में दूसरे भाई-बहनों को जमीन के बदले अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ दे दी जाती थीं।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि मध्यकालीन यूरोप में उत्तराधिकार की एक मान्य व्यवस्था थी, जिसने एक ओर पारिवारिक वंशक्रम को आगे बढ़ाया, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक विभाजन के लिए भी उत्तरदायी रहा। हालाँकि यह व्यवस्था यूरोप के सभी समाजों में एक जैसी नहीं थी, बल्कि इस पर स्थानीयता का भी प्रभाव था। सामान्यत: लड़कियों को उत्तराधिकार व्यवस्था में बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था, परन्तु विवाहित महिलाओं को उत्तराधिकार व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त था।

**प्रश्न 6. अपने बच्चों के प्रति माता-पिता की क्या जिम्मेदारियाँ थीं?**

**उत्तर**–किसी भी समाज का विकास उस समाज के बच्चों के शिक्षण एवं संस्कार पर निर्भर करता है। चूँकि परिवार समाज एक की एक सबसे छोटी इकाई है तथा बच्चे इस परिवार के सदस्य होते हैं अत: परिवार के मुखिया का यह पूर्ण कर्त्तव्य बनता है कि वह बच्चों के पालन-पोषण का पूर्ण ख्याल रखे। आमतौर से परिवार की अवधारणा भी माता-पिता एवं वैध संतानों के एक साथ रहने से प्रारम्भ हुई। साथ ही परिवार का क्रमिक विकास भी बच्चों के विकास से जुड़ा हुआ है।

मध्यकालीन यूरोप में भी चर्च एवं राज्य के द्वारा बच्चों के सन्दर्भ में कई नियम एवं कानून बनाए गए। इन नियम एवं कानूनों में यह स्पष्ट किया गया कि किसी भी वैवाहिक दम्पत्ति की संतान के पालन-पोषण की जिम्मेवारी माता-पिता पर होती है तथा माता-पिता को बच्चे के जन्म से लेकर उसके वयस्क होने तक उसकी शिक्षा, भोजन एवं देखरेख की पूरी जिम्मेवारी निभानी होगी। इस काल में वैवाहिक दम्पत्ति को बच्चा पाने की भी अपार ललक होती थी। हालाँकि चर्च ने भी ब्च्चों की शिक्षा के मामले में

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com



माता-पिता पर बल दिया तथा उन्हें यह बात कही गई कि वे अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा दें, जिससे कि वे कोई हुनर सीख सकें, ताकि आगे चलकर वे अपना व्यवसाय कर अपना जीवन निर्वाह कर सकें। बच्चे के सन्दर्भ में माता-पिता की जिम्मेवारियाँ माँ के गर्भधारण से ही आरम्भ हो जाती हैं। वैसे तो सामान्यत: यूरोपीय समाज में लड़कियों को उतना सम्मान एवं महत्त्व नहीं दिया गया, पर जब वह विवाहित हो जाती थी तथा माँ बनने वाली होती थी, तो उस समय उनका विशेष ख्याल रखा जाता था। इनके एवं बच्चों की सुरक्षा के लिए टोने-टोटके भी किये जाते थे। साथ ही बच्चे के जन्म के बाद आमतौर से माँ उसे दो या तीन साल तक दूध पिलाया करती थी। चूँकि अमीर घरों में बच्चों की जन्म दर अधिक होती थी अत: उन्हें दूध पिलाने के लिए धाय माँ भी रखी जाती थी।

बाद में जब बच्चा बड़ा होता था, तो इसकी शिक्षा एवं भोजन आदि की जिम्मेवारी भी माँ-बाप पर होती थी। हालाँकि धार्मिक संस्थाएँ भी बच्चों को धर्म की शिक्षा देती थीं, ताकि उन्हें ईश्वर के प्रति भय बना रहे तथा माँ-बाप बच्चों का पालन-पोषण सही ढंग से कर सकें। प्रोटेस्टेंट ने भी बच्चों की शिक्षा के सन्दर्भ में उल्लेख किया है कि उन्हें व्यावसायिक शिक्षा दी जाए, ताकि बड़ा होकर वह अपना जीवन-निर्वाह कर सके तथा अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें। धार्मिक संस्थाओं तथा राज्य ने भी न केवल बच्चों के सन्दर्भ में कानून बनाया, बल्कि उनके विवाह से सम्बन्धित जिम्मेवारियाँ भी माता-पिता को सौंपी। खासकर नाबालिग बच्चों के विवाह के मामले में मात-पिता की सहमति आवश्यक थी। ऐसी स्थिति में अगर माता-पिता की सहमति न हो, तो ऐसे विवाहों को धार्मिक संस्थाओं और राज्य द्वारा अवैध करार दिया जाता था।

बच्चों के सन्दर्भ में लालन-पालन के साथ-साथ माता-पिता की यह भी जिम्मेवारी थी कि वे बच्चों को अच्छे संस्कार दें, ताकि आगे चलकर बच्चा समाज एवं राष्ट्र के लिए धरोहर साबित हो। इस तरह के कार्यों में माता-पिता के साथ-साथ सगे-सम्बन्धियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता था। चूँकि पुरुषों की शादी अधिक उम्र में होती थी, इस कारण पिता एवं बच्चों की उम्र में ज्यादा अंतर होने के कारण उनके बीच दूरियाँ अधिक होती थीं, जबकि माँ से बच्चे ज्यादा करीब होते थे। माता के द्वारा बेटियों को घरेलू कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता था, ताकि विवाह के बाद वे अपने घर जाने पर वहाँ की जिम्मेवारियाँ निभा सकें।

इस प्रकार, उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा आदि में माता-पिता का महत्त्वपूर्ण योगदान होता था। हालाँकि समय पर इसके लिए धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य द्वारा भी नियम एवं कानून बनाए गए, ताकि माता-पिता अपने बच्चों के प्रति लापरवाह न हों। पर हाँ, अनाथ बच्चों के सन्दर्भ में यह भी देखने को मिलता है कि उनका पालन-पोषण वैसा नहीं हो पाता था, जैसा कि पारिवारिक माहौल में पल रहे बच्चों का होता था। हालाँकि उसके लिए राज्य द्वारा कुछ कदम उठाए गए थे, वे व्यापार में बहुत उपयोगी नहीं सिद्ध हो पा रहे थे।

■■

NEERAJ PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

www.neerajbooks.com